

संस्थापक—श्रीमत् प प्र त्र लो गीताब्यास श्री १०८ ज्ञानगुरु महामण्डलेश्वर स्वामी श्री विद्यानन्दी महाराज.



यत्र योगेश्वर कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धर तत्र श्रीविजयी भुविभवा नीतिप्रतिमस ।

भक्तों के प्रेमार्त हृदय में करो हरे ! विश्राम ।

जैसे धेनु रमें मनुवन में ;

वसें मनुज निज सौख्य सदन में ;

वैसे ही भिय ! निज जन मन में विहरो हे घनश्याम ॥

वापिक मूल्य—

भारत में ४)

विदेश में ६॥)

‘तुलसी’ असमय के मन्त्रा, श्रीरज भगव विवेक ।

साहित त्वादम सत्यजन, रामभरोमौ एक ॥

साधारण प्रति

भारत में ॥

विदेश में १२)

आ गौरवके लिये मङ्गलमार्ग परेक द्वार्य गान्धर्वसे वेत साक्षीविनायक जारी में मुद्रित और प्रकाशित ।

विषयसूची [हिंदीविभाग]

विषय

१—बाललीला (कविता)—रचयिता—गोस्वामी भी नृसिंहाचार्य	८११
२—गीता में मङ्गलचरण—ले०—श्रीमत्परमहंस परितोषदासजी महाराज लोकसभा गीताभ्यास अङ्क १	८१२
३—मुझे सखी भडा और सखा विश्वास दो—ले०—श्री अक्षयचन्द्रजी शिवाजी 'अकिञ्चन'	८१३
४—कलिकाव का जाल—ले०—स्वामी श्री गोकुलचन्द्रजी वैद्य, बोगिराज, धनन्तरिपुर	८१४
५—मुसी जीवन—ले०—पौ० श्री बाबुदत्तजी शास्त्री नैलड, झु० वे० विशारद	८१५
६—इसी में है—ले०—स्वामी श्री रामानन्दजी चन्दाजी, हरमनाथी, व्याकरणार्थ	८१६
७—चित्रकार से—ले०—कविराज श्री नन्दचिन्मयी जी 'किलोर'	८१७
८—गीतादाहान्य—ले०—ज्ञानपत्नी श्री गोकुलचन्द्रजी शर्मा	८१८
९—यही खयाल रसना चतुराई है—लेखक—श्रीमती विभूतिदेवी, व्यापिका	८१९
१०—प्रसुचरणों में—ले०—श्री सुशेखरदासजी श्रीधरमर् देवर्	८२०
११—सुप्तोत्तम मास की परीक्षा—ले०—श्री शिवाजीकाठजी शर्मा	८२१
१२—विमो (कविता)—र०—श्री सुरेन्द्रनाथजी 'आजद'	८२२
१३—आत्मव्योति—ले०—श्री सुरेन्द्रनाथजी 'आजद'	८२३
१४—दाहो—ले०—वि० महाहरकाठजी शर्मा	८२४
१५—समाधान—ले०—ज्ञानपत्नी श्री गीतानन्दजी शर्मा	८२५
विषयसूची—१—प्रवरान की बाललीला	८२६

[गुजराती विभाग]

१—आजदीला—(ले० प्रसिद्ध)	८२७
२—निज स्वधर्म—(ले०—प्रभुदेव शर्मा प्रभुदास सप्तगुप्त)	८२८
३—प्रसिद्ध विचार—(ले०—श्रीमत् परमहंस परितोषदासजी महाराज लोकसभा गीताभ्यास अङ्क १)	८२९
४—विशेषज्ञि मा—(ले०—अन०—अक्षयजी शास्त्री 'अकिञ्चन')	८३०
५—प्रभु अपने उत्तर—
अ प्रभु—(ले०—श्री विद्याजी हि० पु० अन्तर)	८३१
ब उत्तर—(ले०—ज्ञानपत्नी श्री गीतानन्दजी शर्मा)	८३२
६—आजदीला सुष्टिनी उत्पत्ति—(ले०—स्वामी श्री गोकुलचन्द्रजी शर्मा)	८३३
७—अभेद प्रेम—(ले०—सिद्धराज भावाचार्य देवर्)	८३४
८—अभेद प्रेम या भेद ?—(ले०—प्रभुदास सप्तगुप्त श्री अ०)	८३५
९—श्री सुशेखरदास परमभूत—(ले०—वामनराव प्रा० प्रदेव, श्री अ० अ० अ०)
(ले०—अ० श्री पी (बाल) अ० अ० अ० टी (बाल) साक्षीसिद्ध)	८३६
१०—भारतीय स्वधर्म—(ले०—श्री शिवाजीकाठजी शर्मा)	८३७
११—अभिमान और आकाङ्क्षा—(ले०—वामनराव प्रा० प्रदेव, श्री अ० अ० अ०)	८३८
१२—अभिमान और अकाङ्क्षा—(ले०—प्रभुदास)	८३९
१३—गीतानु वेदान्त—(ले०—श्री सुरेशचन्द्रजी 'अजद')	८४०

सप्तस्वी महात्माओं, विशिष्ट विद्वानों और विचारशील सज्जनों द्वारा कांककन्याणाथे
संस्थापित, अखिल भारतीय—

धर्मसंग्रह

उद्देश्य—सब धर्मों के मूलभूत अधर्म को मिटाकर परम कल्याण के मूलभूत, धृति, स्थिति, पुराणादि प्रतिपादित
धर्म की संस्थापना और प्रचार करना ।

मदस्यता—नीचे लिखे संकल्प के अनुसार प्रतिदिन कम से कम १०८ बार अपने इष्टमन्त्र का जप या पाठ
करना, यस गद्दी सदस्यता का नियम है । समूह में या अलग अलग जप या पाठ करने का संकल्प यह है—“तत्सद्व्य-
धर्मग्लान्यधर्माभ्युत्थाननिवृत्तिपूर्वक धर्मसंस्थापनार्थम् अमुकमन्त्रस्य जपं पाठं वा करिष्ये ।” संस्कृत न जाननेवालों के लिए
“अधर्म का नाश और धर्म की संस्थापना के लिए मैं इस मन्त्र का जप या पाठ करता हूँ ।”

कर्तव्य—१ यथा संभव विद्यो भी गार्क द्रव्य का सेवन न करना । २ शास्त्रपरंपरा से प्राप्त स्वधर्मोक्त
व्याख्यान, चरित्रवैद्वदेव, अतिथिसत्कार आदि कर्म अवश्य करना । ३ यथा संभव भारतीय नेश भूषा रखना तथा पूज्यों
की आज्ञा मानना । ४ हो सके, तो दूसरों को इस का अनुयायी बनाना ।

विशेष—इस कार्य की उत्पत्ति और प्रेरणा गीता के अध्याय ४ ओ० ७, ८ के अनुसार है, अतः गीता का
स्वाध्याय, अध्ययन और विचार सदा नियम से करना मुख्य कर्तव्य होगा ।



नपस्वी महात्माओं, विशिष्ट विद्वानों और विचारशील सज्जनों द्वारा
लोककल्याणार्थ संस्थापित, अखिल भारतीय—

धर्मसंग्रह

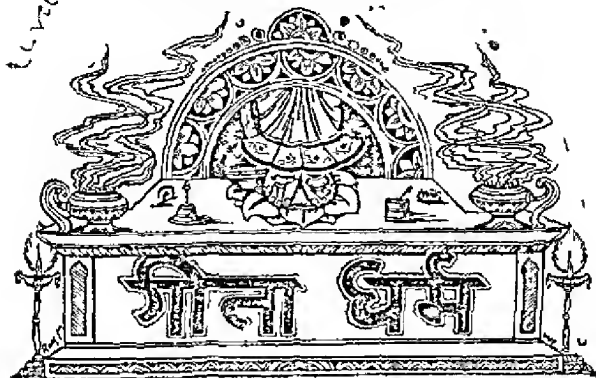
उद्देश्य—सब धर्मों का मूलभूत अधर्मों को मिटाकर परम कल्याण का मूलभूत, धृति, स्थिति, पुराणादि
प्रतिपादित धर्मों की संस्थापना और प्रचार करना ।

सदस्यता—नीचे लिखे संकल्प अनुसार प्रतिदिन ओंकारों ओंकारों १०८ बार यातायात इष्ट मंत्रों
जप अथवा पाठ करवा, यस ओंकार सदस्यता का नियम है । समूह में या अलग अलग जप के पाठ करने का संकल्प
आ है—“तत्सद्व्यधर्मग्लान्यधर्माभ्युत्थाननिवृत्तिपूर्वक धर्मसंस्थापनार्थम् अमुकमन्त्रस्य जपं पाठं वा करिष्ये ।”
संस्कृत न जाननेवालों के लिए “अधर्मों का नाश और धर्मों की संस्थापना के लिए मैं ओंकारों जप या पाठ करूँ ।”

कर्तव्य—१ यथा संभव शास्त्र परंपरा आदि कर्म अवश्य करना । २ शास्त्र परंपरायां प्राप्त स्वधर्मोक्त
व्याख्यान, चरित्रवैद्वदेव, अतिथि सत्कार आदि कर्म अवश्य करना । ३ यथा संभव भारतीय नेश भूषा
राखनी तथा पूज्यों की आज्ञा माननी । ४ जहाँ हो सके, तो धर्मोत्थानों को आना अनुयायी बनाना ।

विशेष—इस कार्य की उत्पत्ति और प्रेरणा गीता का ओ० ४ श्लो० ७-८ के अनुसार है, अतः गीता का
स्वाध्याय, अध्ययन और विचार सदा नियम से करना मुख्य कर्तव्य होगा ।

संस्कारक—श्रीमन्परमहंस परिश्रान्ताचार्य महानिष्ठ लोकसुप्रदी गाथाभास भी १०८ जगद्गुरु
महामण्डलेरवर स्वामी श्री विद्यानन्दजी महाराज



सर्वेषामान् परित्यज्य मामेक शरणं व्रज । अहं त्या सर्वपापेभ्यः माक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

वर्ष ७ }

जून, १९४२, काशी

{ अङ्क ६

काललीला

हरि काग्ह गोवर्धन यदि नेया ।

याधि माधि विद्यो भारि चारिक मे भूष न जानि अचानि न धेया ॥ १ ॥

मेतसिलर यदि विनै चारिक चिन अति हित बचन कदां बलमेया ।

बोधि तकुट पत्र फरि धुताईं सुनि कव्य वेनु धनु धुकि धेया ॥ २ ॥

बलदाऊ देखिचत हरि ते आचानि छाक पठाईं मेरी मेया ।

किलकि सला सब नचत मोर व्यो वूदत कवि कुरग की नेया ॥ ३ ॥

सेतत आत परसपर बद्धक छेनेन कहत करत रागदेया । ४ ॥

‘तुलसी’ बालकेति तुल निरसत वरचत सुभन सहित सरमेया ॥ ५ ॥

—गोप्तामी तुलसीदास ।

गीता में मङ्गलाचरण

[ले०—श्रीमत्परमहंस-परिव्रजकाचार्य ब्रह्मनिष्ठ लोकसंप्रदी गीताव्यास जगद्गुरु महामण्डलेश्वर

श्री १०८ स्वामी श्री विद्यानन्दजी महाराज]

लौकिक व्यवहार में किसी काम का आरम्भ करते समय भगवान् अथवा अपने इष्टदेवता का नाम लेने की प्रथा आवालवृद्ध प्रसिद्ध है। इस का अभिप्राय यह है कि इष्टदेवता के आशीर्वाद से अङ्गीकृत कार्य सफलता से समाप्त हो। इस निर्विघ्न समाप्ति के लिए 'सर्वे विघ्नाः शयं यान्ति गणेश-स्तवपाठतः' इस वाक्यानुसार प्रायः गणेशजी का स्मरण विशेष प्रचलित है; लेकिन यह कोई आवश्यक नहीं, शिव, दुर्गा आदि जिस के जो इष्टदेव हो, उन का स्मरण किया जा सकता है। शास्त्रकारों ने सभी देवताओं में यह सामर्थ्य बताई है जिस से विघ्नों का नाश हो सके, तथापि भावना का भेद ही फलभेद के कारण कहा है—

कार्पस्तेस्तैर्हृत्तप्तानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः ।
तं तं नियममास्याप प्रकृत्या नियताः स्वया ॥
यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयाचितुमिच्छति ।
तस्य तस्याचर्या श्रद्धां तामेव विदधान्यहम् ॥
स तथा श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमोहते ।
लभते च ततः कामान्ययैव विहितान् हि-तान् ॥
धन्तवच फलं तेषां तद्भवत्यन्यमपेक्षाम् ।
देवान्देवपुत्रो यान्ति मङ्गला यान्ति मापपि ॥

—गी० ७-२०, २१, २२, २३

जिन का ज्ञान विविध कामनाओं से दबा हुआ है वे

अपनी अपनी प्रकृति के वश होकर नाना प्रकार के नियमों का पालन करते हुए, और और देवताओं की भक्ति करते हैं। मेरे जिस देवतारूप को जो व्यक्ति श्रद्धा से पूजना चाहते हैं, उन की श्रद्धा को उसी देवता में लगा देता हूँ। वे श्रद्धा से युक्त होकर उस देवता की उपासना करते हैं और मेरे ही दिये हुए उस भजन के कामनारूप फल को प्राप्त करते हैं। इन अल्प बुद्धिवाले भक्तों का ऐसा फल नाशवान् ही होता है। देवभक्त देवों के लोकों को जाते हैं और मेरे भक्त मेरे पास पहुँचते हैं।

पुनश्च इस प्रसंग में ४-११ का—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥
(जो जिस भाव से मेरी शरण आता है, मैं उस के लिए वैसा ही फल देता हूँ। सब प्रकार से मनुष्य मेरा ही मार्ग अनुसरण करते हैं) यह श्लोक भी ऊपर की बात को पुष्ट करता है।

अब सोचने की बात है कि साधारण लोगों में यह चाल है, तो गम्भीर विचार करनेवाले शास्त्रकारों का कहना ही क्या? वे तो इस बात पर बहुत ही जोर देते हैं और शायद ही कोई ऐसा प्राचीन ग्रन्थकार मिले, जिस ने ग्रन्थारम्भ में मङ्गलाचरण न किया हो। इन की बातें छोड़ दें, तो भी उन

के टीका, टिप्पणी, विवरणकार अपने आदरणीय ग्रन्थ
कार के मङ्गलचरण का बड़ी मृदुपता से उद्घोष
करते हैं, यहाँ तक कि ऐसे मङ्गलमूचक श्लोकों से
'अनुबन्ध चतुष्टय' (ग्रन्थ के अधिकारो, विषय,
प्रयोजन, सन्धन) आदि आवश्यक बातें निकालने की
कोशिश करते हैं, चाहे वे बातें मूलकार को स्वयं
में भी न सूची हों। किन्तु ही दिग्गज पण्डित जैसे
नैयायिक विद्वत्ताय, दिनकर, उदयनानार्य आदि इस
विषय के ग्रन्थ बनाकर मङ्गलवाद का स्वतन्त्र विषय
तैयार कर गये हैं। उस के देखने से मालूम होगा
कि जिस ध्यान की आजकल के शिक्षित बहुराने
वाले अर्धचित्कर समझते हैं और नास्तिक दल तो
अनुपयोगी कहता है, उसे पूर्ववर्ती ग्रन्थकार किन्ते
महत्त्व की दृष्टि में देखते थे।

इस ध्यान को विस्तार से कहने का तात्पर्य यह
दिशाना है कि गीता जैसे अति गम्भीर विषय का
प्रतिपादन करनेवाले ग्रन्थ के प्रारम्भ में जिस की
भगवान् की साक्षात् वैखरी वाणी समझना चाहिए, उस
के ग्रन्थकार ने अवश्य मङ्गल किया होगा, यह
स्वयं सिद्ध है। यहाँ स्वयं ईश्वर वक्ता है और
उन के मुख में जो बात कइलाई जायगी, उस का
गीतव्य वेदवाणी से कम तो नहीं मन्ता। ऐसे
वाक्यपूर्ण कार्य की निर्दिष्ट समाप्ति होना ग्रन्थकार
को चिन्ता का विषय अवश्य है।

यहाँ प्रासंगिक शिक्षा उठ सकती है कि गीता
स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं है, यह तो महाभारत के बीच में
भीष्मपर्व का एक अंश है, पर इस विषय में अधिक
न कहना चाहिए, केवल कृषि मुनियों के मत का
और उसी के आधार पर अनुसृत लौकिक धर्म का

हवाला देना काफी है कि गीता एक स्वतन्त्र ग्रन्थ
है। इस लिए उस में मङ्गलचरण होना अपरिहार्य
है। यहाँ और भी एक शिक्षा है कि मङ्गलचरण
करना चाहिए इस बात का भी प्रमाण क्या है।
उत्तर में कतन्य है कि प्रस्थानत्रयी के द्रष्टा कृषि
भगवान् व्यास, भगवान् कपिल, भगवान् पतञ्जलि इन
तीनों ने जिस गीतार्थ समझा है, उस के करोड़ अंश
के बराबर भा हम लोग समझे हैं, इस में सन्देह है।
इस लिए कपिलजी अपने साख्यमृत्यों में मङ्गलचरण
के करने के नाम हेतु देते हैं। प्रसंगानुसार उन की
व्याख्या यहाँ की जाती है—

“मङ्गलचरणं शिष्टाचारान्त,
फलदर्शनात्, श्रुतिनञ्चेति।”

म० ४, मृ० २

इस सूत्र का आशामूल गीता में १७-२३ वाँ
श्लोक है—

ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।
ब्राह्मणार्थेन वेदाय यज्ञाय विदिताः पुरा ॥

ॐ तत्सत्—ऐसा ब्रह्म का तीन तरह का निर्देश
है, पूर्व काल में इस से ब्राह्मण, वेद और यज्ञ की
उत्पत्ति हुई। सूत्र का अर्थ—शिष्ट लोगों ने ब्राह्म-
रण किया है, उस का फल देखने में आता है और
श्रुति की आज्ञा भी है, इन कारणों से मङ्गलचरण
करना चाहिए।

सूत्र का प्रथम अंश शिष्टाचारान्त इस अंश की
व्याख्या की जाती है—

गीता का जो श्लोक ऊपर कहा है—उस में
“ॐ तत्सत्” यह परमात्मा का तीन प्रकार का नाम

आया है, उस का उच्चारण करके ब्राह्मणादि प्रजा, वेद और यज्ञ इन की सृष्टि की गई है। इस से मालूम होता है कि सृष्टि के रचयिता प्रजापति ने आरम्भ में परमात्मा का नाम लिया था। अब विचारणीय बात यह है कि प्रजापति से बढ़कर हम लोगों के वास्ते शिष्ट कौन हो ?

**सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः ।
अनेन प्रसविविष्यध्वमेप वोस्त्वष्टकामधुक् ॥**

आरम्भ में इस यज्ञ के साथ ही सब प्रजा उत्पन्न करके प्रजापति (ब्रह्मा) ने कहा कि इस यज्ञ से तुम अपनी वंशवृद्धि करो, यह यज्ञ ही तुम लोगों की इष्टदात्री कामधेनु हो। इस अंश से स्पष्ट है कि इस प्रजापति को अपने कार्य में अर्थात् प्रजान्त्रि में सफलता प्राप्त हुई थी, इस श्लोक में 'सहयज्ञाः' यह पद भी है, इस लिए १७-२३ और ३-१० श्लोक मिलकर यह बात प्रमाणित होती है कि मङ्गल-आचरण करने में शिष्टाचार है और सफलता भी है। अब रही बात 'श्रुतिनश्च' इतने अंश की; सो तो ॐ शब्द से ही गतार्थ है, क्योंकि गीता ७, ८ में 'प्रणव सर्ववेदेषु' ऐसा कहा है।

यदि कोई शङ्का उठाये कि शिष्टों ने जो कुछ आचरण किया है, उस का सर्वमाधारण भी क्यों अनुसरण करें ? तो इस के उत्तर में इतना कहना पर्याप्त है कि गीता इसी बात पर विशेष जोर देती है कि संसार में ज्ञानप्राप्ति का एकमात्र साधन 'महा-ज्ज्ञो येन गतः स पन्थाः' इतना ही है। प्रसंगोचित श्लोक निम्नदर्शित हैं—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।

स यस्मैपार्ष्णिकस्ते लोकास्तदनुवर्तते ॥

न मेऽपार्यास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन ।

नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि ॥

यदि ह्यहं न वर्तेय जातु कर्मण्यतन्द्रितः ।

मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥

श्रेष्ठ पुरुष जैसा आचरण करते हैं, उस के अनुसार दूसरे लोग भी चलते हैं, श्रेष्ठ पुरुष जैसा निश्चय कर देते हैं, अन्य आदमी उसी के मार्गिक वर्ताव करते हैं। हे पार्थ, मुझे तीनों लोकों में कुछ भी कर्तव्य नहीं है और न कोई भी मिलने योग्य वस्तु अप्राप्य ही है, तथापि मैं लोकसंग्रहार्थ कर्म क्रिया करता हूँ। क्योंकि सावधान होकर मैं कर्मों को न करूँ, तो हे अर्जुन, सब ओर से मनुष्य मेरे ही रास्ते पर चलने लगेंगे।

यहाँ ध्यान देने की बात है कि श्लोक में जो 'श्रेष्ठ' पद है, वह शिष्ट का बोधक है। सांख्य-सूत्र में 'फलदर्शनात्' 'श्रुतिः' ये दो पद किसी की विप्रतिपत्ति के विषय नहीं हो सकते, क्योंकि प्रत्यक्ष परिदृश्यमान सृष्टि का अपलाप हो नहीं सकता। प्रणव परमात्मा का नाम है इस विषय में तो स्वतः वेद ही प्रमाण है। यहाँ तक मङ्गलआचरण का कर्तव्यताविषयक विवेचन किया, अब इस लेख के मुख्य विषय का प्रतिपादन किया जाता है अर्थात् गीता में मङ्गलआचरण कौन सा और कैसा है यह विचारना चाहिए।

मङ्गलआचरण प्रथम ही ग्रन्थ के आरम्भ में होता है, सो गीता का आरम्भ देखने से इस का उत्तर मिलेगा कि वहाँ धर्मशब्द निःसंदेह मङ्गलवाचक है।

प्रथम श्लोक में 'धर्मश्रेष्ठे' ऐसा पद न देने पर भी

आपातत धृतराष्ट्र का जिज्ञास्य विषय मालम हो सकता है, परंतु भगवान् व्यास निरर्थक शब्दप्रयोग करनेवाले नहीं है। वस्तुतस्तु जैसा कि गीता का प्रतिपाद्य विषय इसी श्लोक में सूचित किया गया है, वह क्या है ?

अप्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः ।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः ॥

—गी० १८।७०

जो पुरुष इस हम दोनों के धर्ममय संवाद को पढ़गा, उस के द्वारा मैं ज्ञानयज्ञ में पूजित होऊँगा यह मेरा मत है ।

इस में कहा है कि यह गीताशास्त्र श्री कृष्ण और अर्जुन का धर्म्य संवाद है। अर्जुन का प्रश्न भी इसी विषय का है, २,७ में कहला है—‘धर्मसमूहं चेत् त्वा वृच्छामि’ धर्म के विषय में मीढ़ होने से आप से पूछना हूँ। और भी भगवान् अर्जुन को नृदेव्य करके—‘स्वधर्मं निधनं श्रेयः’ स्वधर्म-पथि धावैरेव न विकम्पिष्यमर्हसि’ ततः स्वधर्म-कीर्तिं च हिंसा पापमवाप्स्यसि’ इत्यादिसामान्य भाव से आज्ञा देते हैं और ‘तस्माद् युद्धं कर्तव्यं’ ‘ततो युद्धाय युज्यस्व’ इत्यादि बहुश्रुत में विशेष कर्तव्यता का भी आदेश देने हैं।

फलतः धर्म शब्द का उच्चारण करने से मङ्गल तो हुआ ही, अधिकतु ग्रन्थकार ने अपने ग्रन्थ का प्रतिपाद्य विषय भी सूचित किया। धर्म शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है ‘धारयतीति धर्म’ इम सत्ता को धारण करनेवाला, जैसा कि परमात्मा है।

अपरेपमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं पार्यते जगत् ॥

—गी० ७।१५

अपरा बहुनेतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन ।
विष्टव्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ॥

—गी० १०।४२

‘हे महाबाहो, इस अपरा जड़ प्रकृति के अलावा जीवकभी, चेतना परा प्रकृति भी मेरी है, जिस में सत्ता चलता है। हे अर्जुन, अधिक क्या यह समझो कि मैं संपूर्ण जगत् को अपनी योगमाया के एक अशनात्र से धारण किये हुए हूँ।’ इन वचनों में धर्म शब्द जीव का भी वाचक है। एव च परमात्मा और जीव इन से बढकर स्मरण करने योग्य और कीर्ति सा पदार्थ महत्त्वमय हागा ।

इस प्रकार सिद्ध हुआ कि वेदव्यासजी ने भी गीता के आरम्भ में मङ्गल करके लोगों का इस का मार्ग दिखाया है।

ॐ नमः



मुझे सच्ची श्रद्धा और सच्चा विश्वास दो

(ले०—श्री लक्ष्मीप्रसाद त्रिपाठी—‘अकिञ्चन’)

नाथ ! मसार मे हाश मँभालते ही तुम्हें, आर्त-उद्धारन, भवदुःखहारन, आशरणशरण, दीनानाथ, दीनरक्षक, दीनदयालु, अधर्मघर्षण, करुणाकर, कठणा-निधि, कृपालु, भक्तभयहारी, संकटमोचन आदि आदि अगण्य और अनेक संवोधनों द्वारा पुकारे जाते हुए सुन रहा हूँ। यदि सब की गुहारें, सारी पुकारें और ममूचे करुण क्रन्दन, यन्दन-तुम तक पहुँच सकते हैं तो—मेरा अपना जहाँ तक अनुभव है—तुम्हारे चतुर्दिक् अगण्य ‘आह !’ दुर्गों का निविड बह्वन्ध प्राचीर हो रहा होगा ?

उफ ! उस में तुम इस प्रकार त्रिलुप्त हो गये होंगे कि उम में से तुम्हें दूँद निकालपाना कोटानुकोटि प्रयासों से भी असंभव है ?

फिर यह कैसे विश्वास करूँ कि मुझ अभागे को भी पुकार उन दुर्गजालों का उल्लङ्घन कर तुम्हारे तक पहुँच पायेगी और तुम उम पर तत्काल ध्यान ही दोगे ?

परंतु तुम जन सर्वसमर्थ हो तब इस पर अविश्वास ही कैसे करूँ ?

महाभारत के विश्वसंहारक रौद्रभाषी युद्ध में, जिस में महान् पराक्रमी महारथियों के प्राणका तनिक भी मोल और विषेक नहीं था, जहाँ प्रचण्ड युद्धाग्नि में अपने प्यारे में प्यारे की प्राणाहुति देते हुए भी लोग तनिक भी भावविचलित और प्रभावित नहीं होते थे तहाँ ‘भरद्वज’ पक्षी के अण्ट की प्राण रक्षा का ध्यान रखने वाले तुम किस का ध्यान नहीं रखते होगे ? तुम्हारी सर्वसमर्थता और करुणसंततता एवम् सर्व रक्षक भावना को सूचित करने वाला इतिहास या पुराण और आख्यानपरिनि जितना भी प्रमाण है, सब

इस प्रमाण के समुप नगण्य है। फिर क्या कारण है कि मेरी पुकारों पर उचित ध्यान नहीं दे पाते हो ? क्या मेरी उन पुकारों में वास्तविकता नहीं है ? क्या मैं करुण कातर नहीं हूँ ? क्या मैं ने वेदनाविह्वल होकर तुम्हें नहीं पुकारा है ? अथवा मैं उचित दया का पात्र नहीं हूँ ? या मेरे हृदय की दृढ़ता, कपट-भावना अथवा अन्य किसी अपराध के कारण तुम्हारी कृपा दृष्टि नहीं होती है। क्यों कि तुम्हें सर्वान्तर्यामी, सर्वान्तर्यासी और सर्वत्र सदा उपस्थित भी सुनता हूँ।

लोग कहते हैं कि तुम और तुम्हारी कृपा प्रार्थना से उपलब्ध हैं। फिर मेरी प्रार्थना क्योंकर विफल हो सकती है ?

लोग दीन की आह को भाषी की अग्नि के मुख्य धातते हैं जो कड़े लोहे को भी पिघला देती है। परतु तुम लौहहृदय तो हो नहीं ? तुम्हें तो लोग करुण कोमलहृदय ही बताते आए हैं। तुम तो यो ही सदा कृपास से प्रवित हो। फिर तुम्हारे विषय में कोई किसी प्रकार की प्रतिकूल बात सोचना ही व्यर्थ है।

हाँ ? अब ममता, ग्रायद मेरी प्रार्थनाओं में सच्ची श्रद्धा और सच्चा विश्वास कम हो ? यदि यही बात है और यह यथासमय सत्य और उचित भी है तो नाथ ! मुझे कृपाकर सच्ची श्रद्धा और सच्चा विश्वास एवम् हृद लगेन की भावना ही प्रदान कर दो, जिस से कभी तो तुम्हारी अनुकम्पा का प्रसाद पा सकूँ। प्रभो ! यह जीवन का दुर्गम दीहद कष्टकषय-गमन मेरे लिए असह्य है। चाहे जैसे भी हो, तुम्हें मुझे इस यन्त्रणा जाल में तो उधारना ही होगा।

कलिकाल का जाल

(हे० स्वामी श्री शिवानन्दजी योगिराज, वैद्य, धन्वन्तरिगुरु)

आज्य ग्रन्थों में सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग, इन चार युगों का वर्णन मिलता है। इन चारों में प्रधान सत्ययुग और कलियुग ये दो हैं। किसी का कहना है कि युगों का होना मनुष्यों की बुद्धि पर निर्भर है, जब जैसी बुद्धि होती है, उस समय वैसा युग आ जाता है। जब मनुष्य बेचारी करता है तो उस समय उस के लिए कलियुग बर्तता है और वही मनुष्य जब मन्दिर आदि पुण्यस्थानों में जाकर भाला फेरता है, तो सत्ययुग हो जाता है। जो भक्त व्यक्तियों के लिए है वही ज्ञानिया तथा राष्ट्रों के लिए भी हो जाती है। सत्त कथन का अभिप्राय यह हुआ कि—
“जैसी बुद्धि, वैसा युग”।

इस के विरुद्ध किसी का यह भी कथन है कि युगों का होना प्राकृतिक है, सुरे और भले रूप में युग बदल बदलकर आया करते हैं, यह ईश्वर की नियति है। जब जैसा युग-समय होता है उस समय प्राणियों की बुद्धि भी वैसी ही हो जाती है, यह ब्रह्म मनुष्य प्रभृति चेतन प्राणियों के लिए ही हैं यह बात नहीं है, किन्तु जब पदार्थों में भी दुर्गाधमोंनुसार परिवर्तन हो जाते हैं। जैसे जब कलिकाल आता है उस समय ब्रह्म कम धरसने लगता है, पृथ्वी की ऊँचा शक्ति क्षीण हो जाती है, और छद्मों में फल फूल भी कम आने लगते हैं। इस कथन का मतलब यह हुआ कि—
“जैसा युग, वैसी बुद्धि”।

जो भी हो, इस पर निश्च पाठक स्वयं विचार कर देखें कि क्या है ? किन्तु इस में संदेह नहीं है कि आनन्द का जमाना-युग हमारे लिए बहुत ही

अनिष्टकर है। इसी अवान्छनीय काल का नाम ‘कलियुग’ है। आज हम इस कलिकाल के विषय में कुछ कहना चाहते हैं, जो हो रहा है उसे सभी देख, सुन और अनुभव (भोग) कर रहे हैं। हम कलियुग के दोषों का उद्घाटन करना चाहते हैं, क्योंकि दोषों पर दृष्टि डालने में उन से बचने की स्वाभाविक इच्छा का होना संभव है।

आयाते पापिनि कलौ, सर्वधर्मविधोषिनि ।
दुराचारे दुष्पपञ्चे, दुष्टधर्मवर्तके ॥
न वेदाः प्रभवस्तथ, स्मृतीनां स्मरणं कुतः ।
नानेतिहासयुक्तानां, नानामार्गमदर्शिताम् ॥
बहुलानां पुराणानां, विनाशो भविता विभो !
तदा लोका भविष्यन्ति, धर्मधर्मवर्हिर्मुखाः ॥

अर्थात् दुराचारप्रवर्तक कलियुग के आने पर वेदों की जन पूछ न रहेगी, तो पुराणों का फिर ठिकना ही क्या है ? बहुत सी असली पुरतके लुप्त हो जायेंगी उन की जगह नये नये धर्मग्रन्थों की कल्पना कर ही जायेंगी, ऐसी दशा में लोग क्यों न धर्मविमुख होंगे ?

कलियुग में छान्द ब्रह्मब्रह्म, मदनमत्त, सदा पाप-धर्मरत, कामी, लालच, क्रूर, निन्दुर, दुर्मुख, शठ, अहंता, मन्दबुद्धि, रोगी, शोचमुक्त, धीरहित, निवेक, नीच, मीमांसाचारपरायण, नीचमंसारी, परधनहरणकर्ता, परनिन्दा, परहोह, अगणना करनेवाले, सल, दूसरे की की के अपहरण करने में पाप तथा मय-वर्जित, निर्धन, मलिन, दीन, दुष्टि और लज्जी बीमारीयाले होंगे।

ब्राह्मणों के आचार शूद्रों जैसे होंगे। वे संन्यास-वन्दन नहीं करेंगे। जो यह नहीं करने लायक होंगे, उन्हें करेंगे। वे लोभी, दुराचारी, पापकारी, असत्य-भाषी, मूर्ख, दम्भी और ठग होंगे। वे लोगों को धोखे में डालने के लिए जप तथा पूजा करेंगे। वे पाण्डित्य, पण्डितमन्य, श्रद्धा भक्ति से रहित, कुत्सित आहार करनेवाले, घुरे व्यवहार से युक्त, दास, शूद्रों के सेवक, शूद्राश्रमेजी और क्रूर होंगे। केवल जनेऊ धारण करने की ही ब्राह्मण होने का चिन्ह रखेंगे। खान पान में भक्ष्याभक्ष्य का कुछ भी नियम न रखेंगे। सदा धर्मशास्त्रों की निन्दा तथा सज्जनों से श्रोह करेंगे। और सुन्दर सुन्दर सत्कथा कहेंगे 'तो' जरूर, पर इस का मन पर कुछ भी असर न होने देंगे।

अब कलियुग का प्रभाव प्रवल हो गया है इस का परिचय निम्नलिखित दशाओं से हो जायगा— जिस समय वैदिकी और पौराणिकी दीक्षा का प्रभाव नहीं रहेगा उस समय जानना कि अब कलि प्रवल हो रहा है, जिस समय पुण्य पाप की परीक्षा वेदादुल्लेख न रहेगी, जब गङ्गा नदी की धारा कहीं कट जायगी, कहीं छल्ला हो जायगी, कहीं सूख जायगी और कहीं उस में मलिन पदार्थ आ मिलेंगे, उस समय जान लेना कि शूचीतल पर बलि न्याप गया है। जिस समय स्लेख्ज् जोति के लोग राजा हो जायेंगे, वे धन के लोभी बन जायेंगे, जब नियाँ दुर्हान्त, कर्कशा, तथा केलुप्रियाँ हो जायेंगी, जब मनुष्य दुनिया में स्वीजित, कामकिङ्कुर गुरु तथा मित्रद्रोही हो जायेंगे, और नियाँ पतियों की मुल्लम मुल्ला निन्दा करने लग जायेंगी, उस समय कलि का प्रभाव समझ लेना। जिस समय वृष्य की उर्वरा शक्ति कम हो जायगी, बादल कम बरसने लगेंगे, वृक्षों में फल बहुत कम लगेंगे तब जानना कि कलियुग की अमलदारी पूरी

असर कर गई। जब भाई, मित्र तथा संन्यासी जरा से धन के कारण आपस में मार पीट करने लगेंगे, और जब निन्दा तथा सजा के भय के बिना लोग चौड़े मैदान मांस मद्य गाने पीने लगेंगे तब जान लेना कि कलि कलेजों में कस गया है। जब सब जातियों में गाने लगेंगी, ब्राह्मण लोग दर दर धूमकर आजीर्ण-मन्त्र पढ़ने लगेंगे, गाथें भल भक्षण करने लगेंगी, और संन्यासी ज्ञान, त्याग छोड़कर गृहस्थियों को मात करने लगेंगे, तब जान लेना कि कलियुग जोर पकड़ गया।

कलियुग में धर्म, सत्य, शौच, क्षमा, दया, आयु, बल और स्मृति आदि का नाश हो जायगा। कलिकाल में धन ही कुलीनता, आचार और गुण का कारण होगा। बलवान् (जबदस्त) जो कह या कर देगा वही धर्म, न्याय और व्यवस्था सनभी जायगी। दाम्पत्य व्यवहार में याने स्त्री पुरुषसंबन्ध में माया ही प्रधान समझी जायगी, कर्तव्य नहीं। स्वत्व में तथा पुरुषत्व में कारण रति होगी, तथा मित्रपने में कारण जनेऊ होगा। जीविका का अभाव दुर्बलता का कारण माना जायगा। पण्डिताई चपलता में समझी जायगी। विवाह में स्वेच्छा कारण होगी। स्नान शौकीनी के लिए किया जायगा। तीर्थोदकों को दूर से देव भर लेना काफी समझ लिया जायगा। केशधारण लावण्य के लिए होगा। पेट भर लेना पुरुषार्थ समझा जायगा। बुदुम्नपालक दक्ष माना जायगा और प्रशंसा के लिए धर्मसेवन किया जायगा।

मनुष्यों की दृष्टि झुद्ध हो जायगी, वे ओछे भाग्यवाले होंगे, बहुत गायेंगे, कम कद में होंगे, किंतु धन न होगा, नियाँ स्वेरिणी तथा असती होगी, देव उगो में भर जायगा, तीर्थों में गुडे बहुत मिलेंगे, वेद पाण्डनेय में दूषित हो जायगा, राजा प्रजाभक्षक होंगे, द्विज निरनोदरपरायण हो जायेंगे, ऋतु व्रत रहित और

अपवित्र होंगे। संन्यासी कुटुम्बी हो जायेंगे, मन्त्री-
प्रान्तों में रहेंगे, स्वामी धन के लोभी होंगे, गृहस्थी गेथा-
झान छौटने लगेंगे। लोग बहुवसन्तान, निर्दोष तथा
कुटुम्बी होंगे और उन का चोरी तथा चालाकी में
सदा वृद्धि रहेगा। शूद्र व्यापार करेंगे और वैश्य
जुआ खेलेंगे।

जब ऐसी प्रजा में पृथ्वी भर जायगी, उस समय
ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों में जो तात्कालिक होगा
वही राजा बन बैठेगा। ऐसा राजा प्रजा की दृष्टिगा,
पालेगा नहीं। ऐसे दुराचारी राजा की प्रजा अना-
चारी हो जायगी। लोग किसी बहाने से घबरे करे-
गें, बन्धुपरिचय से नहीं। सृष्टी पण्डितों के गर्व से
मय कम हो जायगा, सत्य की हानि से आशुव्यव,
आशुव्यव से विपरीतता, उस से लाभ होगा, जो
लोभी, लोभी होंगे वे मृद हाकर कामासक्त हो जायेंगे,
फिर उन के भीतर एव का दूर का बंध करते का
दोष आ जायगा। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रों
का परस्पर साहचर्य हो जायगा। कपडे में सनिया
(पटुआ) और अन्न में कोढ़ों रह जायगा। लोग
संमिश्र बन जायेंगे, गार्व नष्ट हो जायेंगी तथा बर-
गव भेदों के दूध में काम चलाया जायगा।

जो मनुष्य प्रतिक्रियित और योग्य समझ जाते रहे वे
भी लोग के वशीभूत होंगे। युगसूत्र में मनुष्य
आपग में एक दूसरे को लूट लिया करेगा, और मार
दालेगा। नदियों के किनारों में कुदास से बोटकर
ओपधियों कोई जायेंगी, जिस पर भी वे निष्कल,
निष्प्रभ होंगी। निन्दिते ब्रत धारण करने होंगे वे
भी लोग के बंध हो, आद्व तथा शनि आदि मन्त्रि-
चक्र मन्त्रों में भेदजन करने लगेंगे। ब्राह्मण लोग यज्ञ
व्रत आदि शुभ कर्म करना तो छोड़ ही देंगे प्रत्युत वेद
की निन्दा भी करने लगेंगे। लोग चाटवारी से सीधे

मादे लोगों के, अपने संबंधियों के और विधवाओं के
धन को दूध कर जायेंगे। ब्राह्मण, भारभूत, क्षत्रिय
लोकगण्डव, वैश्य बन्धक और शूद्र पण्डितमन्य हो
जायेंगे। कन्या न तो दी जायगी, न सौंणी दी जायगी,
चिंतु वे स्वयं माया हो जायेंगी। परस्पर एक दूसरे
का विश्वास नहीं रहेगा। चातुर्वर्ण्य नष्ट हो जायगा, उस
समय पुरुषवंता आज्ञायगी। क्षियों पत्नियों की सेवा
करना त्याग देंगी और वे 'जहाँ देरी तथा परान्त, वहाँ
रह गये सारी रात' तथा 'जहाँ देखी रोटी, वहाँ बेदी
चाटी' वाली कथावत के अनुसार जिस जगह या
जाति में भोजन का सुभीता देखा जायगा, वहाँ जा
यसों, या उन्हीं के हो जायेंगे। 'अननी जन्मभूमिश्च
स्वर्गादपि गरीयसी' का अभिमान किसी को न रहेगा।
उस समय जगत् अज्ञान तमोपस्त हो जायगा, न कोई
धोखा रहेगा न वक्ता। सोलह वर्ष की परमायु हो
जायगी, पौचवे छठे वर्ष कन्या पुत्र जनने लगेंगी।
सरीरने और बेचने में एक दूसरे को बड़ी चालेगा जि-
में दूधें टग लें। प्रजा करमार से पीड़ित होगी।
मुसाफिरी में आश्रय तो क्या पानी तक नहीं मिलने
पावेगा। जगह जगह नित्य अग्निदाह होंगे। - पिता
'हा पुत्र' पुत्र पर पुकारकर न्य ताड़ देगा। कहाँ
तक कष्ट, उस समय किसी को न घर में शान्ति मिलेगी,
न धन में। उस समय न स्त्री की सहायता पुरुष कर
सकेगा, न पिता पुत्र की, जिस समय जगत् में कोई
किसी का न होगा उस समय भगवान् ही सब की
रक्षा कर सकते हैं।

नि सन्देह समय बुरा है, ठीक। अलार्ह में तो
सभी लाभ उठाते हैं, चिंतु जो बुरे अवसर में अपना
काम बना ले, वही बुद्धिमान है। इस कल में जो
अपनी अवस्था भली बना लेगा, उस की अज्ञानि
चली गई समझता। इति।

सुखी जीवन

(ले०—पौ० श्री वासुदेव दाक्षी तैलङ्ग, शु० वे० विद्यारद)

शिष्य—श्रद्धेय गुरुवर्य, आज मैं जिज्ञासु की दृष्टि से आप से एक प्रश्न करना चाहता हूँ।

गुरु—वत्स, अभय प्रश्न कर सकते हो। जब जब शिष्यों के हृदय में प्रश्न पैदा होते हैं, तो उन को चाहिए कि किसी योग्य गुरु या अभिभावक से पूछकर संदेह का निराकरण कर लें। इसी लिए तो प्राचीन गुरुकुलों की परिपाटी स्थापित की गई थी। और, वहाँ तुम्हारे समान हजारों की संख्या में विद्यार्थीगण आ आकर प्रथम ब्रह्मचर्याश्रम व्यतीत करते उस में संपूर्ण वेद, वेदाङ्ग, कला, नीति आदि अध्ययन कर पीछे गुरु आज्ञा से गृहस्थाश्रम प्रवृत्त करते थे।

शिष्य—गुरुवर्य, पूर्व की तरह आज भी सुखचरिता का प्रवाह अपिच्छिन, निर्मल, निर्बाध क्यों नहीं बहता। आज भी पूर्व की तरह प्रत्येक भारतीय बालक एवं बालिकाओं का सुखी जीवन क्यों नहीं दीखता? क्या अब भी किसी उपाय से यह बदल सकता है? और इस के बनाने की जिम्मेदारी किस पर होनी चाहिए। यही मेरा छोटा सा प्रश्न है।

गुरु—प्रिय वत्स, इस तुम्हारे सुखी जीवन के प्रश्न में सारे संसार का कल्याण छिपा हुआ है। आज तक हजारों की संख्या में विद्यार्थी पढ़कर चले गये, किंतु ऐसा प्रश्न किसी ने भी नहीं किया। मैं तो इस में ईश्वरीय कारण ही मानता हूँ। वत्स, सुखी जीवन बनाने में कुछ भी कठिनाई नहीं। यह सुखी जीवन बोली सी बातों से अपने आप बनता चला जाता है। ऐसा ही ईश्वरीय नियम है। प्रत्येक क्षण ईश्वर पर दृढ़ विश्वास रखना चाहिए, वही सुखी जीवनदाता है। और वही इस भयालक समय से उद्धार करनेवाला है। आपस में शक्तियाँ टकरा ले रही हैं। इस

बकी में ईश्वर के उपाधी ही सुखी हो सकेंगे तथा निरीश्वरवादी गली गली भटकते फिरेंगे, इस का आगे अच्छी प्रकार से वर्णन होगा। किंतु इस के साथ जड़ मजबूती के लिए लोकसंग्रहार्थ और भी नियम हैं जो कि ईश्वर की उपासना में सहायक ही हैं। इस लिए सुखी जीवनार्थ जिन बातों का आश्रय लेना पड़ता है, वे ये हैं—(१) ब्रह्मचर्य, (२) स्वास्थ्यनियम, (३) प्राचीन शिक्षा, (४) सौलह संस्कार। भगवद्भक्ति, जीव और ब्रह्म का ज्ञान आदि भी सहायताार्थ होना परमावश्यक हो जाता है, तभी सवाहीन हमारा सुखी जीवन हो सकता है।

शिष्य—गुरुवर्य, आप ने तो ऐसी उबं बातों का संक्षेप ही में नामनिर्देश कर दिया, कृपया सबों की विनोद व्याख्या तो होना आपस्यकी है।

गुरु—शास्त्रों में कहा है कि 'कुशिष्यमध्यापयतः कुतो यशः' कुशिष्य को पढ़ाने से नाम नहीं होता, गुरु का नाम तो तुम्हारे जैसे शिष्यों से ही होता है। अच्छा, तो उसे अब सुनाता हूँ। इस समय तुम्हारा प्रथम ब्रह्मचर्याश्रम है। इस लिए इसी पर सुनाता हूँ।

पालवेत्ता ऋषियों ने मनुष्य की आयु सी वर्ष की निश्चित की है, और इसी में से चार आश्रमों की स्थापना की है।

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा।

एते गृहस्थप्रवाश्चत्वारः पृथगाश्रमाः॥

ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी ये चार आश्रम हैं। प्रथम ब्रह्मचर्य आश्रम में मनुष्य को पचीस वर्ष तक रहना पड़ता है। दूसरे आश्रम में पचास तक, तृतीय में पचहत्तर तक और चतुर्थ में सौ तक। इस

प्रकार की चर्च की आयु हो जाती है। तीनों काश्रमों का मूल कारण ब्रह्मचर्य प्रथम काश्रम है।

शिष्य—गुरुचर्य, ब्रह्मचर्य शब्द का कोई कुछ अर्थ करता है और कोई कुछ अर्थ करता है। वास्तव में इस का शाब्दिक क्या अर्थ होता है।

गुरु—ब्रह्मचर्य शब्द दो शब्दों से बना है, ब्रह्म और चर्य। इन दोनों के अनेक अर्थ होते हैं। किन्तु यहाँ इन से तीन ही अर्थ अविच्छेद हैं। ब्रह्म शब्द से ब्रह्म, वेद और ईश्वर, तथा चर्य शब्द से ब्रह्म, अभ्यसन और चिन्तन। अर्थात् ब्रह्मचर्य, वेदान्तमन और ईश्वरचिन्तन।

शिष्य—गुरुचर्य, क्या ये तीनों वेद से सिद्ध हैं। इस में कुछ प्रमाण हो, तो अच्छा हो।

गुरु—ऊर्ध्वनिबद्ध में कहा है कि 'तदेव शुक्रं तद्' ब्रह्म, तदेवाच्युतमनुने' अर्थात् बड़ी शक्ति है, बड़ी परमात्मा है और बड़ी लघुता कहलाता है। ऐतरेयोपनिषद् में कहा है कि 'प्रधानं चैव ब्रह्म' अर्थात् वेद शास्त्र परमेश्वर है और वेदान्तदर्शन में कहा है कि 'अध्यातो ब्रह्मजिज्ञासा' अर्थात् जब हम परमात्मतत्त्व की विवेचना करते हैं। वस्तु, गुण समस्त गये होगी कि ब्रह्म से ब्रह्म, वेद और ईश्वर का बोध होता है।

शिष्य—आप ने ब्रह्मचर्य का अर्थ तो वेद से सिद्ध कर दिया, किन्तु ब्रह्मचर्य की प्राचीनता क्या वेद से सिद्ध है।

गुरु—ब्रह्मचर्य वेद में कहा है कि—

'ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाप्नुत।
इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्य स्वराभिरनु।'
अर्थात् ब्रह्मचर्यवन से देवी ने मृत्यु पर विजय पा ली और इन्द्र की बड़ी से सुरी में उपासना मिली है। वस्तु, ब्रह्मचर्य की साधना से नर से स्वराज्य हो जाते हैं।

इस की बड़ी महिमा है। भगवान् वाह्य ने कहा है—

न तपस्तेषु इत्याहर्ब्रह्मचर्यं तपोत्तमम्।
अथर्वेता भवेतास्तु स देवो न तु मानुषः॥

छान्दोग्य में कहा है कि—'एकमब्रह्म तुरो वेदा' ब्रह्मचर्यं तथैकतः। इत्यादि शास्त्रीय प्रमाणों से ब्रह्मचर्य की महिमा सिद्ध हो जाती है।

भगवान् पन्वन्तारि एक दिन शिष्यों को आयुर्वेद पढ़ा रहे थे, एक ने पूछा कि भगवन्, ऐसा उपाय कदिए जिस से कभी रोग न हो। आप ने मुस्कुराते हुए कहा—'मृत्यु-व्याप्तिजराणां पीयूषं परमौषधं, ब्रह्मचर्यम्।' जो मनुष्य शान्ति, क्षान्ति, स्मृति, शान्ति, स्वास्थ्य, उत्तम चिन्तित चाहता है उसे ब्रह्मचर्य की उपासना करनी चाहिए।

शिष्य—मगधन्, जब शिवजी पर कथ ने जान छोड़ा, किन्तु वह काम उन के तुलीय नेत्र से भस्म हो गया, इस का व्याप्यत्विक्क रहस्य क्या है।

गुरु—वस्तु, मनुष्य का शरीर कैलाश है, कीद बाह्य है, मनोविकार ही काम है और विवेक ही बोधनायक तीव्र नेत्र है। ब्रह्मचर्य की मनोविकार नष्ट करना चाहते हैं, किन्तु जब विवेकशक्ति से देखते हैं तब मनोविकार नष्ट हो जाते हैं।

शिष्य—गुरुचर्य, ब्रह्मचर्य की क्या परिभाषा होगी।

गुरु—कथेन मनसा वाचा सर्वविरथास्तु सर्वदा।

सर्वदुर्वासनात्यागो ब्रह्मचर्य प्रचक्षते॥

अर्थात् कथिक, वाचिक, मानसिक चारों की छीनना ही ब्रह्मचर्य है। आयुर्वेद ब्राह्मण में कहा है—'यन्मनसा मनुते तद्वाचा वदति, यद्वाचा वदति तत्कर्मणा करोति, यत्कर्मणा करोति तदभिसम्पन्ने।' अर्थात् जिस का मन में चिन्तन किया जाता है बड़ी वाणी से निकलता है, जो कुछ बानी से निकलता है बड़ी कर्म किया जाता है और जिस कर्म किया जाता है वैसा ही उस का फल मिलता है। शीघ्र में ही कहा है—

मनसो मनुष्याणां कारुण्यं बन्धमोक्षयो।
मनुष्य के मनसे और मोक्ष का कारण मन ही है। इसी लिए मन की रोकना बहता है।

शिष्य—भगवन्, ब्रह्मचर्य से क्या फल मिलता है।

गुरु—ब्रह्मचर्य से ही अनेक दुर्लभ कार्य भी सुलभ हो जाते हैं। प्रथम इस से विद्याध्ययन में सुलभता मिलती है। अर्थात् सहिता में कहा है। १००

‘ब्रह्मचर्येण विद्या विद्यया ब्रह्मलोकम्।’

ब्रह्मचर्य से ही विद्या और विद्या से ब्रह्मलोक में सुख प्राप्त होता है। ब्रह्मचर्य और विद्या में वृक्ष और शाखा के समान सम्बन्ध है। यही कारण है कि प्राचीन महर्षियों ने ब्रह्मचर्य द्वारा संपूर्ण गुरुकुलों में विद्याप्रचार किया था। महात्मा विदुरजी कहते हैं कि ‘विद्यार्थी ब्रह्मचारी स्यात्’ अर्थात् विद्याध्ययन के लिए ब्रह्मचारी होना आवश्यक है। क्योंकि इस समय की विद्या कमी नहीं भूल सकती।

एक दिन देवर्षि नारद इन्द्र के पास गये, इन्द्र उस समय कुछ वेदकृपाएँ पढ़ रहे थे, बीच से भूल गये। नारदजी ने शठ पूरी कर दी। इन्द्र को विस्मय हुआ, किंतु नारद ने कहा कि ब्रह्मचारी कभी विद्या नहीं भूल सकता।

शिष्य—और इस से क्या क्या होता है ?

गुरु—इस से धन मिलता है। ऐतरेय ब्राह्मण में कहा है—‘नानाधनन्ताय धीरास्ति’ बिना पुरुषार्थ के धन नहीं मिलता। क्योंकि लक्ष्मी पुरुषार्थ के वस्त्र रहती है, लक्ष्मी धन ब्रह्मचारी, उद्योगी के पास रहती है, व्यभिचारी के पास लक्ष्मी नहीं रहती। इस से वस्त्र, हर किसी को भी धनवान् बनने के लिए ब्रह्मचर्य धारण करना चाहिए। देश, जाति, समाज, राज्य, सेवा और आत्मसेवा बिना ब्रह्मचर्य के नहीं हो सकती।

ब्रह्मचर्य से मनुष्य दीर्घायु होता है। इस पर बह्म-वेद में कहा है—

‘यो विभर्ति दाक्षायण्यं हिरण्यं सदेवेषु वृणुते दीवमायुः, न मानुषेषु वृणुते दीर्घमायुः।’

जो शरीर में ब्रह्मचर्य धारण करता है, वह विद्वानों में दीर्घायु प्राप्त करता है और साधारण मनुष्यों में भी दीर्घायु प्राप्त करता है।

शिष्य—गुरुवर्य, इस काल में मनुष्यों की सौ वर्ष की आयु क्यों नहीं होती ? और वैसे हो सकती है, इस का उपाय ?

गुरु—भोभागवत के अनुसार कलि में भी मनुष्य की आयु का परिमाण एक सौ बीस वर्ष का है। इस से पूर्व मरनेवाले अकाल मृत्यु से ही मरते हैं। ब्रह्मचर्य से हीन अकाल मृत्यु के प्रास बन जाते हैं।

इन के नाश से अन्त करण अपवित्र और दुर्बल हो जाता है। इस के नाश से बिना तेल के दीपक की तरह जीवनप्रदीप बुझ जाता है। ब्रह्मचर्यनाश से आनन्द, साहस, धैर्य, वीरत्व, तेज, शान्ति, छद्मिचार सभी नष्ट हो जाते हैं। शास्त्रों में, युद्ध में और प्रत्येक कार्य में यही विजयी बनाता है। ब्रह्मचर्य शरीर का राजा है। इस के नाश से सभी शक्तियों का नाश हो जाता है। वस्त्र, यह अश्वापकों का धर्म है कि सब से पूर्व ब्रह्मचर्य की महत्ता सिखाकर विद्या पढ़ावें। आजकल नई परिपाटी के स्कूल और कॉलेजों का विद्यार्थीसब बड़ा विषमय बना जा रहा है।

कहाँ है गुरु शिष्य का गौरवपूर्ण सम्बन्ध ? कहाँ है शीश और आचार की शिक्षा ? कहीं दृष्टताल है, कहीं महि-प्यार है, तो कहीं उपद्रव। सम्पूर्ण जीवन और मुक्ति जीवन के लिए उपयुक्त विधि ही प्राप्य है।

इसी में है

॥ १०० ॥ (सं. — स्वामी श्री रामानन्दजी संन्यासी, दगुनशास्त्री, व्याकरणाचार्य)

॥ कौशी विश्वविद्यालय की तरफ से 'विश्वेन्द्र' नामक एक निथियत्र प्रतिवर्ष प्रकाशित होता है। वैसे में यही सुन्दर सुन्दर उपदेशपूर्ण सूक्तियाँ रहती हैं। उन में से कुछ उपदेशरचन जो हिंदुसमाज के विषय में हैं गीतार्थ के पाठकों के समक्ष उपस्थित किये जाते हैं, ताकि उन से हिंदुसमाज के उत्थान का कार्य समझ में आ सके। यथा—

ग्रामे ग्रामे सभा कार्य्या, ग्रामे ग्रामे कथा शुभा ।
पाश्चात्या पद्मशाळा, प्रतिपर्व महोत्सवाः ॥

॥ ११ जयान्त्र जब ऐसा समय आ गया है, जब हिंदु-साहिबों का संगठित किया जाय, उसे बलवती बनाया जाय। कार्य्यज्ञान के बलिष्ठ होने से देशभर को गुप्त शक्ति प्राप्त हो जायगी, इस लिए जति को योग्य सुनिश्चित बनाने के लिए बड़े बड़े बुद्धिमान्, देशभक्त, माना लोग जाकर हर एक ग्राम में सभा करवें, फिर, प्रायः में स्थानीय लोग मिलकर बिना किसी जानीब अदभाव के, प्रति समाह सभा किया करें। क्योंकि बिचारविनिमय का यह सब से अच्छा तरीका है। इसी तरह प्रति ग्राम में ग्राम सचिव नियुक्त कथा हुआ करें, जिसमें समझाया जाय कि रामायण, महाभारत, भागवत, गीता और आदिपर्व आदि के कवण करने में सर्वसाधारण को अतः कल के समय के अनुकूल कथा सिद्ध लेनी चाहिये। पाठशालाओं में प्रति ग्राम में अवश्य होनी चाहिये, क्योंकि इन्हीं के द्वारा भावी नागरिकों की भाँति बाली और स्नेही। मुक्ती, व्यायाम आदि के लिये धर्मोपदेश प्रत्येक ग्राम में अवश्य होने चाहिये।

क्योंकि बल के बिना कोई भी किसी तरह का कार्य नहीं कर सकता। धन, मान, विद्या आदि का एक-मात्र पूर्ण अधिकांगी बलमान ही हो सकता है। राम-नवमी, जन्माष्टमी, हनुमज्जयन्ती, शिवाजयन्ती, प्रताप-जयन्ती और उनको धूम धाम से मनाता चाहिये, यह प्रत्येक हिंदु का पवित्र कर्तव्य है, क्योंकि वीर-पूजा से राष्ट्रीय आत्मा के उद्बोधन में प्रोत्साहन मिलता है, वीरों के धर्मवीर, शूरवीर, धर्मशूरभयवीर, भेद प्रधान हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि उद्युक्त भारत के प्रधान अर्द्ध हिंदुओं को समझ, कथा, शाळा और उत्सवों का कार्य कभी शिथिल न करना चाहिये। देश की शान्ति और रक्षा की जिम्मेदारी हिंदुओं पर ही है, वे अपनी इस पवित्र जिम्मेदारी से बच नहीं सकते। अतएव यह सच है कि हिंदु जनता योग्य बनें।

अनाया विधवा रक्ष्या, मन्दिराणि तथा च गौः ।

धर्म्य संगठनं कृत्वा, देयं दानञ्च तद्वितम् ॥

अर्थात् मनुष्य सामाजिक जीव है, जब से इस की सम्बन्धता का प्रारम्भ हुआ है, जब से यह साथ साथ रहता चला आता है। साथ रहने का प्रयत्न लाभ यह है कि एक दूसरे के सुख दुःख में हाथ बढ़ावे। जब यह चान है तो जो समर्थ हैं, जिन के सहायकों की संख्या काफी है वे उन की मदद करें; जिन के सिर से सहायकों की उम्र हो, हट गई हो, ऐसे लोग अनाथ और विधवा विधवा हैं। जो जानते अपने अनेकों को नहीं अनेकों की और जो अपने विधवाओं को नहीं अनेकों उस का उत्तम दाना कठिन है।

अतएव, अनाथ, विधवा, मन्दिर और गायों की रक्षा में हिंदुमात्र को सदा तत्पर रहना चाहिए। धार्मिक संगठन भी करना उचित है, इस के लिए यथाशक्ति सहायता प्रदान करनी उचित है। अपनी आवश्यकताओं को यथासम्भव कम करके हिंदुसंगठन के लिए दान देने से न चूकना चाहिए।

स्त्रीणां समादरः कार्यो, दुःखितेषु दया तथा ।

अहिंसका न हन्तव्या, आततायी वधार्हणः ॥

अर्थात् कोई भी समाज स्त्री और पुरुष इन दोनों को मिलकर पूर्ण होता है। ये दोनों अन्न जितने ही हृष्ट पुष्ट होंगे समाज भी उतना ही जोरदार होगा। दुःख के साथ कहना पड़ता है कि हिंदुजाति में स्त्रीजाति का बड़ा अपमान होता है, कहे, तो इस विषय के ताजे तथा प्रसिद्ध उदाहरणों का एक बड़ा पोथा लिया जा सकता है। अब समय आ गया है कि लोग स्त्रियों का संमान करना सीखें। इसी तरह आपत्तिग्रस्त लोगों की सहायता भी करनी आवश्यक है, यह मत समझे कि पौत्र के साथ, सतसंजिले महल के सजीले चौबारे में बैठकर सोने की थाली में हमारा हलुया पड़ी उड़ाना सदा इसी तरह जारी रहेगा। 'यह मत भूलो कि कुदरत किसी को सदा एकरस नहीं रहने देती। कभी तुम भी मुसीबत की लपेट में आ सकते हो। उस समय जैसे दूसरे की सहायता से तुम्हारी आपत्ति दूर होती नजर आवेगी उसी तरह आज तुम भी दूसरे की सहायता करके उस के तड़फते दिल से आशीर्वाद ले लो, क्योंकि—आज तुम्हारा रंग है।

येही दिन हैं दुवा छेको, किसी के कन्वे मुजतरसे।

जवानी आ नहीं सकती, मेरी जी! फिर नये सरसे ॥

साथ ही हम का भी गमाल रखो कि जो

अहिंसक हैं, जो किसी को नहीं सताते, उन्हें कोई परेशान न कर सके, और जो—

अग्निदो गरदक्षैव, शस्त्रपाणिर्धनापहः ।

क्षेत्रदारहरक्षैव, षडेते आततायिनः ॥

के अनुसार आततायी हों, चाहे वे—

गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम् ।

आततायिनमायान्तं हन्यादेवाऽविचारयन् ॥

गुरु, बालक, वृद्ध और ब्राह्मण ही क्यों न हों उन्हें दण्ड देने से न झेड़ना चाहिए। अर्थात् जो शान्त हैं उन पर अनुग्रह और जो उपद्रवी हैं उन का निग्रह अवश्य होता चाहिए।

अभयं सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं धृतिः क्षमाः ।

सेव्यं सदाऽमृतपिब स्त्रीभिश्च पुरुषैस्तथा ॥

अर्थात् पुरुष हो चाहे स्त्री, सब को भय कम्पादि-रहित होना चाहिए। सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, धैर्य और क्षमा, इन का सेवन पालन करना चाहिए। ऐसा करना तुम्हारे लिए अमृतपान का काम देगा।

कर्मणां फलमस्तीति विस्मर्तव्यं न जातु चित् ।

भवेत्पुनः पुनर्जन्म मोक्षस्तदनुसारतः ॥

अर्थात् कर्म करो, क्योंकि कर्म निष्फल नहीं होते। 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' के अनुसार मनुष्य कर्म करता चला जाय, 'क्या होगा?' इस की परवाह न करे। कर्म करने पर जो चाहेंगे वह तो होगा ही। यस कर्मकाण्ड में जुट जाओ—

उत्पातव्यं जायतव्यं, योक्तव्यं भूतिकर्मसु ।

भविष्यतीत्येव मनः कृत्वा सततमभ्यस्यैः ॥

फिर कार्य सफल क्यों न होगा ?

अप्य वन्दे ! तू उठ, बाँध कमर, क्यों डरता है।

घर आगे पग, फिर देख, खुदा क्या करता है ?

उत्तमः सर्वधर्माणां हिन्दुधर्मोऽप्युत्तमः ।

रस्यः प्रचारणीयश्च, सर्वभूतहिते रतैः ॥

अर्थात् अपनी अपनी जगह सब धर्म ठीक हैं, हिंदुधर्म को यह आदत नहीं है कि वह किसी को बुरा बताये। किंतु विचार किया जाय, तो सब धर्मों में मनुष्य के लिए आर्य सनातनधर्म ही अधिक उपयोगी है। हिंदुधर्म में निराकार की उपासना भी है और साकार की भी। वे एक अद्वय ब्रह्म के उपासक हैं और भूत प्रेतों के भी, अधिकारीभेद से हिंदुओं में सब प्रकार की उपासना करने का स्वतन्त्र्य है। इस में वर्णधर्मधर्म की ऐसी सुन्दर व्यवस्था है जो और किसी में पाई ही नहीं जाती। अतः सब धर्मों में हिंदुधर्म उत्तम है। इस धर्म को जो जान से रक्षा करनी चाहिए, इस के संरक्षण से उस प्राचीन सभ्यता की रक्षा हो सकेगी जिस से पहले सभी जातियों ने चरित्ररक्षण करना सीखा था—

एतद्देशप्रभूतस्य संकाशादग्रभन्मनः ।

एवं एवं चरित्रं शिरोरेण पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥

जहाँ तक हो सके, हिंदुधर्म के प्रचार को और भी व्यापक बनाना चाहिए। जितना ही हिंदुजाति का अभ्युदय होगा उतनी ही देश में शान्ति स्थापित होगी। हिंदुजाति को चलती होने से किसी को किसी पर अत्याचार करने का साहस न होगा। समय समय हिंदुजाति को अवश्य ही विदेशी छुट्टियों ने मनमर के लुटा है पर हम ने किसी के साथ छद्म व्यवहार नहीं की।

धर्म और देश की उन्नति के लिए अपने आप को बलि देना होगा। “जब बहुत से मवयुवक खाद बनकर इस भूमि में मिला जायेंगे, तब उस में से बहुत फल निकलेगा, शायद जन पर स्वाधीनता और

धार्मिकता का भी फल लगे।” बात यह है कि जिस ने पाया, अपना आपा-अट्टहास मिटाकर पाया है। ‘स्वार्थत्याग’ किसी का निफल नहीं जाता—

स्वाकसारो जायिदो की, बेसरप होतो नहीं ।
स्वाक में मिलता है दाना, सब्ज होने के लिए ॥
याने एक दाना मिट्टी में मिला सड़कर हजारों दाने उत्पन्न करनेवाला उद्भुर पैदा करने में समर्थ होता है। इसी तरह एक एक मनुष्य अपनी समाधि की मिट्टी में हजारों श्रद्धा सुनि पैदा करने के धीज को देता है। तुम यह समझ लो—“हमें अपने ही पत्थर से अपनी ही पसलियों को निकालकर और उन्दी को जलाकर उन के प्रकाश में स्वतन्त्रता देवी के मन्दिर तक पहुँचना होगा।” जो दूसरों की बलि में देवी देवताओं का प्रसाद करके वरदान चाहते हैं, वे कुछ नहीं पा सकेगे। जो कुछ भिलेगा, अपना आपा होमकर भिलेगा। जैसे अच्छे रेत में बीज डालना सफल होता है उसी तरह सगठित होकर स्वार्थत्याग करना अधिक लाभप्रद है। जैसे—“आपस में लड़ काड़कर सुख संगति पाना उतना हो कठिन है जितना रामेसर की तरफ दौड़कर दिमाग की खोज करना, और पश्चिम की ओर चलकर सूर्य को अरुणाई देवने की इच्छा करना ।”

हमारा तो आप लोगों से बड़ी कहना है कि “आप अपने हृदय में उस भाव का प्रादुर्भाव कीजिए जिस ने महाशय प्रताप से अरावली के पहाड़ों की शक्ति छनवाई और छत्रपति शिवाजी को विदेशियों द्वारा लुटेरे की पदवी दिलवाई।” अब समय आ गया है, आप लोग इस भाव को हृदय में दृढ़ कर लें कि हमें कोई कुल भी कहे, अपना काम करना है, हजारों पन्थों के होते हुए भी नहीं चूकना है, बनने को भी तैयार है और काम भी करना है। हम तो

“दुःख, पीड़ा, अन्याय, दीनता, और अन्धकार की जगह सुख, स्वास्थ्य, न्याय, स्वावलम्बन और प्रकाश का राज्य चाहते हैं। हम को अपने घर में, अपने देश में स्वराज्यसिद्धि के यज्ञमण्डप में स्वतन्त्रता देवी की आरती उतारनी हैं। हम वाजे बजाना चाहते हैं, इस लिए नहीं कि हमें किसी से द्वेष है, बल्कि इस लिए कि हमें अपने देश, धर्म और जाति से प्रेम है।

आप लोग अन्य लोगों के यह कवे में आकर धर्म को अनुपयोगी न समझने लगे। धर्म हानि की चीज नहीं है, हानि तो उस के अनुचित प्रयोग से बेजा इस्तेमाल से होती है। धर्मनीति मनुष्य को संसार के प्रत्येक कार्य करने में सुदृढ़ और योग्य बनाती है और राजनीति उसे आगे बढ़ाने में सहायक होती है। धर्मनीति और राजनीति इन दोनों के यद्यपि मार्ग भिन्न भिन्न हैं पर इन में एक दूसरे की पोषक है।

धर्म सुख शान्ति का साधक होना चाहिए, यह दूसरी बात है कि उसे धार्मिक पेशवाओं ने वियैला बना दिया है, इस में वस्तुतत्त्व का क्या दोष है ? इस में तो जो कसूर है प्रयोक्ताओं का है। ऐसे तो किसी भी अच्छी से अच्छी वस्तु को भी बिगाड़ने वाले खराब करके रख देते हैं। क्या आजकल के नेताओं ने राजनीति को भेद, विन्देह और कटुता से नहीं भर दिया है ? जब कि हम जातीय संगठन करना चाहते हैं, और अधिकारप्राप्ति के लिए हथेली पर सिर लिए फिरते हैं, जब कि हम पराधीनता के दुःख से कराह रहे हैं, ऐसी दशा में हमारे राजनैतिक अगुवा दल-बंदी कर रहे हैं। समझना चाहिए कि भारत जैसे देश में दलबंदी अपराध है, यह तो स्वतन्त्र देशों का खिलास है। दूसरे स्वतन्त्र देशों में चाहे “वादे-वादे जायने तत्त्व बोधः” यत्न आजीर्ण भले ही हो, पर हमारे पराधीन देश में तो यह “वादे वादे

जायते भेदबुद्धिः” रूप में अभिशाप ही सिद्ध होता है।

हमें आज ऐसे तपस्वी महापुरुष की आवश्यकता है जिस की तपश्चर्या उन के निमित्त हो जो तिरस्कृत, पतित, और पददलित हैं, जो निर्धन, निराश्रय, और निर्वल हैं। वह धोनेवाला, सींचनेवाला और देनेवाला हो, और अर्थीजन काटनेवाले छत्र होने-वाले और पानेवाले हों।

वह धर्ममूर्ति महात्मा हमारे आर्य धर्म का प्रतिनिधि हो। उस की आत्मा में राम की मर्यादा, कृष्ण की कर्ममयता, बुद्ध की अहिंसा, शंकर का विज्ञान, महावीर की दया, रामानुज की भक्ति, चैतन्य की भावना, ईसा की दीन धन्यता और मुहम्मद की कटुता आदि अनेक धारणाएँ विद्यमान हों।

निसंदेह देश, धर्म और जाति के बद्धार के लिए आज हम ऐसे महात्मा चाहते हैं जिनके नेत्र पक्षपान के चरमे से न ढके हों। जिन का हृदय तरफदारी की कालिख से कलुषित न हो। हमें ऐसी आशा सन्यासिसमाज से जितनी है उतनी और किसी से नहीं। जिन का जीवनपात्र अहंकार के जल से परिपूर्ण होगा, उस में दीन दुःखितों के प्रति अनुकम्पा के लिए स्थान नहीं है। क्योंकि—

मोह द्रव्य यश स्वार्थ को, है जिस में भरमार ।
रुके हुए उस हृदय में, कहाँ बसेगा प्यार ॥

जिन के दिल साफ हैं, जो जगत् को भगवान् का विराट् स्वरूप मानते हैं। वे ही उस के पूजा के अधिकारी हैं। हमें अपनी हृदयवेदिका पर ऐस्यभाषना के वैद्यता को प्रतिष्ठित करके उस के सामने जो स्तोत्र-पाठ करना होगा उस का प्रथम श्लोक यहाँ में प्रारम्भ होगा—

नूतन विधि से पुनः विश्व में,

भव्य काल वह आजाये ।

जगती तल पर एक बार फिर,

सुख समृद्धि वह हा जावे ॥

जब हम भगवान् कृष्ण के सामने—

मोहन ! 'गोताज्ञान' घुनादो ।

पाप ताप परिश्रुति भूपर,

वचनवारि बरसादो ।

स्नानभजन कृपणों में फिर से,

नवजीवन सरसादो ॥

सिखिठ हिंदुओं की नस नस में,

फिर रसधार बहादो ।

किंकर्तव्य मूढ भारत को,

कर्ममार्ग दिखलादो ॥

देम वचन आर्यता के रूप में उल्लिखित करेंगे, तो

हीनोद्धार हमारी कहीं अनुसुनी नहीं कर देंगे ।

हम मिली प्रकार के भेदभाव के विना खन दोने

शक्तियों का अभेदबुद्धया अनुष्ठान करेंगे, जो तान्त्रों
पालन और संहार की अधिष्ठातृ देवता हैं ।

मया पुताणोपपुराणयुक्ताः

साहाय्य वेदाः स्मृतयः समस्ताः ।

शास्त्राणि सर्वाणि विशोकितानि

न ह्यपि दृष्टः 'शिवविष्णुभेदः ॥'

वर्णान् विष्णु रचना के प्रधान देवता हैं और
शकर संहार के । हमें इन दोनों की ऐक्यभाव से
उपासना करनी होगी । जो जाति या देश के नये
नये उपाय हैं उन की रचना और जो हानिभद काम
हैं उन का संहार करना होगा ।

अवश्य ही हमारे स्तोत्रपाठ से प्रसन्न होकर देवता
हमें आशीर्वाद के रूप में उद्धार के लिए यह उपदेश
परदान देंगे कि "सज्जनों । 'कीर्ति' एक अच्छी चीज
है, परंतु उस से अच्छी 'प्रीति' है । क्योंकि कौन
में स्थायी है, और प्रीति में उस का त्याग जाना है । तब
हम निश्चय कर लेंगे कि वस, जो कुछ है "उसी में
है" इति ।

चित्रकार से

छंद—कविराज श्री नन्दकिशोर जोशी 'निशान'

ओ ! सौन्दर्य के वासक ! प्रेय के पुमारी ! कला के निर्माता ! तू कित विचार से तृप्ति का किंचि चित्र चित्रितता
करा है ! मीन ! क्यों ! इस अनुरम सौन्दर्य की प्रतिमा, माधुरी मूर्ति पर मुग्ध होकर ; या उस सर्वशक्तिमान् कलाकार की
कला से चकित होकर ! पर शायद हमारे बात सच नहीं ?

अरे ! तू इसे आनन्द का पर, स्वर्ग की वापसा स्वर्णशरीर, मनोहर मनोरमा मानकर मग्धमुग्ध सा करा है ।
यों ! यह तो वास्तव में अप्रत्यक्ष है, अप्रत्यक्षमय मशक का द्वार है । इस के मधुर मन्द हास की तू सर्वशक्ति सुख मानकर
मन, मन, मरपीतन यदि सर्वशक्ति अर्पित करने का रहा है यह तेरी महान् भुव है । यह शक्ति सुख तेरे जीवन का सर्वनाश
कर मुझे बालविक सुख से कोसी दूर फेंक देगा ।

अरे ! आँख पर तो सीक ! किसे तू अनुरम सौन्दर्य की प्रतिमा मानकर अपना धन खोने का रहा है, इसे भूज
यह तो मुग्ध है । हाथों इस चित्रण से निज तृप्ति ।

कलाकार ! ओ मुठला है काओं की सौन्दर्य का अनायास, क्या वह अवबोधित सौन्दर्य का मयकार न होगा ? क्या
तू वच की प्रशिक्ष, करते अपने की तन्मय, यही तो निज सड़ेगा मुझे बालविक सुख !

गीतामाहात्म्य

(ले०—ज्ञानतपस्वी श्री गीतानन्दजी शर्मा)

आजकल के लेखक ग्रन्थप्रचार के लिए प्रायः किसी बड़े आदमी से उस की प्रशंसाभरी प्रस्तावना लिखाते हैं। कहना न होगा कि यह एक तरह की विज्ञापन की युक्ति और अपने नाम का लोगों में डंका बजाने का तरीका है। भाल बेचनेवाले अलवारों में जैसे विज्ञापन निकालते हैं और सौ में निन्यानबे के लिए कहा जा सकता है कि वे बेकार और निराधार होते हैं, उन का गुणवर्णन प्रत्यक्षरूप का अपलाप ही करता है।

परंतु इन चालबाजियों की पूव के श्रुति मुनियों को जरूरत न होनी थी, वे किसी से प्रशंसावाच पाने के लिए ग्रन्थ नहीं लिखते थे। इस दृष्टा में कोई पूछ सकता है कि तब तो, 'भागवतमाहात्म्य' 'गीतामाहात्म्य' ये सब क्या हैं ? इन में भी तो विज्ञापनवाजी की मलक दिग्गई देती है। कोई कोई पुराणकार तो गीता के बारे में ऐसा कहते हैं कि गीता का पाठ करे और उम के माहात्म्य का पाठ न करे, तो उस का कोई फल नहीं होता।

गीतापाः पठनं कृत्वा माहात्म्यं नैव यः पठेत् ।
दृष्ट्वा पाठो भरेत्तस्य भ्रम एव द्वादहातः ॥

परंतु आजकल की प्रस्तावना दक्षज आदि लेख और आर्पदात्मक माहात्म्य इस में भारी अन्तर है। श्रुति लोग किसी ग्रन्थ के पठन का आध्यात्मिक फल विचारते हैं, जैसा कि गीतामाहात्म्य के विषय में कहा जा सकता है।

इस विषय में यह शङ्का करना तो उचित हो सकता है कि गीताकार व्यासजी को जबवा मूल्य

भगवान् कृष्ण को उन के ग्रन्थ की इस प्रकार की बड़ाई से सहमति है या नहीं, या यों कह सकते हैं कि गीतामाहात्म्य का कोई आधार स्वयं मूलग्रन्थ गीता में है या नहीं ? इन सब शङ्का प्रतिशङ्काओं का हम यही समाधान कर सकते हैं कि श्रुति लोग कभी निराधार बात नहीं कहते। मद्दिनाथजी जैसे लौकिक पण्डित भी कहते हैं कि 'नामूलं लिख्यते किञ्चित् नानपेक्षितमुच्यते' तो फिर सत्यवादी श्रुतियों का कहना ही क्या। परंतु सौभाग्यवश हम ऐसी अटकल पची की जरूरत नहीं। यत्र तत्र कथित गीता-माहात्म्य के श्लोक लेकर हम दिखा सकते हैं कि उन में कथित बातों का मूल गीता में ही है। इतना ही नहीं, यहाँ तक प्रमाणित करेंगे कि माहात्म्य लिखने में साक्षात् प्रेरणा गीता की ही है। निदर्शनस्वरूप गीता-माहात्म्य का वही श्लोक लीजिए जो सर्वसाधारण में परिचित है और इतना लोकप्रिय है कि स्कूल की प्रार्थना में भी बालक उसे बोला करते हैं। यथा—
पार्याय प्रतिबोधितां भगवता नारायणेन स्वयम् ।
व्यासेन प्रथितां पुराणमुनिना मध्ये महाभारतम् ॥
अद्वैतामृतवर्षिणीं भगवतीमष्टादशाध्यायिनीम् ।
श्रम्वत्त्वामनुसंधायामि भगवद्गीते भवद्वेषिणीम् ॥
इस में पहली बात यह है कि भगवान् ने पार्य यो गीता का उपदेश किया। इस को प्रमाणित करना अनापश्यक होने पर भी गीतामात्म्य का उद्धरण दिया जाता है—

इत्यहं वामुदेवस्य पार्यस्य च महात्मनः ।
संबादमिममभौषं पवित्रं रोमार्थणम् ॥

संनय कहते हैं कि श्री कृष्ण और अर्जुन के इस पवित्र, विविध सवाद को (उत्प, वितण्डा नहीं, यथार्थ भाषण को) मैं ने सुना। लोक में भी कहते हैं कि 'यादे वादे जायते सत्त्वबोध'। यहाँ तक इस कथन से 'पार्याय प्रतिबोधिताम्' यह सिद्ध हुआ। अब यह देखना है कि देवकीपुत्र कृष्ण, भगवान् थे या नहीं। एक प्रमाण तो यही है कि सजय 'श्री भगवान् उवाच' ऐसा बोलते हैं, फिर भी सजय के वाक्य का आधार देखना चाहिए, यथा—

ततः श्वेतैर्हृदयैस्तु महति स्यन्दने दियता ।

माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यौ शङ्खौ शब्दध्मदुः ॥

यह श्रुत सत्य के पक्ष में प्रमाण है, इस का सटीक-करण करने के पहले 'भगवान्' शब्द की परिभाषा करना जरूरी है—

प्रेक्ष्यस्व तपस्यस्य धर्मस्य यशसः श्रियः ।

ज्ञानवैराग्ययोश्चैव पण्णां भग इतीरणा ॥

सर्वपूर्ण प्रेक्ष्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य इन की 'भग' नाम से प्रतिष्ठि है। वह जिन में होवे भगवान् कहते हैं। ऊपर के गीतावाक्य में 'महति स्यन्दने' शब्द से प्रेक्ष्य की सूचना है। 'तत' पद से धर्म सूचित होता है, क्योंकि कौरव पाण्डवों का समग्र धर्मशुद्ध या और उस का लक्षण है कि शत्रु के ललकारने पर पीठ न मोड़े और प्रकृत पक्ष में ऊपर आया है कि 'कुम्भट्ट वितामह ने सिंह के समान गर्ज कर शङ्ख बजाया' इस से आह्वान सिद्ध है।

तीसरा यश, 'श्वेतैर्हृदयैस्तु'—सफेद रंग के श्यान कर्ण चोरो से सिद्ध है, क्योंकि चोरो के नाम ही उन की लोकोत्तर उत्तमता के सूचक हैं—जीव्य, सुमीय, सैप-पुण और बलात्क। चौथा भगवत्ता का लक्षण है श्री, जो नि 'माधव' मा—रक्षणी के धव—पति; इसी से

सूचित है। १. पाँचवें ज्ञान 'दिव्यौ शङ्खौ' से जानना, क्योंकि दिव्य शङ्खध्वनि से लोगों में धर्मयुद्धार्थ सप्रेरणा हुई थी। छठा वैराग्य 'स्वितौ' पद से समझना, क्योंकि इतने विशाल शूरों के समूह में निःशस्त्र होकर युद्धव्यापार से कार्यरत पृथक् रहना विराग के सिवा क्या कहा जायगा? इस व्याख्यान से श्री कृष्ण में भगवत्ता पूरी पूरी सिद्ध है। कहा भी है—'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।'।

अब नारायण का विचार करना है कि उस की उपपत्ति गीता में कहाँ है?

अहमात्मा शुद्धाक्षे सर्वभूतनाथस्थितः ।

हे अर्जुन, मैं आत्मारूप से निखिल प्राणियों के हृदय में स्थित हूँ। आनी अन्तर्यामी रूप से सब के संचालक भगवान् ही हैं। धर्मशास्त्रा में कहा है—

आपो नारा इति शोक्ता आपो नै नरभूतवः ।

ता यदस्यापनं पूर्व तेन नारायणः स्मृतः ॥

—मुनु० १।१०

सब से प्रथम नररूप परमात्मा ने जल उत्पन्न किया, फिर उस में जन का निवास हुआ, इस से वे नारायण बड़े गये हैं। इस से भी गीताक्त सर्वान्तर्यामीत्व सिद्ध हुआ। गीता अद्वैतामृत की वर्षा करती है, यह बात विराम्य जाती है—

द्वैत, अद्वैत यह आजकल की परिभाषा है, गीता में इस मतमार्ग का भगड़ा नहीं है, उस का मत सब से अलग है। प्रत्यक्ष अध्याय में जो पुण्यवृत्तान्त हैं, उन में 'योगशास्त्र' ऐसा पद है, अर्थात् गीताकार के मत में उस का प्रतिपाद विषय योग है। चौथे अध्याय में भगवान् ने स्वयम् कहा है कि हम ने यह राग द्विस्वत्वं को कहा और बड़ी भुम को (अर्जुन

को) सुनाते हैं। तीसरे, संजय के मत से भी गीता का विषय योग है, वे कहते हैं—

व्यासप्रसादाच्छ्रुतवान् अहं गुह्यमिदं परम् ।

योगं योगेश्वरात् कृष्णात् साक्षात् कथयतः स्वयम् ॥

मैं ने व्यासजी की कृपा से इस अत्यन्त गुप्त योग को खास भगवान् से सुना है। यही योग अद्वैत शब्द का अर्थ है। अद्वैत शब्द द्वित्व का निषेधक है, तथापि ऐक्य का प्रतिपादक नहीं। योग शब्द का भी यही अर्थ लगाना चाहिए, क्योंकि गीता में एक स्थान पर आया है—

ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चात्पहम् ।

—गी० १२१६

जो भक्तिमहित मेरा भजन करते हैं, वे मुझ में हैं और मैं उन में हूँ। सूरदासजी के शब्दों में कहें, तो—
'हम भक्तन के, भक्त हमारे।' इस से योग शब्द का यह अर्थ निकला कि जीव में ब्रह्म है और ब्रह्म में जीव है। अमृत कहने का आधार यह है कि—

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् ।

—गी० ४११

मैं इस अव्यय (अविनाशी, अमृत) योग का मनु के प्रति उपदेश कर चुका हूँ। इस से योगरूप अद्वैत को अमृत कहना ठीक हुआ। 'वर्णिनीम्' अर्थात् गीतायोग की वर्ण करती है, इस का उपोद्घातक—

प्रसङ्गानेऽप्यकुसीदस्य सर्वथा

विवेकख्यातेर्धर्ममेव समाधिः ।

—अ० ४ म० २६

इस योगसूत्र में समाधि अर्थात् योग को मेघ शब्द से उपमित किया है, इतना ही कहना पर्याप्त है।

'भगवतीम्' इस शब्द का सार्थक्य—

अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः ।

ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः ॥

—गी० १८१००

जो हमारे इस धर्मयुक्त संवाद को पढ़ेगा, माने उस से मैं ज्ञानयज्ञ से पूजित होऊँगा। जिस ग्रन्थ के अध्ययन का ऐसा महत्त्व है उस के भगवतीत्व में क्या कसर है ?

'अमृत' संबोधन का सार्थक्य यही है कि जिस प्रकार वृक्षों के सृष्टि, स्थिति, पालनादि माता पर निर्भर रहते हैं वैसे ही जीवमात्र गीताक्त ज्ञान के आधार पर स्थित हैं।

'भगवद्गीते' इस में तो विवाद नहीं, क्योंकि यह भगवदुद्धारित है, यथा—'साक्षात् कथयतः स्वयम्।'।

अब एक विशेषण रहा 'भवद्वेषिणीम्' इस का समर्थक वाक्य है—

माद्युपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते ।

हे अर्जुन सुख प्राप्त कर लेने पर फिर संसार में जन्म नहीं होता : यहां तक इस विवेचन में गीता-साक्षात्कथन के प्रसिद्ध श्लोक का मूल गीता में ही दिव्याया गया है उसी तरह पूरे साक्षात्कथन का मूल आधार गीता में ही है; यह बात यथास्तर व्याख्याता पाठकों के समक्ष फिर कभी रखी जायगी।

ॐ तन्नम् ।

यही खयाल रखना चतुराई है

(ले०—श्रीमती विभूति देवी, अम्बापिका)

लक्ष्मण शिवाजी के युग समर्थ रामदासजी कहते थे—“सब को हरिकथा और आध्यात्मिक निरूपण की ओर ध्यान देना चाहिए, किंतु राज-नैतिक बातों को भी अच्छी तरह समझ रखना चाहिए है।” कहने का प्रयोजन यह है कि ‘यतोऽभ्युदयति भेषससिद्धिः स धर्मः’ के अनुसार मनुष्य को उन दोनों कार्यों के संपादन करने का उद्योग करना चाहिए है, जिन से इस लोक सुखदायक हो, और परलोक में भी कल्याणप्राप्ति हो सके। यही धर्म है। परलोक की आशा से, स्वर्ग की लालचा से यहाँ के कामों को छोड़ कर देना अर्थात् उन से कुछ मोड़कर हर बंदर मारे मारे फिरेला मुद्रिमत्ता में शायिल नहीं है। इसी तरह ‘यही सब कुछ है’ ऐसी धारणा से परलोक के सुभारने का कुछ भी यत्न न करना, यह भी समझदारी की बात नहीं है। अभिप्राय यह है कि ‘मनुष्य इस लोक को भी बनाने और परलोक को भी न भिगवाने दे।’

किसी ने कहा है—“मध्याह्न का सूर्य जब अपने ताप को सीमा को छू लेता है। उसी समय से उस के पतन का आरम्भ हो जाता है।” अर्थात् जो वृद्धि के उच्च शिखर पर पहुँच जाता है, वही फिर वहाँ से नीचे की ओर गिरता नज़र आता है। क्योंकि पवन अनिवार्य है, अथ यह सच है, तो उस से पहले संभलने का यत्न कर लेना चाहिए। जो ऐसा करते हैं, वे धीरे धीरे सँभलते हुए नीचे की ओर की आते हैं, वे नष्ट नहीं होने पाते, अतः उन्हें फिर उन्नत होने का मौका मिल जाता है।

तुम इस बात की विन्या कबों करते हो कि हम साधनहीन हैं, दुर्बल हैं और पहले जैसे शक्ति

शाली नहीं रहे, परिवर्तन तो माया के प्रपञ्च में हुआ ही करता है—

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे वीमारं यौवनं जरा ।
तथा देहान्तरमाप्तिं धीरस्तत्र न गृह्णाति ॥

—गी० २।१२

अर्थात् यह जानूँ धाराप्रवाहरूप में सदा यो ही चलता रहेगा, किंतु पहली व्यक्तियों मिट जायेंगी और नवीन व्यक्तियाँ उन का स्थान ग्रहण करेंगी, पहली रचना उसी रूप में कदापि नहीं टिकी रह सकती, फिर इस में आश्चर्य किछ बात का ?

धोत्र कहता है—

“मेरी बॉल में एक विशाल बूझ दिया हुआ है, जब मैं उसे जन्म दे लूँगा तब नष्ट हो जाऊँगा।” नदी का पानी देखते देखते वह जाता है, पता नहीं लगता, पहला कहाँ गया, कब गया और नया कब आया ? इसी प्रकार वायु के झोंके की तरह मनुष्य-जीवन है। खयाल रखो, जब तक तुम अपने स्थान से हटा न गिये जाओ, उस से पहले ही उस चरित्र की पूर्ति कर लो, जिस के लिए तुम यहाँ आये हो। क्योंकि “इस ससार में एक स्थान लेते लिये भी रिक है, परंतु नाटक सेरे आने की प्रतीक्षा में रुका न रहेगा।” याने तुम संसार में जो भी कुछ करना करना चाहो उस के लिए तुम्हें मौका भीर समय मिल सकता है। किंतु तुम्हारे इन्तजार में इतरत का कोई काम (प्रकृति का चक्र चलना) रुका नहीं रह सकता।

यह चमन योंही रहेगा, और इजाराँ जानवर ।
अपनी अपनी बोलियाँ, सब बोझकर चढ़ जायेंगे ॥

यद्यपि प्रकृति का साम्राज्य विशाल है, उस में तुम्हारा अस्तित्व समुद्र में बिन्दु के समान नगण्य है, किंतु तुम्हारा महत्त्व कम नहीं है, तुम भी कुछ हो, और ऐसे हो जैसे एक बहुत बड़े इंजन का मामूली पुर्जा होता है उस के बिना बड़ा विशाल यन्त्र बेकार हो जाता है। तुम्हें मादस होना चाहिए कि “मिट्टी का दीपक घर के उस अँधेरे कोने में प्रकाश पहुँचाता है, जहाँ चन्द्रकला प्रवेश नहीं पा सकती।” ठीक, जिन अँधेरी गुफाओं में सूर्य कभी भी प्रकाश नहीं पहुँचा सकता, मामूली दीपक वहाँ उजाला करने की सामर्थ्य रखता है। इसी तरह प्रत्येक मनुष्य इस लंबे-चौड़े जहान में अपने लिए खास स्थान रखता है, जहाँ स्थिर होकर वह इष्टसाधन कर सके। कोई किसी दशा में हो, किसी स्वरूप में हो, किंतु अपने आप को नगण्य तथा कुछ न समझे। जो महान् हो गये हैं और हैं पहले वे भी बहुत ही साधारण अवस्था में थे, आज का विशाल-काय महाशुभ्र पहले बहुत छोटे अंकुर के रूप में प्रकट हुआ था। इसी लिए तुम ‘आत्मानं नाव-मन्येत’ के सिद्धान्त को मानो।

किंतु तुम अपनी संपत्ति, शक्ति पर गर्व भी मत करो। यदि गर्व करने की, अभिमानी होने की आदत हो पड़ गई है, तो इस पर करो कि मैं ने अपनी सामर्थ्य से इतने दीनों की शीनता नष्ट कर दी, अन्यथा दीनों की वेदना सामर्थ्यवानों के उत्सवों का उपहास करती है। इस कथन के अनुसार ‘एक दीन की ठंडी आह में सौ भद्रियों की ओँच है।’ यह बात सदा स्मरण रखने योग्य है। कोई भी समर्थ मनुष्य समुद्र की पाद से बच सकता है, विजली गिरने से अपनी रक्षा कर सकता है, बमगोलों की मार बिकल

कर सकता है, आग की लपट को नहीं लगाने दे सकता और सारे संसार के विरोध को चुटकियों पर उड़ा सकता है, किंतु ‘दीन की शीतल हाथ’ की ठंडी मार से अपने आप को नहीं बचा सकता।

मनुष्य इस दुनियाँ में कुछ करने को आया है, इस के तीन काम मुख्य हैं, पहला ‘अपने आपको योग्य बनाना, क्योंकि पैदा होने के समय दुनियाँ में कोई योग्य बनकर नहीं आता, प्रत्युत वर्षों दूसरों की सहायता पर निर्भर रहना पड़ता है। दूसरा ‘दूसरे का सहायक होना’ क्योंकि ऐसा करनेवाले समय पड़ने पर दूसरों से मदद पा सकते हैं। तीसरे ‘किसी को न सताना’ क्योंकि ऐसा करनेवालों का मानसिक बल क्षीण नहीं होने पाता।

संसार में लेने और देने का व्यवहार हो रहा है, जो दे नहीं सकता वह कुछ पाने का हकदार नहीं है, दे वही सकता है, जिस के पास कुछ होगा, पास में याने अपने अधिकार में वे हो कुछ रख सकते हैं जो बुद्धिमान होंगे, देश काल की गति विधि की नियन्त्रण करना जानते होंगे। लोक में वही मनुष्य उन्नत समझा जाता है जिस का प्राकृतिक पदार्थों पर अधिक अधिकार हो और जो वस्तुओं का उचित प्रयोग करना जानता हो।

ऐसा तो वे ही कर सकते हैं जो स्वयं सशक्त हों, दूसरों के सहयोग को प्राप्त करके अपने स्वार्थ-साधन में, निपुणता हासिल करने में दक्ष हों, चतुर हों और मार्ग में आ पड़नेवाले दूसरे के स्वार्थ को हानि न पहुँचाते हों। अपना काम बने तथा अन्य का बिगड़ने न पावै, बस सदा यही सलाह रखना चतुराई है।

प्रभुचरणां में

(ल०—पुरुषोत्तमदास भीष्माभाई देसाई)

प्रेम शब्द बोझने में क्या हो सरल और सुनने में अत्यन्त मधुर है, इस की इन्हीं विरोधवाओं से रीझकर किछो महाराम ने कहा है—

पोयो पढ़ पढ़ जग सुआ, पण्डित भया न कोय।

हाई अक्षर प्रेम का, पढ़े सो पण्डित होय ॥

यह कथन कोई अत्युक्तिपूर्ण नहीं, किंतु सोलह आने तक और अनुभवमयरी वक्ति है। प्रेम बोझने में त्रिपना सद्गुरु और सुलभ है, ठीक इस के विपरीत वस्तु को सत्ता बहुत ही दुर्लभ है, कहने को तो बहुत आसानी प्रेमी बनते हैं, पर असलियत दूसरी ही है। बंद विरह के व्यापारिक बाजारों में मिलनवालों कीज नहीं, अड़कार और मूषणों की तरह शिल मिलानेवालों कीज नहीं, संमहाद्वयों (अजायप्रधरों) की कमकचो हुई आलसियों में या स्वर्णशिरों में त्रिखित प्रत्यराशियों में नहीं, जायविक महाप्रभुओं के आनंदार राजप्रासादों में नहीं, ऐश्वर्य की चका-चौबहाड़े साम्राज्यसिंहासनों में नहीं, राजनीति की प्रबल शक्तिशालिनी, रोष, दुश्मनी, प्रताप जवानवाली अविभाज्यो बुद्धि में भी नहीं। वस का पलम रम्य स्थान तो दूसरा ही है। वह पवित्र और शुभ हृदय अन्दर में विराजनेवाली अनोखी भोज जिस के पास है उस को बराबरी करनेवाला देश और गन्धर्वों में भी कोई नहीं। आप को आश्चर्य होगा कि आश्चर्य की गोतियों ने अपने अजीबक प्रेम के बल पर कदम अड़े महाकानियों का भी मान भङ्ग कर दिया था, आरकाबासिनी पददानियों को भी मुख और ईर्ष्यादु बवा दिया था, बड़े बड़े श्रुति, सुनि, योगियों का अभिमान चूर चूर कर दिया था, और सो और सदासिब भोळानाय को भी गोपीवेष धारण करने पर हो प्रेम की महिमा ज्ञात हुई थी।

विश्व में प्रेम ही सत् और सत्य है, जहाँ कहीं सत् और सत्य दिखाई देता हो, वह प्रेम का रूपान्तर है। प्रेम का हास्य कदापि नहीं होता, एक बार प्राप्त हो जाय, फिर तो बहमूल हो जाता है। प्रेमी के प्राङ्गण में प्रेमपात्र का आगित्य देखा प्रबल और दृढ़ हो जाता है कि दूसरे को वहाँ रहने का स्थान ही नहीं मिलता।

मीतपञ्चि नैनन बसी, परछवि कहाँ समाय।
यरी सराय रहीम लसि, आप पथिक फिरि जाय ॥

‘मीताचर्म’ का वाचनानुगत पान करनेवाले विश्व पाठकाल। लोग कहते हैं कि इस युग में प्रभु के छाछात दर्शन नहीं होते, किंतु प्रेमी जनों का अनुभव इस के विपरीत है। जिस भाग्यशाली मनुष्य के हृदय में प्रभुप्राप्ति की तीव्र इच्छा हो, जिस का मन प्रभुदर्शनार्थ व्यथित रहता हो, जिस के जीवन को प्रत्येक बड़ी प्रभुमिलन की सालसा में व्यतीत होती हो, क्या ऐसे व्यक्ति को प्रभु छभी अवस्था या खूबदेखना कर सकते हैं? नहीं, कदापि नहीं, ऐसे प्रेमी भक्त को रसोत देने के लिए प्रभु भी पैर हीने पड़े आते हैं।

‘मीताचर्म’ का वाचनानुगत पान करनेवाले विश्व पाठकाल। लोग कहते हैं कि इस युग में प्रभु के छाछात दर्शन नहीं होते, किंतु प्रेमी जनों का अनुभव इस के विपरीत है। जिस भाग्यशाली मनुष्य के हृदय में प्रभुप्राप्ति की तीव्र इच्छा हो, जिस का मन प्रभुदर्शनार्थ व्यथित रहता हो, जिस के जीवन को प्रत्येक बड़ी प्रभुमिलन की सालसा में व्यतीत होती हो, क्या ऐसे व्यक्ति को प्रभु छभी अवस्था या खूबदेखना कर सकते हैं? नहीं, कदापि नहीं, ऐसे प्रेमी भक्त को रसोत देने के लिए प्रभु भी पैर हीने पड़े आते हैं।

हमें इस विषय पर शान्त चित्त से विचार करना चाहिए, क्या हमारे हृदय प्रभुप्रेम की वक्तव्य में पल भर भी व्याकुल रहते हैं ? नहीं, हमारा मन तो मायावी पदार्थों की अपना सर्वस्व समझता है, उस में प्रभुप्रेम को रत्तीभर स्थान नहीं, वह तो संसार के नश्वर सुखों में मस्त है। उस को परमेश्वर और परलोक जैसे शब्दों से क्या दूरकार ? उसे तो चाहिए धन, संपत्ति, कीर्ति और महल, बगोचे आदि पेश आराम की चीजें। पर कामी पुरुष अपनी चाहो हुई कामिनी को प्रसन्न करने के लिए जितना सोचता और यत्न करता है, उस के विरह में रोता व तड़पता है, क्या उसी तरह कोई ईश्वरदर्शनार्थ रोता या छटपटाता है ? एक लोभी आदमी अपने पैसों के लिए जितनी किकर करता है, उतनी किकर कोई ईश्वरदर्शनार्थ रखता है ? एक स्माधारण नौकरी के लिए जितनी खुशामद, कोशिश और कष्ट करते हैं, क्या वैसा प्रयास प्रभुप्रेम के लिए किया जाता है ? अपने हृदय को विचार के गोंटे पर तोलकर देखो कि कौन पलङ्ग नीचे मारता है ? संसार की चक्कियों से भरे मायाजोह का या प्रभुप्रेम का।

प्रचण्ड पावक को बाला पर चढ़ी हुई, भरे हुए तेल में गीतनवाली कढ़ाई में गिरा हुआ आदमी, उस में मे निष्कलन के लिए जिस प्रकार छटपटाता है, पानी में डूबा हुआ व्यक्ति उस से गहर निष्कलन को आतुरतापूर्वक जैसा प्रयत्न करता है, किसी बुद्ध जैसे मेल में स्वयंजों से विटुड़ा हुआ बच्चा जैसा व्याकुल होता है, अल से निष्कलन हुई मदनो जित प्रकार जल के लिए वदफनी है अथवा चक्कोर

चन्द्र की चाह में वेचैन रहता है, उसी प्रकार की वीर आतुरता, व्याकुलता या वेचैनी प्रेमी को प्रभु-मिलन के लिए होनी चाहिए, इस का सफल निदर्शन प्रभुमिलन में आत्मविभोर हुई मोरा बाई है—

हे री मैं तो प्रेम दिवानी,

मेरा दरद न जाने कीय ।

शुली ऊपर सेज हमारी,

सोना किस विधि होय ॥

गगन मण्डल पर सेज पिया की,

किस विधि मिलना होय ।

घायल की गति घायल जाने,

जो कोई घायल होय ॥

अथवा कबोर के शब्दों में प्रेमी का रास्ता यह है—

सीस उतार धूमि धरे, तापर राखें पावें ।

दास कबोरा यों कई, ऐसा हो तो आव ॥

संसार ऐसे प्रेमी भक्त की निन्दा करता है, तो करने दो; भक्त और जगत् का शाश्वतिक वैर है। प्रेमी को चाहिए कि इस दर से अपने हृदय में पड़ी इस प्रेममुद्रा को न छोड़ बैठे, अगर वह अपने को गजपूर बना ले, तो संसार की हंशाबात उस के अन्तर के प्रेमप्रदीप को बुझा नहीं सकती। जो प्रीतन की प्यारी सूरत पर ध्यान हो चुका है, जिस के हृदय के भीतर मन्दिर और मस्जिद के नक्शे बन गये हैं, उस के कदमों में पृथ्वी के पेशवर्ग छोटे रहते हैं, सारी मुबाई उस के मीने के अंदर समाई रहती है, तो मो उस को इन बातों का भान नहीं रहता। ऐसा प्रभु का अनन्य प्रेमी भक्त चरा-पर जगत् में जो कुछ भी देखता है, वह सब प्यारे

के रूप की प्रविष्टि ही दिखाई देती है, सर्वत्र
श्याम की श्यामता समाई मालूम देती है, कृष्ण में
जगत् और अजगत् में कृष्ण ही नजर आते हैं।
वस को स्थिति लोकोत्तर रहती है सदा, पर वह
समझता है कि अभी प्यारे का घर दूर है, मैं वहाँ
तक कैसे पहुँच पाऊँगा।

ना वह पंख, न पावें कौ, प्रीनम कौ घर दूर।
ना जानूँ, हैरान हूँ, रहूँ निरह में खुर ॥

प्रेमीजन की विचारधाराएँ इस तरह वस के
मानससरोवर में हिलोरेँ लिया करती हैं।

प्रभो ! मैं कहीं तक धोरज घरूँ, आशा करते
करते युग बीत गये, फिर भी मैं अपने को आप का
वत्सल्यपान न बना सका। अब जीवन का भाषार,
मिलन की आशा मन्द न बचने पावे सिर्फ इतना
ही सहारा दे दो, नहीं तो जीवनप्रदीप के मुखरे
में अब विलम्ब नहीं। भले ही कितना ही तपस्याओं
या व्रतसाधों, इस का कुछ भी फेस नहीं है—

सुनेवाँ क्या हुआ गर तू आता नहीं नजर मुस कौ।
मेरी आँखों की पुतलों में तेरी तसबीर फिरती है ॥

वास्तव में प्राणप्यारे कन्हैया की वह बालव्रति
क्या कभी आँखों से आश्रय हो सकती है ? जिस ने
नन्दनन्दन की बालपन की मोली, सँवली सूरत
निहारी है, जो यशोदा के भागे पीताम्बर पहने
मॉलनरोटी खाते हुए, किलकते, कूदते फिर रही हो,
वह मळा उस से छूटने की धोन है ? वह आनन्द
कन्द प्रभु प्रेमी का जीवनसर्वस्व है तो प्रेमी चाकर,
प्रभुसेवक है तो वह उन के प्रेम में जलनेवाली बत्ती,
प्रभु नदी तो वह किनारे का झूल, प्रभु चन्द्रयाम तो
वह मल मयूर, प्रभु चन्द्र तो वह चाहमा चकोर,
प्रभु मोतियों की लकी तो वह रेशमी सूत्र।

ऐसी प्रेमलक्षणा भक्ति में हुआ हुआ अनन्य प्रेमी
निद्रावश को झीझ सुकावे, वो वह उस श्रद्धा में भी

प्रभु के चरणों में अनायास सुक जाता है, और अन्त-
र्जितना के द्वार सुख जाते हैं, तो अपने जीवनपन,
शाराध देव से अभिमानमयी शोभता के साथ इस
दंग की अनुनय विनय करने लगता है—

प्रेममन्दिर के आराध्य देव ! मैं तुम्हारे चरणों
के अधीन हूँ, अब इस नौकरी को छोड़ नहीं सकता,
अब कितनी बार कहलाना चाहते हो कि मैं तुम्हारा
हूँ, क्या तुम्हें इस कथन पर संदिग्ध है ? अगर मैं
यह कहूँ कि तुम्हारा नहीं हूँ, तो मेरी जीभ गलकर
गिर जाए। मैं किसी का बनना भी चाहूँ, तो
बझीकार हो करेगा कौन, तुम जैसा अकारण बन्धु
मिलेगा हो कौन ? मैं, वो तुम्हारा हूँ, तुम्हारा ही
होकर रहूँगा।

दीनदयालु मुने जब से,

तब ते मन में कतु पेंतो बसो है।

तेरी हो आसरी एक 'मलूक',

नहीं प्रभु सी कोऊ दुमी जसो है ॥

रावरी कहाँ मैं जाऊँ कहाँ प्रभु,

तेरे ही नाम को फँट कसो है।

ए हो सुरारी सुधि लोको हमारी,

अब मेरी हँसी नहीं तेरी हँसी है ॥

अच्छा, जैसी तुम्हारी मर्जी, मैं ने तो अहंनिश यही
दिनचर्या बना ली है—

कृष्ण कृष्ण रहते रहो जब लग घट में पान।

बनहुँ दीनदयालु के भनक परैगो पान ॥

× × ×

यह प्रेम सदा भरपूर रहे

भगवान् तुम्हारे चरणों में।

यह अर्ज मेरी मजूर रहे

भगवान् तुम्हारे चरणों में ॥

पुरुषोत्तम मास की परीक्षा

(ले०—श्री चिरंजीवलाल शर्मा)

विश्व की उद्विग्नता और अस्तव्यस्तता के इस अवसर पर पुरुषोत्तम मास का आगमन हम को ईश्वरीय सुसंदेश के सूचक रूप में मानना चाहिए। संसार विघटित होने को उद्यत है, मानवता टुकड़े टुकड़े होना चाहती है, आसुरी संपत्ति का विकराल वाता वहने, मयसंहार का दृढ़ संकल्प किए हुए, जगत् के सर्वाधिकारी बननेवाले सूत्रधार हमारी शान्त, सुन्दर, उत्तम भावना और रचना को धूल में मिलाना चाहते हैं, इस नाजुक समय में हमारा कर्तव्य और अनुष्ठान-माममी क्या हो ? निश्चित है कि सुसंगठित विद्यालय दानवी शक्ति का सामना करना ही होगा। तो क्या हमें भी हम में शामिल होकर करना चाहिए ? और कैसे ? हम भी जैसे ही संहारक दानव बनें, तब कुछ शायद रक्षा हो जाय ? पर नहीं, वह तो—

हविषा कृष्णवर्त्मन् भूय एवाभिवर्धते ।

आग में पी जैसी उत्तेजक पस्तु डालो, तो वह और तेजी बढ़ती है उसी तरह होगा। 'विषम्य विष-मौषधम्' है, पर यह पहले के विष से अधिक उत्कट माश में हो, तब। और हमारी भौतिक स्वायत्त-माममी तो इस महाविनाश के फालसर्प की तुलना में नभय है, मधुमक्खी जितनी हो, अधिक से अधिक कागिश करें, तो फटिनता से विन्दू के समान हो मरानी है, पर यह तो ऊँट के मूँह में जीरे के समान होगी—

न नृपस्वननं न्यार्यं प्रदीप्ते वदिना घृरे ।

आग लग गयी है, अब पूजा गोदने मक तो वस की शाय भी न रहेगी। इस लिए भाग्य, मनीष ही

बहुत सा पानी भरा है उस से यह आग शान्त की जाय, जलबीच धोयी पियासा क्यों मरे ? वह जल कौन सा है ? वही शान्त, शाश्वत, स्वच्छ, ग्रीतल अमृत-मय प्रभु। अपने हृदयघट लेकर उधर 'ही दौड़े', उस जल का विन्दुमात्र; वाष्प और ज्वालारोषिनी रासायनिक गैसों में भी अधिक मंतापनिवारक है। मालूम होता है, हम गीताधर्मी भक्तवर प्रह्लाद की इस धान को भूल गए—

रामनाम जपतां कुतो धयं

सर्वतापशमनैकभेषजम् ।

पश्य तात ! मम गात्रसन्निधौ

पावकोऽपि सलिलघातेऽधुना ॥

मालूम होता है, पुरुषोत्तम मास हमें इसी की याद दिलाने आया है। इस के सिवा और कोई उपाय भी नहीं। संभव है, सर्वान्तर्यामी होने से लोक-क्षयकृत् काल होकर यही परमेस्वर इस ध्वस्तलोल में प्रवृत्त हो रहा हो ? तब तो और भी सुनिश्चित है कि 'श्रुतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे' यही बचेगा जो गीतामृत-द्रव्य का पान करके उस का अनुचर हो जायगा। जैसे भीमसेनी एकादशी माघ पून में निर्धारित हो सकती थी, पर हमारी दृढ़ता और अनु-राग देने के लिए, तभी दृढ़ हृदय से झुलसी श्रुति में गनी गई, उसी तरह संकटकाल का अधिक मास हमारी जीव करने आया है, ऐसा मानना होगा। परीक्षक मया उभ होगा ही है, यथा शाण्डिन्य श्रवण का पचन है—

प्रापशो न शुभः सौम्यो ज्येष्ठश्रापादकस्तथा ।
मप्यमौ चैत्रदशतौ अपिकोऽप्यः शुभिच्छब्दः ॥

ज्येष्ठ, आपाद, मार्गशीर्ष के अधिक मास, प्रायः शुभश्रद्ध नहीं होते, चैत्र वैशाख कुछ अच्छे और दूसरे पूरे अच्छे होते हैं। जो व्यक्ति इस परीक्षा में दाखल होगा, उन्हें सर्वदा शुभ ही होगा, इस से प्रायः कहा है। यद्यपि इस मास को—

‘काम्यकर्मसु गर्हितम्’।

(विष्णुस्मृत्यनुसार)

॥ काम्यकर्मों के लिए निगिद्ध कहा है, परन्तु गीता-धर्मी हो सर्वदा निष्काम कर्म ही करेंगे। वे कर्म इस मास में यो शुरू होने चाहिए—

१—मनचे हृदय से, कान्तभाव से, प्रभु से अभ्यर्थना करो कि विश्व के सभी प्राणी शान्ति और आनन्द प्राप्त करें, सब का मङ्गल हो, सब में सद्-विचार और विवेकबुद्धि का उदय हो।

२—दिन के पास घन संपत्ति हो, वे उसके द्वारा अपने आस पास के गरीब भाइयों की वित्तप्रमाण से सेवा सहायता करें।

३—सीधे सादे गीतास्वाध्यायदल और भजन—संकीर्तनमण्डल, प्रति घण्टा घनने चाहिए, जहाँ भाग्य-बल, रत्नायण आदि के पारायण, विष्णुसहस्रनाम, दुर्गा-सप्तशती, महिम्नस्तोत्र के पाठ और अपने इष्टमन्त्र का जब पूरे सात्विकभजन से नियमपूर्वक हों। ये तीन बातें इस पुरुषोत्तम मास से सदा के लिए बल निकलनी चाहिए। अगर ये काम सम्भरहित होंगे, तो प्रह्लाद के से दृष्टान्तों की कमी न होगी, किसी प्रकार के दुःख, शोक, भय का स्थान न रहेगा, क्योंकि उन की प्रतिज्ञा है—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कृत्य ।
मायैवैष्ण्यसि सत्यं ते प्रतिजाने विमोक्षसि मे ॥

—गी. १०।१२

शुभ में मन लगाओ, मेरा भजन पूजन और नमस्कार करो, मैं सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ, तुम मेरे ध्याये होकर मेरे पास रहोगे। वस, यही परीक्षा है।

“विभो !”

(२०—श्री सुरेन्द्रनाथ ‘आज्ञा’)

आकर्षण इतिहास तुम्हीं हो ;

कूचकाय में धार तुम्हीं हो ;

भोक्तृपुत्र साधार तुम्हीं हो ;

मानव सम्पत्ति सार तुम्हीं हो ;

निर्वासित के रक्षक स्वामी ।

पूज न माना है निष्कामी ॥ १ ॥

पददर्शक—श्रीगुरु तुम्हीं हो ;

अन्ततः विराजत कथ तुम्हीं हो ;

मेघ दया की मूर्ति तुम्हीं हो ;

स्नेह-प्रश्रित राक्ष तुम्हीं हो ;

निर्वासित के रक्षक स्वामी ।

पूज न माना है निष्कामी ॥ २ ॥

आत्मज्योति

(ले०—श्री सुरेन्द्रनाथजी 'आजाद')

मेरे प्राणेश ! मैं संसार की सहायभूति एवं क्षण-
भङ्ग प्रेम की ज्योति पर अवोध शिशु की तरह ललचा-
यित होकर उसे प्राप्त करने के लिए अग्रसर था।
जानता था, विश्व प्रेम की बाँकी बाँकी में ही सर्व-
शक्तिमान् परब्रह्म परमेश्वर का अलौकिक चमत्कार
छिपा हुआ मानस पटल पर अभिनय करता है, किंतु
ज्ञानचक्षु बंद थे, आरों पर अज्ञानान्धकार के पर्दे
पड़े थे। 'मैं' 'तुम' मे ही माया ब्रह्म का साक्षा-
त्कार हो रहा था। मैं अहंकार के पर्दे में दबा हुआ
प्रेमसरिता में स्नान करना चाहता था। भ्रमण किया,
वैसुध प्रेमनर्तन किया, दया की भिक्षा ली, जीवन
को गाड़ी समझ तीर्थराजों की यात्रा करके धरु गया।
किंतु कहीं शान्ति नहीं मिली ईश !

X . X X

प्रभो ! विश्ववाटिका में अनेकानेक सुगन्धमयी
कुसुमकलिकायें प्रस्फुटित हो रही थीं, सब में उद्भास
था, उमंग की ताल तरंगों बायु के थपेड़ों से अनिश्चित
दिशाओं की ओर उड़कर लिये जा रही थीं, वण वण
में दावाभि सुलग रही थी, पृथ्वी, जल, अन्तरिक्ष में
प्रेम की अखिल आत्मा वियोगी बनी दृष्टिगोचर
हो रही थी। वृष्णा की अग्नि अभी बुझी नहीं थी।
इस को स्वयं भी मैं पहचान न सका, मिथ्या माया
और सत्य माया का बराबर नाम सुनता था; किंतु वे
भावनाएँ हृदयस्थल पर कोई स्थान न बना सकी थीं।
हृदयेन ! प्राणनाथ ! रिमो ! तुम्ही कभी कभी
प्रेमवीणा के तारों की झंकार में यज्ञ उठते थे।

मुरलीधर ! मनमोहन ! आज अशान्ति के तूफान

उमड़ते चले आ रहे हैं, हमारे भी भाग्यगगन में महा-
विनाश के काले बादल मँडरा रहे हैं। उथल पुथल
के इस जीवन में प्रेम की अलौकिक ज्योति वनकर न
समाओगे प्रभो ! कहे तो सही !!

अनाथों के नाथ ! करुणासिन्धु ! विभुवर !!!
तुम्हीं इस कौतूहलपूर्ण जगती के कोने कोने में
विद्यमान होकर, मानसपटल पर सौन्दर्यसुपमाकी
अखिल तरंग वनकर सुधाधारा बहाया करते हो।
तुम्हारे विना नश्वर जीवन में कोई सहारा नहीं, भावों
के निर्मल आकाश में तुम्हारी ही दिव्य ज्योति आनन्द-
सुधामयी शुभ ज्योत्स्ना को वरसाया करती है।
भक्तों को भक्ति की पुण्यशालिनी मन्दाकिनी में तुम्हीं
जलकेलि कराया करते हो। करणेश ! आओ, शीघ्र
आओ, इस उलफन से छुड़ाकर, सीधा सरल मार्ग
दिखाकर, कविबुलकमलदिवाकर वनकर कुछ गीता
का अलौकिक संगीत सुना दो प्रभो !

X X X

गिरिवरधारी ! नटनागर ! यों तो आप की
राधाकृष्णमयी, सौन्दर्यशालिनी युगलमूर्ति विश्व-
प्राणन में आज भी नर्तन कर रही है। पर हम पर
तो अज्ञानपटल छाया हुआ है, नेत्रों को दिवान्धता
व राज्यन्धता घेरे हुए है, तो उन सुपमाभरे हर्यों
को कैसे देखें ? संसारक्षेत्र में आगा और निराशा
के बादल प्रतिक्षण मडराया करते हैं, वस, इन्हीं नित्य
की अनित्य उलफनों में कैसे हम छुद्र जन्तु मकड़ी के
से जाल में लटक रहे हैं। माया के पुजारी वनकर
मिथ्या संसार को ही सर्वश्रेष्ठ, अग्रपूज्य मानते हुए

उस के पास हार भाव पर हम अपनेपन की घड़ि बड़ा चुके हैं। यह जानने हुए भी कि नरवर में प्रेमव्येति क्षणभङ्गुर है, चञ्चल है, अस्थिर है जैसे धातु की दीवाल; तो भी उस पर आत्मसमर्पण की सबल छात्रसा सजग है। किन्तु जब सभी ओर से हताश होते हैं वह बाध्य होकर अपने अन्तर में ही दिव्य ज्योतिष्मती राधापूज्य की युगल मूर्ति दटोलने लगते हैं, तो हमें हम चिन्तनागन्तु में क्षण क्षण पर शान्ति का आभास अनुभूत होता है। शनैः शनैः आनन्दलीलामयी प्रैलोक्यसुवधारिणी युगल मूर्ति के दर्शन होने लगते हैं! फिर दुनियाँ के नाते रित्त हाड़े खानबन् दृष्टिगोचर होने हैं। अङ्ग, चेतन, शक्ति, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश की कणिका तक में विलोपन की निराली छटा ही दृष्टिगोचर होती है। फिर हम अपने धनुषों से नरवर का अपना स्वरूप समझने लगते हैं! प्रेमोन्मत्त होकर भक्ति से पूज्य, द्वेष, राग का त्याग करके जीवों पर दया करने हैं। प्रेम का सदा अभिगम करते हैं। वस फिर तब नित्य जवान पर गयी रहता है। —

सब का एक वही भगवान् ।
एक पिता के सब सन्तान ।
छोटा बड़ा न कोई जग में,
सब हैं एक समान ॥

भक्त का वही तो स्वभाव है कि इन्हीं भावनाओं में भक्त मग्न होकर विश्व का निरीक्षण किया करता है, प्रभु की सत्ता उन्हीं में स्थापित करता है, माइन की मुरलीध्वनि अपनी इतनी के तारों के साथ प्रति पग पर, टग टग पर निकाला करता है। वह सोच जाता है प्यार करना। और मिल जाती है उसे अलौकिक आनन्द, सुख की राशि। तारागण से लेकर सुधाकर तक, देवलोक से भूतलोक तक की छटा इसी आत्मा के अन्तर्गत नर्तन करने पाना है वह। जिसे दुनियाँ कहती है पागल मनकी, योगी या और कुछ। वस, इनसे से ही उसे आत्मा की शान्ति दृष्टिगोचर होने लगती है। उस शान्ति में ही राधा कृष्ण का मूलन हृदयरूपी डाली पर मूलना हुआ घस के दृष्टिगोचर होता है।

विमो। तुम्ही चिन्तासागर में डूबाकर आनन्द-सागर में पविर्जित कर देने हो। अब तुम्हारी दृष्टा रिता जीवन मृत्ता है। आनन्दकन्द। भाववन। तुम हमारी ही आत्मा की बगानि हो। प्रेमव्येति हा। हृदयवाङ्मिका की कुसुमकली हा। जा चिन्तना करने से विवसित हुआ करते हो। शान्ति के तुम ही प्रतीक हो रहा।

शङ्का

(प्रेरक—चि० मत्ताहलाल शर्मा)

त्याज्य क्षोभदिव्येकं नमो प्रादुर्मेनीयिण ।

यजन्मिण्यकर्म न त्याज्यमिति आहरे ॥

—गी० १८१

१४ वे कड़ा का लक्षण यो है—रक्षक का अन्वय करने से 'एके मनोविन कर्म त्यागव्यं इति आहुः आहरे

मनोविन कर्म न त्यागव्यं इति आहुः । ऐसे वा लक्षण का लक्षण होने हैं। विधी शायी के एक वैय कहे कि अमुक बहू काजी आहिर और वृत्त वैय कहे कि वह जीवन करवि न खाता, इस अवस्था में शायी का क्या कर्मत्व शायी । शायी अर्थात् वैय काज के सुगमिष्ठ है, जन

दोनों में पथ्यापथ्य के बारे में मतभेद हो जाय, तो उस की मोर्मासा एक प्रकार से अर्धमव ही कहनी चाहिए । उघी प्रकार अगर दो मनीषी व्यक्तियों में से एक कर्म को त्याज्य बतावे और दूसरा आत्याज्य तथा दोनों की विद्वत्ता भी तुल्य

बल हो, तो इस का निर्णय असम्भव है । उक्त श्लोक में भगवान् अथवा वेदव्यासजी परस्पर विरुद्ध मत प्रतिपादन करते हैं । इस विषय के प्राप्ताप्राप्त के बारे में शङ्का है ।

समाधान

(ले०—ज्ञानतपस्वी श्री गीतानन्दजी शर्मा)

ऐसी ही शङ्का सांख्यदर्शनकार ने उठाई है, लेकिन उस का आधार भी यही श्लोक है । उत्तर भगवान् स्वयं देते हैं—

निश्चयं शृणु मे तत्र त्यागो भरतसत्तम ।
त्यागो हि पुरुषव्याप्त त्रिविधः संप्रकीर्तितः ॥
यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् ।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥
एतान्यपि तु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा फलानि च ।
कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम् ॥

—गी० १८।४, ५, ६

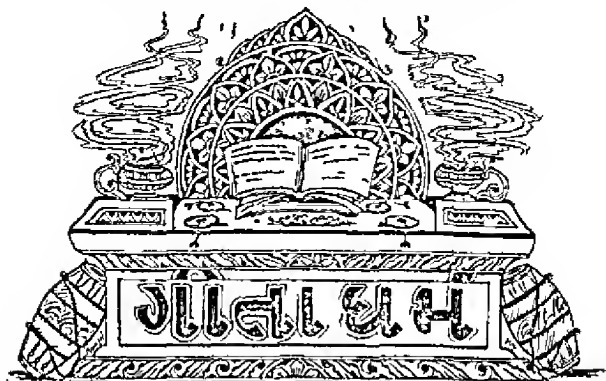
हे भरतश्रेष्ठ, त्याग के बारे में मेरा निश्चित मत सुनो, त्याग भी तीन प्रकार का कहा गया है । यज्ञ, दान, तप इन कर्मों को छोड़ना नहीं, किंतु व्यवस्था करना चाहिए । ये तो सुद्धिमानों की चित्तशुद्धि करनेवाले हैं । इस लिए इन कर्मों को सग और फलाप्राप्ति छोड़कर करना ही उचित है, यह मेरा निश्चित और श्रेष्ठ मत है ।

यहाँ पर भगवान् का कहने का तात्पर्य यह है कि जो शब्द क्षेत्र में किसी अर्थ में प्रयुक्त होता है उस का शास्त्रीय परिभाषा में भी वही अर्थ हो; यह कोई नियम नहीं है । शास्त्रकारण विशेषतः दार्शनिक ग्रन्थकार अपनी परिभाषाएँ निश्चित भिन्न निर्माण करते हैं । किसी शब्दविशेष का अर्थ शब्दकार द्वारा जो नियत किया जाता है, उस शास्त्र में वही

प्राप्त माना जाता है । प्रकृत में कहना यही है कि त्याग शब्द का लोकव्योहित अर्थ यहाँ प्राप्त नहीं है । इस लिए भगवान् कहते हैं कि 'त्यागो मे नियमं शृणु' अर्थात् यद्यपि 'तामस और राजस कर्म त्यागना चाहिए' इस भाव्य में त्याग शब्द का कोशिक अर्थ ही लिया जायगा, तथापि सार्विक कर्म के विषय में त्याग शब्द के अर्थ में ग्रन्थकार कुछ वैशिष्ट्य रखते हैं । उक्त श्लोकों का अर्थ देखने से यह बात स्पष्ट है, विशेष विस्तार की आवश्यकता नहीं । इस प्रकार त्याग और अत्याग इन दो शब्दों में विशेष नहीं, केवल विरोधमात्र है । मे समझता हूँ, शङ्काकार महाभाग समझ जायेंगे; इस में विशेष पाण्डित्य की आवश्यकता नहीं है ।

अन्त में इतना ही इशारा देना पर्याप्त है कि कर्म करना न करना इन पक्षों में क्लेश का न्युनाधिक्य ही निर्णायक है । वस्तुतस्तु दोनों पक्षों का कर्म के सदोपपत्त में ही अन्तिम सात्पर्य है, अतएव कर्म त्याज्य ही है । कोई विषयव्यक्ति चाहे, तो उस में कौशलपूर्वक अनुष्ठान करने पर काम उठा सकता है । यहाँ पर एक लौकिक दृष्टान्त है—जैसे विरह्य दित्ता में वायु चलने पर भी मल्लाह लोग पात्र को विशेष तरीके से ताल कर, नाव को उघी और ले जाते हैं जिपर से वायु आती है । वही बात कर्म के त्याग और आत्याग के विषय में समझनी चाहिए ।

સંસ્કૃત — શ્રીમદ્ભગવદ્ ગીતા, ગોતાન્ધ્યાસ, બ્રહ્મસૂત્ર, લોકસંમતી,
શ્રી ૧૦૮ જગદ્ગુરુ, મહામંત્રદેવર, સ્વામી શ્રી વિદ્યાનંદજી, મહારાજ



સર્વદર્શન પરિત્યજ્ય માત્રે શરણં વ્રજ ; અહ ત્વા સર્વપાપેભ્યો મોક્ષવિખ્યામિ મા શુભ.

૧૧: ૭ મું }

કાશી જૂન ૧૯૪૨

{ અંક ૧ હો

ખાલલીલા

રૂરિ કાન્હ ગોવાર્ધન ચરિ ગેષા,
મધિ મધિ પિયો આરિ ચારિક મે ભૂખ ન જાતિ અષાતિ ન હેષા. ૧.
સૈવસિખર ચદિ ચિતે ચક્રિન ચિત અતિ દિન બચત કહો બચઐયા;
બોધિ લક્ષ્મ પદ ફરિ ચુવાઈ સુનિ કવ જેત પેત કુટિ હેષા. ૨.
બચદાહી રૂપિયત ફરિ તે આવતિ હાક પદાઈ મરી મેષા;
કિવકિ સખા સખ નચત માર ભયો કૂદત કપિ કુરગ હી નેયા. ૩.
જેસત ખાત પરસપર કદકત હીનત કદકત કરત રોગ રેયા,
'વચસી' ખાવકેનિ સુખ નિરખત વરપત મુખન સહિત સરસેયા. ૪.

— જો સ્વામી વૃદ્ધસીધાસ

નિજ સ્વરૂપ

(લે૦—ધર્મધુરંધર શેઠ રમણલાલ લલ્લુભાઈ)

પરમાત્માની કૃપાથી મનુષ્ય દેહ મલ્લો છે. અને આ મનુષ્ય યોનિમાં જે પુરૂષ પોતાનું સ્વરૂપ, નિજસ્વરૂપ, આત્મસ્વરૂપ, સ્વસ્વરૂપનું જ્ઞાન પ્રાપ્ત નહિ કરે, પ્રાપ્ત કરવાનો પ્રયાસ નહિ કરે તો કથી યોનિમાં આત્મજ્ઞાન પ્રાપ્ત કરવાનો છે ?

માટે આ મનુષ્ય યોનિમાં હું કોણ છું ? તે જાણવું, તે જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરવું, તે કરવા માટે શું કરવું જોઈએ તેની શોધ કરવી જોઈએ. અને આપણને જોગબવાનો પ્રયત્ન કરવો જોઈએ. આ જ્ઞાન મેળવવા આરંભ થાટન કરવાની જરૂર નથી, પરંતુ કોઈ એક મહાત્મા બ્રહ્મજ્ઞાની પરમ પુરૂષની શોધ કરી તેમને શરૂ કરી તેમની કૃપા મેળવી સત્સંગ કરી તેમને ઉપદેશ મળવું કરી જ્ઞાન પ્રાપ્ત થઈ શકે છે.

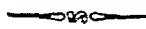
સત વસ્તુ શું છે ? અસત વસ્તુ શું છે ? તેનો પેદાજ જાણવો જોઈએ, નાશવંત વસ્તુઓ શું છે ? નાશરહિત વસ્તુઓ કથી છે ? તે જાણવા પ્રયત્ન કરવો, તેનો વિચાર કરવો જેથી જણાશે કે જગતમાં તમામ વસ્તુઓ કે જેનાં નામ હોય છે તે વસ્તુ નાશવંત છે, જગતમાં તમામ વસ્તુઓ જે બહારથી દેખાય છે તે અસત વસ્તુ છે એટલે જે વસ્તુ એકજ રહી તે, પ્રકાશ, જ્યોતિ સ્વરૂપ, ચેતન વસ્તુ નાશવંત નથી અસત નથી એટલે આ વસ્તુ તે નિજસ્વરૂપ પોતાનો આત્મા, ચેતન હિંચ-જ્યોતિ સ્વરૂપ.

મનુષ્ય દેહનો દેહ નાશવંત છે, એ દેહમાં રહેલી ચેતન આત્માએ ખરે સ્વરૂપ છે વિચારથી તેનું

ચિન્તન કરવું એટલે બાહ્ય વસ્તુઓ નાશવંત છે તેના ઉપર મોહ રહેતો નથી અને પોતાનો શુભ સાક્ષીરૂપ છે. તે સંકલ્પવિકલ્પ રહિત છે. અને સ્વ-સ્વરૂપાનંદના આનંદનું અમૃતપાન કરી પરમાનંદની આત્મિ મેળવે છે.

અને ઇન્દ્રિયોને વિષયમાં જોડતો નથી તેમ વિષયથી ખસેડતો પણ નથી, તેમ કર્મના કૃળ ઉપર સંકલ્પ વિકલ્પ કરતો નથી સ્થૂળ દેહના અભિમાનનો ત્યાગ કરી, પોતે કૈવલ્ય સ્વરૂપ, પરબ્રહ્મસ્વરૂપ છે તેનું જ્યોત્સ્વચિત્તથી મનન કરે છે.

સંસારમા રહીને જોગો જોગવતા છતાં સંસારી પેઠે વિચરે છે પરંતુ આસક્તિઓ રાખતો નથી સ્થૂળ સૂક્ષ્મના અભિમાનનો ત્યાગ કરે છે. પહેલાંમાં રહે છે. પોતાનો વેશ લઈ લે છે, નટની જેમ એક પ્રકારના વેશ પહેરીને અનેક જાતના તમાસાઓ કરે છે, તથાપિ હાનિ, લાભ, માન, અપમાન, હર્ષ શોક વિગેરેથી પર રહે છે. પોતાનું ક્રિયમાણુ શુદ્ધ અને સાત્વિક રાજે છે, પ્રારબ્ધના જોગ જોગવી રહે છે એટલે સ્વસ્વરૂપાનું સંધાનમાંજ તલ્લીન થઈ જાય છે. આ સ્થિતિને પહેચિલો પુરૂષ હું કોણ છું ? કયાંથી આવ્યો છું ? મારે ક્યાં જવાનું છે ? આ જાણના વિચાર કરી, જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરી દેહ ધારણ કર્યો હોવા છતાં વિદેહી રહી પરમેશ્વરના ધામનો અધિકારી બની પુનઃ સંસારમાં જન્મ લેવા સંનતો નથી અને પરમ પદને પામે છે. ઇતિ શુભ.



પુરૂષાર્થ વિચાર

(મે.—શ્રીમત્ પરમહંસ, પરિમાળકાચાર્ય અગ્નિષ્ઠ લોકસંમહી ગીતાંબાસ જગદ્ગુરુ મહામંડલેશ્વર શ્રી ૧૦૮ સ્વામી શ્રી વિદ્યાનંદજી મહારાજ.)

પ્રશ્ન—ત્રિવિધદુઃસાત્યન્તનિવૃત્તિરત્યન્તપુરુષાર્થ ।
(ત્રણે પ્રકારનાં દુઃખોની જે ઉપાયથી અત્યંત નિવૃત્તિ થઈ જાય તે પુરૂષાર્થ છે) અર્થિં દુઃખ શું વસ્તુ છે ।

ઉત્તર—પ્રતિફલવેદનીયં દુઃખમ્ ।
(જેનો અનુભવ વાસ્તવમાં પ્રતિફલ માલૂમ પડે તે દુઃખ છે) શાસ્ત્રકાર દુઃખની આવી વાખ્યા કરે છે.
પ્રશ્ન—શું સંસારમાં દુઃખજ દુઃખ છે, સુખ બીજાકુલ જ નથી ?

ઉત્તર—ગીતામાં કહ્યું છે—
મણુપેલ્ય પુનર્જન્મ દુઃસાલયમશારવતમ્ ।
નાનુવન્તિ મહાત્માન સસિદ્ધિં પરમાં ગતા ॥
(જે મહાત્મા પરા સિદ્ધિને પ્રાપ્ત છે અને મારો આશ્રય લઈને મને પ્રાપ્ત થાય છે, તેમનો આ અનિત્ય અને દુઃખમય સંસારમાં ફરીથી જન્મ થતો નથી.)

અને—
અનિત્યમમુલં લોકમિદં પ્રાપ્ય મત્રમ્વ મામ્ ।
(આ વિનાશી, સુખ રહિત લોકમાં આવીને માઈ બજન કરી) આ રહેડોમાં 'દુઃસાલ્ય' અને 'મણુલ' પડેલા સ્વાસ્થ્યથી તો કોજ વાત નજરે પડે છે.

પ્રશ્ન—સુખ ત્રિવર્તી ત્રિવિધં શ્યુ મે મરતર્થમ્ ।
(હે ભરત મેદ ! મારાં ત્રણ પ્રકારનાં સુખોનું વર્ણન કરે કું. તે સાંકળો) આ પલ્લ શ્રીતાનું જ પચન છે, એની શું ખતિ થયે ?

ઉત્તર—પ્રાણિમાત્રનું સર્વ જ્ઞાન આપેલુંક હોવાથી જ્યાં દુઃખ છે ત્યાં સુખ પણ અવરય છે. પરંતુ તે અલીકહોવાથી ગીતાનું કહેવું અસંગત નથી.

પ્રશ્ન—સુખ તો પ્રત્યક્ષ અનુભૂયમાન છે, તેનો અપહાપ કેવી રીતે કરી શકાય છે ?

ઉત્તર—મીતાનો પ્રધાન વિષય સાંખ્ય શાસ્ત્ર (પ્રકાશિયા) છે. સાંખ્યમાં મુક્તિ પુરૂષ વિવેક પ્રતિપાદ્ય છે, તેથી મુમુક્ષુ વિવેકીને માટે—

પરિણામત્પદુર્લભૈર્ગુણૈર્વિરોધાથ દુઃખમેવ સર્વં વિવેકિત ।

(પરીણામ દુઃખ, તાપદુઃખ અને સ્વસ્થર દુઃખને કારણે તથા સત્તાદિ ત્રણ યુદ્ધોની વૃત્તિથીનો આપસમાં વિરોધ રહેતો હોવાથી વિવેકી પુરૂષની દૃષ્ટિમાં સર્વ દુઃખજ છે અર્થાત્ અજ્ઞાનીને જે સુખ જેવું માલૂમ પડે છે તે પણ દુઃખ છે) એવો શાસ્ત્રનો સિદ્ધાન્ત છે. અમે લોકો તો જે અધિકારથી થઈ દૂર છીએ

પ્રશ્ન—
અગ્ન્યાસાદ્ રમતે યત્ર દુઃખાન્તં ચ નિગન્ધસિ ।
(સાત્વિક સુખ વારંવાર ભોગવવાથી મનુષ્ય તેમાં રમમાણ રહે છે અને તેના અર્થ દુઃખોનો અન્ત આવી જાય છે) સાત્વિક સુખની ગીતા આવી પ્રશંસા કરે છે એ તેને પણ દુઃખ તારીકેજ અવલું બોધે !

ઉત્તર—અમવાન યોગેશ્વર જેગીવંચીનાડુખત પ્રમાણે તો જે, જે બુદ્ધિ સત્વના ધર્મ છે તે, સર્વ

પ્રત્યય ત્રિગુણાત્મક હોવાથી હેય પદ્મમાંજ પતિતે થવા યોગ્ય છે. યોગ દર્શનના સાધ્યમાં 'આવરય જીવીપલ્લવ' સ્વાદ વાંચવાથી આ સિદ્ધાન્ત પર વધારે પ્રકાશ પડે છે.

પ્રશ્ન—પણ, દુઃખની જે ત્રિવિધતા છે તે કેવી રીતે ?

ઉત્તર—આધિભૌતિક, આધિદેવિક, આધ્યાત્મિક આગ દુઃખના ત્રણ પ્રકાર પ્રસિદ્ધ છે. ગીતામાં એવુંજ વિવરણ છે.

પ્રશ્ન—ત્રણેનું સ્પષ્ટિકરણ કરી આપશો ?

ઉત્તર—(ક)

કથં મીષ્મદ્ધં સદ્ભયે દ્રોણં ચ મધુસૂદન ।

શુભિઃ પ્રતિયોત્સ્યામિ પૂજાર્હવરિસૂદન ॥

(કે મધુસૂદન, જેમની પૂજા કરવી ભેદએ એવા વીર્ય અને દ્રોણને હું જાણુથી કેવી રીતે માફ) આ આધિભૌતિક દુઃખ છે. એટલું સમજવાની જરૂર છે કે જેમ ખીચડી રંધતા પહેલાં ઢાળ ચાખા જુલા કરી શકાય છે, પરંતુ રંધાયા પછીથી નહિ, તેવીજ રીતે ત્રણે દુઃખો પણ એક સરખાજ અનુભૂત થાય છે. કેવળ જન્ય જનક ભાવની પ્રધાનતાને લક્ષ્ય કરીને ત્રણ સંસાર આપવામાં આવી છે

(ગ) ગુરુનહત્વાહિ મહાનુભાવા-

બ્રહ્મેયો મોક્ષું મેક્ષ્યમપીહ લોકે ।

હત્વાર્થકામાંસ્તુ ગુરુનિદૈવ

મુક્તીય મોગાન્ રુધિરપ્રદિગ્ધાન્ ॥

(મહાનુભાવ શરૂએને મારવા કરતાં નિસા માગીને ગુજરાન કરવું સાફ છે. અર્થના લેણી શરૂએને મારીને જીવને જીવ મારે તેમનાં લેણીથી ખરડાએલા ભોગ ભોખવા પડશે) આ આધિદેવિકનું ઉદાહરણ છે. જેવી રીતે આધિભૌતિક દુઃખ ખાસ

કરીને અલભ્ય કોશથી જન્ય છે. તેવીજ રીતે આધિદેવિક દુઃખ પ્રાણભ્ય કોશનો વિષય છે.

(ગ) ન સૈતદ્વિદ્વાઃ કતરન્નો ગરીયો

ચદ્વા જયેમ વદિ વા નો જયેયુઃ ।

માનેવ હત્વા ન જિજીવિષામ-

સ્તેડવસ્યતાઃ પ્રમુલ્હે ધાર્તરાષ્ટ્રાઃ ॥

(અમારી જીવ થશે કે કૌરવોની, એમાં કંઈ સારી છે એ પણ અમે જાણતા નથી. જેમને મારીને અમે જીવવા માગતા નથી તે ધૃતરાષ્ટ્રના પુત્રો સામે ઉભેલા છે) આ છે આધ્યાત્મિક દુઃખ. એ ખાસ કરીને મનેમય કોશનું પરિણામ છે.

પ્રશ્ન—અગર દુઃખ દુઃખજ છે, તેના જનકની નિરપેક્ષતાજ અભિપ્રેત છે, ત્યારે ત્રિવિધતા શા માટે કહી ?

ઉત્તર—દુઃખપરિહારને ઉપાય (વેવેક અર્થાત્ પ્રકૃતિ પુરૂષનું વિજ્ઞાન—વિવેકેન જ્ઞાનમ્ વિજ્ઞાનમ્—હોવાથી તેનો કંમ સ્પષ્ટ સમજાવવા માટે એમ કહ્યું. જેમ કે તિત્તિરિ ઉપનિષદમાં ભૂશુના અનુભવનો કંમ જતાવ્યો છે—

અન્નં વ્રજેતિ વ્યજાનાન્, પ્રાણં વ્રજેતિ વ્યજાનાન્, મનો વ્રજેતિ વ્યજાનાન્, વિજ્ઞાનં વ્રજેતિ વ્યજાનાન્, આનન્દં વ્રજેતિ વ્યજાનાન્ ॥

(અન્નમય કોશ ધ્રુવ છે, પ્રાણમય કોશ ધ્રુવ છે, મનોમય કોશ ધ્રુવ છે અને આનન્દમય કોશ ધ્રુવ છે એવા જુથને કંમથી અનુભવ થયો.)

પ્રશ્ન—શું ગીતામાં આ પંચવિધતાનો ઉલ્લેખ છે ?

ઉત્તર—હાં છે, અ. ૨ શ્લોક ૭ માં વિજ્ઞાનનો ('નિચિત્તમ્' આ શ્લોકોક્ત પદ બુદ્ધિનું સૂચક છે) અને અ. ૨ શ્લોક ૮ માં આનન્દનો (શ્લોકોક્ત

‘શોક’ પદથી આનંદમય હોરા પ્રત્યે ઈસારો કરવામાં આવ્યો છે) ઉદ્દેશ છે. ’

પ્રશ્ન—સર્વ શાસ્ત્રકારો આ વિષયમાં એક મત છે કે સૂત્ર જોટું નાનું બની શકે તેટલું જ તેનું મૂલ્ય અધિક છે એટલે સુધી કે કોઈ સૂત્રમાં તેનું તાત્પર્ય અણુણુ રાખીને તેને ઘટાડી શકાય, તે સૂત્રકાર પુત્ર પ્રાપ્ત થવા જોટલો સ્વતોષ માને છે. ને એમ છે, તે સૂત્રમાં નિવૃત્તિ અને પુરુષાર્થ એ શબ્દોનું અત્યંત વિશેષણ વ્યર્થ માલમ પડે છે.

ઉત્તર—હુબની નિવૃત્તિ તો અમે પ્રતિષ્ઠા કરતા રહીએ છીએ, છતાં પણ તે આત્મનિષ્ઠી થતી નથી. આ સૂત્રની અનિરૂદ્ધ રૂપ ટીકાને કંઈક અશ અહિં જતાવવામાં આવે છે, તેથી આ વાતનો ખૂલાસો થઈ જશે.

તત્તુ દુષ્પતિવિત્તિ સ્વતઃ જ મનિવ્યતિ ।

[શૈલક સમય માટે રહેનારા હુ બની આવે-આપ નિવૃત્તિ થયો, તેને માટે ઉપાયો કરવાની શું જરૂર છે—આ હલીલનો ઉત્તર એ છે કે ખાસ ખાસ હુબની નિવૃત્તિને માટે તો કોઈ મતલબ નથી પણ હુબતાવરિછત્ત હુ બ નિવૃત્તિને માટે તો છે અર્થાત્ આગળ પણ કોઈ હુ બ ન આવતું એઈએ ‘કર્મ’, ‘અર્થ’, ‘કામ’, ‘મોક્ષ’ એ ચાર પુરુષાર્થ છે, પણ પહેલા ત્રણ આત્મતિક નથી, તે કાંઈ અને વિષય જન્ય છે મોક્ષ તેવો નથી, તે નિત્ય પ્રકાશરૂપ છે તેથી તો કહ્યું કે ‘અત્યંત પુરુષાર્થ’) ગીતાના અં ૧ શ્લો ૪ માં ‘કર્મરૂપ પુરુષાર્થ’ને ઉદ્દેશ છે, અં ૨ શ્લો ૫ માં ‘અર્થ’નો, અને અં ૨ શ્લો ૬ માં ‘કામ’નો.

પ્રશ્ન—મોક્ષનો તો બતાવ્યો નહિ, તેનો ઉદ્દેશ કયાં છે ?

—ઉત્તર—અં ૧ શ્લો ૭ માં પ્રાણેનું વશું ન

છ, “ચક્ષુષ્ય સ્માન્નિશ્ચિત્તમ્” અહિં નિશ્ચિત્ત એવ-નો અર્થ મોક્ષ છે, જેને પાપ અર્થાત્ કર્મ ફળથી છૂટવું કહી શકાય છે.

પ્રશ્ન—કર્મનું ફળ પુરુષ પણ ધાયા છે, શું તે પણ છોડવું પડશે ?

ઉત્તર—પ્રથમ તો ગીતા કહે છે કે—

‘સર્વાત્મા દિ દોષેણ ભૂમેનાશ્રિવાવૃતા ।

(જેવી રીતે ધુમાડા વગર અગ્નિ નહિ તેવી રીતે દોષો વગર કોઈ પણ કર્મનું અનુભવ થઈ શકતું નથી) અર્થાત્ પુરુષનો એક પ્રકારે અત્યંતાભાવ સરખો જ છે એના ઉપર અમર કોઈ એવી હલીલ કરે કે ગીતામાં અનેક સ્થળોએ મુક્ત, શુભ, પુરુષ ઇત્યાદિ શબ્દોના પ્રયોગ થયેલા જોવામાં આવે છે, તેમની શું દશા થયો ? એનું સમાધાન એ છે કે જે શુદ્ધિથી મુખને દુષ્પ કાઢીમાં ગણવામાં આવે છે, તેવી જ રીતે તકના બળ ઉપર પુરુષને પણ પાપ સમજી શકાય છે; પણ તે વિવેકીની દ્રષ્ટિથી

પ્રશ્ન—વાર, એ માની લીધું કે અંમને પાપ તથા પુરુષ બન્નેના ફળથી છૂટકારો મળ્યો, પરંતુ સાધકને પ્રત્યક્ષત શું લાભ થયો ?

ઉત્તર—એનું સમાધાન અં ૨ શ્લો ૮ માં છે. “તત્તત્તિ શોકમત્તમવિત્ત” (અદમશાની મનુષ્ય શૈલ સાગરને પાર કરી બધ છે) આત્મા સ્વયં આનંદ સ્વરૂપ હોવાથી ‘જહં મદ્માસિમ્’ એટલા જ્ઞાનથી તે તૃપ્ત થઈ જાય છે, તેને માટે કોઈ વસ્તુ પ્રાપ્ત કરવાની આડી રહી જતી નથી.

પ્રશ્ન—પુરુષાર્થ ચતુષ્ટયની આત્મનિષ્ઠતાનો પ્રસંગ ગીતામાં કયાં છે ?

ઉત્તર—

યત્ર ચોર્મેયરઃ કૃણો યત્ર પાર્યો યતુર્ધર ।

તત્ર શીર્ષિયો ભૂતિર્મુવા નીતિર્મર્મિમ્ ॥ -

(જે પક્ષમાં ચૈવેશ્વર શ્રી કૃષ્ણ છે અને ધનુ-
ધારી અર્જુન છે તેજ પક્ષમાં ધર્મ, અર્થ, કામ,
મોક્ષ એ ચારેય પુરુષાર્થ છે.) અહિ—

શ્રી થી — મોક્ષ,

વિજય થી — કામ,

ભૂતિ થી — અર્થ,

નીતિ થી—ધર્મને સમજવો, 'મૂવ' પદનો અન્વય
ચારેયની સાથે કર્યા છે. ગીતાના માહાત્મ્યમાં—

સર્વોપનિષદો ગાવો દોઘ્યા ગોપાલનન્દનઃ ।
પાર્યો વત્સઃ સુધીર્મોઽઘ્નઃ ગીતામૂર્ત મહત્ ॥
(સર્વ શ્રુતિયૌ ગાયો છે, ગોપાલસુત કૃષ્ણ તેમને દોહ-
નાર છે, પાર્ય અર્જુન વાછરડો છે અને સાધુજનો એ
કુધના લોકતા છે. તથા ગીતાજ મહા અમૃતરૂપ
કુષ છે) આ શ્લોકના 'મહત્' પદનો આત્યન્તિકતા-
માંજ સ્વારસ્ય છે. આ પ્રકારે ત્રિવિધ દુઃખની
અત્યંત નિવૃત્તિ થવી એજ પરમ પુરુષાર્થ છે.

બોધશક્તિ મા

(ભે—સત્યનિષ્ઠ શ્રીમત્ સ્વામી જ્ઞાનાનન્દજી સરસ્વતીના ઉપદેશ)

અનુવાદક અને પ્રેષકઃ—જયકૃષ્ણ શાસ્ત્રી કાવ્યતીર્થ

પ્રતિબોધવિદિતં મતમ્ અમૃતત્વં હિ વિન્દતે ।

જેનં ૮૦

પ્રત્યેક બોધમાં કે પ્રત્યેક જ્ઞાનમાં મા વા
આત્માને જાણવાથી અમૃતત્વ—મોક્ષને જાણી
શકાય છે. અર્થાત્ પ્રાપ્ત કરાય છે.

મા તમારા પ્રત્યેક બોધ કે પ્રત્યેક જ્ઞાનમાં
તમારી પાસે તમારાં માતા, પિતા, લાઈ જહેન,
સૌ, પુત્ર અને આત્મીય સ્વજનનું રૂપ લઈને, તમારા
લોગ્ય, આ જગતનું રૂપ લઈને, અજ્ઞ, જલ અને તેજ
રૂપ લઈને, નિયમિત પ્રકાશિત થાય છે. વા આવે છે.
પરંતુ તમે માત્ર પિતા, માતા, માત્ર જગત્, માત્ર
અજ્ઞ પ્રત્યાહિ બોલીને તે બધાને ભોગવો છો. તેથી
જ તમે નિત્ય પ્રકાશિતા માને એવા છતાં પણ
જોતા નથી. તમારું જ્ઞાન જે કાંઈને પ્રકાશ કરે
છે, જ્યારે તે બધાને મા વા આત્મા બોલીને
જોળખી શકશે અર્થાત્ સત્તા, ચેતન અને પ્રિય-
તાની તરફ તમારી જ્ઞાનદૃષ્ટિ બાંધી શકશે ત્યારે
માતૃબોધમાં—આત્મબોધમાં સારી રીતે બોધમય
થશે અને તમારો મનુષ્ય જન્મ સફલ થશે.

સાંભળો; તમારા નામ રૂપનો ત્યાગ કરો તો
પણ તમારો અસ્તિત્વબોધ અર્થાત્ તમે જે છો,
એ જ્ઞાનનો અભાવ થતો નથી, માટેજ તમે કે
તમારો આત્મા નિત્ય અસ્તિત્વવાન છે. ઉક્ત
અસ્તિત્વ અર્થાત્ તમે ચેતન છો, જલ કે મૃત નથી,
એ પણ તમે જાણો છો અને ઉક્ત ચિન્મય અસ્તિ-
ત્વ એ તમોને પરમ પ્રિય છે, એમાં કોઈ પ્રકારનો
સંશય નથી. તેજ આનન્દમય, ચિન્મય, નિત્ય
અસ્તિત્વ-સંવિગ્ધાનંદ સ્વરૂપ છે, તેના તરફ તમારા
જ્ઞાનને સ્થિર કરીને, જ્યારે બધાં કર્મો અને બધા
લોગો કરી શકો, ત્યારે તમે માતૃબોધમાં—આત્મ
બોધમાં ભગૃત થશો અને તમારા મનુષ્ય જન્મની
પરમ સાર્થકતાનો અનુભવ કરીને ધન્ય થશો.

જગત્ બોધ પણ તમે જ કરો છો અને માતૃ-
બોધ વા આત્મબોધ પણ તમેજ કરશો. બહુ-
જાણના અભ્યાસથી તમારો જગત્ બોધ ૮૬ થયો
છે, એ વાત સત્ય છે અને તમે સદસા જગત્ને
આત્મા બોલી શકતા નથી, એ વાત પણ સત્ય છે.
પરંતુ અભ્યાસ દ્વારા તો આજ, તમારી પાસે મા-

આત્મા જગત્ રૂપે પ્રકાશિત છે અભ્યાસ દ્વારાજ સત્ય જસતુને તમે મિથ્યા ધોલો છો અને મિથ્યા વસ્તુ કે જે ખરેજ મિથ્યા છે, તેની સત્તા નથી તેનેજ સત્ય માનીને વ્યવહારમય રહ્યા છો તે મિથ્યાબોધ, જડબોધ અને અનાત્મબોધના કવલ થી પોતાની રક્ષા કરવા ઈચ્છતા છો તો ઋષિ બા શુરેવાક્ય સાંભળો અને મનન કરી વ્યવહારમય થવાની યોજા કરો ઈશ્વારાચ્ય ઉપનિવદ્ધતા પ્રથમ મન્ત્રમાં મહર્ષિ યાગવલ્કયે શું બોલે છે સાંભળો—

ઈશ્વાસ્યમિદ્ સત્ત્વ વર્તુલિજ્ઞ જગત્વા જગત્।

આ જગત્મા જગત્નો જે કોઈ અથ તમારા જ્ઞાનમાં જગત્ રૂપે—બા નામ રૂપ ધોલોને માલમ પડે છે તે અચતુર્થ ઈશ્વર દ્વારા આવછાદન કરેલ છે ઈશ્વર ધોલોને જલો અર્થાત્ તમારા બોધને એવા આકાશમાં અપકારિત કરીને રાખેલ છે એથી તે ઈશ્વર સિવાય અન્ય કોઈ બોધ ન કરે અને તમારૂં જ્ઞાન જે ભાવનો પ્રકાશ કરે તેનેજ આ વા આત્માનો છત્રવેશ બહુને ઝોળખી શકે આ જગત્ને ભેઈ જમડીધરીને બોધ બાંસી ઉઠે પઢાયનો પડ અને અજ્ઞ માલમ પડે પરમ પડ—પરમાત્માએ સમસ્ત—વિશ્વ રૂપે અને પદાર્થ રૂપે પદરોપ કર્યો છે—અવતાર લીધો છે આ વિશ્વ મારી મા વિરવે થરી બવાની છે બધા ઉપનિષદોએ આ જગત્ ને જમડીધરી રૂપે ઉપાસવાનું—જલુવાનું કહ્યું છે

આ વિશ્વ વિરવેધરીનું સ્ફુલ્લરૂપ છે બધા નામ રૂપમાં એક માત્ર મારી માજ પહેલ છે અન્ય કોઈ કે કંઈ નથી બોધ યજ્ઞિમયી મા અનન્ત રૂપમાં પોતાનું રૂપ મેળવી પોતે અરૂપ છે અનન્ત નામમાં પોતાનું નામ મેળવીને પોતે અનામ સર્થ રહેલ છે અથવા માત્ર પાક્ય મનથી અતીત 'મૂ' અક્ષર સ્વરૂપે, અસ્તિત્વ રૂપે અવસ્થિત છે પણ કેવળ આધક પુત્રમણના મળળ આકર્ષણથી શુલ્લ

યુક્ત સર્થ "મૂ" મા યાય છે અને જ્યારે પુત્રમણ માને ભૂલી જાય છે ત્યારે તે લોકોથી પકડાઈ જવા માટે આ વિસ્વરૂપ ધારણ કરે છે કારણ કે નો મા પાક્ય અને મનથી અતીત રહે તો ભૂલેલા સન્તાનો ભણી શકતા નથી, તેથીજ મા ભવ-જગત્ કે ભવાની છે

તેમ સમુદ્રના કોઈ પણ ભાગને સ્પર્શ કરે, પણ જલનોજ સ્પર્શ યાય છે, તેમ અનન્ત નામ રૂપમાં કોઈ પણ નામ કે રૂપમાં ભગવતી ભવાનીને બોધ કરી બોધ યજ્ઞિમયી મા—આત્માને પ્રાપ્ત કરી શકે છે આમાં જરા પણ સંશય નથી કારણ કે બધા નામ રૂપ એક માત્ર ચિતિચક્ષિ વિશ્વ માતાનાંજ છે વિરવેધરીની આ વિરવેલીલા કેવળ પોતાના સન્તાનોને પોતામાં મેળવી દેવા માટેજ છે મહર્ષિ બ્યાસ પોતાના પ્રજાસૂત્રમાં કીક આજ વાત બોલ્યા છે

હાકવત્ત લીલકૈવલ્યમ્।

આ લોકવત્—જગત્વત્ લીલા તે કેવલ્ય માટે જ છે બોધ યજ્ઞિમયી માને બોધ દ્વારાજ પ્રાપ્ત કરવી પડે કારણ કે બોધ—જ્ઞાનજ બોધ કે જ્ઞાનને બણે છે, અન્ય કોઈ બહુ શકતું નથી મહર્ષિ યાગ વલ્કયે બુદ્ધકારણક ઉપનિષદમાં આજ વાત કહે છે એવેદ સર્વ વિજ્ઞાનાતિ તત્ત્વ વિજ્ઞાનીયાત્।

માજ માને બણે છે, અન્ય કોઈ બહુ શકતું નથી જે બહુલા જાય છે, તે માજ જની જાય છે બોધ કરીને તમે જીવ થયા છે તો ફરીને બોધ કરીનેજ શિવ બની બણો મા જની જલો આત્મા જની બણો એક માત્ર બોધસ્વરૂપ અને બોધયજ્ઞિમયતા મા સિવાય અન્ય કોઈ કે કાઈ નથી, એમ બહુને યાન્ત સર્થ ઉપાસના કરે।

મર્ચ સત્તિવદ્ જગ્ગ વજ્રહાનિતિ શાન્ત કલાલીત ॥

કે વતસલ

પ્રશ્ન

(પ્રે.—એક વિદ્યાર્થી, H. U. Benares)

‘ભગવાનનું વચન છે—

યદ્દૃષ્ટયા ચોપપન્નં સ્વર્ગદ્વારમપાદ્યુતમ્ ।

સુચિનઃ ક્ષત્રિયાઃ પાર્થલમન્તેયુદ્ધમીદ્રશમ્ ॥

તુલસીદાસજીની ચોપાઈ છે—

કરમપ્રધાન વિદ્યે રથિ રાખા;

જો જસ કિયા સો તસ ફલ આખા.

શંકા એ છે કે શું યદ્દૃષ્ટાને પણ સદિ

વ્યાપારમાં સ્થાન છે ? કર્મ ફળવાદની સાથે એની

સંગતિ કેવી ?

અને, સ્વર્ગદ્વાર કદિ આવૃત થઈ જાય છે.

ઉત્તર

(લે.—જ્ઞાનતપસ્વી શ્રી ગીતાનંદજી)

ગીતામાં ભગવાને જે કાંઈ કહ્યું છે, અર્જુન કૃત પ્રશ્નેના ઉત્તર આપવાને માટે અને શંકાઓનું સમાધાન કરવાને માટે કહ્યું છે. “યદ્દૃષ્ટયા” ઇત્યાદિ શ્લોક—ગુરુનહત્વા હિ મહાનુભાવન-

‘શ્રેયો મોક્તું મૈક્ષ્યમપીહ લોકે ।

હૃત્વાયંકામાંસ્તુ ગુરુનિદૈવ

મુઞ્જીય મોગાનુ રુચિર્પ્રદિગ્ધવાન ॥ -ગી. ૨૫ અર્જુનના આ શ્લોકના ઉત્તરમાં કહ્યો છે. અહિં યુધિષ્ઠિરની કયા અનુસંધેય છે. પ્રત્યક્ષ યુદ્ધ વ્યાપાર શરૂ થતા પહેલાં કાંઈ પણ કાર્યનો આરંભ શરૂ જનોના શુભ આશીર્વાદ પ્રાપ્ત કરીને કરવો જોઈએ, આ શિષ્ટ સંપ્રદાય અનુસાર યુધિષ્ઠિરે પોતાનું કવચ આદિ યુદ્ધ સાજા ઉતારી નાખ્યો અને નિનિત વેષમાં નમ્રતાથી ભીષ્મ, દ્રોણ અને શલ્યની પાસે ગયા અને તેમને પગે લાગીને યુદ્ધમાં જય મળવા માટે તેમની પાસે આશીર્વાદ માગ્યા.

ત્રણેએ યુધિષ્ઠિર આદિ સર્વ બાધોના અભિનંદન કરીને દુર્યોધનના પક્ષમાં રહીને લડવાનું કારણ એમ બતાવ્યું કે—

અર્ચસ્ય પુરુષો દાસો દાસસ્ત્વર્યો ન કસ્યચિત્ ।

હિ સત્ત્વં મહારાજ ચઢોઽસ્યર્થેન કૌત્સૈ ॥

હે યુધિષ્ઠિર મહારાજ, એમા સાચી હકિકત એવી છે કે સર્વ મનુષ્યો અર્થના શુભામ જાનીનેજ સ્વામી સેવક આદિનો વ્યવહાર કરે છે. અર્થ કાંઈની શુભામી કરવા માટે સ્વયં તો જતો નથી. એટલે તેથીજ કારણે અને અર્થ દાનમાં બાંધી

રાખ્યો છે, અર્થાત્ હું દુર્યોધન આદિની સાથે કૃતજ્ઞતાના બંધનથી બંધાયેલો છું.

(મહાભારત, ભીષ્મપર્વ, અધ્યાય ૪૩ શ્લોક ૩૫, ૫૦ અને ૭૬ જોઈ લેવા)

અર્જુન પણ કહે છે કે ભીષ્મ, દ્રોણ આદિ ગુરૂન્ન “મહાનુભાવ” છે. એવા સુયોગ્ય, કર્તૃત્વવાન, મહાપુરુષોને માટે પોતાનું ઉદર પોષણ કરવું તો એક ઘણીજ સાધારણ વાત છે. તેટલા માટે દુર્યોધન જેવા અન્યાયી રાજાનો આશ્રય લેવાની જરૂરીઆત નહોતી. પરંતુ તેમની સાથે ભીષ્મ આદિ ધર્મજ્ઞ સન્નજનોનો ભર્તૃભૂત્યભાવ સ્થાપિત થવો એ માત્ર દેવસંયોગ (યદ્દૃષ્ટા) જ હતો. દુર્યોધનનું પાંઠવો સાથે યુદ્ધ ઉપસ્થિત થવું પણ સંયોગનીજ ઘટના હતી. ફલતઃ ભીષ્મ આદિ પ્રકૃત અર્થમાં “અર્થકામ” નહોતા. તેમને માટે આ ધર્મસંકટ હતું.

પરંતુ તસ્તુ, કર્મ ફળવાદજ નિરપવાદ ચરમ સિદ્ધાન્ત છે.

અધર્મ્ય યુદ્ધ કરનારા ક્ષત્રિયોને માટે પણ સ્વર્ગદ્વાર આવૃત જ છે, પરંતુ અર્જુનને માટે આ યુદ્ધ “અધર્મ્ય” નહોતું, જો કે તે એમ સમજતો હતો અને એટલા માટે તેને “નરકદ્વાર” (રાત્યમુખ લોક રૂપ) સમજી બેઠો હતો. ભગવાને કહ્યું પણ છે—

ત્રિવિધં નરકસ્યેદં દ્વારં નાશનમાત્મનઃ ।

કામઃ ક્રોધસ્તાલોભસ્તસ્માદૈતત્તત્રયં ત્યજેત્ ॥

આકાશથી સૃષ્ટિની ઉત્પત્તિ

(ભે. — સ્વામી શ્રી આનંદાનંદ સરસ્વતી)

[અનુસંધાન ૫૦ ૬૮૬ થી આગળ]

“કિણ્ન” પુરૂષ તો એકજ છે પરંતુ આ જે વર્ણન આપી રહ્યું છે એ માત્ર તેના અંજના વિશાળોનું છે. પૃથ્વી જગ છે, જળ ભંડ છે, અગ્નિ પેટ છે, વાયુ છાતી છે. આકાશ માથું (Head) છે. સૂર્ય ચંદ્ર આંખો છે. ઇત્યાદિ પૃથ્વીથી લઈને આકાશ પર્યંત જે વર્ણન થયું તે એકજ પુરૂષનું થયું. પૃથ્વીમાં વધ છે. કપુરમાંથી જેમ ગંધ ઉડી જવાથી કપુર રહેતું નથી તેમ પૃથ્વીમાંથી ગંધ ઉડી જાય તો પૃથ્વી રહેતી નથી. કાચ જે પૃથ્વી અને ગંધ એકજ વસ્તુ છે તેમજ પાણીમાંથી રસ ઉડી જાય તો પાણી રહેતું નથી સૂઈની અરમીથી રસ પાતળો થઈને ગંધની રાશિ ઉડીને આકાશમાં એકઠો થાય છે અને વૃદ્ધિરૂપથી પાછો પડે છે અને સમુદ્રના ક્ષારથી પૃથ્વીને નવા અણુ મળતા રહે છે. અગ્નિમાં રૂપ છે એ રસ તથા ગંધને પાતળો બનાવી વાયુમાં મળવે છે અને વાયુમાં રૂપરી હોવાથી રસ, ગંધ અને રૂપને રૂપમાં કરી આકાશરૂપ શિરમાં પોચાકે છે અને આકાશમાં શબ્દ હોવાથી એ ચારે તત્ત્વને પોતપોતાની જગ્યા પર સ્થિત કરે છે. એવી રીતે આ શરીરરૂપી જગતનું વધવા ઘટવારૂપ રૂપાંતર થતું રહે છે અને રૂપાંતર થવાને લીધેજ એનું નામ જગત રાખવામાં આવ્યું છે. જ એટલે જન્મરૂ, મ એટલે (મરણ) મરણ અને જ એટલે (તથાસ્તુ) એમ વારંવાર થયું. એનું નામ જગત બાદી જગત એવી કૌંઈ વસ્તુ નથી. અનેક અવધવો મળીને શરીર બન્યું છે હાથ, પગ, નાક, કાન, આંખ

ઇત્યાદિ અવધવો જુદા કરીને એથી તો શરીર પણ નથી. જોત અથવા ઘડામાં મટોડી ન્યારી કરવાથી જોત અથવા ઘડો રહેતો નથી. જોત ઘડો અને અનેક વસ્તુઓ સંકલિત જગત એ સર્વ કલ્પિત નામ છે વાસ્તવમાં એજ “કિણ્ન” છે. એ વર્ણન રસોદ્ગમસુ કૌતેય પ્રભાસિ શશિસૂર્યયો એટલું થયું. હવે પ્રગલ્ભ સર્વવેદેષુ શબ્દ: સ્વે પૌરુષસ્તુ ઇં વર્ણન કરીએ.

સર્વ વેદોમાં પ્રણવ એટલે ઈંકાર હું હું. એજ પ્રણવ ઈંકારને બાલુવા માટે જે શાસ્ત્રો બનાવવામાં આવ્યા છે તેને વેદ કહે છે વેદ એ શબ્દ વિદ્ માત્ર પરથી નિકળ્યો છે વિદ્ (To Know) બાલુનું અને જેનાથી બાલુવામાં આવે તેને વેદ કહે છે. વેદ એટલે જ્ઞાન, ઈંકારથી જ્ઞાનની ઉત્પત્તિ થાય છે. તેથી વેદોને આદિ અક્ષર ઈં રાખવામાં આવ્યો છે તેટલા માટે વેદનું કથન કરવાવાળા એક પુરૂષોની શાસ્ત્ર નિષ્ણિથી નિયત કરેલી ઘર, ઘન અથવા તપરૂપ ક્રિયાઓનો સદા ઈં એવા પરમદાતા નામનો ઉચ્ચાર કરીનેજ આરંભ થાય છે. આ ઈં ને થોડી લોક એવી રીતે ઘટાવે છે કે રવાસ લેવામાં “સો” ઉચ્ચાર થાય છે અને રવાસ છોડવામાં “હમ્” ઉચ્ચાર થાય છે. સો એટલે તે (હંશર) અને મહમ્ એટલે હું, અર્થાત્ તે (હંશર) હું હું. સોમાંથી સ કાઢી નાખવાથી શો રહે છે અને હમ્ માથી હ કાઢી નાખવાથી મ્ રહે છે અને તેથી એને શમ્ કહે છે. સોદ્ગમ્ અને શોદ્ગમ્

ખંનેનો એકજ અર્થ થાય છે. અ ઉન્ એ ત્રણ અક્ષરોનો એક થયો છે. શાસ્ત્રકારોએ એને એક અક્ષરમાં સમાવેલો છે. અને તે અક્ષર છે.

આજે જન્મતાંજ જન્મને બાપ કરવા લાગી જાય છે. અર્થાત્ બાલક છે છે જન્મે છે. જેમ મરા મરા જપતાં જપતાં રામરામ થઈ જાય છે તેવી રીતે છે છે જપતાં મ્હોં મ્હોં થઈ જાય છે. મ્હોં એટલે મુખ. મુખમાંથી છે નિકળ્યો છે. એ છે ને ઉલ્લાસવાથી મ્હોં થઈ જાય છે. છે એટલે તે હું છું. તેનીને પુરૂષ સ્વનામ છે અને એ બોલનારને માટે ઉપયોગ થયો છે માટે તે બોલનાર તે હું (મ્હોં) છું. મ્હોં સુલ્લી બાણ હોવાથી માણસને એાળખી શકાય છે અને છે પાછલી બાણ એટલે ઉલ્લી બાણ હોવાથી એાળખી શકાતો નથી. કારણ કે માણસની એાળખાણ મ્હોંથી થાય છે તેથી મ્હોં સાકાર કહેવાય છે અને છે નિર્સાકાર કહેવાય છે. એજ મ્હોંથી અનેક શબ્દોની સૃષ્ટિ ઉત્પન્ન થાય છે. આપણે સિતારનો તાર જન્મના આલપથી મેળવીએ છીએ. સા પ સા આ ત્રણ મુરોથી સિતારનો તાર મળે છે. એ મુરોત્તર વજ્રન આગળ કરવામાં આવશે. એાઠને જરા ખુટકો કરી એક લાઇનમાં રાખવાથી જ ઉચ્ચાર થાય છે. એાઠની ગોલ આકૃતિ કરીને બોલવાથી ઉચ્ચાર થાય છે અને એાઠના બંધ હોવાથી મ્ ઉચ્ચાર થાય છે આવી રીતે મ્હોં ઉઘાડીને બંધ કરવામાં છે ઉચ્ચાર થઈ ગયો. એ કું ને એાળખવા માટેજ વેદની રચના છે. કું દાણુ છું એ બોલવા માટેજ ઉપનિષદોની રચના છે. પોતે પોતાને એાળખવો એજ ઈશ્વરને એાળખવાની ચાવી છે. અને તેથીજ ગીતામાં કહ્યું છે કે વેદોમાં પ્રભુવ અથવા ઈશ્વર હું છું.

આગળ કહે છે કે આકાશમાં શબ્દ હું છું. એ કયો શબ્દ હશે? આપણા શાસ્ત્રકારોએ “આકાશ” નામ રાખવામાં બુદ્ધિનો કેટલો ઉપયોગ કર્યો છે એજ ખુબી જોવાની છે. પૃથ્વી ગોળ છે, પાણી ગોળ છે અને તેમાં વ્યાપક પાવક અને પવન ગોળ છે અને જેમાં એ ચારે તરફો સમાયાં છે એ આકાશ પણ ગોળ છે. ગોળ વસ્તુનો આદિ મધ્ય અથવા અંત નથી. છતાં એનો આદિ મધ્ય અને અંત બાધવા માટે એક પોઇન્ટ રાખવું જોઈએ. એ શુન્યરૂપ ગોળ લાઇનમાં એક પોઇન્ટ કરીને કલમ ફેરવો અને જ્યાંથી કલમ ફેરવવાની શરૂ કરી લાંજ, ફરીને પાછી આવશે અને તેજ આદિ તથા અંત છે. આપ પૃથ્વી, સમુદ્ર અથવા આકાશની યાત્રા કરવા નિકળશે તો જ્યાંથી આપ નિકળ્યા હશે ત્યાંજ આવી પહોંચશે તેજ કેકાણે આદિ તથા અંત છે. તેથી આપણું મકાન એજ પૃથ્વીને છેડા ગણાય છે. એ શુન્યમાંથી આપણા શાસ્ત્રકારોએ અક્ષરોની સૃષ્ટિ બનાવવા માટે એના છ આવી રીતે આઠ વિભાગ કર્યાં અને એનું નામ પ્રકૃતિ રાખ્યું. એ આકાશના કોઈ ટુકડા યતા નથી પણ આપણે આપણી સુવિધાને માટે આઠ ભાગની કલ્પના કરી. અને એ આઠ પ્રકૃતિનાં નામ પૃથ્વી, જળ, અગ્નિ, વાયુ, આકાશ, મન, બુદ્ધિ અને અહંકાર રાખ્યાં. અને એ જુદા જુદા ટુકડાઓમાંથી અક્ષરોની સૃષ્ટિ બનાવી. એ શુન્યમાંથી અક્ષરો કેવી રીતે બનાવવામાં આવે છે એ વાત તો આપ પ્રાઈમરમાં પણ શીખી ગયા છે. અને હાઈ નોલેજ એટલે કોલેજમાં પાસ થયા પછી પણ ગ્રાન્ટહેન્ડ રાઈટિંગ, ટેલિગ્રાફિક રાઈટિંગ કેવી રીતે શીખવામાં આવે છે એ પણ આપને માલમ હશે. એ બધા અક્ષરોની મૂર્તિ શુન્યરૂપ આકાશમાંથી

મની છે અને ગીતામાં પણ એજ કહ્યું છે કે આકાશમાં હું "શબ્દ" છું.

અથવાના એક, બે, ત્રણ અથવા ચાર અક્ષરોનો સમુદ્ધ મળીને શબ્દ થાય છે. એવા અનેક શબ્દોથી દિક્ષનરી બરી છે. પણ આદિમાં આપણે "આકાશ" શબ્દની અક્ષર છે "અકશઃ" આ ત્રણ અક્ષરોનું આકાશ બન્યું છે. એ ત્રણ અક્ષરોમાં આદિ અક્ષર "અ" છે. દિક્ષનરીમાં પણ શબ્દોની રચના "અ" થી શરૂ કરી છે અને ગીતામાં પણ કહ્યું છે કે "અકુરાણં જ કારોસ્મિ" અક્ષરોમાં હું "અ" છું. માટે હવેથી ધરવરને આપણે "અ" નામથી યોગળીયું એ "અ" સર્વ અક્ષરોનો આદિ હોવાથી એની ઉત્પત્તિ ક્યારે અને કેવી રીતે થઈ એ કોઈ પણ શબ્દને માલમ નથી. એ "અ" કહે છે કે—

ન મે વિદુઃ સુરાણામ પ્રથમં ન મહર્ષયઃ ।

અદમ્ભારિદિં દેવાનામ્ મહર્ષિણ ચ સર્વશઃ ॥

દેવ કે ગણ અથવા મહાન ઋષિયો પણ મારી ઉત્પત્તિ બલુતા નથી કારણ કે હું સૌનો આદિ છું આ સદિમાં કોઈ પણ નહોતું ત્યારે પણ હું હોનો અને મારાથીજ એ બધા શબ્દોની ઉત્પત્તિ થઈ છે એ બધા શબ્દો અનેક પ્રકારની રમતો કરીને અંતમાં મારામાંજ મલી જશે દરેક શબ્દના આદિ અર્થ અને અંતમાં હું બધાજ થઈને રહું છું. જે મને અજ-અ, અનાદિ અને પ્રાણી માત્રના મદેશ્વર રૂપથી બાણી લે છે તે સર્વ પાપોથી મુક્ત થઈને મારામાં મળી જાય છે. એજ અને યોગળયો એ આત્મજ્ઞાન છે. જેને બધા પછી જગતમાં કઈ પણ બલુવાનું બાકી રહેતું નથી તેજ એ જ છે જરૂર એ જનું રૂપ નથી, રંગ નથી અને આકાશ પણ નથી. એને શી રીતે

યોગળીયું ? વિચારથી, કલ્પનાથી યોગળીયું. આકાશ પણ નિવાહાર છે તથાપિ ચિત્રકાર ભાગળની ઉપર કલ્પનાનો જી રંગ લગાવી દે છે જે ભોલાંજ આપણને જાન થાય છે કે આ જે જી રંગ દેખાય છે તેજ આકાશ છે. એ કે એ જી રંગનું ચિત્ર પણ કાલ્પનિક છે છતાં તે સાચા આકાશનો યોગ કરાવે છે છે. તેના માટે સમજો કે "અ" આને કહે છે. આ "અ" (ધરવરની મૂર્તિ) કલ્પનાનો છે, સાંધો નહિ કારણ કે યજુરાતી અંગાલી, હિંદી, ઉર્દૂ, દેમિલ, તેલુગુ, કનડી અને ઇંગ્લિશ ઇલાદિ સર્વ ભાષાઓમાં "અ" જુદા જુદા પ્રકારથી લખવામાં આવે છે. અમર એ સાંધો હોત તો એજ પ્રકારથી લખવામાં આવત દરેક ભાષામાં સૌએ અને યોગળયો માટે પોતપોતાની કલ્પના પ્રમાણે જુદી જુદી નિશાનિયો કરેલી છે. તથાપિ સર્વ ભાષાઓનો આદિ અક્ષર અ છે. એ હમારાથી થયેજ દૂર અને અલ્પ હોવાથી આપણે એને ત્રિભુજ રૂપ સર્વનામ લે કરીને સંબોધન કરીયે છીએ. તે ધરવર (અ).

એ અને યોગળયો માટે આપ રજુલમ બધા માસ્ટરે આપની સ્લેટરૂપ મંદિરમાં અની મૂર્તિનું સ્થાપન કહ્યું અને કહ્યું કે આ અને ઘૂટો (પુજન કરો) અ અ અ અ એવો બપ કરો અને એના ઉપર ખુબ ધ્યાન કરીને તમારા હૃદયમાં મેસાડો, બીભથી તુલના કરો અને મત્ર જુઓ કે "અ" એટલે અખરોડ. માસ્ટરે જ એટલે અખરોડ જખાળ્યો પણ એ મત્ર ખેલો છે કારણ કે અનો અથ અથ રોટ યો નથી અનો સાચો અથ તો "નહિ" એવો થાય છે. પણ માસ્ટરે જ એટલે નહિ મત્ર જખાવવાને બદલે અ એટલે અખરોડ કેમ જખાળ્યો? તેવીજ રીતે મંદિરમાં શમ શાંમ, કુખ્ય કુખ્ય, શંકરે

થયા. પણ એ બધા મુઠ્ઠા હતા. એમાં છવરૂપ સ્વર નહોતો, સ્વાસ નહોતો તેથી બધા સ્વરોએ પોતાના બાર સ્વરૂપોથી વ્યંજનોમા પ્રવેશ કર્યો અને તેમને પોતાના જેવાજ બનાવી દીધા એથી ફરક વ્યંજનના પણ બાર બાર સ્વરૂપો થયા. કન+ક, ક+આ=કા ઇત્યાદિ રીત પ્રમાણે બીજીસે વ્યંજનોનાં બાર બાર સ્વરૂપો થયાં. અને સ્વ' મળીને ૩૨+૧૨=૩૮૪ અને ૧૨ સ્વર મલીને ૩૬૬ અક્ષર થયા. એનું નામ અક્ષર એટલા માટે પડ્યું કે—સ્વરનો પ્રથમ અક્ષર જ અને વ્યંજનનો પ્રથમ

અક્ષર ક તથા હેકલો. અક્ષર શ' મલીને અક્ષર (આકાશ) થયું. ક+કા=કઃ તેથી અક્ષ' થયો. અને અથી કઃ સુધી સર્વ અક્ષરોને બાણી લીધા ત્યારે જ ઉત્પન્ન થયો. અને અક્ષ' જ એમાં વિસ-અ'નો લેખ થઈ "અક્ષર જ્ઞાન" થયું. એ વ્યંજનોની સાથે જ્યાં સુધી સ્વર સમિલિત છે ત્યાં સુધી એ અક્ષર (અમર) છે અને સ્વર નિઃશી જવાથી એનું તથા આપણું મૃત્યુ જણાય છે. આથી રીતે વ્યંજનોની સદિ ઉત્પન્ન થઈ.

(અપૂર્વ)

અલોક પ્રેમ

(વેખર — સિદ્ધરાય ખાતાભાઈ દેસાઈ)

। અસ્મિતામા પડી રહ્યાસ્વાત્મે આનંદ લેનારને 'પ્રેમ' એ વાત સમજવામાં આવે છે તે થયાઈ છે. એ પ્રેમનો પ્યાલો તે પીધાજ કરે છે, તે ધરાતો નથી તેમ તેને તુમિ પણ થતી નથી મે પ્રેમ અનુભવ્યો, મે અલોક પ્રાપ્ત કર્યો, એમ તે કહેવાને અસ-મર્થ છે. કહેનાર તો પ્રેમને પરિમિત બનાવી દે છે, પરિમિત કરે છે કેમકે કહેનાર કહેવાનું ને સાબળનાર એવા પરિચ્છેદ અથવા તો હોર વિના પ્રેમ કહેવાનું બને તેમ નથી અલોક અનુભવનારથી તો તે કહેવાય એમ જોઈ નહિં યાજાવડકથને પ્રકાશ સ્વરૂપ ત્રણવાર પુનઃ પુનઃ પુછતા છતાં પણ તેમણે જોનાજ ધારણ કરી રાખ્યું, અને જોનાકારે પ્રકાશ એકને ઉપદેશ કર્યો તેનું આ અલોકનું પણ સમજવાનું છે માટે પ્રેમનો પ્યાલો નિરતર પીધા કરવો, એનાથી કેઈ તુમ થયું નથી, એના મિત્રે કહેવાખ્યાન નહી, એનો અનુભવ વિશેષાદિ રહિત થયાં જ્યાં જોજ આનંદ છે

આધિ, માનસિક વ્યથા, રાગ દેખ, ક્રોધ, મોહ, આદિ જે જે અહ વૃત્તિથી ઉપજે છે તે સર્વ આધિ-મા સમાવવાનો ઉદ્દેશ છે. વ્યાધિમા ચરીરની બાધા વેદના કે ચરીરે હું સુકર હું ઇત્યાદિ મુખ્ય ભુદિ જે પણ અહ વૃત્તિનું દેહ સાથે તાદાત્મ્ય થવાથી ઉપજે છે તેનો સમાસ કરવાનો ઉદ્દેશ છે. અને સ્વભ્યતિરિક્ત એવા જે જે બાધા પદાર્થ સંભવાદિ સાથે અહ વૃત્તિનું તાદાત્મ્ય થતાં તેને પદાર્થાદિ રાગ દેખના કારણ થઈ આવે છે તે સર્વનો ઉપાધિમા સમાસ કર્યો છે. આધિ, વ્યાધિ અને ઉપાધિ એ ત્રણેનું કારણ અહ કાચ ને અભિમાન એના વિના બીજું જણાતું નથી, એમ આવી રીતે એ ત્રણેનો અર્થ કરવાથી સ્પષ્ટ થયુંજ, તો "હું અલોક પામ્યો છું" એમ કહેનારનામાં તેજ અભિ-માન વૃત્તિનો આવિર્ભાવ છે, અને તેજ આધિ વ્યાધિ ઉપાધિ ત્રણેનો અહાત્વાનક રૂપ અગ્નિ તેને ઉપભવનાર, સંગામનાર છે, હું અ કહેવાયિનું

નિહાન છે, તો તેનો શા માટે આશ્રય કરવો? જો અગ્નિ તો સળગી રહ્યોજ છે, ચાલતો જ છે. એમાંથી મુક્ત થઈને અલેદ પ્રાપ્ત કર્યો છે, તો પુનઃ અભિમાન ધારણ કરી, એના એ અગ્નિમાં ઘી હોમવાનું પ્રયોજન નથી. જો અગ્નિનું અતિ સૂક્ષ્મ કારણ જે અભિમાન તેને પણ પ્રેમરૂપી જળથી, છુજાવી નાંખવો. જોલાવી નાંખવો, અલેદ વૃત્તિમાં અહંવૃત્તિનું પ્રવિણાપન કરવું. “હું તે સર્વ અને સર્વ હું” જે રીતે અનુભવ કરવો, અને એમ પ્રેમનો ખ્યાલો પીધાં જવો, અલેદના વિવર્ત રૂપે સર્વને સમજી અલેદાનંદમાં વિશેષ થવા ન દેવો—એવા આનંદનો અવધિ નથી. એથી કેને વૃત્તિ થઈ છે?

જો નિરવધિ આનંદનો પ્રકાર એવો છે કે જેમ પીવાશે તેમ અધિકાધિક દીપ્તો ચાલશે, એનું પાન તો નિત્ય સહે સહે પીવું; ક્યાં મુધી પીવું? કે પીતે પીતે પડી જવાય, એનો નશો એવો આવી જાય કે જાન બૂલી ન પડી જવાય, વૃત્તિ માત્રનો વિલય થઈ જાય, વૃત્તિ વિસ્મરણ સમ્યક્ જે અનુભવ યાં, ત્યાં મુધી પીવું—જે વૃત્તિ વિસ્મરણ થયા છતાં પણ વળી ઉઠાય, ત્યાં સમાધિમાંથી વ્યુત્થાન યાં, તો ઉઠીને પણ પાછું એનું જે પ્રેમપાન પીવા માંદવું ને વળી વૃત્તિ વિસ્મરણ સાધવું—જે પ્રકારે પીતે પીનેજ પરમ પદ જે અવિશિષ્ટ અલેદાનંદ તે પામી શકાય છે—અનવધિ આનંદ અનુભવાય છે. જો આનંદથી કોઈ ધરાયું નથી, એનુંજ પાન કર્યાજ કરવું, અહંવૃત્તિમાં પડી વિરોધમાં જવું નહિ પીવા પીવા પુનઃ પીવા યાવન્ પતતિ મૂતલે। ડર્યાવ વ પુનઃ પીવા પુનર્જન્મ ન વિચતે। આ રહોક વામ માર્ગને અનુસરનાર મધ માંસાદિ પન્દુ-મહારની ઉપાસના કરનારા પોતાના મધપાનના

સૂત્ર રૂપે વારંવાર ઉચ્ચારે છે, પણ તેનો અર્થ બૌદ્ધિક મધ પીવા પરત્વે નથી. કેવલ ભાવગમ્ય જે અલેદ મધનું પાન છે તે પીવા ઉપર છે. વેદાન્ત શાસ્ત્રના પ્રેમ, અલેદ આદિ શબ્દોના સ્થૂલ અર્થ કરવાથી અનાયાર માત્ર ઉદ્ભવે છે. પ્રેમ ન્યાં મુધી કોઈ સ્થૂલ શરીરને અવલંબીને પ્રેમ કહેવાય છે, અલેદ ન્યાં કોઈ વ્યક્તિએને લક્ષમાં રાખીને મનાય છે ત્યાં મુધી સ્વછંદિતા, અનાયાર, અનીતિ, એ વિના બીજું કશું ઉદ્ભવવું નથી, પ્રેમાદિ નામો પોતાનાં સ્વાર્થનાંજ નામોત્તર છે એમ સ્પષ્ટ જણાઈ આવે છે; પણ જે પ્રેમ કોઈ પણ સ્થૂલના ઉપર દાંડ કરતો નથી, કેવલ ભાવ-ગમ્યજ છે, ભાવમાંજ પુષ્ટ થાય છે, ને ભાવમાંજ પરિપક્વ યાય છે, તે અલેદનો માર્ગ કરી આપે છે, ને પરમ પદે લઈ જાય છે. ખરી વાત છે કે જે સ્થૂલના સંસર્ગથી પ્રથમે પ્રેમનું સ્વરૂપ આંખને જડે છે, પણ જે પ્રેમ જો સ્થૂલના અભાવે પણ ભાવમાત્રમાં પુષ્ટ ન થઈ શકે, સ્થૂલતા ધીમે ધીમે વીસરી જઈ શુદ્ધ થતો ન જાય, એના દિવ્ય સ્વરૂપ-માં જે સ્થૂલ સંબંધરૂપ કચરો ભળેલો હોય તેને ધોઈ નાંખતો ન હોય, તો તે પ્રેમ નથી, જે એક સ્વાર્થ છે, મોહ છે, જ્ઞાન્તિ છે. ન્યારે પ્રેમ કેવલ ભાવમય થઈ રહે ત્યારેજ તે એક વ્યક્તિથી બીજી ઉપર, બીજીથી ત્રીજી ઉપર, અને એમ સર્વ ત્ર સમાન થઈ શકે, અને આદંતામય, હયામય, સર્વ મય, દુઃકય રસમાં વિલીન થઈ સ્વભાનને ભુલી, અલેદ અનુભવી શકે—પ્રેમમાંથી સ્થૂલતા કાઢવી, વેદાન્ત વચનોના સ્થૂલ અર્થને મૂકી ભાવરૂપ અર્થ અનુભવવો, જેજ આંટી છે, ને એમાંથીજ અલે-દનો માર્ગ છે.

આ જગતમાં આપણે જન્મ્યા, છુજ્યા, જન્મ-

પામી ગમે તે પ્રકારે પુનઃ યર્થવ્યવહાર કરી નિર્વાહ કરવા લાગ્યા, તેમા સુખ કયે ઠેકાણે હીકુ ? જે સ્થૂલ શાસનો આશ્રય કર્યો, જ્યાં જ્યાં સુખ માન્યું, તે તે થાત તો કેવલ અનિત્ય, મિથ્યા નીકળી અને સુખ માન્યું નહિ, એવા મુખોનો આશ્રય કરતા તો દેહ દમવાનોજ વખત આવ્યો, શરીરને જાણે હવડા પણ જોલવાય નહિ તેવા અગ્નિમા દાટીને સીજવવા માંડ્યું હોય તેવા દુષનીજ પ્રાપ્તિ થઈ તો તે પ્રમાણે આપણે દેહને યા માટે દમીએ છીએ ? એનું કારણ એટલુંજ છે કે પ્રેમને આપણે સમજતા નથી માટે દેહ સીજાય છે આપણે કહીશું કે આપણે તો અનેક ક્ષણે પ્રેમ કરીએ છીએ, આપણું ને પ્રેમ મળતો નથી, પણ એજ જોટો પ્રેમ છે, એ તો દેહ પાત્રનો પ્રેમ છે, સ્થૂલ કયસવાણો પ્રેમ છે, એનાથી કદાપિ પણ પીકા જાટકતી નથી, જે કેવલ જાવમય પ્રેમ છે તે અનુભવજો તો આનંદ વિના છીએ સંભવજ નથી એવા પ્રેમ વિના દેહને યા માટે દુઃખ પમાડો છે ? અહ જાવથી અલેક્સાન્ડરે વાતો કરવા છતાં સ્પષ્ટનો સ્પષ્ટ કરી અલેક્સે પ્રેમને યા માટે વિકારી કરી નાંખે છે ? મોન રહી એ પ્યારો પીધા જાઓ, એનાથી કોઈ ધરાતું નથી, જેણે જેણે એ પીધો તે યમીજ જમા છે

પ્રેમમાંથી સ્પૃહતા દૂર થયા છતાં સૂક્ષ્મ વિકારો પણ દૂર કરવા માટે વધારે વિચાર કરવાની જરૂર છે પ્રેમમા સ્પૃહતા કદાપિ ન રહે, શરીર સંભળ શરૂ, પણ સૂક્ષ્મ જતિઓ અહ મમની તે સહેજમા શરૂ નહિ ને તેથી પ્રેમ સાક્ષાત્કાર ન થાય અને

“હું” અલેક્સાન્ડરે પામ્યો’ એમ કહેવાની જતિ થઈ આવે તો માઈ અને તાઈ એવી સૂક્ષ્મ અહ મમત્વ ની વાસનાને મુકી દઈને પ્રેમભાવના માત્રમાજ વિદીન થઈ હું પણ પ્રેમ, માઈ પણ પ્રેમ એવી ભાવનાથી પ્રેમ માત્રજ ગાથા કરવો, એમ કરવાથીજ સૂક્ષ્મ વિકાર પણ નીકળી જશે, કેવલ પ્રેમમયતા અનુભવાશે એવો પ્રેમ ભાવ અનુભવી, એ પ્રેમલતા ને ચઢી, ને પ્રેમ રમ નિરતર જાત્યા કરો એની સીમા નથી, એનાથી તુમિ નથી એવી રીતે સ્થૂલ, સૂક્ષ્મ ઉભયથી વિરહિત જે પવિત્ર પ્રેમ તેનો મ્યાદો નિરતર પીધા કરો, એવા પવિત્ર પ્રેમમા કયા નિયમો હોતા નથી, એ પ્રેમ અમુક રીતે થાય, અમુક તેનો વિષય કહેવાય, અમુક તેની મર્યાદા કહેવાય, અમુક તેને પ્રતિક્રિય અનુક્રમ કહેવાય, એવા કયા નિયમ એમા હોતા નથી, નિયમો હોવા એ તો લેહનુજ પરિણામ છે, પુનઃ પ્રેમને અહિન કરવાનો માગ છે, સ્થૂલ સૂક્ષ્મ બલ પ્રેમમા પુનઃ નાખવા સરખું છે જ્યાં એવા નિયમ છે ત્યાં નિ સંયમ લેઈ પણ છે, ને જ્યાં લેઈ છે ત્યાં તો લેઈ માનનારા જમાયા છે, જાતિમા પડ્યા છે, દ્વેતભાવ ધારણ કરી સુખ, દુઃખ સમજાવાઈ અનેક કષ્ટ પર પરામા તણાયા છે એવા નિયમ, એવા લેઈ, એ કઈ આ પ્રેમમા સમજવું નહિ, “હું આ પ્રેમનો અનુભવનાર છું” એમ પણ જણવું નહિ, અને એ પ્રકારે પવિત્ર પ્રેમના નશાથી લેઈ માત્રનો અત્યંત વિલય કરી દેવો, લેઈ માત્ર ટાળી નાખવા, એમ થતાજ આનંદ પર પરાનો અનુભવ ઉદય થઈ મુજો રસ અનુભવાશે.

અર્જુને યુદ્ધ શા માટે કર્યું ?

(મં—વકીલ બાલાભાઈ નારણી બી૦ એ૦)

[અનુસંધાન ૫૦ ૮૦૫થી આગળ]

અર્થાત્ જે કરવું જોઈએ તે કરવા હું ઇચ્છતો નથી તેથી એક પાપ ; અને કાંઈ પણ કર્યા વીના કાંઈ પણ રહી શકેજ નહીં, તેથી હું પણ બીજું કંઈ (સ્વધર્મને છાજે નહીં તેવું કંઈ) પણ કરવાનો, તો તે પણ શાસ્ત્રે મનાઈ કરેલું નિસિદ્ધાચરણ જ હોવાથી બીજું પાપ લાગશે—આમ જોવડું—હજલ-પાપ કરવા હું તૈયાર થયો છું. અને ખરેખર જે તે બધું પાપજ ગણાય—પાપજ કરે—તો પછી પરી-ણામે હું દુઃખીજ થવાનો એ તો હીવા જેવું સ્પષ્ટ છે. અને હરેક મનુષ્ય તે સમજી શકે તેવી વાત છે, છતાં પાપ કરવાની અને તે કારણે દુઃખી થવાની ઇચ્છા કોણ કરે ? કોઈ પણ તેવી ઇચ્છા કરેજ નહીં અને તેવી ઇચ્છા ન કરે એ યોગ્ય અને સચુકતીક પણ છે. તેમ છતાં પણ મનુષ્ય પ્રાણી પાપાચરણ કરવા શા માટે ઇચ્છા કરતો હશે ? એ પ્રશ્ન સંસારનો એક મહાન કાયદો છે. પરંતુ કારણ વીના કાયં સંભવતુંજ નથી, ત્યારે અહીં પાપ પ્રતિત્તે-પાપાચરણની ઇચ્છાને કંઈ પણ કારણ તો હોવુંજ જોઈએ એ તો ખુદ્દું છે.

આ પ્રમાણે વીચારમાં અર્જુન ચડયો છે અને તેવે સમયે તે અચાનક નીશ્રય કરે છે કે ભગવાનનો મત ખરો હો કે મારો મત ખરો હો—તો પણ કોઈ પણ મતે પાપ એ એક સર્વ સાધારણ રીતે બને છે એમ નક્કી થાય છે.

ત્યારે હવે પાપ કરવાની મનુષ્ય પ્રાણીની આત-રીક ઇચ્છા નથી, છતાં પણ મનુષ્ય પાપ કરે છે.

એનું કારણ મારા બહુવામાં આવતું તથા માટે ભગવાનનેજ પૂછીએ—એમ એવો નીશ્રય કરીને અર્જુને ભગવાનને પ્રશ્ન કર્યો કે—હે ભગવન્ મનુષ્ય પ્રાણીને પાપ કરવામાં પ્રેરનાર—લગાડનાર હુદ્ કોણ છે ? અને અર્જુનનો આ પ્રશ્ન એ સંસારના હરેક મનુષ્યનો પ્રશ્ન છે, અને હોવાનોજ, અને એ સવાલનો ઉત્તર—જવાબ પણ હરેક મનુષ્યને જોઈએ છે આવી સ્થિતિનો વીચાર કરીને ભગવાને અર્જુનના ઉપરના પ્રશ્નનો ઉત્તર—જવાબ બીજા અધ્યાય ઠરલોકેક ઉપ થી આપ્યો તે એવો જવાબ કે—હે અર્જુન—રમેશુષ્ઠી જેની ઉત્પત્તિ છે, જે મોટો અકરાંતીજો છે; જે પોતે જાતેજ મહા પાપની મૂર્તી છે. એવો જે કામ—કોષ ઇત્યાદી કે જે મનુષ્યના દુદ્ધમાં—અંતઃકરણમાં—વીંકારોની પરંપરા ઉત્પત્ત કરે છે એજ મનુષ્યનો દુલ્લ વૈરી અને દુરમન છે—ચતુ છે—અને તેજ તને ત્યાં હરેક મનુષ્યને પાપ કરવામાં પ્રેરે છે—લગાડે છે—પાપ કરાવે છે.

એ જ દુરમનો—(કામ-ક્રોધ-લોભ-મોહ-મદ-મત્સર—) ની ટોળી એવી જળવાન અને એવી દુષ્ટ છે જે કોઈ એ રોજીના સપાટામાં અગર તે પેડી કોષ્ટના સપાટામાં આવી ચલ્યો તે લુટાયો અને મુલોજ સમજવો. તેમના સપાટામાંથી જાયવું દશ્નું મુશ્કેલ છે.

કામરૂપી ચતુએ મનુષ્યની જ્ઞાન શક્તિને કાંપી દીધી છે. જેમ ધુમાડાથી અગ્ની કંકાઈ જાય—

મેલથી અરીસો નીરૂપયોગી થાય અને જોરથી
જઈ દેહાવલો હોય તેવોજ રીતે એ અનુભવ આ
આ તુલ્યાદી કામ, જે અગ્નિની પેઠે કહી પણ
તુલ્ય થતો નથી સતોષ—પામનો નથી તે કામથી
તારૂ પણ જ્ઞાન દેહાઈ અધુ છે

આ કામ કોષાદી શુભોદયોદ્ધિયો મન અને
શુદ્ધિમા રહે છે અને તેમા રહીને જ્ઞાનને દાકે છે તે
જીવને મોહ પમાડે છે માટે એ અનુભવ જો તારે તે
શુભોદયી ભયલુ હોય—તેના સપાંગમાં આવતું
ન હોય તો પહેલ તો તું તારી ઈંદ્રિયોને વશ કર—
ઈંદ્રિયોને કાળુમા રાખ ને પછી કુદ કામ કોષને
નાશ કર—

જો બધી દુરમન ટોળીના કેવા પરાક્રમે છે—
જોનુ થાવું ક્યા છે—જો દુરમનોને સ્વભાવ કહે
છે—અને તે ટોળીનું વેર મુખ્યત્વે કોની સાથે
છે તે બધી બાબનો દુક્રમા મે તને ઉપર જણાવી
માટે એ અનુભવ હવે હું તને એક ચેતવણી આપું
છઉં કે—જેવું વ્યવસાય એક બાબ પર પડતો
સુક્રીને પ્રથમ આ દુરમન ટોળીનું નીકળન કહાડ—
તેને કાર કર

ઉપર પ્રમાણે તારીફ આપીનેજ ભગવાન અ/
ક્યા નહીં પણ ભગવાને અનુભવને એમ પણ
સમજાવ્યું કે જો તે દુરમન ટોળીનો તું નાશ નહીં
કરે તો પછી તારાથી આ સ સારમાં કઈ પણ મુખ
કામ—ચઈ શક્યે નહીં

છતાં તને સુઝ ન થડી હોય કે આ દુરમન
ટોળીનો કેમ નાશ કરવો તો હું તને રક્તો બતાડું
કે આત્મ સ્વરૂપને સ રી પેઠે જાણી તેનો આશ્વાસ
મેળવો, તે આત્મ સ્વરૂપનો આશ્રય હઈ કામ કોષ
બોગેર છ દુરમનની ટોળીનો નાશ કરી શકાય છે
માટે તે રીત મદજૂ કરીને તું તેને કાર કર એ
૧૦૮

પ્રમાણે આજા કરીને ભગવાને ગીતાનો ત્રીજો
અધ્યાય પુરો કર્યો છતાં પણ ભગવાન અને અનુભવ
ના ઉપર જણાવેલ સવાલ જવાબોના સંબંધમાં
કેટલાક વીચારો સ્ફુરે છે તેનો ઉદ્દેશ્ય અને કરવો
શોધ્ય થશે

જન્મ મરણ સંબંધે ઉપજ થતારો શોક આત્મ
તત્ત્વજ્ઞાનથી નિવૃત્ત થાય છે, અર્થાત્ તે શોકનું મૂળ
કારણ આત્મતત્ત્વ વંચેનું મનુષ્યનું અજ્ઞાન છે અને
આ મતલ સંબંધી અજ્ઞાનમાજ પાપનું મૂળ બીજ
છે એટલે મનુષ્યને કોઈ પણ પદાર્થની ઇચ્છા
થવાનું કારણ કે તે તે પદાર્થથી પોતાને મુખ થશે
એમ માનીને મનુષ્ય—તે તે પદાર્થ પર પ્રેમ કરવા
માટે છે અને જ્યાં જ્યાં મુખનું સ્થળ છે ત્યાં ત્યાં
મનુષ્યને પ્રેમ થાને પ્રીતી થાય છે એ તો અનુ-
ભવ સીદ્ધ વાત છે તે પોરણે જોતાં આત્મા જેવી
પદાર્થ પ્રેમ બીજ કોઈ વસ્તુ નથી મતલબ કે
આત્મા ઉપરનો પ્રેમ એ નિરંતરશય—નિરૂપમ અને
નિહેતુક હોય છે આ પ્રમાણેની સ્થિતિ છતાં
આત્મા એજ નિરંતરશય આનંદરૂપ છે, એમ
મનુષ્યો થા કારણે નથી માનતા, તેનો જવાબ
એટલેજ કે મનુષ્ય ખરી વસ્તુ સ્થિતિ સમજી
શકતો નથી આત્મા સંબંધી ખરી વાત કોઈએ
તેને સમજાવી નથી અને સમજતો હોય તો સમ
જ્યાં છતાં યાદાસ્તમાથી નીકળી ગઈ છે તેથી
મનુષ્ય આત્મ વિષયમાં કેવળ અજ્ઞાની કેળાય છે
અને તે અજ્ઞાનને હઈનેજ આત્મા જેવા અત્યંત
આનંદમયને આનંદમય બાંધી શકતો નથી અનુ-
ભવી શકતો નથી

સુક્રી એજ છે કે, આત્મા જ્યારે જવીનાશી છે,
ત્યારે તેનાથી મળતું મુખ પણ અવીનાશી છે, અને
આ વાત—આ સિદ્ધાંત જેને ભરામર મળે ઉતરે

તેજ આત્મરત થઈ શકે. અને જે આત્મરત થાય તેને પછી તર્ક્ય કાર્ય ન વિચારે (અં ૩ શ્લો ૩૭) કંઈ પણ કર્તવ્ય—કરવાપણું—રહેતુંજ નથી.

ઉપર પ્રમાણે વીચાર સરળીથી લેતાં—

અક્ષે ચેત્ મધુવિન્દેત કિમર્થં પવેતં જ્ઞેત્ ।

એટલે ઘરને ખુણેજ લે મધ મળતું હોય તો પછી પર્યંત ઉપર જવાની મહેનત કરવાની શી જરૂર—તેજ ધારણે લેતાં—

જે કંઈ સુખ મનુષ્યને લેઈએ તે તમામ સુખ આત્માની અંદર અક્ષયપણે ભરેલું છે પછી સુખ માટે બીજા પદાર્થોની ઇચ્છા કરવાની જરૂરજ નથી. અને જ્યારે બીજા પદાર્થોની ઇચ્છા કરવાની જરૂરજ નથી તો પછી તેવા બીજા પદાર્થો ગેળવવા માટે કંઈ પણ પ્રયત્ન કરવાની તો જરૂર હોય જ શાની.

અગાઉ બીજા અધ્યાયમાં ભગવાને સ્થિત-પ્રજ્ઞનાં લક્ષણો વળુંવેલાં છે તેમાં એક લક્ષણ એવું છે કે જે “ઇચ્છા તજે છે તે સ્થિતપ્રજ્ઞ થાય છે. પરંતુ ઇચ્છા તજવી તે કયા કારણે ? શા આધારે ? તેનો જવાબ એટલેજ કે આત્માની અંદરથી જે સુખ મળે છે, તે સુખથી મનુષ્યને સંતોષ-તૃપ્તી અને મનનું સમાધાન થઈ જાય છે, અને તેવી સ્થિતિ પ્રાપ્ત થતાં “ઇચ્છા” પોતાની મેળે છુટી જાય છે. માટેજ આત્મજ્ઞાની પુરૂષ વિષય—અને વાસનાથી રહિત બની શકે છે.

પરંતુ જે પોતાના આત્માની ઝોળખાણ પોતાથી થઈ શકે નહીં—પોતાના સ્વરૂપને પોતે પીછાણી શકે નહીં, તો પછી આત્મા સંબંધી અજ્ઞાનને લઇને—આત્મા શીવાયના બીજા કોઈ પણ પદાર્થની ઇચ્છા થશે અને તેવી અનાત્મીય ઇચ્છાને લીધે તે ઇચ્છા પુરી કરવા માટે પ્રયત્ન-કર્મ અને

તે પ્રયત્ન સફળ ન થાય, તે કર્મ ફળ ન આપે, તો તેના પરીણામે દુઃખ ઇત્યાદિની ઘટમાળ શરૂ થશે.

તે તમામનું મૂળ કારણ આત્મા સંબંધીનું મનુષ્યનું અજ્ઞાન જ દોષપાત્ર ગણાય અને તેવા અજ્ઞાનરૂપી દોષમાંથી ઇચ્છા ઉત્પન્ન થાય છે તે પણ દોષજ છે. આમ એક દોષમાંથી બીજો દોષ ઉત્પન્ન થાય છે. અને ઇચ્છાની પૂર્તીને કારણે પ્રયત્ન તે પણ ત્રીજો દોષ—અર્થાત અજ્ઞાનમાંથી ઉત્પન્ન થતું કંઈ પણ નિર્દોષ નથી.

સારાંશ એજ કે ઇચ્છા એટલેજ કામ. અને ઇચ્છા પ્રમાણે થયું તો લોભ વધે, અને ઇચ્છા પ્રમાણે ન થયું તો ક્રોધ ઉત્પન્ન થાય. આવી રીતે પડીપુ, કામ, ક્રોધ, લોભ, મોહ, મદ, મત્સર, એ છ દુરમનની ટોળી મનુષ્યના જીવને હ્રમેશાં ઘેરવા તાકે છે. તે છ દુરમનોમાં પણ કામ એટલે ઇચ્છા એજ મનુષ્યનો મોટો અને સુખ્ય દુરમન છે.

માટે આ સર્વ બાબતો બરાબર ધ્યાનમાં રાખીને તત્ત્વજ્ઞ પુરૂષ આત્મનીષ્ઠ-જ્ઞાનનીષ્ઠ અને નિવૃત્તિ પરાયણ થવા પ્રયત્ન કરે છે. અને તેને એમ જણાય છે કે જાણે સર્વે સુખો આત્મનીષ્ઠ થવામાં આવી ગયાં છે. આવી સ્થિતિમાં આપૂર્વ-માગમચલપ્રતિષ્ઠં (અં ૨ શ્લો ૧૬-૭૦) માં વર્ણવ્યા પ્રમાણે તેની સ્થિતિ થાય છે.

સારાંશ એજ કે (કામ) ઇચ્છા સાગ કર્યા વિના મનુષ્યને શાંતી મળવાની નથી. અને ઇચ્છાને સાગ એજ પાપનો નાશ. પણ ઇચ્છાનો ત્યાગ એ કેવળ આત્મનીષ્ઠ-આત્માનો આશ્રય કરનારથીજ બની શકે છે. આવી સ્થિતિમાં આત્મરત થવા કોણ ન ઇચ્છે ? સર્વાત્મા હિ દોષેણ (અં ૧૮ શ્લો ૪૮) એ વચનમાં કહ્યા પ્રમાણે સર્વ કર્મ—આચારમાં દોષ રહેલોજ છે અને તેવાં કર્મ અને

આચાર માટે વળી પાપપુન્યના વીભાગ મનુષ્યોએ ધરજ્યા છે. આ અર્થ પર પરા—કેવી—કારણ જ્યારે મૂળમાં જ કમ અને આચાર પોતેજ દોષથી ભરેલા છે તેમા અમુક કમ અગર અમુક આચાર પુણ્યમય કે પાપમય એ વીચાર સરસ્વી બરાબર નથી કારણ દોષથી ભરેલ કમ અને આચારમાંથી પુન્ય કે પાપ નીકળે તે પણ દોષના પટવાળાજ સમજવા

માટે આ અધ્યાયમાં કેવળ અનર્થના સંસારમા ભરેલો છે અને તેવા અનર્થને લક્ષમા લેતા દરેક મનુષ્યે આત્મનીક ધનુ એજ અનર્થમાંથી નીકળવાનો એકજ માગ છે

ત્રીજો અધ્યાય વીશેષતઃ કમ યોગના પ્રતિ-પાદનાયે છે એ યયો પરતુ તે ત્રીજો અધ્યાય વીચારો પ્રમાણિક અને સવચ્ચ હોવાથી તેના અતમા ઉવટના ભાગમા ઉવટના રલોકોમા ત્રીજા અધ્યાયને પણ કહેવું પડ્યું કે આત્મા એકલો યરજે જવા યોગ્ય છે અને મનુષ્ય આત્માને યરજે નાથ હારેજ અવિદ્યા—કામ—ક્રમ એ ત્રીયુગથી તેને છુટકારો મળે—

આ રહસ્ય ત્રીજા અધ્યાયે ઉવટ ઉવટ પુલ્કું કર્યું

હવે કમ કરતું જોઇએ તરપણનીએ પણ કમ કરતું જોઇએ સારે અઠાગીએ તો તે કમ નેર સોરથી કરતું જોઇએ એવો જી ભગવાનનો કમ યોગનો સીદાત હોત—એવું જી કમ યોગનું રહસ્ય ત્રીજા અધ્યાયનું હોત તો અને અર્જુનને ગળે તે સીદાત જીતયો હોત તે તો અર્જુન ત્રીજા અધ્યાયના અતજ એવી દેત કે કરિય વચન તય—જને સુદ માટે તેયાર થઈ જત

આ ત્રીજો અધ્યાય પુરો થતા પ્રવૃત્તિ નિવૃત્તિ ઉપર સર્વ પ્રકારનો ઉપદેશ પુરો થયેલો ગણાય તેથી બીજી કઈ પણ વધારે કહેવાયું—વધારે

ઉપદેશ કિરવા-પણ ભગવાનને પણ રહું નહોતું અને કોઈ પણ પ્રથમ પ્રાચીન પદ્ધતી પ્રમાણે સમાપ્ત કરવી વખતે જે ઉપદેશ પર પરા અથવા સપ્રધાય કમ અથવા પ્રામાણ્ય—રસજ્ઞાઈ કહેવો પડે છે—તે રીકાચાર પણ ભગવાને ત્રીજા અધ્યાયના અંતે કરી લીધો

અને અધ્યાય ૪ ના રલોક ૪ માં અર્જુનને જે પ્રશ્ન છે તેથી સપ્રધાય સ્મરણ એ ચોથા અધ્યાયના આરભે કરે છે પરતુ બીરીરીતે જો અર્જુન નો પ્રશ્ન અધ્યાય ૪ રલોક ૪ માં જલુલેલો ન હોત તો ચોથા અધ્યાયના શરૂઆતના ત્રણ રલોકનું સપ્રધાય સ્મરણ એ ત્રીજા અધ્યાયના અંતના રલોક રલોકો ગણાત

ચોથા અધ્યાયમાં પણ કમ યોગ અને જ્ઞાન યોગ અજ વીષય છે. આપણે હવે તે વીષયનો વીચાર કરીયું પણ તેમ કરતા પહેલા એક સાધારણ ભાવનનો વીચાર પ્રથમ કરી લઇએ ચોથા અધ્યાયના પહેલા ત્રણ રલોકમા યાગ એ એક શબ્દ આવેલો છે અને તેની પાછળ હમ્ એ હર્ષક સવનામ વપરાયેલું છે ભગવાન કહે છે કે આ યોગ મે પ્રથમ સૂચને કર્યો આ વાકમાં ભગવાને “આ યોગ” એવો શબ્દ વાપર્યો છે તે કયા યોગ માટે વાપરેલો હોવો જોઇએ ? એટલે તુરત પાસેના ત્રીજા અધ્યાયમાં કહેલા “કમ યોગ” માટે તે શબ્દ વાપર્યો છે કે ત્રીજાના પહેલાના ત્રીજા અધ્યાયમાં જલુલેલ “સાખ્યયોગ” અને ત્રીજા અધ્યાયમા જલુલેલ “કમ યોગ” મળી જે પ્રકારના યોગ માટે—ભગવાને “આ યોગ” એવો શબ્દ વાપર્યો છે ? એવો કદાચ કોઇને યશય થાય તો તેનો પ્રલાસો એ છે કે સૂર્વ, મનુ, ઇન્દ્રવાકુલ્યાદી રાજા રિશ્યોને ભગવાને જે યોગ કહ્યો હતો તે પરતુ તે

કયો યોગ કહ્યો હોતો તે જાણવા આપણી પાસે કંઈ સાધન મોજુદ નથી. પરંતુ ભગવાન પોતે કહે છે કે જે પરમ રહસ્ય મેં સૂચ્યું મનુ ઇક્ષ્વાકુ—વીગેરે રાજાઓને કહેલું તેજ રહસ્ય હું તને કહું છઉં.

આ સ્થીતિમાં ભગવાને ચોથા અધ્યાયની શરૂઆત પહેલાં ત્રણ અધ્યાયોમાં અર્જુનને જે જે સંજ્ઞાઓ છે તે તપાસતાં આપણને એમ પ્રત્યક્ષ દેખાય છે અને તે એ કે—

એક તો “સાંખ્યયોગ” બીજો “કર્મયોગ” એવો બે પ્રકારનો યોગ ભગવાને કહ્યો છે, અને તેવી સ્થીતિમાં ઉપર જણાવેલ સૂચ્ય વીગેરે રાજાઓને પણ તેવોજ યોગ ભગવાને કહેલો હોવો જોઈએ એવો ચોક્કસ અભિપ્રાય આપણે ગાંધી શક્તિએ છીએ. વળી બીજા અધ્યાયને “સાંખ્યયોગ” એવું નામ જો કે અપાએલું છે તો પણ તે બીજા અધ્યાયમાં પણ “સાંખ્યબુદ્ધિ” અને “કર્મયોગ બુદ્ધિ” એવા બે વીધયો ચર્ચાએલા છે. અને ત્રીજા અધ્યાયને “કર્મયોગ” એવી સંજ્ઞા આપવા છતાં તેમાં તો સાંખ્યયોગથી કર્મયોગનો અંત આવે છે એમ દર્શાવેલું છે.

મુદ્દો એજ કે “જા યાન” એટલે કે વળ કર્મ યોગજ એવો અર્થ લેવાનો નથી પરંતુ કર્મયોગ અને સાંખ્યયોગ એ બંનેનાં સમુચ્ચયરૂપ તે યોગ એવોજ અર્થ ખરી રીતે સંભવે છે—

लोकेऽस्मिन्-द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयाऽनघ ।

(મં ૩ રતો ૩)

એ વાક્યનો વીચાર કરતાં ઉપર જણાવેલ શંકા લેશ માત્ર પણ રહેતી નથી. અર્થાત્ પૂર્વે ભગવાને જ્ઞાન યોગથી સાંખ્યનીષ્ઠા અને કર્મયોગથી કર્મ-

નીષ્ઠા એવી બે પ્રકારની જે નિષ્ઠા કહેલી છે તેની સાથે હ્રમં વિયત્વતે (જં ૪ રતો ૧) એ શ્લોકનો ધરાબર મેળ પડી જાય છે. જો કે આ ચર્ચાએ કંઈ જાહેર મહાવનો ભાગ નથી તેથી આટલેથીજ તે ચર્ચા સમાપ્ત કરીએ છીએ અને હવે આપણે આગળ વીચાર કરીએ.

આ ચોથા અધ્યાયમાં અર્જુનના પ્રશ્ન ઉપરજ ભગવાને પોતાના પરમેશ્વરત્વની અને અવતારીત્વની વાત કહી. અને તેમ કહેતાં કહેતાં સાથે સાથે એમ પણ સૂચન કર્યું કે અગાઉ ઘઈ ગયેલ મુશુક્લ પુરૂષો સૂચ્ય મનુ-ઇક્ષ્વાકુ ઇત્યાદીઓ જેવી રીતે કર્મનું આચરણ કર્યું છે તેવી રીતે વર્તમાન અને ભાવી મુશુક્લોએ પણ કર્મનું આચરણ કરવું જોઈએ અને આવો ઉપદેશ અર્જુનને જ્યાં અધ્યાયનરૂપ માં શ્લોકથી પહેલીજ વાર ભગવાને કર્યો કે—

કુરુ કર્મૈવ તત્માત્મ્યં પૂર્વઃ પૂર્વતરં કૃતં ।

આ શ્લોકના ભાવાર્થ માટે મહાન વીદ્વાનોએ ઘણીજ વીદ્વતાપૂર્વક ચર્ચા કરી છે તે પૈકી ભગવાન ભાષ્યકાર શ્રીમદ્ આચ શંકરાચાર્યની ચર્ચા જોઈએ. તો ભગવાનનો ખાસ ભારવાચક શબ્દ ઉપરના શ્લોકમાં કુરુ કર્મૈવ “તું કર્મકર” એવો છે. ભગવાન શંકરાચાર્યે એ શબ્દનો ખુલાસો કરીને એમ જણાવ્યું છે કે આ શબ્દથી શ્રીકૃષ્ણ ભગવાને અર્જુનને એમ સ્પષ્ટ કહ્યું છે કે હે અર્જુન તું સ્વસ્થ-ચૂષ બેસીશ માં. સંન્યાસ પણ લે જેમાં કર્મજ કર ને કર્મ કરજ. તને આત્મજ્ઞાન ન હોય તો ચિત્ત મુદ્ધિ અથે કર્મ કર તું તત્ત્વવેત્તા હો તો લોક સંગ્રહાયે કર્મકર”.

(અપૂર્ણ)

શ્રી મુકુંદરાજકૃત પરમામૃત

(મં. — વામનરાવ પ્રા. ૫૨૯ બી. એ એચ. એચ. બી. (મોમ્સે) એચ સી. પી (હાન)

એમ. આર. એચ ડી. (હાન) સેલીસીટર.)

[અનુસંધાન ચતુર્થ ૫૦ ૬૬૯ થી આમળ]

પ્રકરણ છઠું.

હારણ કેહ નિરસન.

ન જાણું તે જ્ઞાતાશાસ્ત્ર;

છે તે મિથ્યા ભ્રમભાવ;

રૂપના સર્વ અવયવ

હાથને જેમ હોય છે. ૧.

પાતે પાતાને જ્ઞાતા,

સૈવ છે સર્વથા;

ન જાણ્યાની અવસ્થા,

કહેનાર નહીં તો ક્યાંથી ? ૨.

પાતે પાતાજે જાણે ખરે,

નડે અજ્ઞાન તો એ અચર ૧

એ અજ્ઞાન અલગ ખરે,

કહો કોણ નિરખે ? ૩.

નથી જાણતો એવું જાણું;

ન-જાણનારે નથી જાણું;

મારે ન જાણ્યું જેણે જાણ્યું;

તેજ આત્મા. ૪.

પાતાત્રં જાણવાપણું,

મહે છે અજાણવાપણું;

૧ = જ્ઞાન + અજ્ઞાન અજ્ઞાન જેને કહે ૧ જી અજ્ઞાન

૫૫' ૧૫ કહેવામાં આવશે

૨ = સહ પાતપાતાને જાણુ છે જ્ઞાતા અમુક અમુક તે નથી જાણતો (કદા જિવમાં ચતુષ્કર્મીમાં) એમ કહે છે તે

તેથી આ જાણવાપણું;

શાય છે જેને તેને. ૫.

પાતે પાતાને ના જાણીએ,

તેને અજ્ઞાન એ કહીએ;

અજ્ઞાન જાણ્યું કહેવાએ,

ને અજ્ઞાન શ્રાંતી કરે. ૬.

એ જાણીએ અજ્ઞાનને,

તો અજ્ઞાન મિથ્યા બને;

ન પછી એ ઉરે તેને,

કહો જ્ઞાન થા આત્મ પ્રભા. ૭.

પાતાને ન જાણે તે ઘ;

એ પાત જાણે છે તે હું;

તો કેવળ ન જાણ્યામા હું,

ક્યાંથી સમાધા ? ૮.

હું આત્મા સ્વય પ્રકાશ,

ત્યાં ન જાણ્યું એ મિથ્યાશાસ;

તે દળતાં હ અવિનાશ,

સ્વતઃ સિદ્ધ. ૯.

૩ = એ નથી જાણતા એની આજ્ઞાને જાણ શાય છે તે જ્ઞાન સ્વરૂપનું જ્ઞાન છે તેથી તે અજાણ્યપણું, અજ્ઞાન મિથ્યા છે

૪ = પાતાને નથી જાણતો એ જાણનાર હું જ છે તો હું ન જાણનાર એટલે કહત અજાણ્યમાં અજ્ઞાનમાં જ એમ કહા મારે માનવું ?

એ સર્વને જે જાણે,
 પોતાને શું ન તે જાણે ?
 જાણવું પણ ન—જાણે,
 હોય છે કે નહીં ? ૧૦.
 એ અજ્ઞાન છે કારણ,
 સ્થૂલ સૂક્ષ્મનાં નક્ષી જાણ;
 સ્થૂલ સૂક્ષ્મ કાંઈ જાણ;
 એ અજ્ઞાનનાં. ૧૧.
 સ્થૂલ દેહની જાણત સહિ,
 સૂક્ષ્મ દેહની સ્વપ્ન સહિ;
 કારણની સુષુપ્તી સહિ,
 કહીશું સર્વે. ૧૨.
 મન પ્રવર્તે ઈન્દ્રિય દ્વારે,
 બાહ્ય વિષયોયાં વિચરે;
 અવસ્થા, જાગૃતી ત્યારે,
 જાણવી નક્કી. ૧૩.
 અંતરના તે આલાસથી,
 મન કલ્પના કરે મધીન;
 સ્વપ્નાવસ્થા ખરી ત્યારથી,
 રચાય છે ત્યાં. ૧૪.
 પણ જે એ અવસ્થાની તો એ,
 જાણ એકની એક એ;
 જાણની જગ જાણ જાણે,
 નવ સુષુપ્તી ઘન અજ્ઞાન. ૧૫.

અજાણજ તે જાણ છે,
 પણ ભાવ ઉલટો થરે છે*
 અજ્ઞાન વશ પોતે છે,
 ના સ્મરે તેથી પોતાને. ૧૬.
 પોતે પોતાને વિસરી ગઈ,
 ને ભાસ પ્રપંચનો કલ્પતી થઈ,
 ‘હું જીવ’ ભૂલે ભટકાઈ,
 સુષુપ્તી એ. ૧૭.
 ક્રીડે અજ્ઞાન તે-જ્યારે,
 પ્રકટ સ્વયંભૂરૂપ ત્યારે;
 મિત્રજી આખ થાતાં ઉરે,
 જ્યમ સુવર્ણ શુદ્ધ. ૧૮.
 અવસ્થા માત્રના અભિમાનની,
 છે વ્યવસ્થા જુદાં નાગની*;
 વ્યવસ્થા “પ્રાણ” નામની,
 કારણ દેહની તેવી છે. ૧૯.

ઇતિ શ્રી કારણ દેહ નિરસન નામ
 પદમ પ્રકરણમ્ સંપૂર્ણમ્

૭=જાણ (જાન) પોતેજ અજાણ રૂપ કારણ કરે છે.
 ૮=જેમ સોનીની મઠીમાં દિણકટ સોનાનો ભેજ
 (કચરો) બળા જાય એટલે શુદ્ધ સોનું રહે છે તેમ.
 ૯=જાગૃત તથા સ્વપ્નાવસ્થાના અભિમાની અનુક્રમે
 વિશ્વ તથા તૈન્મય છે તેમ કારણનો અભિમાની ‘પ્રાણ’ છે.

૫=પ્રવર્તન મા મહેતત કરી.

૬=એ જાણ જ્યારે ઊંઘમાં થતી થઈ જાય જ્યારે.



ભારતીય સ્વધર્મ

(ભે-—શ્રી રવિરામજી)

શ્રેયાન્સ્વધર્મો વિગુણ પરધર્મોત્કલ્પસ્થિતાત્ ।

સ્વધર્મે નિપત્ય શ્રેય પરધર્મા મયાવહ ॥

—ગી• ૨૧૨૪

શ્રેયાન્સ્વધર્મો વિગુણ પરધર્મોત્કલ્પસ્થિતાત્ ।

સ્વમાવનિયતં કર્મ કુર્વન્નાપ્રોતિ કિલ્વિપમ્ ॥

—ગી• ૧૮૪૭

મતલબ કે હર હાલતમા સ્વધર્મનું આચરણ જ શ્રેયસ્કર છે, અહિં સ્વધર્મને બતલવ કરતાં “આત્મ પ્રકાશ” સંબંધે છે વાસ્તવિકપણે એટલે તે માનવ સ્વધર્મ સાચો છે પણ નહિ. આ મહાન ધર્મને પ્રકાશ બે ઠાયા આ પૃથ્વી ઉપર ચમકેલા હોય તે તે ભારતનાજ ધર્મશ્રેષ્ઠ, સમષ્ટિ હૃદયકાયા માજ. ચાંતિ, કાંતિ, આનંદ, ચેતન, જ્ઞાન, વિજ્ઞાન, સદાચરણ વગેરે તે આત્મ પ્રકાશનાજ અંગ છે. જેણે ભારતીય હૃદય અને કૌતિક પ્રકૃતિને બહારીને દિવ્ય બનાવ્યા હતા અને આ નાથવતી જીવન તથા સૃષ્ટિનેજ સ્વર્ગભૂમિ બનાવી હતી. જ્યાં સુધી મનુષ્યને આત્મ પ્રકાશ—આત્મ જ્ઞાન થતું નથી ત્યાં સુધી તે પોતાને ચરીર, મન, ભુલિ વગેરે માને છે અને અનંત માયિક આધુરી ધર્મનેજ સ્વધર્મ માનીને આ જીવન અને આ સદિમા પાળવા કરે છે આધુનિક સૃષ્ટિ, તેના નિયમ કાયદા, તેની શાખાઓ જેટલી ફેલાયલી છે—

મયસોદૃષ્ય પ્રમુનાત્સ્ય જ્ઞાવા ।

ગુણપ્રવૃદ્ધા વિવચપ્રવાલા ।

અર્થમ મૂળાન્યનુમંતતાનિ

કર્માનુચચીનિ મનુષ્યલોકે ॥

—ગી• ૧૨૯

બીજી પણ આ ફેલાયલા આધુનિક અસ્વત્ય (અ=નહિ+ત્ય=કાલ+ત્ય=સ્થિર=જે કાલ સુધી ન ટકે=અનિત્ય) વૃક્ષની અનંત શાખાઓ—

જીઓ ગીતા ભ૦ ૧૬ શ્લોક ૭ થી ૨૨ સુધી

એણે આજ પૃથ્વીમા સર્વજ્ઞ પોતાનો પ્રભાવ ફેલાવી દીધો છે—ભારતના ‘આત્મસ્વભાવ’ મા પણ એજ વૃક્ષની શાખાઓ ચડનના વૃક્ષનીજ પેઠે પાણવામા આવી રહી છે. તેમના ફલ, અને શાખાઓ તેના જીવનમાં રાજ કરી રહી છે અને તે તેમને લોગવી રહ્યો છે પરંતુ યોગેન્દ્ર જગવાન શ્રી કૃષ્ણ ભારતના સ્વભાવ અને ધર્મમાં તેમની પ્રતિષ્ઠા થવા કેવાનું ચાહતા નથી. તેથી તે તેમણે—

વદા વદા હિ ધર્મસ્ય મ્હાનિર્ભવતિ ભારત ।

અશ્વત્થામપર્મસ્ય તદાત્માનં સૃજામ્યહમ્ ॥

પરિજાણાય સાધૂનાં વિનાશાય ચ હુષ્કતામ્ ।

ધર્મસંસ્થાપનાર્થાય સંભવામિ યુગે યુગે ॥

—ગી• ૧૮૭૮

હલકી શ્રેણીનું માયિક જીવન પણ સ્વિકાર કરીને દિવ્ય જન્મ અને કર્મને સર્વોત્તમ અર્થ ડેખાડ્યો છે તે નથી ચાહતા કે ભારતના દિવ્ય આત્મ સ્વભાવમાં આધુરી અને માયિક અજ્ઞાન સૃષ્ટિની પ્રતિષ્ઠા થાય. ભારતની આ બ્રહ્મતિ અને જે કાર્ય ઉત્પત્તિ તેણે પ્રાપ્ત કરી છે—તેમનીજ શક્તિ અને કૃપા છે આ બ્રહ્મતિ સ્વમ નથી ભારતીય જીવનમાં જેટલું કષ્ટક—પીડા ભણા દોષ, કુરિયાતો, અપૂર્ણતાઓ, કંઈ ખમય જીવન આદિ જે કાર્ય—કેળાઈ રહ્યું છે તેણે સમજવું એકાએક કે મારા જે સ્વધર્મ નથી અને એ તો મુગમા પણ છે જ નહિ

સ્વધર્મની મહત્તાને જુદી જાણે તેણે પરધર્મજ
શ્રદ્ધા કર્યા છે. જેટલા ખેલ—શાખાઓ જણાઈ
રહી છે તે જ્ઞાને જોણે આજ દ્રષ્ટિથી જોવી પડશે.
ચાહે તેમનું બાહ્ય રૂપ સુવર્ણના ઘડા જેવું ચમકતું
કેમ ન હોય. પણ તેણે સમજી લેવું જોઈએ કે
તે સુવર્ણ પાત્રમાં પણ ઝેરજ ભરેલું છે.

હવે તેણે શું કરવું જોઈએ? ફરીથી આત્મ-
વિકાસ, સ્વધર્મ પ્રાપ્તિ અને ભગવત્ સૃષ્ટિ નિર્માણ
માટે માધિક વિકાસ સૃષ્ટિથી વિરૂદ્ધ માર્ગનું અનુ-
સરણ કરવું જોઈએ અને હૃદયમાં જે અહંકાર
રાજ્ય કરી રહ્યો છે કે મારીજ શક્તિ, જ્ઞાન આદિથી
આ સર્વ થયું છે તેનો ત્યાગ કરી ભગવાન શ્રી
કૃષ્ણનો યોગ સાધન અહિંથીજ પ્રારંભ કરવો
જોઈએ. જ્યાંથી કે અહીંને અહંકારનો લાગ
કરીને પ્રારંભ કર્યો—

કાર્પણ્યદોષોપદતત્સ્વભાવઃ

પ્રચ્છામિ ત્વાં ધર્મસંમૂલચેતાઃ ।

ચન્દ્રેયઃ સ્યાન્નિશ્ચિન્નં શ્રદ્ધિ તન્મે

શિષ્યસ્તેડહ શાપિ માં ત્વાં પ્રપન્નમ્ ॥

—ગી. ૨૭

અમર અહંકારનો ત્યાગ કરી માનવ હૃદય-
વિકારી પરમ શૂંચતાએ શૂંચ ભગવાનનું શિષ્યત્વ
શ્રદ્ધા કરવાને માટે સર્વાંગથી હૃદય પ્રસૂતું કરી
દેવું જોઈએ અને યોગેશ્વર ભગવાનના યોગમાં
ભાગ લેવો જોઈએ—આત્મજ્ઞાન અને તેના સ્વભા-
વોનેજ જીવનમાં સ્થાન આપવું જોઈએ.

આજ મુખી જે જીવન સ્વધર્મરૂપે માનીને મોહ
સૃષ્ટિનું પોષણ, નિર્માણ કરવામાં આબંધુ છે, ભગ-
વાનના આત્મજ્ઞાન વિષયક ઉપદેશથી તેને જુદી
જવું પડશે. હવે “મોવાદા મોષકર્માનો મોષદાગા
વિષેતમઃ । રાક્ષસીમામુરિ” મુદ્ધતિનો આશ્રય નહિ
આશ્રય નહિ શ્રદ્ધા કરવો જોઈએ.

ભગવાનની કડક વાણી—

ન માં દુષ્ટતિનો મૂઠાઃ પ્રપચન્તે તરાચમાઃ ।

માયયાપહૃતજ્ઞાના આસુરં ભાવમાશ્રિતાઃ ॥

—ગી. ૭૧૫

સાંભળીને, જહદીમાં જહદી તેમની ચરણાંગતિ
શ્રદ્ધા કરીને, તેમના અધ્યાત્મ યોગ અને પ્રકાશને
પ્રાપ્ત કરી તેમની મહત્તી ઇચ્છા પૂર્ણ કરવી જોઈએ,
કેમકે તે સિવાય તે (માનવ શિષ્ય) અહીંનું સદા
તેમનો મુહૂર્ત સાથી હોવા છતાં પણ તેમને ન
જોળખી શક્યો. (જુઓ ગી. ૨૦ ૧૧૪૧, ૪૨)
ન તો તેનું સાધન પણ પ્રારંભ કરી શક્યો.

ન રુપમસ્યેહ તથોપલભ્યતે

નાન્તો ન ચાદિર્નં ચ સંપ્રતિષ્ઠા ।

અન્તત્તમેનં સુવિરુદ્ધમૂલ-

મસદ્ભાવેણ હૃદેન ક્ષિત્ત્વા ॥

—ગી. ૧૫૪

જેનું યથાર્થ રૂપ જોવામાં નથી પ્રાપ્ત થતું, જેના
આદિ, મધ્ય અને અંતનો પત્તા નથી લાગતો, તે
ખટુ નીચે ઘણે ઉટે મુખી ગયેલા અન્તત્ત મૂલનાં
મૂળને કાપવાનું દંડ અસંગ (અસહયોગ) કડક
શસ્ત્ર ભગવાન આપી ગયા છે. તેમનેજ અપનાવી
ગીતાની સાચી સાધનાઓનું આધ્યાત્મિક જીવનમાં
સંગઠન કરી શ્રદ્ધાસાધકાર કરવો તથા આ આશુરી
સૃષ્ટિનો અંત લાવીને ઇશ્વરી સૃષ્ટિનેજ તેની અંદર
ખેંચી આણવી જોઈએ. ભગવાનની મહા શક્તિઓ,
તેમનું યોગિક કર્મ કૌશલ અહંકાર માત્રનો નાશ
કર્તા વગર રહેશે નહિ.

સર્વધર્માનં પરિત્યજ્ય મામેકં દારણં વ્રજ ।

અહં ત્વા સર્વેપાપેભ્યો મોહવિપ્ર્યાસિ માનુષઃ ॥

—ગી. ૧૮:૧૬

પરંતુ—

“ગણિતઃ મર્ચંદુર્ગાણિ મત્પ્રસાદાત્તરિપ્સિ ।

યદ્દંકારમાશ્રિત્ય ન શોપ્યસિ વિન્નંસ્વમિ ॥”

શાન્તિઃ શાન્તિઃ શાન્તિઃ

કળિયુગમાં ભક્તિ માહાત્મ્ય

(ભે. — શ્રી વાસુદેવજી શાસ્ત્રી તૈલગ, યુગ વેગ વિચારક)

કળિનાં સર્વોત્કૃષ્ટ આદ્ય દસ હબરણોમાં ત્રિવિધ ભક્તોની ઉત્પત્તિ થાય છે તેમાં પ્રથમ તેઓ છે જે કર્મજ્ઞા, મનસા, વાચા પ્રભુભક્તિમાં તટસ્થી રહે છે બીજા તેઓ છે જે કુળ પર પરાધી પ્રાપ્ત ભગવદ્ધર્મનું પરિપક્વ કરતા આસ્થા આપે છે અને ત્રીજા તેઓ છે જે સદ્ગુણના વાક્યો ઉપર વિશ્વાસ રાખીને ભગવદ્ધર્મમાં સુમિલિત થઈ જાય છે તેથી ભગવદીયતાને કારણે આ ત્રણ પ્રકારના ભક્તો ઉપર કળિને પ્રભાવ પડતો નથી જે છાવ ભગવાનને આશ્ચર્ય ન થઈને કળિનાં કૃત્યોમાં ફસાઈ જાય છે, તે અન્ય કાગ પર્વત નરકનું કાળ્ય ભોગ્ય છે તેમનો ઉદાર ઈશ્વર કૃપાકટાક્ષ વખરે થઈ શકતો નથી એટલા માટે આશા છે કે—

કૃતે યદ્વધાયતા વિષ્ણુ પ્રેતાયા યજતા મયૈ ।

કલૌ સદ્ધરિકીર્તનાત્ ॥ કલ્પોપનિધે ॥

એટલાજ માટે તો મહાપ્રભુ શ્રી વલ્લભાચાર્ય' છએ કહ્યું છે—

સર્વમાર્ગેષુ નદેષુ કલૌ કૃષ્ણ યવ ગતિર્મમ ।

વેદ શાસ્ત્રસાર છવેને ભક્તિ દ્વારા કૃષ્ણાણુ માર્ગ પર આરૂઢ કરાવવા માટે શ્રી વલ્લભાચાર્ય' છ આદિ વિભૂતિયો દ્વારા જે ભક્તિ માર્ગની પિજ્ય પતાકા ફેરકાવવામાં આવી, એવો સ્વર્ણ સમય ભગાઈ કહિ પણ પ્રાપ્ત થયો નહોતો, કળિમાં તો આવો સર્વોત્તમ ભક્તિ માટે અનુકૂળ સમય કહિ શકાયો નથી અને આવશે નહિ

યમ યાગ, જપ, વ્રત, યોગ, સમાધિ આદિના અનુષ્ઠાનની વસ્તુઓ કળિ ક્ષિપ્ત થઈ જાય, ૧૯૬

અર્થાત્ વેદ સિલિત પદાર્થ યથાધીગ્ય નહિ મળવાથી એટલે કે એ સૌના અપ જાની જવાથી હવે એકમાત્ર સરળ સાધ્ય ભક્તિજન કલ્યાણ માર્ગનું સાધન રહી જાય છે એટલે એવા સિકટ સમયમાં શ્રી હરિને આશ્ચર્ય લૌકિક પારલૌકિક કલ્પનાના સિદ્ધ થઈ જાય છે

આ પ્રકારે આ યુગમાં જે ભક્તિજન એક પરમ પુરુષાર્થ સાધન માનવામાં આવ્યું, તો વેદોક્ત વર્ણાશ્રમ ધર્મનું આચરણ નહિ કરતાં જ ભક્તોને શાસ્ત્રોક્ત પ્રાપ્તિ થાય છે કે નહિ, અમર લાગે છે તો ભક્તિની પરમ પુરુષાર્થતા કું રહી અને નથી લાગતું તો તેનું કારણ કું, ઈત્યાદિ ન્યાયે થકા ઉઠે છે, તો તેનું સમાધાન વેદ, ગીતા, ભાગવત, બ્યાસ સૂત્ર આદિ અનુદ્ય પ્રમાણોના સિદ્ધાન્તોને વિચાર કરવાથી સહેને પ્રાપ્ત થઈ જાય છે એનો નિર્ણય સર્વ આજ સંદેહવારક શ્રી ભાગવતના એકાદશ સ્કંધના અધ્યાય પાંચમાં કહ્યો છે—

દૈવર્ષિમૂતાભનૃણા પિતૃણા

ન કિદ્ધરા નાયમ્ણી ચ રાજન્ ।

સર્વાભિનાય શરણ શરણ્ય

ગતા મુકુન્દ પરિહૃત્ય દુરાત્ ॥

જે મનુષ્ય સર્વાત્મ ભાગથી સર્વ પરિભાગ પૂર્વક શરણાગત વતસલ ભગવાનનું શરણ દિવકરે છે, તેને માટે કોઈ પણ લૌકિક વૈદિક કર્મ કરવાનું બાકી રહી જતું નથી, તે મનુષ્ય દેવ, રૂપિ, પિતા આદિ કોઈને જુગ્મી રહેતો નથી કેમકે સર્વ મુગ્ધ મૂત શ્રી ભગવાનના પ્રસન્ન સ્વામી તેમના અશરૂપ સમુપત દેવ આદિ પ્રમત્ત થઈ જાય છ

શાસ્ત્રોમાં કહ્યું છે—

‘ન તસ્ય કાર્યં કરણં ચ વિચિતે ।’

‘નૈવ તસ્ય કૃતેનાર્થો નાકૃતેનેહ કચ્ચન ।।’

જ્ઞાનનિષ્ઠ પરમલક્ષ્ય કહે છે—

‘સંધ્યાવન્દન મદ્રમસ્તુ ભવતે મો જ્ઞાન ભુખ્યં નમઃ ।

હે દેવાઃ પિતરશ્ચ તર્પણવિધૌ નાહં ક્ષમઃ ક્ષમ્યતામ્ ॥

યત્ર કાપિ નિદાપયાદવકુલોત્તંસસ્ય કંસદ્વિપઃ ।

સ્મારં સ્મારમઘં હરામિ તદ્દલં મન્યે કિમન્યેન મે ॥

વેદમાં જે કાંઈ છે, વેદ જેનું પ્રતિપાદન કરે છે કે

‘અસ્તીત્યેવોપલબ્ધવ્ય’ અને જ્યારે તે અગિન્ય

ધર્મશ્વર અમને સર્વત્ર મળી રહ્યા છે અર્થાત્ “સર્વ

‘તત્ત્વિદં બ્રહ્મ” આ પરમ વાક્યની યથાર્થતા અનુ-

ભવી રહ્યા છીએ, તો પછી લૌકિક વૈદિક માર્ગની

દૃષ્ટિ મતલબ

યાવાનર્થ ઉદ્ધવાને સર્વતઃ મંચુતાંદકે ।

નાવાન સર્વેષુ વેદેષુ બ્રાહ્મણસ્ય વિજાનતઃ ॥

જે જે ચાર માઈલ ઉપર ચારે તરફ સ્વચ્છ,

મીઠું પાણી ભરપૂર ભરાએલું છે તો પછી દોરી

લોટો લઈને કુવો શોધવા નીકળે એવો કોણ હોય

એવીજ ભક્તની દશા પણ સમજવી.

ગદિ શ્રીમેકુલાધીશો ધૃત સર્વાભિના હૃદિ ।

તતઃ કિમપરં બ્રહ્મ લૌકિકૈર્વૈકૈરપિ ॥

શ્રી ભગવાન કહે છે—

નાવત્કર્મણિ કુર્વાત ન નિર્વિયંત યાવતા ।

મત્કથાન્નવાણી વા શ્રદ્ધા યાવન્ન જાયતે ॥

અર્થાત્ ભગવત્ કથાના શ્રવણ, મનન આદિ

દ્વારા શ્રદ્ધા ઉત્પત્ત થયા પછી જ્યાં સુધી પૂરેપૂરી

લોક વિરક્તિ ન આવી જાય, ત્યાં સુધીજ ભક્તિ

(અને લોક વિરક્તિ) ના અધિકારીને લૌકિક વૈદિક

કાર્યોની આવશ્યકતા છે, પૂર્ણ લક્ષ્ય કે પૂર્ણ વિરક્તિ

યઈ ગયા પછી મનુષ્યને કોઈ બંધન રહેતું નથી.

ભાગવતના—

જ્ઞાનનિષ્ઠો વિરક્તો વા મદ્ભક્તો યાનપેક્ષકઃ ।

સલિહ્વાનાશ્રમાંસ્ત્યક્ત્વા ચરેદવિધિગોચરઃ ॥

ધાર્યાદિ શાસ્ત્ર વચનોથી સિદ્ધ છે કે પૂર્ણ

લક્ષ્યને જ્યારે કોઈ પ્રકારનું બંધન નથી તો પછી

તેને કમ ન કરવાનો પ્રત્યવાય પણ લાગી શકતો

નથી. અગર એવા કોઈ દોષ આવે પણ છે તો

તેઓ તેનું ભગવદ્ ઇચ્છાજ કારણ માને છે. જેમ

ગીતામાં—‘ઈશ્વરઃ સર્વભૂતાનાં.....’ ‘તમેવ શરણં

ગચ્છ....’ અહિં ભગવાન સમજ્યા કે અણુ ન કંઈ

બીજાજ ઇશ્વરને ન માની ઘેરે તેથી ફરીથી

કહે છે કે—મનના ભવ મદ્ભક્તો મયાજી માં નમસ્કૃત

સર્વધર્માન પરિત્યજ્ય મામેકં...અને એથી આગળ.

‘અપિચ્છેસુદુરાચારો’ મજતે માં.....’

આ શાસ્ત્ર વચનોની સંગતિથી એજ તાત્પર્ય

નીકળે છે કે ભગવદ્ લક્ષ્ય શાસ્ત્ર અર્થાદિ વિદ્ય

કઈપણ આચરણ કરતા નથી અગર ભગવદ્ પ્રેર

ણથી કોઈ નિષિદ્ધ કમ યઈ પણ જાય છે તો તેનો

દોષ તેમને લાગતો નથી. ભગવાન તેને સર્વથા

નિરત કરી નાખે છે.

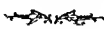
આ શાસ્ત્રીય સિદ્ધાન્તથી કળિયુગમાં ભક્તિની

સુચ્યતા, અને સર્વ સુલભતા તથા ફળદાયકતા

સિદ્ધ યઈ જાય છે. કેમકે—

મક્ત્યા કૃણઃ પુરસ્થિતઃ

મક્તિદ્રોહકરાયે વ ને મીદન્તિ જગન્નયે ।



આશ્રમ ધર્મ અને પ્રજ્ઞાચર્ય

(ભેદ-મનુસાધ)

સદિની ઉત્પત્તિ વખતે પ્રજ્ઞાએ પાચ માનસ પુત્રોનું સર્જન કર્યું તેમાંના ચારે નિવૃત્તિ માર્ગ લીધા ને એક જગે પ્રવૃત્તિ માર્ગ સ્વીકાર્યો નિવૃત્તિ માર્ગ દેનારા ચાર માનસ પુત્રો, સનક, સનઈ, સનાતન અને સનતકુમાર બાદ્યકાળમાંજ સંસારનો ત્યાગ કરી વનવાસી ઘર્ષ આત્મચિંતન કરવા લાગ્યા. પ્રવૃત્તિ માર્ગને પસંદ કરનાર મનુએ સંસારને સંકલપ્યો તેના લેલાથી આ આખું યાવત જગત-વિસ્તરેલું છે

સંસારમા પ્રવૃત્તિ કરતા છતાં મનુષ્ય મુખ, શાંતિ ને આભાદી અનુભવે અને અતે પરમ પદ મેળવે તે માટે આપણા પૂર્વજોએ સ્વપ્ન ભુદિથી વિચારી, ઘડાજી અનુભવ અને ગૂઢ ચિંતન પછી સંસારની ઉર્જાતિ માટે ચાર આશ્રમ ધર્મની વ્યવસ્થા કરેલી આથી ચોવીસ વર્ષના કાળ દર મિમાંસા આચાર્ય સંતાને તત્ત્વદ્રષ્ટા અને પૂજનીય ગુરૂની પાસે રહી જીવનના પાયાનું ઘડતર કરતા. પવિત્ર વાતાવરણ, એકાંતિક જીવન અને પ્રજ્ઞાચર્યના પાલનથીજ ભાગદે વીવેકી, શરીર અને મનથી તદ્દરસ્ત, કુદાચ ભુદિવાળા અને આત્મિક ઉન્નતિની ઝંખના કરનારા મહાત્મા તેજસ્વી થતા. આ ચોવીસ વર્ષના કાળને ‘પ્રજ્ઞાચર્ય આશ્રમ’ એવું નામ આપ્યું હતું જ્યારે આ આશ્રમની બધી કીધાઓનું પૂર્ણ રીતે પાલન કરી, પ્રજ્ઞાચર્યની કંઠ પરીક્ષામાંથી પાસ થતો ત્યારે તે ગૃહસ્થ ધર્મનો અધિકારી બનતો. પ્રથમના આશ્રમમા પ્રાપ્ત કરેલા વિવેક અને વેશગમ્યથી, પ્રજ્ઞાપ્રાપ્તિનો નિરંતર જ્વાલ રાખી તે સુધક ગૃહસ્થ ધર્મનું પાલન કરેલો. આ

આશ્રમ પૂર્ણ કર્યા પછી વાનપ્રસ્થ આશ્રમમાં પ્રવેશતો અને સમ્યક પ્રકારથી ત્યાગની તૈયારી કરેલો આ તૈયારી પૂરી થતા સંન્યાસ આશ્રમની દીક્ષા શ્રદ્ધા કરી, દેહાભિમાન સંહીત બાહ્ય વસ્તુઓનો પરિત્યાગ કરી મનુષ્ય પરમાત્મામાં લીન થતો.

પરંતુ આજની દશા એથી ઉઠતી છે કાળ અને શાન્ત્યોના પરિવર્તનથી એ પ્રાચીન પ્રથા નાથ પાત્રી અને સાપના લીસોટારૂપે રહેલી છે ઘરમાં મોટી ઉમરના માણસોના જીવન વિપથી, વિલાસી અને દાનિક હોવાથી ભાગદે શર્ભાથીજ કળીની વિદ્યા શીખે છે, કુદરતી સૌંદર્ય અને નિર્દોષ ભાગ કીકા ખેલવાને બદલે કૃત્તારી અને દલિક વાતા વરણમા સપડાય છે આમ મોટી ઉમરે ભોવામા આવતું જાદમતિનું બીજારોપણ બાલ્યકાળમા થાય છે, અને મોટા થતા શારીરિક-માનસિક સંપત્તિને મુશળી નિખળ સ્વાર્થી ને શુભાચી માનસ મેળવે છે આ દુષ્કર્મને યાતનાઓથી, આત્મનિક નિવૃત્તિ માટે, આપણે આપણી પૂર્વ પ્રથા ઊપર જ્યાં વિના છૂટકોજ નથી આપણે ત્યાજ જઈએ કે કાલ જઈએ એનો આધાર આપણી ઊપર રહે છે પણ જવાનું તો ચોક્કસ છે જ

હવે આપણે પ્રજ્ઞાચર્ય, એનું પાલન અને એના લાભ લાભ વિશે વિચાર કરીએ પ્રજ્ઞાચર્યના પાલન વડે હેવો મૂકુને છોટી શક્યા હતા ૧ પ્રજ્ઞાચર્ય પાલન એટલે વૈધ્ય રક્ષા શુક્ર એ સરીરનો રાખ છે નીચેના રહેાક વીચની કીમત બાંધે છે —

મરણમ્ વિન્દુયાતેન જીવનં વિન્દુધારણાન્ ।
દસ્માદનિવ્રજ્યન્ત કુરુત વિન્દુધારણમ્ ॥

અર્થ—ખિન્દુ એટલે શુક (વીર) એના પતનથી મૃત્યુ છે, એના ધારણથીજ જીવન છે. તે પ્રયત્નપૂર્વક વીર્યનું સંચયન કરવું જોઈએ.

આપણે જે ખોરાક ખાઈએ છીએ તેમાંથી રસ, રક્ત, માંસ, મેઢ, અસ્થિ, મજ્જા, અને શુક એવી સાત ધાતુઓ ઉત્પન્ન થાય છે. આ સાત ધાતુઓનું સારરૂપ તત્વ તે “જોન્સ” છે આ જોન્સ તત્વ જીવનનો આધાર છે. આથી માણસમાં ઉત્સાહ, પ્રતિભા, ધૈર્ય, લાવણ્ય અને સુક્ર-મારતા રહે છે. ઉપર જણાવ્યા મુજબ ખોરાકનું સાચું પ્રથમ પરિણામ રસ થાય છે, રસમાંથી રૂધિર, રૂધિરમાંથી માંસ, માંસમાંથી મેઢ, મેઢમાંથી અસ્થિ, અસ્થિમાંથી મજ્જા અને મજ્જામાંથી સાતમો પદાર્થ તે વીર્ય થાય છે. ખોરાકનું સાર-તત્વ તે વીર્ય છે, તે તેજ ગળી શરીરના અણુઓ અણુમાં ચમકે છે.

એક ધાતુ પચ્યા પછી બીજી ધાતુ બનવા માટે પાંચ દિવસ લાગે છે. સાર તત્વ શરીરમાં રહે છે અને પાચનની હરેક ક્રિયામાંથી નીકળેલો નકામો બાક મળ, મૂત્ર, પરસેવો, મેલ, નખ, વાળ, વિગેરે રૂપમાં બહાર નીકળે છે. વીર્ય જન્યા પછી ધાતુનું પાચન અટકી જાય છે. આ પ્રમાણે રસથી માંડીને વીર્ય બનતાં પ્રત્યેકમાં પાંચ દિવસ લાગે છે તે છ ધાતુઓનું પાચન યદ્ય વીર્ય બનતાં એક માસ લાગે. આજે ખાંધેલો ખોરાક ૩૦ દિવસે વીર્ય બનવાનો. પાકા એક મણ ખોરાકનું એક શેર લોહી બને છે. એક શેર લોહીમાંથી બે તોલા શુક થાય છે. રરોજ એક માણસ પાંદો એક શેર ખોરાક ખાય તો એક માસમાં ૩૦ શેર ખોરાક ખાઈ શકે. ઉપરના હીસાબ પ્રમાણે ૩૦ શેર ખોરાકનું ૧૨ તોલા વીર્ય બને. દરેક વ્યાનમાં સળવું જોઈએ કે એકજ

વગતના સ્ત્રી-સહવાસમાં ૧૨ તોલાથી તો જોઈએ વીર્ય-પતન થતું નથી. આ પ્રમાણે પુરુષ અગર સ્ત્રી, સંચયન ન રાખે, અને એક મહીનાની કમાણી એક ક્ષણમાં વેઈફ અગર પ્રતિદિન વેઈફવાનો પ્રયત્ન કરે તો તેનું ઢેવાણું નીકળવાને શું વાર લાગે ? જીવનનો મુખ્ય આધાર વીર્ય છે. જેમ શેરડીમાં ગોળ અને દુધમાં ઘી વ્યાપક છે તેમ શરીરમાં વીર્ય વ્યાપક છે. જેવી રીતે દુધમાંથી માખણ કાઢવા માટે દુધને અથવા તેનું ફડ્ડી કરીને વલોવણું પડે છે અને શેરડીમાંથી રસ કાઢવા શેરડીને નીચાવવી પડે છે તેવીજ રીતે વીર્યના એક ખિન્દુ માટે આખા શરીરને વલોવણું પડે છે. ઘી કાઢવા પછી, દૂધ સત્વરીન થાય છે ને રસ કાઢવા પછી શેરડી કુચા બની જાય છે તે પ્રમાણે શરીરમાંથી વીર્યનું પતન થતાં શરીર સત્વ વગરનું, નિરનેજ, લીધું, કમજોર ને કઠોર બને છે, નાકિઓ શિથિલ થાય છે અને મુખાર્ચિક ઉદાસીન બને છે. આથી લીધાંયુષ અને શારીરિક તંદુરસ્તિ માટે પ્રશ્નચર્ચા એજ સાચું સાધન છે.

હરેક પતિ પોતાની પત્ની તરફથી શુદ્ધ પ્રેમ અને ચારિત્ર્યની ઝંખના કરતો હશે. શુદ્ધ પ્રેમ, હૃદય ચારિત્ર્ય અને એકેક સંચયશીલ પ્રાપ્ત થાય છે. આ માર્ગ મૂકીને પુરુષ સ્ત્રીની સાથે ભોગની દ્રષ્ટિથીજ વિલાસ કરશે તો પત્ની પણ વીલામી અને વિપથીજ થશે. તેમનું અંકય ભોગમાંજ પરિણમશે. આતે ભોગ એજ પતિ અને ભોગ એજ પત્ની એવા પ્રકારના સંબંધથી જોડાયેલાં તેઓ બ્યસિચારી વૃત્તિવાળાં થશે. સમાજમાં યતાં વૃદ્ધ લગ્નો તેના સારા કાળથી પુરા પાડે છે એક પત્નીના મૃત્યુ પછી બીજી પત્ની સાથેનું લગ્ન તેને ભોગ ન દેહીએ તો બીજી શી ઉપમા લાગે. આવા ભોગથી ટેવાયલા મનુષ્યો પોતાનું, કુટુંબનું, તેમજ

સમાજનું અકલ્યાણ કરી અધકારમાજ અદરશ થાય છે પતિના ખોટા આચરણથી ઇન્દ્રિય સુખ ઇચ્છનારી પત્ની પણ લોક-લજાએ યોગ્ય દિવસ ખુલાસા રહ્યા બાદ ભૂતકાળમાં વિલાસ માટે દેવા થઈ જતિએને આરામ આપવા માટે શક્ય એટલા બધાજ પ્રયત્નો કરશે પરિણામ હૃદયશિવાય બીજું શું હોઈ શકે ! મિત્રો ! સયમી છવનજ એક બીબાને શુદ્ધ પ્રેમ મેળવી શકે છે

ગૃહસ્થને સતતિ માટે સ્ત્રી સહવાસ કરવાની છુટ આપણા યાત્રો આપે છે એ છુટ માટે પણ નિયમો છે એ નિયમોનું પાલન કરવાથી મુપજા પ્રાપ્ત થાય છે

યોદ્યાર્તુ નિગા સ્ત્રીણા તસ્મિન્યુગ્માસુ સંવિદ્યન્ ।

મદ્યવર્થેણ પર્વણ્યાઽઽચ્ચિન્ત્યમ્નઃ સર્વયેન્ ॥

—વાલ્મીકિય

ભાવાર્થ—સ્ત્રીના રજોદર્શનથી સોજ રાત્રી મુધોના સમયને ઋતુકાળ કહ્યો છે તેમા પ્રથમના ચાર દિવસ અને અમાસ, આઠમ, પૂનમ, અને ચૌદશ એ પર્વણીઓના ત્યાગ કરીને પુરૂષે સ્વકીય સ્ત્રીને તે ઋતુકાલની મુગમ (ભેડી) રાત્રી વિશે સગ કરવો એ પ્રમાણે વર્તન ર ગૃહસ્થ પુરુષ જાણવારી કહેવાય છે (પ્રાણ અલીત)

અમવાસ્યાયમી વૈન પૌર્ણમાસી ચતુર્ત્તી ।

મદ્યવર્થી ભવત્રિયમન્વુતી સ્નાતકા દિવ ॥—વનુ

ભાવાર્થ—અમાવસ્યા, અઠમ, પૂનમ, અને ચૌદશ, એટલા દિવસો ત્યાગ કરી ને સ્નાતક દિવ ઋતુકાલે સ્ત્રી-સગ કરે છે તે નિત્ય અરખતિત પ્રથમવારી કહેવાય છે

યુગ્માસુ પુષ્પા જાયન્તે ત્રિયાઽયુગ્માસુ રાત્રિષુ ।

તસ્માદ્યુગ્માસુ પુષ્પાર્થી સંવિજેદાન્તે મિયમ્ ॥

—મનુસ્ય

એ ઋતુકાળમા નિવેધની રાત્રિઓ ત્યજી છૂટી, આઠમી, દશમી, બારમી, ચૌદમી અને સોજમી એ મુગમ (ભેડીની) રાત્રી વિશે અભિગમન કરવાથી પુત્રો ઉત્પન્ન થાય છે અને પાચમી, સાતમી, નવમી, અગિઆરમી, તેરમી અને પદરમી એ અમુગમ (એડીની) રાત્રિ વિશે પુત્રિઓ ઉત્પન્ન થાય છે માટે પુત્રની અપેક્ષાવાળાએ (ભેડીની રાત્રીમજ) સ્ત્રી-સગ કરવો

સ્ત્રી ઋતુમતિ થાય તેના પ્રથમ દિવસથી મહુતા ૧૨ થી ૧૪ દિવસ મુધોના અરસામા રળે ગોલ બીજ કોષમાંથી બહાર નીકળી બીજ વાહક નદી કામાંથી ગર્ભાશય બહી બંધ છે તે કાળ દરમિ આન ગર્ભાશય મુજ ખુલ્લુ રહે છે આ કાળ દર મીઆનજ સ્ત્રી ગર્ભધારણ કરી શકે છે એમ કાલના વિજ્ઞાન યાત્રીઓ મત ધરાવે છે. પ્રાચીન નર્તિ મુનીઓના ને કાલના વિજ્ઞાન યાત્રીઓના મતમા ઘણીજ સામ્યતા છે આ ઋતુકાળ સિવાયના દિવસોમા સ્ત્રી-સહવાસ કરવો એ પાપ છે

રજસ્વળા સ્ત્રી સાથે સહવાસ કરવો એ યોગ્ય નથી. એ સિવાય આરભેલા મધા, મૂગ, કૃતિકા, જ્યેષ્ઠ, રૈવતી, ઉત્તરા ભાદ્રપદ, ઉત્તરા ફાલ્ગુન ઉત્તરાષાઢા, એ નક્ષત્રોમાં સ્ત્રી સહવાસ નિવેધ છે મહિરમા રરતામાં, સમથાનમા યોગધાલયમા, પ્રાકાશુના ઘરમાં, ગુરૂના ઘરમા, સવારે, સંધ્યા કાળે, અવિત્ર જગ્યાએ હવા લીધા પછી, બૂખ્યા પેટે, ખાધા પછી તરત, મિત્ર કે ગુરૂની પધારીમા, મગ મૂત્ર જવાની ઇચ્છામા ઉપવાસને મતના દિવસોમા, બીજા માણસોની દ્રષ્ટિ સામે, સ્ત્રી સહવાસ કદી ન કરવો એઈએ પશુ પણ નિયમ પાળે છે અને કેવળ પ્રકૃતનની દ્રષ્ટિથીજ કુદરતી રીને પ્રેરક અમુક દિવ સોમાજ, સામી જાતિના પશુ સાથે સહવાસ કરે છે,

વસુદેવ અને દેવકીના ગત જન્મની તપશ્ચર્યાને સંયમનું પરિણામ શ્રી કૃષ્ણ હતા તેમજ રાજા દશરથ અને કૌશલ્યાની ગત જન્મની તપશ્ચર્યાને સંયમનું પરિણામ શ્રી રામ હતા તેમ આપણાં ધાર્મિક પુસ્તકો કહે છે. સુપુત્રો માટે એક બે દિવસનું નહિ પણ વર્ષોના સંયમી જીવનની આવશ્યકતા છે. જ્યાં સુધી વૃત્તિ સ્થિર થઈ ન હોય ત્યાં સુધી પુરૂષે, સહવાસ કરવો એ દીવો લઈને કુવામાં પડવા બરાબર છે. આપણા અસંયમી જીવનથી કુપુત્રો થાય અને લઠુ લઈને આપણી સામા યાય તો એમાં હું એ પુત્રોનો દોષ જોતો નથી. શ્રી સહવાસ સંબંધમાં એક શુરને એક શિષ્યે પુછેલું તે નીચે મુજબ છે.

શિષ્ય—મનુષ્યે સો-સંગ કેટલી વાર કરવો ?

શુર—જીવનમાં ફક્ત એક વાર.

શિષ્ય—એથી સંતોષ ન થાય તો ?

શુર—તર્ષમાં એક વખત કરવો.

શિષ્ય—એથી મન વૃત્ત ન થાય તો ?

શુર—મહીનામાં એક વખત કરવો.

શિષ્ય—એથી પણ મન ન માને તો ?

શુર—ખેર, મહીનામાં બે વખત કરી શકે છે પણ એથી મૃત્યુ જલદી થાય છે.

શિષ્ય—બે વખતથી પણ મન ન રહે તો ?

શુર—ઘરમાં કંઈન લાવીને તૈયાર રાખવું અને પછી કાંઈ તેમ કરવું.

આપણે કોઈ વ્યક્તિનો વિચાર કરીએ તો આપણે વિચાર એક આકાર ગ્રહણ કરે છે ને તે આકાર વ્યક્તિને શોધવા પ્રયત્ન કરે છે. જો આપણે તે વિચાર પાછળ સતત અને નિશ્ચિત પ્રયત્ન હોય તો તે વિચાર ફળીભૂત થાય છે. દાખલા તરીકે કોઈ મિત્રને મળવાની આપણી તીવ્ર ઇચ્છા

છે. આ ઇચ્છાથી તે મિત્રની મૂર્તિ આપણા મનમાં એક આકાર ગ્રહણ કરશે. તે બાબતના મનમાં સંકલ્પ થશે. “તે કેમ હશે ? શું પહેલું હશે ? કેવી રીતે આવશે ?” વિગેરે. આ સંકલ્પો તમે થોડા દિવસ પછી ભૂલી ગયા, પણ આપણે જેમનો આકાર ઉત્પન્ન કરેલો તે નાશ થશે નહીં. એ આકારો તે મિત્રના માનસિક જગતમાં જઈ પોતાનું કાર્ય કરશે અને તેને આપણી તરફ આવવા પ્રેરણા કરશે. સંયમી પુરૂષ આવી એકાગ્રતા સાધી શકે છે ને તેના પ્રમાણમાં તે પોતાના જીવનમાં સફળ થાય છે. અસંયમી મનુષ્યની વૃત્તિઓ અવનવા સંકલ્પ વિકલ્પોના લીધે વ્યભિચારી રહેતી હોવાથી તેના સંકલ્પોના અનેક અરિથર આકારો ઉત્પન્ન થાય છે. આ આકારો એક બીજા સાથે અથડાઈ નાશ પામે છે. આથીજ અસંયમી મનુષ્યો અંતે નિષ્ફળતાને ભેટે છે. વિદ્યાભ્યાસ, વેપાર, કે વ્યવહારમાં સફળતા મેળવવા ‘અદ્વયથ’ પાળવું જરૂરનું છે.

અસંયમી માણસો હંમેશા ભટકતી વૃત્તિવાળા હોય છે તેથી સામી બીજીની પિપાસા માટે અનેક વિધ પ્રયત્નો કરે છે આથીજ ઘેરઘેર સળગતા સંસાર નજરે પડે છે. સમાજના ઉત્કર્ષ માટે બાહ્ય જીવનના રચુળ ફેરફાર કે સમાજની બાહ્ય એક્ય સાધવા આજે વર્ષોથી પ્રયત્ન કરવામાં આવે છે. પણ પરીણામ કંઈજ દેખાતું નથી. કઠાય સમાજ હર ને રાજ્યના ભયથી બાહ્ય જીવન એક્ય કરી પાશવતાને સંતાડવાનો પ્રયત્ન થયો હશે, છતાં આ બીતિઓ દૂર થતાં અસ્ત શસ્ત્ર લઈ પાશવતા ચમકી છે. પાશવતાનો પૂર્ણપણે નાશ શુદ્ધ આંતર જીવનથીજ થાય છે. આલું શુદ્ધ આંતરજીવન ‘અદ્વયથ’ દ્વારાજ પ્રાપ્ત થઈ શકે,

દેશેદાર માટે પણ સ્વતંત્ર આત્મા જોઈએ
અને તે બ્રહ્મચર્ય માગી સંયમી અન્યા સિવાય
યતો નથી

મનુષ્ય માત્રનું અતિમ કષેય શોષ અગર
પ્રભુ પ્રાપ્તિ—આત્મસાક્ષાત્કાર સંયમી મનુષ્યોજ
પ્રાપ્ત કરી શકે છે

મનુષ્ય જીવનમાં વડુરસ્ત યારી, શુદ્ધ હાપત્ય
પ્રેમ, ઉચ્ચ આચાર, સારી સંસ્કાર સપ્ત પ્રભ,
વિદ્યા, વેપાર અને વ્યવહારની સફળતા, સમાજનો
ઉત્કર્ષ, દેશેદાર અને ઉપદેશ પ્રભુ પ્રાપ્તિ એ
આશ્રમ ધર્મના પાલન સાથે સંયમી જીવન ભળ
વવાથી જ થાય છે અસ્તુ

ગીતાનું વેદાન્ત

(લે.—શ્રી મુદ્દર્શનસિદ્ધિ 'ચક્ર')

‘મયા તતમિદ સત્ત્વં જગદવ્યક્ષર્તિતા ।
ગત્યનિ સર્વભૂતાનિ ન ત્વાદૃત્તેષ્યવસ્થિત ॥
ન જ મત્સ્યાનિ મૂવાનિ પરય મે યાગમેત્રયમ્ ।
મૂતમૃજ જ મૂતસ્થા મમાત્મા મૂતમાવન ॥’

—શ્રી ૧૦૮ ૫

મારા અવ્યક્ત સ્વરૂપથી આ આખું વિશ્વ
ન્યાસ છે સમસ્ત પ્રાણી મારી અતર્જત છે, હું
તેમનામાં રિયત નથી પ્રાણી મારી અતર્જત નથી
આ મારા ઇશ્વરીય યોગને જીએ કે પ્રાણીઓને
ખારણ અને પ્રાણીઓને પ્રગટ કરનારો મારો
આત્મા તે પ્રાણીઓમાં નથી

સંપૂર્ણ વેદાન્ત શ્રીતાના આ બે શ્લોકોમાં બરેલું
છે, વાણીની ગતિની આજ સીમા છે ઉદાહરણ
આપીને આજ વાતને સ્વયં ભગવાન સ્પષ્ટ કરે છે—

મયાદ્યાસિયતાનિય વાયુ સર્વગા મહાન્ ।

નયા મર્જાનિ મૂતાનિ મસ્થાનીતુવપાત્ય ॥

—શ્રી ૧૦૮

એવી રીતે સર્વત્ર વિચારનારો મહાન વાદ
સર્વદા આકાશમાં રિયત છે તેવીજ રીતે સમસ્ત
પ્રાણીઓને મારામાં રિયત સમજો

હું સમસ્ત જગતમાં ન્યાસ છું, આ અસ્પષ્ટ રૂપ
અવ્યક્ત છે સમસ્ત પ્રાણી માર મા છે, પરંતુ હું
તેમનામાં નથી સાદૈજ પ્રાણીઓ મારામાં નથી

પ્રાણીઓની ઉત્પત્તિ અને પાલન મારા કારણ થાય
છે ભગવાને આજ સિદ્ધાન્ત બતાવ્યો પ્રજા
સૂત્રનું પ્રકલ્પણ છે—‘જન્માદયસ યત્’ એનાથી
સંસારનો જન્મ આરિ (પાલન અને નાશ) થાય
છે અહિં પણ ભગવાને ચોતાને ઉત્પાદક અને
પાલક બતાવી દીધા છે થાદ રાખવું જોઈએ કે
સમસ્ત બ્રહ્મસૂત્ર ઉપરુક્ત સૂત્રનું વિવેચન માર છે
ગદ્યા આચાર્યો પ્રજાસૂત્રમાં અતુ સૂત્રી મુખ્ય માને
છે તેજ અતુ સૂત્રીની આ મુખ્ય સૂત્ર છે બીજીના
તો એનીજ વ્યાખ્યા અથવા એનાજ અંગના છે

જે ઉદાહરણ ભગવાને આપ્યું છે તે તાદન સ્પષ્ટ
છે વાયુ આકાશથીજ ઉત્પન્ન થાય છે, આકાશની
અદર્શ રહે છે વાયુના પ્રત્યેક અણમાં આકાશ
વ્યાપ્ત છે, પરંતુ આકાશ વાયુથી નિર્લિપ્ત છે
વાયુની દ્રિષ્ટિ તો વાયુ આકાશમાં છે અને વાયુમાં
આકાશ છે, પરંતુ આકાશની દ્રિષ્ટિ વાયુની
સત્તાજ નથી વાયુ તેને જરા પણ પ્રભાવિત કરી
શકે નથી

વાયુને મહાન અને સ્વતંત્ર વિચરનારો કહ્યો
છે તેનું તાર્કિક એ છે કે વાયુનું મહત્ત્વ એ કે
ધણુંજ મોટું છે અને તે અચળ છે, તે જોકે સ્થાન
ઉપર ટકતો નથી, છતાં પણ તેની અચળતા અને
મહત્તાનું આકાશ ઉપર કઈ જોર ચાલતું નથી
આકાશ રિશ્મ અને નિર્લિપ્ત રહે છે આદર્શ મારા

१५४०८



सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज । अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

वर्ष ७ }

जुलाई, १९४९, काशी

{ अङ्क ७

दफ्तान गान

गोपाल गोकुलवल्लभीवि गोपगोमुतवल्लभम् ।
चरनारविन्दमह मजे श्रवणीय मुरमुनिदुर्लभम् ॥ १ ॥
घनश्याम काम अनेक छवि लोकाभिराम मनोहरम् ।
किञ्चत्कवसन किस्तोर्मृगति शूरिगुन करुणाकरम् ॥ २ ॥
सिर केवियच्छ विलोलकुंडल अरुन धनद्वलोचनम् ।
गुणवतस विविध सव अंगवानु मवमयमोचनम् ॥ ३ ॥
कच कुटिल सुदर तिलक मू राक्षमयकसमाननम् ।
अपहरन तुलसीदास प्राप्त बिहार वृंदाकाननम् ॥ ४ ॥

—गोम्वासी गुरुसीदासजी ।

मुमुक्षा का समर्थन

(ले०—श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य ब्रह्मनिष्ठ लोकसप्रही गीतान्यास जगद्गुरु महामण्डलेश्वर
श्री १०८ स्वामी श्री विद्यानन्दजी महाराज)

वेदान्तश्रवण के अधिकारी में जिस साधनचतुष्टय की आवश्यकता है उस में मुमुक्षुत्व अपरिहार्य है। अर्थात् “मेरा पुनर्जन्म न हो” ऐसी उस को तीन अभिलाषा चाहिए।

अब प्रश्न यह है कि किसी को संसार से द्वेष क्यों होगा? देखा जाता है कि सन कोई बड़े चाव से गृहस्थी करते हैं। सब को निसर्गत सुख की इच्छा रहती है और सब जीव संसार में कई एक प्रकार का सुख, पूर्णश में न सही, कम वेशी परिमाण में अवश्य ही पाते हैं। उस के साथ थोड़ा बहुत दुःख भी जरूर मिला रहता है इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता। लेकिन मुख्य सवाल यह है कि संसार में सुख है या नहीं। इस का उत्तर तो अस्तिपदार्थक ही देना होगा, न्वात्मक हरगिज नहीं। जोबमात्र की कर्म में प्रवृत्ति अहर्निश देख पड़ती है, और—

‘प्रयोजनमनुद्दिश्य न मन्दोऽपि प्रवर्तते’

वेमतलब का काम करने में महामूर्ख भी नहीं प्रवृत्त होता है, इस में कोई सदेह ही नहीं। एव यह प्रयोजन सुखप्राप्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं, यह बात भी निर्विवाद है। गीता में कर्मसिद्धि का जो हेतुपद्मक कहा है, उस में चेष्टा अर्थात् सुखेच्छा भी है। तब तो यह अनुमान पुष्ट है कि जीनों की प्रवृत्ति सफल अर्थात् सुखोत्पादक होने से ही सुख की इच्छा आदि काल से जारी है और अनन्त काल

तक जारी रहेगी। गीता में तीन प्रकार का सुख वर्णित है। तामस हो या राजस हो, सुख सुख ही है अतएव उपादेय है। अनित्य हो, थोड़ा हो, दुःखमिश्रित हो, कैसा भी हो, दुनियाँ में सुखनाम का पदार्थ है जरूर और वही तो पुरुषार्थ है। तब दुनिया से वैराग्य क्यों होगा और मनुष्य मुमुक्षु कैसे होगा?

ऐसा पूर्वपक्ष प्राप्त होने पर समाधान यह है कि मनुष्य जिस को सुख समझता है वह वास्तव में सुख नहीं है, सुखभास है। इस विषय में योगदर्शनकार का सिद्धान्त यह है—

परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्ति-
विरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः।

—साधनपाद, सूत्र १५

इस में “विवेकिन” पद मार्के का है। प्रकृति और पुरुष इन दोनों में पूर्व पश्चिम का, तम प्रकाशवत् महदन्तर है, यह जानना विवेक कहलाता है। इसी का नाम विद्या है। इस के विपरीत अविद्या का लक्षण योगशास्त्र में ऐसा कहा है—

अनित्य-अशुचि-दुःख-अनात्मसु

नित्य-शुचि-सुख-आत्मरूपातिरविद्या।

—साधनपाद, सूत्र १

अनित्य, अशुचि, दुःख और जड़ पदार्थों को नित्य, पवित्र, सुख और आत्मावाले समझना यह अविद्या है। संसार में केवल दुःख ही दुःखे भरा

पड़ा है। लेकिन ध्विया के मभाव से यह सुखक
भासता है। ससार में सुख का तो अभाव ही है।

अनित्यममृतं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम् ॥

—गी० ११३३

भामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखाद्ययमवाप्नुवतम् ।

नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः ।

—गी० ११३४

किं बहुना, महात्मा के इन वचनों से भी ससार
दुःखमय है यही सिद्ध होता है। इस पर कोई
कहे कि ससार में सुख नहीं है ऐसा कहना तो मत्पक्ष
का अपराध करना है। इस शब्द का समाधान
सूत्रस्थ “विवेकिन” पद से होता है। अज्ञानी के
लिए समार भले ही सुखमय प्रतीत हो, विद्वान् के
ज्ञानशु को तो वह उल्टा मान्य पड़ता है। उस
को सुमुग्धा होना सम्य है। ऐसे पुण्य दुनियाँ में
बहुत नहीं होते ।

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद् यवति सिद्धये ।

—गी० ११३

लेकिन इस पर यह सवाल होता है कि ससार
में जो कुछ, जैसा कुछ और निम्ना कुछ सुख
प्राप्त होता है उस को छोड़ने की इच्छा करने में
क्या बुद्धिमानी है ? अधिक छु, सासारिक सुख में
कुछ निश्चिन्ता है, जैसे ही मोक्षसुख का क्या भरोसा
है ? मोक्षश्रम से कपस आकर किस ने उस सुख
की समानता तसदीक किया है ?

उत्तर में यह कहा जाता है कि सासारिक सुख
की दुःखशयलता और दुःख की जिहासा निर्विवाद
होने से—

यया दुःखात्^१ बलेभः पुरुषस्य

न तथा सुखादभिलाषः ।

—गी० १० ११९

‘मनुष्य दुःख को जितना बुरा समझता है,
उसी भाव में सुख की इच्छा उत्पन्न नहीं होती।’
इस सादृश्यगूत्रानुसार, तथा—

अत्यन्तदुःखनिवृत्त्या कृत्वृत्पत्ता ।

—गी० १० ११९

‘दुःख का लेशमात्र न रहे, इसी में पूरी सफ-
लता है।’ इस सिद्धान्त से भी यह बात अवश्य
स्वीकार्य है कि थोड़ा हो या बहुत हो, दुःखत्वाव
च्छेदेन ही दुःखजिहासा प्राणिमय में वैसर्गिक है।

मोक्षसुख की प्रामाणिकता तो श्रुति से ही
सिद्ध है। लेकिन इस की निरपेक्षता से ही कहा
जा सकता है कि दुःख से मोक्ष पाने की इच्छा का
होना किन्तु स्वाभाविक है।

यदि कहा जाय कि दुःख से इस प्रकार छुट-
कारा तो सन के जीवन में हर घड़ी ही होता रहता
है, उस के लिए सब की मुमुक्षा भी बनी है। तब
तो दुःखपरिहार के लिए पुनर्जन्म न होने की क्यों
आवश्यकता है ?

इस कहने का यह मतलब हुआ कि मनुष्य
को नितने दुःख भोगने पड़ते हैं वे सब रथ उपायों
से भी दूर हो सकते हैं और होते भी हैं। हम के
लिए दुःखाद्य आत्मज्ञानोपार्जन द्वारा जन्माभाव की
इच्छा करना अथोक्तिक है।

इस विषय की पूर्व अन्यान्य आनुपत्रिक दृश्यों
की सादृश्यकार ने बड़ी ही सुन्दर मीमांसा की है।
उन सूत्रों का अनिरुद्धत आधार से भाषा में अनु-
वाद दिया जाता है।

अथ त्रिविध दुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः।

—सां० सू० १-१

तीनों तरह के दुखों का अत्यन्त छूटना ही असली पुरुषार्थ है। यह बात लोकप्रसिद्ध है कि वैराग्य होने से मनुष्य की मोक्षशास्त्र के अध्ययन में प्रवृत्ति होती है। वैराग्य क्यों होता है, इस के दो हेतु हैं; एक शोकादि और दूसरा प्राग्भवीय दुरित का क्षय। यह अपर वैराग्य कहलाता है, इस का लक्षण पातञ्जल दर्शन में यों कहा है—

दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य

वशीकारसंज्ञा वैराग्यम्।

—समाधिपाद, सू० १५

इस का फलभूत पर वैराग्य कहलाता है और उस का लक्षण है—

तत्परं पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्ण्यम्।

—समाधिपाद सू० १६

इस के बाद सांसारिक दुःखों की निवृत्ति के उपायों की जिज्ञासा होती है। 'प्रसंगतः, दुःख के प्रकार कहे जाते हैं। दुःख त्रिविध है—आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक। ये प्रकार कौन कौन से हैं इस बात का खुलासा सूत्रकार नहीं करते।

अतएव गीता २।४, २।५, २।६ श्लोकों में कथित त्रिविध प्रकार लेना ही ठीक जँचता है। तथा हि—

कथं भीष्ममहं सङ्ख्ये द्रोणं च मधुसूदन।
इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन॥

यह स्पष्टतः शारीरिक दुःख है। यों तो दुःख-मात्र ही मन से संवेदनीय होने के कारण एक ही प्रकार का है। तथापि—

गुरुनहत्वा हि महानुभावान्—

छेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके।

हत्वार्थकामास्तु गुरुनिहैव

भुञ्जीय भोगान् रुधिरप्रदिग्धान्॥

और—

न चैतद् विद्मः कतरन्नो गरीयो

यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः।

यानेव हत्वा न जिजीविषाम-

स्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः॥

इन तीन श्लोकों में अनुक्रम से कायिक, वाचिक, मानसिक अर्थात् अन्नमय, प्राणमय, मनोमय इन तीन कोशों से अनुभवनीय दुःखों का उल्लेख है। अब विचारना यह है कि इन दुःखों की निवृत्ति किस उपाय से हो ? अस्मदादिक बद्ध जीव तो यही पूर्वपक्ष करेंगे कि औषधादि, मिष्टानादि, शान्त्यनुष्ठानमणिमन्त्रादिसुलभ व दृष्ट उपायों से प्रत्यक्षतः दुःखनिवृत्ति की सिद्धि होती है। तब दुःसाध्य, अनेक जन्मपरंपरायास से संपाद्य चित्त-निरोध, ज्ञानप्राप्त्यादि शास्त्रोक्त साधनों में बुद्धिमान् मनुष्यों की प्रवृत्ति क्योंकर होने लगेगी ? इस का उत्तर सूत्रकार यह देते हैं—

न दृष्टात् तत्सिद्धिर्निवृत्तेऽप्यनुवृत्तिदर्शनात्।

—सां० सू० १।२

उक्त दुःसम्प दूर होता है सही, परंतु यह निवृत्ति आपात होती है ! फिर से दुःख न होगा यह नियम नहीं । कयचित् एक दुःख निवृत्त हो भी गया तो दूसरा न होगा इस का भी भरोसा नहीं । “दुःख दुःखानुबन्धि” यह रेख के दर्बों जैसा सिरु-सिरु जारी ही रहता है । सुस्पष्ट कहाँ है :

इस पर यदि कहा जाय कि—

मात्परिक्खुत्पत्तीकारवद्

तत्पत्तीकारचेष्टनात्पुरुषार्थत्वम् ।

—सं० १० ११३

जैसे रोज भूक लगती है, उस की मान्यता से शान्ति की जाती है । उसी तरह नित्य उपाय करने से दुःखनिवृत्ति होकर पुरुषार्थ का काम हो सकता है ।

इस का जगज्ज फलि मुनिजी यह देते हैं—

सर्वासंभवात् संभवेऽपि सत्त्वा

संभवादुपेयः प्रमाणद्वयज्ञेः ।

—सं० १० ११४

सर्वत्र और सर्वदा वैधादि नहीं भी मिल सकते हैं और मत्तीकार होने पर भी दुःख की बड़ (देह-मिथ्या) बनी ही रहेगी । इस लिए यह दृष्टोपाय-जन्य दुःखनिवृत्तिरूप पुरुषार्थ त्याज्य है । नाना उपायों से दुःख दूर करने की सामर्थ्य में कुछ बल होने पर भी, उक्त हेतुओं से वह अकिंचित्तर है । तस्मात् प्रतिनिदान्त कहते हैं—

वत्कर्त्तादि मोक्षस्य सर्वोत्कर्षभूतेः ।

—सं० १० ११५

“न च पुनरावर्तते” छान्दोग्य उ० अ० ८ ख० १५ म० १ सन उपायों में मोक्ष की श्रेष्ठता इस श्रुति से सिद्ध है । इसी बात को लक्ष्य करके प्रथम सूत्र में “अत्यन्त” पद का प्रयोग किया है । दृष्टोपायजन्य सुखलभ के आधार पर जो यह आशय है कि उस सुख को क्यों छोड़ दिया जाय, उस का समाधान शास्त्रकार यों करते हैं—

अविशेषधोमयोः ।

—सं० १० ११६

जिस को लोक में सुख कहते हैं वह भी एक तरह से दुःख ही है, सुख दुःख में विशेष फर्क नहीं । गीता भीरुपुत्र के बारे में कहती है कि वह—

“समदुःखमुद”

—सं० १० ११७

ऐसा होता है । अर्थात्—

तदपि दुःखभावकमिति

दुःखपक्षे नित्तिपन्ते विवेचकाः ।

—सांख्य १० ११८

विचारशील पुरुष सुख को, दुःख से सुख मिल समझकर, दुःख के दर्जों में ही रखते हैं । पक्ष—

अत्यन्तदुःखनिवृत्त्या कुतकुत्पता ।

—सं० १० ११९

महत शुद्ध को यही बात याद है और इसी से गन्धमावृत्य शुद्धा का होना ठीक ही है ।

(ले०—कविराज श्री नन्दकिशोरजी जोशी 'किशोर' भिपगाचार्य)

मनपथिक ! चाहता है क्या ? सुख ! कैसा सुख !! यहाँ है कहाँ सुख !!! इस असार, संसार में कोई पा सकता है सुख और शान्ति ! नहीं नहीं, कदापि नहीं ! अरे ! धन जन, अदृष्ट वैभव इसी को मानता है सुख ! नहीं, यह तो है एकमात्र भ्रम ! यह तो है क्षणिक ! इस से तो भ्रमर की भाँति पड़ताना ही तो पड़ता है ।

जैसे संध्या समय इन्द्रियलोलुप भ्रमर मदान्ध हो, पीता है सरोजसुधा और मनाता है आनन्द, किंतु उसे पता ही क्या ? कि इस क्षणिक सुधापान के अल्प-लोभ के अनन्तर ही यह निष्ठुर कमल मुझे कर लेगा धंद और मदान्ध गजराज इसी कमल को तोड़ देगा । फिर सदा के लिए छूट जायगा मेरा जीवन धन और मैं इन्द्रियलोलुपता से न पा सकूँगा सुख और वास्तविक सुख ।

ठीक इसी प्रकार तू भी, मधुर भोजनादियुक्त चाहता है रसास्वादन, संगीत सुधामयी बोणा की मंकार, सौन्दर्यमय मनोरम दृश्य, पुष्पपराग का सुगन्धित सौरभ, यौवन की फुलवारी का विहार । क्या ? यही है सुख । नहीं नहीं, यह तो है क्षणिक ! व्यर्थ ! क्या ओस के चाटने से भी कभी किसी की बुझती है

प्यास ! पथिक ! इसी को तू कहते हैं इन्द्रियलोलुपता, या मायानदी का जाल ! इसी के द्वारा तो मानव फँसता है जाल में और भूलता है परमात्मा को ! मनपथिक ! यह सब अनित्य है उसी प्रकार, जिस प्रकार पञ्चभूतमय नरवर शरीर ।

यह सुख हितकर और चिरस्थायी नहीं हो सकता । जिस प्रकार रोगी रुग्णवस्था में चाहता है स्वादिष्ट भोजन, किंतु वह क्षणिक स्वादिष्ट भोजन क्यों उसे होता है हितकर ? क्योंकि उस को क्षणिक इन्द्रियलोलुपता ही तो बढ़ाती है व्याधि को और उसे भोगना है किये हुए पापों का फल, वह तो और भी बढ़ती जाती है । बस, उसे भोगना पड़ता है कष्ट !

भूलता है क्या ? अरे ! इस रुग्णवस्था में यदि छोड़ता है थोड़ी सी इन्द्रियलोलुपता और पीता है कड़वी औषध तो होता है शीघ्र ही निरुज, स्वस्थ । ठीक इसी प्रकार इस क्षणिक सुख को छोड़, सहेगा कष्ट, रखेगा संतोष और चला चलेगा संस्रध तो अवश्य ही पहुँचेगा लक्ष्य पर और पायेगा वास्तविक सुख और शान्ति !



विलक्षण उपदेश

(ले०—स्वामी श्री रामानन्दजी सन्यासी, दर्शनशास्त्री, व्याकरणाचार्य)

एक समय गङ्गाद्वार के 'सिद्धाश्रम' में नागें, परमहंस, दण्डी, झानी, ध्यानी, मानी, अवधूत, विरक्त, मत, मईत आदि सन्यासिमण्डल की गोष्ठी हो रही थी, उस में 'राम पाराशरी' नामक सन्यासी व्याख्यान दे रहे थे, बक्षुता के सिलसिले उन्होंने कहा—

एक समय मैं अवध देश में भ्रमण कर रहा था, वहाँ एक भावुक पुरुष ने मुझ से पूछा कि सतजी, हम अवतारों के चरित्र और साधु महापुरुषों की कथा सुनें, पर उस पर चख न सकें, तो इस से क्या लाभ हो सकता है? ऐसा सुनता व्यर्थ ही है। उधर मैंने मे कहा—भारत, इसमें दो लाभ हो प्रधान हैं, पहला यह कि जिस श्रोता की ईश्वर पर साधारण श्रद्धा होगी, यानी बहुत कम भगवान का स्मरण भजन करता होगा, वह कथा सुनने से अधिक श्रद्धालु होकर ज्यादा भजन पूजन करने लगेगा। 'उधर उधर की निन्दा सुनि में गप हों' की अपेक्षा कथाश्रवण में समय व्यतीत करना अच्छा है' जो यह बात सामान्य तथा सनभक्ता होगा, उस को कथा के उपदेश श्रवण करके उत्तम कार्य करने का उत्साह अधिक बढ़ेगा, इस से उस के दुर्घटन दूर जा सकते हैं। दूसरा लाभ यह है कि जिस श्रोता में अभिमान की मात्रा अधिक होगी उस का रक्ष जाता रहेगा और वह क्रूरता आदि प्रमादों को दोष समझकर स्वयं त्यागने पर उत्सुक हो जायगा।

भारत। श्रुति, मुनि, साधु, संतस्वरूप इजीनियर, इस संसाररूपी घोर वस में अनेक कष्ट सहन करके, ज्ञान और सत्साचार की सुन्दर सड़क खोज गये हैं,

अपने गम्भीर ज्ञान और अनुभव से दिये हुए उपदेश की अनेक स्थायी हानियाँ इस सड़क पर गाई गये हैं, अब साधना और स्फूर्ति प्रदान करनेवाले समिति और सूचनाओं के 'माइल स्टोन' रखे कर गये हैं, और शास्त्रों, ग्रन्थों के पड़ाव बना गये हैं। जिस से जिज्ञासु यात्री मोह, डोम आदि शत्रुओं के पाश में न पड़कर सच्चिदानन्दमय परम धाम को बेरोक टोक आनन्दपूर्वक जा सकें।

कथा श्रवण करनेवालों को यह तो मालूम हो जायगा कि हमारे श्रुति, मुनि, कैसे प्रभुप्रेमी, योगी, श्वासी, धर्मप्राण, परोपकारीकम्रत, सत्यपरायण और चरित्रसंपन्न थे। उन को वेदगायन, उपनिषद्वा आदेश, दर्शनशास्त्रों का तत्त्वज्ञान, आध्यात्मिक श्रवण, अनेक प्रकार की भाष्य, टीका, व्याख्यान की योग्यता, वर्णाश्रमधर्म की मर्यादा को अनुष्ण रखनेवाला, धर्मशास्त्रानुमोदित भनुष्यत्व और देवत्व का प्रबोधन आचार, लोक परलोक के समझने की शिक्षा और सर्वात्मन साधन के समझने की कृतकृत्यता का कितना गूढ़ परिचय प्राप्त था। उन्होंने कैसे कैसे अनाचारी, शरिपरिचित, जड़बादी तथा घनदासों को यथार्थ मार्ग पर लाने का कैसा प्रबल चरित्र, तलस्पर्शी बुद्धिवैभव, परमार्थ और व्यवहार का अनुभव और निष्कृष्ट भाव प्रकट किया था। भला जिस श्रोता को ऐसे चरित्र नियमनि सुनने को मिले, उस का जीवन अनुकूल पड़ता न पाये, यह कभी हो नहीं सकता।

पहले के महत्त्वाश्रुतपद, आचार्यपद, पुणेहितपद, महत्पद, सण्डलेस्वरपद और आध्यक्षपद को लक्ष्य

करते थे, उन में राजा, महाराजा, वीर, महावीर, प्रन्थकार, भाष्यकार, समर्थ व्याख्याता, प्रेरक, कथाकार, निस्पृह राजगुरु, महान् स्मृतिकार, निष्पक्ष न्यायाधीश, ऋषि, मुनि और सत्त्व साधु ब्राह्मणों का आविर्भाव होता था। उस समय सब राजा प्रजा उन का शिष्यत्व ग्रहण करते थे, उस समय भारतवर्ष की चतुरस्र उन्नति का समय था। देश में जब से यथार्थ गुरुत्व और श्रेष्ठ शिष्यत्व घटने लगा, तभी से सच्चा ज्ञान और चरित्र मिट गया, इस से मनोबल, शरीरबल और अन्त में धन जनबल भी क्षीण हो गया।

ये सब बातें पूर्वजों के चरित्र और भगवत्कथा श्रवण करने पर ही मालूम हो सकती हैं। 'हम क्या थे, क्या हो गये?' इस का पता उसे कैसे लग सकता है जो कथानक नहीं श्रवण करता? जो सुनेगा वह कभी मनन भी करेगा, मनन के अन्तर्गत निदिध्यासन का नंबर है, ऐसा करनेवाला श्रोता अवश्य लाभ उठावेगा। 'हम से इस पर चला नहीं जाता' ऐसा समझकर जो अवतार या संतचरित्र सुनते ही नहीं, उन को कुछ लाभ तो होगा नहीं, उल्टे वे पूर्वजों की महा महिमा से अनभिज्ञ रह जायेंगे; जिस का जानना राष्ट्रीयता के लिए नितान्त आवश्यक है।

भाइयो! वेद, शास्त्र, स्मृति आदि के गहन सत्त्व को विद्वान् ही जान सकते हैं, ये सब तथा उन में हृन्नेवाले खण्डन मण्डन तो पण्डितों के लिए हैं। सर्वसाधारण के लिए साधु संतों की उपदेशकथा ही लाभप्रदा हो सकती है क्योंकि वे शास्त्रों के कठिन से कठिन भाव को सरल दृष्टान्त युक्तियों द्वारा समझाने की कृपा किया करते हैं। दुनियाँ में मामूली लोगों की ही संख्या अधिक है, उन के उपकार के लिए संतों ने मध्य शास्त्रों से मथकर जो सत्त्व निकाला है वही सब

के काम की चीज है। संतों का उपदेश सब लोगों को इस लिए मान्य हो जाता है कि वे विषयलोलुपता, चमत्कार, सिद्धि और लोकप्रतिष्ठा त्याग कर शुद्ध ज्ञान, पवित्र चरित्र, साधु स्वभाव, प्रमुपराधणता, अप्रसिद्धि और आसुरी संपत्ति के त्याग को अपनाये रहते हैं। ऐसे श्रेयःसाधक, प्रमुषेयी, महापुरुष देशधर्मोद्धारक होते हुए जगद्गुरु के गौरवपूर्ण पद को सुशोभित करते हैं। भाई भक्त, ऐसे महापुरुष के मुखारविन्द से सुनी हुई कथा की कमी भी निष्फलता नहीं है। क्योंकि ब्रह्मनिष्ठ और ब्रह्मश्रोत्रियों के मुक्तकमल से उच्चरित भगवद्गुणानुवादश्रुति अवश्य सफल होती है। पहले सब बातें सुनी ही जाती हैं, फिर उन के करने का अवसर आता है। तुम इस बात की पर्याप्त मत करो कि हम जो कथा में सुनते हैं उस के अनुसार चरता नहीं जाता। तुम तो 'हम सत्संग में अवश्य जाया करेंगे' इसी बात में डटे रहो, फिर तो काम बना बनाया है।

इस के बाद महात्माजी कहने लगे—मैं घर से निकलकर एक समय पढ़ने के लिए काशीजी गया। वहाँ एक वैभवपूर्ण मठ देखा, जो एक महंत के अधीन था, मठ में किसी भी उपभोगसामग्री की कमी नहीं थी, महंतजी को बहुत लोग मानते थे। उस स्थान और मन्दिर के अध्यक्ष बृद्ध होने के कारण उमे त्याग देना चाहते थे। मुझे उस मन्दिर की अव्यक्तता प्राप्त करने का लोभ हुआ। इस कारण मैं वहाँ नित्य जाकर बहुत देर तक व्रत, साधन, भजन, उपामना आदि करने लगा। एक दिन मुझे आकाशवाणी हुई कि देवदत्त! यह क्या? 'तू यह सब व्रत उपासना धुध लालसा की पूर्ति के लिए कर रहा है? ऐसा मत कर (उपासना करने से, चाहे वह स्वार्थ के कारण ही थी, हृदय में कुछ पवित्रता

आ गई, अतः इत्यरूप आकाश से यह प्रेरणा हुई, यही आकाशवाणी या देवप्रेरणा थी जो दम्भ के निषेध की आज्ञा दे रही थी। मैं इस प्रकार की देववाणी सुनकर अपने दम्भपूर्ण व्यवहार पर सप-
श्चात्ताप सोचने लगा—'मैंने एक वर्ष तक सख्पट सक्रामभाव से ईश्वर की उपासना की, प्रभु के ऊपर सदा प्रेम और विश्वास छोड़कर लालच में फँसा रहा। यह कितनी शर्म की बात है, पवित्र अन्तःकरण से मैंने भगवान् की उपासना नहीं की। महती की लालसा से स्वार्थी बना रहा।'।

दूसरे दिन उस नगर के कुछ भद्र पुरुष, जो महतवी के सेवक और मठ के भक्त थे, मन्दिर में दशन करने आये और कहने लगे कि इस धर्मालय की उन्नति और प्रवृद्ध के लिए किसी योग्य पुरुष को अध्यक्षरूप से नियुक्त करके उपदेशक चुनने की आवश्यकता है। ऐसा विचारकर सब लोग की दृष्टि मेरे ऊपर पड़ी, उन्हें उस समय मैं ही सब से योग्य दृष्टिगोचर हुआ। इस कारण उपासक भक्तों ने मेरे पास आकर उस मन्दिर और मठ के अध्यक्ष-
पद ग्रहण करने की प्रार्थना की। मैं अपने मन से सोचने लगा—हे प्रभो, मैंने कष्टभाद से एक वर्ष पर्यन्त आप की उपासना की किन्तु उस समय किसी ने मेरी तरफ ओंख उठाकर नहीं देखा, आज आप को हृदय अर्पण किया और यथार्थ विश्वास धारण किया, तब इत भलेमानुषों को आप ने मेरे पास भेजकर अध्यक्षपद अर्पण करने की कृपा की, किन्तु अब मैं भार की मडिमा की शपथ खाकर कहता हूँ। मेरे मन में अध्यक्षता की अभिलाषा नहीं रही। मुझे तो दुन्दारी चाह है, तुम सब जगह हो, यह विचारकर मैं मन्दिर और मठ के बाहर निकल गया।

उस के बाद मैं अवन्तिकापुरी चला गया, वहाँ

पड़ौस में एक महापालण्डी और उपद्रवी युवक रहता था, उस की हरकतों से सुखित कुछ भले आदमियों के साथ मैं उसे शान्ति तथा प्रेम से समझाने गया। यह अक्ल कर बोला—जानते नहीं हो, मैं राजा का प्रेमाश्रित हूँ। मुझे कुछ भी कहने की किसी मे सामर्थ्य नहीं है। हम में से एक आदमी के यह कहने पर कि हम राजा के पास जाकर फर्याद करेंगे, वह बोला—श्रीक है, जाओ, राजा मेरा ही पक्ष लेगा, मैं जो कहूँगा उसी में वह भी सहमत होगा। इस से निराश होकर सब लौट आये। उत्तरोत्तर उस युवक के उपद्रव से अन्त छागों को लेकर एक दिन मैं फिर उसे समझाने चला तो सबने राते में यह आकाशवाणी सुनी कि रायरदार। तुम मेरे भक्त के ऊपर दृष्टक्षेप नहीं करना, यह सुन सब चकित हो गये और कहने लगे—यह दुष्ट प्रभु का ध्याय कब से ? मैंने कहा—मैं अकेला जाकर देखता हूँ कि बात क्या है ? मेरे जाने पर उस नीजवान ने पूछा, फिर कैसे आना हुआ ? मैंने कहा—मैं तुम को एक वस्त्र भेजता सुनाने आया हूँ, तुम प्रभु के सखा हो, ऐसी दैवी वाणी सुनी है। युवक ने कहा—महोदय, मुझे अपने कर्तव्य पर पश्चात्ताप है, फल के गत दिन से मेरे मन में परिवर्तन हो गया है, मैं सब से क्षमा याचना करूँगा, मेरे पास जो कुछ है, उसे प्रभु के नाम पर छोड़ दूँगा। ऐसा कहकर वह अपनी कुछ संपत्ति का गरीबों को दान करके चला गया, इस के बाद किसी नागरवासी ने उसे वहाँ नहीं देखा। बहुत वर्षों बाद मैंने उसे काशी में देखा, वह कृणवन् दुर्बल था और मरणोन्मुख था। मुझे देखकर उस ने कहा—मैं जाने बन्धु प्रभु के पास जा रहा हूँ, उस के बिना मन नहीं लगता, अपने कृत्यों पर पूरा पूरा पश्चात्ताप करता हूँ। मैं अपने अपराधों का फल

भोगने को तैयार हूँ, और यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि फिर कभी ऐसे कृत्य नहीं करूँगा।

इस के अनन्तर मैं ने यहाँ (काशी में) नियमपूर्वक संन्यास धारण कर लिया, अब मैं बहुत दिनों से मिश्राज और खटाई नहीं खाता, जूता और सिला हुआ वस्त्र भी नहीं पहनता। तमाल, ताम्बूल प्रभृति पदार्थों को छूता तक नहीं। घर घर से मधुकरी माँगकर खाता हूँ। अब मेरा शरीर पुष्ट और मन तुष्ट है, मुझे प्रभु ही इष्ट है और सब दुष्ट है, यह स्पष्ट कहता हूँ।

एक दिन अस्वस्थ दशा में मेरी इच्छा मिठाई खाने की हुई। कुछ छिन धैर्य धारण करते रहने पर भी मैं इस लालच को नहीं रोक सका। एक दिन कहने पर किसी भक्त ने मिठाई लाकर दी, मैं ने छे तेन बार सूँघ कर कहा कि—अरे मनड़े, तेरे लिए यही भोग काफी है, इस से अधिक उपयोग करना ठीक नहीं, इतना कहकर मैं ने वह मिष्ट पदार्थ एक भित्तारी को दे दिया और कहा—अरे मेरे दुर्बल मन, नियम से रखने के लिए मैं तुझे क्लेश देना चाहता हूँ, किसी वैरभाव के लिए नहीं किंतु मित्र-भाव से ऐसा करता हूँ ऐसा समझना, तू कुछ दिन धैर्य धारण कर, एक दिन दुःख का अन्त आयेगा, जो कभी मिट न सकेगा।

लोग कहते हैं कि जो मनुष्य चालीस दिन तक पौष्टिक आहार नहीं करते, उन की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। पर मैं नहीं समझता, यह उक्ति कहाँ तक सत्य है, बीस वर्ष तक मैं ने ऐसा आहार किया है जिस में घृत दुग्ध जैसे पुष्ट पदार्थों का नाम भी नहीं था, फिर सूखा भोजन भी एक समय ही खाने को मिलता था। मैं नमक खाकर चारह वर्ष सार्य-काल का जलपान करता रहा, किंतु मेरी बुद्धि जरा

भी अवनत नहीं, प्रत्युत उन्नत होती रही। खाने पीने की कोई घात नहीं है। निश्चिन्त जीवन और उत्तम विचारों से शरीर पुष्ट और तेजस्वी होता है। जिन के विचार उत्तम होंगे वे ही दूसरों की अपेक्षा अधिक चिन्तारहित हो सकते हैं। 'चिता चिन्ता द्वयोर्मध्ये चिन्ता तु प्राणघातिनी' की कहावत सत्य है। कहा है—

एके मुर्ग दीदम्, न पावो न पर।

न अज सिकमे मादर, न पुस्ते पिदर ॥

न वर आशमां, न जेरे जर्मां।

हमेशः खुर्द गोस्ते, आदमी ॥

अर्थात् हम ने एक ऐसा मुर्गा देखा है जिस के पाँव और पंख नहीं, न माता पिता से ही पैदा हुआ है, न वह आकाश के नीचे रहता है और न पृथ्वी पर, मगर उस में यह सामर्थ्य है कि प्रतिदिन मनुष्य का मांस खाया करता है। इस रूपक में जिस मुर्गे का वर्णन है वह 'चिन्ता' है।

संन्यासीजी ने अपनी स्पीच जारी रखते हुए कहा—एक समय नैमिषारण्य में मेरे लिए एक वृद्धा स्त्री ने 'कयटी, शब्द का प्रयोग किया।' मैं सुनकर सोचने लगा—ठीक है, बीस वर्ष से मुझे इस यथार्थ नाम से किमी ने नहीं बुलाया, आज इस बूढ़ी दादी ने सच्चे नाम से पुकारा है। मैं जैसा आदमी हूँ, यह बराबर पहचान गई। मेरा आह्वान तो इस में ठीक नाम से किया है, इस में कोई संदेह नहीं, यह कैसे जाना, यही आश्चर्य की बातें हैं? इस के बाद मैं ने बूढ़ी दादी से पूछा—आप ने मेरा नाम तो यथार्थ लिया, पर यह कैसे जाना कि यह नाम ठीक है? उस ने कहा—तू संन्यास धारण करके भी आत्म-चिन्तन नहीं करता, इधर उधर मारा मारा करता है।

उत्तमा सहजाधस्या, मध्यमा ध्यानधारणा ।
कनिष्ठा प्रतिमापूजा, तीर्थयात्राऽधमाऽधमा ॥

क्या तू नहीं जानता कि आत्मविन्दनपरायण
सन्यासी के लिए उपासना, ध्यान, पूजा और तीर्थोदि
बहुत पहले की बात हो जाती है, ये तो मन्द, कनिष्ठ
अधिकारियों की चित्तशुद्धि के साधन हैं, तुझे तो इन
संघ से आगे बढ़ना था, पर नहीं बढ़ा, किंतु पाना
बढ़नेवालों का धारण कर रखा है, अतः तू 'कपटी'
नहीं तो क्या है? बुद्धि का कथन का प्रभाव मेरे ऊपर
पड़त पड़ा, इसी से अब निश्चल होकर भगवती भागी-

रथी के तदवर्ती 'सिद्धाश्रम' में कुछ काल निवास
करने का विचार कर लिया है ।

यदि कोई कहे कि इस आश्रम से जो तुम सत्र में
अधिक अधम हो, उस को बाहर निकाल दो, तो तुम
ही बाहर निकलना पड़े, क्योंकि मैं ही ऐसा गया
गुजरूँ हूँ ।

महात्माजी भ्रमणवृत्तान्तपुरासर, शिक्षापूर्ण विल-
क्षण उपदेश देकर चुप हो गये । 'बल से आश्रम में
इसी समय 'गीतार्थ' के रहस्य का विवेकसमन्वित
विवेचन जित्य हुआ करेगा' ऐसा निश्चय बरते सत
सभा समाप्त हुई ।

धृष्टी का मूल तत्त्व

(छे—स्वामी श्री रामविलासजी महाराज राजबेग)

देश, काल तथा प्रकृति के अनुकूल ससार के
समस्त प्राणियों को धर्म, शोक एवं व्याधि आदि में
मस्त होना पड़ता है । यह व्याधिबक किसी को
भी नहीं छोड़ता, छोटे बड़े सब को अपने पय का
अनुसरण करा देता है ।

अप्रितत्त्व की प्रधानता

सब प्राणियों की रचना पञ्चमहाभूत और
सप्तधातुओं से निर्मित हुई है । उस में भी विरोध
कार्य करने के लिए अप्रितत्त्व प्रधान माना गया है ।
परिच शरीर में यदि अन्य तत्त्व घट जयवा बढ़
जायें, तो शरीर बना रह सकता है, परंतु अप्रितत्त्व
में विरोध अन्तर आ जाय, तो शरीर नष्ट हो जाता
है । अप्रितत्त्व से ही अन्य तत्त्वों के स्थायी बने
रहने की संभावना रहती है । अतएव समस्त

तत्त्वों में अप्रितत्त्व ही प्रधान है । अप्रितत्त्व
विरोध रूप से लोहे में ही रहता है । यद्यपि लोहा
सप्त धातुओं में से एक सामान्य धातु माना गया है
और मूल्य में भी अन्य धातुओं से अत्यन्त कम है
वदापि जब अप्रितत्त्व को स्थापित करने की आव-
श्यकता पड़ती है, तो उस समय मूल्यवान् धातुओं
को गौरवरूप से उस के साथ कार्य करना पड़ता है ।
प्रधान कार्य तो लोहे का ही रहता है ।

शरीर में जब अप्रितत्त्व कम हो जाता है तब
यकृत (लोवर) बराबर कार्य नहीं करता है । उस समय
अप्रितत्त्व को स्थायी बनाने के लिए लोहमय औषध
को देते हैं । यह दुरंत अप्रितत्त्व को स्थायी बनाना है
और अन्य धातुओं को अपने कार्यों में जुटा देता है ।
इस प्रकार प्रकृति स्वयं बलवान् बन जाती है ।

शरीर में जितना यकृत (लीवर) कार्य करता है उतना और कोई यन्त्र नहीं। यकृत ही जीवन है और यही सब यन्त्रों का पोषक है। यही पाचन-क्रिया करता है। यही रक्त बनाता और रंजक क्रिया भी करता है। यह एक ऐसा यन्त्र है जिस के कमजोर होने से सभी यन्त्र असफल होने लगते हैं अतएव सभी यन्त्रों में जिस प्रकार प्रधान यकृत है उसी प्रकार सप्त धातुओं में लोह प्रधान है।

मुख्य विषय

संसार को महान् बल तथा अपूर्व सत्ता प्रदान करनेवाली धातु केवल लोहा ही है। लोहा के बिना निश्चित रूप से प्रत्येक प्राणी जड़ अथवा चेतन के कार्य में बाधा अवश्यमेव उपस्थित होनी चाहिए। चेतन शरीर के विषय में पहले बहुत कुछ लिख गये हैं, अब जड़ वस्तुओं की ओर हम पाठकों का ध्यान आकर्षित करते हैं।

जगत् में जितने आविष्कार आज दृष्टिगोचर हो रहे हैं, उन सब में लोहा का ही विशेष रूप से प्रयोग किया गया है। जहाँ अन्य मूल्यवान् वस्तुएँ नहीं ठहर सकतीं वहाँ यही लोहा अपने आत्मबल से अपनी सत्ता को कायम रखते हुए विजय प्राप्त करता है। इस समय भौतिक वृत्तवेत्ताओं ने जितना अधिक कार्य लोहा से लिया है, उतना किसी अन्य धातु से नहीं लिया है यदि लिया भी है, तो गौण रूप से उस के साथ। पञ्चमहाभूत और सप्तधातु ही शरीररचना में सहायक हैं और इन भिन्न धातुओं का न्यूनाधिक होना ही रुग्णावस्था का मूल कारण है। और उन को स्वाभाविक अवस्था में स्थापित करना ही नैरोम्यावस्था है।

गौरूपी पृथ्वी अस्वस्थ

धर्मशास्त्र में पृथ्वी को गौरूपी कहा गया है। अतएव उस के पार्थिव शरीर में पञ्चमहाभूत और सप्तधातुओं को स्थापना अवश्य की गई है। इस प्रकार उस में सभी यन्त्रों का भी होना आवश्यक है, तब उस में यकृत भी अवश्य है। वर्तमान समय में गौरूपी पृथ्वी में अनितरत्व की विषमता है। वह अपना कार्य सुचारु रूप से संपन्न करने में सर्वथा असमर्थ सिद्ध हो रहा है। अतः प्रकृति गौरूपी पृथ्वी की रोगनिवारक क्रिया करना चाहती है। संभव है कि गौरूपी पृथ्वी को निरोग बनाने के लिए ही इस प्रकृति ने महासमर की रचना की हो? प्रायः यह देखा जाता है कि पृथ्वी से जितना लोहा निकलना चाहिए था उस से कई लाख गुना अधिक लोहा निकल जाने से गौरूपी पृथ्वी का लोहात्मक यकृत कमजोर बन गया। अब प्रकृति इस को चलवान् बनाना चाहती है, इसी लिए अपरिमित संख्या में बने हुए लोहे के यन्त्र व जहाज आदि समुद्रदेव में विलीन हो रहे हैं। समुद्रदेव भी बड़बानल द्वारा इस लोहे को द्रवीभूत बनाकर अपने स्रोतों द्वारा लोह की खदानों को पुनः भरने का प्रयत्न करेंगे। इस प्रकार इस निःस्सार पृथ्वी के अन्तर्गत पुनः लोहे की उपयुक्त मात्रा में पहुँचाकर उस के यकृत को ठीक किया जायगा, और सभी वह निरोग होकर अपना कार्य सुचारु रूप से संचालन करने में सफल हो सकेंगे। यकृत की प्रकृति विशुद्ध लोहा के परमाणुओं से ही बनाती है। यह समानः धील और परस्पर प्रभाव प्रेम का उत्पादक है। इसी

लिए असह्यात मनुष्यों के जोहात्मक यकृतस्वी गोलीयों का भोग लेकर प्रकृति पूर्ण रूप से गौरवी पृथ्वी का उपचार करने में निमग्न है। इस प्रकार जब इस पृथ्वी का उपचार हो जायगा, तब युद्धादि समस्त विषय छुण भर में शान्त हो जायेंगे।

यकृत का स्थान

गौरवी पृथ्वी के यकृत का स्थान आगे दोनों पैरों के नीचे तलभाग में मान लिया जाय, तो हिमा छय आदि छय प्रदेश उस का मस्तिष्क ही होना चाहिये। तलभाग में जो यकृत का स्थान माना गया है संगतत वह पाश्चात्य अगत और भूमध्य रेखा के देश हो हों। क्योंकि य हो भूभाग युद्ध स्थल के केन्द्र हैं। यह सब स्त्रावी यकृत के विगटने के कारण हो हुई है। जब जब ऐसी विपत्ति घमस्यापे घपलित होती हैं तब तब प्रकृति अनक रूप से सादयोग लेकर जगत का कहयाण क्रिया करती है। यहा शाखवाद है।

श्री गीता भगवती भी प्राणीमात्र को विश्वास

दिताती है कि जब जब धर्म को हानि होती है और अधर्म बढ़ता है तब तब श्री कृष्णजी महाराज प्रति युग में अवतार धारण कर धर्म की स्थापना करते हैं। अधर्म बढ़ जाने से धर्म में विकार उत्पन्न हो जाता है, तब धर्म समय पाकर पुनः अपने स्वरूप में जाने का प्रयत्न करता है। तब प्रकृति के योग से श्री भगवान् संरक्षक बनकर धर्म को पुनः उस के पूर्ण स्वरूप में लाते हैं।

इसी प्रकार पञ्चमहाभूत और समधातु परस्पर विकारी बन गये। आविष्कारनिर्माताओं ने उन को परस्पर इतना विकारी बना दिया कि वे अब सम अवस्था में रह नहीं सकते। अतएव पञ्च-महाभूत और सतधातु अब समय पाकर प्रभुमेरुण से निमित्त कारणों द्वारा पुनः अपने शुद्ध स्वरूप को प्रकृति कर रहे हैं। प्रकृति भी उन को सहायक बन रही है। अब किसी की ताकत नहीं जो इन के मार्ग में बाधक बन सके। यही सचो घटना है—आगे भगवान् जानें।

साक्षात्कार

(१०—स्वाजी भी गाविन्गलन्दी महागज, परिश्रान्तक)

यद् तन कुक्षेत्र कहलवे ॥ टेव ॥

धर्मसेव सेवक युधिष्ठिर, सत्य ज्ञान ऋषि छावे ।

साधन चार वग्नु पुरसपत, पाण्डवमेव सुहावे ॥ १ ॥

अज्ञानान्ध भूष दुर्पोषन, इष्ट अघरम मद भावे ।

शन भ्राता फोरव आभुरि मत, असत पय अपनावे ॥ २ ॥

सप्त अर्धाहिणी सात भूमिना, धर्मध्वजा पहनावे ।

मन इन्द्रिय ग्यारह अर्धाहिणी, निर्बन्ध सैन्य लखावे ॥ ३ ॥

श्री कृष्ण पूरण परमात्मन्, गीताशास्त्र सुनावे ।

भारत मक्त सारणी 'गोविन्द', युद्ध विजय भी पावे ॥ ४ ॥



कलिकाल का उपयोग

(ले०—स्वामी श्री शिवानन्दजी योगिराज, वैद्य, धन्वन्तरिगुरु)

हम ने इस पत्र के गत अङ्क में हेय बुद्धि से कलिकाल के दोषों का कुछ विगदर्शन कराया था। उस में हम ने आधुनिक जनसमुदाय की अनिष्ट मनोवृत्तियों का खाका खींचा था। यह तो आप जानते ही हैं कि ईश्वर की सृष्टि गुणदोषमय है। पहले हम ने जैसे कलियुग के दोष बताये थे, आज हम उस के गुणों का अनुसंधान करते हैं। जैसे दोष मालूम होने पर बुद्धिमानों को उन से बचने में सौकर्य हो जाता है, उसी प्रकार किसी के गुणों के प्रतीत होने पर उन से जेहास लाभान्वित हो जाते हैं। इस अवबुद्धनीय समय में भी मनुष्यों के उद्धार का उपाय हमारे ऋषि, मुनि, आचार्य संतो ने बताया है, जो इस प्रकार है—

कलैर्दोषनिधेः राजन् । अस्ति ह्येको महान् गुणः ।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तबन्धः परित्रजेत् ॥
कृते यद् ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मरुतैः ।
द्वापरे परिचर्य्या कलौ तद्भिरकीर्तनात् ॥

कलियुग दोषों से भरा पड़ा है, पर उस में एक यह गुण भारी है कि उस काल में भगवान् के नाम-कीर्तनमात्र से पुरुष का उद्धार हो जाता है। सत्ययुग में जो भगवान् के ध्यान से प्राप्त होता है और त्रेता में यज्ञ करने से तथा द्वापर में परिचर्या से जो गति प्राप्त होती है वह कलिकाल में रामनाम लेनेमात्र से हो जाती है। विष्णुपुराण और अग्निपुराण में लिखा है—
'मैं कलियुग से इस लिए खुश हूँ कि उस में थोड़े ही परिश्रम से धर्म प्राप्त हो जाता है।' ब्रह्माण्ड, विष्णु और ब्रह्मपुराण में लिखा है—'जो काम सत्ययुग में दश

वर्ष में, त्रेता में एक संवत् में और द्वापर में एक मास में होता है, वह काम कलियुग में एक रात दिन में सिद्ध हो जाता है।' जो फल और गुणों में अर्थात् सत्ययुग में तपश्चर्या से, त्रेता में ब्रह्मचर्य से और द्वापर में जप से प्राप्त होता है, वह कलियुग में सत्य बोलनेमात्र से मिल जाता है। स्कन्दपुराण के काशी-खण्ड में लिखा है—'कलियुग में विश्वेश्वर ही एक देवता हैं, काशी ही एक पुरी है, भागीरथी ही एक गङ्गा है।' कलियुग में एक दान ही सब से विशेष स्थान रखता है। सत्ययुग का देवता ब्रह्मा माना गया है, त्रेता का सूर्य, द्वापर के विष्णु और कलियुग में महादेव ही एक देव माने गये हैं। मत्स्य और स्कन्द-पुराण में लिखा है—'जहाँ तहाँ सर्वत्र हाहाकार से पूर्ण घोर कलियुग की भयानकता को जानकर जो मनुष्य काशीपुरी को नहीं त्यागते, वे ही छुटार्य माने गये हैं, क्योंकि सब पापों का प्रायश्चित्त काशी नगरी में ही हो सकता है। भविष्यपुराण का कथन है—
'सत्ययुग में सभी तीर्थ हैं, यानी सत्ययुग में अपनी अपनी जगह सभी तीर्थ मान्य हैं, किंतु त्रेता में पुष्कर, द्वापर में कुरुक्षेत्र और कलियुग में गङ्गा ही तीर्थ मानी गई है। यथा—

कृते सर्वाणि तीर्थानि, त्रेतायां पुष्करं स्मृतम् ।
द्वापरे तु कुरुक्षेत्रं, कलौ गङ्गैव केवलम् ॥

समकक्ष आदमी यदि अल्प आयास में भुक्ति, मुक्ति फल प्राप्त करना चाहे, तो उसे तीर्थों का आश्रयण करना चाहिए, विशेष रूप से कलिकाल में तो गङ्गा की शरण में जाना ही श्रेयस्कर है।' एक जगह यह

भी लिखा है—'सत्ययुग में तप प्रधान है, त्रेता में ज्ञान, द्वापर में यज्ञ और कलियुग में दान की महिमा अधिक है।' सच पूछो, तो कलियुग में गोविन्द, गीता, गङ्गा, भिखु, कपिला गौ, पीपल, और एकादशी ये ही सात पदार्थ मुख्य हैं। यथा—

हरिगीता तथा गङ्गा कपिलाभृत्यभित्तवः ।

वासरं पद्मनाभस्य चाष्टमं न कलौ युगे ॥

कलिनोपशमनाय नारायण का नाम सर्वोपम
उपाय है, यथा—

प्राणप्रयाणपाथेयं संसाररूपाधिभेषजम् ।

दुःखशोकपराधानं हरित्यक्षरद्वयम् ॥

स्कन्दपुराण में तो यहाँ तक लिखा है—

अमरूपभसणात् पापपाण्यागमनादिभ्रम् ।

नश्यते नात्र सन्देहो गोविन्दस्य च कीर्तनात् ॥

स्वर्णस्तेयं सुसापानं गुरुदाराभिर्भक्षणम् ।

गोविन्दकीर्तनात् सद्यः पापं याति महाभुजे ॥

पुराणों में नारायण के नाम की महिमा बहुत विस्तार से लिखी गई है, यहाँ उस का रिन्दनभाव कराया गया है।

हम ने ऊपर कलिकाल की भयानकता का वर्णन करके उस से बचने के कुछ उपायों को बताया है। तब तो कलियुग के पाप से अनायास बचना हो, याने उन से बचकर साफ निकल जाने की इच्छा हो, उन्हें शंकरजी की भक्ति, काशीपुरी का निवास और गङ्गाजी का स्नान इन तीन तत्त्व के पदार्थों को कराना चाहिए। क्योंकि—

कलौ रुद्रो महादेवः शङ्करो नीललोहितः ।

भक्त्याश्रये मतिष्ठार्यं परमस्य विष्णोः कृतिः ॥

शिवपूजापरा ये तु शिवनामपरायणाः ।

११२

त एव शिवमुपास्य पौरे कलियुगे दिनाः ॥

शिवपुराण में लिखा है—

ध्यानं परं कृत्युगे त्रेतायां यज्ञं परम् ।

द्वापरे प्रतिमापूजा कलौ शङ्करकीर्तनम् ॥

स्कन्दपुराण में काशीवास के साहाय्य का उल्लेख इस प्रकार मिलता है—

'महादेवजी कहते हैं कि हे पाण्डुपुत्र ! अब पौर

कलियुग आ गया, अब मैं काशीपुरी में जाकर रहूँगा।

इस युग में सभी मनुष्य बर्णवर्णमर्यादाहीन हो जायेंगे,

उन के उदार का उपाय केवल काशीपुरी का निवास ही है।

जो विप उस नगरी को छोड़कर कहीं पर नहीं जाता, वह कलियुग के दुष्ण को जीत सकता है—

कलिकालकृतं कर्म त्रिकण्टकमितीरितम् ।

एतत् त्रयं न प्रभवेदानन्दवनवासिनाम् ॥

कहाँ तक कहे, आकरग्रन्थों में काशीनिवासफल के रवे बड़े प्रकरण लिखे मिलते हैं।

कलियुग के भयानक पापों से बचने का प्रधान उपाय गङ्गातटनिवास है, जो काशीवासी को अनायास प्राप्त हो जाता है—

अनाथित्यं तु गङ्गां हि क्षुत्तिमिच्छति यः कलौ ।

सूर्यं ब्रह्ममहोद्युक्तो ज्ञान्यन्धसदृशस्तु सः ॥

दृष्टा कुलं दृष्टा विद्या दृष्टा यज्ञा दृष्टा तपः ।

दृष्टा दानानि तस्येदं कलौ गङ्गां न याति यः ॥

सूत्र—

गङ्गाभेद निषेवेत प्रपाणे तु विशेषतः ।

ज्ञान्यत् कलियुगोद्भूतं मलं हन्ति सुदुस्तरम् ॥

कलौ कलुषचित्तानां पापद्वन्द्वरतात्मनाम् ।

विधिहीनक्रियाणाञ्च गतिर्गङ्गां विना नहि ॥

(१) यदि कलिकाल में कोई तीर्थ है, तो वह 'गङ्गा' ही है, क्योंकि चाहे आस्तिक हों, चाहे नास्तिक इस में स्नान करनेवालों के बाह्याभ्यन्तरीण, जन्म-जन्मान्तरीय 'मल' दूर हो जाते हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि नित्य गङ्गास्नानी कदापि मलयुक्त नहीं रह सकता। गङ्गा के अमृत में स्नान करने-वाला दृष्ट तथा अदृष्ट दोनों फलों को पा जाता है।

(२) इसी तरह कलियुग में जो कुछ करने योग्य काम, व्यापार या क्रिया है तो वह 'दान' ही है, क्योंकि इस से न मालूम, कब तक का दृष्ट 'विशेष' नष्ट हो जाता है। जब कि धन का सत्प्राप्त में प्रिनियोग हो गया तो फिर 'विशेष' किस बात पर रह गया? जगत् के सब युद्धादि विवाद धनहेतुक हैं, जबकि धन का अर्थी के प्रति उचित प्रयोग हो गया, यानी आवश्यकताओं को दान दे दिया गया तो फिर 'विशेष' अर्थात् वाद विवाद का प्रसन्न ही नहीं रह गया।

३—ऐसे ही कलियुग में कहीं रहने योग्य स्थान है तो वह 'काशी घाम' ही है। क्योंकि यहाँ विद्वान् महापुरुषों के नियम के समागम से कठोर हृदय का भी,

अनादिकाल से संश्लिप्त 'आवरण' दूर हो जाता है। 'आवरण' यानी परदे के हट जाने से हमारी शक्ति अप्रतिबद्ध हो जाती है।

तात्पर्य यह है कि मनुष्य को अभ्युदय और निःप्रेयस की सिद्धि के लिए; मल, विशेष, आवरण रूप दोषों का निराकरण करना सर्वप्रथम अत्यावश्यक है, इनकी निष्कृति गङ्गास्नान, दान और काशीवास है।

समय बहुत बुरा आ गया है, या मनुष्यों की बुद्धियों ने समय को अत्यधिक दूषित कर दिया है। जो भी हो, पर जो हो रहा है वह ठीक नहीं हो रहा है। जहाँ देसो, जिस स्थान और स्थिति को ले ले सब जगह विनाश होता ही अधिक नजर आ रहा है। कहीं भी रचना होती नहीं दिखाई देती। किससे कहें, कौन सुनता है? सुनकर भी कोई क्या करने की सामर्थ्य रखता है? वह ईश्वर का नियति-चक्र कभी स्थिर नहीं रहता। जिस काल का हम ऊपर वर्णन कर आये हैं उसे सद्मन्थों में ऋषि, मुनि, ज्ञानी तथा संतो ने 'कलिकाल-महाकाल' बताया है। उससे उबरने का उपाय.....स्नान, दान औरचास है, घस।

समय खराब है

(ले०—श्रीमती विभूतिदेवी, अष्टापिका)

अब समय नाजुक आ गया है, सभी अपनी अपनी रक्षा का उपाय सोच रहे हैं और उस में लगे भी हैं। स्वीकृति को भी अब पैठे नहीं रहना चाहिए, हम यह मत समझें कि चहारदीपारी के परदे में हम उन्नी चैन में स्थिर बैठी रहेंगी, जैसी आज तक पैठी रही हैं। समझ लो, प्रकृति किसी को

मदा एकरम नहीं रहने देती या तो आगे बढ़ना होगा, या पीछे हटकर गिरना होगा। जब वेद में शान्ति थी उस समय पुरुष बाहर के काम में लगे थे और स्त्रियों गृहकार्य में तल्लीन थीं, अब देश अज्ञान है, शत्रु मुक्त का दरवाजा खटखटा रहा है। ऐसे समय अन्यान्य कामों के साथ 'स्वीक्षा' का कार्य

भी सामने आ गया है, इसे हल करना होगा, पुरुषों को भी और स्त्रियों को भी। 'स्त्रियों की रक्षा कैसे होगी ?' यह प्रश्न देशरक्षा के सवाल से किसी तरह कम महत्व का नहीं है, स्त्रियों को बमगोलों का उतना भय नहीं है जितना अपनी इज्जत और रुकी रक्षा का है। जब अपने ही देशवासी अपने देश की रक्षाओं पर आक्रमण करते लगे जायेंगे, उस समय इन की रक्षा कैसे होगी, कौन करेगा ?

रूस, चीन आदि स्वतन्त्र देश हैं, वे संगठित हैं। वहाँ की नारियों ने इन अत्याचारों से किसी प्रकार अपनी रक्षा कर ली होगी। स्वदेश की प्रतिष्ठा व स्वतन्त्रताप्रेम से इन में भाईचारे का भाव अधिक होगा, जिस से वहाँ के पुरुषों ने उन को स्वाहाप्य प्रदान किया होगा। किंतु भारत की इस के विपरीत दशा है, वहाँ क्या होगा ? यह सोचकर बुद्धि चकप जाती है। क्योंकि यहाँ के लोग दूसरे की विपत्ति को अपनी मुसीबत नहीं समझते। विदेशवासी दूसरे की विपत्ति को अपनी विपत्ति समझते हैं और अपनी विपत्ति का सामना करके उसे मिटाने का यत्न करते हैं, उस के सामने सिर नहीं मुका देते। किंतु यहाँ के लोग अपने को कुछ नहीं समझते, यह सब परतन्त्रता का प्रसाद है जो आपत्ति के समय हमें कुचल डाल सकता है और शान्ति के समय आगे या ऊँचा नहीं होने देता।

पहले स्वतन्त्रता तथा परतन्त्रता का प्रश्न सब से अधिक महत्व का था, किंतु 'हम अपनी रक्षा कैसे कर सकते हैं, विशेषतः अज्ञानता की आवृत्ति कैसे बचा सकते हैं ?' ये सवाल हैं जो स्त्रीजाति को खुद हल करने होंगे। इन में पुरुषों का सहयोग प्राप्त हो सके, तो अच्छा ही है, नहीं तो खुद स्त्रियों को अपना काम आप करना होगा। यदि नारीजाति

अपनी रक्षा, वृद्धि आदि का काम आप अपने जिम्मे ले ले, तो पुरुषों के सिर से जिम्मेदारी का बहुत बड़ा बोझ उतर जाय, जिस से वे देश का कार्य करने में और भी सशक्त हो जायें।

मैं स्त्रीजाति से कुछ निवेदन करना चाहती हूँ, देखिए—स्त्रियों को गृहकार्य ही अधिक करने पड़ते हैं, हमारे देश में पारिवारिक ढंग से रहने की प्रथा है, कौटुम्बिक प्रणाली में एक प्रधान होता है, सभी घरों में कोई न कोई स्त्री प्रधान होती है। जो प्रधान हो उस का चाहिए कि वह अप्रधान और कुटुम्ब के अङ्गस्वरूप दूसरे लोगों का अपने घराने पर ध्यान रखे, उन्हें भरसक कोई कष्ट न होने दे, साथ ही एक दूसरे की निन्दा, शिकायत न करने पावे, और कोई भी ऐसी बात न होने पावे जो शक्ति की विरोधी हो।

मैं स्त्रीजाति में प्रायः इस बात का अधिक अभ्यास देखती हूँ कि उन की बातों में और व्यवहार में दूसरे की तीव्र तथा क्रुद्ध समालोचना और ईर्ष्या का भाव भरा होता है। वे किसी स्त्री की जरा सी भूल को बदमाश नहीं कर सकतीं। वे किसी स्त्री हलकी सी गलती की बात सुन पावें फिर तो इन की हज़ारों जवान कैंची की तरह दूसरे के कलेजेरूप चरम को कतरने पर आमादा हो जाती हैं। इन का यह स्वभाव विशेष हानिकर है। इसी दोष के कारण पुरुषों ने इन्हें पाँव की जूती तक की धमका दे डाली है और इसी से नित्य अपमान सहन करने पड़ते हैं। ईर्ष्या द्वेष पुरुष में भी होते हैं, पर वे संगठित हैं, सभी तरह की शक्ति के एकमात्र अधिपति हैं और उन्नति के सब साधन इन के हाथ में हैं। उन के ईर्ष्या द्वेष उन्हें इतनी हानि नहीं पहुँचा सकते, यदि कुछ हानि हो भी जाती है, तो वे उसे बदमाश करने

की ताकत रखते हैं। पर तुम में इतना दम नहीं है, जिस भार को हाथी वहन कर सकता है उसे बकरी नहीं उठा सकती। कुटुम्ब का अन्तरङ्गभार तथा प्रबन्ध तुम्हारे जिम्मे है, उस में तुम्हें उदारता से बरतना चाहिए। ऐसा न हो कि जैसे—

एक स्त्री का स्वभाव अच्छा नहीं था, वह अपनी बूढ़ी सास के साथ अच्छा सल्फ नहीं करती थी सास को मड़े गले चोकर की कधी जली रोटी और दाल का बेस्वाद पानी देती थी, वह भी मिट्टी के पात्र में। उस स्त्री के बेटे की बहू आई। वह स्त्री बहू से नई होने के कारण प्यार करती थी, तथा बहू के हाथ से सास को भोजन पहुँचाया करती थी। बहू जब बड़ी सास को भोजन करा चुकती, तो जो मिट्टी के पात्र होते, उन का घर के एकान्त कोने में जमा कर देती थी। थोड़े दिनों में मिट्टी के बर्तनों का ढेर लग गया। एक दिन उस तेजमिजाज स्त्री ने पूछा—ये मिट्टी के जूटे पात्र क्यों इकट्ठे करती है, ये हमारे किस काम के? पुत्रवधू ने उत्तर दिया—माताजी, जब आप बुढ़िया हो जायँगी, आप का पौष्टिक धक जायगा और घर की मालिक मैं बनूँगी, तब मैं आप को किस में खाना दूँगी या भेजूँगी, रोज रोज के लिए इतने मिट्टी के बर्तन कहाँ से आवेंगे? आये भी तो दाम गर्जने पड़ेंगे, ये सब आप के लिए इकट्ठे कर रही हूँ। यह सुनकर उस स्त्री को होश आ गया, नया मा उतर गया। उस दिन से बूढ़ी अतण्व लाचार सास को देवी की तरह पूजने लगी।

इसी तरह अपनी औरत की शिकायत सुनकर एक आदमी ने अपने पुत्र से कहा—‘हमारे पाप को बाने अपने दास को एक कम्बल देकर घर से बाहर गिराए दो, इन को आदत पर मे रहने लायक नहीं

है।’ लड़के ने आधा ही कम्बल दिया। लड़के की किरपायतसारी देखकर पिता खुश हो, हँसकर बोला—बेटा, कम्बल आधा फाड़कर अपने पास क्यों रख लिया? पुत्र ने जवाब दिया—आप के लिए रख छोड़ा है आप को बुढ़ापे में घर से निकालने के समय पूरा कम्बल खराब करना पड़ता, यह सुनकर पिताजी की आँखें खुल गईं।

बहने! कहने का मतलब यह है कि तुम लोग अधिकार पाकर उस का दुरुपयोग मत करो, किसी की घुराई मत किया करो, जब कभी इकट्ठी हुआ करो, कुछ अच्छी बात कहा सुना करो, जो इधर बधर की बातें करती हो, उन को मना कर दो यदि बस न चले तो वहाँ से उठ जाओ। जब तुम किसी की निन्दा सुनेगी नहीं, तो कोई तुम्हारे सामने ऐसा किया भी नहीं करेगा।

दूसरी बात यह है कि अपने अमूल्य समय को बनाव शृङ्गार में ही मत बिता दिया करो। रुपया फूँकर कृत्रिम उपायों से सुन्दर बनने की कोशिश करनी छोड़ दो। असली सुन्दरता योग्यता से है। अब आवश्यकता बीराङ्गना बनने की है। विलासी जीवन मनुष्यत्व को नष्ट कर देता है। फ्रांस देश जो कभी चोदाओं में अप्रसन्न माना जाता था, विलास से पड़कर बरबाद हो गया। इंग्लैंड को भी विलास ने पकड़े जैसा त्यागो और तेजस्वी नहीं रहने दिया। चटकीली रंगीली पोशाक तुम्हारा शृङ्गार नहीं है, विद्या शृङ्गार है, जितना अधिक हो सके पढ़ो, संगठित होओ, घमंड मत करो, घर के छोटे बड़े सब काम निस्संकोच और बिना आलस्य सुशी से कर लिया करो, सेवाधर्म से मत चूको, ऐसे शब्द बोले, मानो फूल धरम रहे हों, गुहियों से मत गेले, गर्दी मत रहे, काम बोले, अधिक सोचो, काम मे

मन मत चुराओ, अपने स्वास्थ्य पर पूरा ध्यान रखो। पहले आर्यनारियों पुराण के बराबर समर्थ होती थीं, लडाइयो में उन की सहायक होती थीं, अब भी भील नियों और घन की गुजरियों का पद भार दें, तो पुरुषों के दाँत बाहर आ जाँय। यह मत समझो कि हम दुर्बल हैं, मूर्ख हैं, नासमर्थ और दीन हैं। 'आमान नावमभ्येत' आदि वचनों से शास्त्र में आत्मलक्षण को पाप बताया है। तुम ही सब कुछ हो, यह बात नहीं है, तो इस में भी संदेह नहीं है कि तुम भी बहुत कुछ हो।

सदा यह वान मत भूलो कि पुरुष और स्त्री ये दोनों समाज के एक अङ्ग हैं और इन की उत्पत्ति का स्रोत भी एक जैसा ही है, पर इन की जीवन की संकलता और चरित्र भिन्न भिन्न हैं। हम में संदेह नहीं कि नारीजाति के दीर्घत्व से समाज कभी फलवान नहीं हो सकता। स्त्रियों को अपने नाजुक होने का बड़ा फल है, पर नाजुकपता तो कमजारी का ही नाम है। तुम्हारी सुकुमारता के कारण ही लग तुम्हें अजला बहने लगे हैं। इतिहासविद्वज्जानते हैं कि पहले नारीजाति दुर्बल नहीं थी। समस्त ससार में जब प्रेमी और प्रेम देवता की अराधना पर उदाहरण दिये जाते हैं, तो मर्रेकूप उपमा दीपक और पतंग की दी जाती है। किंतु यह प्रकट सच है कि पतंग दीपक पर उसी समय तक आकर्षित होता है, प्रभावित होता है, जब तक दीपक में शक्ति रहती है—वह प्रकाशित है, यानी जब तक वह

सुमत्ता नहीं है। किंतु विश्व में आर्यावर्त की महिलायें ही ऐसी हैं, जिन्होंने मुझे दीपक पर यानी मृत पतियों की चिताओं पर एक नहीं बाईस बाईस सहस्र के समूह के साथ जोहरूप नरमेधयज्ञ में अपने को होम दिया, स्वाहा कर दिया। जिस नारीजाति ने मरे हुए पतियों के लिए अपनी जीवनसर्वस्व सुशी सुशी निहावर कर दिया वह अपने व्रतपालन में अत्यधिक मनोबल प्रकट करने के कारण 'अबल' नहीं कही जा सकती।

अब भी वही समय आ रहा है, न मालूम ईश्वर को क्या कबूल है? वह जो करेगा, अच्छा ही करेगा। उस की आज्ञा पालने के लिए तुम तैयार रहो।

मन में मैं आप लोगों से यही कहूँगी—जाप रग-दिरगी पाशाक पहनकर मनचलों की दृष्टि में तिनडी न दन। बेश भूषण, रहन सहन माधुर्य और रिचार उँचे होने चाहिए। भाव गभीर और सगठित होने की जरूरत है। यदि ऐसा न किया जायगा, तो इस भयानक समय में हम लोग अपनी जाति की रक्षा नहीं कर सकेंगी। समय खराब आ गया। आता जाता है। बल्लू पड़ने पर सन आपा-धरौ भ पड़ जायेंगे, उस समय कोई किसी की रीत खबर न ले सकेगा। हमें लिए तुम सत्य बचो, ताकि आपत्काल में अपनी रक्षा कर सको, शान्तिसमय में दूसरों की सहायक हो सको। इस लिए शृङ्गारसामथी का बिन्दुल त्याग कर दो। क्योंकि समय खराब है।



ईश्वर है ? हाँ है

(ले०—महात्मा मो० क० गांधी)

इस जगत् में कोई अवर्णनीय छिपी शक्ति घट घट, कण कण में भरी हुई है। यह मुझे इन आँखों से तो नहीं दिखाई देती है, फिर भी यह प्रतीति जरूर होती है कि वह है। यह अदृष्ट शक्ति हम पर किसी न किसी तरह अवश्य प्रभाव डालती है, उस के वर्णन के लिए कोई विशेषण काफी नहीं हो सकता। क्योंकि वह इन्द्रियातीत है, अपनी इन्द्रियों से हम जो कुछ भी जान सकते हैं उस से वह भिन्न है। फिर भी थोड़े बंश में ईश्वर की हस्ती को सिद्ध करने के लिए बुद्धि, तर्क का प्रयोग हो सकता है। सामान्यतः प्राकृत जगत् में भी हम जानते हैं कि अनेक आदमी अपने राजा को न तो पहचानते ही हैं, न उस के विषय में उन्हें कुछ ज्ञान ही होता है कि वह राजा कैसे और क्यों राज करता है? ऐसा होते हुए भी वे लोग इतना निश्चित जानते हैं कि कोई न कोई राजा अवश्य है। कई बार देशयात्रा में मुझे ऐसे अवोष लोग मिले हैं, जिन को पता न था कि वहाँ कौन राज्य करता है? पूछने पर यही जवाब मिलता था कि कोई देव राज्य करता होगा। इस से यह नवीजा निकलता है कि जब इन लोगों का ज्ञान अपने राजा के बारे में इतना कम है, तो मेरा ज्ञान ईश्वर के बारे में और भी कितना कम होना चाहिए। क्योंकि जितना अन्तर उन लोगों के और उन के राजा के बीच में है उस से बहुत अधिक अन्तर मेरे और ईश्वर के बीच है। ऐसी दशा में यदि मैं उस राज-राजेद्वर परमात्मा का साक्षात्कार नहीं कह सकता हूँ तो इस में कौन सा आश्चर्य हो सकता है? किंतु

प्रकार अनजान गरीब लोग अपने राजा को न

जानते हुए भी यह जानते हैं कि हमारे देश में कुछ न कुछ व्यवस्था जरूर है, ठीक उसी तरह मैं भी जानता हूँ कि इस जगत् में एक बड़ी व्यवस्था कायम है। मैं अनुभव करता हूँ कि इस विषय की प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक जीवधारी एक अविकल नियन्त्रण के मातहत कार्य कर रहे हैं। यह जड़ नहीं हो सकता। क्योंकि कोई जड़ नियन्त्रण चैतन्यमय मनुष्य पर शासन नहीं कर सकता। श्री जगदीशचन्द्र वसु ने सिद्ध कर दिखाया है कि इस जगत् में सब चीजें चैतन्यमय हैं। इस लिए हम यह क्यों न कहे कि जो शक्ति जीवमात्र को नियमबद्ध रखती है वही ईश्वर है। इस में शक्ति, उस का संचालक नियम और नियन्ता एक ही है। परंतु इस लिए कि मैं उस नियम और नियन्ता से अनजान हूँ, कोई अधिकार नहीं है कि मैं उस की सत्ता से ही इन्कार कर दूँ। जिस तरह प्राकृत राजा की हस्ती से इन्कार करने पर उस की हस्ती मिट नहीं सकती, न कोई लाभ ही हासिल हो सकता है, उसी तरह ईश्वर की हस्ती से इन्कार या अज्ञान से कुछ हासिल नहीं हो सकता है। मैं ईश्वरी कानून की पाबंदी से किसी प्रकार छूट नहीं सकता। वस्तुि जैसे प्राकृत राजा की हस्ती और उस के नियमों को मानने से उद्घात उस के शासन में रहना सरल हो जाता है, उसी तरह ईश्वर और उस के नियमों के ज्ञान और स्वीकार से इस संसार में जीवन सरल बन जाता है।

मुझे यह निरन्तर अनुभव होता है कि मेरे इर्द गिर्द सब वस्तुओं में परिवर्तन होता ही रहता है और इस परिवर्तन के अंदर कोई अपरिवर्तनीय तत्त्व

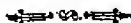
समाया हुआ है, वह अपरिवर्तनीय अविचल शक्ति सब को धारण कर रही है। वही सब को पैदा करती और नाश करती है तथा फिर से रचना करती है। इसी शक्ति को ईश्वर कहना चाहिए। क्योंकि सृष्टि पदार्थमात्र का नाश होता रहता है इस से मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि एक अदृष्ट ईश्वर ही कायम है।

अब प्रश्न यह है कि यह शक्ति पोषक है या नाशक? दैवी है या राक्षसी? मैं उसे दैवी और पोषक स्वीकार करता हूँ। क्योंकि इस सृष्टिमय सत्सार में जीवनप्रवाह अविच्छिन्न रूप से चल रहा है। असत्य नाशवान् है, एक सत्य ही स्थिर है। अँपेरे में भी प्रकाश भरा ही है। इस से यह सिद्ध होता है कि ईश्वर चेतन है, सत्य है, प्रकाशित है। ईश्वर प्रेम की मूर्ति है, वही शुभात्तम ध्रुव है।

परन्तु जो केवल बुद्धि की ही, तर्क की ही संतुष्ट करके रह जाय वह ईश्वर कहाँ से हो सकता है, फिर बुद्धि को ही निश्चित रूप से संतुष्ट करना असम्भव सा है। इस लिए ईश्वर को वही है जो इन्द्र का स्वामी बन सकता हो, जो उस को दिला सकता है। अपने मन्त्र के प्रत्येक कार्य में उस प्रभु की प्रतीति होनी चाहिए और यह प्रतीति तो साक्षात्कार से ही हो सकती है। यह साक्षात्कार इन्द्रियों द्वारा होने-वाले अनुभव से परे होता है। इन्द्रियों का अनुभव मिथ्या हो सकता है, परन्तु इन्द्रियों से परे जो अनुभव होता है उस में भ्रम या गलती नहीं हो सकती। यह बाहरी प्रमाणों से सिद्ध नहीं होता, बल्कि मनुष्य के परिवर्तित जीवन 'काव्यकट' से होता है। यह प्रमाण हमें ऋषि मुनि और सैन्तों के जीवन से, उन के अनुभवों से मिलता है। उन के वचना को न मानना अपने आस्तित्व को न मानने के समान है।

परन्तु इस साक्षात्कार के पहले अचल भ्रमा हावी है। जो मनुष्य ईश्वर का दर्शन करना चाहता है, वह ऐसी भ्रमा रखकर ही कर सकता है। क्योंकि भ्रमा का प्रमाण बाहरी चीजों से नहीं मिल सकता, इस लिए हमें चाहिए कि जगत् के न्याय शासन को स्वीकार करें और विश्वास करें कि जगत् सत्य और अहिंसा पर निर्भर है। यह प्रतीति सत्य और अहिंसा के अभ्यास से आ सकती है। मुझे स्वीकार करना होगा कि भ्रमा का प्रमाण मैं बुद्धि के द्वारा नहीं दे सकता, भ्रमा बुद्धि से परे है। इस लिए किसी को असम्भव को सम्भव बनाने की चेष्टा न करनी चाहिए। पापवृत्ति के अस्तित्व के लिए तर्क द्वारा कोई कारण नहीं बताया जा सकता। ऐसा करने की इच्छा करना ईश्वर के साथ मुकाबला करने जैसा होगा। इस लिए मैं नम्रतापूर्वक उस के अस्तित्व को स्वीकार करके ही रह जाता हूँ। ईश्वर को मैं बहुत सहनशील और धैर्यवान् कहता हूँ, क्योंकि वह जगत् में पारस्विक पापवृत्ति को रहने देता है। मैं यह भी जानता हूँ कि ईश्वर सर्वथा निष्पाप है। मैं यह भी जानता हूँ कि जिंदगी का सौदा बरके भी अगर मैं पापवृत्ति से मुकाबला न करूँ, तो कभी ईश्वर की पहचान न कर सकूँगा। नम्र और मर्यादित अनुभव से मेरा यह मन्तव्य दृढ़ हुआ है। जितना मैं शुद्ध होने की कोशिश करता हूँ, उतना ही ईश्वर के निकट जा रहा हूँ, ऐसी प्रतीति होती है। आज तो मेरी भ्रमा किंचित् ही बड़ी जा सकती है, लेकिन जब वह हिमालय जैसी अचल धीरे उस की पंती पर वसनेवाले दिग्गज की तरह शुद्ध और स्वर्णमय बन जायगी, तब मैं उस के विलुब्ध नजदीक पहुँच जाऊँगा।

(संक्षिप्त)



मेरी परमार्थचर्चा

(ले०—स्वामी श्री ब्रह्मानन्दजी महाराज)

प्रश्न—गुरु कौन हो सकता है ?

उत्तर—जो श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ अर्थात् सकल श्रुति शास्त्रों के अर्थ, क्रम, पद, पदार्थ, प्रसंग का ठीक ठीक जानने और बतानेवाला है तथा एक अद्वितीय परब्रह्म परमेश्वर में सदा श्रद्धा, भक्ति, ध्यान तथा योग के द्वारा निष्ठ है, वही सद्गुरु हो सकता है।

प्रश्न—कई लोग तो कहते हैं कि गुरु चाहे कैसा भी हो, उस के गुण दोष देखने से हमें क्या मतलब। गुरु से गुरुमन्त्र ले लेने, कान फुँका लेने-मात्र से ही शिष्य कृतकृत्य अर्थात् कल्याण का भागी हो जाता है। शिष्य को तो गुरु की तन, मन, धन से सेवा करना और शरण होकर रहना चाहिए, क्योंकि कहा भी है—

गुरु गूँगा गुरु बावला गुरु देवों का देव ।
तन मन धन सब अरपकर गुरुवरणों को सेव ॥
ऐसे वचन भी तो साधु महात्माओं के हैं।

उत्तर—नहीं, ऐसी मान्यता बुद्धिहीन मूर्खों की होती है, किंतु बुद्धिमान लोग तो उपरोक्त हानादि गुण देखे बिना कभी किसी को गुरु बना बैठते नहीं, चाहे उन्हें भले ही यानजीवन गुरुदीक्षा लिए बिना ही रहना पड़े। और जो दोहा आप ने कहा सो ठीक नहीं, यह तो किसी स्वार्थसिन्धु, मिथ्यावादी मूर्ख का है।

उस विचारे को यदि कम से कम इस (गुरु) शब्द के अर्थ का भी बोध होता या सुना होता, तो यह ऐसा अनर्थक दोहा कभी न गढ़ता। भला कहिए, जो गुरु गूँगा याने बोलना न जाने, वह क्या किसी को

उपदेश कर सकता या सभन्ना सकता है ? तथा जो गुरु बावला याने पागल या भोला भाला, ज्ञान विज्ञान से हीन है, तो ऐसे नामधारी गुरु से क्या किसी समाज, देश वा व्यक्ति का उपकार हो सकता है ? और जो ऐसे नामधारी गुरु को देव या देवों का देव मान लेते हैं वे लोग अपना तन, मन, धन, धरम, विद्या, बुद्धि सब कुछ खो बैठते हैं। उन के पल्ले कुछ नहीं पड़ता, बल्कि ऐसे—‘अन्ये गुरु बहरे पैला दोनो खेलें दौध। भवसागर में डूबते बैठ पथर की नाँव।’ अज्ञान की नाव में बैठ दुःख चिन्ता, हानि ग्लानि, भय शोक, संताप अशान्ति आदि रूप गोते सदा खाया करते हैं।

प्रश्न—गुरु शब्द का क्या अर्थ होता है, सो कृपया हमें आप समझाइए।

उत्तर—मुनिप—

‘गु’ शब्दोऽन्वकारायो ‘रु’ शब्द स्तन्निरोधकः ।
अन्धकारनिरोधित्वाद् गुरुरित्यभिधीयते ॥

याने गुरु शब्द का भावार्थ यह है कि इस में जो ‘गु’ शब्द है वह अन्धकाररूप अज्ञान का बोधक है और ‘रु’ शब्द यह प्रकाशरूप ज्ञान का बोधक है, याने अज्ञानरूप अन्धकार के हटाने तथा ज्ञानरूप प्रकाश के फैलाने का जिस व्यक्ति में गुण होता है उसे ही ‘गुरु’ शब्द से संबोधित और संमानित किया जाता है।

प्रश्न—क्या ये माला, फंटी, तिलक, चन्दन, दण्ड, कमण्डलु, कापाय (गेरवा) वस्त्र आदि जो उपर से धारण करने के बिन्दु हैं, इन के धारण करने से कोई विशेष लाभ होता है या नहीं ?

उत्तर—विशेष लाभ तो इन चिन्तों के धारण करने से कोई नहीं देखा जाता ।

प्रश्न—तो इन्हें लोग किस लिए धारण करने लगे ?

उत्तर—भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास के देखने से पता चलता है कि ये सब चिन्त वैदिक काल में ना थे ही नहीं, किंतु पीछे से सांप्रदायिक आचार्यों, गुरु दत्ता महात्माओं ने अपने अपने भक्त शिष्यों को तिलक छाप, भाटा, कटी, दाता (भेष) पृथक् पृथक् दिया । वह इस लिए कि अनेक देशों में और अनेक समयों में अनेक शिष्य भक्त होने के कारण कौन अपने संप्रदाय का और कौन दूसरे संप्रदाय का शिष्य है, इस की पहिचान रहे । इस लिए जो जा बातें शुद्धों को प्रिय थीं और जित चीजों को ये लाभ धारण करते थे, इन्हीं चीजों और बातों का नियम अपने शिष्य भक्तों पर धर्म का रूप देकर लागू किया ।

प्रश्न—वर्द्ध सत्ता से हम में सुना है कि—

बाना बड़ा दयालु का तिलक छाप अब माल ।

यम दर पे कालू कहै भय मानै भूपाल ॥

ये सब बातें सत्य और कल्याणकारी हैं या नहीं ?

उत्तर—भार्गव सत्य और कल्याणकारी केवल शास्त्रोक्त यज्ञ, दान, तप आदि कर्म अथवा क्षम दमदि साधन ही कहे हैं कि जित के धारण करने से सत्य ज्ञान और मोक्ष मिलता है । और देखिए, यही साथ ही मनुष्यमात्र को परिव्रज्य और मांशख्य कल्याण के करनेवाले शास्त्रों में कहे हैं । यथा—

यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्य कार्यमेव तत् ।

यज्ञो दानं तदन्वैव पावनानि मनीषिणाम् ॥

—गी० १८।३

तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर ।

—गी० ३।१

कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वः पूर्वतरं कृतम् ।

—गी० ४।१५

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतः समाः ।

एवं त्वयि नान्यथेतोति न कर्म लिप्यते नरः ॥

यजुर्वेद अ० ४०

यज्ञ, दान, तप इन कर्मों को कभी नहीं त्यागना चाहिए, यज्ञ करने, दान करने तथा तप करने से विचारशील व्यक्ति परिव्रज्य होते हैं ।

मगवान् की प्रमत्तता के लिए कामनारहित कर्मों का अवश्य करना चाहिए ।

साधारण पुरुषों को अन्तःकरण शुद्धि और ज्ञानियों को लोकसमर्थार्थ कर्म करने चाहिए । अन्त समय तक कर्मों को करते हुए ही जीने की इच्छा करो । इन सब शास्त्रवचनों का आशय यही है कि मनुष्य को केवल विकास यज्ञ, दान, तप आदि कर्म करने से अन्तःकरण की शुद्धि तथा पापक्षय की निजति होती है । अन्त में ज्ञान की प्राप्ति द्वारा सत्य स्वरूप की प्राप्ति पर विव्रता और मोक्षरूप आनन्द की प्राप्ति होती है । किंतु आपने जो माला, चन्दन, कापय आदि भोग का साधन कहा, सो ठीक नहीं । उन सब में कभी मोक्ष नहीं मिल सकता है ।

मुक्तिमिच्छसि चेत्तात विषयान्निषवस्य न ।

समाजैवं दयाशीलसत्यं पोष्यवत्पि ॥

हे भार्गव ! परम कल्याणमय प्रभुप्राप्ति की इच्छा हो, तो बाहरी विषयों, प्रपञ्चों को विष की तरह त्याग दो । क्षमा, सरलता, दया, शुचिता और सत्यरूपी अमृत का पान समाजसंरक्षण सद्गुरु द्वारा करते रहो ।

छ शान्ति । शान्ति । शान्ति ॥

जीवन का छोर

(२०—श्री सुरेन्द्रनाथ “आजाद” विगारद)

(१)

जीवनसन्ध्या में उजियाली ;

अम्बरतल के झाँकी पार !

अपने नव मुकुमार करो से ;

बुला रही है ज्योति प्रसार !

(२)

चिन्ह लटे ! तूफान सिन्धु में ;

किये भयानक रूप अनेक !

ग्लानियुक्त होना मत निर्मम ;

आलिङ्गन कर मृत्युविवेक ॥

(३)

हैं अनन्त अविचल वह माया ;

ध्रुवन मोहिनी का उपहार !

अंमर आत्मा अचल अलौकिक ;

रहता है अनन्त के पार ॥

(४)

तन्त्री नश्वर की यज जापे ;

चलने वाले हो तैयार !

जाग्रत जीवन आज निशा है,

नश्वरता से सीखो प्यार ॥

(५)

क्षणभङ्गुर की अभिलाषा तज ;

निकलो जगती तल के पार !

मञ्जुल मुग्धा के अधरों में ;

कभी न पाओगे वह प्यार ॥

(६)

किंकर्तव्यविमूढ विभ्र है ;

इस में भरा हास उल्लास !

क्षण में परिवर्तन सब होगा ;

अब से चेतो दिव्य प्रकाश ॥

(७)

कर्णधारगुरु ज्ञानपोत पर ;

भवलिपि तर अभिप्रायी जीव !

बयल पुयल जग में कर देगी ;

होकर माया एक अजीब ॥

इति शुभम् ।



सुखी जीवन

(छे०—पौ० श्री वासुदेव शास्त्री वैद्य, शु० वे० विशारद)

शिष्य—गुरुवर्य, आप के उपदेश को मैं ने अच्छी प्रकार समझा है, साथ ही ब्रह्मचर्य की महत्ता भी हृदयङ्गम की है। अब क्या आप की इतनी कृपा और होगी, जिस से हमें हमारे अघपतन का कारण सुना सक और उस का परित्याग करा सकें ?

गुरु—मित्रवत्स, ससार में रहकर जीवन के कठिन सप्राम में हमें शारीरिक, आर्थिक और गान्तिक सब प्रकार का बल खर्च करना पड़ता है। बल, यह बड़ तो ब्रह्मचर्य द्वारा ही हम संचय कर सकते हैं। ब्रह्मचर्य द्वारा यदि हम बल इकट्ठा न कर सकें तो भ्रूच कहीं से करेंगे। आज जो हम से जीवन-निर्वाह के सामान जुटाये नहीं जुन्ते, बल पाठ में कष्ट उठाना पड़ता है, पल भर शान्ति नहीं, सब का कारण केवल यही है कि ब्रह्मचर्य की आवश्यक प्रथा का हम ने छोड़ कर दिया है।

शिष्य—अद्वेय गुरुजी, वच तो रोगी होना, इरिद्धी होना, दुर्बल होना और अनेक दुःख हाना भी ब्रह्मचर्य के नष्ट होने का ही फल है।

गुरु—वत्स, यही कारण है कि हमारा शरीर रोगी ब्रह्मचर्य के अभाव से होता है। सत्तान न होना और दुर्बल होना, तथा हाऊर भर जाना भी इसी कारण से है। आज ये बातें एक जगह में नहीं घारे भारत में वर्तमान हैं। यदि सब कदा जाय सो हमारी अरोगता, णायु, सौन्दर्य, ऐश्वर्य और हमारी सारी भारी कामनाओं का जो मूल कारण है वह एकमात्र ब्रह्मचर्य ही है। इसी के अनुष्ठान से हमारी भौतिक और नैतिक सारी कामनाएँ पूरी होंगी।

ब्रह्मचारी ही धादशे सतान पैदा करके उन्हें योग्य पुत्र बना सकता है। उत्तम सतान चाहनेवाले को उचित है कि वह ब्रह्मचारी बने। हमारे सामने जीवन का, सुख दुःख का, लक्ष्य हानि का, साहस, बीरता, परोपकार का जो महत् भवनाखड़ा हो सकता है उस की नींव ब्रह्मचर्य ही है।

शिष्य—गुरुवर्य, हमारे जीवन का उद्देश्य क्या ब्रह्मचर्य धारण से सिद्ध होसकता है ?

गुरु—वत्स, मनुष्यजीवन का उद्देश्य पड़ा गहन है। सत्तार में आकर केवल अपना ही उपकार नहीं करना पड़ता है किंतु समस्त प्राणियों का सहायक हाऊर सामूहिक सहायता या शासन भी करना होता है। महान् शक्ति प्राप्त किये बिना सहयोग या शासन नहीं हो सकता और वह शक्तिसंपादन का बपाय है केवल ब्रह्मचर्य। इस पर यदि उदाहरण दिया जाय तो हमें राम, लक्ष्मण और हनुमान् जैसे ब्रह्मचारी का देना होगा।

शिष्य—अद्वेय, प्राचीन आचार्य ब्रह्मचर्य पर जैसा विशेष ध्यान देते थे, आज ऐसा क्यों नहीं होता ? आज की सभ्यता क्यों ऐसी दूषित है जो बच्चे बच्चे को दूषित बना रही है ? क्या आधुनिक आचार्य एवं माननीय राजन दरे हुए हैं ? वे अपने शास्त्रों के महत्त्व को क्यों नहीं खालते ?

गुरु—शिष्य, प्राचीन काल में हमारे गुरुकुलों की परिपाटी हमारे हाथ थी, स्वयं हम कर्ता बर्ता थे, इन के आचार्य पूर्ण विद्वान्, चितेन्द्रिय और तपस्वी होने थे। आजकल हम पराधीन हैं, हमारा अधिपार

किसी पर नहीं। हम B. A. M. A. तक रट्टू घने रहते हैं, उस से हमारा मस्तिष्क विकृत हो जाता है। हमारी सारी आयु इसी में अस्त हो जाती है, फिर हम किसी काम के नहीं होते, यदि हम ने कुछ विशेष-पता प्रकट की तो विदेशियों के हाथ मोल विक्रि जाते हैं और अपने भाइयों का ही नाश करते हैं।

भारत में आज इस पाश्चात्य सभ्यता के अनेक पुजारी मच्छरों के समान भनभना रहे हैं, उन्हें कहीं पर भी स्थान नहीं। वे सब तरह से मारे गये, शरीर में उत्साह नहीं, बल नहीं, साहस धीरता नहीं और दुनिया के किसी भी श्रेष्ठ फलभोग की क्षमता नहीं। ये सब संकट असदाचार या बालविवाह द्वारा ब्रह्मचर्य का नाश करके ही हमने मोल लिये हैं। जब तक भारतवासी बालिकाओं का विवाह छोटे बालकों से करते रहेंगे, तब तक उन की संतान अधिक अच्छी दशा में कभी न रह सकेगी।

शिष्य—तो विवाह का क्या उद्देश्य है ?

गुरु—विवाह का केवल उद्देश्य है गृहस्थाश्रम की मर्यादा रखना। मनुजी कहते हैं कि जैसे सब नदियाँ समुद्र में जाकर मिल जाती हैं उसी प्रकार सब आश्रम गृहस्थ में मिलते हैं।

प्राचीन समय में देवताओं की मूर्ति की प्रत्येक गृहस्थ जो पूजा और संमान करता था इस का अभिप्राय यह भी था कि उन के चरित्रों को समय समय पर सुनकर छोटे बच्चों को उधर आकर्षित कराया जाय, पर आजकल इस के विरुद्ध दृष्टा है। वर्तमान काल के यान्त्रिक संगीत और नृत्य के नायक

फिल्म स्टारों के आदर्श और संस्कारों से छोटे बालक कैसे सुधर सकते हैं ? आप ही सोच लें। यदि कोई पिता अपनी संतान को विद्वान् या धनवान् न भी बना सके तो कुछ हानि नहीं, यदि वह अपनी संतान को व्यभिचार के प्रभाव से बचाकर सदाचारी, संयमी बना सका तो उस का पिता होना धन्य हुआ।

शिष्य—दुराचार से क्या होता है और इस का फल क्या होता है ? आजकल इस का वाजार क्यों गर्मागमे है ?

गुरु—वत्स, जिस आनन्द के लिए मनुष्य अपनी इज्जत आवरु, धन, स्वास्थ्य, जीवन, लज्जा सब को छोड़कर व्यभिचार में गिरता है उस विषयानन्द की एक बूँद भी उसे नहीं मिलती। उस से हजार लाख गुना आनन्द पशुओं को अपनी गम्भीर, स्वस्थ, सबल प्रकृति के कारण निरोग और स्वाभाविक जीवन में प्राप्त होता है। इतिहासों में देखा गया है कि बड़े बड़े वीर जिन के चलने से पृथ्वी धमकती थी, जब वे व्यभिचार में फसे तो कुत्ते की मौत मारे गये। बड़े बड़े ज्ञानियों का इस रास्ते पर जूतियों से स्वागत होते देखा। असंख्य युवकों को इस पाप में तड़पकर मरते देखा। रावण जैसा वीर पण्डित व्यभिचार से ही मारा गया। मुगल साम्राज्य इसी में डूब मरा, यह कल की बात है। कुछ भी हो, यह तो निस्पक्ष कहा जायगा कि व्यभिचारी को हमेशा दुःख है और ब्रह्मचारी को हमेशा सुख है। यदि सुखी जीवन चाहिए तो रामराज्य का स्मरण करते हुए एक पवीत्रतधारी बनो, रामचरित्र का निस दिन जप करते हुए आनन्द से समय व्यतीत करो।



निरोध

(ले०—ज्ञानतपस्वी श्री गीवानन्दजी शर्मा)

‘योगचित्तवृत्तिनिरोध’ यह योगदर्शन का पहला सूत्र है, इस का अर्थ जानने के लिए योग, चित्तवृत्ति और निरोध इन तीन शब्दों का अर्थ जानना चाहिए। इन में से चित्त का अर्थ कहा जाता है—

इन्द्रिय दो तरह की होती हैं, बहिरिन्द्रिय और अन्तरिन्द्रिय। पुरुष की वृत्ति किसी न किसी इन्द्रिय के आश्रय में उत्पन्न होती है। अन्तरिन्द्रिय चार प्रकार की होती है और वृत्ति के लिए इसी की अपरिहार्य आवश्यकता है, वे चार प्रकार ये हैं,—मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार। योगशास्त्र में चित्त से चारों का समूह दाया है, क्योंकि चित्त में ही सब व्यापार शुरू होते हैं। उस की वृत्ति चञ्चलता के कारण अनन्त प्रकार की होती है। तबपि योगशास्त्रकारों ने प्रतिपादन के सौकरार्थ वृत्ति को पाँच प्रकारों में बाँटा है, यथा—

प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा, स्मृतय ।

श्री० २० १—२०

पुनश्च इन के दो विभाग और मो किय हैं—
द्विष्ट और अद्विष्ट। एक और दोसरा द्विष्टद्विष्ट विभाग मो हो सकता है। यह छेरा मो पाँच प्रकार का है—

अविद्यास्मितारागाद्वेषाभिनिवेशः पञ्च छेराः ।

श्री० २० २—३

अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश ये

पाँच छेरा हैं। इन में अनित्य, अपवित्र, दुःखपूर्ण और जड वस्तुओं को नित्य, पवित्र, सुखयुक्त और चेतन समझना यह चार तरह की अविद्या है। अर्थात् व्यक्तिकाळे होने से अनित्य, पृथिवी आदि प्रपञ्च को सदा रहनेवाला समझना प्रथम अविद्या है। अत्यन्त भीमत्त्व, विकृत, अत्यमासलित देख को पवित्र, कमनीय, नूतन समझना दूसरी अविद्या है। इस शरीर की अपवित्रता को योगभाष्यकार भगवान् व्यास ने इस प्रकार निरूपण किया है—

स्थानाद् बीजादुपपद्यमानात् निष्यन्दाभिप्रायादपि ।
कायमाधेयशोचत्वात् पण्डिता ह्यशुचि विदुः ॥

स्थान, बीज, उपपन्न, निष्यन्द्, निवन और आधेयशोच इन कारणों से पण्डितों ने शरीर को अशुचि कहा है। यहाँ स्थान नाम स्थिति का है अर्थात् मूल मूल आदि दुर्गन्ध वस्तुओं से लित जो अत्यन्त अपवित्र माता का शरीर है, वह इस शरीर को कपटि का क्षेत्र यानी स्थान है। एवं अत्यन्त मलिन जो माता पिता का रज बोध है, वह इस का कपाशन कारण यानी बीज है। मुक्त, घीत अन्न जलादि के परिपाक से व्यञ्जन को रुचिपद रूप से परिणत रस है वह इस का उपपन्न यानी कारण है क्योंकि इस रस से ही शरीर धारण होता है। मूल मूल पत्नीना प्रभृति अपवित्र पदार्थों का शरीर से निष्यन्द (निकलना) होता है। निवन

अर्थात् प्राणवियोग के बाद यह शरीर अस्पृश्य हो जाता है, क्योंकि चाहे वेदपाठी हो या ज्ञानी हो, मृतक शरीर उन का भी अपवित्र माना जाता है। यह शरीर आधेयशौच है अर्थात् जैसे अपने को अलंकृत करने की इच्छावाला पुरुष स्वतः निर्गन्ध शरीर में अङ्गराग इत्र आदि से सुवासित होने की भावना कर लेता है, वैसे ही जल, भूतिका आदि द्वारा शरीर में शुद्धि का आधान किया जाता है। वस्तुतः उस भूतिका आदि से वह शरीर पवित्र नहीं होता। इस प्रकार स्थान, धोज, उपग्रन्थ, निष्यन्द, निधन, आधेयशौच इन हेतुओं से पण्डितजन इस काय को अशुचि ही मानते हैं।

एवं विषयभोगरूप दुःख में जो सुप्रज्ञान है वह भी अविद्या ही है, क्योंकि परिणाम में क्षीण हो जाने से विषयसुख भी दुःख है।

शरीर के उपकरणमूल पशु, भूत्वं आदि चेतन पदार्थ तथा शय्या, आसन, गृह आदि अचेतन पदार्थ और भोगाधिष्ठान शरीर इन सष अनात्म पदार्थों में जो आत्मज्ञान का अभिमान है वह चौथी अविद्या है। यह चार प्रकार की अविद्या ही राग द्वेषादि छेदसमूह का तथा राग द्वेष से उत्पन्न धर्म अधर्म का एवं धर्म अधर्म से जन्य सुख दुःखादि का मूल कारण है। इस को मिथ्या ज्ञान कहिए चाहे माया अथवा भ्रम। यह पाँच हेतुओं में पहले की बात हुई।

दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मतेवास्मिता।

—योग २।६

दृक्शक्ति पुरुष और विषयाकार से परिणत हुई

दर्शनशक्ति बुद्धि ये दोनों परस्पर अत्यन्त विरुद्ध हैं तथापि पूर्वोक्त अविद्या के बल से दोनों की एक-रूपता का प्रतीत होना ही अस्मिता नामक दूसरा छेद है। नित्य, शुद्ध, बुद्ध, कूटस्थ आत्मा को और मलिन जड़, विकारी बुद्धि को अलग न जानकर 'मैं कर्ता हूँ, भोक्ता हूँ' इस प्रकार पुरुष अपने को मान लेता है। यह अस्मिता ही वेदान्तमत में 'चित् जडग्रन्थि' कही गयी है।

सुखानुशयी रागः। दुःखानुशयी द्वेषः।

—योग २।७, ८

सुख से अनभिज्ञ पुरुष को सुखस्मरणपूर्वक उस के समान नकली सुख में और उस के साधनों में लक्ष्णा, चाहना ही राग कहा जाता है। दुःख से अनभिज्ञ पुरुष को दुःखभोगारमणपूर्वक जो दुःख तथा उस के साधनों में जिघांसा, क्रोध और त्याग की इच्छा है उसका नाम द्वेष है। जैसे प्रमाद आलस्य में रुचि और गुरुजनों के हितवचन, कड़वी औषध से अरुचि देखने में आती है, ये ही राग द्वेष हैं।

स्वरसवाही विदुषोऽपि तथाऋदोऽभिनवेशः।

—योग २।८

निर्लिप्त प्राणिमात्र को अपने लिए निरन्तर यह कामना रहती है कि मैं कभी न मरूँ, सदा सुखी विद्यमान रहूँ; यह मरणभय अभिनवेश नामक पाँचवाँ छेद है। प्रौढ मनुष्यों का तो क्या कहना, वत्सल जन्मे हुए बालक भी हानिकारक कुत्ता, पिल्ली, सिंघ, सर्प आदि को देखकर काँपने लगते हैं एवं झुट्ट कोड़े मकोड़े भी छेड़ने पर प्राण बचाने का यत्न करते हैं। इन बालक और कोड़ों को चेष्टा से

बढ़ जाना गया कि ये मरणरूप दुःख को आया जानकर डर रहे हैं। पूर्व के जन्मों में अनुभूत जो मरणदुःख और उस से उत्पन्न हुआ जो वाचनासमूह है वही मरणत्रास का कारण है, यह फलित हुआ। क्योंकि सिवा वाचना के बाधक और कोड़े को शासन या गुरुपदेश से जो मृत्युमय मालूम नहीं हुआ। यह अभिनिवेश हुआ जैसे अत्यन्त मृत कीट आदि में देखा जाता है, विद्वानों के हृदय में भी वैशे हो जासक है, क्योंकि पूर्वजन्म में अनुभूत मरणदुःख के ज्ञान से 'मैं मरूँ' यह वाचना विद्वान् अविद्वान् दोनों को ही समान है। यहाँ विद्वान् माने संग्रहात योगी या विवेक ज्ञानी का प्रश्न नहीं है।

किंतु बल करनेवाले शासकावा का ही प्रश्न है, नहीं वो 'विद्वान् न विभेति कदाचन' इस श्रुति से विरोध होगा। अब इन डरों को निवृत्ति का उपाय बताते हैं—

ते प्रतिपत्तवहेयाः सूत्राः ।

—श्री० २।१०

योगाभ्यास की क्रिया से सूक्ष्म, चूर्णित हुए डेर अस्प्रकात समाधि से दण्ड भोगतुल्य हो जाते हैं, जब चित्त का अधिकार समाप्त होकर वे डेर भी अस्तगत यानी निवृत्त हो जाते हैं। इस लिए चित्त-वृत्ति के निरोध के लिए ध्यान, धारणा, समाधि इन का ही आश्रय लेना चाहिए।

अन्तर्कालीन व्यथा

(२०—'अविचन')

बढ़ी जा रही है, हाथ ! नैया भँवर में ।
 नहीं कोई सायी, हूँ अकेला सगर में ॥
 सदा सगी या जो, मन हुआ बाधका है ।
 निपति बैरिनी बन, मार्ग रोके खड़ी है ॥ १ ॥
 बढ़ी जा रही है, नेत्र की ज्योतिमाला ।
 कना जा रहा है, घोर तमजाट काळा ॥
 मिटो जा रही है, मोदिनी हास्य रेखा ।
 बढ़ी जा रही है, मूर्च्छना सी ज्वाली ॥ २ ॥
 हुआ जा रहा हूँ, मुग्ध कातर झरेला ।
 कसे जा रही हैं, बेदना अन्न मेरा ॥
 व्यथित कर रही है, आह ! भत्यङ्ग पीदा ।
 निमिर हो रहा है, कोटि कन्यान्त दारी ॥ ३ ॥
 न धुन पाता हूँ मैं, देख भी हूँ न पाता ।
 लुटी जिहा बापी, थोड़ा भी हूँ न पाता ॥
 बताऊँ कैसे मैं, पात किस को बुझाऊँ ।
 मजा कैसे अपनी पर्यवसाय बुझाऊँ ॥ ४ ॥

शुद्धा

(प्रे०—मनोहरलाल शर्मा)

ये त्वत्तरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते ।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम् ॥
संनियम्पेन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः ।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ॥

—गी० १२।३, ४

सम का हित चाहनेवाले, सब में समबुद्धि रखने-
वाले जो पुरुष इन्द्रियो का समय करके निर्देशरहित,

अव्यक्त सर्वव्यापी, अचिन्त्य, कूटस्थ, स्थिर, अक्षर
ब्रह्म की उपासना करते हैं, वे भी मुक्त परमात्मा को
ही प्राप्त होते हैं। यहाँ भगवान् ने ब्रह्म के स्वरूप को
अनिर्देश्य बतलाया है। फिर आगे—
अतस्तदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः ।

‘तत् सत् इस तरह ब्रह्म का निर्देश तीन तरह
से कहा गया है।’ इस में ब्रह्म का निर्देश बताया है।
इन दोनों स्थलों की संगति कैसे हो सकती है ?

समाधान

(ले०—ज्ञानतपस्वी श्री गीतानन्दजी शर्मा)

इस का उत्तर यह है कि पहले, व्यक्त अक्षर और
अव्यक्त अक्षर इन दोनों में उपासना के लिए कौन सा
आलम्बन श्रेष्ठ है ? यह अर्जुन का प्रश्न था। इस लिए
ब्रह्म के वर्णन में भगवान् ने अनिर्देश्य शब्द का
प्रयोग किया और दूसरे स्थल में निर्देश्य ब्रह्म का
उल्लेख इस कारण से किया कि यहाँ मन्त्रलाचरण का
विषय होने से ब्रह्म को निर्देश्य कहना पड़ा।

वस्तुतस्तु ब्रह्म न सगुण है, न निर्गुण। जिस
प्रकार कोई पुरुष वस्त्र पहन ले, तो वह सवस्त्र कहा
जाता है और न पहने, तो विवस्त्र कहा जाता है।
उम की सयत्नता और अवस्त्रता की ये दो संज्ञाएँ
वस्त्र की अपेक्षा से हुई हैं। पुरुष का वास्तविक

स्वरूप तो पुरुषत्वावच्छिन्न ही है। वस्त्र हो या न हो
पुरुष पुरुष ही बना रहेगा। यही न्याय ब्रह्म के
विषय में भी लागू है, जैसा कि श्रीमद्भागवत में
भी उल्लेख है—

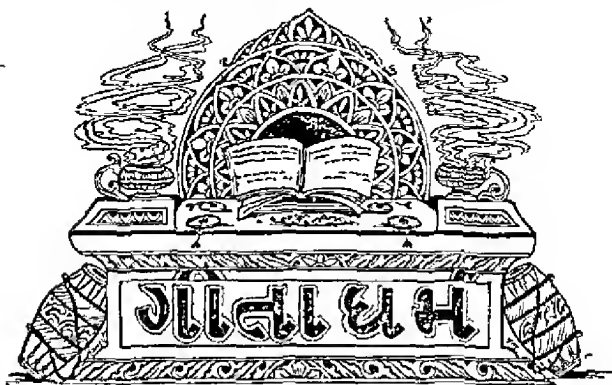
वन्यो मोक्ष इति व्याख्या गुणतो मे न वस्तुतः ॥

‘अवतार धारण करना या जीवभाव से विभक्त
होना और फिर इन आवरणों से छूट जाना, इस
प्रकार की परमात्मा की व्याख्या गुणों को लेकर औप-
चारिक है वास्तविक नहीं।’

अतः इस अर्थ में ब्रह्म निर्देश्य भी है और अनि-
र्देश्य भी है।



સરચાપક—શ્રીમત્પરમહંસ, પરિમાજકાર્ય, બ્રહ્મનિષ્ઠ, લોકચંદ્રી, ગીતાબ્યાસ,
શ્રી ૧૦૮ જગદ્ગુરુ, મહામંદેશ્વર, સ્વામી શ્રી નિધાનન્દજી, મહારાજ.



સર્વધર્મોનં પરિત્યજ્ય માતેર્કં શરણં મયઃ ; અહં ત્વા સર્વપાપીકર્યો મોક્ષયિષ્યામિ મા શુભઃ.

વર્ષ : ૭ મુ } }

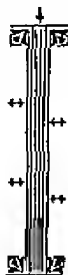
કારી જુલાઈ ૧૯૪૨ :

{ અંક ૭ મો }

ધ્યાન ગાન

ગોપાલ ગોકુલવલ્લભપ્રિય ગોપગોસુતબલ્લભમ્ ;
ચરનારભિદમહં ભલે ભજનીય મુરુશ્ચિ હર્લભમ્ . ૧ .
બનરયામ કામ અનેક હભિ લોકાકાશરામ બનાદરમ્ ;
કિન્નરક વસન કિસોર મૂરતિ જ્વરિયુત કર્ણાકરમ્ . ૨ .
સિર કેકિપન્થ વિદ્યોવદ્ધ્ય અરુન વનરૂઢ લોચનમ્ ;
ગુ'ભવતેસ વિચિત્ર સખ ઐગધાતુ બપભય માત્યનમ્ . ૩ .
કથ કુદિલિ મુંદર નિવડ જૂ રાકામવક સમાનતમ્ ;
અપહરન પ્રવરીકાસ ત્રાસ વિદાર કુન્દા કાનનમ્ . ૪ .

— ગોરખી વૃક્ષલીલાવલ્લભ.



જ્ઞાસુ

(લે૦— ધર્મધુરંધર શેઠ રમણલાલ લલિતભાઈ)

બ્રહ્મજ્ઞાની તત્ત્વવેત્તા પરંમપુરુષ થવા માટે જોટલું કઠીન છે, તેટલુંજ સહેલું પણ છે. પરંતુ તેવા પુરુષે પ્રથમ જ્ઞાસુ થવું આવશ્યક છે. જ્ઞાસુ થયા પછી તેની તીવ્ર વૃત્તિ થવી જોઈએ અને દ્રઢ ભાવના થવાની જરૂર છે. આટલું થયા પછી બ્રહ્મજ્ઞાની તત્ત્વવેત્તા મહાત્મા પુરુષોના સમાગમમાં તેણે આવવું, અને સત્સંજ, બ્રહ્મવિચારણા, આત્મજ્ઞાન, વિગેરે વિષયોની ચર્ચા મનન, ધ્યાન, વેદાન્તના વિષયોનું પુસ્તકોનું પઠન વગેરે ખાસ આવશ્યક છે. આ રીતે મનુષ્યને જેમ બીજા ટેવોનેા અભ્યાસ દરેરાજનેા થઈ જાય છે, તેમ આવા મનુષ્યને પણ આ વસ્તુ દરેરાજના નિયમની અને અભ્યાસની આપોઆપ થઈ જાય છે. તેથી મનની બાહ્ય કાર્યોમાં નિવૃત્તિ થતી જાય છે. પછી સંસારીક કાર્યોમાં, સંસારીક જીવનમાં, સંસારીક વિષયોમાં મોહ રહેતો નથી અને એકાકાર પરમ વૃત્તિ પોતે આપોઆપ તેનો અભ્યાસ વધારતો જાય છે. આ મનુષ્ય મોહ, શોક, લોભ, અભિમાન, ક્રોધ વીગેરે વસ્તુઓમાંથી પર થતો જાય છે. એટલે પરમાત્માની કૃપા તેના ઉપર થાય છે, એટલે ભગવત વિચારમાં હંમેશાં મગ્ન રહે છે. હુનિયાની વસ્તુઓ ઉપર ણિલકુલ મોહ રહેતો નથી. “બ્રહ્મ સત્યં જગત મિથ્યા” તે સુત્રાનુસાર તેને જગત મિથ્યા ભાસે છે.

મોહ, શોક, અહંકાર, લોભ વીગેરે આ હુનિયામાં શોક ઉત્પન્ન કરનારી વસ્તુ છે અને જીવન વહેવારમાં આનંદમાં આડખીલીરૂપ છે, એટલે પરમ પુરુષો આવા વિષયોથી પર હોય છે, તેથીજ હંમેશાં તેઓ આનંદી સ્વભાવના, સમાનવૃત્તિવાળા, ભગવદ વિચારમાં મગ્ન રહેનારા હોય છે, અને અલભ્ય અદ્વિત આનંદ, આત્મજ્ઞાનની પ્રાપ્તિને અનુભવ અનુભવે છે.

પૂર્ણ તત્ત્વને પ્રકાશ કરનારા નિર્માળ આકાશ જેવો નિરાકાર સચ્ચિદાનંદ મૂર્તિ, સ્વયંમ પ્રકાશ જેવો જીવાત્મા, બ્રહ્મ તથા આત્મ વિચારની એકાગ્રતા મેળવી આનંદ મગ્ન રહી, બ્રહ્માકાર વૃત્તિ સ્થિર કરી, સ્વસ્વરૂપ પરમાત્માનાં દર્શન કરતો એકાગ્ર ચિત્ત જોડી, સાનભાન વગરનો થઈ જાય છે અને સચ્ચિદાનંદના અખંડિત આનંદમાં મસ્ત રહે છે.

અંતે પરમ પદની પ્રાપ્તિ મેળવે છે.

પણ ક્યારે ?

જ્યારે પ્રથમ જ્ઞાસુ થવાની વૃત્તિ થાય ત્યારે.

જ્ઞ કૃતિ.

ગીતામાં મંગળાચરણ

(લેન્ડ-શીમત પરમહંસ, પરિભ્રમકાર્યકર્તા અને લોકસંપ્રદી ગીતાબાસ ગંગાદત્ત
મહામંડલેશ્વર શ્રી ૧૦૮ સ્વામી શ્રી વિદ્યાનંદજી મહારાજ.)

સ સાર અવહારમાં કોઈ કામ કરવાની શરૂ-
આતમાં ભગવાન અથવા પોતાના ને કોઈ કંઈ
દેવતા હોય તેમનું નામ સ્મરણ કરવાની રીત સારી
પેઠે પ્રચલિત છે. એનો અભિપ્રાય એ છે કે કંઈ
દેવતાના આશીર્વાદથી કાંઈકાંઈ સફ-
ળતાપૂર્વક સમાપ્ત થાય. આ નિષિદ્ધ સમાપ્તિને
માટે 'સર્વે વિદ્યા' શમં યન્તિ ગણેશસ્ત્રવણતઃ'
આ વાક્યાનુસાર ઇશુ બાબે ગણેશજીનું સ્મરણ
વધારે પ્રચલિત છે, પરંતુ એવું કંઈ આમ કારણ
નથી હિત, માતા વ્યક્તિ એના ને કંઈ દેવતા હોય,
તેમનું સ્મરણ થઈ શકે છે. સાચકારોએ સર્વ દેવ
તાઓમા એવું સામર્થ્ય હોવાનું સિદ્ધ કરેલું છે કે
એથી વિશેષ નાથ થઈ શકે, તથાપિ ભાવનાનો લોક
કૃપા શેઠમાં કારણ રૂપે રહ્યો છે—

કામેતૈર્દૃશ્યાના પ્રપન્તેન્ન્યદેવતા ।
ત ચ નિયમમાત્થાય પ્રજ્ઞા નિયતા સ્વયા ॥
યો યો યા યો તનું મજ્ઞ શ્રદ્ધાવિનુમિત્ત્વતિ ।
તસ્ય તત્સાધર્મ્યા બ્રહ્મા તામેષ વિદ્યામ્યહમ્ ॥
સ તયા શ્રદ્ધયા યુક્તસ્તસ્યાપાચનમોહતે ।
ભભતે ચ તત્ કામાન્મયૈવ વિદિતાન્ટિ તાન્ ॥
મન્વજ્ઞુ પજ્ઞ તયા તદ્વત્પત્ત્યપમેષતામ્ ।
દેવન્દેવયજો યાન્તિ મદ્રજ્ઞ યાન્તિ મામરિ ॥

—શ્લોક ૧૧૦, ૨૧, ૨૨, ૨૩,

એમનું જ્ઞાન અનેક પ્રકારની કામનાઓથી દગા-
એલું છે તેઓ પોતપોતાની પ્રવૃત્તિને વધારાને જુદા
જુદા પ્રકારના નિષ્ક્રિયાનું પાલન કરતા રહીને જીવ
જીવ દેવતાઓની ભક્તિ કરે છે. આના ને દેવતા

રૂપને જે વ્યક્તિ શ્રદ્ધાથી પૂજવા માહે છે, તેમની
તે શ્રદ્ધાને તેજ દેવતામાં લગાવી રહ્યું છે. તેઓ
શ્રદ્ધા સહિત તે દેવતાની ઉપાસના કરે છે અને
મારાજ આપેલા તે ભજનના કામનારૂપ રૂપને પ્રાપ્ત
કરે છે એ અલપ ભુલિવાળા ભક્તોનું એવું કૃપા
નાથવાનજ હોય છે દેવતાના દેવોના લોકોને પ્રાપ્ત
કરે છે અને મારાજકતા મારી પાસે આવી પહોંચે છે
વળી પણ આ પ્રસંગમાં—

યે યથા માં વપન્તે તાસાયૈવ મજામ્યહમ્ ।
મય વર્ત્તાનુવર્તન્તે મનુષ્યા પાર્ય સર્વતા ॥

—૧૧૨

(જે જે ભાવથી મારે ચરણે આવે છે, હું તને
તેવુંજ કૃપા આપું છું સર્વ પ્રકારથી મનુષ્ય મારોજ
માર્ગે મનુષ્યરૂપ કરે છે) આ રસોડા પણ ઉપરની
વાતને પ્રુટ કરે છે

હવે વિચાર કરવાની વાત છે કે સાધારણ લોકો
મા આ રીત છે, તો ગંભીર વિચાર કરનારા શાસ્ત્ર
શરો માટે તો કહેવું જ શું ? તેઓ તો આ ભાગ
તમા ઇશુજી સારપૂર્વક કહે છે અને કહાયજી કોઈ
એવો પ્રાચીન અંશકાર હશે, કે જેણે અધની શરૂ
આતમાં મગલચરણ ન કર્યું હોય. એમની વાત
જવા થઈએ, તો પણ તેમની ટીકા, દિપણી, વિવરણ
કાર આદિ પોતાના આકરણીય પ્રયત્નકારના મગલા
ચરણ ઉપર ઇશુજી ભારિકીથી ઉઠાવેલું કરે છે,
એટલે સુધી કે એવા મગલચરણ રસોડામાંથી
'મનુષ્ય-ચરણ' (અથવા અસિકારી, વિષય
પ્રયોજન, અભાગ) આદિ આવરણ વાતો પ્રમદ

કરવાની કારણે કદે છે, પછી ભલે ને તે વાતો સુખ
અંધકારને તો સ્વપ્નમાં પણ ન સૂઝી હોય. કેટલાય
દિગ્ગજ પંદિત જેવા કે નૈયાયિક વિશ્વનાથ, હિનકર
ઉધ્યાનાચાર્ય આદિ આ વિષયના અંધ રચીને
મંગલાચરણો સ્વતંત્ર વિષય તૈયાર કરી ગયા છે.
તેને જોવાથી જણાઈ આવશે કે જે વાતને આજ
કાલના શિક્ષિત કહેવાતા લોકો તદ્દન નજીવી વસ્તુ
સમજે છે અને નાસ્તિકો તો તેને અનુપયોગી કહે
છે, તેને પૂર્વવર્તી અંધકાર કેટલી મહત્વની દ્રષ્ટિથી
જોતા હતા.

આ વાતને વિસ્તારપૂર્વક કહેવાનું કારણ જો
ખતાવવાનું છે કે ગીતા જેવા ઘણા જ ગંભીર વિષ-
યનું પ્રતિપાદન કરનારા અંધના પ્રારંભમાં જેને કે
વામવાનની સાક્ષાત્ વેખરી વાણી સમજવી લેખે, તેના
અંધકારે અવશ્ય મંગલાચરણ કહ્યું હશે; જો
સ્વતંત્ર સિદ્ધ છે. અહિં સ્વયં ઇશ્વર વક્તા છે અને
તેમના સુખથી જે વાત કહેવામાં આવશે, તેની
મહત્તા વેદ વાણીથી જરાએ ઓછી હોઈ શકતી
નથી. જોવા દામિત્વપૂર્ણ કાર્યની નિર્વિઘ્ન સમાપ્તિ
યવી અંધકાર માટે ચિન્તાને વિષય તો અવશ્ય છે.

અહિં પ્રાસંગિક રીતે કહી શકે છે કે ગીતા
સ્વતંત્ર અંધ નથી, જો તો મહાભારતમાં આવેલા
બીજા પર્વનો એક અંશ છે; પણ જો વિષે વધારે
કહેવાની જરૂર નથી, માત્ર રૂપિ સુનિયોના મતને
અને તેનાજ આધારે અનુસૂત લૌકિક પ્રયાનો
ઉદ્વેગ રચી કરવો બસ છે કે ગીતા એક સ્વતંત્ર
અંધ છે. એટલા માટે એમાં મંગલાચરણ હોવું
ખાસ આવશ્યક છે. અહિં એક બીજી પણ રીત
કે કે મંગલાચરણ કરવું જોઈએ એ વાતનું પણ
શું પ્રમાણ છે ? ઉત્તરમાં કહેવાનું એટલું જ છે કે
પ્રશ્નનાત્મક રીતે દ્રષ્ટા રૂપિ ભગવાન વ્યાસ, ભગવાન

કપિલ અને ભગવાન પતંજલી એ ત્રણેએ જેવો
ગીતાયં સમજ્યા છે તેના એક કરોડમા અંશ
જેટલો પણ અર્થ સમજ્યા હોય, એમાં સંદેહ છે.
એટલા માટે કપિલજી પોતાના સાંખ્ય સૂત્રોમાં
મંગલાચરણ કરવાના ત્રણ હેતુ બતાવે છે. પ્રસંગા-
નુસાર તેની વ્યાખ્યા અહિં કરવામાં આવે છે—

“મહાલાચરણં શિષ્ટાચારાત્,
ફલદર્શનાત્, શ્રુતિતરણેતિ ।”

અ. ૧, સૂ. ૧

આ સૂત્રનો આધારભૂત ગીતામાં—

ઽત્સદિતિ નિર્દેશો વ્રજણભિવિધઃ સ્મૃતઃ ।

બ્રાહ્મણાસ્તેન વેદાશ્ચ યદ્યાશ્ચ વિહિતાઃ પુરા ॥

—ગી. ૧૭૨૩

આ રલોક છે.

ઽત્સદિતિ—જેવો પ્રજાનો ત્રણ પ્રકારનો
નિર્દેશ છે, પૂર્વ કાલમાં એનાથી પ્રાપ્ત, વેદ અને
યજ્ઞની ઉત્પત્તિ યર્ષ. સૂત્રનો અર્થ—શિષ્ટ લોકો
એ આચરણ કર્યું છે, તેનું ફળ જોવામાં આવે છે
અને શ્રુતિની આજ્ઞા પણ છે; આ કારણથી મંગ-
લાચરણ કરવું જોઈએ.

સૂત્રના પ્રથમ અંશ શિષ્ટાચારાત્ આ અંશની
વ્યાખ્યા કરવામાં આવે છે—

ગીતાનો જે રલોક ઉપર કહ્યો છે તેમાં ‘ઽત્સદિતિ’ આ પરમાત્માનું ત્રણ પ્રકારનું નામ આવ્યું છે,
તેનું ઉચ્ચારણ કરીને પ્રાપ્ત થયેલા આદિ પ્રભુ, વેદ અને
યજ્ઞની સૃષ્ટિ કરવામાં આવી છે. તેથી જણાઈ આવે
છે કે સૃષ્ટિના રચનાર પ્રભુપતિએ આશરમાં પર-
માત્માનું નામ લીધું હતું. હવે વિચારવાની વાત એ
છે કે પ્રભુપતિથી વધીને અમારે માટે બીજું કોણ
શિષ્ટ હોય ?

સહ્યક્ષા પ્રજાં સુદુ પુરોવાચ પ્રજાપતિ ।
 અનેન પ્રસવિષ્યવ્યમેષ વોસ્તિવકામયુક્ત ॥
 આરભમા આ યશની સાધેજ સર્વ પ્રજાને
 ઉત્પન્ન કરીને પ્રજાપતિ (બ્રહ્મા) એ કહ્યું કે આ
 યશથી તમે તમારા વશની વૃદ્ધિ કરો, આ વશજ
 તમારા લોકોની ઉદ્ધારી કામધેનુ થાઓ. આ
 અંશથી સિદ્ધ થાય છે કે આ પ્રજાપતિને પોતાના
 કાર્યમાં અર્થાત્ પ્રજાસૃષ્ટિમાં સફળતા પ્રાપ્ત થઈ
 હતી, આ રહોકામા 'સહ્યક્ષા' એ પદ પણ છે,
 એટલે અ. ૧૭ નો રહોકા ૨૩ તથા અ. ૩ નો
 રહોકા ૧૦ મળીને એ વાત સિદ્ધ થાય છે કે મગલા
 ચરણ કરવામાં શિદ્ધાચાર છે અને સફળતા પણ છે
 હવે રહી વાત 'વ્રતિતજ્ઞ' એટલા અશની, તે તો
 જી સપ્તથીજ અર્થાત્ છે, કેમકે ગીતા ૭૮ માં
 'પ્રજાવ સર્વવેદેષુ' એમ કહ્યું છે.

અમર કોઈ શક્તિ ઉકાવે કે શિશેએ જે કાઈ
 આચરણ કર્યું છે, તેનું સર્વ સાધારણ પણ શા
 માટે અનુસરણ કરે? તો તેના ઉત્તરમાં એટલું
 કહેવું બસ થયે કે ગીતા એજ વાત ઉપર વધારે
 જોર આપે છે કે સંસારમાં જ્ઞાન પ્રાપ્તિનું એક માત્ર
 સાધન 'મહાન્તો યેન ગત સ પથ્યા' એટલુંજ છે
 પ્રસંગોચિત રહોકા આ નીચે આપ્યા છે—

વચ્ચાચરતિ શ્રેષ્ઠતત્ત્વેવેતરો જન ।
 સ યત્પમાણ કુન્તે લોકલ્લદનુવૈતે ॥
 નમે પાર્થસ્તિ કર્તવ્યં ત્રિપુ લાકેષુ ત્રિપન ।
 માત્રવક્ત્રમવાત્ર્યય વર્તેત્વ ચ કર્મણિ ॥
 યદિ હ્રદ્ય જથેય જાલુ કર્મણ્યતનિદ્રુક ।
 મમ વર્માનુવર્તનં મનુષ્યા પાર્ય સર્વજ ॥

એટ પુરૂષ એવું આચરણ કરે છે તેને અનુસરી-
 નેજ બીજા સાધારણ લોકો પણ ચાલે છે, એટ પુરૂષ
 એવો નિશ્ચય કરી આપે છે તેજ પ્રમાણે અન્ય લોકો

વર્તન કરે છે. હે પાર્થ, મારે ત્રણે લોકમાં કોઈ
 પણ કર્તવ્ય નથી તેમજ ન કોઈ મેળવવા જેવી
 વસ્તુ અપ્રાપ્ય પણ છે, છતાં પણ હું લોકલ્લદ્યકામ
 કરું કયાં કરું છું. કેમકે સાધવાન રહીને જો હું
 કરું ન કરું, તો હે અશુભ, મનુષ્યો સર્વ પ્રકારે
 મારાજ માર્ગનું અનુસરણ કરવા માંડશે

અહિં શ્વાન આપવાની વાત છે કે રહોકામા એ
 'એષ્ટ' પદ છે તે શિદ્ધનું બોધક છે. સાખ્ય સૂત્રમાં
 'વલ્લદર્શનાત્' 'મુક્તિ' એ બે પદ કોઈની વિપ્રતિ
 પત્તિના વિષય નથી કોઈ શકતા, કેમકે પ્રલય પછી
 દરમ્યાન સદિને અપલપ થઈ શકતો નથી. પ્રલય
 પરમાત્માનું નામ છે એ વિષયમાં સ્વત વેદજ
 પ્રમાણ છે. અહિં મુખી મગજાચરણનું કર્તવ્ય
 વિષયક વિવેચન કર્યું, હવે આ લેખના મુખ્ય
 વિષયનું પ્રતિપાદન કરવામાં આવે છે અર્થાત્ ગીતા-
 મા મગજાચરણ કર્યું અને કેવું છે એ વિચારવું
 એકલે.

મગજાચરણ પ્રથમજ પ્રથમના આરભમાં દોષ
 છે, તો ગીતાનો આરભ ભોવાથી એનો ઉત્તર મળી
 જશે કે ત્યાં સમ શબ્દ નિ.સ.દેહ મગજાચરણ છે,
 પ્રથમ રહોકામાં 'ધર્મણેષુ' આવું પદ ન આવ્યું હોય
 તો પણ આપાત્તઃ કૃતરાષ્ટ્રને છત્રારૂપ વિષય
 માદ્યમ પડી શકે છે, પરંતુ કમવાન બ્યાસ નિર
 યંક શબ્દ પ્રયોગ કરનારા નથી. વરદુત્તવસ્તુ એવો
 કે ગીતાનો પ્રતિપાદન વિષય એજ રહોકામાં સુચિત
 કરવા મા આવ્યો છે, તે કયો છે?

અપ્યેષ્યતે ચ ય દર્શ ધર્મ્ય સવાદમાયદો ।
 જાનવ્યજ્ઞેન તેનાદ્યમિજ્ઞ સ્વામિત્રિ મે વતિ ॥

—ગી. ૧૫.૧૦

જે પુરૂષ આ અમારા જાનેનો ધર્મમય સંવાદ

વાંચશે, તેમના દ્વારા હું જ્ઞાનયજ્ઞથી પૂર્ણ થઈ જોવો મારો અભિપ્રાય છે.

એમાં કહ્યું છે કે આ ગીતા શાસ્ત્ર શ્રી કૃષ્ણ અને અર્જુનનો ધર્મ સંવાદ છે. અર્જુનનો પ્રશ્ન પણ એજ વિષયનો છે, ૨૧૭ માં કહે છે—‘ધર્મ સંમૂઢચેતાઃ ત્વાં પૃચ્છામિ’ ધર્મના વિષયમાં મોઢ થઈ જવાથી આપને પૂછું છું, વળી પણ ભગવાન અર્જુનને ઉદેશીને કહે છે—‘સ્વધર્મે તિથનં શ્રેયઃ’ ‘સ્વધર્મમપિ ચાવેદ્યં ન વિકસ્મિતુમર્હસિ’ તતઃ સ્વર્ગને કીર્તિં ચ હિત્વા પાપમવાસ્યસિ’ ઇત્યાદિ સામાન્ય ભાવથી આજ્ઞા કરે છે અને ‘તસ્માદ્ યુદ્ધસ્વ ભારત’ ‘તતો યુદ્ધાય ગુર્યસ્વ’ ઇત્યાદિ અનેક સ્થળોએ ખાસ કર્તવ્યતાનો પણ આદેશ આપે છે.

ફલતઃ ધર્મ શબ્દનું ઉચ્ચારણ કરવાથી મંગળ તો થયુંજ, વધારામાં શ્રેયકરે પોતાના શ્રયનો પ્રતિપાદ વિષય પણ સૂચવી દીધો. ધર્મ શબ્દનો વ્યુત્પત્તિ લભ્ય અર્થ છે ‘ધારયતીતિ ધર્મઃ’ આ સંસારને ધારણ કરનારો જેમકે પરમાત્મા છે.



બાહ્યાચારિતાની વૃદ્ધિ

(લે.—શ્રી રૂપરામજી)

મુળ સત્યને સમજવામાં બાહ્યાચારિતાની ખાસ કંઈ કિમત નથી અને ન તો તે બાહ્યાચારિતાની વસ્તુ પણ છે. પરંતુ એનો મતલબ એ નથી કે—ઈન્દ્રિયો અને શરીર સ્વેચ્છાચારી બની જાય. બદલે બાહ્યાત્મિક વસ્તુઓના પરિવર્તનથી એમનામાં ખૂબ પરિવર્તન થઈ જાય છે.

તે સિવાય મુળ સત્ય બાહ્યાચારિતાના પરિણામ પાલનથી પણ ન તો સમજી શકાય છે કે ન તો સાધનાનું ફળ પણ પ્રાપ્ત થઈ શકે છે.

અપરેયમિતસ્ત્વત્યાં પ્રકૃતિં વિદ્ધિ મે પરમ્ ।
જીવમૂતાં મહાવાહો ચયેદોં ધાર્યતે જગત્ ॥

—ગી. ૭.૧૬

અથવા વદુનૈતેન કિં જ્ઞાતેન તવાર્જુન ।
વિદ્યમ્યાહમિદં કૃત્સ્નમેકાંશેન સ્થિતો જગત્ ॥

—ગી. ૧૦.૪૨

હે મહાબાહો, આ અપરા જડ પ્રકૃતિના સિવાય છવરૂપી, ચેતન પરા પ્રકૃતિ પણ મારી છે, જેનાથી સંસાર ચાલે છે. ‘હે અર્જુન, વધારે શું કહું’ એમ સમજી દો કે હું સંપૂર્ણ જગતને મારી યોગમાયાના એક અંશ માત્રથી ધારણ કરી રહ્યો છું.’ આ વચનોથી ધર્મ શબ્દ છવરૂપી પણ વાચ્ય છે. અને વળી પરમાત્મા અને છવરૂપી એમનાથી વધીને સ્મરણ કરવા યોગ્ય બીજો કેવો પદાર્થ મંગલમય હશે ?

એ પ્રમાણે સિદ્ધ થયું કે વેદબ્યાસજીએ પણ ગીતાના આરંભમાં મંગલાચરણ કરીને લોકોને એનો માર્ગ બતાવ્યો છે.

છં તત્સત્

પ્રત્યુત કાન્નિકતા અને અહંકારનું તે સત્યાચરણની પાછળ પોષણ થાય છે. પોતાની દ્રષ્ટિથી અને સંસારમાં તો તે ઊપર ઉઠે છે, પરંતુ ખરી રીતે તો તે પતિત થાય છે. અને કંઈક આગળ જતાં જરા જેટલા ઘાત પ્રતિઘાતથી તેની બધી સાધનાઓ, ગનાવટો, છિન્ન સિન્ન થઈ જાય છે. પરંતુ સંસારનો સ્વભાવ છે કે તે સમગ્ર સત્યને બાહ્યાચારિતાની વસ્તુ ગનાવી લેવાનીજ ઠેકાણીય કરે છે. સમગ્ર સત્યનું રૂપ તેનીજ અંદર સમજી

લેવા માટે છે એને જોવો સભવ પણ છે કે મનુષ્ય પહેલો નીચેથીજ ચાલવાનો પ્રયત્ન કરે છે અહીંન પણ ભગવાન ખસે જોજ હમ્મે છે જુઓ ગીતા અં ૨ શ્લોક ૫૪

મતલબ જોજ કે જે સત્ય શ્રદ્ધા કરવામા આવે તેને ભુલિક પણ મનૂર કરીલે, મન અને પ્રાણ પણ માનીલે, આત્મસત્તા પણ કમૂક કરી લે જ કે અમારી અદર એક રોમ સુધાતમા પણ જોવી કોઈ પણ થીજ ન રહી બધ કે જે તે સત્યની શરત મનૂર ન કરી લે અને તેના વિરૂદ્ધ પ્રતિવાદ નાખે અને ત્યારે પાપક અને અહ કારણ પે પણ, અસત્યની પ્રક્રિયાઓ અમારી અદર કાપ કરશે તકિ

ભગવાન, ધર્મ (જ્ઞાન, શક્તિ, સેવા આચરણ આદિ) જોજ સસારની પ્રાપ્તિ થીજે માનવામા આવે છે તે ભગવાન અને ધર્મ ચહે સિન્દુના હોય કે ઇંસાઈ, મુસલમાન, વૈશ્વ આશમી કોઈ નાય હોય જોજ બે થીજે (ભગવાન અને ધર્મ તથા તેમને માટે અનત આધાર) ની પાછા સસારમા બાહ્યાચારિતાનો પર્વત હોલો ઘડ ગયો છે જો કે તે બાહ્યાચારિતાનું સંગઠન, પોષણ—શક્ત્ય—કર્તા દ્વારા જોટલા માટે કરવામા આવ્યું છે કે તે ભગવાન અને ધર્મનું મુગ સત્ય જીવન અને સસારની પ્રજા નજીક ઘર્ષ બધ, પરંતુ પરિણામ જે આવે છે કે તે સત્ય જોક તેો જોમજ ઘણુ દૂર છે—વળી આ સંલેધી તે જોમીય વધારે દૂર ઘર્ષ બધ

છે આ થીજે તે વસ્તુને સમજવામા થીજી પણ વધારે પ્રાપ્તિ પોષણ, વિદ્યા અને જમ નાખે છે, પરંતો ગઠન, ઘર્ષ બધ છે કેમકે એક તો સ્વયં “યોગનાયાસમાયુત” તેમા આ અજ્ઞાન—મિથ્યા જમ “મદ્માયાસમાયુત” કરી દે છે તેથીજ કેટલાક સત્યચોષકમણુ જોવા નીકળે છે કે આ અનધીને લીધે મુગ વસ્તુથીજ હાથ પોઈ ઈસે છે તેના પ્રતિ અવિરવાહ, અરૂચિ અનન્ત મિથ્યા ધારણાઓ પોષણ કરી લે છે અને કેટલાક લોકો જયને લીધે તેમા પ્રવેશજ કરતા નથી. કારણ કે તે શ્રેયગીયાન માનવદુઃખવિહારી ભગવાનની વાણી નહિ સાભળવાને લીધે બાદ સાચો આધાર અને આઠરી શોધવા માટે છે અને કેટલાક “મનુષ્યાણા રાહસેષુ” જોવા નીકળે છે કે જે અનન્ત હિયાન, પતન અને મુરકેલીઓ પાર કરીને તે મગાની સત્ય ધારા વહાવીને પિતરાને તારે છે અને કેટલાક કિવસો માટે સત્યનો માર્ગ નિષ્ક્રુતક કરી આપે છે

આધુનિક ભ્રમ “કર્મયાગી” સમુદાયે આ સર્વ પ્રવચોથી ઘણા આગળ વધીને મુગ સત્ય સમજવવા ધણેય પ્રયત્ન કર્યો છે અને તેણે સમાજ તથા સસારને ઘણો આગળ વધાર્યો છે, એમાં તો જરાય શક નથી, પરંતુ તેમા પણ અધિકાર આ સર્વ કાર્યો પાછા અસત્યનું પોષણ અને મુગ સત્ય પ્રત્યે હઈક અવિશ્વસની ગેષ તં અવરં સમાયલીજ છે અરુ

શંકા

(પ્રે-ચિન્ન મનોહરવાય રામ)

ત્વાચ્ચ દાયકવિલેક કર્મ પ્રાપ્ત્યેનીયિન ।
યશ્વત્તનવકર્મ ન ત્વાચ્ચનિતિ વાપરે ॥

એમાં શકાતુ સ્વરૂપ આ પ્રથમ છે જે—સ્તોકનો અન્યથ કરવાપી ‘જેકે મનીયિન’ કર્મ ત્વાચ્ચમ્ ફનિ પ્રાપ્ત અરે મનીયિન કર્મ ન ત્વાચ્ચમ્ ફનિ પ્રાપ્ત

એવાં બે વાક્યો ઉપલબ્ધ થાય છે. કેાઈ રોગીને એક વૈદ્ય કહે કે અમુક વસ્તુ ખાવી જોઈએ અને બીજો વૈદ્ય કહે કે તે ચીજ કદિ પણ ખાવી નહિ; એવી હાલતમાં રોગીનું શું કરવું થયે ? બન્ને વ્યક્તિ વેદક શાસ્ત્રના સારા પંડિત છે, તે બન્નેમાં પદ્યપદ્યના વિષયમાં મતભેદ થઈ જાય, તો તેની મીમાંસા કરવી એ એક પ્રકારે અસંભવજ ગણાય.

સમાધાન

(બે—જ્ઞાનતપસ્વી શ્રી ગીતાનંદજી)

એવીજ શંકા સાંખ્ય દર્શનકારે ઉઠાવી છે, પરંતુ તેનો આધાર પણ આજ રલોક છે. ઉત્તર ભગવાન સ્વયં આપે છે—

નિશ્ચયં શૃણુ મે સત્ત્વ ત્યાગે ભરતસત્તમ ।
ત્યાગો હિ પુરુષવ્યામ્ર ત્રિવિધઃ સંપ્રકીર્તિતઃ ॥
યજ્ઞદાનતપઃકર્મ ન ત્યાગ્યં કાર્યમેવ સત્ત્વ ।
યજ્ઞો દાનં તપસ્ચૈવ પાત્રનાતિ મનીષિણામ્ ॥
एतान्यपि तु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा फलानि च ।
कर्तव्यानीति मे पार्यं निश्चितं मतमुत्तमम् ॥

—ગૌ. ૨૧૫, ૧, ૪

હે ભરત શ્રેષ્ઠ, ત્યાગના વિષયમાં મારે નિશ્ચિત મત સાંભળો. ત્યાગ પણ ત્રણ પ્રકારનો કહેવામાં આવ્યો છે. યજ્ઞ, દાન અને તપ એ કર્મોને છોડવાં નહિ, પણ તે અવશ્ય કરવાં જોઈએ. એ તો બુદ્ધિમાનોની ચિત્ત શુદ્ધિ કરનારાં છે. તેથી એ કર્મોને સંગ તથા ક્ષણી આશા છોડીને કરવાંજ ઉચિત છે. આ મારે નિશ્ચિત અને શ્રેષ્ઠ મત છે.

અહિં ભગવાનના કહેવાનો અભિપ્રાય એ છે કે જે શબ્દ લોકમાં કોઈ એક અર્થમાં વપરાયો હોય તેનો શાસ્ત્રીય પરિભાષામાં પણ તેજ અર્થ થાય એવો કંઈ નિયમ નથી. શાસ્ત્રકાર લોકો વિશેષતઃ ઇત્યાદિક શાસ્ત્રકાર પોતાના પરિભાષાથી જુદા જુદા કારના નિર્માણ કરે છે. કેાઈ ખાસ શબ્દનો શ્રેયકાર દ્વારા જે નક્કી કરવામાં આવે છે, તે શાસ્ત્રમાં તેજ બ્રાહ્મ માનવામાં આવે છે. પ્રકૃતમાં

તેવીજ રીતે અગર બે મનીષિ વ્યક્તિઓમાંથી એક કર્મને ત્યાગ્ય જતાવે અને બીજો અત્યાગ્ય, તથા બન્નેની વિદ્વતા પણ એક સરખી હોય, તો તેનો નિર્ણય થવો અશક્ય છે. ઉક્ત રલોકમાં ભગવાન અથવા વેદવ્યાસજી પરસ્પર વિરુદ્ધ મત પ્રતિપાદન કરે છે. આ વિષયના બ્રાહ્મબ્રાહ્મ સંબંધી શંકા છે.

કહેવાનું એજ છે કે ત્યાગ શબ્દનો લોકમાં જાણીતો અર્થ અહિં બ્રાહ્મ નથી. તેથીજ ભગવાન કહે છે કે ‘ત્યાગે મે નિશ્ચયં શૃણુ’ અર્થાત્ જો કે ‘‘તામસ તથા રાજસ કમ’ તજવાં જોઈએ.’’ આ વાક્યમાં ત્યાગ શબ્દનો કોશીકત અર્થજ લેવામાં આવશે. તથાપિ સાત્ત્વિક કર્મના વિષયમાં ત્યાગ શબ્દના અર્થમાં અર્થકાર કાંઈક વિશેષતા મૂકે છે. ઉક્ત રલોકના અર્થ જેવાથી એ વાત સિદ્ધ થાય છે. વિશેષ વિસ્તાર કરવાની આવશ્યકતા નથી. આ પ્રકારે ત્યાગ અને અત્યાગ એ બે શબ્દોમાં વિરોધ નથી, માત્ર વિરોધાભાસ છે. હું સમજું છું કે શંકાકાર મહાશય તે સમજી જશે, એમાં વિશેષ પાંડિત્યની આવશ્યકતા નથી.

છેવટે એટલો ધસારો કરવો ગયસ થશે કે કર્મ કરવાં ન કરવાં એ પક્ષોમાં કહેવાનું વધતા જોછા-પણજ નિર્ણાયક છે. વસ્તુતસ્તુ બન્ને પક્ષોનો કર્મના સંદેહાવમાંજ અંતિમ અભિપ્રાય છે. એટલે કર્મ ત્યાગ્ય જ છે. કેાઈ વિચક્ષણ વ્યક્તિ આહે તો તેમાં કૌશલપૂર્વક અનુદાન કરીને તેનો લાભ લઈ શકે છે. અહિં એક લૌકિક દ્રષ્ટાન્ત છે—જેવી રીતે વિરુદ્ધ દયામાં વાયુ ચાલતો હોવા છતાં પણ માછી લોકો શબ્દને ખાસ પ્રકારે બાંધીને, નાવને તેજ દિશા તરફ લઈ જાય છે કે જે દિશાથી વાયુ આવે છે. એજ વાત કર્મના ત્યાગ તથા અત્યાગના વિષયમાં સમજવી જોઈએ.

સંતસમાગમ

(ભે—સ્વામી મી રામાનંદજી સન્યાસી, ઈશનશાસી, વ્યાકરણચાર્ય)

જેમ સમુદ્રમાં ડુબકી મારનારને કોઈ કોઈ વાર ઉત્તમ રત્નની પ્રાપ્તિ થઈ જાય છે, તેજ પ્રમાણે આજ અમે 'સુસલમાન સતો' નામના જ્ઞાનના આધારે કંઈક ઉપદેશ રત્નો ગીતાધર્મના વાંચકો સમક્ષ ઉપસ્થિત કરીએ છીએ—

સિદ્ધાશ્રમમાં એટલા કેટલાક સતો પોતપોતાના વિચાર પ્રગટ કરી રહ્યા હતા, સંતસ અને લાભ લેવાની આશાએ અમે લોકો પણ ત્યાં જઈને એકા, અમારામાના એક સત્જનને સતોને પૂછ્યું કે “સહ નરીલ રૂપિ એટ છે કે કૃતરા ધનવાન ઉત્તમ છે” એવા જવાબમાં એક સતો કહ્યું કે “સહનરીલતા-વાળા રૂપિ એટ છે, કેમકે ધનવાન ગમે તેટલો ભલો માણસ હોય પણ તેનું મન સદા લક્ષ્મીની પ્રાપ્તિ તથા તેના સરસજીમાં લાગેલું રહે છે અને તપસ્વી રૂપિનું હૃદય સદા ઈશ્વરના વિચારમાં શુદ્ધાએલું રહે છે”

જુઓ—ઈશ્વર કહે છે કે “હું મારી સ્વાભાવિક કહેલથી મનુષ્યને તેની ઈચ્છા કરતા પણ અધિક આપું છું, પણી તે મનુષ્યનું કામ છે કે તેને તે અરજીમાં આવે તે પ્રમાણેના ઉપયોગમાં લાવે”

જે મનુષ્ય જીવન નિર્વાહને માટે નીતિપૂર્વક ન્યયહાર કરે છે તેને પરમેશ્વરના મહિમાને જનુ જપ થાય છે પરંતુ જે ઈશ્વરને માટે જીવનનો નિર્વાહ કરે છે એટલે કે જીવન પારણ કરે છે તે તો ઈશ્વરને જ પ્રાપ્ત કરી લેશે

મનુષ્યના હૃદયમાં પરમેશ્વર એવી રીતે શુભ પલ્લે રહેલા છે કે જેની રીતે અભાવાસ્થાની ધોર આધારી રાત્રે કાળા પત્થર ઉપર નાનામાં નાની

કોટી રહ્યા કરે છે એવા આદો તો જ્ઞાન પ્રદીપના આધારે વૈરાગ્યના ચરમા પહેરીને ભેઈ હો

આટલું સાદ રાખએ કે નીચે લખેલા ચાર પ્રકારના મનુષ્યોથી સદા સાવધાન રહેવું—

(૧) જે મિથ્યા ભાવણ કરનારા હોય, કેમકે તેના સંજ કરવાથી ઠગાવાનો સંભવ છે

(૨) જે મૂળી હોય, કેમકે તે મનુષ્ય ભલેને તમારો હિતચિન્તક હોય, તેની મૂળતા તમારા અશુભનું કારણ બની શકે છે

(૩) જે કબૂસ અથવા લોભી હોય, કેમકે એવો મનુષ્ય પોતાના જરા નેટલા સ્વાર્થ માટે તમને ઘણું જ નુકસાન પહોંચાડી શકે છે

(૪) નીચ હૃદયવાળો હોય કેમકે એવો મનુષ્ય આપત્તિ કાળમાં તમારો સર્વ નાશ કરી નાખે

ભાવ એ છે કે પોતાના કૃજ અતીતા અભિમાન અને પ્રતિજ્ઞાને ઈશ્વરના મહિમામાં લગાવી દો, તેમાજ તમારું કલ્યાણ છે મનુષ્ય તો ઈશ્વરના જ્ઞાન બહારનો ખબ્બરગી છે, પછી એને કમી રીતે પાતની, અગર તે ચાહે તો સતોનો કૃપાપાત્ર બનીને તેમના દોરા સ્વર્ગને દરવાજો ખોલાવી શકે છે, કેમ કે સ્વર્ગ દ્વારની કુંચી તેમના હાથમાં છે સ્વર્ગીય એકધર્મને હૃતગત કરનારા કલ્યાણ સાધન કરી આપનારા કેમ ન હોય ?

X X X

તે પછી જીજ્ઞાસુ સતો પોતાનો અનુભવ આ પ્રકારે કહેવાનું શરૂ કર્યું—“હું એક વેળાએ સુરત ચહેરના એક અખીચામાં એકો હતો ત્યાં તે

થહેરનો જ એક પ્રસિદ્ધ ધનવાન મારી બાલુમાં આવીને બેસી ગયો, મેં પૂછ્યું—ભાઈ! તું અહિં મારી પાસે આવીને કેમ બેઠો છે?” તેણે જવાબ આપ્યો “હું એટલા માટે બેઠો છું કે આપની સાથે મારો સ્નેહ થઈ જાય અને હું સુખી થાઉં” મેં કહ્યું “ભાઈ! હું કોઈ પ્રસિદ્ધ વ્યક્તિ નથી. જે ઇશ્વરનો ત્યાગ કરી મનુષ્યની સાથે પ્રેમ કરે છે તે કદિ પણ સુખી રહી શકે છે?” તેણે કહ્યું “મને કંઈક ઉપદેશ આપો” મેં કહ્યું—બસ, આ વેળા તો એજ ઉપદેશ છે કે “જે સમયે તું સુઈ જાય તે સમયે મૃત્યુને તારા માથા પાસે બેઠેલું સમજજો, અને જ્યારે જાગતો રહે ત્યારે ચેતને સામે ઉભેલું જોતા રહેવું” એમ કહીને હું ચૂપ થઈ ગયો, ત્યારે તેણે કહ્યું “તમે આ વખતે શું વિચાર કરી રહ્યા છો?” મેં કહ્યું “હું એમ વિચારી રહ્યો છું કે આજ પ્રાતઃકાળ તો જોઈ લીધો, પરંતુ મૃત્યુદેવ મને આજ સાંજ સુધી ઇશ્વર બાજન કરવાનો અવસર આપશે, એવો હર્ષસો નથી” હું મૃત્યુમાર્ગની લાંબી મુસાફરી કરવા તો તૈયાર છું, પણ મારી પાસે ભાથુ (વાટખર્ચો) નથી.

ભાઈ! હાલેને તમે આ લોકના જેવી તો શું પણ સ્વર્ગના ઉવૃત્તાઓ જેવી ઉપાસના કેમ ન કરો, પણ બધાં સુધી તે પ્રશ્ન પર વિશ્વાસ નહિ હશે ત્યાં સુધી તમારી ઉપાસના માન્ય થઈ શકેતી નથી.

જે મનુષ્યનો નીચે બચાવેલી ત્રણ વસ્તુઓ પર પ્રેમ છે તેની સફળતા યવામાં સંદેહ છે—

૧—સારું સારું જોજન. ૨—સારાં સારાં વસ્ત્રો.

૩—ધનવાનોનો સહવાસ. જેણે પ્રભુનો સાક્ષાત્કાર પ્રાપ્ત કર્યો તેનાથી કશું અભવ્યું રહેતું નથી. અને જેને ઇશ્વરે જાળખી લીધો તેને સૌ કોઈ જાળખી ગયા.

જુઓ, બાહ્ય એકાન્ત કાંઈ સાચી એકાન્ત નથી. મનમાં શંકા અને ચિન્તાનો પ્રવેશ ન થવો એજ વાસ્તવિક એકાન્ત છે. જે એવી એકાન્તમાં રહે છે તે બરાબર એકાન્તસેવી અને સંગ રહિત છે. જે સમયે દૈત ભાવ જાગૃત થાય છે તે સમયે પાપરૂપ ડંગને હૃદયમાં પ્રવેશ કરવાનો લાગ મળી જાય છે. હૃદયને સદા કાષ્ઠમાં રાખો, જો હૃદય કાષ્ઠમાં હશે તો તેમાં પેસવાનો કોઈને માર્ગજ મળશે નહિ. કંઈક બનાવવું કે સુધારવું હોય તો નીચેના ઉપદેશ પર ધ્યાન આપવાની આવશ્યકતા છે—

જેને ઉચ્ચતા પ્રાપ્ત કરવી હોય તેણે વિનયી બનવું જોઈએ. જેને પુરૂષાર્થ સિદ્ધ કરવો હોય તેણે સાચા બનવું. જેને મહત્ત્વ પ્રાપ્ત કરવાની ઇચ્છા હોય તેણે ધૈર્યવાન થવું. જેને ગૌરવ પ્રાપ્ત કરવું હોય તેણે ધૈર્યનો સદા ઢર રાખવો. જેને શાંતીની ઇચ્છા હોય તેને વૈરાગ્યવાન થવું જેવે સંપત્તિની અભિલાષા હોય તેણે કોઈક મહાપુરૂષનો આશ્રય લેવો, જેને સૌને ખુશ રાખવાની આકાંક્ષા હોય તેણે પરાક્ષમાં સૌની પ્રશંસા કરવી. અને જે આખા જગતનું સ્વામિત્વ યાદતો હોય તેણે સર્વ કાંઈ ત્યાગ કરી દેવું.

X X X

તે પછી એક ખીજ મહાત્મા બોલ્યા—

“હું બાર વરસ પથ” ત તિથ્યાના કરતો રહ્યો.

કેટલાક દિવસો પછી મને માલુમ પડ્યું કે મારી આ તિથ્યાના સાંસારિક ભાવનાઓથી ભરેલી હતી, કેમકે એક સમય હું હરિદ્વારના નીલધારાની ગંગાની સામેના કીનારાના પહાડ ઉપર ચંડી-દેવીનાં દર્શન કરવા જતો હતો, રસ્તામાં એક સ્ત્રી જળના અભાવે તરસથી વ્યાકુળ થયેલી જોવામાં

અલી, મારા કેમ હોવામાં પાણી તો હતું પણ તે માનવા છતાં હું આપવા શણ નહોતો કેમ કે તે જળ દેવી પર ચઢાવવા માટે મેં રાજ્ય હતું છેવટે મેં તેને જળ આપ્યું પણ તે કર્તવ્ય સંમત નહોતો મારે મારી હૃદયકાંચ વાણી સમજવી બેઠવી હતી કે જે એમ કહી રહી હતી કે “સાધુ ! જે જળ તે મારી પાવાણુ પ્રતિમા પર ચઢાવવા શક્ય” છતાં આ સાક્ષાત્ દિવ્ય મૂર્તિને અર્પણ કરી દે, તારા અહોભાગ્ય છે કે હું સ્વયં ભગવતી તે જળ માગી રહી છું

મેં તે વાણી ન સાંજળી, તેથી માલુમ પડે છે કે મેં તિર્થયાત્રા કરીને છવનની જગથ દીક્ષિત કરી નથી અગર દીક્ષિત યદ્ય દોત અને હું સર્વજ્ઞ આત્મભાવ રાખના હોત તો મારે વગર માગે જળ આપી કેવું બેઠતું હતું ?

મારી તીર્થયાત્રાની નિમ્જળતા માટે બીજી વાત એ છે કે “હું એક સમય ઈદ્રપ્રસ્થની ત્રીજી યાત્રા ને જતો હતો. અને તરસ લાગી અને મેં એક શ્રીમાનના બારણા આગળ જઈને પાણી માગ્યું, તે ગૃહસ્થની કન્યા પાણી છઠને આવી, હું તેના રૂપ લાવણ્ય ઉપર મુગ્ધ થઈ ગયો. અને પાણી પીને ત્યાં બારણા આગળજે બેસી ગયો. થોડી વારમા ઘસેના માલિક બહારથી આવ્યો અને મને ત્યાં બેસવાનું કારણ પૂછ્યું એટલે મેં કહ્યું—ભલો ગૃહસ્થ ! તમારે ત્યાંથી અને પાણી તો મળી ગયું પરંતુ પાણી આપનારીએ મારું હૃદય લઈ લીધું” ગૃહસ્થ ઘણાજ સન્માન પુરેષ હતો, તેણે કહ્યું—મહાત્મન ! આપને પાણી પાનારી મારી પુત્રી છે, અગર આપ અહિં તો તેનો વિવાહ આપની સાથે કરી દેવા હું તૈયાર છું”

તે પછી મારા શરીર ઉપરથી કંઈની કંઈની

ઘણાજ અમુક વચ્ચે મને પહેરાવવામા આવ્યા, અતઃ પુરમાં જઈને પુરોહિતોએ ઉપાસનાના મનો ઉચ્ચારો ત્યારે અને મારા સ્વરૂપનું જ્ઞાન થયું, હું બ્રૂમ પાકીને ભાદી હવ્યા—અરે ! મારી કંઈની અને જલદી આપી દે” હું તે અમુલ્ય વસ્તોને ફેંકી દઈ મારી કંઈની લઈને લાથી બહાર નીકળી આવ્યો

એમ કરવાનું કારણ પૂછતા મેં એકઠા થયેલા હોદ્દાને કહ્યું કે—જે સમયે ઉપાસના મત્રો ઉચ્ચારાયા ત્યારે મેં મારા અતઃ કરણના સ્પર્શ અવાજને સાંભળ્યો—અરે ત્યાગી ! મારા અભિપ્રાય વિરૂધ્ધ તે એક વાર સી તરફ નજર કરી, તેના પરિણામ સ્વરૂપ હવે તો તારી એકઠી કંઈનીજ ઉતરી છે અગર એ હજી પણ તેમજ કરેના રહીય તો તારા અતઃ કરણનું ધર્મવસ્ત્ર પણ નીકળી જશે અને ત્યારે તું નથી અહિંના રહેવાનો કે નથી ત્યાંના રહેવાનો” ઈત્યાદિ ઘટનાઓથી માલુમ પડે છે કે મારી તીર્થયાત્રા સફળ થઈ નથી

હવે મને ખબર પડી કે “મારું ધર્માચરણ અને નરકના કુંડોથી બચાવીને સ્વર્ગમા લઈ જશે” જે એવી ઇચ્છા રાખે છે તે નિષ્ફળ નથી પરંતુ જે ઈશ્વર ઉપર વિશ્વાસ રાખીને તેની પ્રભુતાનેજ માટે ધર્માચરણ કરે છે તેજ નિષ્ફળ છે અને પ્રભુ તેને પોતાની સેવામાં રાખશે ઈશ્વર માગથી વિરોધી વસ્તુ પર પ્રેમ કે આસક્તિ રાખવી અને પ્રતિભેદ કે લોભવવાની તૈયારી કરવી એ બંને ખોટો સરખી છે

એક વખતે મેં ઉપદેશ આપતી વેળાએ હોડે ! ને કહ્યું હતું કે—“તમારે મારાથી કાઢી ઉત્તમ પુરુષ પાસે જવું બેઠવું અને મારે તમારા કરતા ક્રોધ મનુષ્યની સેવામા ઉપસ્થિત થવું બેઠવું. જેમકે—

હીયતે હિ મતિસ્તાત ! દીનૈઃ સદ્ સમાગમાત્ ।

સમેશ્વ સમતાનેતિ વિશિષ્ટૈશ્વ વિશિષ્ટતામ્ ॥

અર્થાત્—ન્યૂંચ પુરૂષોનો સંગ કરવાથી બુદ્ધિને નાશ થઈ બળ્ય છે. [તથા પોતાની બરાબરીવાળાનો સાથ કરવાથી બુદ્ધિ સરખી રહે છે એટલે કે તે ઉત્તમ થઈ શકતો નથી અને શ્રેષ્ઠ પુરૂષોના સહ-વાસથી બુદ્ધિ વધે છે. એમ સમજીને મેં એક મહાત્મા પાસે જઈને ઉપદેશ આપવા પ્રાર્થના કરી, તેમણે જે કહ્યું તેનો સાર આ છે—

બ્યવહારને શુદ્ધ રાખવા માટે ધૈર્ય અને પ્રેમ એ બે ઉપાય છે. સંતસમાગમ શ્રેયસ્કર છે, જે એમ નથી કરતો તે રોગરહિત નથી. લૌકિક ભોગોમાં ઉપરામતા, ઈશ્વરની આજ્ઞાનું પાલન અને પ્રભુ ઈચ્છાથી જે બની બળ્ય તેમાંજ પ્રસન્ન રહેવું, એ સાચી પ્રભુ ભક્તિનાં લક્ષણ છે.

મનુષ્ય ગમે તેટલાં શાસ્ત્રો શીખી લે, પરંતુ ન્યાં સુધી ઝૂંડી દેખરેખ અને સેવામાં રહીને આત્મશાસન શીખતો નથી ત્યાં સુધી તેનું મનુષ્ય-ત્વ યથાર્થપણે ખીલી શકતું નથી.

જે મનુષ્ય સાધુ સંતોમાં બેસીને કથા કીર્તન તથા ઉપદેશ તો સાંભળે છે, પરંતુ સેવા તથા સંમાનનો ખ્યાલ રાખતો નથી, તેને સત્સંગથી અર્થાત્ સાધુ સમાગમથી જે શુભ ફળ મળવું નોંધ્યે તે મળતું નથી, અને તે સંતોની કૃપાથી વંચિત રહી બળ્ય છે, કેમકે તે ઉપદેશ વચ્ચેના પ્રમાણે આચરણ તો કરી શકેજા નહિ.

સાચો પ્રભુપ્રેમ અને સત્સપરાયણતા એ શુભ કાર્ય અને સાધનોનાં મુળ છે. શુદ્ધ પ્રેમથી શુદ્ધ ધર્માચરણ થાય છે એથી સાચું સુખ પ્રાપ્ત થાય છે અને તે આનંદ સ્થાયી થાય છે.

વૈરાગ્ય—એ ઈશ્વર પ્રાપ્તિને માટે અતિ શુદ્ધ

સામગ્રી છે. તેને શુભ રાખવામાંજ કદાચ છે. જે પોતાના વૈરાગ્યને પ્રગટ કરે છે તેની પાસેથી વૈરાગ્ય નાસી બળ્ય છે.

સાધુતાનાં નીચે લખ્યા પ્રમાણે ત્રણ લક્ષણ છે.

૧—સંસારની માન મોટાઈને તમારે તમારા અંતઃકરણમાં સ્થાન આપવું ન નોંધ્યે. ઉદાહરણ તરિકે સુવર્ણ, ચાંદી તથા પત્થર માટી ઇત્યાદિમાં તમારી દ્રષ્ટિ સમ હોવી નોંધ્યે. જેમ હાથ વડે માટીને ફેંકી દેવાય તેમ રત્નોને પણ ફેંકી કઈ શકાય છે.

૨—લોકોના તરફ તમારી દ્રષ્ટિ ન હોવી નોંધ્યે અર્થાત્ લોકોની પ્રશંસાથી તમારે ફૂલાઈ જવું ન નોંધ્યે, તેમજ લોકોની નિન્દાથી તમારે દુઃખી પણ ન થવું નોંધ્યે.

‘પ્રતિષ્ઠા સૂકી વિષ્ટા ગૌરવં લાવવં મહત્’

૩—તમારી અંદર કોઈ લૌકિક વિષયની કામના ન રહેવી નોંધ્યે. સંસારી લોકોને ઇન્દ્રિયોના વિષયથી ખાસ કરીને સ્વાદિષ્ટ ભોજનથી જેવો આનંદ મળે છે તેવોજ આનંદ તમને કામનાઓના ત્યાગથી તથા લોકો પ્રત્યેના વૈરાગ્યથી મળવો નોંધ્યે. જે સમયે તમે એવા બનશો તે સમયે સાધુ પુરૂષોનો સમાગમ કરવાની યોગ્યતા પ્રાપ્ત કરી શકશો. તેવા બન્યા સિવાય ઠોસ ફેરીરી બેલ બેલવાથી શું વળવાતું છે ?

નિન્દાનો પરિત્યાગ, નિર્મળ સંતોષ અને આનંદપૂર્વક ઈશ્વરની આજ્ઞાનું પાલન, એ ત્રણ યોગ્યતાઓને અપનાવો કે જેથી સહનશીલ બનીને સાધુસમાગમ કરવાથી યતો લાભ મેળવી શકે.

X X X X

તે પછી એક બીજા મહાપુરૂષ કહેવા લાગ્યા—
એક સમયે મહિષાસુર નગરીમાં મને એક ધર્મ-

હોઈએ મરકરીમાં લોજન કરવાનું આમ વલુ આપું, નહીં દરલા સમયે હું તેને ઘર ગયો. મને જોતાજ તે મનુષ્યે મને કટકારવાનું કહ્યું કે "અરે એવકુદ! હું હું અહિં તારા આપનું વહેણું મૂકી ગયો હતો કે ને આવા માટે દોડી આવ્યો? જા, ચાલ્યો જા, અહિંથી તને કંઈજ મળી શકવાનું નથી

પછી કુતરા એવું વર્તન કરીને મથ સાને આગી કેવી રીતે ?

એક દિવસ હું તેજ શહેરની એક મઠીમાં થઈને જતો હતો, ત્યાં એક મનુષ્યે મારા હાથ પર કોલસાની શણેડીને ટોપણે બારીમાંથી ઠાલવી દીધી તે વેળાએ આનુભાવના બલા લેડોએ મારા તરફ સફાવના પ્રગટ કરીને તે મનુષ્યને તેના એવા અસંવ્યવસ્થાપૂર્ણ વ્યવહાર માટે ધમકાવવા માંડ્યો મેં કહ્યું—'સહજો! આ કૃત્ય માટે તો તેને કંઈજા ધન્યવાદ આપવા જોઈએ, કેમકે જે માથા ઉપર સળગતા આ મારા વરસવા જોઈતા હતા, તેના હાથ એણે તો કંટા શણેડોન નાખ્યો કે તેથી તો તેનો ઉપકારજ માનવો નોઈએ.'

કેટલાક દિવસે હું ફરતો ફરતો કોણામઠી નગરીમાં જઈ પહોંચ્યો, ત્યાંના લેડોના આમલને લીધે મેં ત્યાં કંઈક ઉપદેશ આપ્યો તેના કંઈક અશ અહિં આપું છું—

સદા વિનય તથા પ્રેમપૂર્વક ઈશ્વરનું સ્મરણ કરે, મનનું અનુસરણ કરતા રહીને પૂજ્ય બાવથી પ્રેરિત થઈને મહાપુરુષોનો સત્ત્વ જ કરે, ક્યાંક દુઃખથી તથા નષ્ટ વાણીથી અજ્ઞાનીઓ સાથે વર્તો, અન્ય સેવકો તથા ઘરનાં મનુષ્યો સાથે સુશિલતા પૂર્વક વ્યવહાર કરે.

અગર મનુષ્ય પોતાનામાં પૂર્ણતા હાવવા માટે છે તો તેણે માન તથા અપમાન અને કૃપા તથા અકૃપા એ સર્વને સમાન સમજવાં પડશે.

સ સારમાં વલુ પ્રકારના મનુષ્ય એ છે—

૧—જે જાણી, જ્ઞાન અને ભક્તિની વાતો કરે.

૨—જે સામક, સામાજિક વસ્તુઓમાં આકર્ષિત રહેતો હોય.

તે પછી તે નિમ ત્રણઠાંતે પોતાનો મરાજ્ય સ્વિકાર્યો અને મારા અરણ્યોમાં પડીને પડ્યાનાપ પ્રગટ કરતો જોઈયો કે "અવરયજ આપ કોઈ અમ તારી પુત્ર છે, મેં ત્રીસ વાર અપમાન કરીને આપને ઘરમાંથી ઠાડી મૂક્યા છતાં પણ આપની પ્રસન્નતામાં જરા પણ ફેર પડ્યો નહિ, આપ પ્રસન્નને પાત્ર છો."

તે સાંજીને મેં કહ્યું કે—"એમા વખતકાર જેણે હું છું ? કુતરાનો પછુ એવોજ સ્વભાવ હોય છે 'વૃણ' કહેતાજ દોડી આવે છે અને 'હક હક' કહેતાજ ચાલ્યો જાય છે. મને તેટલી વાર જોમ કરે પણ તેને હપ કે જોઈ શકી નથી. કહો કુતરાથી વખારે મેં કહ્યું કામ કહ્યું છે ? કે નથી મથ સાને પાત્ર કહેવાઈ, કથી સિદ્ધિ તે મારણ કરી છે ?

૩—જે સમજન, અલૌકિક રીતીથી ઇશ્વરની પ્રશંસા કરે.

નીચેની ચાર વાતોથી જીવનું કલ્યાણ થાય છે—

૧—ઇશ્વરની સામે દીન ભાવ રાખવો.

૨—ઇશ્વર સિવાયના પદાર્થો પ્રત્યે નિસ્પૃહતા.

૩—ભગવાનમાં ધ્યાન પરાયણ રહેવું.

૪—વિનયી થવું.

વિનયમાં ત્રણ મુળ છે—

૧—પોતાના અજ્ઞાનનું સ્મરણ.

૨—પોતાનાં પાપની સ્મૃતિ.

૩—પોતાની આવશ્યકતા અને ન્યુનતાને

પ્રભુ પ્રત્યે નિવેદન કરવી.

ભાઈઓ ! તમે લોકો જાતે પોતે થઇને તમારી

સાંસારિક ઇચ્છાઓની શુભામીના કારાગારમાં

બંધાયેલા છો, તેમાંથી છૂટવાને માટે સમભાવથી

તમારૂં સર્વ કાર્પ પ્રભુના ચરણોમાં અર્પણ કરી દો.

પછી જોઇ લો, તમને કેટલું રક્ષણ અને સુખ

પ્રાપ્ત થાય છે.

(કંમલ)

વાસના

(લે૦—ચિદંદ્રરાય બાળાભાઈ દેસાઈ)

વાસના એજ અલેહાનુભવમાં વિશેષનું મુખ્ય અને અતિ ગૂઢ તથા સૂક્ષ્મ કારણ છે. વાસના વિલય થાય તો આખી સૃષ્ટિ વિસ્તારનાર જે મન તેનો નાશ સહજ છે. વાસના એવી પ્રબલ છે કે તેને આધીન રહી મન કદાપિ સ્થિર થવા પામતું નથી, અતિ ચંચળ રહે છે, અણુને શ્રી કૃષ્ણને યથાર્થ પૂછ્યું છે; ચન્દ્રલંહિ મનઃ કૃષ્ણ પ્રમાથિ વલ-વદ્દર્દ, તસ્યાહં નિપ્રહં મન્યે વાયોરિવ સુદુષ્કરમ્ મન ચંચળ છે, મથી નાખનાર છે, ગમે ત્યાંથી પણ ખડકયામાંથી ખસી જાય તેવું બળવાન છે, એનો વિશ્વલ થવો તે વાયુને શેકવાના જેવું દુષ્કર કાર્ય છે. પણ એનો નિગ્રહ બને છે, ને તે અભ્યાસ અને વૈરાગ્ય બેથી બને છે. શ્રી કૃષ્ણે કહ્યું છે કે અભ્યાસે નૈવ કૌત્તેયં વૈરાગ્યેણ ચ મૃતે પુનઃ પુનઃ ચિત્તને ઠેકણે લાવવાનો જે પ્રયાસ તે અભ્યાસ, અને ચિત્તને વિશેષ પમાડનાર જે વાસના તેની અસારતા છે. વિશેષ કારણનોજ વિનાશ સાધવો તે વિરાગ

આરા છે. યતો યતો નિશ્ચરતિ મનશ્ચન્ધલમસ્થિરં તતસ્તતો નિયમ્યેતદ્વાત્મન્યેવ વરાં નયેત્ ચંચળ અને અસ્થિર એવું મન જ્યાં જ્યાં ખસી જાય, બહિઃ ભાવ પામે ત્યાં ત્યાંથી પાછું તેને ખેંચી આણી આત્માને વશ સોંપવું, અંતર્દૃષ્ટિ કરવું. આત્મ અભ્યાસનું સ્વરૂપ ગીતામાં સ્પષ્ટ રીતે બતાવે છે. શ્રીમદ્ ગૌડપાઠાચાર્યે પશુ કહ્યું છે કે, વિશેષે શમ-યેત્સુના વિશેષ પામે તો પાછું થમાવવું. પશુ વાસના એવી વિલક્ષણ ચક્તિ છે કે તે ગમે ત્યાંથી પણ આખી સૃષ્ટિ રચી કાઢે છે, વગર ભીંતે આપું ચિત્ર દેખાડે છે, ને એમ ચિત્તને વિશેષ ઉપભાવ્યા કરે છે, જેથી અલેહાનુભવમાં વિદ્યન આવે છે. વિરાગ ભાવના દૃઢ થવી જોઈએ, તો વાસનાનો પરિભાગ સંભવે છે. પદાર્થોની અનિત્યતા સમજવાથી જેમ વિરાગ ભાવના થાય છે, તેમ પાદાર્થોની અંતઃપ્રત્યયતા સમજવાથી પણ વિરાગભાવના થાય છે. વાસના અહંપ્રત્યય દ્વારે પ્રવર્તે છે, એ અહંપ્રત્યયનો વિષય જે આ એક દેહાદિ છે, તેને સ્થાને

સમષ્ટિ દેહાદિ હોય તો વિશેષનું કારણ રહેતું નથી, અસેદ થઈ રહે છે, ને ગમે તે વાસના ઉઠે તો પણ ઉઠે તેવી શક્તિ છે, વિશેષ કરી શકતી નથી, કારણ કે અહંથી વિરૂદ્ધ એ ઈદ, તે, પછીથી રહેતું નથી, એટલે કે ન વિના વિશેષ ક્યાં થાય ?

વાસના બે પ્રકારની છે. સ્વલ અને સુક્ષ્મ. સ્વલ વાસના મટે છે, તો પણ સુક્ષ્મ વાસના મટતી નથી, અને એજ યવં કરતા બળવતી છે, ત્યારે એવા બધન ફરી ફરીને ન બાધતા આપણે શું કરવું ? અસેદ પ્રેમનો જે અગ્નિ છે તેનાથી એ બધા બધન ને છાર કરી નાખવા, બાળી નાખવા અને એક તારથી વાસના આપણી સાથે એક તાર થાય તેમ કરવું, આત્મરૂપ થાય તેમ કરવું—આત્મરૂપ થવું, અસેદ અનુભવ કરવો, જ્યારે ઉપરથી દષ્ટિ દાદી નાખી સમષ્ટિમય થવું એમ શુભવાસના, કે અસેદ મયતાની વાસના કરી પછી વાસના વિલય સાધવો ને નિર્વાસન થવું. પણ જો એમ ન થાય તો વાસનાને પ્રેમપૂર્વક કહેવું કે જો તારે મારી આવાત ન માનવી હોય તો અહ કારણ જે હું આત્મા છું તેને માર, એટલે તે અહ કારણ આત્મા મરી જતાં તું (વાસના) પણ મરી જશે અને કેવળ સર્વ સાધારણ સર્વમય શુદ્ધ ચૈતન્ય—આત્મા—રહેશે જેને બધન નિકાશમાં હતુંએ નહિ, છે પણ નહિ એ રીતે અહ કાર મરવા માટે આવરયક છે કે શરણમાં રીર છુટાવવું જોઈએ, એટલે પ્રેમ ભાવ ઉદય પામેજો જોઈએ, અને મરે તેવા વિશેષ સાથે મારે માટે કંઈજ નથી, બધું મારા મયજ છે એમ સર્વમયતાની આદ્રતા બાળવી જોઈએ

અસેદ ભાવનાનું મનન નિદિધ્યાસન કરતા પ્રેમરૂપ અગ્નિ પ્રકટ થાય છે — એ પ્રેમની જ્વાલા શું કરે જો ? જે ને વસ્તુ એમા આવે છે ત્યાં જ્યાં જોનો પ્રકાશ પડેજો છે, તે વસ્તુમા અને ત્યાં, તે બીજી તેવીજ જ્વાલા ઉપજાવે છે, અને એમ સર્વત્ર પોતે પોતાનેજ એતા પ્રેમમયતા—અસેદ—

ઉપજાવે છે. એવી પ્રેમની આગમા વાસના પોતે ઈધન થઇ બળીને એક તાર થઈ જાય છે એ જ્વાલારૂપ—પ્રેમરૂપ—અસેદ થઈ જાય છે. અને એમ થવાની સાથેજ વિરવ—સેદમયતારૂપી નામ વિસ્તાર—તેનો કયો સબધ રહેતો નથી વસ્તુ, દેશ, કાળ એ ત્રણે ચિન્હકેદની પાર જે અષરિચ્છિત અસેદ તેનો અનુભવ થાય છે વૃત્તિ જો અસેદાભિમુખ થઈ હોય તો ભાવનાના ચરિપાકે કરીને એક તાર થવાય અને જે વાસના શુભ ત્વને પામી છે તેને વિશે અભિમુખ્યની શક્તિ નથીજ

જમતમાં સેદ ન બાળતા અસેદજ અનુભવેજો એ પ્રેમ કેમ કહેવાય ? પ્રેમ, પ્રેમ કરનાર, ને પ્રેમ વિષય, એમ ત્રણ વાતો—સેદ—વિના, પ્રેમ બનેજ કેમ ? એવો પ્રેમ તે સાચો પ્રેમ પ્રકાર નથી, સાચો પ્રકાર તો એજ કે જે ઉપર મ્હા છે તે ત્યારે એમ શક્તિ ધરે કે એવો પ્રેમ તો કહી દીધો નથી, જે સેદ રૂપ પ્રેમ કહીએ છીએ તે તો સજ્ઞા પ્રેમી જોનોમા રૂપીએ છીએ—એવા પ્રેમીજન તો મનાર છે, મૂખ છે, એ શું સમજે કે પ્રેમ શી વસ્તુ છે ? જો અધ માણસ કદાપિ વસ્તુ સ્વરૂપ જોઈ શકે તો એવા પ્રેમી કહેવાતા જન પ્રેમ સ્વરૂપ સમજી શકે, પ્રેમી જોનો પ્રેમસ્વરૂપ ન સમજે તેનું કારણ એ છે કે સેદનો સ્વિકાર કરીને જેટલો પ્રેમ થાય છે તે તો એક સ્વાર્થજ છે, પોતાની કોઈ મતલબ, પોતાના અતરને સામાના અતરની અનુકૂળ પામવાની ઈચ્છા—એટલું પણ તેવા પ્રેમમા કારણ હોય છે, ત્યાં કારણ છે ત્યાં ભે. છે, સ્વાર્થ છે, માયા છે, સેદ છે ને માયા છે ત્યાં અહ ભાવ છે અહ ભાવમા પ્રેમનો અવકાશજ નથી કેવળ અહ ભાવશૂન્ય જે પ્રેમ તે પ્રેમ છે અહ ભાવ અયો એટલું કહેવામાજ વાસનાનો અવકાશ નથી તેથી અહંશૂન્ય અસેદાનુભવીને અસેદમા વિશેષ નહિ આવે

અભિસાર

(લેખિકા—સૌંદર્યમતી દેસાઈ)

“રાધે, જો રાધિકે, પ્રિય સખી ક્યાં ઘેટી છે? શા વિચારમાં છે? જોની, આ માધવી કુંજોમાં કુરવઠનાં પુષ્પો લળીલળીને ત્હારા આગમનની પ્રતિક્ષા કરી રહ્યાં છે. કારણ ત્હારા વિના, એ માધવી લતાઓને ને સર્વ પુષ્પ લલિતાઓને—કહેને કે જઈ-ચેતન્ય સર્વને રયામ મિલનની શી આશા? તું તો કહેતી હતી ને કે” આજ તો પ્રિયતમ રયામ માટે કાલિદાસ મનહર તટ પર માધવી કુંજોમાં સર્વ તૈયારી કરી છે, પણ ક્યાંક અમેલીની સુગંધ-મયી વેલોથી આત્મહાસિત મંડપમાં એ નટખટ છૂપાઈને આપણને ભેટા ન હોય, બેને પહેલે હીમ-કર લળી-લળીને મણીમય માળા સમી મોગરાની વેલીના મંડપમાં શું નિરખે છે? ને-ને મયુરચુગલો એ મંડપ પાસે ઠેકું ઉન્માદકારી નૃત્ય કરે છે? પેલી કોકિલ કેવાં તરસત નયનોએ ઝુકી ઝુકીને એ મંડપમાં જુવે છે, સંજનિ, કહે, ત્યાં એવું તે શું આકર્ષણ છે કે મ્હાડું હૃદય ને નયનો, અંગે-અંગ ને રોમે રોમમાં પ્રેમનું ઉદીપન યાય છે? રાધે, સમજ નથી પડતી મ્હને—બોલને રાધિકે, આમ કયા ગહન રસમાં તું તનમય છે? પહેલ આ મધુયામિની રયામ વિના—જેતા સ્પર્શ વિતા કેમ વિતશે? શું મહનમોહન હરેય આમ તલસાવવાયાં જ શુરા છે? એ નટખટ કૃષ્ણને વિરહથી જળતાં આપણાં અંતરો માટે કાળજી નથી? એ અંતર્યામીએ અંતર્યામીપણ મ્હારા જેવી હિન માટે સંકેતો લીધું છે? રાધિકે, જો કૃષ્ણમયી રૂપેશ્વરી, તું તો એ રસેશ્વરની—અમે સર્વની—રાસેશ્વરી છે. જેમ પુષ્પમાં સુગંધ પુષ્પોમાના ચરશીમાં નરી ધવળતા એક રૂપ છે તેમ તું ને રયામ ક્યાં જુલાં છે? જરૂર તું કાન્હાને ત્હારી સન્મુખ-ત્હારી અતિ નિહટ નિરખી રહી છે, પણ સંજનિ, એ ક્યારે

મોહન તો પ્રેમવશ છે ને? પ્રેમ જોટલે ભક્તિજન ને? હા, પણ તે તો ત્હોડું સ્વરૂપ, પરમ પ્રેમરૂપા ભક્તિમૈયા રાધિકે, હું તો ત્હારે ચરણે આવી છું. આંતરબંધાઓથી, આ અધિરતાઓથી તું ક્યાં અજાણ છે? તું ને રસનિધી બન્ને—અરે બન્ને છતાં એકજ સર્વ બણો છે. જે ઉણપ દિન ઇન્દુમાં હોય તે તું ન ટાળે? કયામથી રાધિકે! ત્હારાં પ્રેમનયનાં કે જે રયામમાં તદુપતા સાધી રહ્યાં છે, તેવાંજ પ્રેમચક્ષુઓ મ્હને ન આપે? બોલને—ધન્ય રાધિકે, ત્હારા મધુર હોઠો હાલી રહેલા હું બેઉ છું. શું બોલી? હં સમજ-ફરીથી ન બોલે? “ચાલ-ચાલ સખી, મ્હારા પરમધન જીવનધન. રયામ સુંદર સંગે ત્હારૂં ચિરસ્થાથી મિલન કરાવું. ઘેલી, આમ વ્યાકુળ થઈ રૂવે છે શું? તું બણે છે? જે મ્હારે ચરણે આવે તેને હું કેમ જુલું? ને તું સમજે છે? વિરહની પરાકાષ્ટા તેજ મિલનની ધન્ય પળ, તું જે માધવી ને અમેલીના લતામંડપની વાતો કરતી હતી ત્યાંજ રયામ માટે સર્વ તૈયારી કરી મ્હેં અધિર મને ગાયું કે—

“રયામ મધુયામિનીએ બની
વાસહસજ્જન, મિલન વાંછું તમારું
બની અભિસારિકા કૃષ્ણ ત્હારી
પળ-પળ સંગે હું વાચૂં
મિલન મ્હાડું-ત્હાડું અલ્પનિશ,
ચિરસ્થાથી હું માંગું
મમ આસ્તનું સંલગન
તમસંગ, મહાસાવ હું પામું
અભિસાર, રસરાજ મમ તન—
મનનો પ્રગટી ઉપા દેહતાપ વ્યુઝાઉં
મુરલિ રજનિએ કૃષ્ણ સાંવરિઆ,
ઈન્દુ અંગથી અંગ મિલાઉં

અર્જુને યુદ્ધ શા માટે કર્યું ?

(સં-—નકીલ બાલાભાઈ નારણજી બી. એ.)

[અનુસંધાન પૃ. ૮૧ થી આગળ]

એ પ્રમાણે શ્રી આલય કરાચાર્યના ઉદ્ગાર ભેતાં શ્રીકૃષ્ણ ભગવાને અર્જુનને ઉપરના રહોકેમા જે ઉપદેશ કર્યો છે તેજ ઉપદેશ શ્રીમદ્ આલય કરાચાર્ય સંન્યાસી છતાં—એ અર્જુન તેઓ શ્રીને શરણે ગયો હોતો, શ્રીમદ્ આલય કરાચાર્ય પણ શ્રીકૃષ્ણ ભગવાનના જેવોજ ઉપદેશ કરતે એમ શ્રીમદ્ આલય કરાચાર્યના ઉપરના રહોકેમા બાખ્ય પરથી સ્પષ્ટ છે મતલબ એજ કે, સંન્યાસને એક આશ્રમરૂપ માનનારા તત્ત્વવેત્તાને જ્ઞાનેતર કયામા પણ લોકસ શ્રદ્ધા અથે સંભોગે અનુસાર કર્મયોગનું પાલન કરવું પડે—અને તેમ કરવું જરૂર છે એમ શ્રીમદ્ આલય કરાચાર્યનો મત છે—અભિપ્રાય છે—એ તદન સ્પષ્ટ છે

વીરેષ નવાઈ જેવું તો એ છે કે ત્રીજા અધ્યાયના ૨૫ મા અને ૨૬ મા રહોકેના બાખ્યમા શ્રીમદ્ આલય કરાચાર્યશ્રીએ એવા ઉત્તર કહાડયા છે કે “કેઈ પણ તત્ત્વવેત્તાને લોકસ શ્રદ્ધાત્મક પરાંપકાર પીના બીજું કંઈ પણ હતુંએ છે જ નહીં” આવા ઉદ્ગારો ગીતા વાક્ય અનુસારજ નીકળેલા છે ચાલુ પ્રસંગમાં આવા ઉદ્ગારો શ્રીમદ્ આલય કરાચાર્ય શ્રી એવી કમ્પના પણ કાળ કરી ચકે એટલુંજ નહીં પણ “પ્રસ્તુત કર્મ” તુ કર” એવો ખુલાખો શ્રીમદ્ આલય કરાચાર્યો જે કર્યો છે તેવો છુટાઓ બીજા વીવરણકારને મુજત પણ નહીં અસ્તુ,

હવે લોક સ શ્રદ્ધા કરવામાં તત્ત્વવેત્તાને જ્ઞાન નોજ સુખ્ય ટેકો દોાય છે તેથી કર્મર ભધી તે દગતા

નથી અને તેટલું અને ગમ્ય તે કર્મ તેઓ કરશે—તો પણ તેણે કર્મ તત્ત્વવેત્તાઓને જન્મ તરનું કારણ બનતું નથી કારણ જ્ઞાનરૂપી અગ્નીથી તેવા કર્મના બીજા બીજી ગએલ હોય છે તેથી તેવા કર્મ કંઈ પણ ફળ આપી શકતા નથી

તેવા તત્ત્વવેત્તાઓ કેવળ જ્ઞાનનિષ્ઠ હોય સુખ્ય હોય છે છતાં પણ અર્વાતરયામી પરમાત્મા પ્રીત્યે એટલે જીવોના અતરાત્રમાને સુખી ર્વા સતુષ્ટ કરવા સારૂ—અર્થાત પરાંપકાર અર્થે—લોક સ પ્રદ્ધ માટેના કર્મર ભમા તેવા તત્ત્વવેત્તાઓ જેને લાગી બાય છે તેમને સર્વ સજ્જ હર જ્ઞા—આ સર્વ પ્રજ્ઞ છે ! તો પછી તેઓ જે કર્મ કરે છે તે પણ પ્રજ્ઞજ કહેવાય—આવો જ બીર બોધ—આવુ ઉત્તમ જ્ઞાન તત્ત્વજ્ઞાનીઓને સ્વાધીન હોય છે, તેથી કર્મ કરતા રહેવુ એ તેઓને તો જ્ઞાપકાર નિવિકલ્પ નિ સંદેહ સમાપીરૂપજ હોય છે અને આ પ્રમાણેનો અભિપ્રાય ભગવાને ગીતાજીના અધ્યાય ૪ ના રહોક ૧૮ થી ૨૪ એ સાત રહોકેમા પ્રકટ કરેલો છે

તેવા અભિપ્રાય પરથી કેટલાક તે અભિપ્રાયને કર્મયોગનો પાલક—ટેકો આપનાર છે, એમ માને છે પરંતુ ખરી રીતે તો અધ્યાય ૪ ના રહોક ૧૮ થી ૨૪ મા ભગવાને જ્ઞાનયોગની સ્તુતી આકલતરી રીતે કરેલી છે

આગળ વધીએ તો અધ્યાય ૪ રહોક ૨૫ થી ૨૮ સુધીના આક રહોકોથી ભગવાને અજ્ઞાની

લોકો માટે ભીન્ન ભીન્ન યોગ સંજ્ઞાથી કર્મ'યોગનું વર્ણન કરીને છેવટે—અંતે—એ સર્વ કર્મ'યોગ જ્ઞાનેપરિસમાપ્યતે । (અ૦ ૪ શ્લો ૩૩) એમ કહી આપ્યું. એટલે જ્ઞાનનો ઉદય થતાંજ તેમાં સર્વ કર્મો સમાપ્ત થાય છે એમ કહીને, જ્ઞાનયોગની પ્રાપ્તિ કેવી રીતે થાય તે પ્રાપ્તિનો ઉપયોગ શો ? તેનું માહાત્મ્ય શું ? તેનું ફળ શું ? વીગેરે વર્ણન ભગવાને અધ્યાય ૪ ના ૩૩ થી ૪૦ શ્લોક સુધીમાં કર્યું છે અને છેવટે અધ્યાય પુરો કરતી વખતે ભગવાન એમ બોલ્યા કે:—

યોગમાતિષ્ઠોત્તિષ્ઠ ભારત ।

—ગી૦ ૪૪૨

એમાં જણાવ્યું કે હે અર્જુન, ઉઠ, અને એ કર્મ'યોગ કર. એવો હુકમ ભગવાને ફરીથી એકવાર ચોથા અધ્યાયને અંતે કરીને ચોથો અધ્યાય પુરો કર્યો.

પરંતુ અર્જુન તો પાકો વંકોડીયા સ્વભાવનો હતો. તેથી ભગવાને ચોથા અધ્યાયમાં જે નીરૂપણ કર્યું. તે બધું ચોતાને સમજાયું નથી એવું બહાનું કરીને પાંચમા અધ્યાયની શરૂઆતમાં અર્જુને તકરારી દલીલ આરંભી કે હે ભગવન, આપનો આ ઉપદેશ તે કયા પ્રકારનો ? આપે તો ફરીથી એક બાબતથી કર્મ સંન્યાસ ને બીજી બાબતથી કર્મ'યોગ એવો બે પ્રકારનો ઉપદેશ કર્યો. તો એવું દીર્ઘચર્ચો બોલો મા. એ બે પ્રકારના ઉપદેશો પૈકી જે પ્રકારનો ઉપદેશ અધીક પ્રશસ્ત-અધીક સિત્ત-કર અને મારે માટે યોગ્ય હોય તેજ એક નીશ્ચય-પૂર્વક (સમજાવીને) મને કહો.

અહીં એમ લાગે છે કે ત્રીજા અધ્યાયના આરંભે અર્જુને જે પ્રશ્ન કરેલો છે. અને તેના માટે ભગવાને જે ઉત્તર આપેલો છે. તેજ જવાબથી

અર્જુનની હાલની તકરાર મટવા સરખી છે. છતાં ફરીથી તેજ તકરાર અર્જુને ઉભી કરી છે તેથી તેનો વીશેષ સચોટ જવાબ આપવા માટે ભગવાન જવાબ આપે છે કે “સંન્યાસ અને કર્મ'યોગ આ બન્ને મોક્ષના સાધન છે” એજ અર્થ—

સંન્યાસઃ કર્મ'યોગઃ નિઃશ્રેયસકરાતુભૌ ॥

—ગી૦ ૪૪૨

ઉપરના શ્લોકનો છે. ઉપરનું સંસ્કૃત શ્લોકનું વાક્ય સરળ છે અને તેનો અર્થ પણ ખુલ્લો અને સરળ છે.

કર્મ'યોગ મોક્ષપ્રદ એટલે મોક્ષનું સાધન શી રીતે એમ કોઈને શંકા થાય તો કર્મ'યોગથીજ ચિત્ત શુદ્ધિ દ્વારા જ્ઞાન પ્રાપ્તિ થાય છે અને જ્ઞાનપ્રાપ્તિ દ્વારા મોક્ષ સધાય છે. ત્યારે પછી સંન્યાસ પણ મોક્ષપ્રદ યાને મોક્ષનું સાધન કેમ ? એમ કોઈ પૂછે તો તેનો જવાબ એટલોજ કે કર્મ'યોગ દ્વારા ચિત્ત શુદ્ધિ કરીને જ્ઞાનપ્રાપ્તિ થયા પછી કર્મની સમાપ્તિ થાય છે. એટલે કર્મ'નાં ફળ આપવાવાળાં બીજા બળી ગયેલાં હોય છે તેથી તે કર્મ' સંન્યાસજ કહેવાવાનો. અને તે પણ મોક્ષનું સાધન બને છે.

પરંતુ કર્મ'સંન્યાસ અને કર્મ'યોગ એ બેમાં કર્મ' સંન્યાસ કરતાં કર્મ'યોગ અધીક પ્રશસ્ત છે. એમ પણ ભગવાન કહે છે. માટે આ બાબતનો ચોટા વીચાર કરવા જેવો છે.

ખરી રીતે તો કર્મ'યોગ એ કર્મ' સંન્યાસની પહેલાંજ આવી જાય છે. એટલે કર્મ'યોગ પૂરો થયા પછીજ કર્મ' સંન્યાસનો પ્રસંગ આવવો જોઈએ એવો સરળ પ્રકાર છે. અર્થાત્ મોક્ષને માટે કર્મ'યોગ કરતાં કર્મ' સંન્યાસ વધારે નજીકનો ઠરે છે અને કર્મ'યોગ એ દુરનો ઠરે છે. અને જે મોક્ષની વધારે નજીક હોય તે સાધન ઉત્તમ

મહાય એ ધારણે તો કર્મયોગ કરતા કર્મસંન્યાસની યોગ્યતા વિશેષ કરે છે છતાં ભગવાન તો કર્મ સંન્યાસ કરતા કર્મયોગને વીરોધ મહત્વ આપે છે. સારે ભગવાનનો આશય-હેતુ-માનાયું શુ હોયો એક એવો તેનો આપણે વીચાર કરીએ. કારણ તે એક હોયો છે.

ઉપરની બાબતનો વીચાર કરતા અપણને ખીલાળતા ત્રીભ અધ્યાયના ચોક્કસ શ્લોકના અર્થનું સ્પષ્ટ થતાની સાથે ઉપરનો દાવડો છુટી બાધ છે તે ઠેવી રીતે બને છે તે હવે આપણે જોઈએ.

ત્રીભ અધ્યાયનો ચોથો શ્લોક નીચે પ્રમાણે છે—
ન કર્મણામનાત્માજ્ઞાન્ય પુરુષાઽપ્યુતે ।
તત્ત્વ સંન્યસગાદૈવ સિદ્ધિં સમપિગચ્છતિ ॥

—ગી. ૧૩

હે અર્જુન, કર્મને આરબ ન કરવાથી કઈ મનુષ્ય નૈકર્મભાવને પામને નથી—કારણ નૈકર્મ ભાવ એટલે જ અવસ્થામાં કર્મો અકર્મરૂપ થઈ બાધ છે અને કઈ પણ ફળ ઉત્પન્ન કરી શકના નથી તેનું નામ નૈકર્મ ભાવ તેવું કહ્યું કર્મને આરબ ન કરવાથી જનતું નથી, તેમ કર્મ ત્યાગથી (કેવળ સંન્યાસથી) પણ મનુષ્યને કઈ સિદ્ધી પ્રાપ્ત થતી નથી.

તાત્પર્ય એ જ કે કર્મો બીજકુલ કરીએ નહીં ને નૈકર્મ સ્થિતિ (સંન્યાસ સ્થિતિ) પ્રાપ્ત થાય છે એમ કોઈએ માનવું જ નહીં. અર્થાત્ કર્મો ન કરતા અમસ્તા તે તણને બેસકું તેથી તો ચિત્ત શુદ્ધિ હીન અને જ્ઞાનાભિભાર હીન થયાને મનુષ્ય પ્રાપ્ત થાય છે અને તેવા ખોટા સંન્યાસથી સંન્યાસનું ફળ મળતું નથી એવી સ્થિતિમાં ખાલી પોલપોલ કર્મ સંન્યાસ કરવા કરતા કી મધુશયનમ રૂપ કર્મ યોગ કરવામાં વળગવું એ જ અધિક પ્રયત્ના છે.

ઉપરના અભિપ્રાયથી પ્રસ્તુત અધ્યાય પના શ્લોક ૨ માં કર્મ સંન્યાસ કરતાં કર્મયોગ સારો એમ ભગવાને કહેવું હોતું જોઈએ. અને તે પ્રમાણે જ નીશ્ચિત વસ્તુ સ્થિતિ છે એમ આજ્ઞનાં વચનો બેતા પણ નીશ્ચયપણે આપણે કહી શકીશું. તે વચનોવાળા શ્લોકો આ રહ્યા—

સંન્યાસસ્તુ મહાવાદા દુસ્તમાનુમવાગત ।

કોમલુક્ષો મુનિર્જ્ઞા નિવિરેણાધિગચ્છતિ ॥

—ગી. ૧૧

યાગિન કમં કુર્વન્તિ સદ્ગત્યત્વામશુદ્ધય ॥

—ગી. ૧૨

હે અર્જુન તું બંધે ગમે તેટલો મુશ્કેલી હોય, ગમે તેટલો ભગવાન હોય, તોપણ તને માર્ગ ૧૫૮ કહેતું એવું છે કે કર્મનુદાન કર્યા વીના સંન્યાસ જેવી વસ્તુ પ્રમથવી ઘણીજ કઠણ છે. આથી ત દુર્લભ છે. તો ધીરો તે સંન્યાસ જેવી વસ્તુ જલદીથી અને સુલભ કેમ થાય સુખસાધ્ય થાયો બને ? એમ બે તુ પૂછે તો હો તો ભગવાન કહે છે કે હું કહું છું કે કર્મ યોગ કરવાથીજ સંન્યાસ તને જલદીથી અને સુખસાધ્ય મળી જશે અને તેવા ગભીર કારણને હઈ યોગીઓ પણ આત્મશુદ્ધિ માટે કર્મ યોગ કરે છે.

ભગવાનના આ તમામ ઉદ્દેશોને અજ્ઞાની મનુષ્ય ને હૃદયેથી છે એટલે તદ્દન ૧૫૮ છે એમ આપણે સર્વે કબુલ કરીશું પરંતુ તેથી સંન્યાસ જેવી વસ્તુ અપેક્ષિત નથી એવો ભગવાનના કહેવાનો બીજકુલ આચર્ય નથી.

ત્યારે હવે સંન્યાસ પણ મેં સમજી શી રીતે ? એવો સવાલ ઉઠે તો તેનો જવાબ એટલોજ કે કર્મોએ ચિત્ત શુદ્ધિ કરીને જ્ઞાતાભ્યાસનો અભિભાર મેળવ્યા પછી—એટલે જ્ઞાન ઉત્પન્ન થયા પછી—

કર્મોની સમાપ્તિ જ યદ્ય જાય છે એટલે પછી સંન્યાસની જ સ્થિતિ ઉપસ્થિત થવાની અને તે સંન્યાસ સ્થિતિ જ મોક્ષને સાધન બૂત છે. પરંતુ એ બેમાં કર્મ સંન્યાસ કરતાં કર્મયોગ જ અધિક પ્રશસ્ત છે. એમ પણ ભગવાન કહે છે.

ત્યારે ઉપરની વાતનો થોડો વીચાર કરવો જરૂરી છે. ખરી રીતે કર્મયોગ એ સંન્યાસની પહેલાં-પૂર્વે-હોવાનો. અને કર્મયોગ પુરો થયા પછી જ સંન્યાસનો પ્રસંગ આવવો જોઈએ એવો પ્રકાર સરળ છે. અર્થાત મોક્ષને માટે કર્મયોગ કરતાં સંન્યાસ અંતરંગ કરે છે અને કર્મયોગ સંન્યાસ કરતાં બહીરંગ કરે છે. અંતરંગ સાધન હમેશ વધારે પ્રશસનીય છે. એ ન્યાયે સંન્યાસની પ્રશસ્તતા અધિક છે એમ કહેવું જોઈએ છતાં ભગવાને તે એમ કહેવું છે કે બહીરંગ એવો કર્મયોગ તે જ સંન્યાસ કરતાં અધિક પ્રશસ્ત છે. ત્યારે આમ કહેવામાં ભગવાનનો શો હેતુ હોવો જોઈએ તે જોવું પડશે. તે હેતુની વીચારણા કરતાં આપણને ત્રીજા અધ્યાયના ચોથા શ્લોકનું સ્મરણ આવે છે. અને તે શ્લોક વાંચતાં જ ભગવાનના હેતુની આપણને જાણ થઈ જાય છે. તે શ્લોક આ રહ્યો—

ન કર્મણામનામ્ભાત્રૈજ્યર્થં પુરુષોઽયુજતે ।

ન ચ સંન્યસાદેવ સિદ્ધિં સમધિગચ્છતિ ॥

—ગી• ૩/૪

તાત્પર્ય એ જ કે કર્મો છીડકુલ ન કરવાથી દુઃખ ને દુઃખ સ્થિતિ પ્રાપ્ત થતી નથી—(નૈષ્કર્મ્ય સ્થિતિ એટલે સંન્યાસ) એટલે કર્મો દયા વીના અમરથા તે તજીને બેસવું તેથી તો ચિત્ત શુદ્ધિથી હીન થવાશે જ્ઞાનના અધીકારમાંથી પણ પાછું પડાશે અને તેવી સ્થિતિમાં કેવળ નામનો સંન્યાસ શ્રદ્ધા કર-

વાથી સંન્યાસ સ્થિતિનું જે ફળ મળવું જોઈએ તે મળશે જ નહીં. ઉલટ તેવી સ્થિતિ તો પોતા પોતા સંન્યાસ કહેવાય તેના કરતાં તો કર્મયોગનો એકડો ઘુટવો એ જ વધારે સાફ છે. અને આ પ્રભાવેના હેતુથી અને અભિપ્રાયથી જ અધ્યાય ૫ શ્લોક ૨ ને બોલાયલો છે. તે આ રહ્યો—

સંન્યાસઃ કર્મયોગશ્ચ નિઃશ્રેયસકરારુભૌ ।

તયોસ્તુ કર્મસંન્યાસાત્ કર્મયોગો વિશિષ્યતે ॥ ૧

—ગી• ૫/૨

અને ઉપર દર્શાવેલો અભિપ્રાય જ યથાર્થ છે તે માટે પુરાવા તરીકે આગળના શ્લોકો તદ્દન પાસે જ સુકાયલા છે. તે આપણે જોઈએ—

સંન્યાસસ્તુ મહાવાદો દુઃસમાપ્તમયોગતઃ ।

યોગયુક્તો મુનિર્વ્રજા ન ચિરેણાધિગચ્છતિ ॥

—ગી• ૫/૬

યોગિનઃ કર્મ કુર્વન્તિ સદ્ગં ત્યક્ત્વાલમુદ્ધયે ।

—ગી• ૫/૧૨

આ શ્લોકોથી ભગવાન અર્જુનને કહે છે કે હે અર્જુન, તું ગમે તેટલો શુરવીર હો, ગમે તેટલો બળવાન હો, તો પણ તું તને સ્પષ્ટ અને કોમ્પી વગાડીને કહું છઉં કે કર્મ અનુષ્ઠાન થયા શીવાય સંન્યાસ જેવી વસ્તુ પ્રાપ્ત થવી કઠણ છે. ફલેભ છે.

ત્યારે સંન્યાસ જેવી વસ્તુ જલદીથી અને સહેલાઈથી-કુખેથી શી રીતે મળે એમ તું પૂછવા માગે છે એવું મને લાગે છે. એમ કહીને ભગવાને જવાબ આપ્યો કે—કર્મયોગ કરવાથી જ સંન્યાસ જલદીથી મુખસાધ્ય છે, અને તેટલા માટે જ કર્મયોગીઓ આત્મ શુદ્ધિ અર્થે જ કર્મયોગ કરે છે.

ભગવાનના ઉપરના તમામ ઉદગારો અન્યાની ને ઉદ્દેશીને છે એમ તો સ્પષ્ટ છે અને સર્વ ઠાઈ તે માનશે જ—પરંતુ ઉપરના ઉદગારોથી સંન્યાસ

ગીરૂપયોગી છે કે તેની જરૂર નથી એમ કહેવાનો ભગવાનનો બીજુલ આશય નથી હલત રીતે સંન્યાસજ ખાસ જરૂરનો છે અને તે યોગવવા માટે કર્મયોગ સાધન રૂપ છે. બાકી યોગને માટે ખાસ જરૂરની વસ્તુ તે તો સંન્યાસજ છે. અને આ હેતુને લક્ષ્યમાં રાખીને જ ભગવાને પાંચમા અધ્યાયના આરંભમાં—

તથોસ્તુ કર્મસંન્યાસાત્ કર્મયોગો વિનિવૃત્યતે ।

—ગી. ૧૨

એવુ વાક્ય ઉચ્ચારેલું છે.

અહિં દેહલાક ટીકાકારોને શંકા થાય છે કે ઉપરના શ્લોકથી તત્ત્વવેત્તાએ જ્ઞાન મયા પછીના કર્મ સંન્યાસ કરવા કરતાં કર્મયોગ કરવો એજ વીરોધ હતમ છે એમ કેમ ન માનવું ? તે શકના ટીકામાં શકા કરનાર બીચેના શ્લોકો પર આધાર રાખે છે અને તે એ કે પૂર્વે ક્રમા અધ્યાયના શ્લોક ૨૫ ૨૬-૨૮ નો અર્થ એવો છે કે, અને શંકા કરનાર કેવળ શબ્દાર્થ છે છે તે એવો કે “ભગવાને એમ કહેલું છે” “તત્ત્વવેત્તાએ લોક સપ્રકાર્યે કર્મયોગ કરવો, અજ્ઞેયોને બુદ્ધિ ભેદ યાય એમ તેણે વર્ણવું નહીં. અર્થાત્ યથેષ્ટાયરણ કિના કર્મ સંન્યાસ કરવા કરતા કર્મયોગ કરવો અધીક પ્રચારત છે તેને યોગને માટે તેમો ઉપયોગ નહીં હાય તો પણ લોકોને તેનો ઉપયોગ થયે માટે કર્મયોગ અધીક પ્રચારત છે”

ઉપર પ્રમાણે જે ભગવનનું કહેવું છે તેજ ફરીથી બીજી જગુ પ્રસ્તુત ૫ મા અધ્યાયના ૨ જ શ્લોકથી કહેવું છે એમ કેમ ન માનવું ? એવી શકા અને ટીકાના ક્ષપ્ત જવાબ અને ઉત્તર એ છે કે અધ્યાય ૫ ના શ્લોક ૨ જનું શ્લોકવચન અઠાની અનુષ્ટોમે માટે જ ભગવાને ઉચ્ચારેલું છે એમ

આગળના શ્લોકો ૫ ૧ ૧૫ થી ૨૫૪ થાય છે, વળી તત્ત્વવેત્તાનો વાસ્તવીક સંન્યાસનો પ્રકાર કેવો હોય છે તે લક્ષ્યમાં લેતા કર્મ સંન્યાસ કરતા કર્મયોગ અધીક પ્રચારત છે એમ લોકલુપ્ત એ બીજુલ અયોગ્ય છે. અર્થાત્ તત્ત્વવેત્તાનો સંન્યાસ કેવા પ્રકારનો હોય છે ? તે કહેવા અઠો હવે માગીએ છીએ.

પરંતુ સંન્યાસ આશ્રમના પદમ પુરસ્કર્તા જે આદ્ય શ્રી ય કરાચાર્ય જેમને શ્રીમન્ મહેશ્વરાપરા વગાર જગદ્ગુરુ ગણવામાં આવે છે તેમના શબ્દોથી જ અઠો કહીશું કે તે શબ્દ—

“ગુણાના કર્મ, નૈવ વિચિન્ કરોમિ इति हि ते संन्यस्यन्ति । सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्य” इत्यादि हि तत्त्वविद संन्यासप्रकारमुक्त”

એટલે કર્મ એ પ્રકૃતિ શુષ્કોથી છે અને હું જે આત્મા તે અનિશ્ચિત સ્વભાવ હોઈ કર્મ પણ કરતો નથી. આવી આત્મરૂપ તત્ત્વવેત્તાને સમ જણ, અને એવી રીતે તે તત્ત્વવેત્તા સંન્યાસ કરે છે. એટલે અનિવેદ્યથી પ્રથમ તેને એવો ભાસ થાય છે કે “હું કર્મ છું કર્મ કરવું એ મારો સ્વભાવ છે” એવી સમજણ હોય છે. પરંતુ તે સમજણ પાછળથી બીચારજન્ય જ્ઞાન બળથી બદલાય છે અને કર્મ એ શુદ્ધમય પ્રવૃત્તિનું કાર્ય છે માટે તે પ્રકૃતીમાજ છે પણ આત્મામા કર્મ કરે નથી આત્મા તો કેવળ અસીમ, સાક્ષીજન, પ્રકાશક નિશ્ચિત, નિર્વિકાર સ્વભાવ માટે આત્મામા કોઈએ પણ કર્મ પાળી લીધું તે બલ કહેવાય અને તે બલ હવે સુષરી અર્થ અર્થાત્ જમથી આત્મામા કર્મ છે એવો સ્વીકાર જે અગાઉ કરેલો તે પરા જ્ઞાનના યોગથી ત્યજાઈ ગયો અને તે કર્મ હવે પ્રકૃતીનું જ અને પ્રકૃતી બીજી રહેનાર છે એમ તે બીજાનને બીજીત થાય છે. (અપૂર્વ)

શ્રી મુકુંદરાજકૃત પરમામૃત

(સં-વામનરાવ પ્રાં પટેલ, બી. એ એલ. એલ. બી. (બોમ્બે) એલ. સી. પી. (લંડન)

એમ. આર. એસ. ટી. (લંડન) સૌથીસીટર.)

[અનુસંધાન અર્તાઈ ૫૦ ૮૬૨ થી આગળ]

પ્રકરણ ૭૩.

મહા કારણ દેહ નિરસન.

આ સર્વ દશ્યાકાર,
ભાસે જે સામે નજર^૧ ;
દાણી તે તૂંજ ઉર,
જ્ઞાન સ્વરૂપ. ૧.
અજાણનો અજાણભાવ,
જાણે છે તુંજ સ્વયમ્ભવ .
એ જાણે લઈ મળવા જાવ,
પાતે પાતાને . ૨.
જાણે પાતે પાતાને,
રહે ક્યાં અજ્ઞાન તે ;
જ્ઞાતા બનીને પાતે,
અજ્ઞાન નિરસે^૨, ૩.
અજાણ જ્યાંથી જતી રહી,
જાણે ત્યાં તે એકલી રહી ;
તે નિજદષ્ટિ શાસ્ત્રે કહી,
આત્મરૂપ . ૪.
જાણેથી જે પાતાની,
જાણે વાતો પ્રપંચની ;
વિષ્ણુ જાણે પાતાની,
અજાણતાનું તરે^૩, ૫.

ગુરુ કૃપાએ અજાણ તે ફીરે,
પછી સ્વયં જાણે પાતે ;
અનુસંધાન એવું થાય તે,
મહાકારણ કહેવાય . ૬.
ફીટતાં એ અજાણ,
થાય જે પાતાની જાણ ;
તો ત્રણે દેહનું સાક્ષી પણ,
મહા કારણ દેહ છે . ૭.
ત્રણે અવસ્થાનું જાણપણ,
તે અવસ્થા તૂર્યા જાણ ;
ત્રણે દેહનું જે અવલોકન,
તે મહા કારણ દેહ . ૮.
હું સર્વસાક્ષી એવું ભાન,
છે પ્રત્યગાત્માનું અભિમાન,
બધાનું જ્યાં ઘાતનું સ્ફુરણ,
તે શુદ્ધ સ્વરૂપ . ૯.
કાર્ય કારણનું કારણ,
માટે એ છે મહા કારણ ;
કાર્ય-કારણ બનતાં શૂન્ય,
મહા કારણ કોણ કહે ? ૧૦.
છે સ્વયંભૂ પાતે,
સમજે સ્વરૂપ તે પાતે,
પરબ્રહ્મ નિર્વાણ છે પાતે,
નિજ સ્વરૂપ. ૧૧.

૧=નજર સામે ભાસે છે. ૨=દૂર કરે.

૩=જે જાણે છે ઉપદેશ પ્રાપ્તિ વાતો જાણવામાં
કરે તેને અજાણતા એટલે અજાણનો ખામ નો છે.

પાતાનું અનુસંધાન,
 કરતાં ધાય વિજ્ઞાન.
 પ્રપંચનું મિથ્યાપણ,
 આવે અનુભવમાં. ૧૨.
 હું છું શુદ્ધ આત્મા પાતે,
 એ જે અભિમાન પ્રવર્તે;
 તેનો સાક્ષી અન્ય કોણ તે,
 વિના તારા? ૧૩.
 માટે જાણનું જે નિજ્ઞાન,
 તે શુદ્ધ સ્વરૂપ હું પાતે જાણ;
 એ જાણથી અન્ય શબ્દો પૂર્ણ,
 એટલે હું નિજાત્મા. ૧૪.
 છે ક્યાંથી જ્ઞાન સ્ફુરણ,
 તે હું સ્વભાવે છે જાણ;
 અનુભવો એ સ્વરૂપ જ્ઞાન,
 જાણીને. ૧૫.
 જ્ઞાનની ન્યાં ગતિ 'પ્રુટે',
 ત્યાં તવ સ્વરૂપની જાણપડે;
 ધન્યાનંદ ના વધે હટે,
 અપરિચિત. ૧૬.
 જે અમર્યાદ અનૂપ,
 તે જાણે આપો આપ;
 અવિનાશ સ્વરૂપ,
 અખડિત. ૧૭.
 હતિ શ્રી મહા કારણ કેહ નિરસન નામ
 સમમ પ્રકરણપદ સંપૂર્ણ.

પ્રકરણ ૮ મું.
 શૂન્ય અંકજી
 તે ધન્યાનંદ કહીએ શૂન્ય,
 તેાએનામ આપતું પડ અન્ય;
 વળી તેને કેમ કહીએ શૂન્ય,
 જે પાતે જાણે પાતાને? ૧.
 જે સર્વ શૂન્યને જાણે છે,
 તેને શૂન્ય કોણ કહે છે?
 શું કોણ ક'ઈ જાણે છે;
 કેવળ નથી તેનાથી? ૨.
 દરય હરે ના સ્વરૂપે એ,
 દરયને દેહત્વ ન દેખાએ;
 સ્વપ્રકાશ સર્વને દેખાએ,
 સ્વ સ્વરૂપ સદા. ૩.
 સર્વ રાજતાં છાડી અજાણ,
 રહેશે, ઉરશે, એક જાણ;
 તે જાણને જાણુવા સ્ફુરણ,
 બીજું ક'ઈ નથી. ૪.
 અભાવ જેવું તેથી બાસે,
 પણ શૂન્ય તે કયમ કહેવાશે?
 જે જાણે સર્વને સર્વશી,
 ને શૂન્યને વળી? ૫.
 શૂન્યનું શૂન્યપણ,
 કહી છે પાતે જાણે;
 ધાયે તે સ્વરૂપે લીન,
 શૂન્ય સંહિત. ૬.

૪=આ જાણ વિનાની ભાગીની જાણે વાતો જાણુવી

કરે શો તે તમેજ નિજાત્મા

૧=આવળ જાણ ન કહે.

૧=જાણવામાં આવે ધાય.

૧=શૂન્ય વડે, જે નથીજ તેનાથી ક'ઈ કોઈ પણ વસ્તુ જાણી કહે છે?

૨=તે જાણુજ શૂન્યના શૂન્યપણની કાપના કરે છે તેથી જાણુ સ્વરૂપમાં લીન થતાં આ કહવાના પણ તેમાં લીન થાય છે

તે નથી શૂન્ય કે જાણ,
 દૃશ્ય કે નથી અજાણ ;
 શક્તિરૂપે ભર્યું પૂર્ણ,
 સ્વસ્વરૂપ. ૭.
 જે નિરંતર નિર્મળ,
 જ્ઞાનઘન કેવળ ;
 શિક્ષકાશ અખિલ,
 અગોચર. ૮.
 જ્યાં નિરસે^૩ અજ્ઞાન અનિવાર^૪,
 શૂન્ય બને દૃશ્યાકાર ;
 જે સૂક્ષ્મથી સૂક્ષ્મ સપૂર,
 નિજજ્ઞાન. ૯.
 જે નિષ્કલંક જ્ઞાનાકાશ,
 કરે છે શૂન્યાકાશનો ગ્રાસ ;
 તે નિજદૃષ્ટા સ્વયં પ્રકાશ,
 પરમાત્મા તું. ૧૦.
 તે તું નિશલંબ^૫ સાક્ષી,
 નિર્લેપ સર્વપક્ષી^૬ ;
 પાશવાર રહિત^૭ નિરીક્ષી^૮,
 દૃષ્ટા થઇને. ૧૧.
 જ્ઞાનનું પ્રિય મંદિર,
 આસ્તિકોનું ઘર ;

સુખનો સાગર,
 ધન્યનંદ છું. ૧૨.
 જે સર્વસાક્ષી દીપન,
 જે પ્રકાશનું સ્થાન ;
 જે આત્માનંદનું નિધાન,
 તે કેવલ્ય છું. ૧૩.
 સકળ નિરસી શુદ્ધ જુદું,
 જ્યાં હરે તંપદ ;
 સરી પડે શુદ્ધ તત્ત્વ,
 અસિપદમાં. ૧૪.
 એવો છું પરમાત્મા,
 પણ જોયો તે તારો મહિમા.
 હવે રહેવા નિજધામમાં,
 કોઈ રીતે. ૧૫.
 લક્ષ્યાંશને અનુવાદવો,
 શુદ્ધ ભાવે સાંભળવો ;
 નિત્ય જેવો અભ્યાસવો,
 તે કહીશું હવે. ૧૬.
 જોથી સ્વરૂપે નિશ્ચય હશે,
 શુદ્ધ પરમાત્મા પ્રકાશે ;
 સદા ચિત્ત રમશે સમરસે,
 કેવલ્યમાં. ૧૭.

ઇતિ શ્રી શૂન્યખંડમાં નામ અષ્ટમ,
 પ્રકરણમ્ સંપૂર્ણ.

૩=ટલે, જરૂર રહે.

૪=અધાપ, શેષનું ન શેષાય એટલું. ૫=સ્વતંત્ર.

૬=કરેક દષ્ટિ બિંદુથી, અગ્રે તે રીતે જોઇએ તોપણ.

૭=અંત વમરનો. ૮=જુઓ.

૯=જ્યારે તત્ત્વમસિ મહાવાક્યનો અનુભવ પ્રાપ્ત થાય ત્યારે.



રહા એક દિન અવધિ કર

(સેન્—શ્રી કૃષ્ણદાસ બાદ)

વરધમે દિવસા મમ દિવસ મે મિલનેકી મુશી ।

ગૌન કહતા કે જુદાઈ સે વિસાવ જમણા કે ?

વરદ પ્રથમ ભરત કે મરના

ભાસુ નેમ મત ભાષ ન વરના

રામ ચરન પદજ મત ભાસ,

હુજુપ મહુપ ધવ તબઈન પાસ.

કર ન મોદિ જમ કહઈ કિ પોચુ,

પરનોકદુ કર નાદિન સોચુ

એકે કર ભસ દુસદ કવારી,

મોદિ કમિને સિચ રામ દુખારી,

મોદિ સમાન કે પાપ નિવાસ,

એકે કમિ સીચ રામ મનમ સ

રામ ચરણ ચ ચરીકે ભરત માનસની એવી
હિંચ વિમુક્તિ છે કે જેના તરફ માનસના કોઈ પણ
વાંચકનું ધ્યાન આકર્ષાયા વગર રહેશે નહિ. અગર
જો કોઈ ભરતની પત્રિક પ્રેમ કથાને માનસમાંથી
હાટી નાખે તો એ નિર્વિવાદ છે કે માનસ પછી
માનસ કહેવરાવવાને ચોખ્ખા ન રહે. ભરતને
પત્રિક પ્રેમ કર્તવ્યની કઠિનાડખો સાથે અથડાતો
કુગતો જે પ્રમાણે ઉત્તરોત્તર આગળ વધતો જાય
છે તે કોઈને પણ અગ્ર કયાં વગર રહેતો નથી,
ત્યાગ, તપસ્થા અને પ્રિય મિલનની ગીરજ પ્રતીક્ષા
દ્વારા તેનું કગલે કગલે પરિમાર્જન થતું જાય છે અને
તે એટલો બધો સુંદર જનનો જાય છે કે કોઈ પણ
રામ કથા વિપ્રાસુની વિપ્રાયા તેનાથી યાત્રા થવાને
બદલે ઉત્તરોત્તર તિમજ થતી જાય છે અને તે વારે
વારે એ અમૃતસાગરમાં ડુબકી મારવા વ્યાકુળ થઈ
ઉઠે છે ત્યારે તો દુઃસ્વીકાસ છ હરી બયા છે કે—

ભરત ચરિત ક્રિ નેમ "પ્રથમી" જે સાર સુનકિ
શીવ રામ પદ પ્રેમ અવસિ દોષ ભરત સરિતિ

X X X X

ભરત પ્રેમના એ એક નમુના જુઓ—

પ્રિયતમ રામ મારેજ હીરે વતમા રહે છે
આવો સિચારજ ભરતને વ્યથિત કર્યા કરે છે—

૧૧૭

પ્રિયતમના હુ ખનું કારણ હું ? કેવળ એજ
વાત ભરતના અત કરણને કમ્યા કરે છે. તેની
સામે તે બીજી સર્વ કઈ જીવી જાય છે પિતાને
દેહાન્ત, માતાની કુટિલતા, ચોકથી વ્યાકુળ
રતનાસ—સર્વ તેના સિચારોથી અદૃશ્ય થઈ જાય
છે ભાસ, માત્ર એજ સિચાર આવ્યા કરે છે કે, હાય !

મોર જનમ રહુર જનલ ગી ?”

હુજુ પડોચાડગુ તો દૂર રહું, ઉલટો હું તેમને
હુજુ પડોચાડગાનું કારણ જાન્યો. તેમનું રામ રામ
આ વ્યથાથી પીડિત થઈ ઉઠે છે, પણ—કોણ
સમજે તેમની આ કારણ વેદના ? અતમાં તેમને
સ્વયંજ પુરવાસીઓને કહેવું પડે છે કે—

શ્રદ્ધા પ્રદિન પ્રુનિ જાત ભસ તેકિ પ્રુનિ બીજી માર !
તાકિ વિષાક્રમ વારણી કદકુ રવન ઉપમાર !!
હાય ?

કિચ વિલે પૂજતે દો દઈ કિપર દેતા દે
એજ જમલ દો, તો જાતા કિ કિપર દેતા દે ।
આ બયાવલે ભરાલાથી આજુ હુદય સગળી
રહું છે, તેનાથી મૂકા થવાને માત્ર એકજ ઉપાય
છે, અને તે છે—બંધાવાની દશન !

કેમે પ્રિય રહુરીર પાછળે બેઠાનિન જાય !!
તેજ આ વ્યથાને સારી પેઠે સમજી શકે છે

તે જીવ કે રઘુવર ખિલુ જાણા ?

ઠીક જ તો છે—

“તુરહીં ને દહાં દિયા હે, તુરહીં દવા દેના ।”

તે એમ કરશે અને અવરથ કરશે. ત્યારે તો ભરતજીને વિશ્વાસ છે કે—

જયપિ જનમ કુમારુ તેં મેં સક સદા સરોસ,

આપન જાનિ ન લાગિદહિ મોહિ રઘુવીર બરોસ.

ખસ, પછી શું હતું ?

સૌપિ નગર મુચિ સેવકન સાદર સળહિ ચલાઈ,

મુમિરિ રામ સિય અરન તળ ચલે ભરત દોહ ભાઈ.

X X X X

માર્ગની દશાનું વણું ન ચર્ષ શકે એવું નથી.

જ્યાં કંઈ પણ પ્રિયતમની ચરણરજ મળી જાય છે

લાંજ પ્રવાસ કરીને તેને આંખે સ્પર્શ કરાવી માથે

ચઢાવી અને શરીરે ચોળવા માટે છે.

રજ સિરધરિ હિય નયનન્દિ લાવહિ,

રઘુવર મિલન સરિસ મુખ પાવહિ.

X X X X

પ્રેમારુપતની સન્મુખ પહોંચીને ભરત પ્રેમથી

લિન્હળ બની જાય છે.

બધી વાતો બૂલાઈ જાય છે અને—

પાહિ નાય કહિ પાહિ ગોસાઇ,

ભૂતળ પરે લકૂટ કી નાઇ.

અને પ્રિયતમને જ્યારે લક્ષ્મણજી સંદેશો કહે છે કે—

“ભરત પ્રનામ કરત રઘુનાથા ।” ત્યારે તેમની

શી દશા યર્ષ જાય છે—

તે ભણવા જોવા લાયક છે—

ઉઠે રામ મુનિ પ્રેમ અધીરા,

કહું પટ કહું નિપંગ ધનુ તીરા.

અરજસ લિયે ઉઠાઇ ઉર લાયે કૂપા નિધાન,

ભરત રાગ કી મિલનિ લખિ જિયરે સળહિ અપાન.

આ અનુપમ પ્રેમ સંમિલન પણ કલા કંઈ વણું ન કરવા જેવી વસ્તુ છે ? ત્યારે તો તુલસીદાસજી

પણ એટલુંજ કહીને અટકી ગયા કે—

અગમ સનેહ ભરત રઘુવર કો,

જહું ન જાઇ અન બિધિ ફરિદર કો.

સો મેં કુમતિ કહલે કેહિ ભાતી,

બાણુ મુરામ કિ ગોડર તાતી.

X X X X

પ્રેમનો સર્વોત્તમ આદર્શ છે, પ્રિયતમની

ઈચ્છાઓ ઉપર પોતાની બળતું બળિદાન આપી

દેવું, ભરત જો આ આદર્શને જગતની સામે ન

મૂકે, તો કોણ મૂકે ? “આજ્ઞા સમન મુસાહિષ

સેવા ।” કહીને પ્રિયતમની ચરણ પાદુકાઓને માથા

પર મૂકી તે અયોધ્યાધુરીમાં પાછી આવી પહોંચ્યા.

X X X X

ખસ, અહિથી ભરતની વિરહ સાધનાના

શ્રી ગણેશ મંદાય છે. પ્રિયતમના જેવી સ્થિતિમાં

રહેવાનું ધ્યેય ભરતજી પણ નક્કી કરી લે છે. એવો

સંલગ્ન જ ક્યાં છે કે પ્રિયતમ તો વનવનમાં ભટકે,

કુચની સાઠડી ઉપર રાતો શુભરે, કન્હુ મુળ આદિથી

પોતાની મુધાનું નિવારણ કરે અને પ્રેમી—રાજસી

ઠાઠમાઠથી રહીને મહેલોમાં આનંદનો ઉપભોગ

કરે ? ભરતજી પવિત્ર હૃદય કલા એનો સ્વિકાર કેવી

રીતે કરી શકે. તેથીજ તો તેમણે—

રામ માદ શુરુ પદ સિર નાઈ,

પ્રશુ પદ પીઠ રમયમુ પાઈ.

નન્દિગાંવ કરિ પરન કુટીરા,

હોન્દ નિવાસ ધરમ ધુર ધીરા.

જટાભૂટ સિર મુનિ પટ ધારી,

મદિ અનિ કુસસાયરી રાંવારી.

અસન બસન બાસન જત નેમા,

કરતું કહિન જાવિશમ સપ્રેમા.

બૂવન બસન મોજ સુખ ખૂરી,

મન તન ભવન તને વન તૂરી.

અરે અરજ—

રમા નિવાસ રામ અનુરાગી,

તજ્જલ ભમન ભિમિ જન બાજારી.

સાધના અને તે પણ વિરહ સાધનાનો માર્ગ
ધણેજ જ ભીર છે, અહિં તો ક્ષણે ક્ષણે, ઠગણે
ડગણે, સુસિખત છે. રહી રહીને પ્યારાની યાદ
સતાવે છે, પ્રિયતમને મળવા માટે ચિત્ત વ્યાકુળ
ધાય છે. તે શ્યામ કુંદર પ્રેમારપદની અલભેલી
કુંદર નિહાળવાની લાલસા ધરી ધરી ભેંચેને બના-
વતી રહે છે એજ આશા અને નિરાશામા પ્રેમી
રાત દિવસ કુનેદો રહે છે. હૃદયના આ બિવલ
તોફાનને હૃદયમાજ દગાવીને અવિશમ ગતિથી
પોતાના માર્ગ ઉપર ચાલેનો આજગ વધનો રહે
છે અને એમ કરતા કરતા એક દિવસ સૂઈ જતા
આવીને તેની સામે ઉભી રહે છે.

×

×

×

પ્રતીક્ષાની નિરાશપૂર્ણ ઘડીએ પણ ઘણી
વિચિત્ર હોય છે. મિલનની અધુર આશા તેની
બધી નિરાસાએને દૂર હઠાવે છે. પછી તો
તેમાં પ્રેમીને એટલો આનંદ આવવા માટે છે કે તે
તેમાજ મરત ઘઈ જાય છે. એવોજ ઠોર્ષ મસ્ત
કહે છે કે—

રેજ સે ખૂંચર કુખા ઈલાં તો મિઠ જાતા દે રેજ,

કુરિએ જલની પડી મુજ પર કિ આલાં હો ગઈ.

એક બીજા કાર્ધ પણ એવુંજ કંઈક કહી
રહ્યા છે કે—

કુજો વદલ જાત મિલી એદસાંસ કુરિકસ દોગવા,

રહતે રહતે દિલ મેં તેરા દહં બી દિલ દો ગવા.

પ્રિયતમ આવશે અને અવશ્ય આવશે એક
દિવસ હજી મારીને તેમને અહિં આવવુંજ પડશે !
હા, એમ કંઈ કહેવાય નહિં કે તે દિવસ ક્યારે
આવશે ! પણ એટલું નકકી તે દિવસ કહિ ને કહિ
પણ આવશે અવશ્ય ! પછી એ ચિંતા શા માટે
કે તે દિવસ ક્યારે આવશે ! આજ હોય, કાલે
હોય, અથવા વરસે પછી હોય કે ઠકાવ અનેક
જન્મે પછી હોય—ને ! પણ નિરાશ થવાનું શું
કારણ ? નિરાશ થવાની તો અહિં કંઈ વાતજ
નથી. આશાના સોનેરી કિરણ ઉપરજ તો અહિં
બધી દારમદાર છે. તે એ ન હોય તો પછી પ્રેમી
તો ક્યાંયનો પણ ન રહે. તેની વ્યાકુળતા, તેની
વેદના, તેની મરોઢ ઠેવણ આ આશાની ક્ષીણ રેખા-
નેજ ભેંધેને તો થોડા વખતને માટે શાન્ત ઘઈ
જાય છે આ આશાનાજ બળ ઉપર તો તે રાત
દિવસ પ્યારાની સ્મૃતિ, પ્યારાનું ધ્યાન, અને
હૃદય મદિરમા પ્યારાનું દર્શન કરતો રહીને ઈર્ષીત
રહે છે; નહિં તો પછી તેના પ્રાણ જવામાં વિલંબ
જ થાનો હોર્ષ થકે છે. સીતા માતાની આવીજ
તો અવસ્થા હતી !—

નામ પાઠકુ દિવસ નિસિ વ્યાન ઘુન્દાર કપાટ,

એયન નિજવદ જરિત ભાદિયાન કે દિ બાટ.

લ્યારેજ તો—

દિશો માર મેં દિન જાગી કે અપને કારતે દેં,
સિયકને દેં પડે આદિક ન જાડે દેં ન મારતે દેં !

આ સાધના એક યે દિવસ અથવા એક જ
વરસની નથી, એ છે—અનન્ત, અનંત કાળની.
અનંત કાળથી એ ચાલી આવે છે અને ખબર નથી
કે ક્યાં સુધી તે ચાલ્યા કરશે. ઠોણ જાણે ક્યા
જમાનાથી એની શરૂઆત ઘઈ અને ઠોણ જાણે
ક્યારે એનો અંત આવશે. તમે કહી શકો છો કે

મૃત્યુની સાથે સાથે એનું પણ મૃત્યુ થયે, પણ લાઈ,
એવું નથી. જીવન અને મરણ તો એના ભાગમાં
કંઈ બાધા નાખતાં નથી ! કેમકે—

Birth is not the beginning of life.

Nor is death its ending,

Birth and death begin and end.

Only a single chapter in life story.

અર્થાત્ નથી તો જન્મ થવાથી જીવનનો પ્રારંભ
થતો અને નથી તો મૃત્યુ થવાથી તેનો અંત
આવતો ! અરે, જન્મ અને મૃત્યુથી તો જીવનના
એક અધ્યાયનો અથ અને ઇતિ માત્રજ થાય છે.

આ અધ્યાયોથી આવવા જવાનુંજ શું છે ? તે
અનંત કાલીન જીવનના ઇતિહાસમાં એવા અધ્યા-
યોની ગણનાજ શી ? ત્યાં તો આ આવવા જવાના
કાયને કોઈ ખાસ મહત્ત્વજ નથી ત્યારે તો એક
કવિએ કહ્યું છે કે—

મર્ગ એક માંદગી કા વક્ષા હૈ,

યાની આગે ચલેંગે દમ સેકર !

સરમદ સાહેબનો પણ એવોજ અનુભવ છે—

શેરે શુરો અજ ખવામે અદમ ચરમ કશરેમ્

દોરેમ્ કિ બાકીરત શમે કિતના ગનરેમ્ !

અદમનાં સ્વપ્નો, અભાવની નિદ્રામાં સુતાં
પહેલાં હતાં, એટલામાં (પ્રપંચના) ચોર, કોલા-
હલ સંભળાયો અને અમે આંખ ઉઘાડી ! આ
કોલાહલપૂર્ણ જગતમાં આવી ગયા. પણ—જ્યારે
જેવું કે શમે કિતના—અવિદ્યાની રાત હજી તો
બાકીજ રહેલી છે, તો પાછા સુઈ ગયા ! આ દુનિ-
યાથી આંખો મીચી દીધી અને પાછા તેજ પહેલી
જઈ પહોંચ્યા—

હાં સાહેબ તેનાથીજ હેરાન ચઢીને કહી
રહ્યા છે કે—

ન હરરા સદા કાકિલા ઈસ સરા મેં,

ધિયે હસરતેં યા કી બસતીસે ચુજરેં.

હીકજ તો છે કે—

અજબ સરા હૈ યે દુનિયા કિ બિસ મેં સહરોં શામ,
કિસી કા કૂચ કિસી કા મુકામ હોતા હૈ !

—દખીર

આ નરવર જગતમાં રાત દિવસ આજ કારભાર
આલ્યા કરે છે. કોઈ આવે છે તો કોઈ જાય છે. પણ
કોઈને કંઈ ખબર નથી કે કોણ કયાંથી આવ્યું અને
કયાં આલ્યું ગયું.

‘દદ’ કુછ માલૂમ હૈ યે .સોગ સમ,

કિસ તરફ સે આયે યે કિધર ચલે.

અમે સૌ એજ જોઈને રહી જઈએ છીએ. રાત
દિવસ આ આલતા વ્યવહારને આંખોથી જોઈએ
છીએ. એના પવિત્ર પોકાર “રામ રામ સાય છે”
પવિત્ર ખનિને રાજ અમારા કાનથી સાંભળીએ
છીએ, પણ છતાંય એક ક્ષણને માટે પણ ચેતતા
નથી ! ચેતીએ છીએ ક્યારે—જ્યારે ચેતવાથી
કંઈ લાભ રહેતો નથી ! જ્યારે લાંબી નિદ્રામાં
સુવાનો વખત આવી પડેએ છે, ત્યારે આંખો ઉઘા-
ડવાનો પ્રયત્ન કરીએ છીએ પરંતુ ત્યારે બનવા
સુધરવાનું શું હોય છે ? ચેતવું હોય તો હમણાંથી
જ ચેતો, નહિં તો પછી હાથ ઘસીને પસ્તાયે પણ
કંઈ વળવાનું નથી અગર પોતાના ભલા ભુરાનું થોડું
સરખું પણ જ્ઞાન છે, તો હજી પણ પોતાને સુધાર
કરી શકો છો અને હાથ જોડીને પોતાના ખ્યારા
સાક્ષીને કહી શકો છો કે—

સાકિયા ! મૈં ચલ રહા હૈ ચલ ચલાવ,

જજ તલક બસ ચલ સકે સાગર ચલે !

—દદ

જગરાવાની કે નાસીપાસ થવાની તો અહિં

કોઈ વાતજ કરવાની નથી. એક કવિ પોતાનો અનુભવ કહી રહ્યા છે કે—

પી રહે છે સખ નિગારોં સે મુદ્ગખત ધી કરાખ,
એ તેરી મદરિલ મે આવા કરો પેમાના મલા !

બસ, વિલંબ તો આ મહેફિલમા પહોચવા પુરતોજ છે, પણ તો કંઈ હરકત જ નથી, ત્યાં પહોચ્યા પછી તો એક ને એક દિવસ તે પ્યારા સાકીની હયા દ્રષ્ટિ પડીજ જશે. પરંતુ એક વાત યાદ રાખવી અને તે એ કે તમને સાકી મથખાનામા ન દેખાય તો ત્યાંથી આઘા ફર ખસી જશે નહિ કેટલાક લોકો ત્યાંથી એમ કહીને ચાલ્યા જાય છે કે—

ફર સે આવે થે સાકી ! મુન કે મથખાને ડો હમ,
બસ તરસરે હી ચલે ખાસોસ પેમાને ડો હમ !
મથ બી દે ઝીના બી દે સામર બી દે સાકી નહી,
દિલ મેં આતા દે લવા રે આત્ર મથખાને ડો હમ !
મામ મે લરવા નહી ચકરા સે ખમરાતા દે દિલ,
અમ કહો સે બો ભેંએ એસે રીવાને ડો હમ !
કવા ફૂલ તકસીર હમ સે તૂં બતા રે એ 'નજર' !
તાલિ કાદી મથ' સમરે એસે મરખાને ડો હમ ॥

૫૫) બાઈ ! તમે પણ કંઈ એમની પેઠે ત્યાંથી પાછા ફર્યો નહિ. ખાજા ફરવ થી કામ ફાવેલો થયો નહિ. ફાયદો તો એ કંઈ છે તે ચૂપચાપ ભેંસીને સાકીને આવવાની પ્રતિક્ષા કરવામા છે, વગર કોઈ બાતની આનાશનીએ તેની રાહ ભેવામા છે ધિરજ છોડી દેવાથી અહિં કોઈ પણ કામ ગળતું નથી શું તમે એ નથી વાંચ્યું કે—

ધાર ધારે ધારિયાં ધારે સખ કુજ દોખ,
માલીકોએ માખ ડો આતુ આવે રુજ દોખ

ફળ તો મોસમ આવે ત્યારેજ થઈ શકે છે. જ્યાં સુધી મોસમ ન આવે ત્યાં સુધી તો તેની રાહ

ભેંવીજ પડશે. સર્વ કોઈનું તો એમજ થાય છે તમે પેલા ભમરાનેજ ભેંધ લો—

મદિ આઘા ખટાયો રશો બધિ મુથાખ રે મુલ,
ખાઈઠેં મદુરિ વર્મત રતુ ધન ગરિન મહે ફૂલ.

(વસ્ત્રાસ રાખીને તેના હરવામાં લપર ઊભા રહો, તેને બોલાવતા રહો. તે કંઈ બહેરા તો છેજ નહિ. કહિને કહિ તમારો અવાજ તેના કાનમા પડીજ જશે ! અવરજજ—

ખાઈ રીન કપાલ રે ભનમ પડોગી કાન !
બસ, તેજ દિવસે તમારો ઘેરો પાર થઈ જશે !

X X X

એ બે દિવસ નહિ, એક બે મહિના નહિ— પૂરા ચોદ વર્ષની પ્રતિક્ષા આજ પૂરી થવાની છે, પણ—એમારફ હજુ સુધી ન આગ્યાં હયા ! મારા ફકોગીના ભાગ્યમાં કોણ ભણે શું લખ્યું છે ? તો શું તે નહિ આવે ? શું તે મને સંબંધ ભૂલી ગયા ! આજ તો એમણે આવી જઈ ભેંષતું હતું, પણ તે હજુ આગ્યા નથી ! હાય ! આજની આ ઘડીએ તો ટુંમે કરીને કપાતી નથી ચોદ વરસ તો એમ તેમ કરીને, પૂરા ક્યાં, પણ આજની આ એક એક સણુ પણુ કડપ ભેંવડી લાંબી લાંબે છે સાચુ જ છે કે—

અખામ મુસીખત રે કારે નહોં કદતે,
એક ગરિન તો પડાયો મે મુજર ભવે દે !
એવીજ રીતે—

રામ વિરહ સાગર મહ ભરત મમત મન દોલ,
વિષદૃષ ધરિ પવનમુત આપ મરદ જનુ પોત
એટો દેખિ કુકાલન બરા કુકટ ફસ માલ,
રામરામ રમુકતિ બપત સેવન નરન બલભલ

દેખત દરખાન બાતિ હરનેકે,
મુલક માન બોલન બસ ખરનેકે.

अन्तरतम में ज्योति भरो हे !

जहाँ जहाँ नतमस्तक पाओ, वहाँ वहाँ युगचरण बढ़ाओ ;

जहाँ जहाँ पर देखो कारा, वहाँ बहादो करुणाधारा ;

बन्धनमुक्त करो युग युग के, पाप ताप अभिशाप हरो हे !

वार्षिक मूल्य—
भारत में ४)
विदेश में ६॥)

अंधाधुंध दरवार है, तुलसी रहो निशङ्क ।
खीझे दोने परम पद, रीझे दीनी लङ्क ॥

{ साधारण प्रति
भारत में ॥
विदेश में ॥=)

गीताधर्मब्लाकवर्क्स उद्घाटनसमारोह

‘गीताधर्म’ के प्रेमी पाठकों और अनुयाहकों को यह जानकर गहती प्रसन्नता होगी कि गत आगढ़ के रथयात्रापर्य के सुअवसर पर ता० १६-७-४२ को अत्यन्त उत्साह के साथ अनेक पूव्य महात्माओं तथा गण्यमान्य, सुशिक्षित नागरिकों की उपस्थिति में ‘गीताधर्म’ कार्यालय में उक्त ब्लाकवर्क्स का उद्घाटन हो गया। इस अवसर पर स्थानीय म्युनिसिपिल बोर्ड के सुबिरयात चेयरमैन रायवहादुर पण्डित जगन्नाथप्रसाद मेहता ने उत्सव का सभापतित्व करते हुए उद्घाटनकर्म संपन्न किया था। निमन्त्रित सज्जनों में पूव्य स्वामी श्री रामानन्दजी महाराज, तपोधन महंत श्री एतवार गिरिजी महाराज तथा अन्य संस्थानों के महात्मावृन्द एवं पं० धर्मदत्तजी शास्त्री, प्र० मन्त्री वर्णाश्रम स्वराजसंघ, पं० देवीनारायणजी एट्रोकेट, पं० जानकीधरण त्रिपाठी सं० ‘सूर्य’, पं० रामवालकृष्णजी सं० ‘संदेश’ आदि विद्वद्भार्य के अलावा अनेक साहित्यकार मज्जन तथा प्रेसव्यवस्थापकगण, प्रमुख चित्रकार, पुस्तकप्रकाशक और व्यवसायी वन्दुजों ने पधारकर उत्सव की शोभा बढ़ाई, जिन में प्रसिद्ध औपन्यासिक गहमरीजी, छविशिल्पी फेदारनाथजी, बाबू चलदेवदासजी व्यवस्थापक ‘भाज’, ठा० सूर्यबली सिंह प्रभृति सज्जन प्रमुख थे।

प्रथम पं० देवीनारायणजी वकील ने ‘गीताधर्म’ परिवार का कार्यालोकन करते हुए सभापति महोदय से उद्घाटन करने का निवेदन किया तदनन्तर स्वामी श्री रामानन्दजी महाराज ने इस संस्था के प्रवर्तक स्वामी श्री निथानन्दजी महाराज की अद्भुत घटनाशली पर सुन्दर प्रकाश डाला, इस के बाद पं० श्री धर्मदत्तजी व सभापतिजी के सारगर्भित भाषण के बाद विविध उद्घाटन तथा सामूहिक कार्यालय का परिदर्शन हुआ।

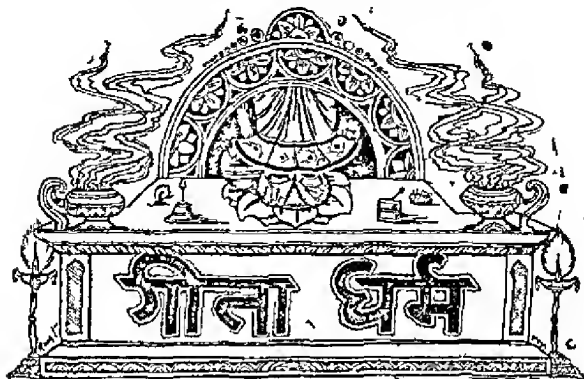
सभी समागत मज्जनों का फूल माला, मिष्टान्न जलपान तथा पान श्लायची से स्वागत सत्कार किया गया था।

वर्तमान विषम परिस्थिति में इस कार्य का आरम्भ करने में भगवान् की प्रेरणा ही मुख्य कारण थी अतएव आया है कि वनी सर्वप्रक्रियामान् प्रभु इस नये कार्य से जनता की सेवा करने का वदेश्य पूर्ण करेगा। गीताधर्मप्रेमियों के लिए हर तरह के चित्रों के ब्लाक बनाने और उन की सुन्दर छपाई के लिए विशेष प्रयत्न न करते हुए इसी स्थान पर हर तरह की सुविधा हो, इस का विशेष प्रयत्न किया गया है। आशा है कि ब्लाक बनाने का अवसर आने पर कृपालु माहकगण कार्यालय का परावर नाममरण रखेंगे।

—व्यवस्थापक,

गीताधर्म कार्यालय, काशी।

संस्वापक—श्रीमत्परमहंस परिमार्तकाचाय अन्ननिष्ठ लोकसप्रही गोलाख्यास श्री १०८ जगद्गुरु
महामण्डलेरवर स्वामी श्री विद्यानन्दजी महाराज



सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं घ्नत । अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

पर्य ७ }

अगस्त, १९४९, काशी

{ अङ्क ८

मुखशोभा

देखु सखी हरिबदन इन्दु पर ।

निकन कुटिल जलक अचली छवि कहि न जाइ सोमा अनुप वर ॥

मालभुजगिनि निकर मनहु भिळि रहौ घरि रस जानि सुधाकर ।

तवि न सकहि तहि काहि पान कहो कारन कोन विचारि उरहि वर ॥

अरुन बनबलोचन कपोत शुभ श्रुतिमदित कुडल अति सुंदर ।

मनहु सिंधु निज सुतहि मनावन शठप जुगल वसति वारिचर ॥

नन्दनदन मुख की सुंदरता कहि न सकन श्रुति सेप उमावर ।

‘मुलसीदास’ त्रैलोक्यविबोहन रूप कण्ठ वर विविध मूलहर ॥

—गोस्वामी श्री मुलसीदासजी ।

गीता का उपसंहार

(ले०—श्रीमत्परमहंस परित्राजकाचार्य ब्रह्मनिष्ठ लोकसंग्रही गीताव्यास जगद्गुरु)

महामण्डलेश्वर श्री १०८ स्वामी श्री विद्यानन्दजी महाराज)

गीताशास्त्र का उपदेश भगवान् ने अर्जुन को दिया और उस का उपसंहार—

इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुप्ततरं मया ।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु ॥

—गी० १८।६३

‘हे अर्जुन, इस प्रकार मैं ने गूढ़ से गूढ़ ज्ञान तुझे सुना दिया है । इसे संपूर्ण रूप से सोच विचारकर जैसी इच्छा हो वैसा कर ।’ इस श्लोक से क्रिया ।

यहाँ स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि गीता का प्रतिपाद्य विषय ज्ञान है ।

इस शास्त्र को संजय ने भी धृतराष्ट्र को सुनाया । अन्त में इस का उपसंहार करते समय संजय बोले—

इत्पदं वामुदेवस्य पार्थस्य च महात्मनः ।
संवादमिमश्रौपमद्भुतं रोमहर्षणम् ॥

—गी० १८।७४

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ।

तत्र श्रीविजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥

—गी० १८।७८

‘इम प्रकार महात्मा वामुदेव व महात्मा अर्जुन का आधर्म्यकारक और रोमाघकारी संवाद मैं ने तुम्हा और तुम को अभी सुनाया । इस के वक्ता योगेश्वर सादात् भगवान् कृष्ण हैं, और इस का विषय परम रहस्यमय योग है । सो इस को जो

मैं ने सुन पाया यह केवल व्यासदेवजी का मेरे ऊपर अनुग्रह है, क्योंकि उन्होंने मुझ को दिव्यदृष्टि दी थी । हे राजा धृतराष्ट्र, इस का मैं बार बार स्मरण अर्थात् मनन करता हूँ और उस के अद्भुत व पुण्य-प्रद होने से मुझ को पुनः पुनः हर्ष ही हो रहा है । और साथ ही साथ भगवान् के उस अद्भुत विश्व-रूप का भी मुझ को स्मरण होता है और बार बार हर्ष का अनुभव करता हूँ । यह सब जो कुछ है सो तो है ही, तुम्हारे जानने लायक प्रकृत बात इतनी ही है कि जिस पक्ष में योगेश्वर कृष्ण हैं और धनुर्धारी पार्थ हैं, उसी पक्ष में एकान्त व अत्यन्त भाव से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चारों पुरुषार्थ जरूर वर्तमान है ऐसा ही मैं समझता हूँ ।’

कहना नहीं होगा कि उपरोक्त दोनों उद्धरणों में “योग” व “ज्ञान” पर्यायवाचक हैं । इस ज्ञान का स्वरूप क्या है ? गीता की पुष्पिका देखने से पता चलता है कि इस में उपनिषद्, विद्या और शास्त्र अर्थात्-जिस को पण्डित लोग प्रस्थानत्रयी कहते हैं उस की चर्चा है । इस को श्री कृष्ण व अर्जुन इन दोनों के बीच संगद का रूप दिया गया है, इस लिए पहले घडाके से संजय इतना ही कहते हैं कि मैं ने कृष्ण व अर्जुन का संवाद सुना ।

“अध्यात्मविद्या विद्यानाम्” तथा “वादः प्रवदतामहम्”

—गी० १८।१२

इसी की पूर्ण पुष्पिका में—

“ब्रह्मविद्याया” और “श्रीकृष्णार्जुनसंवादे”

इन शब्दों में सुनी जाती है। अर्थात् ब्रह्म व अध्यात्म एकार्थवाची हैं। अर्जुन के प्रश्न का उत्तर देते हुए, अध्यात्म शब्द का अर्थ भगवान् यह देते हैं कि—

स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते ।

—गी. ८।३

पाठकों को जरूर संदेह होगा कि “युष्मस्तीति वक्तव्य, लेखनी पत्रादि अस्तीति लेखितम्” सिर्फ इसी न्याय से मैं कुछ बोल रहा हूँ, सब बातें उठ पायेंगी ही हैं। तथापि मैं उन को विश्वास दिलाता हूँ कि मेरा लक्ष्य सही ही है। कहने का अभिप्राय यह है कि पुष्पिका में जो ‘ब्रह्मविद्याया’ शब्द का प्रयोग है उस में ब्रह्मशब्द का अर्थ स्वभाव है, अर्थात्—

स्वभावस्तु भवर्तते । —१।१४४

इस में जो स्वभाव का अर्थ है—सगुण ब्रह्म, प्रकृति में प्रतिबिम्बित पुरुष, प्रकृतिस्थ पुरुष—वही यहाँ आशय है। मेरा उद्देश्य यही दिखाने का है कि सत्य का उपसंहार और व्यासदेवजी का (अथवा गीताकार का) उपसंहार इन दोनों का पूरा मेल है।

महाभारत की जितनी हस्तलिखित पुस्तकें मिली हैं उन सब में गीता की पुष्पिका नहीं पाई जाती है। इस से कोई शिद्धान्त संदेह करते हैं कि यह किसी नकलनशील की स्वरूपोलकल्पित होमी, व्यासजी की नहीं है, किंबहुना, सुद गीता ही व्यासरचित है या नहीं इस में भी बहुतों को संशय है। इस वास्ते मैं यही प्रमाणित करना चाहता हूँ कि अथ से इति तक गीता का निर्माण एक ही व्यक्ति है। अस्तु,

पुष्पिका के स्पष्ट चार भाग दिखाई देते देते हैं। यथा—

१ श्रीमद् भगवद्गीतासु उपनिषत्सु,

२ ब्रह्मविद्याया,

३ योगशास्त्रे,

४ श्रीकृष्णार्जुनसंवादे ।

और सजयकृत उपसंहार के भी चार अंश हैं। यथा—

१ यत्र योगेश्वरः कृष्णः इत्यादि ।

—१।१७०

२ तत्र संसृत्य...इत्यादि ।

—१।१७७

३ राजन् संसृत्य...इत्यादि ।

—१।१७९

३ व्यासपसादाच्छ्रुत्वान्...इत्यादि ।

—१।१८५

४ इत्यहं बाल्यदेवस्य...इत्यादि ।

—१।१७४

उपसंहार के श्लोक व्युत्क्रम से क्यों लिखे गये और ७६, ७७ एकत्र क्यों किये गये, इस का कारण आगे सुल जायगा। अब इन दोनों का साम्य्य दिखाया जायगा।

सम पर विदित है कि प्राणिमात्र को दुःख निहासा स्वभावसिद्ध है, उपरार्थ यही है। जैसा कि साङ्ख्यकार कहते हैं—

त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः ।

—सांख्यशास्त्र १।१

संसारी प्राणी को तीन प्रकार का जो दुःख अपरिहार्यभाव से भोगना पड़ता है उस का अन्त होना, यही सब का मुख्य अभीष्ट रहता है। शान्त वा अशान्त सम यही चाहते हैं। शास्त्रकार दुःख को तीन भागों में विभक्त करते हैं। यथा—

आधिभौतिक—

कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन ।
इष्टुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन ॥

—गी० २।४

‘हे मधुसूदन, प्रत्यह पूजा करने के योग्य भीष्म व द्रोण के साथ मैं बाणों से प्रतियुद्ध कैसे करूँगा । शराघात से उन के शरीर को पीछा होगी । यह शारीरिक दुःख है ।’

आधिदैविक—

‘गुरुनहत्वा हि महानुभावा-
च्छ्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके ।
हत्वार्थकामांस्तु गुरुनिहैव
भुञ्जीय भोगान् रुधिरप्रदिग्धान् ॥’

—गी० २।४

‘महामहिमशालि गुरुजनों को न मारकर इस संसार में भिक्षाप्राप्त अन्न भोजन करके गुजर करना भी बेहतर है । इन अर्थलोलुपों की हत्या करने से तो इदलोक में ही सूत से सने हुए भोग भोगने पड़ेंगे ।’ यह क्षुधादिजन्य प्राणों का दुःख है ।

आध्यात्मिक—

‘न चैतद्विशः कतरन्नो गरीयो
यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः ।
यानेव हत्वा न जिनीविषाम-
स्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः ॥’

—गी० २।६

इस युद्ध में या तो हमारी जय होगी, नहीं तो उन की होगी । इन दोनों में से কোন सा श्रेष्ठ है सो भी नहीं जाना जाता ।

‘जिन को मारने से हम लोग जीना नहीं चाहते ये ही धृतराष्ट्र के पुत्र संभाम करने को सामने उपस्थित हैं ।’ यह मानस दुःख है ।

इन सब का मूल शरीरादिजन्य कर्म है । इस लिए इन की जब जो कर्म है उसी का नाश करना चाहिए । कर्म का मूल अज्ञान है । और—
“अहं कर्ता, नम कर्माणि कर्मफलसंयोगश्च” ५।१४
यह इस अज्ञान का स्वरूप है । और ‘आत्मा अकर्ता, अमोक्षा है’ इस उपनिषद्गत ज्ञान से इस की निवृत्ति होती है । “हम केवल यन्त्रारूढ हैं, योगेश्वर हमारे हृदय में स्थित होकर हम को कर्म में प्रवृत्त करते हैं, हम तो उस में निमित्तमात्र हैं” यह इस ज्ञान का आकार है । इस लिए कहा कि—
यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ।

२, ४, ५, ६ में अर्जुन अपने को निमित्तमात्र समझता है कर्ता नहीं, इस औपनिषद् ज्ञान का भगवान् ने अर्जुन को गीता में उपदेश दिया है । इस से कर्म अकर्म हो जाता है, क्योंकि वह भगवदर्पण, ब्रह्मार्पण हो जाता है, और आधिभौतिकादि (विजयादि के लाभ से) त्रिविध दुःख का अत्यन्त (ध्रुव) नाश हो जाता है ।

इस प्रकार पुष्पिका के श्रीमद्भगवद्गीतायु उपनिषत्सु इस अंश का १८।७८ के साथ मेल दिखाया गया ।

अब ‘ब्रह्मविद्यायां’ इस अंश का विचार किया जायगा । इस के पहले सांख्यविषयक एक शङ्का हल करनी चाहिए । कोई कोई कहते हैं कि सांख्यदर्शन निरीश्वर है । इस के प्रमाण में—

‘ईश्वरासिद्धेः’ ।

इस सूत्र का आधार दिया जाता है । इस विषय में तर्क वितर्क करके भासा प्रशासा बढ़ाने की किन्तुल इच्छा नहीं । वस्तुतस्तु यह सूत्र इतना ही बगता है कि ईश्वर प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध नहीं

हो सकता। अधिः तु, साम्यदर्शन में परापर
ब्रह्मप्रतिपादक एक स्वतन्त्र सूत्र भी है।

सिद्धानां कथितो मुनिः ।

—गी० १०।२६

एष तेऽभिहिता साङ्ख्ये बुद्धिः ।

—गी० ११।६

एकं साङ्ख्यं च योगं च ।

—गी० ११।५

इन गीतारचनार्थ से भगवान् की असंख्य वैसे
प्रमाणित होगी : तथापि सृष्टिनिर्माण में प्रकृति
ईश्वरनिर्पेक्ष है इतना ही सांख्यशास्त्र का कथन
हो तो दूसरी बात है। इस लिए गीता में सेद्वार
सांख्य व निरीश्वर सांख्य इन दोनों मतों का पुर
स्कार करते उन का समन्वय करने के लिए १८।७६
व १८।७५ ऐसे दो श्लोक कहे हैं। निरीश्वर का
अभ्यहितत्व के कारण सेद्वार के पहले उल्लेख किया
है। क्योंकि सांख्यदर्शन का प्रधान प्रतिपाद्य सृष्टि है।

पुष्पिका के 'योगशास्त्रे' इस अन्त का गीता
के १८।७५ के साथ आनुक्य्य गुह्य है।

उसी प्रकार 'श्रीकृष्णार्जुनसंवादे' इस की समानता
१८।७४ के साथ कण्ठत मोक्षवत् है।

यह सादृश्य ग्रन्थकार ने जान बूझकर नहीं
दिखाया, किसी लिपिकार का है, ऐसा कहना तो
केवल दुःसाहसमात्र है।

यहाँ एक प्रसक्तगुप्यसक्त बात यह है कि गीता
की पुष्पिका में तीनों प्रस्थानों का उल्लेख होने से
जानना चाहिए कि तीनों शास्त्रों का सिद्धान्त यत्र तत्र
अनुसरेय है और इसी कारण से गीतेतिक में वैचित्र्य
आ गया है, यहाँ तक कि कभी कभी परस्पर विरोध
तक प्रतीत होता है।

अज्ञातवाचन पाठकों के लिए यह सूचना देना
आवश्यक है। ठीक ही कहा है—

गीता "सु" गीता कतेभ्यः ।

आत्मनिवेदन

(ले०—स्वामी श्री ब्रह्मानन्दजी महाराज)

ॐ विश्वानि देव सवितरिर्दुरितानि

पराशुव, यज्ञदं तक्षज्जाशुव ॥

हे श्यामय, कृष्णामृतवारिधे भगवन् ! मुझ दोन
हीन, दुखी हृदय के केवल एक आप ही अवलम्ब हैं।
मेरे प्रिय प्राणनाथ, भला आप ही कहिए, इस विश्व
नगर में आप के अतिरिक्त सरा बीब है ? प्रभो,
भाग्यवशान् जो मुझे मिल भी वे सभी श्वासी हैं।
भगवन्, मैं जब तक जा की बदली तन्मुख होकर
पजाना रहा, तभी तक वे मेरी बाढ़ बाढ़ करते रहे,

किंतु जब बदली में मुझ से जरा भी कमी हुई व वृत्त
मुझ से मुझ भोड़कर मेरे किए हुए उपकारों का सबका
भूल गया। मेरे प्रिय स्वामिन्, अब तो एक आप की
ही मुझ सेवक को शरण है। नाथ, आप दीनान्धु
और शरणागतभक्तवत्सल कहाने हैं तो मेरे प्यारे
प्रभो, क्या आप मुझे अपनी शरण में न लेंगे ? भग-
वन्, भला आप ही कहें कि कभी किसी भक्त को
आप के अग्र-वन्द्य द्वार में आश्रयन मिला हो
और वह आप से निराश होकर लाठी हाथ दोन
—हुलित हृदय लिए हुए ही लौट गया हो, क्या कोई

ऐसा इतिहास मिलता है ? यदि कहे हों, तो कहिए ऐसा कहाँ लिखा है कि भक्त को शरण भगवान् ने नहीं दी। और यदि कहे कि भक्त को शरण हमारे द्वार में अवश्य मिलती है, तब तो नाथ, मुझे भी आप की शरण मिलनी चाहिए।

दयामय, बहुत काल से भटकता हुआ, मैं सुरु शान्ति की कामना से सच्चे स्वामी की खोज करता हूँ, किंतु किसी ने भी मुझ दीन सेवक पर अपने आर्द्र हृदय से उदारता प्रकटित न की। इस लिए हे भगवान्, मैं ने अब तो यही अपने अनुभव से निश्चय किया है कि संसार में किसी का कोई नहीं है, जो हैं वे सभी अपने स्वार्थ के संवन्धी हैं। हे विभो, अब तो मेरा दिल एक आप को ही चाहता है, क्योंकि आप ही सब के सच्चे स्वामी हैं और आप ही निराग्र्यों के एक अद्वितीय आनन्दमय अवलम्ब हैं। संत कहते हैं—

गये शरण प्रभु राखि हैं, सब अपराध बिसार।

कहिए प्रभो, क्या यह संतो की वाणी सच है ? परंतु भगवान्, सच तो मैं तभी मान सकता हूँ जब मुझे भी आप अपनी आनन्दमयी शरण देवें। प्रभो, मैं ने सुना है कि मृत्यु से भयभीत हुए, बालक मार्कण्डेय को आप ने ही अपनी शरण दी थी।

हे नारायण, क्या भक्त प्रह्लाद और ध्रुव ऐसे नन्दे बालकों को आप ने ही अपनी श्रेयस्करों, परमा-नन्दमयी गोद में बिठाकर मदा के लिए उन्हें सुखी नहीं कर दिया था ? और विचारे दीन, दुखी कि गिन पा सर्वस्य छीन लिया गया और डर करने पर संघनियों ने निर्दयतापूर्वक निहाल बाहर किया था, ऐसे आर्तभक्त सुभीत तथा विभीषण आदि को भी तो आप ही ने शरण देकर अपने परबल्लों में उद्धार किया था। गार्गी, मैत्रेयी, सुलभा, गन्धामा, द्रौपदी, पद्ममेना, शररी, अहल्या, गणिका, मीरा आदि पर-

मातृभागिनी इन पवित्र देवियों को भी तो आप ने ही अपनी प्रिय शरण देकर आनन्दकारी श्रेय साम्राज्य का भागीदार बनाया था। भगवान्, कहाँ तक कहूँ, कुछ आप से छिपा थोड़े ही है, सब कुछ तो जानते हैं।

हे अन्तर्यामिन्, आप तो द्रष्टाओं के भी सुद्रष्टा तथा ज्ञाताओं के भी परम ज्ञाता हैं। हे परमेश्वर, भूत, भविष्य, 'वर्तमान इन तीनों ही कालों में होनेवाले संपूर्ण प्राणी तथा पदार्थों' के आप ठीक ठीक जानने-वाले हैं, फिर यदि मैं आप से किसी ऐतिहासिक व्यक्ति के इतिहास को कहकर अपनी बात समझाऊँ तो यह मेरी मूर्खता वैसी ही कहलावेगी जैसा कि किसी मूर्ख मनुष्य ने अपने दास्त से कहा कि चलो दास्त, आज तुम्हें मैं दीये की रोशनी से सूरज को साफ साफ दिखा दूँ। पर सूर्य तो स्वयं प्रकाशमय ही है उस में किसी प्रकाश की आवश्यकता नहीं है। इसी प्रकार हे मेरे परम प्रिय परमात्मन् आप तो स्वयं संपूर्ण चरा-चर, दृष्टादृष्ट, जीव, प्रकृति तथा अपने स्वरूप को भी ठीक ठीक जाननेवाले पहले से ही हैं। फिर मैं ने जो उपरोक्त मार्कण्डेय आदि आप के भक्तों का दृष्टान्त आप को दिया है, वह इस लिए कि आप श्री मेरे आभनिवेदन को सुनकर मुझ दीन बालक पर शीघ्र अपनी आनन्दकारिणी करुणा और दयामयी दृष्टि की अमोघ छुट्टि कर दें। तब उस छुट्टि से इस हृदय में स्थित अज्ञानजन्य काम, मोघ, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष, भय, शोक, संशय, अहंता, ममता आदि कलुष के ढेर बह जायेंगे। तब आप इस हृदयप्रदेश में अपना दिव्य घाम घना लें, जिस में मैं सदा ध्यानयोग के मग्न होने में बैठकर तथा आप के सुन्दर सच्चिदानन्द स्वरूप के दर्शन पाकर प्रसन्न होऊँ और अपने प्रेम-जन्य आनन्दोपहार भक्तिरूपी तुलसी, श्रद्धामय चन्दन तथा मन, वाणी, शरीर से हुए लोकसंप्रहार्थ निष्काम परमरूपी फलों को चढ़ाकर आप का पूजन और स्वागत कर सकूँ।

ॐ तत्सत्

फिर तो कुछ भी नहीं

(छे०—स्वामी श्री समानन्दजी सन्यासी, दर्शनशास्त्री, व्याकरणाचार्य)

गान्धाधारस्य 'सिद्धाश्रम' की बात है, किसी समय वहाँ एक सन्यासी 'विवेक' और 'चित्तवृत्ति' के सवादरूप से ब्रह्मविद्या का प्रतिपादन कर रहे थे। वे प्रवचन जारी रखते हुए बोले—

अनेक जन्मों में किये हुए पुण्यकर्मों से नित्य नित्य वस्तुविवेक द्वारा वैराग्य उत्पन्न होता है। तप-ध्या-शम, दम आदि षट्संपत्ति के अनुष्ठान से मुमुक्षुता की उत्पत्ति होती है। तदनन्तर वेदान्तविचार से ज्ञान तथा मुक्ति की प्राप्ति होती है। इस प्रक्रिया को समझाने के लिए रूपक द्वारा भी कहा जा सकता है, जो यह है—

'विवेकाश्रम' 'वैराग्य तीर्थ' 'शमारण्य' 'दम सरस्वती' 'उपरम सागर' य एव सन्यासी तथा 'मुमुक्षु' और 'चित्तवृत्ति' य एव संपत्तिनिर्या हैं। यह मनुष्यगरीर ही 'वाञ्छान्त्य मठ' के बनावया गया है, जहाँ विवेकाश्रम प्रभृति सन्यासी निवास करते हैं।

१—नित्य तथा अनित्य वस्तु का विवेक, २—इहामुत्र फलभोग विराग, ३—शम दमदि षट्संपत्ति, और ४—मुमुक्षु, इन चारों के हाने से ही

● गरीर को 'वाञ्छान्त्य' इव लिए कहा है कि वह पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश इन पञ्चभूतों से बना है।

† सैद्धिक व्यापार के मन की वृत्ति को हटाने का नाम दम है। वाञ्छ विवेक से इन्द्रियों की वृत्ति को हटाने का दम, आत्मज्ञान के लिए नित्य आदि कर्मों के त्याग को उपरति की वृत्ति आदि इन्द्रियों के महान का निवृत्ति, विराग आत्मसंयम की ऐकिक मन की स्थिरता को समझान और सब में आस्तिक बुद्धि को प्रकाश करते हैं। इन्हीं का नाम षट्संपत्ति है।

वेदान्त के श्रवण, मनन और निदिध्यासन द्वारा ब्रह्म ज्ञान होता है, अन्यथा नहीं। इन में पूर्व पूर्व उत्तरोत्तर के प्रति हेतु हैं, अर्थात् सब से प्रथम नित्य वस्तु तथा अनित्य वस्तु का विवेक होना चाहिए। इस के बिना 'इहामुत्र फलभोग विराग' याने इस लोक और परलोक के भोगों में अनिच्छा नहीं हो सकती। विना विराग के शम दम आदि संपत्ति नहीं बन सकती। और इन के न होने से मुमुक्षुता तथा मुमुक्षुता के बिना ब्रह्मज्ञान नहीं हो सकता। अतः शम से पद ले नित्य वस्तु तथा अनित्य पदार्थ का विवेक होना आवश्यक है। जब मनुष्य को नित्यत्वानित्यत्व का विवेक हो जाता है तब वह सत्ता को अनित्य और दुस्वरूप समझकर स्वयं में विरागपूर्वक नित्य आनन्दरूप पदार्थ (परमात्मा) के लिए चल करता है। इस विषय को शय्य समझाने के लिए यहाँ विवेकादि साधनों को सन्यासी के रूप में दर्शाया गया है। अब यहाँ पढ़ें 'विवेकाश्रम' सन्यासी उपस्थित होता है।

उस सन्यासी ने बहुत कुछ अन्वेषण करने पर कहीं भी अपने रहने का स्थान न पाया, जहाँ रहकर उस का मन प्रसन्न होता। उस ने इस जगत् में ८३९९९९९९ यानी एक करोड़ तीस लाख मठ खोज दिये, परंतु उन में उसे कहीं स्थिति न मिली। इस प्रकार उत्तम से उत्तम पर्वत, नदी,

‡ यहाँ चौतशी ताक वैशेषों को मठ के रूप में कहा गया है। केवल मनुष्यभोजन में ही विवेक हो सकता है, इस लिए 'विवेकाश्रम सन्यासी' की अन्य वैशेषों में स्थिति न हुई।

सागर और वन आदि अनेक स्थानों में देखते देखते उस ने 'पाञ्चजन्य' नामक मठ को देखा। उस मठ में दो खंवे लगे हुए हैं, वह कामग है यानी उस में प्रत्येक प्रकार की कामनायें पूर्ण हो सकती हैं, अथवा उस में रात दिन कामनाओं के ही गीत गाये जाते हैं। यह विषयस्थान में चला जाता है, सुन्दर है, नौ दरवाजों से सुशोभित है, सिद्धि के योग्य है अर्थात् जीवात्मा के निष्काम कर्म आदि उचित आचारों की साधना के लयक है और तीर्थपद है यानी ब्रह्म के साक्षात्कार का स्थान है। यह मठ समस्त पृथिवी-लोक की उपभोगप्राप्ति के उत्कृष्ट साधनों से संपन्न है तथा बहुत जन्मों के किये हुए पुण्यों से प्राप्त होता है। जिस परमात्मा की उपासना से विद्वानों के चित्त शुद्ध हो जाते हैं, उस महालम्बूर्ति की (आत्मदेव की) आराधना के योग्य यह पाञ्चजन्य मठ है।

सज्जनों! ईश्वर के अनुग्रह से ही पुरुषों का अद्वैतवासना उत्पन्न होती है। भक्ति के बिना ईश्वर-अनुग्रह नहीं हो सकता, भक्ति से भक्तों के मन निर्मल होते हैं, अविद्या की ग्रन्थि टूट जाती है और आत्म-साक्षात्कार हो जाता है। उसी ईश्वर की भक्ति के योग्य यह मनुष्यदेह है जिसे 'पाञ्चजन्य मठ' कहा गया है। भक्ति क्या है?

तुतस्य भगवदस्मादारावाहिकतां गता ।

सर्वेश मनसो वृत्तिर्भक्तिरित्यभिधीयते ॥

'भगवान् के गुणों को सुन्दर द्रवीभूत मन की महान्प्रवाह के समान निरन्तर भगवत्प्रकार वृत्ति को भक्ति कहते हैं।' भगवान् के गुणों का धरण करने प्रेम समग्र एक्यार ही मष्ट, जिज्ञासु, सुमुख का मन हर्ष से द्रवीभूत हो जाता है, प्रेम तथा आनन्द से मग्न हो जाता है और अहित में द्रव्य जाता है, वह समग्र भगवान् की जीमी मूर्ति उस मन में

अङ्कित हो जाती है वह चित्रपट से फिर कभी नहीं मिटती या हटती। उस मन में बाह्य विषय भी प्रवेश नहीं कर सकते, क्योंकि जिस मनोमन्दिर में रामचन्द्र (परब्रह्म) का निवास हो गया, वहाँ (सूर्य की विद्यमानता में जैसे अन्धकार नहीं रह सकता ऐसे ही) तुच्छ विषय वासनाएँ भी प्रवेश नहीं कर सकती। अतः एव मन शुद्ध होकर आत्मसाक्षात्कार का अधिकारी हो जाता है। यह सब कुछ इसी मनुष्यशरीर में हो सकता है। बहुत कहने से क्या, श्रेष्ठ संन्यासियों के निवास के योग्य, पाताल, पृथ्वी और ध्रुव लोक में पाञ्चजन्य से भिन्न और कोई मठ (स्थान) नहीं है।

यदि कहो, स्वर्गादि लोकों में जो देवताओं के दिव्य देह हैं वे तो मनुष्यशरीर की अपेक्षा बहुत उत्तम हैं, स्वामी विवेकाग्रम संन्यासी ने वहाँ निवास करना क्यों उचित नहीं समझा? तो इस विषय में कहना यह है कि दिव्य शरीरों में यथार्थ भोग्य पदार्थों के निरन्तर प्राप्त होते रहने से उन में वैराग्य उत्पन्न नहीं हो सकता। अर्थात् देवताओं को नित्य नये भोग अनायास, इच्छामात्र से प्राप्त होते रहते हैं फिर वे उन के त्यागने की इच्छा क्यों करने लगे? प्रत्युत उन के राग की ही वृद्धि होती रहती है, अतः वे मदा विषयोन्मुख ही रहते हैं। किंतु मनुष्यदेह में वो अल्पभोग के कारण, इच्छानुसार भोग्य वस्तु के न मिलने पर ऐश होता है तथा भोगों के उपार्जन में भी अनेक कष्ट उठाने पड़ते हैं। अतः भोगों में दोषदृष्टि हो जाती संभव है, अतः पुरुष आनन्दान के लिए यत्न करता है, इस लिए मनुष्यदेह सत्य से वृत्तमाना गया है। यह निग्रय कर लेने पर लोक लोभान्तरों में निरन्तर आनन्दमन से पीड़ित होकर यह विवेकाग्रम संन्यासी पाञ्चजन्य मठ की अपने

योग्य समझकर उस में निवास करने लगा। भोवतुन्द। यह समझो कि मनुष्यजन्म में ही विवेक, वैराग्य हो सकता है, किंतु इस में विघ्न बाधाओं के अन्तराय भी कम नहीं हैं। उन में सब से घडा विघ्न जो भक्ति, ज्ञान को धौधट कर देता है वह स्त्री है। (ऐसे ही स्त्री के लिए पुण्य है)। इतिहास पुराणादिकों में इस संबन्ध में जमाने के कारण ही जीनी जाती हारनेवालों के अनेकों उदाहरण भरे पड़े हैं। आज भी यही दशा है कि यदि हमारा कथन यथाय नहीं है तो हम पूछते हैं कि अग्रियाँ बनावटी बनाव मृद्धार में इतना समय और द्रव्य क्यों व्यय करती है ? क्या प्राकृतिक यानी स्वाभाविक गुणों से पति प्रभृति स्वजनों को प्रसन्न नहीं किया जा सकता ? इत से मालूम होता है कि स्त्रियों को ईश्वरप्रदत्त अपने स्वाभाविक शारीरिक गुणों तथा योग्यताओं पर विश्वास नहीं है, अन्यथा वे तितली बनकर अपने लाधव वा परिचय क्यों देती हैं ? इस से तो यही मालूम होता है कि वे भी बनावट के जाल में मनुष्यों का शिकार फैसलाना चाहती हैं। अस्तु,

प्रकृत में तपश्चर्या से कडा स्वामी विवेकाग्रम यदि को किसी प्रकार (पूर्वजन्म के पुण्यों के उदय हाते के कारण) पाञ्चजन्य मठ के प्राप्त होते ही—काम को वशीभूत करनेवाली चेष्टाओं से कुछ रति के सम्मान काई अपूर्व नारी मन्द मन्द हँसती हुई वहाँ आ पहुँची।

सा पञ्चमालापमुपाधगाना,

सक्चन्दनाक्षिशरीरपट्टिः ।

अधियों के घाव आघात हो जाने के कारण ही आजकल के किन्ने ही मठ मन्दिर भूल में मिल गये और मिल रहे हैं। अनेक पिढियों और तीर्थस्त्रियों भी इस की वजह से जो दुर्दशा हो रही है, क्या वह धर्मव्यापार से छिपी है ?

संतसज्जाम्बुनदरम्पवर्णा,

पीतासवा पृणितपद्मनेत्रा ॥

अर्थात्—वह स्त्री पञ्चम स्वर में गा रही थी, पुष्प-माला और चन्दन से उस का सुन्दर शरीर विभूषित था, अत्यन्त तपे हुए सेने के समान गौर उस का रूप था, मदिरा पी रखी थी जिस की मन्मी से उस के कमलनेत्र घूम रहे थे, और दिव्य पुष्पों से गुथे हुए सुन्दर वेशों के भार से उस का विलास बढ़ रहा था, जिस के प्रभाव से विष्णु के परम पद का पाने की इच्छावाले मुमुक्षुओं को भी मोहित कर रही थी, फिर सामान्य जन उस का क्या निवारण कर सकते थे ?

उस नारी को ऐसी स्थिति में देखकर 'स्वामी त्रिकेनाग्र' का मुखकमल बुझला गया और अथयन्त अभर्ष्य को प्राप्त होकर वह मन ही मन में इस प्रकार विचार करने लगा कि—

मैंने बहुत काल के पश्चात् अनेक कष्ट सहन करके इस स्थान को प्राप्त किया है। यहाँ भी यह विघ्न कहाँ से आ गया ? 'वैराग्यवीर्य' सन्यासी जो मुझे प्राणों से भी प्यारा है, यह बड़ा डरपोक है, वह इस स्त्री की उपस्थिति में यहाँ कैसे ठहर सकेगा ? इस के निता शम, दम और उपशम आदि संन्यासी यहाँ नहीं रह सकेगे। ऐसी दशा में यहाँ 'मुमुक्षु' तपस्विनी काहे को आनेगी ? उस के न आने से 'मुक्ति' भी गई ही समझिए ? हाय ! इस के कभाव में हम सब आश्रयहीन हो जायेंगे। यह मठ तो हम विरक्त जनो के समाज के निवास का स्थान है। यहाँ यह कौन भूतों पिशाचिनी स्त्री आ गई ?

कदापि पुनर्वि मिथुर्न सृष्टोर् दारनीमपि ।

इति श्रुदोक्तयः सन्ति तत्कृतः स्यात् सास्थितिः ॥

अर्थात्—संन्यासी को खियों स्पर्श के योग्य नहीं हैं, फिर उन के साथ रहने की तो बात ही क्या ? ऐसा बड़े लोग कह गये हैं ।

जिताहारोऽथवा वृद्धो, विरक्तो व्याधितोऽथवा ।

यतिर्न गच्छेत्तं देशं, यत्र स्यात् प्रतिमा त्रियः ॥

अर्थात्—जिताहारक वृद्धे, विरक्त और रोगी चाहे जैसी स्थिति के संन्यासी को भी स्त्री के चित्र के स्थान में भी न जाना चाहिये । जिस प्रकार विन्ध्या-चल पर फैली जहरीली बेल सब प्राणियों को पीड़ित करती है, उसी प्रकार स्त्री के स्पर्श से दूषित जल-वायु भी संन्यासी को प्रतित करता है । खियों के साथ बार्बाडाप और उन्हें देखना आदि तो दूर रहा उन की स्मृति भी सर्प के डसने की तरह मृत्यु को देने-वाली है । ब्रह्मा, इन्द्र, चन्द्र आदि विषय शरीर-धारियों के भी सब अनर्थ खियों के कारण हुए हैं, फिर बुन्ड मनुष्यों की गणना ही क्या है ? ऐसा संन्यासी दुर्लभ है—जो राज्य को नरक के समान, सुवर्ण को मिट्टी के ढेले के सदृश और खियों को मृतक शरीर के तुल्य समझे । अस्तु;

यह स्त्री हम यतियों का मठ छीनना चाहती है । यह बहुत दोषोंवाली होने के कारण संभाषण करने योग्य नहीं है । दूसरा ऐसा कोई मनुष्य यहाँ नहीं है जो इस से पूछे कि यह यहाँ क्या करना चाहती है ? क्या यह यहाँ से चली जायगी ? या सदा यहाँ रहना चाहती है ? अथवा मैं ही इस से इस का मनोरथ पूछूँ ? जिस का मन प्रत्यक् आत्मा में लगा है उस का यह विचारी क्या कर सकती है ? आत्म-

॥ जो पेट के दो भाग अन्न से तथा एक जल से भरता हो और एक भाग को पाँव के लिए रखता हो, उसे 'जिताहार' कहते हैं ।

दृढ को स्त्री आदि विषय बाधा नहीं पहुँचा सकते । जैसे स्त्री में प्रेम उत्पन्न होने से कामियों का मातृप्रेम नष्ट हो जाता है उसी प्रकार आत्मप्रेमियों का विषय-स्नेह जाता रहता है । जैसे प्रकाश से रज्जू में सर्प का भ्रम जाता रहता है उसी प्रकार स्त्री आदि के कल्पित शरीर से ज्ञानियों को कोई भय नहीं रहता । जैसे भेड़ वकरियों का व्याघ्र पर कुछ बल नहीं चलता, उसी प्रकार वैराग्यतीथ जैसे साधु के सहायक होने पर मुक्त विवेकाश्रम पर खियों क्या जोर आजमाई करेगी ? इस प्रकार वह अनुचानक सत्तम संन्यासी उस स्त्री को दासी के समान समझता हुआ बोलता—
काऽसि ? कस्याऽसि ? छलने !

कुत्रत्या ? किञ्च वाञ्छसि ?
नोचिताऽस्मिन्मठे भाति,

स्थितिस्तव वरानने ॥

अर्थात्—हे छलने ! तू कौन है ? किस की स्त्री है ? कहाँ की रहनेवाली है ? और क्या चाहती है ? हे वरानने ! इस मठ में तेरा रहना उचित नहीं जान पड़ता । जहाँ शान्त, दान्त, उपरत, तितिक्षु और समाधिस्थ संन्यासी, अपने आत्मा (संछूत मन) से आत्मा का साक्षात्कार कर रहे हैं, जहाँ मुमुक्षु श्रेष्ठ यति लोग प्रत्यगात्मा को देह, इन्द्रिय, प्राण, मन और बुद्धि से पृथक् जानकर उस का दर्शन कर रहे हैं, जहाँ विद्वान् लोग, वेदाध्ययन, यज्ञ, दान, अनेक प्रकार के तप और उपवास आदि से आत्म-ज्ञानानुसन्धान कर रहे हैं, और पण्डितजन इस-लोक तथा परलोक के भोगों से विरक्त होकर जिस मठ में निवास करके असङ्ग ब्रह्म के विषय में श्रुति के तात्पर्यों का निरूपण करने में व्यस्त हैं, ऐसे सज्जनों

अजित ने अज्ञोपवित वेद पढ़ा हो वह अनुचान कहाता है ।

के निवास के योग्य इस पाञ्चजन्य मठ में तेरा ठहरना उचित नहीं है। किंतु तू इस मठ को छोड़कर अन्य ससार के मन्दिरों (शरीरों) में ही रहने योग्य है, क्योंकि वे ही तेरे उपयोगी होंगे।

सुविशाल नेत्रोंवाली वह नारी विवेकाग्रम के उक्त वाक्यों को सुनकर क्रमशः उत्तर देने लगी—

हे मन्त्र! मैं तेरी बड़ी बहन 'चित्तश्रुति' हूँ, तू मुझे नहीं जानता, क्योंकि—तू अभी उत्पन्न हुआ है। हे बन्धु! जो जो मठ तू ने त्याग दिये हैं और अब जिस मठ में तू विद्यमान है, वन स्रव की पालना करनेवाली अधिष्ठाता देवता मुझे ही जान। मैं मन को हरनेवाले शब्द, रूप, रस आदि समस्त विषयों को चाहती हूँ, और वन शब्द आदि को संपादन करनेवाले शुभ कर्मों को भी चाहती हूँ। मैं कर्मों के त्याग की इच्छा नहीं रखती और न उन के फलों को ही छोड़ना चाहती हूँ। जैसे तू मूर्ख सन्यासी घनवर कर्म और इन के फलों को छोड़ना चाहता है।

“अरे! पुत्रैषणा, विचैषणा तथा लोकैषणा को त्यागकर घर घर भीख माँगनी चाहिए” ऐसी मति सन्या विचारशून्य है। ‘आरम्भ में होनेवाले जानकर्म आदि सत्कारों का जिस वेद में विधान है तथा जिस वेद का अध्ययन भी प्रथमावस्था में ही होता है, और रमणीय घरों में अनेकविध धन धान्यादिकों में यश का अनुष्ठान करना जिस वेद में लिखा है, वह ‘कर्मयोगसूत्रा काण्डरूप वेद’ तो त्याग्य है। और प्रधान-

वस्था में (छावारी में) किये जाने योग्य संन्यास का जिसमें विधान है, तथा जंगल में जिस का अध्ययन किया जाता है और भिक्षारूप अर्थ का ही जिस में विधान किया गया है वह ‘ज्ञानकाण्ड’ रूप श्रुतिसमूह माया है’ इत्यादि मूर्खों की विपरीत मति है। “ज्योतिष्टोम याग से स्वर्ग होता है” यह वेद तो “गुहनिहिता” कहकर उपेक्षणीय है। और “मूँद मुँदागर तथा नग मङ्ग होकर भीख माँगते फिरता” यह वेदवचन तत्त्वार्थ (शुक्ति) देनेवाला है, इस प्रकार की यानो भीख माँगने की कल्पना वे निर्माण्य, दरिद्र, अनाथ और मूर्ख लोग ही किया करने हैं जिन्होंने कि पूर्व जन्म में सत्कर्म नहीं किये। अहो! इन शिष्य-मुण्डों को शिक्षा आदि से इतना महान् सीमाव्य आत हुआ है कि इन के कहने से उद्गरावे में आकर राजा लोग राज्यों को छोड़कर जंगलों में चले गये। यदि सन्यासी लोग ऐसा कहें कि—‘अथ भिक्षार्थ चरन्ति’ इत्यादि श्रुतियों से भिक्षाश्रुति का विधान किया जाने के कारण वह अवश्यमेव इष्ट का साधन है, तो ‘श्वेनः सदन’ आदि यागों ने क्या अपराध किया

—जैसे शालक को कबूती औषध गुह में भिक्षाकर दी जाती है वह गुह के लोम से दवा का जोवे इसी तरह ज्योतिष्टोम आदि यागों से स्वर्ग प्राप्ति का प्रतीभन दिया गया है।

—“श्वेनानभिचरन् यजेत” ‘वदन्श्वेनानभिचरन् यजेत’ और ‘गवाभिचर्षमाणो यजेत’ इत्यादि श्रुतियाँ उत्कट मोक्षदायक पुण्यों के लिए ‘श्वेन’, ‘वदन्’, ‘गो’ आदि नाम के अनेक यागों का विधान करती हैं। इन यागों को करने से शत्रु की शत्रुत्व अवश्य हो जाती है। परन्तु करनेवाले को मरणानन्तर बरक भी प्राप्ति होती है। अतः ये मारणकर्म पुण्य के इष्ट (स्वर्गादि गुह) के बन्धक नहीं हैं। यदि उत्कट भीष के बलीभूत होकर कोई पुण्य अपनै-

॥ यो समन्ता चाहिष किं—‘विवेक’ की दृष्टि से पहले ही विषयाकार ‘चित्तश्रुति’ अनादि काल से चली आती है, अतः ‘विवेक’ की अपेक्षा वह बड़ी है। और ‘विवेक’ तथा विषयाकार ‘चित्तश्रुति’ दोनों अन्तःकरण के परिणाम हैं, अतः एक अन्तःकरणरूप विज्ञा से उत्पन्न होने के कारण दोनों मार्गबद्धन के समान हैं।

है ? वे भी तो श्रुति से विधान किये गये हैं। इन्हें इष्ट का साधन क्यों नहीं मानते ? आप इनका भी अनुष्ठान क्यों नहीं करते ? फिर व्यवहारतः भीख माँगना कोई अच्छा थोड़े ही है ? इस से पुरुष का तेज नष्ट हो जाता है। जब कि मनुष्य में बुद्धि है और वह साङ्गोपाङ्ग है, फिर किसी से भिक्षा क्यों माँगे ?

‘आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः’ इत्यादि वेदान्त, जिस आत्मा को द्रष्टव्य कहते हैं क्या उस को हम प्रत्यक्ष नहीं देख रहे हैं ? यह शरीररूप आत्मा तो साफ दीख रहा है, जो हाथ पैर आदि अङ्गों की विशेष रचनावाला है। फिर इस के विषय में वेद का यह कहना व्यर्थ है कि—‘आत्मा का साक्षात् करना चाहिए’। यदि उपनिषद् प्रतिपाद्य आत्मा, देहेन्द्रियादिकों से भिन्न है, कोई वस्तु है और सब को प्यारा है तो ऐसा आत्मा की पुत्र आदि प्रिय पदार्थ ही हो सकता है। कहने का प्रयोजन यह है कि देह से भिन्न

इन्द्रियों को खाद्य आदि से मरिगा तो वह राजा द्वारा प्राण-दण्ड का भागी होगा। और उस के आश्रित प्राणधारण करनेवाले ही पुत्र आदि अश्रादि बिना कष्ट भोगेंगे—इत्यादि इष्ट दुःखों से बचाने के लिए दयापरायण होकर भुति ऐसा जानते हुई कि—‘यह नरक तो अवश्य ही जायगा’। अतः यदि हो सके तो इष्ट दुःखों से इस की और इस के परिवार की, मनुष्यों की रक्षा कर्त्ती चाहिए, इस अभिप्राय से उक्त क्रोधाभिभूत पुरुष के लिए ‘इयेन’ ‘संदंश’ गो आदि यागों का विधान करती है। अतः ‘नित्यश्रुति’ कहती है कि—इयेन आदि योगों के समान मिश्रचरण भी इष्टसाधन नहीं है। यह केवल उन के पूर्ण जन्मों के अन्ययाचरणों का परमेश्वरदत्त दण्ड है। अर्थात्—जो भी भोग रहे हैं वे अपने पूर्वजन्मकृत पुत्रों परेश्वर द्वारा फल भोग रहे हैं। क्या धीत स्वार्थ कर्म त्यागकर पर पर भीख माँगना पुण्य का फल है ?

यदि कोई आत्मा मानेगो तो वह पुत्र दारा आदि रूप ही होगा और उसी पुत्रादिरूप आत्मा के लिए शरीरेन्द्रियादि जगत् भी प्यारा होगा, फिर उस के त्याग का विधान क्यों करते हो ? पुत्र दारा आदि रूप आत्मा को इन्द्रियों से अनुभव किये गये विषयों द्वारा तृप्त करो। स्नान, मिट्टी से शौच, शिरोमुण्डन, भूमिशयन, वन में वास, ब्रह्मचर्य और शम दमादि कठोर साधनों से आत्मा को क्यों छेद देते हो ? वीणा और नारी के मुख से गाये गये मनोहारो शब्दों—गीतों को सुनो। कोमल कोमल शय्या, मृदु मृदु मृगनयनी स्त्रियों का स्पर्श करो, सुवर्ण के समान कान्तिवाली स्त्रियों के रूप लावण्य का सदा अवलोकन करो, भक्ष्य भोज्य चोप्य आदि उत्तमोत्तम स्वादिष्ट पदार्थों का रात दिन सेवन करो। मस्तक पर कस्तूरी लगाओ, गले में फूलों के हार पहनो और सदा यही चिन्तन करो कि—

“ये मेरे सुख वार वार होवें।”

कहाँ तक कहें ‘चित्तवृत्ति’ ने ऐसी बहुत सी चाहियाँ बाँटे कहते हुए बहुत देर तक वकवाद की। ये सब बातें सुनकर स्वामी विवेकाग्रम हैंसता हुआ ‘चित्तवृत्ति’ से बोला—

तू विपरीत बुद्धिवाली है, तेरे अज्ञानान्धकार को करोड़ों सूर्य भी नहीं हटा सकते, अज्ञान में डूबे हुए व्यक्ति की अविद्या ही अच्छी लगती है, क्या विद्या का कीड़ा रॉड को मिठास को पसन्द कर सकता है ? यदि यक्षमूर्ख तत्त्वार्थ को जान सकता है, तो बहरा पुरुष भी वीणा और कण्ठोत्थ शब्द को सुन सकता है। यदि अत्यन्त विषयासक्त पुरुष ब्रह्म के स्वरूप का साक्षात्कार कर सकता है तो कछुए का चक्का भी अपनी माता के दूध के रस का आस्वाद ले सकता है। जविया के कार्य इन शरीरादिकों में

आमबुद्धिवाले पुरुष को तत्त्व का गन्ध भी दुष्प्राप्य है, लहसुन खानेवाले भील कर्पूर की सुगन्ध को क्या महत्त्व दे सकते हैं? आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक रूप तापत्रयश्रेष्ठ के संताप से तपे पुरुष को तत्त्वच्छाया का सुख कहाँ?

हे चित्तवृत्ते! तू विषय सन्नयी आग्रह का परि त्याग करके प्रिय-चित्-सुखरूप ईश्वर का आलिङ्गन कर। जहाँ जहाँ तुझ को आनन्द प्रतीत होता है वह सब आमा का है। विषयो में सुख नहीं है, इन के प्रेमी रेखा करते हैं। क्षीरसागर की मछली जैसे क्षीरसागर के जल से श्रुत नहीं हो सकती उसी प्रकार अत्मानन्दालम्बन करने के बाद विषयसुख तुच्छ और हेय प्रतीत हुआ करते हैं।

हे चित्तवृत्ते! तू समझ कि वाञ्छित विषयो की प्राप्ति से शान्त हुए मन में आत्मा के सुखोपशान्ति का जो आभास पड़ता है, वह वगणित आमसुख ही है, अधोपि अज्ञान से लोग इसे विषयजन्य मान लेते हैं, बहुत। वह सुख विषयजन्य नहीं है। यदि अन्य सुख को छोड़कर किसी अन्य महासुख को प्राप्त करने की तेरी इच्छा है और यदि तू विनाश-रहित सुख की अभिलाषिणी है तो देहत्रयरूप उपाधि को नाश करके अक्षय आत्मसुख को स्वीकार कर। जैसे पशु शुद्ध को छोड़कर भूमे को ही उत्कण्ठापूर्वक चान्ना है इसी प्रकार तू आमसुख को त्यागकर विषयो को क्यों चाहती है? विषयसुख की नीरसता

* -भारतवर्ष और मानविक भेद के 'आध्यात्मिक'

ताप दो प्रकार का है, वशी-उग्र, रक्षित, अतिघात, प्रवेद, कुल, आदि शारीरिक और राग, द्वेष, भेद आदि मनविक ताप हैं। अतिघात, अनादित, भूतकर्म, वज्रपात, शीत आदि आधिदैविक और व्याघ्र, शीत, घोर आवाहलपर एका आदि आधिभौतिक ताप हैं।

और अनित्यता देखकर भी जो फिर उसी को चाहता है वह नर नहीं, खर है। जैसे ऊँट आम के सुन्दर, चोमल, मधुर और नूतन पत्तों को छोड़कर पील, नीम, करीर, शमी और बीकर आदि काँटेदार तथा कड़े पत्तों की इच्छा करता है, वसी प्रकार तू विषयो की इच्छा से आत्मा को त्याग रही है, और क्षुतिया की तरह विषयो के टुकड़े के लिए भटकती है।

हे चित्तवृत्ते! अधिक क्या कहें, आत्मानन्द से परिपूर्ण होकर तू शान्तिलाभ कर। विषय नियम पूर्वक सुख देनेवाले नहीं हैं, क्योंकि-प्राप्ति या अप्राप्ति में श्राव ये दुःख ही देते हैं, फिर टिकाऊ भी नहीं हैं, न एकरस रहते हैं। और आशात आन पिस को कुछ काल के लिए ईसाते हैं, वसी को कुछ दिन बाद सदा के लिए खलते हैं। विषय की आशा में नष्ट होने हुए भ्रमर, हरिण, हस्ती, पतंग और मछली को क्या तू नहीं देखती? जब ये एक एक विषय के भोग करने की इच्छा से नष्ट होने देखे गये हैं तो उस प्रमादी के नल्बानाश होने में क्या संदेह है जो शींचो विषयो का पञ्चेन्द्रियो से सेवन करता है। कोयल के शब्द के समान यदि शब्द ही सुख का कारण हो तो विषयासक्त लोग, गंध के रेंकने के शब्द को सुनकर प्रसन्न क्यों नहीं होते? सियो के आलिङ्गन की तरह यदि रस ही सुख का हेतु है तो विषयी जन जलते हुए अद्भार के शर्श को क्यों नहीं पसन्द करते? यदि सुवर्ण के रूप के समान रूप ही सुख का देनेवाला है तो विषयलम्बित मनुष्य काक के रूप से क्यों नहीं भ्रमन होते? यदि आध्रफल के रस के सादृश सेवन किया गया रस ही आनन्द का देनेवाला है तो इन्द्रायण के रस का सेवन भी क्यों नहीं किया जाता? सुगन्धित घृत के घूर्ण के समान मन्द मन्द वायु से लाया हुआ पुष्प आदि का गन्ध ही यदि आनन्द को देता

है तो चिता का धूआँ भी प्रीतिकर होना चाहिए ? समझ लो, जिस विषय से सुख होता है उसी से दुःख भी होता है, जैसे कि न पची हुई मीठी खीर रोग या मृत्यु का कारण होती है ।

हे चित्तवृत्ते ! इस लिए संसारदुःख की ओषधि जो अनन्त तथा सर्वोत्तम आलसुख है उस को पान करके तू स्वस्थ हो जा । संसार का त्याग और कर्मों का छोड़ना तो विषयों के लपेटे से बचने के लिए पर-

मावश्यक है । और भिक्षाचर्या, अपने अभिमान को विनष्ट करते हुए यथासंभव आवश्यकताएँ कम करने के लिए है । यों तो राज्य और रंजाना पाने पर भी किसी को संतोष नहीं होता, और भीख माँगने पर भी वह हो जाता है । वैदिक कर्मकाण्ड तो बहुत पहले की बात हो जाती हैं । कर्मोपासना में संतोष नहीं है । संतोष नहीं तो शान्ति नहीं । "फिर तो कुछ भी नहीं ।"

अध्यात्म योग

(श्री अरविन्द)

जिस योग की साधना हम करते हैं वह केवल हमारे लिए ही नहीं है, बल्कि मानवजाति के लिए है । इस का उद्देश्य व्यक्तिगत मुक्ति नहीं है, यद्यपि मुक्ति योग की एक आवश्यक अवस्था है । बल्कि इस का उद्देश्य है मनुष्यजाति की मुक्ति । हमारा उद्देश्य व्यक्तिगत रूप से आनन्द को प्राप्त करना नहीं है, बल्कि यह है कि भागवत आनन्द या सत्ययुग को पृथ्वी पर उतार लाया जाय । मोक्ष की हमें व्यक्तिगत रूप से कोई आवश्यकता नहीं है, कारण कि आत्मा नित्यमुक्त है और बन्धन तो केवल भ्रम ही है । वास्तव में हम किसी बन्धन में नहीं हैं, बल्कि हम बन्धन में पड़ने का अभिनय करते हैं । ईश्वर जब संकल्प करे तभी हम मुक्त हो सकते हैं, कारण कि वह हमारा परम आत्मा, इस नाटक का सूत्रधार है और उस के प्रसाद व आज्ञा के बिना कोई भी आत्मा इस रंगभूमि को नहीं छोड़ सकता । बहुधा हम में यह ईश्वर का संकल्प ही होता है जिस से प्रेरित होकर हम मन के द्वारा अज्ञान का तथा दुर्घ और

शोक, सुख और दुःख, पाप और पुण्य, भोग और त्याग के द्वन्द्वों का उपभोग करते हैं । बहुत से देशों में तो वह इस लीला को एक बहुत दीर्घ काल तक चलाये चलता है, शताब्दियों पर शताब्दियों धीत जाती हैं और योग के संबन्ध में वह विचार तक नहीं करता । इस में कोई घुराई नहीं है, ऐसी कोई बात नहीं जिस को हम दोष दें या जिस से हम मुँह मोड़ें, यह भगवान् की लीला है । बुद्धिमान् मनुष्य वही है जो इस सत्य को स्वीकार करता है और अपनी स्वतन्त्रता का ज्ञान रखते हुए भगवान् की इस लीला में अपना अभिनय करता रहता है तथा इस लीला की पद्धति में फेर फार करने के लिए उस के आदेश की प्रतीक्षा करता है ।

यह आदेश अब हो चुका है । ईश्वर सदा अपने लिए एक ऐसे देश को चुनकर रखता है जहाँ समस्त संभारनाओं और खतरों का अतिक्रमण कर, चाहे थोड़े से लोगों में हो या बहुतों में, उच्चतर ज्ञान की निरन्तर रक्षा की जाती है । और वर्तमान काल में

कम से कम इस अनुसूची के लिए वह देश भारतवर्ष है। जब कभी वह अज्ञान का, द्वन्द्व का, आरसी मगसो, मोघ, विहाय, दुर्बलता, स्वार्थ; यानी संशय में कलियुग की लीला का पूर्ण सुख लेना चाहता है, तब वह भारत के ज्ञान को पुँघला कर देता है और भारत को दुर्बलता व अवनति के गड्ढे में डाल देता है, जिस से कि वह अपने ही ममेले में पैसा रहे और उस की लीला की इस गति में किसी तरह का हस्तक्षेप न कर सके। जब वह इस कीचड़ से बाहर निकलना चाहता है और यह चाहता है कि नर में जो गारायन है, वह एक बार फिर शक्तिशाली, सान्त्वान, आनन्दमय हो, तब वह भारतवर्ष पर पुन ज्ञान की वर्षा करता है और उसे ऊपर उठाता है। जिस से कि वह समस्त ससार को ज्ञान दे सके और इस ज्ञान के फलस्वरूप अजरयमारी रूप से आनेवाली शक्ति, प्रज्ञा और आनन्द को प्राप्त कर सके। जब ज्ञान की गति संतुलित हो जाती है, तब हम देश के योगी संसार में न्दार्मान हो जाते हैं और स्वयं अपनी ही मुक्ति या आनन्द के लिए अथवा अपने कुछ शिष्यों की मुक्ति के लिए योगाभ्यास किया करते हैं। किंतु ज्ञान की गति जब पुन विकृत होती है और उस के साथ ही साथ भारत का अन्तरात्मा विस्तार को प्राप्त होता है, तब वे एक बार फिर प्रज्ञा में आते हैं और जगत् के हित के लिए कर्म करते हैं। दरअसल, अज्ञानशक्त और कार्तवीर्य जैसे योगी एक बार फिर ससार के सिंहासन पर आरुढ़ होते हैं तथा विभिन्न राष्ट्रों का शासन करते हैं।

मनुष्यों में जो भगवान् की लीला होती है वह सदा चक्राकार धमनी रहती है, सत्ययुग से कलियुग की ओर और कलियुग से फिर सत्ययुग की ओर। आनन्द की भागा में सत्ययुग जगत् का यह फाल है

निम में स्थिर और पर्याप्त साम्राज्य की सृष्टि रहती है और मनुष्य कुछ फाल के लिए कतिपय अवस्थाओं और सीमाओं के अंदर अपनी सत्ता की पूर्णता को अनुभव करता रहता है। यह साम्राज्य इस युग की प्रकृति में ही एक सुप्रतिष्ठित पवित्रता की शक्ति द्वारा निहित रहता है, परंतु बाद में यह मेल टूटने लगता है और घेता में मनुष्य इस को अस्थिर तथा सामूहिक इच्छाशक्ति से संभाले रहता है। आगे चलकर यह और भी भयावस्था को प्राप्त होता है और द्वार में मनुष्य इसको बौद्धिक विधान, सार्वजनिक सहमति तथा शासन द्वारा संभालने की चेष्टा करता है, और भी आगे चलकर अर्थात् कलियुग में यह पूर्ण रूप से ध्वंस होकर नष्ट हो जाता है। परंतु कलियुग केवल अणु ही नहीं है, इस में एक नवीन सत्ययुग, एक नवीन साम्राज्य, एक अधिक उन्नत सिद्धि के लिए आवश्यक अवस्थाओं का उत्तरोत्तर निर्माण होता रहता है। इस कलियुग में, जो कीचड़ है, पर जिस का असर अभी तक चल रहा है और अब समाप्ति पर है, प्राचीन ज्ञान और संस्कृति की पूरी क्षति हुई है। उस ज्ञान और संस्कृति के कुछ टूटे पूरे अंग ही अनेक धर्मग्रन्थों में तथा जगत् की उलझी हुई परंपराओं के रूप में हमारे सामने रख गये हैं। परंतु अब समय आ गया है कि ऊपर की ओर गति करने के लिए पत्थर कदम डाला जाय, अर्थात् एक नवीन साम्राज्य और नवीन सिद्धि की प्राप्ति के लिए प्रथम प्रयास किया जाय। यही कारण है कि मनुष्यसमाज में ज्ञान, धर्म और सदाचार की पूर्णता के लिए आजकल इतनी तरह के विचार पैठ रहे हैं। किंतु सच्चे साम्राज्य का पता अभी तक अज्ञान ही है।

केवल भारतवर्ष ही इस साम्राज्य का आवि-

कार कर सकता है, कारण कि यह सामञ्जस्य मनुष्य की वर्तमान प्रकृति का रूपान्तर करके ही, उस के पुनर्जन्मस्थापन द्वारा विकसित किया जा सकता है। और इस रूपान्तर का होता योग के बिना संभव नहीं है। मनुष्य तथा वस्तुओं की प्रकृति इस समय बेमेल हो गई है, इन का सामञ्जस्य वेसुरा हो गया है। इस को पुनः सामञ्जस्यपूर्ण, सुरीली बनाने के लिए मनुष्य के हृदय, कर्म तथा मन के समग्र रूप से परिवर्तित होने की आवश्यकता है। यह परिवर्तन आन्तरिक होगा, बाह्य नहीं। न तो यह राजनीतिक और सामाजिक मंस्थाओं द्वारा होगा न धार्मिक मंत्रदासों और द्गेनग्राहों द्वारा ही, बल्कि यह होगा हम में और इस जगत् में भगवान् की उपलब्धि द्वारा जीवन को एक नये ही मोर्चे में टालने से। यह बात केवल पूर्ण योग द्वारा ही हो सकती है, जो एक ऐसा योग है जिस की साधना किसी विशेष प्रयोजन को लक्ष्य करके नहीं की जाती। चाहे वह प्रयोजन मुक्ति और आनन्द ही क्यों न हो, उम का ध्येय है दिव्य मानवता का अपने में तथा दूसरों में सिद्ध करना।

एतद्योग और राजयोग की साधना भी इस काम के लिए पर्याप्त न होगी तथा त्रिमार्ग (ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग) में भी काम न चलेगा, इस के लिए हमें और भी ऊपर उठना होगा और अप्यास-योग का आश्रय लेना पड़ेगा। अप्यासयोग का

सिद्धान्त है कि ज्ञानरूप से तो उन समस्त वस्तुओं को, जिन्हें हम देखते हैं या न देखकर भी परिचित हैं, मनुष्य, वस्तुएँ, हम स्वयं, घटनाएँ, देवता और अनुर सभी को एक परब्रह्म के रूप में अनुभव करना। जो एक ही संग वैयक्तिक और बैय्यक्तिक है, सान्त और अनन्त है, स्वात्मसीमित और असीम है, एक और बहु है और जो ऊपर में रहनेवाले देवताओं को ही नहीं, बल्कि नीचे के लोकों के मनुष्य, कीड़ और मिट्टी के ढेले तक को अपनी सत्ता से अनुप्राणित करता है, ऐसे कर्म तथा भावरूपमय उस परात्पर पुरुष को पूर्णतया आत्मसमर्पण करना ही मुख्य साधन इस योग का है। अपने लिए कुछ भी चचार नहीं रखना चाहिए, कोई इच्छा नहीं, कोई भाँग नहीं, ऐसी कोई भावना नहीं कि यह होता ही चाहिए, यानी सब कुछ अपने कर देना होगा, हृदय को समस्त इच्छाओं से तथा बुद्धि को समस्त निज संकल्पों से मुक्त कर लेना होगा, प्रत्येक द्वन्द्व का त्याग करना होगा। अखिल दृश्य और अदृश्य जगत् को इस तरह अनुभव करना होगा कि यह एक छिपे हुए दिव्य ज्ञान, शक्ति और आनन्द की ही अभिन्न परम अभिव्यक्ति है। अपनी समस्त सत्ता को इस तरह सौंप देना होगा जैसे एक इंजन ड्राइवर के हाथों में स्वयं निहित रहता है, जिस से कि भाग्यवतप्रेम, सामर्थ्य और निर्निष्कार बुद्धि अपना कार्य कर सके तथा अपनी भाग्यतलीला को चरितार्थ कर सके।

(प्रमथः)



सुखी जीवन

(ले०—प० श्री बासुदेवशास्त्री 'तेलङ्ग' शु० द्वे० वें० विभाग)

शिष्य—गुरुवर्य, वर्तमान शिक्षा का अन्तिम परिणाम सुव्यक्त होना है या दुःस्वकारी ?

गुरु—प्रिय बाल, आजकल पूर्व जैसे गुरुकुल नहीं हैं, किंतु आज एक से एक बड़कर कॉलेज, यूनिवर्सिटीयाँ खोली जा रही हैं। किंतु वे सच्ची शिक्षा और कला का अध्ययन करानेवाली नहीं हैं। उन का काम परीक्षा लेने का है।

शिष्य—प्रायः सुना जाता है कि इस शिक्षा से लाभ होना तो कठिन ही है, किंतु शारीरिक संपत्ति नष्ट हो जाती है। क्या यह सत्य है गुरुदेव ?

गुरु—इस शिक्षा के भयंकर रूप द्वारा भारतवासियों की समस्त शारीरिक संपत्ति नष्ट कर दी जाती है। छ छ बच्चे घालक विद्यार्थियों को स्कूल में भर्त करने से उन का शरीर रक्तहीन, निर्जीव, अस्थि पतल हो जाता है। प्राचीन समय में आज्ञात्म अन्न तक धरमे की आवश्यकता नहीं होती थी—किंतु बलिदायी है इस वर्तमान शिक्षा की, जिस के प्रभाव से शीघ्र ही चरमा खरीदा जाता है। यदि आँवों में विकार नहीं हुआ तो भी बादूजी बनने के लिए तो चरमा आ ही जाता है जिस के फलस्वरूप आँखें नष्ट हो जाती हैं। मिडिल बालकों की पाचन शक्ति नष्ट कर देता है, फट्टेस दिल खराब कर देता है एफ० ए० पेट और अंतद्वियों को खा लेता है, पी० ए० चरमुरी बना देता है, इस प्रकार बच्चे बचाये अधमरे शरीर को एम० ए० के अर्पण कर दिया जाता है।

शिष्य—गुरुवर्य, इस को जरा दृष्टान्त से समझाए।

गुरु—अकबर के समय की एक बात प्रसिद्ध है कि एक समय बादशाह ने चार बजोरां का उन को बुद्धि के प्रयोगार्थ चार चकरे तोलकर देते हुए कहा कि एक महीने बाद चक्रों का तोल यही हाना चाहिए, अन्यथा सजा मिलेगी। सबों ने इस के लिए अनेक उपाय किये, किंतु बीरबल ने एक अनोखा उपाय विचार। बीरबल दिन में चक्रों को खूब रिलाना और रात में शेर के पिंजड़े के पास बाँध देता था। इस से क्या होता था कि बकरा दिन में जितना खाता था, जतना ही शेर के भय से रात्रि में पट जाता था। यही विद्वत् परिस्थिति आजकल अपने देश के विद्यार्थियों की है, इधर विद्यार्थी खा पीकर तैयार हुए कि उधर परीक्षारूपी बाघ ने उन का खून ऊपर ही ऊपर धूस लिया।

शिष्य—गुरुवर्य, क्या यह भी सत्य है कि हम ने अपनी सतानों को अपने ही हाथों गहरे गड्ढे में पटक दिया है ?

गुरु—आज हम ऐसी मायामोचिका में फसे हुए हैं कि अपनी सरकृति, अपनी वेपभूषण, अपनी जाति सन कुछ विस्मृत कर चुके हैं। मुस्लिम राज्य काल में हम ने अपना अस्तित्व नहीं मिटाया, किंतु देह तो वनों में ही हम ने अपनापन सन तरह से खो दिया। जब छोटे बच्चों को स्कूल में भेजा और और उन को 'ए० बी० सी०' ये शब्द बाद हुए तब हम ने समझा कि हमारा चच्चा भी गई भाग पड़ रहा है, किंतु कुछ दिनों में इंग्लिश का अच्छा हाता होकर और नवीन सभ्यता का उपासी होकर

माता पिता को डाटने लगा, हिंदुधर्म की तथा वेद की निन्दा करने लगा और सबों को झूठा पाखण्ड बताने लगा। उस के मत में कोट, पतलून, चूट, हैट ही सब देवता हैं और ये ही सब ईश्वर के पास पहुँचाने-वाले साधन हैं। फिर चाहे वे वैकारसखा के मित्र भले ही हों, किंतु अपने धर्म को तिलांजलि देना उन का पहला काम होता है, जो इस शिक्षा का जन्मसिद्ध अधिकार है। साथ ही और भी कुछ विशेष फूल खिलने लगते हैं, वे कौन हैं सुनिश्च—

अभी कुछ दिन पूर्व की बात है, मैंने एक मासिक पत्र में ऐसा लेख देखा कि आश्चर्य होने लगा। एक तेली का लड़का था जिसे पिता ने अपना घर का घन्था छुड़वाकर 'ए० बी० सी० डी०' पढ़ने भेजा। उस ने मोचा था कि अपने काम में क्या रखा है? अगर बाबू बन गया तो नौ, दो सौ रुपयों का महीना कमा लेगा। जब उस ने किसी तरह मेट्रिक पास किया और आगे पढ़ने के लिए रखा न मिला तो किसी नौकरी की तलाश में घूमने लगा। जब नौकरी न मिली तो विषम होकर पिता ने कहा कि घर का काम ही ठीक है। यम, पुत्रजी बोले कि मैं इस काम को तो नहीं करता, चाहे मर जाऊँ। अब कहिए, यह नवीन सभ्यता का उद्धारण है कि नहीं? आज-कल वर्तमान शिक्षा का भूत मयार है, मगाई और विवाद भी प्रयोग के मार्तिकिनेट पर निर्भर हैं। प्राचीनकाल में तन्मन्त्रियों देवों जानी थीं, अब मार्तिकिनेट।

परीक्षाओं की तो गति ही निगम्य है, वे लोग जिन से जिन प्रश्नों को आत्मक के शिक्षार्थियों के समक्ष उभरा ही अपनी शिक्षा की महत्ता समझते हैं। परीक्षकों का वर्तन है विचारियों का ज्ञान जानना, किंतु वे तो यही देखते हैं कि इन को क्या नहीं आता? नहीं गुरु हो विचारों के पेट में और

चौरासी लाख योनियों की तरह भटका करें। आज-कल की शिक्षा ने कितने कालिदास, भवभूति, घन-न्तरि, व्यास, वाल्मीकि, सूरदास तथा तुलसीदास पैदा किये हैं? और कितनों की शारीरिक संपत्ति का महत्त्व सुना गया है? भीम की गदा, हनुमान की हुंकार, अर्जुन के गाण्डीव आदि को चाहे आप पुराणों की गर्भे ही समझे, किंतु जिन्होंने वीरवर राणा प्रताप का वलिष्ठ चरित्र, शिवाजी की वीरता और पृथ्वीराज की धनुर्विद्या सुनी हैं, उन में क्या कोई कहेगा कि ऐसे वीरों ने देशोद्धारार्थ कब नहीं कसी? अवध के नवाब के बारे में यह प्रसिद्ध है कि जब वह हाथी की पूँछ पकड़ लेता था तो हाथी तिल भर भी नहीं हट सकता था।

शिष्य—श्रद्धेय, एक प्रश्न और है, भारतीयों की इस में क्या गूढ़ि है, जिस से अपना अवपतन करा रहे हैं?

गुरु—भारतवासियों के अनेक दोष हैं, अन्य देशीय विदेश से हुनर, कला नीग्यकर अपने देशी बन्धुओं को सिगाते हैं पर भारतीय जो सीखते हैं उस का प्रचार नहीं करते। विदेशी अपने देशोद्धार के लिए परदेश जाते हैं पर भारतवासी गौज, शोक के लिए परदेश जाते हैं। विदेशी परदेशों में नग्नता सीखते हैं और भारतीय अपनी बड़ाई सीगकर आते हैं। अन्य देशीय विदेश में स्वदेश को नहीं भूलते, किंतु भारतीय विदेश जाते पर स्वदेश की कुछ भी परवाद नहीं करते। विदेशी अपने पूर्वजों को शक्ति से देखते हैं, किंतु भारतीय पूर्वजों को हीन दृष्टि से देखते हैं। इस तरह के जनेक दोषों से हम ही हताश बन कर रहे हैं।

शिष्य—गुरुदेव, क्या उन्नत होने का कोई सरल तरीका है? यदि है तो कानून की कृपा कीजिए।

गुरु—हमें उन्नत होने में रोक लगानेवाली है देण की गूट, समाज की कुमथा और हमारी भूल्यता। हमें औरों ने गतना पराजित नहीं किया, किंतु अधिकतर हम ही पराजित हुए, अपनी पारस्परिक कलह और दुस्तिव आचार विचार के कारण। विदेशियों को लाखों रुपये देने में किसी को हिचकिचाहट नहीं

होती, किंतु अपने पड़ोस में एक आदमी को भूखे मरते हुए देखकर भी कोई उसे एक मुट्ठी अन्न और एक चुन्दू पानी तक नहीं देगे। इस लिए जब तक भारतीयों के हृदय कुसंस्कार के मन्दिर बने हुए हैं, तब तक हम आत्मोन्नति या आत्मोद्धार नहीं कर सकते और सुखी जीवन भी नहीं बना सकते।



कर्म की प्रधानता

(ले०—स्वामी श्री शिवानन्दजी योगिराज, वैद्य, धन्वन्तरिगुरु)

किसी नगर में एक बहुत बड़ा सेठ विपुल संपत्ति छोड़कर मर गया। घनी लोगों के पुत्र प्रायः अकर्मण्य होने के कारण दुराचारी हो जाते हैं। इसी दोष के कारण उस सेठ के पुत्र ने पिता की सुमेध परिमित संपत्ति थोड़े ही दिनों में नष्ट कर दी। कुछ घन के बर्बाद हो जाने पर इसे भरती बण्ड होने लगा, निज चापलूसों के कुर्मग मे पड़कर घन गँवाया या, अब वे भीटो भीगी बालों की जगह इस को पट्ट कराने लगे।

पच खाने को भी न मिलने लगा तब उस की छी ने उस से कहा—'स्वामिन्। कुछ मेहनत मत दूरी में करदी हूँ, कुछ आप करो तो निर्वाह हो सकता है।' छी ने तो गूत काटना, किसी का अटा पीसना तथा कपड़े सीना शुरू कर दिया और छाहूँवर का लड़का जगल में घास तथा लकड़ी काटने को जाने लगा। हाथ कोमल थे, कभी मोटा काम लिया नहीं था, जिसे फूलों की पेंसिली चुभा पकती थी, सेमल की रई के गहरे बड़े मालूम होने थे उस दृग्गति से ऐसा काम कैसे हो सकता? सेठ के लड़के के पाँव में बुझा के कंठे चुम पाये और लकड़ी काटने से हार गये

छाले पट जाते थे। किसी किसी दिन बड़ एकान्त स्थान पाकर इस बण्ड से विलाप करने लगता।

एक दिन उस जंगल में नदी किनारे 'कर्मदेवता' और 'लक्ष्मी' दोनों साथ विचर रहे थे। लड़के का गदन सुनकर लक्ष्मी बोली—देखो, मेरे बिना मनुष्य का कैसा हाल हो जाता है—

'तानीन्द्रियाण्यपवित्रयानि तदेव नाम

सा धुद्रिस्मतिदता वचनं तदेव।

अर्थोष्मणा विरहितः पुरुष स एव ।

अन्यः ज्ञानेन भवतीति विचित्रमेतत् ॥'

'हाथ पोंव, नाम, बुद्धि और बालबाल सब बही रहते हैं कुछ फर्क नहीं हो जाता, किंतु घन की गरमी निकल जाने से जरा सी देर में उस की हड्डिया बदल जाती है।' इसी को देखो, जय में इस के साथ थी, सब यह कैसा या और अब मेरे बिना इस की क्या दशा है? जरा देखो तो पकड़ी। यह सुन कर्मदेवता ने कहा—

तुम्हारे बिना नहीं, मेरे बिना इस की यह गति हुई है—

‘ब्रह्मा येन कुलालवन्निपितो ब्रह्माण्डभाण्डोदरे ।
विष्णुर्येन दशावतारगहने क्षिप्तो महासङ्कटे ॥
रुद्रो येन कपालपाणिपुटके भिन्नाटनं कारितः ।
सूर्यो भ्राम्यति नित्यमेव गगने तस्मै नमः ‘कर्मणे’ ॥’

‘ब्रह्मा, विष्णु, महादेव और सूर्य को जिस ने सृष्टि रचने, अवतार लेने, भीरु माँगने और घूमने के वज्रे में डाल रखा है, वह कर्म सब से प्रबल है, उस के सामने सब को झुकना पड़ता है।’ सारा संसार कर्म के वशवर्ती हो कठपुतली की तरह नाच रहा है। लक्ष्मी ने कहा—यह बात नहीं है, जब मैं साथ रहती हूँ तो सब के कर्म अच्छे हो जाते हैं तथा मेरे बिना सब के कर्म फूट जाते हैं। मेरी कृपा से ही मनुष्य पुरुषोत्तम बनता है। कर्मदेवता बोले—तुम मनुष्य का साथ तभी दे सकती हो जब मैं उस का सहायक होऊँ, मेरे बिना तुम मनुष्य के पास रह ही नहीं सकती हो। इत्यादि कथनोपकथन से दोनों में विवाद उपस्थित हो गया। कर्म ने कहा—अच्छा, लक्ष्मी ! तुम इस को धन देकर देखो, यदि तुम्हारे दिये धन से वह धनी हो गया तो तुम्हारा कथन सत्य है। और जो धन पाकर भी यह ऐसे का ऐसा कोरा ही रहा तो फिर अधिकता मेरी होगी। दोनों में यह निश्चय होने पर लक्ष्मीजी ने सेठपुत्र के सामने दो लाल फेंके। सेठ ता था ही, लालों के स्वरूप से परिचित था, उन में जो सामर्थ्य होती है उसे वह जानता था, अतः उन्हें उठाकर वड़े हप्ते से घर को चला। गरमी का समय था, प्यास लगी। रास्ते में एक छोटी सी नदी मिलती थी। उस में वह झुककर पानी पीने लगा तो जेब से निकलकर लाल नदी में गिर पड़े, गिरते ही मछली निगल गई। वह घर आकर खोसहित पश्चात्ताप करने लगा।

अगले दिन फिर वह रोज की तरह जंगल में जाकर लकड़ी काटने लगा। उस की दीन दशा देखकर लक्ष्मीजी ने एक सच्चे कीमती मोतियों का हार उस के रास्ते के बीच में फेंक दिया, सेठपुत्र हार को उठाकर और अपनी पगड़ी में बाँधकर घर को चला। रास्ते में आनेवाली नदी में स्नान करने के लिए रुका तो पगड़ी नयहार के किनारे पर रख दी। इतने में एक चील आई और खाने की वस्तु समझकर हार को मयपगड़ी के लेकर उड़ गई। आज भी सेठ का लड़का खाली हाथों घर लौटा और स्त्री के साथ बैठकर शोक करने लगा।

अगले दिन वह फिर नित्य की तरह जंगल में पहुँचा तो लक्ष्मी देवी ने उस के रास्ते में एक अशक्तियों की थैली रख दी, जिसे सेठपुत्र ने देखते ही तुरत उठा लिया। आज वह सीधा घर की तरफ चला। रास्ते में दो दिन धोखा खा चुका था, इस लिए मार्ग में कहीं भी न ठहरने का हृद निश्चय कर चुका था। घर पहुँचने पर मालूम हुआ कि स्त्री घर पर नहीं है, किसी पड़ोसिन के यहाँ गई है। सेठ का पुत्र थैली को घर के प्रधान दरवाजे के भीतर की तरफ रखकर मोहरप्राप्ति की खुशी में भूल से ताला न लगाकर अपनी स्त्री को बुलाने चला गया। इतने में उस की स्त्री से मिलने एक पड़ोसिन आई, उस ने प्रधान दरवाजा खोला तो रास्ते के पास एक थैली पड़ी है। पड़ोसिन धीरे से थैली उठाकर अपने घर ले गई। जब दोनों दम्पती घर आये तो थैली को न पाकर पूर्ववत् अफसोस करने लगे।

चौथे दिन फिर सेठपुत्र जंगल में जाकर घास तथा लकड़ी काटने लगा। यह दशा देखकर लक्ष्मी देवी ने कर्मदेवता से कहा—इसे मैं तो सब कुछ दे चुकी, बार बार दिया, फिर भी यह कोरा ही रहा,

अच्छा, अब तुम कुछ देकर दे दो। यह सुनकर कर्म देवता ने सेठपुत्र को तौने का एक टका (दो पैसा) दिया। राते में पड़े टके को सेठपुत्र ने डटा लिया और कहने लगा कि आज भगवान ने हमको टका दिया है, सो टका ही सही, हमारा कोई कर्ज तो किसी पर आता ही नहीं है, इस से पहले तो प्रभु ने हमें बहुत कुछ दिया था, किंतु हमारे भाग्य ने साथ ही नहीं दिया। सेठ का लड़का टके को लेकर घर जा रहा था, राते में नदी में एक आदमी को मटली पकड़ते देखकर उस से उस ने एक पैते की मटली खरीदी, दूसरा पैसा मसाले और छोकने के सेल के बाले रख लिया। फिर सोचने लगा—'लकड़ी यहाँ राते में से चुनते चले।' वहाँ एक वृक्ष पर सूरी ढाली थी, उस को तोड़ने वृक्ष पर चढ़ा तो वहाँ एक चील का घोंसला नजर पड़ा, उस में हारसहित अपनी पगड़ी रखी थी, उसे उठाकर सुशी सुशी घर में आया और हर्ष के कारण की से जरा जैर से बोला—'सुलभयि। जो बस्तु सो गई थी वह मिल गई।' यह आवाज उस पक्षीसिन ने सुनी जो धैली उठाकर ले गई थी। उस ने सोचा, इस को धैली का हाल मालूम हो गया, 'घोर की दाढ़ी में तिनका' कहावत के अनुसार यह विचार करने लगी—'कहाँ यह राजपुत्रों से हमारे घर की मलाशी न करा दे, इस से अग्रजिष्ठ तो होगी ही, माथ में जेल भी जाना पड़ेगा। ऐसा सोचकर पक्षीसिन धीरे से अशरणीपूर्ण धैली घर के कोने में रख गई। ज्योंही सेठपुत्र उस तरफ गया तो देखा, धैली भी पड़ी है। वह विचारने लगा, मैं भी कैसा सुलभ हूँ, धैली तो यहाँ रख दी थी और धात्रता किया था दरबार के पास। उपर मटली खीरी गई तो उस के पेट में से वे लाल भी निकल आये। लक्ष्मी देवी के देने पर भी जो अपने पास नहीं रहने पाया था,

वह सब कर्मदेवता की कृपा से सब का सब मिल गया, ऐसा विचार करके वह आतन्द्रित हो गया।

भाव यह है कि मनुष्य के कर्म ही उसे सुख और दुःख देनेवाले हैं, कर्मानुसार सब सामग्री जुट जाती है। यदि कर्म अच्छे न हों तो मिली हुई वस्तु भी नष्ट हो जाती है, यदि रह भी गई तो अपने किसी काम में नहीं आने पाती। घर में अपने अधीन घृत, दुग्ध, अन्न, वस्त्र, बाहुन प्रभृति सभी सामग्री प्रस्तुत है, किंतु मन्द भाग्य होने के कारण कुछ भी काम नहीं आती। कर्महीनों को तो अपनी ली, जो अर्द्धजिनी, प्राणाधिरा आवि सब कुछ कहाती है, वह भी पराई हो जाती है। कर्मों को समुद्र गोपदीभूत (गाय के सुर जितना) हो जाता है, वे चाहें तो सुमेरु को फेंक मारकर उड़ा दें। जब कि सब कुछ कर्मानुसार होता है फिर भी मनुष्य कर्म न करे और फल की भारा करे तो उस की भारी भूल है। सुख सब चाहते हैं वह पुण्यों से मिलता है, पुण्य सत्कर्मों से उत्पन्न होते हैं। मनुष्य सत्कर्म तो करना न चाहे और सुख की इच्छा करे, यह चाहना उस की ऐसी है, जैसी कारण के बिना किसी कार्य की उत्पत्ति। 'कर्मप्रधान विश्व-करि राया' के कथनानुसार कर्म ही सब इष्टसिद्धियों का प्रधान साधन है। मनुष्य को किसी का सेवक देखकर ईर्ष्या नहीं होना चाहिए। यदि किसी को उस प्रकार के वैभव की आदृष्टा है तो पुण्य करे, याने पुण्यजनक कर्म करे—

पुण्यं कुरुष्व यदि तेषु तवास्ति वाञ्छा ।

पुण्यैर्विना नहि भवन्ति समीहितार्थाः ॥

इत्यादि वचनों में अर्जुन प्रभृति सत्तों ने ईर्ष्या कषायान्त-करणों को यही उपदेश दिया है, मानो पुण्यसाधन करने को समति दी है।

मनुष्य संपत्ति, मान, बढ़ाई आदिकों के पीछे भागा फिरता है, किंतु मृगमरीचिका या मृगजल की तरह हाथ पल्ले कुछ नहीं पड़ता। आदमी सांसारिक पदार्थों के पीछे जितना दौड़ेगा, वे उस से उतनी ही दूर भागेंगे।

भागती फिरती थो दुनियाँ

जब तलब करते थे हम।

अब जो नफरत हम ने की

बढ़ बेकार आने को है ॥

स्वामी रामबादशाह लोगों को कहा करते थे कि तुम लोग क्यों भोगसामग्री की तलाश में मारे मारे फिरते हो, कर्म करो फिर वह तुम्हारे पीछे भागी फिरेगी। जिस के पास जो नहीं है उसे वह तपोव्रत से पा सकता है, तपश्चर्या कर्मों के करने का नाम है।

क्या मनुष्य को कोई ऐसी विधि नहीं मालूम कि वह चाहे तो अष्टसिद्धि, नवनिधि उस के लिए हस्ता-मलकवत् हो जायँ और सब कुछ बिना गुलारे आप

से आप आ जाय ? हाँ, है क्यों नहीं, यह सब कर्म की महिमा से संपन्न हो सकता है। कर्म करो याने सत्कर्म संपादन करो फिर तुम अपने लिए तो नन्दन-कानन की रचना कर ही लोगे, किंतु इस दुनियाँ को भी स्वर्गधाम बना दोगे।

आज संसार कर्महीन हो गया, जगत् में अकर्मण्यता फैल गई। चाहिए तो यह कि चाहे ऊँचे हों, चाहे नीचे, सब स्वशक्त्यनुसार कर्मसंपादन अवश्य करें। पर आजकल तो कोई भी कर्मातुष्टान के कष्ट को इष्ट नहीं मानता। इसी का फल है 'दुर्मिद्वं मरणं भयम्।' लोगों ने अपने कर्म त्याग दिये। इसीसे प्रकृतिदेवी ने भी अपना काम करना छोड़ दिया या उस में अस्तव्यस्तता छा दी। इसी से नाना उल्हात उठकर देश तथा जाति को तबाह कर रहे हैं। किस कर्म का क्या फल है ? इस भेद को तो भगवान् ही जानता है पर मनुष्य भी कर्मफलों का कुछ कुछ भंदाजा लगा सकता है।

दुःख !

(ले०—कविराज श्री नन्दकिशोरजी जोशी 'किशोर' भिपगाचार्य)

मनपथिक ! म्लान है !! क्यों ? दुःख से ! कैसा दुःख !! जिसे तू दुःख कहता है, वह दुःख नहीं ! यह तो है वास्तविक सुख का संदेश ! और दुःख देखकर ही तो कर सकेगा अनुभव सुख का ! जैसे सुवर्ण सहता है ताप और बनता है पानी, तभी बन पाता है हृदय का हार ! भगवान् भास्कर की प्रचण्ड रश्मियों से संतप्त रेणुका के द्वारा विकल, थकित मानव ही अनुभव कर सकता है ठंडी छाया के सुख का ! जैव्य

का जितना आनन्द धाम से विकल पथिक उठा सकता है, उतना आनन्द पेड़ के नीचे रहनेवाला व्यक्ति नहीं। किसी पदार्थ का अभाव ही तो बताता है उस का वास्तविक मूल्य !

पथिक ! दुःख ही तो है विशेष हितकर सुख से ! पूछता है कैसे ? जैसे कड़वी औषध खाने के बाद ही मीठे पदार्थ खानेवाले को मिलता है आनन्द और मिटता है तन का ताप ! यदि निरन्तर दिन

प्रतिदिन मिलने रहें मोठे ही पदार्थ तो अवश्य ही होगी
पूया और अरुचि !

इसी प्रकार मूत्र से पीड़ित मानव ही तो कर
सकता है अनुभव भोजन का, उस को ही मिलता है
मोक्ष का स्थान और सुख, क्योंकि उस ने उठाया है
दुःख, सहकर मूत्र को ! किंतु इस दुःख से कुछ नहीं
होगी हानि ! कहता है क्यों ? अरे ! मूत्र के सहने
से जो होगा क्षणिक कष्ट, तो क्या न होगी आनन्दोद्दि
और न कटेंगे पाप ! क्योंकि, अवश्य ही होगी आनन्द
उद्दि और कटेंगे पाप ! फिर मिलेंगे परमपिता पर-
मात्मा ! तब दुःख कैसा ?

परिचर ! यह दुःख और सुख तो अपने पूर्व
वृत्त, सचित्त कर्मों का ही तो फल है और मान लेने
से ही तो होता है अनुभव सुख और दुःख का ! मन-
परिचर ! न घबरा, यह तो उस परमपिता परमात्मा
को देन है ! इस के द्वारा ही तू मानव कुछ कर
सकता है, यदि यह न होता तो कोई भी क्यों करता
याद ? जिस से मिल सके सुख और छोड़ना पड़े
संतार ! किसी ने सच कहा है—

सुख के माये सिद्ध पड़ो,

जो नाम हृदय से जाय ।

बलिहारी उस दुःख को,

जो पल पल नाम रदाय ॥

यह सुख किस काम का जिस से मूल जाय भगवान्

को, इस से तो यह दुःख ही अन्ता, जिस से भग-
वान् का हो सके चिन्तन और मिल सके सुख !
पिता मारता है अपने पुत्र को और देता है दुःख !
किंतु उस का प्र्येय वह धोत्रे ही होता है कि वह उस
को कर दे सदा के लिए दुःखित ! उस के दण्ड देने
का एकमात्र कारण यही तो है कि वह पुत्र अपनी
अज्ञानता के कारण न बन जाय सुपयामी ! लेकिन
कभी कभी पिता पुत्र को दण्ड भी तो नहीं देता !
क्योंकि वह जानता है कि वह दुष्ट करेगा मेरी आज्ञा
का उल्लङ्घन ! तब पिता उसे छोड़ देता है उस की
स्थिति पर ! वह जानता है कि मेरी इस ताड़ना से
वह सुपरोगा नहीं, बल्कि बनेगा दीठ और सदा के
लिए हो जायगा भ्रष्ट ! ठीक यही हाल है उस परम
पिता परमात्मा का, यह इसी प्रकार अपने भक्तों को
देता है दुःख ! जिस से वे न भूल सकें अपना कर्त्तव्य
और भा जाय अपने पय पर ! परंतु कभी कभी वह
पिता के समान उसे दुःख भी तो नहीं देता, बल्कि
अवज्ञाकारी पुत्र के समान उसे छोड़ देता है अपनी
स्थिति पर और उलट देता है धन, जन और अटूट
बैभव को, जिस से वह मायाजाल में फँसकर भूल
जाय अपना पय ! क्योंकि यह जानता है कि यह
दुष्ट करेगा मेरी अवहेलना !

मनपरिचर ! मूल जा दुःख सुख के भगवत् और
पलाचल सत्पय पर, कभी तो पटुच सहेगा निश्चित
लक्ष्य पर और मिटा सरेगा संसार का दुःख !



नामजाति का संकटमोचन

(सं०—श्री पुरुषोत्तमभाई भीखामाई देसाई)

विद्याधर एक देवगोत्रि का नाम है। किसी समय राजा जिमूतकेतु इन विद्याधरों के चक्रवर्ती स्वामी थे। उन्होंने नीतिपूर्वक प्रजा का ऐसा शासन किया कि उन का प्रताप तीनों लोकों में झलकने लगा और बड़े बड़े राजा उन के आश्रित हो गये। उन के एकमात्र पुत्र का नाम जीमूतवाहन था। यह राजपुत्र अत्यन्त विनीत, सकल कलाकुशल, दयारसपूर्ण और परोपकाररत था। अपने माता पिता की शुभ्रूपा में तो वह इतना रत रहता था कि उन की सेवा के सामने उसे राज्यसुख भी परम तुच्छ लगता था। पिता के आगे भूमि पर बैठना, उन के चरण दबाया, उन का भुक्षेप खाना और उन के सुख की सामग्री एकत्रित करना, इसी की राजकुमार अपना परमधर्म मानता था।

विरकाल तक राज्य करने पर जब महाराज जीमूतकेतु वृद्ध हुए, तब उन्होंने जीमूतवाहन को राज्य देने तथा रानी के साथ तपधर्मा के लिए वन जाने का हृदय निश्चय किया। परंतु राजकुमार ने राज्यग्रहण करना स्वीकार न किया। उसने कहा कि आप के साथ वन में रहकर मैं आप ही की सेवा करूँगा। बहुतों समझने पर भी राजकुमार ने न माना, तब राजा ने राज्यभार मन्त्रियों पर रख कर वन की राह ली। राजपुत्र भी उन के पीछे चलने लगा। निदान वे सब एक घन में रहने लगे। वहाँ जीमूतवाहन को अपने माता पिता की सेवा का अधिक अवसर मिलने लगा, जिस से उसे परम संतोष हुआ।

उस स्थान पर अन्य मुनि लोग भी रहते थे, इस से कुछ दिनों के उपरान्त इन लोगों को आवश्यकतामूलक फल, फूल, मूल मिलने में कुछ कठिनाता होने लगी तो जीमूतकेतु ने दूधरे स्थान पर जाने के लिए विचार किया। पिता का यह शुभ

मनोरथ जानकर जीमूतवाहन अपने साथी आश्रय पण्डित के साथ योग्य स्थान ढूँढने निकला। मार्ग में अनेक प्रकार के विप्रभ्रमालाप होते जाते थे, कभी राजकुमार की अलौकिक भितृमत्ति, कभी मिन्दनीय राज्यसुख की तुच्छता, कभी जीमूतकेतु के शत्रु मत्त के आक्रमण की घाती, कभी विचित्र वन की सोमा का वर्णन, कभी शीतल, मन्द मलय-मास्त की प्रशंसा, कभी महासुनियों के झोपड़ों का दृश्य; इस प्रकार देखते भालते और बातें करते वे दोनों एक ऐसे स्थान पर पहुँचे जिस की अनुपम रमणीयता ने उन के चित्त को आकर्षित कर लिया। यह स्थान मलय पर्वत का एक भाग था। वहाँ कुटी बनाने का निश्चय हुआ।

राजपुत्र जीमूतवाहन का दक्षिण नेत्र पहले ही से फटकर रहा था, अतएव वह कुछ शुभ फल पाने की प्रत्याशा कर रहा था। इतने में उस ने देखा कि कतिपय हरिण चुपचाप बैठे हुए हैं, कान तक नहीं हिलाते। जो घास सुख के भीतर है, वह वैसी ही दबो है, रोमन्य तक वे नहीं करते। अनुमान से राजकुमार तथा आश्रय ने जाना कि वे कोई शब्द सुन रहे हैं, ध्यान देकर सुनने पर वह शब्द उन्हें भी सुनाई देने लगा, ऐसा हृदयाछादकारक शब्द पहले उन्होंने कभी न सुना था। अब उन्हें यह जानने की इच्छा हुई कि यह शब्द कहाँ से आता है।

जिध दिशा से वह मनोरञ्जक ध्वनि आ रही थी उसी ओर कुछ दूर चलने पर एक देवता का मन्दिर देख पड़ा, जिस के भीतर एक स्त्री धोणा बजा रही थी, पहले तो उस दोनों ने उस के भीतर प्रवेश करना चाहा; परंतु यह सोचकर रुक गये कि कदाचित् वह स्त्री हमारे देखने योग्य न हो। बाहर खड़े होकर आद से उन्होंने सुना कि वह स्त्री

अपने पीठ में अपनी अभीष्टपत्ति का वरदान देनी से शोक रही है और उस की परिचारिका काँवर कहती है कि क्या हम मत करो, मगवती निष्कलना हैं, क्योंकि इतना पूजा पाठ करने पर भी जब तक प्रसन्न न हुई। जगन्मननी की निन्दा उस स्त्री की अच्छी न लगी, इस से उस ने परिचारिका से कहा कि मगवती पार्वती स्वप्न में सुनो मेरे हो अट्टहास कर दे गई हैं।

इन बातों को सुनकर राजकुमार और आनेय को ज्ञात हुआ कि वह कोई कुमारिका है अतएव इस के पास जाने में कोई शोक नहीं, वह खोचकर वे दोनों मन्दिर के द्वार से भीतर जाँकने लगे। जितना उस के बीजाग्रदान से वे हर्षित हुए वे उस से बातचीत उस का रूप धौन्दर्व देखने से प्रसुद्ध हुए। राजकुमार ने उस की बड़ी प्रशंसा की और उस के दर्शन से अपने को कृतार्थ माना।

परन्तु आनेय उसका लाल मग और योग्य अवसर पाकर राजकुमार को मन्दिर के भीतर कर दिया और कहा कि यही वर मगवती ने दिया है। उसे देखते ही कन्या के हृदयकाष्ठ से सुप्त गये, वह चित से हो वह चाहती थी कि राजकुमार को रक्षि हार पीछे, परन्तु सज्ज के बच वहाँ वह टहरना भी न चाहती थी। जब आनेय ने देखा कि वह में सज्ज हुआ चाहता है तब उस ने कुमारिका की निन्दा करते हुए कहा कि इस ने तो अतिथि का आदर भी न किया। इस पर वह किसी तरह वहाँ टहर गई परन्तु अन्त्यकाल हो में दो पहर हो गया, और एक क्षण उस स्नानमोजन करने के लिए पुत्र ने गया। राजपुत्र और आनेय भी वहाँ से निकलकर उस समय के कर्तव्य, ज्ञानादि करने लगे।

इस कुमारिका का नाम मलववती था, वह सिद्धों के राजा विशावसु की कन्या तथा मित्रावसु की बहन थी। विशावसु चाहते थे कि अपनी कन्या का विवाह जीमूतबाहन से करें, जब उन्होंने यह सुना कि विशावरराजपुत्र उसी

मलय पर्वत पर है तब अपने पुत्र मित्रावसु को लहे डूँडने के लिए भेजा।

इस मलववती और राजकुमार दोनों परस्पर एक दूसरे का विन्यस करते हुए किसी तरह अपने दिन बिताने लगे। मलववती का हृदयवर्णन परि बरि इतना बड़ा कि वह बादलमालाह में बादलमालाह पर बैठकर अपनी भासा की सुखी करने के लिए चल पड़ी। मार्ग में वह विविध स्त्री कभी इस जाने लगती कभी उधर, परन्तु उस की परिचारिका चतुरिध ने किसी प्रकार उसे बाधित स्थान तक पहुँचाया। किन्तु चन्द्रकान्तशिखर लहे उल्ल भावम हुई, मलवबाहन के अन्दरे उसे और भी संतप्त करने लगे, चन्द्रनख लहे अमि वा प्रतीत होने लगा।

अंशोक्तवरा राजपुत्र भी उसी लतामंडप की ओर जा रहा था कि इन कन्यकाओं को मादाम हो गया। उन्हें आँठे देख वे वहाँ से हट गई और पास ही एक जगह छिप रही। इनमें से दोनों बहों पहुँच गये और दिश पर बैठकर समय बतने लगे। परन्तु विशिष्ट नवी का समय भी कटिगता से कटता है इस लिए जीमूतबाहन ने पर्वत की चोटी से गेरु मंगाकर कोई चित्र खीचना आरम्भ किया।

इतने में मलववती का माई मित्रावसु भी जीमूतबाहन की डूँडते हुए बरी राजपुत्र के पास पहुँच गया। जागत स्वागत होने के अनन्तर उस ने कहा— राजकुमार। मेरे पिता की यह इच्छा है कि मलववती को साथ स्वीकार लीजिए। परन्तु कुमार को अभी तक यह न ज्ञात था कि मलववती ही हमारा पूर्व परिचित कुमारिका है, इस कारण उस ने विवाह स्वीकार न किया और कह दिया कि मेरा मन किसी दूसरी स्त्री पर अतुरक है।

राजपुत्र के सखीद्वार का बचन सुनकर मित्रावसु अपने पिता के पास लौट गया किन्तु मलववती ने सोचा कि यदि अनिलवित वर नहीं मिलता तो खीने ही से क्या स्थिति यह खोचकर उस ने चतुरिध को किसी बहाने बाहर भेज दिया,

तथा एक वासन्ती लता तोड़ी और उस से अपने गले में पसी लगाने लगी। परंतु चतुरिका वास्तव में चतुर थी, वह बाहर खड़ी हुई यह सब देख रही थी। उस ने क्षत जीमूत-वाहन को पुकारा कि आप आकर इन का छुटकारा कीजिए।

चतुरिका का आर्तशब्द सुनते ही वे दोनों दौड़ पड़े। राजपुत्र ने उस तपस्विनी के गले से पाश दूर किया तथा इस बात का विश्वास दिलाने के लिए कि यथार्थ में मैं तुझ को चाहता हूँ, राजपुत्र ने शिलापट पर खींची हुई चित्र-रचना मलयवती को दिखाई, जिसे देखकर राजकुमार की निपुणता को सब लोग सराहने लगे। ज्यों ही राजपुत्र ने पाशमोचन के उद्योग में मलयवती का हाथ पकड़ा त्यों ही आग्नेय ने कहा—‘वर कन्या का कल्याण हो।’

वे लोग इधर हर्षमग्न हो रहे थे कि एक बेटी ने आकर संदेश दिया कि महाराज जीमूतकेतु ने मलयवती का विवाह अपने पुत्र के साथ करना स्वीकार कर लिया है।

विवाह का निश्चय हो जाने पर भूमधाम से सब प्रबन्ध होने लगा, राजमहल, बाटिका, मार्ग आदि विभूषित किये गये। घर तथा कन्या को ओर से विवाहपर और सिद्ध-गणों ने आनन्दपूर्वक विवाहकार्य समारोह से सुसंपन्न किया।

विवाह हो जाने पर मलयवती अपनी ससुराल भेज दी गई। मलयवती की माता ने आज्ञा दी कि दस दिन तक साल रत्न के नवीन कपड़े जीमूतवाहन के लिए यहाँ से भेजे जायें।

एक दिन दोनों राजकुमार समुद्र के किनारे प्यारभाषा देखने गये। वहाँ जीमूतवाहन ने देखा कि पर्वतशिखरों के समान स्वेत वर्ण की ऊँची ऊँची चोटियाँ खड़ी हैं। उस ने धोया कि ये मलयपर्वत के शिखर हैं, जिन पर शरद् ऋतु के स्वच्छ मेघ छाये हुए हैं। परंतु मित्रावसु ने दत्त-लाया कि गढ़ उन नागों की हड्डियों की डेरियाँ हैं जिन को प्रति दिन एक एक करके पक्षिराज गरुड खा गये हैं। पहले गरुडजी नागलोक में घुसकर प्रति दिन एक नाग का भक्षण करते थे। परंतु उन के शब्द को सुनकर चट्टानों नाग-

पनिधियों के गर्म गिर जाते थे और छोटे छोटे नागों के बच्चे मारे भय के प्राणत्याग कर देते थे। इस लिए नागराज वासुकि ने गरुड से कहा कि हम प्रति दिन एक नाग आप की सेवा में भेंट किया करेंगे, आप नागलोक में आना छोड़ दें, यह बात गरुडजी ने मान ली। तब से प्रतिदिन एक नाग, यधसूचक लाल कपड़े पहनकर बन्धस्थान में बैठा रहता है और गरुडजी आकर उसे खा जाते हैं। यह नागों की ऐसी ही हड्डियों का ढेर है जो पर्वतशिखरों के समान जान पड़ता है।

गरुडजी की निर्दयता और नागों का वृत्तान्त सुनकर जीमूतवाहन को बड़ा दुःख हुआ, वह सोचने लगा कि किस प्रकार इस कठिन दुःख से नागों को छुड़ाऊँ। इसी समय सिद्धराज विश्वावसु ने अपने पुत्र मित्रावसु को प्रतीहार के द्वारा बुला भेजा। उस के चले जाने पर जीमूतवाहन को अपने कर्तव्य को सोचने का अच्छा अवसर मिल गया।

वह उपाय सोच ही रहा था कि एक ली के विलाप का शब्द सुनाई दिया। मोड़ी ही देर में वह ली अपने पुत्र को प्रेम से चूमती हुई उस के भावी विनाश पर अत्यन्त दुःख प्रकट करती दिखाई दी। वह एक नागपत्नी थी उस का पुत्र शङ्खचूट गरुडजी की भेंट के लिए भेजा गया था। ज्यों ज्यों गरुडजी के आने का समय निकट आता जाता, त्यों त्यों वह नागपुत्र अपनी माता को संसार की अनित्यता समझाता था। परंतु उस एक पुत्रवाली वृद्धा को संतोष कैसे हो? वह बारंबार विलाप करती और शिर पटकती थी।

जीमूतवाहन पेश की आज्ञा से यह सब देख रहा था, अब उस से न रहा गया, वह क्षत आकर वहाँ खड़ा हो गया और उन से लाख वर मांगते हुए बोला कि मैं स्वयं अपना शरीर गरुडजी को अर्पण करूँगा और शङ्खचूट के प्राण बचाऊँगा, परंतु यह बात न तो शङ्खचूट को अच्छी लगी और न उस की माता ही को। इस लिए उनकी

ने हाल ब्रह्म देना स्वीकार न किया। गडगावमन का समय बहुत निकट आ गया था इस से राजकुमार साल ब्रह्म पदमकर दक्षिण गोकर्णजी की प्रदक्षिणा करने चला गया।

इस कन्तुकी नियत समय पर रानी के भेजे हुए साल ब्रह्म केकर जीमूतवाहन के पास आया। इस वक्त्रों को पाकर वह आनन्द प्रपन्न हुआ और रानी की प्रणाम कहकर कन्तुकी को स्वीकृत ही बोटा दिया। फिर गया था स्वीकृत ही हाल ब्रह्म पदमकर वह ब्रह्मपतिता पर पहुँच गया और एक श्रापी के श्राप बचाने के उद्योग में अपने माग्य को चला देने लगा।

माता को धमकाने बुझाने में राजकुमार को कुछ विफल हो गया, इस परदृष्टी के आगमन से सुपुत्र में विवशता लट्ठे उठने लगी, प्रत्यक्षाल के समान पवन चलने लगा और सब क्षीन जन्तु म्याकुल होकर इस उधर भागने लगे। निदान गडगाव उस शिखर पर पहुँच गये और जीमूतवाहन को अपनी ओर से बचकर मलयगड पर जा बैठे सब राजकुमार को विश्वास हो गया कि राजकुमार की प्राप्तरत्ना में अब कोई बाधा न होगी। अब राजपुत्र ईश्वर से यह प्रार्थना करने लगा कि इससे जन्म में भी उस का शरीर इसी प्रकार परमार्थ में रहे।

परापकार की इस परावृत्ता को देखकर स्वर्गलोक से देवताओं ने जीमूतवाहन पर पुण्यवृत्ति की और दुःखमित्री बजाई, परन्तु गडगाव को भ्रम हुआ कि मेरे नेत्र से कलश उड़ित गये हैं, इस कारण उन के कृत गिर रहे हैं। दुःखमित्री को उन्होंने मेघपति धमका।

इस जीमूतवाहन के लौटने में देर हुई तो महाराज विशाखपुत्र ने सुन्दर मायक प्रीतीहार को महाराज जीमूतकेतु के यहाँ यह देखने के लिए भेजा कि राजपुत्र क्यों तो नहीं है। जीमूतकेतु का वाचनन पहले ही से फटकर रहा था इस से वे महापणित थे। जब सुन्दर ने राजपुत्र के लपटा हो जाने का ज्ञान्त सुनाया सब ने और भी अधिक

हो उठे। उन की बड़ा रानी तथा मलयवती को भी बड़ा शोक हुआ। अभी सुन्दर वहाँ से लौटा भी न था कि एक लाल लाल ब्रह्म सा आकाश से निरता दिवाई दिवा और क्षणमात्र में महाराज के पैरों पर आ पड़ा। यह बस्तु एक मांस से लिपटा हुई एक चूनामणि थी, जिसे देखते ही सब को संदेह हुआ कि वह जीमूतवाहन की चूनामणि तो नहीं। सुन्दर ने समझाया कि यहाँ रोज माग्य भरे जाते हैं। तन्हीं में से यह किसी की चूनामणि होगी। इस लिए बिना अच्छी प्रकार जाने वृद्धे शोक न करना चाहिए, यह कहकर प्रतीहार तो चला गया। इतने में इसर से एक ब्रह्म पदने हुए राजकुमार गोकर्णजी के दर्शन करते बालशिला के पास गया, तो उस ने धाना कि मेरे आने में देरी हुई इस से जीमूतवाहन ने मेरे रक्षणार्थ अपना शरीर पश्चिराज की कर्पित कर दिया।

विश्वधरराजपुत्र को इस अनुपम कृपा का स्मरण कर राजकुमार आनन्द विवश हो उठा। उस ने चाटा कि जीमूतवाहन के शरीर से गिरे हुए रक्तचिह्नों को देखते देखते मैं गडगाव के पास पहुँच जाऊँ और किसी प्रकार अपने को भी उन की कर्पण कर दूँ। राजकुमार को इस दशा में जते देखकर राजा रानी और मलयवती आदि को विश्वास हो गया कि यह इसी की चूनामणि है, जिसे किसी मांस के लोभी पक्षी ने शिर से निकाल लिया है। परन्तु जब राजकुमार से उन लोगों ने हाल पूछा तब उस ने अपना सचा ज्ञान्त गदमद स्वर के सह कहा।

राजकुमार यह नहीं जानना था कि यह महारूपक उसी परम उदार राजपुत्र क विता है तथा यह बड़ा और सुवर्ती उस की माता और पत्नी हैं।

यह समझकर सुनते ही 'हा पुत्र हा दत्त, हा बन्ध, हा प्राणनाथ' आदि शिवाय के शब्द निकलने लगे। जब तो राजकुमार पर यह दृष्टी आपत्ति आ पड़ी। उस ने उन दुःखित जनो को बहुत कुछ समझाया बुझाया। अन्त

में यह निश्चय हुआ कि गहड़जी को खोजते हुए साथ में अग्नि लेते चलो, यदि विद्याधरराजपुत्र जानकर गहड़जी राजपुत्र को छोड़ दें तो अच्छा है। नही तो इसी अग्नि से चिता जलाकर सब लोग उस में कूद पड़े और शरीर को भस्म कर दो।

शङ्खचूड़ आगे दौड़ा हुआ उस स्थान पर पहुँचा जहाँ गहड़जी बैठे हुए इस बात पर विस्मय कर रहे थे कि इस पुरुष को अपना शरीर अर्पित कर देने पर इतना आनन्द क्यों है? उन्होंने पूछा कि तुम कौन हो? तो उत्तर मिला कि यह जानने का समय नहीं है; तुम अपना पेट भर लो।

इसी समय शङ्खचूड़ ने पुकारा—“गहड़जी! इन्हें मत खाना, ये विद्याधरराजपुत्र जीमूतवाहन हैं, जिन्होंने दया से मेरे बदले अपना शरीर आप को अर्पण कर दिया है। सुते खा लो, मैं नागपुत्र हूँ, मैं ही आप के लिए भेजा गया हूँ।” यह सुनते ही गहड़जी ने अपने इस अनुचित कर्म के प्रायश्चित्त में अपने शरीर को भस्म कर देना चाहा और जीमूतवाहन आदि को अपनी ओर आते देखकर उन से अग्नि लेने के लिए ठहर गये। जब वे लोग निश्चिन्त हो गये तब जीमूतवाहन के कहने से शङ्खचूड़ ने उसे कपड़े से ढककर बिठा दिया। गहड़जी ने दूर ही से—“हा पुत्र, हा जीमूतवाहन”—आदि विलाप सुनकर जान लिया कि ये लोग इस राजपुत्र के माता पिता आदि हैं, उन्होंने उठकर समुद्र के घटवानल में जलना चाहा, परंतु जीमूतवाहन ने कहा कि आप के पाप का यह प्रायश्चित्त नहीं हो सकता।

माता पिता को देगकर परम धीर राजपुत्र जीमूतवाहन ने उठकर प्रणाम करने का उद्योग किया। परंतु शरीर में रक्त न रहने से उठने की शक्ति न थी। इस से तुरंत ही मृष्टि होकर वह गिर पड़ा, पुत्र भी यह दृश्य देखकर राजा और रानी भी मृष्टि हो गये। परंतु गहड़जी ने अपनी धर्म्यता के पक्ष से राजपुत्र को खोज लिया और राजा आदि को भी शङ्खचूड़ ने जगया।

जीमूतवाहन ने गहड़ से कहा कि आप के पाप का प्रायश्चित्त यह है कि आज से कदापि द्वितीयांश का आप

बच न करें! गहड़जी ने इसे मान लिया, परंतु राजपुत्र का समय निकट आ गया, आँखें बन्द होने लगीं, मात्र अत्यन्त शिथिल हो गया, बोलने का भी सामर्थ्य न रहा, तब वह अपने माता पिता को अन्तिम प्रणाम करके निश्चेष्ट हो गया।

उस समय के शोक का वर्णन कठिन ही नहीं, वरन् अत्यंतमात्र है। वृद्ध क्षत्रिया में ऐसे आशापालक नव-विवाहित एकमात्र पुत्र का शोक अकथनीय है। परिणाम यह हुआ कि राजा, रानी, मलयवती और शङ्खचूड़ ने शरीर-त्याग के विचार से चिता में अग्नि लगाकर प्रवेश करने की चेष्टा की। इतने में भगवती गौरी प्रकट हो गईं और उन सब को ऐसे साहस के कर्म से रोका। उन्होंने अपने कम-जबलु जल के सेक से जीमूतवाहन को जिला दिया।

इसी समय विना मेघों के आकाश से वृष्टि होने लगी, राय को विस्मित देखकर गौरी ने कहा कि मारे पक्षात्ताप के गहड़जी ने देवलोक से अमृत की वर्षा की है। इस अमृत-वर्षा के प्रभाव से चिरकाल से मारे हुए नाग, जिन की हड्डियाँ पर्वत के समान एकत्र हैं, जीवित हो होकर और पहले से भी अधिक घट पाकर समुद्र में घुसने लगे।

इसी शुभ अवसर पर भगवती गौरी ने अपने कमण्डलु के पवित्र जल से जीमूतवाहन का विद्याधरों के चक्रवर्तिव पद पर अभिषेक किया। फिर चार दौतावाला हाथी और श्यामकर्ण घोड़ा तथा रत्नरूप मलयवती को देकर उन्होंने अधिक प्रसन्नता प्रकट की। अन्य वरदान माँगने के लिए भगवती ने आज्ञा दी तो जीमूतवाहन ने कहा:—यदि आप प्रसन्न हैं तो समय पर उत्तम वृष्टि हुआ करे; धृष्ट्य धन धान्य से परिपूर्ण रहे; मनुष्य प्रतिदिन आपस में वैराभाव छोड़कर पुण्य कार्य करें और अपने यान्त्रिकों तथा मित्रों को गोदी का सुख प्राप्त करें, यह, यही वर दीजिए।

तब से नाग आनन्द से रहने लगे। जीमूतवाहन ने अपनी इच्छा के अनुसार वर पाकर चिरञ्जल तक विद्याधरों का चक्रवर्तिव भोग किया। भगवान् करें कि उक्त वरदान आज फिर से चपलीभूत हो।

भवचारिधि के पार

(प्रे०—बी युगलकिशोर जी)

एक बार यात्राप्रसंग में बनशोभा के लुभावने हररय द्वाय आमविभोर होकर बहुत दूर तक निर्जन में निकल जाने पर सौभाग्यवश एक पवित्र आमा के दर्शन का सौभाग्य हो गया। फिर तो वहाँ के प्रभावपूर्ण प्रदेश और सत्संग के मनोरम ने मुझे अनेक बार उबर जाने का अभ्यासी बना दिया। श्रमदा कुछ घनिष्ठता बढ़ जाने पर मेरे अनुरोध को मानते हुए एक बार इस पावन विभूति ने अपने विगत जीवन की मॉकी इस प्रकार कराई "..... भ्रमण से मुझे शान्ति और अन्तान्ति दोनों ही प्राप्त हुईं। जिस प्रकार अंधेरे और उजाले का साथ है पानी व कीचड़ का संन्य है इसी प्रकार से गुरु दुःख और पाप पुण्य का कौतूहल देखने में आया। मैंने तीर्थ स्थानों में पुण्य के साथ ही राध पाप भी देखा, परन्तु मुझे कुछ आश्चर्य न हुआ। मन में विचार आया कि यदि अनलाइन वालों को जानते हुए सहन करती है, तो उस का कोई कारण भी होगा। सायरा में उत्तर मिला कि ये भनुर्यजीवन की कमजोरियाँ हैं। बान्त्व में बात यह है कि जैसे बिना अन्धकार के प्रकाश का बोध होना कठिन है, वसी प्रकार बिना पाप के पुण्य और बिना पुण्य के पाप का ज्ञान होना कठिन होता है। ये समान के दो अङ्ग हैं और न्यून या अधिक दशा में प्रत्येक काल में अवश्य वर्तमान रहेंगे। तो फिर इन बातों का प्रतीकार क्या हो सकता है? उत्तर है कि अपने व्यक्तिगत जीवन को शुद्ध बनाने और ईश्वर से प्राणोत्पन्न की भलाई के लिए प्रार्थना करो। वसिष्ठ, व्यास, शुद्ध और कर्षिष्ठ की शिक्षाओं का सायरा यही है कि आन्तरप्रार्थना या जप एक

मदान् प्रभावशाली वस्तु है और वह सत्सार के दुखों को आमूल नाश करने की शक्ति रखता है।

यह विचार निश्चित करके मैं इस सनकोशी नदी के किनारे आया, यहाँ सनकोशी का परिचय कराना आवश्यक है। हिमालय पर्वतश्रेणी के अन्तर्गत प्रसिद्ध गौरीसंकर (कैलाश) पहाड़ से सनकोशी नामक नदी निकलकर हिमालय प्रान्त के कितने ही भागों को वेधती हुई नेपाल राज्य की सुन्दरता बढ़ाती है। उस के किनारे कई छोटे छोटे सुन्दर मैदान हिमालय पर मुशोभित हैं। इन मैदानों में वहाँ के निवासी गढ़ेरिये कभी कभी अपनी भेड़ चरारियों को चराने के लिए ले जाते हैं, यहाँ पर प्रकृति की सुन्दरता बहुत भारी मालूम होती है, श्रुतों की सरलता और जगली हिसक पशुओं का अभाव, इस स्थान की उपयोगिता बढ़ाने में सहायक होते हैं। मेरी इच्छा शेष जीवन को किसी एकान्त स्थान में बिताने की थी, इस निर्यायानुसार मैं घूमते घूमते हिमालय पहाड़ के इसी प्रान्त में आया, जहाँ सनकोशी नदी के किनारे वषण की भाँति दूरे भरे मैदान स्थित हैं। सरिता के निकट मैदान के एक किनारे मैं ने अपनी पर्णकुटी बनाई।

कुटी के आसपास मनुष्य जीवन की सभी साधारण आवश्यकता पूर्ण करनेवाली वस्तुएँ वर्तमान थीं। अच्छे अच्छे फल फूलों के वृक्ष थे, सरिता का मुहा बना कलकल नाद सभा पक्षियों का सुन्दर कलकूजन होता रहता था। घटे दो घटे के लिए गढ़ेरियों तथा अन्य जगली जाति के लोगों से बातचीत हो जाती थी, जो अपने सरल जीवन और प्रेम से मेरे हृदय पर

बड़ा प्रभाव रखते थे। धर्मचर्चा में अधिक समय व्यतीत होता था। इस रीति से मुझे इस स्थान में बड़ी शान्ति मिली, मानो कि मैं कैलाश लोक में पहुँच गया होऊँ। अन्य कार्यों से जो समय बच जाता उस में मैं गीता इत्यादि अपने धार्मिक ग्रन्थों को पढ़ा करता और ईश्वरकृत सृष्टिनिर्माणविषय पर सोचा करता था। शान्ति का अपूर्व विश्राम मिलने के कारण मस्तकीय शक्तियों का अद्भुत विकास हुआ। प्रभु की प्रार्थना में बड़ा आनन्द आता, जीवन का एक नया ही अर्थ प्रतीत होने लगता।

मेरी कुटी, जो एक प्रकार से बहुत सुरक्षित दशा में है, उस के भीतर आजकल सूरे पत्ते, कमलमृणाल, कमंडलु तथा गीता इत्यादि कुछ धार्मिक ग्रन्थ रहते हैं। इस के बाहर नदी है और शेष दिशा में हराभरा मैदान, कुछ हरिण और गाँव मेरे ऐसे प्रेमी बन गये हैं कि दिन रात पाठ्य पशुओं की तरह यहीं कुटी के आस-

पास पड़े रहते हैं। कुछ पक्षी भी परिचित मित्र की भाँति निरन्तर अपना दर्शन दिया करते हैं। इस प्रकार ज्ञान, ध्यान तथा प्रार्थना का आनन्द लेते हुए और प्राणीमात्र के हित के लिए ईशप्रार्थना करते हुए बहुत साल आते और चले जाते हैं।

आज वैशाख शुद्ध पूर्णिमा है, रात्रि के लगभग नौ बजे हैं, चन्द्रकिरण चारों ओर फैलकर रात्रि की सुन्दरता बढ़ा रही हैं, शीतल मन्द वायु बह रही है, चारों ओर शान्ति का साम्राज्य छाया हुआ है। इन कर्म-कलापों में पूर्णतम पुरुषोत्तम प्रभु की धौकी भाँकी का चमत्कार उद्घोष हो रहा है। अब मैं पूर्यन्ताम हूँ, इस चर्चा के अलावा त्रैलोक्य का स्वामित्व भी अनपेक्षित है।”

उस समय मैं अपने को अमृतस्नात सा समझता हुआ उस महातुभाव से विदा हुआ।

गीता-गुण-गान

मन हरपावत भगवद्गीता ।

एक एक अक्षर ब्रह्मरूप है, प्रगटत रहस्य पुनीता ।

पढ़त सुगत जो ध्यान लगाकर, लहि शुभ फल मनचीता ॥ १ ॥

सुगम श्रेष्ठ सिद्धान्त मोक्ष प्रद, विजयी हो भय भीता ।

तृप्ति न होय अध्यात्म गंग से, सुधि बिसराइ अतीता ॥ २ ॥

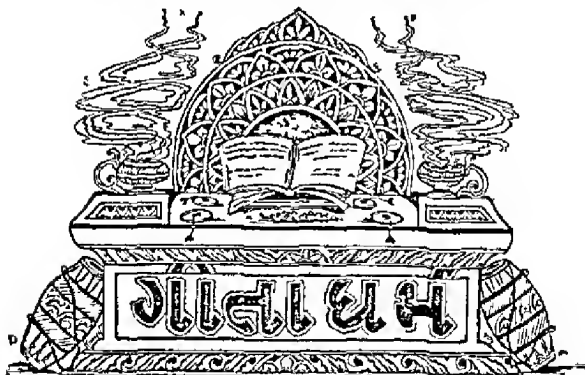
बेद शास्त्र का सार शूद्र तर, जिमि पय विच नवनीता ।

ज्ञानामृत दुख शोक नसावे, भूख प्यास तप शीता ॥ ३ ॥

ॐ तद् सत् ब्रह्माण्ड व्यापिनी, संत भक्त प्रिय भीता ।

श्रीकृष्ण “गोविंद” मुख वाणी, ब्रह्मशक्ति यम जीता ॥ ४ ॥

સંસ્થાપક.—શ્રીમાપરમહંસ, પરિમાજઠાચાર્ય, જાહનિટ, લોકસંમદી, ગીતાબ્યાસ,
 શ્રી ૧૦૮ જમદગુર, મહામંડલેશ્વર, સ્વામી શ્રી સિદ્ધાનંદજી, મહારાજ.



સર્વમાન પરિત્યજ્ય મામેકં શરણં મયઃ ; અહ ત્વા સર્વપાપેરથો મોક્ષયિષ્યામિ મા શુચઃ.

વર્ગ: ૭ મું }

દાશી ઑગસ્ટ ૧૯૪૨:

{ અંક ૮ મા

મુખ શોભા

દેશુ સખી હરિ બંદન ઇન્દ્ર પર ;
 ચિત્રન કૃદિય અવક અવધી હવિ કદિ ન જામ સોભા અનૂપ બર .
 બાહ્યભૂર્ગુણિનિકર મનહુ મિલિ રહી પરિ રસ જાનિ મુખાકર ;
 તજિ ન સકલિ નહિ કરલિ પાન કહો કારન કૌન બિચારિ હરલિ હર .
 અરુન બનજ્યોત્યન કપિલ મુખ મુતિમણિ ફેડલ અતિ સુર ;
 મનહુ ચિત્ર નિજ મુતલિ મનાવન પામે જીગવ બસીઠ વારિચર .
 નનનન મુખ હી મુંદરતા કદિ ન સકત મુતિ શેષ હિમાવર ;
 'મુવસિદાસ' ત્રેયેકલ વિમોહન કષ કષ નર ત્રિવિધ શૂલ હર .

—શ્રીરામી શ્રી તુલસીદાસજી.

સ્વસ્વરૂપાનંદ

લેખક:—ધર્મધુરંધર શેઠ રમણલાલ લક્ષ્મીભાઈ.

આ જગત શું છે ? આ જગત શામાંથી ઉત્પન્ન થયું છે ? આ જગત શામાં લય થવાનું છે ? હું કેણું છું ? મારો દેહ શું વસ્તુ છે ? દેહમાં રહેનારો ચેતન શું છે ? આ જ્યારે મનુષ્ય એકાન્તમાં બેસી વિચાર કરે છે ત્યારે કંઈક અંતઃકરણને શાન્તિનો વિષય છે એમ માન થાય છે. જગતમાં જ્યાં જુઓ ત્યાં પ્રપંચનો ભાસ થાય છે ત્યારે દરેક ઠેકાણે નજર રાખતાં એમ માલમ પડે છે કે દરેક વસ્તુ જુદી છે, તેનો નાશ છે. એકેયમાં સત વસ્તુ ભારતી નથી ત્યારે એકેક વસ્તુ વિચારતાં તપાસતાં એમ માલમ પડે છે કે દરેક વસ્તુ અસત્ય અને જુદી છે. ત્યારે સત્ય વસ્તુ કઈ ? આ વસ્તુ જ્યારે વિચારવા બેસીએ છીએ ત્યારે અંતઃકરણ ઉપર કંઈક જુદોજ ભાસ થાય છે. જીવનની લેહ લુહિ શાન્ત પડે છે. સર્વત્ર કંઈક જુદોજ ભાસ થાય છે.

ધ્વન્દ્વો ઉપર કાણુ મેળવતો જાય છે. ક્રોધ, લોભ, અહંકારનો ધીમે ધીમે ત્યાગ કરતો જાય છે તેમ તેમ અંતઃકરણમાં કંઈક નવીન વસ્તુની પ્રાપ્તિ થતી હોય છે તેમ લાગતુંજ લાય છે. આમ જીવાત્મા સર્વ કામના તણ નિરુપ્તી થઈ વિચરે છે, અહંતા મમતાનો ત્યાગ કરતો જાય છે. મીઠ્યા કામનાથી પર રહે છે. તુચ્છ વિષયોના ક્ષણિક આનંદ તે ચાહતો નથી, દેહાભિમાનની નિવૃત્તિ થાય છે, દેહમાં અહંબુદ્ધિ થતી નથી. નાના પ્રકારના વિષય પદાર્થો તેને તુચ્છ ભાસે છે. હું પોતેજ બ્રહ્મ છું. એ સંબંધમાં પોતાને સંદેહ યા પ્રમ લાગતો નથી. મીઠ્યા તત્ત્વનું જ્ઞાન યતોજ જ્ઞાનાગ્નિ પ્રદીપ્ત થાય છે.

આ જગતમાં સર્વે જ્યાંથી પ્રગટ થાય છે અને જેમાં સર્વે લય થાય છે તેનું જ્ઞાન યતોજ અંતરમાં સર્વાત્મ ભાવનો ઉદય થાય છે.

હું આત્મા છું બ્રહ્મ સ્વરૂપ છું. દ્રશ્ય હું તેમાંથી મારી ઉત્પત્તિ છે અને તેમાં શુદ્ધ ચેતન સ્વરૂપમાંજ લય થવાનો છું અને એ જ્ઞાન પ્રાપ્ત થયું. એનું નિત્ય મનન કરવું અને એજ ભગવદ વિચારણા ઉપર ગતિવૃત્તિ ઠેળવવાથી સ્વ સ્વરૂપનો અખંડીત આનંદ યાને પરમાનંદની પ્રાપ્તિ થાય છે.

મારો દેહ અને હું આત્મા એ બન્ને વસ્તુ તદન જુદી છે એ જ્યારે આત્મજ્ઞાન થાય છે ત્યારે જીવન મરણના ફેરામાંથી મુક્ત થાય છે અને પરમ પદને પામે છે. અને અનિત્ય સુખને કાયમના માટે તણ દઈ ને નિત્ય સુખનો પરમાનંદ અનુભવે છે. એમ ઇતિ અરુ.

મુમુક્ષાનું સમર્થન

(લે.—શ્રીમત્ પરમહંસ પરિમાજકાર્યાર્થે બ્રહ્મોનિષ્ઠ લોકસંપ્રદી ગીતાબ્યાસ જગદ્ગુરુ
મહાશંકરેશ્વર શ્રી ૧૦૮ સ્વામી શ્રી નિધાનકલ મહારાજ)

વેદાન્તશ્રવણના અધિકારીને જે સાધન ચતુષ્ટયની આવશ્યકતા છે તેમાં મુમુક્ષુત્વ ખાસ અપરિહાર્ય છે. અર્થાત્ “મારો પુનર્જન્મ ન થાય” એવી તેને વિષ્ણુ અભિલાષા હોવી જોઈએ.

હવે પ્રશ્ન એ છે કે કાંઈને સંસાર સાથે શ્રેય શા માટે હોય ? જોવામાં આવે છે કે સર્વ કોઈ અતિ ઉત્સાહપૂર્વક ગૃહસ્થી કરે છે. સૌને નિઃસર્જીતઃ મુખની ઇચ્છા રહે છે અને સર્વે જીવ સંસારમાં કેટલાક પ્રકારનાં મુખ, પૂરાં પૂરાં નહિં તેા થોડા ઘણા પ્રમાણમાં તેા જરૂર પ્રાપ્ત કરેજ છે. તેની સાથે સાથે થોડું ધર્મ દુઃખ પણ જરૂર મળેલું હોય છે, એ વાતમાં આનાકાની કરી શકાય નહીં. પરંતુ મુખ્ય સવાલ એ છે કે સંસારમાં મુખ છે કે નહીં એનો ઉત્તર તેા અસ્તિત્વક્ષાંઠજ આપવામાં આવશે, નકારાત્મક કહિ પણ નહીં. જીવ-ભાત્રની કમંમા પ્રવૃત્તિ અહર્નિશ જોવામાં આવે છે, અને—

‘પ્રયોજનમનુદિશ્ય ન મન્દોઽપિ પ્રવર્તતે’

વગર મતલબનું કામ કરવામાં કેઈ મહામુખ પણ પ્રવૃત્ત થતો નથી એ તો નકીલ છે. એટલે કે એનું પ્રયોજન મુખ પ્રાપ્તિ સિવાય બીજું કોઈ પણ હોતું નથી એ વાત પણ તર્કન સત્યજ છે. ગીતામાં કર્મ સિદ્ધિના જે હેતુપચક કહ્યો છે તેમાં એકા અર્થાત મુખેચ્છા પણ છે. ત્યારે તો એ અનુમાન અસાધ્ય છે કે જીવોની પ્રવૃત્તિ સર્જન અર્થાત મુખેત્પાદક હોવાથીજ મુખની ઇચ્છા આદિ

કાળથી ચાલુ છે અને અનન્ત કાળ પર્યંત ચાલુ રહેશે. ગીતામાં ત્રણ પ્રકારનાં મુખ વર્ણવવામાં આવ્યાં છે. તામસ હોય કે રાજસ હોય મુખ મુખજ છે અને તેથી ઉપાદેય છે. અનિત્ય હોય, થોડું હોય, દુઃખ મિશ્રિત હોય, કેવુંય હોય, દુનિયામાં મુખ નામનો પદાર્થ છે અવશ્ય, અને તેજ તેા પુરુષાર્થ છે. ત્યારે દુનિયાથી વેરાગ્ય શા માટે થાય અને મનુષ્ય મુમુક્ષુ કેવી રીતે થાય ?

એવો પૂર્વપક્ષ કરવામાં આવે તો સમાધાન એ છે કે મનુષ્ય જેને મુખ સમજે છે તે વાસ્તવમાં મુખ નથી, મુખાભાસ છે. આ વિષયમાં યોગદર્શનકારના સિદ્ધાન્ત આ પ્રમાણેનો છે—

પરિણમતાપસંસ્કારદુઃસૈર્ગવૃત્તિ-

વિરોધાચ દુઃખમેવ સર્વં વિવેકિન ।

—ભાષ્યવાર, ભૂ ૨૧

એમાં “વિવેકિન” પદ મુદાર્ત છે. પ્રકૃતિ અને પુરુષ એ જન્મેમાં પૂર્વ પશ્ચિમનું તમ પ્રકાશવત્ ઘણું મોટું અંતર છે એમ જાણવું એને વિવેક કહે છે એટલેજ નામ વિદ્યા છે એથી વિરૂદ્ધ અવિદ્યાનું લક્ષણ યોગદર્શનમાં આ પ્રમાણેનું કહ્યું છે—

અનિત્ય-અશુચિ-દુઃખ-અત્યાસનુ

નિત્ય-શુચિ-સુખ-આમન્યાનિરવિદ્યા ।

—ભાષ્યવાર, ભૂ ૨

અનિત્ય, અશુચિ, દુઃખ અને જડ પદાર્થોને નિત્ય, પવિત્ર, મુખ અને આત્માવાળા સમજવા એ

અવિદ્યા છે. સંસારમાં કેવળ દુઃખજ દુઃખ ભરેલું
પડ્યું છે. પરંતુ અવિદ્યાના પ્રભાવથી તે સુખવત્
ભાસે છે. સંસારમાં સુખનો તો અભાવજ છે.

અનિત્યમસુખં લોકમિમં પ્રાપ્ય મજસ્વ મામ્ ॥

—ગી. ૨૨૨

મામુપેત્ય પુનર્જન્મ દુઃખાલયમશરવતમ્ ।

નાપ્તુવન્તિ મહાત્માનઃ સંસિદ્ધિ પરમાં ગતાઃ ॥

—ગી. ૨૨૩

વધારે શું, ભગવાનનાં આ વચનોથી પણ સંસાર
દુઃખમય છે એજ સિદ્ધ થાય છે. એના ઉપર કોઈ
કહે કે સંસારમાં સુખ નથી એમ કહેવું એ તો
પ્રત્યક્ષનો અપલાપ કરવા જેવું છે. આ શંકાર્તું
સમાધાન સૂત્રમાંના “વિવેકિનઃ” પદથી યદ્યંતય
છે. અજ્ઞાની માટે સંસાર ભલેને સુખમય પ્રતિત
યતો હોય, વિદ્વાનનાં જ્ઞાનચક્રથી તો તે વિપરીતજ
માલમ પડે છે. તેને સુમુક્ષા યવા સંભવ છે.
એવા સુરૂપ દુનિયામાં ઘણાજ થોડા હોય છે.

મનુષ્યાણાં સદસેષુ કચિદ્ યતતિ સિદ્ધયે ।

—ગી. ૭૨

પરંતુ એના ઉપર એ સવાલ થાય છે કે સંસાર-
માં જે કંઈ જેવું કંઈ અને જેટલું કંઈ સુખ પ્રાપ્ત
થાય છે તેને ઠોડવાની ઇચ્છા કરવામાં શું છુદ્ધિ-
માની છે? વળી સાંસારિક મુખમાં કંઈક નિશ્ચિતતા
કે, તેવીજ રીતે મોક્ષ મુખનો શું ભરોસો છે? મોક્ષ
ધામથી પાછા આવીને કહેવું તે સુખને સપ્રમાણ
સિદ્ધ કયું છે?

ઉત્તરમાં એમ કહેવામાં આવે છે કે સાંસારિક
મુખની દુઃખશબલતા અને દુઃખની જિહાસા
નિર્વિવાદ હોવાથી—

યથા દુઃમાન્ કલેશઃ પુરુષસ્ય ન તથા મુક્તાદમિલાઃ ।

—તાં. ૨૦. ૬૬

‘મનુષ્ય દુઃખને જેટલું ખરાબ સમજે છે, તેટ-
લાજ પ્રમાણમાં સુખની ઇચ્છા તિવ્ર હોતી નથી.
આ સાંખ્ય સૂત્રાનુસાર તથા—

અત્યન્તદુઃખનિવૃત્ત્યા કૃતકૃત્યતા ।

—તાં. ૨૦. ૬૧

દુઃખનો લેશ માત્ર ન રહે એમાંજ પુરી સફ-
ળતા છે’ આ સિદ્ધાંતથી પણ એ વાત અવશ્ય
રિવકારવી પડે છે કે થોડું હોય કે ઘણું હોય,
દુઃખલાવચ્છેદને જ દુઃખ જિહાસા પ્રાણી માત્રમાં
નેસર્ગિક છે.

મોક્ષ સુખની પ્રમાણિકતા તો શ્રુતિથીજ સિદ્ધ
છે. પરંતુ તેની નિરપેક્ષતાથીજ કહી શકાય છે કે
દુઃખથી મોક્ષ મેળવવાની ઇચ્છાનું પ્રાપ્ત થવું બીલ-
કલ સ્વાભાવિક છે.

અગર એમ કહેવામાં આવે કે દુઃખથી આ
પ્રકારનો છૂટકારો તો સર્વના જીવનમાં હર ઘડીજ
યતો રહે છે, તેને માટે સર્વની સુમુક્ષા પણ બનેલી
છે. ત્યારે તો દુઃખ પરિહારને માટે ‘પુનર્જન્મ’
નહી થવાની શું આવશ્યકતા છે?

આમ કહેવાનો એ મતલબ થયો કે મનુષ્ય-
ને જેટલાં દુઃખ ભોગવવાં પડે છે તે સૌ દષ્ટ ઉપાયો-
થી પણ હર યદ્યંતય છે. અને થાય છે પણ ખરાં.
તેને માટે દુઃસાધ્ય આત્મ જ્ઞાનેર્પાણન દ્વારા
જન્માભાવની ઇચ્છા કરવી એ શુક્તિ સંગત નથી.

આ વિષયની અને અન્યાન્ય આનુષંગિક શંકા-
ઓની સાંખ્યકારે ઘણીજ સુંદર મીમાંસા કરેલી છે.
તે સૂત્રોના અનિરુદ્ધ કૃત આધારે ભાષામાં અનુવાદ
આપવામાં આવે છે.

અથ ત્રિવિધદુઃખાત્યન્તનિવૃત્તિરત્યન્તપુરુષાર્થઃ ।

—તાં. ૨૦. ૨૧૨

ત્રણેય પ્રકારનાં દુઃખોથી અત્યન્ત છૂટવામાંજ

અર્થા પુરુષાર્થ છે. એ વાત લોકમા જાણીતી છે કે વૈરાગ્ય થવાથી મનુષ્યની ભ્રાણ શાસ્ત્રના અધ્યયનમાં પ્રવૃત્તિ થાય છે વૈરાગ્ય શા માટે થાય છે એના બે કારણો છે, એક શોક આદિ અને બીજું પ્રાપ્તનીય ફલિતનો ક્ષય, આ અપર વૈરાગ્ય કહેવાય છે, એનું લક્ષણ પાતંજલ યોગ દર્શનમાં આ પ્રમાણે કહ્યું છે—

દુઃખાનુષંગિકવિષયવિતુળસ્ય

વશીકારસંજ્ઞા વૈરાગ્યમ્ ।

—ભાષિત, પૃ. ૧૨

એને દુઃખમૂલ પર વૈરાગ્ય કહેવાય છે અને તેનું લક્ષણ છે—

તત્પરં પુરુષસ્વાતેન્દ્રિયનૈરુપમ્યમ્ ।

ભાષિત, પૃ. ૧૬

તેના પછી સાંસારિક દુઃખોની નિવૃત્તિના ઉપાયોની જ્ઞાના થાય છે પ્રસંગત દુઃખના પ્રકાર કહેવામાં આવે છે દુઃખ ત્રિવિધ છે—આધ્યાત્મિક, આધિદેવિક તથા આધિભૌતિક. આ પ્રકાર કયા કયા છે એ વાતનો ખુલાસો સૂત્રકાર કરતા નથી.

એટલા માટે બીજા રાદ રાવ રાદ રહેઠેલાં ઠગિત ત્રિવિધ પ્રકાર હોવાનું ઠીક જણાય છે. તથા કે—

કર્મ મીઝમદૈ સદ્યમે દ્રોણ ચ મણુગૃહન ।

શુભિ પ્રવિચારસમિ પૂજાર્હવરિમૂદન ॥

આ સ્પષ્ટતા શારીરિક દુઃખ છે. એમ તો દુઃખ માત્ર મનથી સંવેદનીય થતું હોવાને કારણે એકજ પ્રકારનું છે. તથાપિ—

ગુસ્તજ્જ્વાલિ મહાનુભાવાન-

દ્વેષો ભોક મૈત્ર્યમપીહ લોકે ।

હવાયકામાલુ ગુન્નરિદૈવ

મુર્ચ્ચીય મોગાન્ સધિરઅદિગ્યાન્ ॥

અને—

ન ચેતદ્ વિદ્ય કતરજ્ઞો ગરીયો

યદ્વા જયેમ યદિ વા મો જયેયુ ।

યાનેવ હવા ન ત્રિજીવિગમ-

સ્તેડવસિયા પ્રમુલ્હે પાર્વતીષ્ટા ॥

આ ત્રણે રહેઠેલા અનુક્રમે કામિક, વાસિક અને માનસિક અર્થાત્ અજમમ, પ્રાણમય અને મનોમય આ ત્રણે દેશો દ્વારા અનુભવવામાં આવનારા દુઃખોનો ઉલ્લેખ છે. હવે વિચારવાનું એ છે કે એ દુઃખોની નિવૃત્તિ કયા ઉપાયથી થાય ? અસ્મદાદિક બદલ્યો તો એવોજ પૂર્વપક્ષ કરશે કે ઓપધારિ મિદાભાદિ શાન્ત્યનુકાન ભલિમ ત્રાદિ સુલભ અને દ્રઢ ઉપાયોથી પ્રત્યક્ષત દુઃખનિવૃત્તિની શિદ્ધિ થાય છે, તો પછી દુઃસાધ્ય અનેકજન્મ પર પરાયાસથી સપાય ચિત્ત નિરોધ જ્ઞાન પ્રાપ્તિ આદિ શાસ્ત્રોક્ત સાધનોમાં ભુદિમાન મનુષ્યોની પ્રગતિ શી રીતે થવાની ? એનો ઉત્તર સૂત્રકાર આલો આપે છે—

ન દૃષ્ટાન્ તસિદિર્નિદૃત્તેજ્યનુવૃત્તિદર્શનાન્ ।

—ભા. ૧૦ ૨૧૨

ઉપર જણાવેલા ત્રણ દુઃખો દૂર થાય છે અર્થા, પરંતુ એ નિવૃત્તિ આપાતલ દોષ છે ફરીથી દુઃખ નહીં આવે એવો નિયમ નથી. ઠગિત એક દુઃખ નિવૃત્તિ થઈ પક્ષ મળે તો બીજું નહિ થાય એવો પક્ષ કાંઈ બરેસો નથી "દુસ્સં દુઃલાનુવત્તિ" એમ રહેવે જ રીતના ઠગ્યા એવો ક્રમ ચાલુજ રહે છે સુરચતા કયા છે ?

એના ઉપર નો કહેવામાં આવે કે—

પ્રાત્યદિકસુત્પત્તીકારવન્

તત્પત્તીકારચેષ્ટનાત્પુરુષાયત્વમ્ ।

—સાં ૧૦ ૧૧૩

જેમ રાજ ભુખ લાગે છે તેની લોભનથી નિવૃત્તિ કરવામાં આવે છે તેમ નિત્ય ઉપાય કરવાથી હુઃખ નિવૃત્તિ ધર્મને પુરુષાર્થનો લાભ થઈ શકે છે.

એનો જવાબ કપિલ મુનિજી આવો આપે છે—

સર્વાસંભવાન્ સંભવેઽપિ સત્ત્વા-

સંભવાદ્યેયઃ પ્રમાણકુશલઃ ।

—સાં ૧૦ ૧૧૪

સર્વત્ર અને સર્વદા વેદ આદિ નથી પણ મળી શકતા અને પ્રતિકાર થવા છતાં પણ હુઃખનું મુળ (દેહાભિમાન) બન્ધુજ રહેશે. એટલા માટે આ દ્રષ્ટીપાથજન્ય હુઃખ નિવૃત્તિરૂપ પુરુષાર્થ ત્યાજ્ય છે. જુદા જુદા ઉપાયોથી હુઃખ દૂર કરવાના સામર્થ્યમાં કંઈક ગળા હોવા છતાં પણ, ઉક્ત હેતુ-ઓથી તે અકિંચિત્કર છે

તેથી રૂપિ સિદ્ધાંત કહે છે—

ઉત્કર્ષોઽપિ મોક્ષસ્ય સર્વોત્કર્ષશ્રવેઃ ।

—સાં ૧૦ ૧૧૫

“ન ચ પુનરાવતતે” છાન્દોગ્ય ઉ૦ અ૦ ૮ સ૦ ૧૫ મ૦ ૧. સર્વ ઉપાયોમાં મોક્ષની શ્રેષ્ઠતા આ શ્રુતિથી સિદ્ધ છે. એજ વાતને ઉદેશીને પ્રથમ સૂત્રમાં “અત્યન્ત” પદનો પ્રયોગ કરેલો છે. દ્રષ્ટીપાથજન્ય મુખલાભના આધારે જે એવો આરોપ છે કે તે મુખનો શા માટે ત્યાગ કરવામાં આવે, તેનું સમાધાન શાસ્ત્રકાર આ પ્રમાણે કરે છે—

અવિશેષશ્ચોમયોઃ ।—સાં ૧૦ ૧૧૬

જેને લોકમાં મુખ કહે છે તે પણ એક પ્રકારે હુઃખજ છે. મુખ હુઃખમાં વિશેષ ફેર નથી, ગીતા ધીર પુરુષના વિષયમાં કહે છે કે તે—

“સમં દુઃસ્વસુપ્ત” —સાં ૧૦ ૧૧૭

એવો હોય છે. અર્થાત્—

તદપિ દુઃસ્વગ્વલમિતિ

દુઃસ્વપ્ને નિશ્ચિપન્તે વિવેચકાઃ ।

—સાં ૧૦ ૧૧૮

વિચારશીલ પુરુષ મુખને દુઃખથી ભળેલું માનીને હુઃખની ગણતરીમાંજ મૂકે છે. ફલતઃ—

અત્યન્તદુઃખનિવૃત્ત્યા કૃતકૃત્યતા । સાં ૧૦ ૧૧૯

પ્રકૃત અમુકને એજ મત શાદા છે અને તેથી

જ જન્માભાવ રૂપ અસુસાનું થવું ઠીકજ છે.

કઠણા ધ્યેય અને કિલિષ્ટ યોગ

(સે૦—શ્રી રૂપિરામજી બ્રહ્મચારી.)

મુગ્ધતઃ વિરવને અને આ જીવનને રૂ નોષ્ઠએ છે કે જેથી આ જીવન અને સંજિની અંદર એક ધર્મશીલ વિદ્યાન ક્રિયા, ચેતન અને આનંદમય સંજિની રચના થાય.

પ્રથમ તો તેને માટે એ કરવું પડશે કે આ સમગ્ર બોલિશ જીવન અને આ સંજિની ગતિયો—દાખાઓ જે કાષ્ઠ ૧૧૧ આ સંજિની અંગ છે, તેમનો સર્વદા સમજાવે નાશ કરીને આ ધર્મશીલ રાજની પ્રતિષ્ઠાને માટે યોગ્ય—

અનુકૂળ સ્થેત તૈશ્વર કરવું પડશે તથા પૂર્વ મંરકારોને રૂપે રૂપેથી કાઢીને દૂર કરવા પડશે.

આ કાષ્ઠ સાથે કહેવા સંભવવામાં સદૃજ, સરજ અને મલ્લ માધારણ માત્રમ ૫૫૩૩ દોષ, અથવા મલ્લ મુરદેવ દોવાને કારણે અમંભવજ માત્રમ ૫૫૩૩ દોષ, ૫૫૩૩ તે એ જે પૈકીમાંથી એકેય જાતનું નથી. એ મલ્લજ કહેવું અને મલ્લજ મોડું છે. એનાં દરેક અંગને સમજવા

અને આચરણ કરવાથીજ એની મહત્તા અને પુરોહીનું યાન થઈ શકે છે.

એને માટે ધર્મીજ મહત્ત લાઠી લાવી પડે છે એમાં સાધારણ, મનુષ્ય કોઈ રહી શકતો નથી.

એમાં મોટા મહારથિજ પ્રવેશ કરી શકે છે આ મહત્ત્વનું હેતુ—એમાં પ્રવેશ, એક દુષ્ટાશ્વ તપસ્યા છે અથવા એમ કહેા કે એક મહાભારતજ છે પ્રથમ આ જીવન અને ધૃતિની અનંત વિરોધી શક્તિઓના ઉપર વિજય, એમની અનંત મલિતોનું સમુગ્ધ્ય હેતુ અર્થાત એક સંસ્કાર મુદતિ ઠોઠ અંતમાં ન રહી ભવ, આજ કાલેમાં મોગી પુરોહી છે અને તેને માટે આ સર્વ કરવાની ધર્મીજ જરૂર છે નહીં મુધી આ વિરોધી શક્તિઓની ચીએને મલિકિર પશુ પાળી રાખવાની આજા બનેલી છે ત્યાં મુધી તે કાષ' અસંભવ છે કારણ અસંભવ અને અઘાનની મધ મુદતિમાં પશુ તે સૃષ્ટિ નિર્માણ કરનારી કાચકદ દ્વા રચિલી મહત્ત શક્તિ કાચકદી માતા ને પોતાના પ્રત્યેક કાર્યની અંદર "પુરુષોત્તમ" ને ધારણ કરી રાખે છે, ઉતારી શકતો નથી. આ સૃષ્ટિ અને જીવન શક્તિની ઠોઠ પશુ ચરત તેને મનુર નથી એ તેમ થઈ ભવ, તો તે પોતાના રસાવર્થીજ મનુર થઈ ભવ

અને સાધક નહીં મુધી તેમની ઇચ્છાઓની ચતિઓ અને અંગિને કે ને તે કાચકદીના કાર્યોમાં તેના પુરુષોત્તમની ઇચ્છાનુસાર દિવ્ય સૃષ્ટિ રચનામાં સાધા બાધા નામે છે, પશુ અસ્તિત્વ કરે છે અને તે અસંભવના માટે ઉભી રહે છે, પોતાની અંદર બધા આવી રહેલી છે—ત્યાં મુધી તે તેટલો જ કાચકદ અને કાચકદીથી દર થતો ભવ છે. અને નેટશીવ કાચકદીની ઇચ્છાનુસાર પોતે પોતાને એગરો ભવ છે—તે તેમાં વિષેને લેવડ માટે કરે સંમતી સ્વિકાર કરે છે—આ કાર્યમાં અધિક અમર થતો ભવ છે આ કાર્ય રચન કાચકદનું છે—નેમને માટે છે અને સંસારને માટે તો છે જ—એમાં કાચકદુ છે ?

એને માટે અવસ્થાએ તેવા કરવાની ઠોઠ છે, કાચકદ અને કાચકદીની ચરત મનુર કરવી પડે છે, તેમની ઇચ્છાનુસાર આજી જીવન પરિવર્તિત કરડ પડે છે તેમની વિરોધી ચીએને ઠોઠ પશુ અંતમાં રચા

અપવામાં આવતું નથી તેમની આજા પ્રમાણે આવતું પડે છે, તેમની ચરત અને ઇચ્છાની સામે અધિની કૌતિક જીવન સૃષ્ટિની ચરતો અને ઇચ્છાએને સર્વથા મુગર્મ એગવી રેવી પડે છે

એના સાધનના અનેક મંચ છે—ચરતો છે—ને કાચકદીની શક્તિ દારાજ નહીં થયેલા છે સાધકને તેમની અંદર થઈને પચાર થતું પડે છે એજ આધાર અને અવસ્થાઓની તેવારી છે

એમાં કલ્પોજ, મંચ મંચ ઠોઠ આજા બધા કઈ કામ આવતું નથી, કે નથી તેમની કઈ જરૂર પશુ પડતી કાચકદીની દ્વા શક્તિથી એનું પ્રતિજ્ઞા રચ પ્રાપ્ત થઈ ભવ છે.

આ રોગને સાધક આ સર્વનાં પરિણામોથી ધર્મી આગળ અતિમથ્ય કરી ભવ છે. એમાં સર્વ મોજ સમન્વયનું રૂપ પ્રાપ્ત કરે છે એમાં ખરો પ્રવેશ તેજ કરી શકે છે, એના અંતરભાષી એ કાચો પોઠાઉ કલ્પો છે કે હવે કૌતિક જીવન થયું ખરે ચિત્તી થયું, સંસારનું પરિવર્તન અને 'પશુ' કાચુ કલાણુ હવે ચિત્તી કૌતિક શક્તિજ—માનવીજ ઇન્દ્રિય, મન, કુદિથી થઈ શકતું અસંભવ છે

આ સર્વની અંદર રહીને નેટશી કદ મુધી ઉઠી કાચક છે અને તેનાથી ને કઈ થઈ શકે છે અથવા કરી કાચક છે તેનું કલ્પિત વિદારણ મહત્તમાં મલિકી છે એને મતલબ ઠોઠ આજાકલ્પો જીવન સમુદાયને કઈ રોગી એમ ન સમજી શકે કે એમાં કાચકજીવ જીવનની કિશા છે અથવા કે કાચકી અતીત થઈને બધાને બધા અને રોગનતમાં કુખી જીવાનીજ કિશા છે કે નેથી સંસારના ઠોઠ આજ પ્રમાણે નિવેરો આવી શકતો નથી, મલે ભવિનું કાચે ઇવરવીજ છે, એના એક પળના કાર્યને પશુ ઠોઠ માનવ શક્તિ કલ્પર વર્ષમાં પશુ કરી શકતો નથી.

આ લક્ષ—કાચકદી શક્તિનું આ કાચે ને ઉપર કહેવાયું છે, સૌથી પ્રથમ શુદ્ધ સત્યાગિજ પ્રારંભ થાય છે. પછી કલ્પ આધારની તેવારીને જીવનસાર તે શુદ્ધિ, મન, પ્રાણ, જીવન અને કરીરના અખાત માર્ગથી અગળ કરતાં આ પૂર્વી મુધી ઉતારી કાચક છે.

કલ્પાન્તિ કાન્તિ કાન્તિ

શંકા

(પ્રે. — મનાહરલાલ શર્મા)

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते ।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम् ॥
संनियम्येन्द्रियप्राप्तं सर्वत्र समबुद्धयः ।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ॥

— ગો. ૧૨૩, ૪

સૌત્ર હિત ચાહનારા સોમાં સમણુદિ રાખ-
નારા જે પુરૂષ ઇન્દ્રિયોના સંયમ કરીને નિર્દેશ
રહિત, અવ્યક્ત, સર્વવ્યાપી, અચિન્ત્ય, કુટસ્થ,

સ્થિર, અક્ષર પ્રદાની ઉપાસના કરે છે, તેઓ પણ
મને પરમાત્માનેજ પ્રાપ્ત થાય છે. અહિં ભગવાને
પ્રદાના સ્વરૂપને અનિર્દેશ્ય બતાવ્યું છે. વળી
આગળ—

‘‘तत्सविति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः ।

‘‘तत् तत् सत् आ प्रकारे ब्रह्मणे निर्देश्य त्रय

પ્રકારનો કહેવામાં આવ્યો છે.’ એમાં પ્રદાનો
નિર્દેશ્ય બતાવ્યો છે. આ બન્ને સ્થળોની સંગતિ
કેવી રીતે થઈ શકે છે ?



સમાધાન

(લે. — જ્ઞાનતપસ્વી શ્રી ગીતાનંદજી શર્મા)

એનો ઉત્તર એ છે કે પ્રથમ વ્યક્ત અક્ષર અને
અવ્યક્ત અક્ષર એ બન્નેમાં ઉપાસનાને માટે કયાનું
આલંબન શ્રેષ્ઠ છે ? એ અણુનનો પ્રશ્ન હતો.
એટલા માટે પ્રદાના વર્ણનમાં ભગવાને અનિર્દેશ્ય
શબ્દનો પ્રયોગ કર્યો અને છીજે ઠેકાણે નિર્દેશ્ય
પ્રદાનો ઉલ્લેખ એટલા માટે કર્યો કે ત્યાં મંગલા-
ચરણનો વિષય હોવાથી પ્રદાને નિર્દેશ્ય કહેવો
પડ્યો.

વસ્તુતઃ તો પ્રદાન સશુષ્ક છે, ન નિશુષ્ક, જેવી
રીત કોઈ પુરૂષ વસ્ત્ર પહેરી લે તો તે સવસ્ત્ર
કહેવાય છે અને ન પહેરે તો નિવસ્ત્ર કહેવાય છે.
તેની સવસ્ત્રતા અને અવસ્ત્રતાની એ બે સંજ્ઞાઓ

વસ્ત્રની અપેક્ષાથી થઈ છે. પુરૂષનું વાસ્તવિક
સ્વરૂપ તો પુરુષત્વાવચ્છિન્ન છે. વસ્ત્ર હોય કે ન
હોય પુરૂષ પુરૂષજ બન્યો રહેશે. એજ ન્યાય
પ્રદાના વિષયમાં પણ લાગુ છે. જેવો કે શ્રીમદ્
ભાગવતમાં પણ ઉલ્લેખ છે—

‘‘वचो मोक्ष इति व्याख्या गुणतो मे न वस्तुतः ॥

અવતાર ધારણ કરવો કે જીવભાવથી વિભક્ત
થવું અને પછી આ આવરણોથી છૂટી જવું આવા
પ્રકારની પરમાત્માની વ્યાખ્યા શુદ્ધિને લીધે ઔપ-
ચારિક છે વાસ્તવિક નથી.

એટલે આ અર્થમાં પ્રદાન નિર્દેશ્ય પણ છે અને
અનિર્દેશ્ય પણ છે.



સંત સમાગમ

(લેન્ડ-સ્વામી શ્રી રામાનંદજી સન્યાસી, દર્શનશાસ્ત્રી, વ્યાકરણાચાર્ય.)

[ભવિક ૧૦ ૬૧૮ થી આગળ]

તે પછી એક બીજા મહાત્મા કહેવા લાગ્યા
કે—એક સમય હું કલિંગ દેશમાં બ્રમણ કરી રહ્યો
હોતો ત્યાં મને એક બાલુકે કહ્યું કે—“મહારાજ !
મને કંઈ ઉપદેશ આપો “મેં કહ્યું—” ભાઈ !
જો તમને કોઈ બન્યું મિત્રની આકાંક્ષા હોય, તો
તમારે માટે પરમાત્મા બસ છે જો તમને સગી
સાથીની જરૂર હોય તો વિધાતાથી તેની પૂર્તિ થશે
જો માન પ્રતિષ્ઠાની બુદ્ધિ હોય તો સચાર પૂરી તુષિ
કરશે અગર જો શાન્તિની અવેક્ષા હોય તો તે ગીતા
આપશે જો કોઈ કામ ધંધાની ક્રિકર હોય તો
તપશ્ચર્યાથી ભળશે જો ઉપદેશ વ્યાહતા હોય તો
મુન્યુનું સ્મરણ જરૂરી છે અને અગર જો અમારૂં
આ કવન તમારે મળે ન ઉતરતું હોય તો તમારે
માટે નરક કંઈ દૂર નથી

૧) સાંભળો—

પડિતો અને વૈરાગીઓનો અહ કાર ધનવાનો
અને રાજા મહારાજાઓના અભિમાન સાથે તોલી
જોવામાં આવે તો પડિતો અને વૈરાગ્યવાનોનો
અહ કાર વજનમાં જરૂર વધી જવાનો માટે છે
વાતોથી સદા સાવધાન રહેજો—

૧—અહ કારથી

૨—લોભથી

૩) જુઓ—સ્પૃહા સૌને હોય છે તેના ત્રણ

લેહ કરી શકાય છે—

૧—લોભ લોભવવાની

૨—મોહવવાની

૩—ભ્રેવવાની

૧૨૩

લોભ લોભવતી વેળાએ એ સદા ધ્યાનમાં રાખવું
કે—શ્રેય બીજુ કોઈ ન જોઈ રહ્યું હોય, પરંતુ પ્રભુ
તો જોઈ રહ્યા છે તેથી એવા કોઈ લોભ ન લોગવો
કે જે ઈશ્વરથી છુપાવવા જેવા હોય

લોભતી વેળાએ એ સદા ધ્યાનમાં રાખવું કે
તેથી સત્યની હત્યા ન થઈ જાય.

અને જોતી વેળાએ એ યાદ રાખવું કે સત્ય
નતા અને શિષ્ટતાનો નાશ ન થઈ જાય.

મન પણ ચાર પ્રકારના હોય છે—

૧—મહદુ મન

૨—રોબી મન

૩—આગમુ મન

૪—સ્વસ્થ મન

એમાં ધર્મદોહીનું મન મહદુ મન બાલુકુ,
પાપીનું મન રોબી મન બાલુકુ, લોભી તથા
સ્વાર્થીનું મન આગમુ મન બાલુકુ અને સાધન
ભજનમાં વતપર મનને સ્વસ્થ મન બાલુકુ જોઈએ

એક સત લોકોને કહ્યા કરતાં હતા કે—હો
મનુષ્ય ! જો તારે ઈશ્વરના પ્રીતિપાત્ર બનવું
હોય તો ઈશ્વર તને જે સ્થિતિમાં રાખવા ચાહે છે
તેમજ સદૃષ્ટ રહેતા રીંછી બા

જુઓ—વૈરાગ્યની પહેલી અવસ્થામાં ઈશ્વર
ઉપર વિરવાસ ઉપલ થાય છે, બીજી અવસ્થામાં
સહનશીલતા પ્રગટ થાય છે અને ત્રીજી અર્થાત્
ઇન્દ્રી અવસ્થામાં ઈશ્વરમાં પ્રેમ પ્રગટ થાય છે

સાંભળો—અધાર્મિક મનુષ્ય આ સારમાં
જે શક્ય કરે છે તે લે અને માટે જ કરે છે. અને

જે દાન કરે છે તે નરકમાં જવા માટે કરે છે, કેમકે તેનાં બધાં કામ અનિયમિત થાય છે, જોવામાં બલે ને તે સારાં પણ માલમ પડતાં હોય.

સન્ન્યસો! આ ચાર વિષયોમાં સદા આત્મ-પરિક્ષા કરતા રહેજો—

૧—કેઈ શુભ કાર્ય કરતી વેળાએ એવો વિચાર કરે કે હું એ કામ નિષ્કપટ ભાવથી કરું છું કે નહીં?

૨—હું જે કાંઈ થોલી રહ્યો છું, તેમાં નિસ્વાર્થ ભાવ છે કે નહીં?

૩—હું જે કાંઈ દાન કરું છું, તે બદલાની આશાથી કરું છું કે નહીં?

૪—હું જે ધન સંગ્રહ કરું છું તે કૃપણતાને ત્યાગ કરીને કરું છું કે નહીં?

તમે જે (ધન સદ્ગુણ આદિ) ને કેદ કરી રાખ્યા છે, તેમનો (દાન, ભજન આદિ કરવાને માટે) છૂટકારો કરી દો. અને જે (જીભ, અજ્ઞાન, લોભ, મોહ આદિ યત્રુઓ) ને છૂટા મુક્યા છે, તેમને કેદ કરી લો.

સંસાર માર્ગની સફર કરવા માટે તમે લોકો ચાર પ્રકારનાં વાહનો ઉપયોગમાં લાવતા રહો—

૧—જે વેળાએ સંપત્તિનો પ્રદેશ આવી પહોંચે, તે વેળાએ કૃતજ્ઞતાના વાહન ઉપર સવારી કરીને મુસાફરી કરતા રહો.

૨—જે સમયે પૂજન અર્ચનનો પ્રદેશ આવી પહોંચે તે સમયે પ્રભુ પ્રેમના વાહન ઉપર આરૂઢ થઈને યાત્રા કરો.

૩—જ્યારે વિપત્તિનો પ્રદેશ આવે ત્યારે સહન શીલતાના વાહનનો ઉપયોગ કરતા રહો.

૪—પાપનો પ્રદેશ ઉલ્લાસ કરવાનો આવે ત્યારે પશ્ચાતાપની સવારી કામમાં લાવો.

X

X

X

તે પછી એક મહાત્મા એમ કહેવા લાગ્યા કે— હે સન્ન્યસન પુરુષો! મારું ચાહે તો હું મારી નિન્દા કરનારાઓને ખૂબ ધનામ આપું. કેમકે—

जीवन्तु मे शत्रुगणाः सदैव,

येषां प्रसादात् सुविचक्षणोऽहम् ।

यदा यदा मे विकृतं भजन्ते,

तदा तदा मां प्रतिबोधयन्ति ॥

અર્થાત્—નિન્દા કરનારાઓની નિન્દા તથા દ્વેષથી મારું ઘણુંજ હિત સધાઈ જાય છે. તે મારી નિન્દા નથી કરતા, પણ મને સાવધાન કરીને ભુલ મુધારવાનો અવસર આપે છે. તેમનું સદા કલ્યાણ થાઓ.

એક સમય હું ફરતો ફરતો મજબૂમિમાં બંધ પહોંચ્યો. ત્યાં કંજમાં બેઠેલી એક વૃદ્ધ સ્ત્રી પ્રભુની એ પ્રમાણે સ્તુતિ કરી રહી હતી કે—

“હે પરમાત્મન! આપે આ લોકમાં મારે માટે જે પદાર્થો નિર્માણ કરી મૂક્યા છે, તે આપ (વરો-ધીઓ (નાસ્તિકો) ને આપી દો. અને જે પર-લોકમાં મારે માટે નિર્માણ કરેલા છે, તે આપના મિત્રો (ભક્તો) ને આપી દો. મારે માટે તો આપ સ્વયં પૂરતા હો, કેઈ બીજી વસ્તુની મને ઇચ્છાજ નથી. જો હું નરકના લયથી આપની પૂજા કરતી હોજી, તો આપ મને નરકના અગ્નિમાં નાખી દેજો. અને અગર જો સ્વર્ગની આશાએ આપની સેવા કરતી હોજી, તો એવું સ્વર્ગ મારે માટે ત્યાજ્ય છે, હરામ છે. જો હું આપની પ્રાપ્તિને માટે ઉપાસતા કરતી હોજી તો આપના પરમ પ્રકાશમાન, પૂણ, પવિત્ર, નિર્મળ, નિર્દોષ અને અપાર સુંદર સ્વરૂપનાં દર્શનથી મને વંચિત ન રાખશો ?

આટલું કહીને તે વૃદ્ધ સ્ત્રી ચાન્ત થઈ ગઈ.

એટલે હું પણ તેની સાથે જઈને આ પ્રમાણે
કહેવા લાગ્યો—

માતાજી ! હસ્તરના માર્ગમાં નથી આંખોની
જરૂરીઆત કે નથી જીભ આંદ્રિની આ તો એક
માત્ર ચવિત્ર હૃદયની જરૂર છે તે ચવિત્રતા પ્રાપ્તિનો
પ્રયત્ન કરવો જોઈએ, અને મનને તેનો સંગ્રહ કર
વાનું કામ સોંપા જુઓ—

સરાપા પાક કે ધોળે, છંદેને હાથ દુનિયા સે
નહીં હાજત જિ વહ પાની, જહાંયે સરસે ધોળે તર

ધ્યાન આપો—મનુષ્ય રાત્ર યવાની સહારના
માત્રથી ભોજન કરવું ઠોડી દે છે, પરંતુ મરતું અને
યમના હાથની સ્મૃતિનો નિશ્ચય હોવા છતાં પણ
પાપ કરવાનું છેડતો નથી એ એક ઘણીજ
નવાઈની વાત છે.

આ સારા ‘નવયુગતિ’ એવો છે, જે એની
અભિલાષા રાખે છે, તેને સારા સારા વસ્ત્રાનુવસ્ત્ર
આદિ આપવામાં આજી છંદગી ગુમાવવી પડે છે
અને જે એનાથી નિરંજન રહે છે તે એનું માથું
મુંઠાવીને એના ગોઠા ઉપર મેસ ચોપડી દે છે

હવે હું હુદિમાન મનુષ્યોના ત્રણ ભેદ બતાવું છું—

- ૧—જેણે સ સારનો ત્યાગ કર્યો
- ૨—જેણે મરતા પહેલા બધી તૈયારી કરી લીધી.
- ૩—જેણે પ્રયત્નથી ઈશ્વરની પ્રસન્નતા પ્રાપ્ત
કરી લીધી

સાધક પણ ત્રણ પ્રકારના કહેવામાં આવે છે—

- ૧—વૈરાગી
- ૨—અનુરાગી
- ૩—કર્મયોગી

વૈરાગીનું ધન સદનશીલતા છે. અનુરાગીની
સ પતિ પ્રભુ પ્રત્યેની કૃતજ્ઞતા છે અને કર્મયોગીની
હોલત સર્વના પ્રતિ બંધુભાવ, જે

અરે સાધક ! તું નિર્જન સ્થાનમાં નિવાસ
કરીને તારા પ્રેમની પરિક્ષા કરી લે જોઈ લે કે
તારો પ્રેમ નિર્જનતા ઉપર છે કે પ્રભુ ઉપર અગર
જો એકાન્ત સ્થાનમાં તારો પ્રેમ છે, તો ત્યાંથી
ખસતાંજ તારો પ્રેમ ત્યાં જામશે અને જો ઈશ્વર
ઉપર પ્રેમ છે, તો પર્વત, જંગલ, વસ્તી, ધન અને
ધર આદિ સર્વ સ્થાનો સરખા જાશે.

વનેષ્વિ દોષા પ્રભવન્તિ રાગિણા,

ગૃહેષ્વિ પક્ષેન્દ્રિયનિમ્હરણા ।

અકુત્સિતે કર્મેણિ વા પ્રવત્તે,

નિવૃત્તરણસ્ય ગૃહ તપોવનમ્ ॥

અર્થાત્ જેમનાં દીલ સ સારી વાસનામાં ફસા-
એલા છે તેમને વનમાં પણ વાસના ઠોડતી નથી
જેમને ઈન્દ્રિયો ઉપર પોતાનો કબ્જો છે તેમને માટે
ઘર પણ વનના જેવુંજ છે કાંચ એ છે કે સ્વત્
કર્મ પરાયણ પુરૂષ સર્વત્ર પોતાની આત્માત્મતિ
કરી શકે છે

ધર્મ સાધનનાં ત્રણ મુળ છે—

૧—જ્ઞાન

૨—સ કદંબ

૩—પ્રેમ

ધર્મનાં પણ ત્રણ અંગ છે—

૧—ભવ

૨—આશા

૩—પ્રેમ

ભવમાં જાપ છેડવાની શક્તિ છે આશામાં
સાધન દ્વારા પરહોક અને ઉત્તતિનું ભળ છે અને
પ્રેમમાં દુઃખ સહન કરવાની શક્તિ છે. એવી રીતે
ઉપર કહેલા ધર્મ સાધનના ત્રણ મુળોમાં જ્ઞાન સર્વ
વસ્તુઓનાં ધર્મધર્મ સ્વરૂપ કે આડવાની પ્રિયતા
રાખે છે સહવામાં વિરોધ હોવા છતાં પણ અટક

રહેવાની ભાવના છે. અને પ્રેમમાં વિધિ નિષેધ આદિ નિયમોની સીમા ઓળંગીને સર્વ કાર્મ કરવાનું સામર્થ્ય છે.

કેટલું કહીએ, ઉપશુક્ર અનેક ઉપદેશ, દાખલા, દલીલો અને ઘટનાઓ આદિના સંવાદને અંતે અનિશ્ચિત કાળને માટે સમાગમ કરવાનો નિશ્ચય કરીને સલા ઉઠી ગઈ.

હું તો આનંદ સાગરમાં ડુબીજ ગયો. મને એમ લાગ્યું કે અસ્થિર વિચારોને સ્થિર કરવાનું સાધન અને સ્થિર વિચારોને દ્રઢ કરવામાં હેતુભૂત કારણ સમાગમ છે. અને તેથીજ એનું નામ છે— “સંત સમાગમ.”

અર્જુને યુદ્ધ શા માટે કર્યું ?

(સં—વકીલ બાલાભાઈ નારણી બી૦ એ૦)

[અનુસંધાન ૫૦ ૯૨૫ થી આગળ]

અને ઉપરની સર્વ વાત ચીતા પણ તદ્દન સ્પષ્ટ-પષ્ટે કહે છે.

સર્વકર્મણિ મનસા સંન્યસ્યાસ્તે સુખં વશી ।
નવદ્વારે પુરે દેહી નૈવ કુર્વન્ કારયન્ ॥

—ગી૦ ૫।૧૩

મયિ સર્વાણિ કર્મણિ સંન્યસ્યાધ્યાત્મચેતસા ।

—ગી૦ ૫।૨૦

ચેતસા સર્વકર્મણિ મયિ સંન્યસ્ય મત્સરઃ ।

બુદ્ધિયોગમુપાશ્રિત્ય મનિત્તઃ સતતં ભવ ॥

—ગી૦ ૧૮।૧૭

નૈવ કિંચિત્ કરોમીતિ યુક્તો મન્યેત તત્ત્વવિત્ ।

—ગી૦ ૫।૮

તત્ત્વવિત્તુ મહાનાદો ગુણકર્મવિભાગયોઃ ।

ગુણા ગુણેષુ વર્તન્તે ઇતિ મત્વા ન સન્તતે ॥

—ગી૦ ૫।૨૮

વદાસીનવદાસીનો ગુણૈર્થો ન વિચાલ્યતે ।

ગુણા યતંતં દ્રવ્યે ચોઽવતિષ્ઠતિ નેદ્રતે ॥

—ગી૦ ૧૫।૨૩

આ તમામ રહેણીનો બાવાધ તદ્દન સરજો

અને એક રૂપ જ છે. અને તે તમામ લક્ષમાં લેતાં કર્મ યોગને રૂપે કર્મયોગ કાયમને માટે સ્વગૃહે રહેવાનો અને સંન્યાસ રૂપે સંન્યાસ પણ હંમેશા સ્વગૃહે રહેજો રહેવાનો અને એ હકીકત તત્ત્વવેત્તા હોય તેને માટે છે.

પરંતુ દરેક આત્મામાં અંતરગત સંન્યાસ, અને દેહાદીકરૂપ સંઘાતમાં બહીરંગત કર્મયોગ એવો વીચીત્ર દેખાવ, જે ધ્યાનપૂર્વક જોશે તેને જરૂર દેખાયો. આવી સ્થિતિમાં જ્ઞાનોત્તર કર્મ સંન્યાસ કરતાં કર્મયોગ અધીક પ્રચલ્ત છે એમ કહેનારે શરમાવું જોઈએ. કારણ કે તાત્વીક દૃષ્ટીએ કર્મ સંન્યાસ અક્ષય સ્વરૂપ સ્વભાવ હોવાથી મોક્ષરૂપી ધરમાં તેજ રહેવાનો ખરેખર હક્કદાર છે. માટે તેવા હક્કદારને કોણ ક્યાં હાંકી કહાડી શકશે ? અને કર્મયોગ તો દેહાદીક શુભ સંઘાત-માંજ ઘર કરીને રહેનાર હોઈ તેમાંથી કોઈ વખતે છુટો પડી શકતો નથી.

એર ! અમારા કહેવાનો બાવાધ તદ્દન સ્પષ્ટ છે ને તે આપ સર્વે સમજી શક્યા હશેજ કે જ્ઞાનો-

તાર તત્ત્વવેત્તાઓ કર્મસંન્યાસ કરતા કરતા કર્મયોગ કરવો સારો છે એમ ખોટી લવલવ કરવાની હવે જરૂર નથી.

અને ઊપર પ્રમાણે હોવાથી કર્મસંન્યાસ કરતાં કર્મયોગ અધીક પ્રશસ્ત છે એ (અં ૫ તે ૨૬:૧૦ ૨) માહેનું વચન કેવા અજ્ઞાનીઓને માટે ચિત્ત શુદ્ધી વીગેરે માટે કર્મયોગ કરવો ઇષ્ટ છે. છતાં ચીત્ત શુદ્ધિ માટે કર્મયોગ ન કરતાં તેને તણને બેસી રહેવું તેના કરતા કર્મયોગ કરવો એ અધિક પ્રશસ્ત છે એવોજ ભગવાનનો અભિપ્રાય છે અને એમજ સમજવું એજ સર્વથા સચુક્તિ કહે છે.

ખરી રીતે તત્ત્વવેત્તા કેને કહેવો ?

આ મુદ્દાનો વીચાર પણ બરાબર કરવો જોઈએ તે માટે ઈલા અધ્યાયના ૨૧ મા રચીકેતા બાબ્યમા શ્રીમદ્ આદ્ય ૨ કરાચાર્યજી એમ કહે છે કે “તત્ત્વ વેત્તાને સર્વ કર્મનો નીવેધ—અર્થાત્ સર્વ કર્મ ત્યાગ એમ જે કહેવાયેલું છે તેનું ખરૂં રહસ્ય પ્રથમ સમજવાની જરૂર છે અને તે રહસ્ય એવું છે કે વિદ્વાન અથવા પ્રજ્ઞાનમયવેત્તા એટલે આત્મા, પરંતુ દેહ સંઘાતને કંઈ વિદ્વાન એવી સજ્ઞા અપાતી નથી કારણ વિદ્વાતા એ રયોતિ દેહાદી સંઘાતની નથી પરંતુ દેહાદી સંઘાતથી ભુટો એવો જે અવિકલ આત્મા, તેને વિદ્વાન કહી શકાય, અને તે પણ આત્મ અનાતમ વિવેક જ્ઞાનથી ઉપસત યનાશ પ્રજ્ઞા રૂરૂજ આકાર ભુદ્ધી મનને રતિરૂપ પ્રજ્ઞાવિધાની દૃષ્ટિએજ કહેવાનું

સારાજ એજ કે પરમાર્થતઃ અવિકલ એવેજ જે આત્મા તેનેજ વિદ્વાન કહી શકાય. અને એવા વિદ્વાનને વિષે ત્રણે કાલમાં કર્મનો સંભવ નથી અને તેથીજ આ સર્વમ દૃષ્ટિએ વિદ્વાનને સર્વ કર્મ સંન્યાસ સ્વાભાવીક અને સહેજ જ છે. અર્થાત્

શાસ્ત્રે વિધાનપૂર્વક નિર્દીષ્ટ કરેલા સર્વ કર્મો કરવાને અજ્ઞાની મનુષ્યજ અધિકારી કહે છે. અને તે સંબધી વીધી નીવેધ વાક્યો તત્ત્વવેત્તાને લાગુ પડતાં નથી.

આ નીયમની દૃષ્ટિએ જોઈએ તો—

કુર્યાં દ્વિદ્વાતયા ।

—ગો• ૧૧૨૪

ન બુદ્ધિમેદ જતયેત્ જોગયેન્ સર્વકર્મણિ ।

*** વિદ્વાન્ યુક્ત સમાચરન્ ॥

—ગો• ૧૧૨૫

તાનકૃત્સલવિદો મન્દાન્ કૃત્સમવિન્ન વિપાલયેત્ ॥

—ગો• ૧૧૨૬

વીગેરે વાક્યો તત્ત્વવેત્તાને કોઈ પણ પ્રકારે લાગુ પાડવાના નથી આ મહિત્તું ખરૂં રહસ્ય એ છે કે—
તદા ગત્તાસિ નિર્વેદ ધોતવ્યસ્ય જ્ઞાત્ય વ ।

—ગો• ૧૧૨૭

એ વાક્યમાં જણાવેલ જાણવાનના અભિપ્રાયથી જોતા તત્ત્વવેત્તાને તો કંઈ પણ સાંભળવાપણું રહેતુંજ નથી, ત્યારે પછી તેને વિધીનીવેધ પણ સાંભળવાના હોયજ નહીં. અર્થાત્ વીધાનીવેધ વાક્યો તત્ત્વવેત્તા માટે નથી પણ અજ્ઞાની લોકો માટે તેમની ચીત્તશુદ્ધી કરવા માટે છે છતાં શાસ્ત્રમાં જણાવેલ વીધાનીવેધના વાક્યો નકામા તો નથીજ ત્યારે તે વાક્યોને ઉદ્દેશ શો છે, કેને અનુવશીને તે વપરાયલા છે, તેને યોગ્ય અર્થમાં યોગ્યતાં એ શાસ્ત્ર જાણનારનું મુખ્ય કર્તવ્ય છે મતલબ એજ કે શાસ્ત્રમાં વર્ણવેલાં વીધાનીવેધ વાક્યો તેમજ ગીતામાં લખેલા વિધો નિવેધ વાક્યો અજ્ઞાની મનુષ્યોને કર્મ કરવા માટે ઉત્તેજન આપવા તથા તે બાળતમાં તેને રૂચી પેદા કરવા અર્થેજ તેના ઉપ-યોગ છે અને તે હેતુથીજ તેવા વાક્યો પ્રોત્સાહને

આશ્રય કરીનેજ લાખાયલાં છે માટે ઉપરનો સર્વ પ્રકાર ગરાબર ધ્યાનમાં રહે તે માટે અમે એક દ્રષ્ટાંત આપીએ છીએ.

ઠાહ્યાની હઠ અને તેને તેના બાપનો ઉપદેશ—

ઠાહ્યાને ઉધરસ થઈ હતી, તેથી તેનાં મા બાપે ઠાહ્યાને સોલાવી ફાસલાવી પટાવીને કહ્યું કે મોળી દાળ સાથેજ ભાત ખાવો, છાસ ખાવી નહીં, તેલ મરચું ખાવું નહીં, અને તેમ કહીને તેનાં મા બાપ તેને છાસ ખાવા આપતાં નથી અને ઠાહ્યા તો છાસ ખાવા માટે હઠ કરી અડીને બેઠો છે. તેને ઘણું ઘણું સમજાવતાં છતાં પણ મોળી દાળ સાથે ભાત ખાવો નથી. સારે મા બાપ તેને કહે છે કે જો અમે પણ છાસ ખાતાં નથી પણ મોળી દાળ સાથે ભાતજ ખાઈએ છીએ.

વળી બીજા માણસોને પણ ઠાહ્યાનાં મા બાપ ઈશારા કરીને કહેવા લાગ્યાં કે ‘હું, ખબરદાર, કોઈ છાસ ખાશો નહીં. છાસ ખાશો તો ઉધરસ થાય છે. જુઓ આપણા પાડોશીનો નોકર રામો કેવો ઠાહ્યો છે કે તેને ઉધરસ થાય માટે છાસ ખાતો નથી. સોમા, તું છાસ ખાતો નથીને? બાપુ અને કાંસો થાય છે. તેથી મેં છાસ ખાવાની સુઝી લીધી છે. શાખાય, પણ હરીઓ, જુવો બેટો કેવો મૂરખ છે કે ઉધરસ આવે છે છતાં છાસ મૂકતો નથી. અને તે કારણે હવે કેવો ખાટલામાં રીંગા-તો પડ્યો છે તે! ઠાહ્યા, આ આપણી લેસ પણ કેવી ઠાહી છે તે જો તો ખરો, લેસે એમ બાણ્યું કે છાસ ખાવાથી ઉધરસ થાય છે તેથી તેણે કાલે દુધજ આપ્યું નહીં. એટલે ઘરમાં છાસજ નથી. હવે શું કરશું? મોળી દાળ સાથેજ હવે ભાત ખાવો પડશે. આ પ્રમાણે બાપે કદા કહી સારે ભાઈ

સાહેબ ઠાહ્યાભાઈની હઠ ઉતરી ગઈ. અને મોળી દાળ સાથે ભાત ખાવા લાગ્યો.

ઉપર કથાવિલા દ્રષ્ટાંતમાંના સુદો એવો છે કે ઠાહ્યાને ઉધરસ થઈ છે તેથી તેણે છાસ ભાત ખાવાં ન જોઈએ પરંતુ મોળી દાળ સાથે ફક્ત ભાતજ ખાવો જોઈએ. તેણે ઠાહ્યાના મનમાં કસાવવા ખાતર તેના બાપે સ્વરૂપાન્તરથી ઠાહ્યાને એવું કહ્યું કે અમે કોઈ છાસ ખાતાં નથી. બીજા કોઈએ પણ છાસ ખાવી નહીં. લેસે દુધ આપ્યું નથી. આ તમામ વાતો સ્પષ્ટ રીતે અર્વાતર છે એટલે સાચી કહેલી નથી. પરંતુ તેણે નીદોષ અસત્ય ઠાહ્યાને લાભ કરવાના હેતુથી જોલવામાં આવ્યું છે. તે દ્રષ્ટાંતે જોતાં વર્તણૂક વર્તણૂક (અ. ૩૨૦-૨૨) એ રસીકમાં ભગવાન પણ એવું જ નીદોષ અર્વા-તર જોવાય છે કે “હું” પણ કમ’માંજ છું.” આ ભગવાનનું વાક્ય પણ પેલા ઠાહ્યાના બાપના જેવું જ છે કે અમે પણ મોળી દાળ અને ભાત ખાઈએ છીએ છાસ ભાત ખાતા નથી.

સારાંશ એજ કે કમ’ સંબંધી વીધિ અને નીપેક્ષનાં જે જે વાક્યો ગીતાની અંદર આપેલાં છે તે કેવળ અજ્ઞાનીઓને માટેજ છે અને તત્ત્વવેત્તા-ને તે ખાસ કરીને લાગુ પડતાં નથી, કારણ કે તત્ત્વ જ્ઞાનોત્તર કાળમાં તત્ત્વવેત્તા એ ઉપદેશનો અધીકારીજ નથી તેથી તેવા તત્ત્વવેત્તાને કોઈના ઉપદેશની જરૂરજ નથી એટલુંજ નહીં પણ તેને ઉપદેશ સાંભળવાપણું પણ છેજ નહીં. તેના માટે આપણે ગીતામાંથીજ આધારો જોઈએ.

ચક્ષાત્વા નેહ મૂયોડ્યજ્ઞાતવ્યમવશિષ્યતે ॥

—ગી. ૭૨

ચક્ષાત્વા મોહ્યસેડ્યુભાત

—ગી. ૬૧

ચક્ષાત્વા મુનયઃ સર્વે પરાં સિદ્ધિમિતો ગતાઃ ॥

—ગી. ૨૫

શનુદ્યુધામ્નિશ્ચિન્નમિન્દ્રાન્તરયયગા ॥

—ભી. ૧૪૨.

તદુદ્યુધામ્નિશ્ચિન્નમિન્દ્રાન્તરયયગા ॥

ગચ્છાન્તરયયગાન્તરયયગાન્તરયયગા ॥

—ભી. ૧૪૩.

ઉપર જણાવેલા તમામ શ્લોકોમાંના કાવાચો જોઈ કે યથાર્થ તત્ત્વજ્ઞાન થયા પછી જે કોઈ તત્ત્વ વેત્તા હોય છે તેને પછીથી બીજા કંઈ પણ જાણી દેવા જેવું હોતું જ નથી.

જે જાણવાથી તે તત્ત્વવેત્તા સંસારમાંથી મુક્ત થાય છે અને જે જાણવાથી તે કુલકુલ થાય છે તેવા તત્ત્વવેત્તા જન્મ મરણના ફેરામાંથી છુટી જાય છે અને તેવા તત્ત્વવેત્તાને જ આત્મિક શિક્ષા સીદ્ધી મળે છે એવા તત્ત્વવેત્તાને, એવા સીદ્ધ પુરૂષને પોતાની આગળ ઉભો રાખી શાસ્ત્ર તેને કંઈ કહે એ માનવા જેવું જ નથી. શાસ્ત્રની તેવા તત્ત્વવેત્તાને કંઈ પણ ઉપદેશ કરવાની કે કહેવાની હિંમતજ કેમ ચાહે—મતલબ હિંમત ચાહેજ નહીં અને બીનામા બીતાકારે તેવી હિંમત કરીજ નથી છતાં કોઈ એવી કૃપ્તતા કરીને કહે કે શાસ્ત્ર તો તત્ત્વવેત્તાને પણ ઉપદેશ આપી શકે છે તો પછી એક સાચે કહેવું પડે છે કે જો તેનું શાસ્ત્ર હોય તો તે શાસ્ત્રને જ અર્થેત્વ આવશે કારણ કે જે તત્ત્વવેત્તા હોય છે તેના મનમાં કોઈ જાણવની શકા હોતીજ નથી અને તેને કંઈ પૂછવાપણું રહેતું નથી અને હોતું નથી તેથી તત્ત્વવેત્તા કંઈ પણ પૂછવાને કેંઈ આગળ આવતો નથી પછી શાસ્ત્ર તેને શા માટે ઉપદેશ કરે છતાં કહેવાતા તત્ત્વવેત્તાને ઉપદેશની જરૂર હોય, કોઈની પાસે પોતાની શકા હોવી તેવી શકાનું સમાધાન કરવાની આગળી જણતો હોય, તો પછી તેવો કહેવાતો તત્ત્વ વેત્તા એ જરૂર તત્ત્વવેત્તા જ નથી.

તત્ત્વવેત્તા તો કોઈનો પણ ઉપદેશ સામગ્રી ઉભો રહેતો નથી. એટલું જ નહીં પણ ઉપદેશ સામગ્રી માટે જ્ઞાન સરખો ખરતો નથી અને જગી તેવા તત્ત્વવેત્તાને કહેવાને કે ઉપદેશ કરવાને કોણ આગળ પગલું ભરી શકે તેમ છે કોણ તેવી કૃપ્તતા કરવા પ્રયત્ન થશે.

મતલબ કે શાસ્ત્રના—ગીતાના તમામ ઉપદેશો અજ્ઞાનીઓ માટેજ છે જ્ઞામીઓ માટેજ છે. એટલે જ્ઞાન સંપૂર્ણ પ્રાપ્ત થઈ ગયા પછીથી તે જ્ઞાનોત્તર દશામાં તત્ત્વવેત્તાને કંઈ પણ ઉપદેશની જરૂરજ નથી કારણ તેણે પોતે જ્ઞાનોત્તર શામલા કેવી રીતે રહેવું—ચિતે શું કરવું, એ વાત તો તેણે અગાઉથી જ જ્ઞાનોત્તર દશા પહેલાં જ અર્જુની હોય છે અને શાસ્ત્રે પણ તેવી જાતો, ઉપદેશ—તેવો તત્ત્વ વેત્તા—જ્ઞાનોત્તર દશાને પ્રાપ્ત થયો તે અગાઉજ શાસ્ત્રે તેને કહી આપેલ છે તેથી જ્ઞાનોત્તર દશા પ્રાપ્ત થતાજ તેને તત્ત્વવેત્તા પદ પ્રાપ્ત થાય છે એટલે પછી કંઈ પણ ઉપદેશની તેને જરૂર રહેતી નથી અને પછી શાસ્ત્રો પણ તેને ઉદેશીને કંઈ કહેતાંજ નથી એટલે તમામ શાસ્ત્રોના ઉપદેશ—જ્ઞામી અને અજ્ઞાનીઓને માટેજ છે તે વાત સ્પષ્ટ રીતે સાબીત થાય છે.

અને અર્જુન પોતે પણ તત્ત્વવેત્તાની સ્થિતિ-એ પહેચેલો ન હોતો પણ અજ્ઞાની અને જ્ઞામીની દશામાં હોવાથી ગીતાના બીજા અધ્યાયમાં તેણે ભગવાનને સ્થિતપ્રજ્ઞના લક્ષણો પૂછ્યા છે તેમજ શુલાવીત અને યૌગીના અને ભક્તના પણ લક્ષણો પૂછ્યા છે અને ભગવાને તેના સરળ એવા જવાબો પણ આપ્યા છે અર્થાત અર્જુન પોતે સ્થિતપ્રજ્ઞ અને ભક્ત તેમજ શુલાવીત અને યૌગી ન હોવાથી અને સ્થિતપ્રજ્ઞ તથા ભક્તની દશાએ

પહોંચવા જાણાસા થવાથી સ્થિતપ્રજ્ઞ—શુભ્રાતીત-
યોગી અને લક્ષ્મીના લક્ષણો તેમણે ભગવાનને જોવા
આશયથી પૂછ્યા છે કે તે બાણીને પોતે પણ સ્થિત-
પ્રજ્ઞ-શુભ્રાતીત—યોગી—અને લક્ષ્મી થવાનો પ્રયત્ન
કરી શકે. અને ભગવાને પણ અભ્યુત્થાનને અજ્ઞાની
અને જ્ઞાતા બાણી ઉપર જણાવેલ સ્થિતપ્રજ્ઞ-
શુભ્રાતીત-યોગી અને લક્ષ્મીના લક્ષણો અભ્યુત્થાનને
અભ્યાસ કરવામાં મદદરૂપ થાય તે અર્થે કહ્યાં છે.
કારણ અભ્યુત્થાન તે ચારે બાજોનોનાં લક્ષણ બાણી
નથી અર્થાત્ તે ચારે બાજોમાં અભ્યુત્થાન અજ્ઞાની
છે અને તે બાણીને તેને જાણાસા થઈ છે.

મતલબ સ્થિતપ્રજ્ઞ વીગેરેનાં લક્ષણો અગર
શુભ્રા અભ્યુત્થાનમાં ન હોવાથી તેવા શુભ્રા અભ્યુત્થાનને
સંપાદીત કરવા નોંધે. મેળવવા નોંધે. એટલા
માટેજ ભગવાને તેને તે તે બાજોનો ઉપદેશ કર્યો
છે અને આ પ્રમાણેની વીચાર સરણી એજ ઉત્તમ
કહેવાય.

આ ઉપરથી જણાશે કે તત્ત્વજ્ઞાનોત્તર કાલે
તત્ત્વવેત્તાને હાથે લોકસંગ્રહનું જનકલ્યાણનું કાર્ય
થતું રહે, એ વાત તત્ત્વવેત્તાને સમજાવવાની કંઈજ
જરૂર નથી કારણ તે વાત તો તેવા તત્ત્વવેત્તાએ
જ્ઞાતા અવસ્થામાં જ અગાઉથીજ બાણી લીધી
હોય છે. અને જ્ઞાતા ક્ષામાંજ વિધી-નિયમ
વાક્યોથીજ ઉપદેશ કરાય છે—પણ તેવાં વાક્યો
જે જે સ્થળે વપરાયતાં હોય તે તે સ્થળે તે વાક્યો
સુખાર્થત્વે હોતાં નથી પણ ગાણાર્થત્વે જ હોય
છે તેથી તે કેવળ અનુવાદાત્મકજ ગણાય.

તેવાં વાક્યો કેટલીક વખત સુંદર પ્રદાનક,
અને ઉત્તેજક એટલે અર્થવાદ રૂપ હોય છે.

આ ઉપરથી હવે આપણે એમજ કહેવું નોંધે
કે તત્ત્વવેત્તા જે જે કર્યો લોક કલ્યાણ માટે કરે છે
તે તેનો સ્વભાવ થઈ જાય છે. અને કોઈ પણ
સ્વભાવ અગર દેવ પડી જવી તે વાત દલ અભ્યાસ
વગર થતી નથી.

અને તત્ત્વવેત્તાનો તેવો અભ્યાસ એ જ્ઞાતા
અવસ્થામાંજ આરંભાઈ ગયો હોય છે અને પછી
જ્ઞાનોત્તર ક્ષામાં તો તે અભ્યાસ એક સ્વભાવ
અગર દેવનું રૂપ ધારણ કરે છે અને આ પ્રમાણે
સ્વભાવ બંધાઈ ગયો તે પછી તેવા તત્ત્વવેત્તાને
વીધીનીવેધવાળા ઉપદેશની જરૂર રહેતીજ નથી
એ તો સ્પષ્ટ સમજાય તેવી અને દીવા જેવી વાત
હોય છે.

તાત્પર્ય એજ કે સૂર્યનો સ્વભાવ હમેશા પ્રકાશ
આપવાનો થયેલો જ છે છતાં તેને કોઈ શાસ્ત્ર
આજ્ઞા કરે કે “અરે સૂર્ય, તું જગતને પ્રકાશ આપ-
તો રહેજે” તો તેવી આજ્ઞા—વીધીની સૂર્યને
લેશમાવ પણ જરૂર નથી. ઉલટ તેવી આજ્ઞા
કરનારજ મૂખ કંદે. તેજ સ્થિતિમાં તત્ત્વવેત્તા
માટે વીધી નિયમનાં વાક્યો પણ નિરૂપયોગીજ
ગણાય—

એથી જેમ સૂર્ય કોઈની પણ આજ્ઞા સીવાયજ
પ્રકાશ આપતો જ રહે છે તેજ પ્રમાણે તત્ત્વવેત્તાને
પણ “આ તત્ત્વવેત્તા તું લોક સંગ્રહ લોક કલ્યાણ
કરતો રહેજે” એવી આજ્ઞા શાસ્ત્રે કરવાની
રહેતીજ નથી અને જરૂરની પણ નથી કારણ જે
તત્ત્વવેત્તા છે તેનાથી તો પરાપકાર, લોક કલ્યાણ
લોક સંગ્રહ, યતોજ રહેવાનો કારણ કે તે તત્ત્વવેત્તા
છે અજ્ઞાની નથી. (ક્રમશઃ)



આકાશથી સૃષ્ટિની ઉત્પત્તિ

(

લેન—સ્વામી શ્રી આનંદાનંદ સરસ્વતી)

[અનુસંધાન પૃ ૮૫૩ થી આગળ]

હવે એ સર્વ અક્ષરો પત્રછ મહારાજની સહિમા રહીને નવા નવા ખેલ ખેલવા લાગ્યા એ તણ અથવા ચાર અક્ષરો મળીને ઘરમાં રહેવા લાગ્યા અને શબ્દ ગૃહસ્થી બન્યા સાત આઠ શબ્દો મલીને સજા સખ ધી વાકયો બન્યા અને મહોત્સા માં રહેવા લાગ્યા હસ બાર વાકયો મળીને ગાતી રૂપ ધેરઆરૂ થયા અને ગામમાં રહેવા લાગ્યા હસ બાર ધેરઆરૂ મલીને ચૅપ્ટર થઈ ગયા અને પ્રભ બની શહેરોમાં રહેવા લાગ્યા પદર વીસ ચૅપ્ટરો મળીને એમ્પેરર થય સાહિબ બની ગયા અને અનેક પ્રકારના ખેલ ખેલવા લાગ્યા કોઈવેલ, વેદાંત, પુરાણ, સૂત્રિ, સ્મૃતિ, વિજ્ઞાનરી, મેગલન, મોવેલ, ન્યુસપેપર, ચોસ્ટલ ગાર્ડ, રૂલ્સ ગાર્ડ મિસ દર્શન ગાર્ડ ઇત્યાદિ પુસ્તકોમાં બિરાજમાન થઈને મનુષ્યોની સાથે વાતચિતનો આનંદ ઉઠાવવા લાગ્યા અને મનુષ્યો પછુ એ શબ્દોની સાથે શત સિવસ વાતોના ગપાટા મારવામાં સમય મિતાવવા લાગ્યા પુસ્તકોની ભક્તિ કરવા લાગ્યા, નોકરી કરવા લાગ્યા, સેવા કરવા લાગ્યા, પુજા કરવા લાગ્યા. મોટા મોટા ઑફિસો, વડીલો, અંતિસ્દરો, કલાર્કો, દુકાનદારો; અંકિસોમાં, દુકાનોમાં, મકાનોમાં પત્રછ મહારાજને લઈને એમનું જ આનંદ કરવા લાગ્યા નાના નાના કોફરાઓ પછુ રુપોમાં, કોઈ રુપોમાં અને કોસેમેમાં પત્રછ મહારાજની ભક્તિ કરવા લાગ્યા અને પત્રછ મહારાજ પછુ સર્વને નવધા ભક્તિ શિખરવા

લાગ્યા અનેક પ્રકારના જ્ઞાન આપવા લાગ્યા અનેક કોથ પરદેશની ધેર ઊઠાં ખબરો આપવા લાગ્યા એ પત્રછ મહારાજની ભક્તિ કરવાથી પત્રછ મહારાજને પ્રસન્ન થઈને અજનોને ચિત્ર ભગવાનના દર્શન કરાવવા માંગ્યા કોઈએ શખનાં, કોઈએ કૂંચના, ચકરનાં, ગુરૂના અને સજા સખ ધીઓના, મરેલાના તથા છત્રતાનાં દર્શન કર્યા આવી રીતે કલિપત અક્ષરોની મૂર્તિયે સાચા નિરાકાર જ્ઞાનનું પ્રત્યક્ષ દર્શન કરાવ્યું જેથી સર્વ લોક પુસ્તકોના ભક્ત બની ગયા જેણે પુસ્તકની ભક્તિ ન કરી હોય તે ખુબી ગણ્યા લાગ્યા એ પત્રછ મહારાજની કૃપાથી જે ઈસર (જ્ઞાન) દૂર હતું જેને ત્રીભે પુરૂષ સર્વનામ "ત્રે" ઈસર કરીને સમોધતા હતા તેજ ભગવાન સન્મુખ આવવાથી બીજો પુરૂષ સર્વનામ "ત્વ" ઈસર કરીને સમોધવા લાગ્યા અને શબ્દો પછુ "તત્ત્વમસિ" તે ત્વ છે કરીને ઉપદેશ કરવા લાગ્યા એ હરેક શબ્દોને રહેવાનું કોણું વિજ્ઞાનરી છે વિજ્ઞાનરીમાં શબ્દોનો મેળો છે એ હરેક શબ્દોમાં આનંદપૂર્વક મેળો તેા તેમના ઉપર Emperor બની કેટલી સજા છે, કેટલું ભેર છે જ મિનાનો કોઈ પછુ શબ્દ ખાલી નથી હરેકમાં આપક જ છે આ સહિમાં દૃષ્ય અને અદૃષ્ય, ચાર અને અચર જે કઈ દેખાય છે તે સર્વ શબ્દોમાં જ છે અને તે સર્વનો આત્મા જ છે

હવે આપ જરા રહેશન પર આવો અને ધનંજન તરફ નિશા કરીને જુવો તેના ઉપર મોટા અક્ષરોથી

E.I.Ry. લખ્યું છે અને તમારી ટીકિટ પર બારિક અક્ષરથી E.I.Ry. લખ્યું છે. મોટા અક્ષરથી લખ્યું છે તેથી તેને કંઈ જોરથી બોલવાનું નથી અને નાના અક્ષરથી લખેલું હોવા છતાં ક્ષીંચી બોલવાનું નથી. ખંનેમાં સમાન રૂપથી જ વ્યાપક છે. નાનામાં નાનો મચ્છર પણ હાથીની જાત લઈ લે છે અર્થાત મચ્છર પણ હાથી જેટલી તાકત રાખે છે. કહેવાની મતલબ એ છે કે જે જીવને Emperor અની સત્તાનું વિશેષ બળ મળે છે તેજ તાકતવાન યદ્ બળ છે. જેને જ્ઞાન થાય છે તે જાણે છે કે હું રાજા પણ નથી અને રંક પણ નથી હું તો માત્ર આ સંસારરૂપી નાટકથાળાનો એકટર છું. રાજા અને રંક એ તો માત્ર ચળેલા સ્વાંગ છે, વેષ-ધારીયોના વેષ છે.

—આત્માનું શુભ જ્ઞાન—

—ગવલ—

વેશ ધારી વેશ તૂ ધરે નવા નવા
ધરે નવા નવા દિવસતા પ્રસારવા—વેશ.
નામ રૂપથી અતીત છે તૂ સર્વદા
તથાપિ ચળદ સ્વાંગ તૂ ધરે નવા નવા—વેશ.
નિત્ય મુક્ત તૂ ન બદલે થયે કદા
આશ્વજી બળ રંગ તૂ ધરે નવા નવા—વેશ.
કાલનો એ કાલ મહાકાલ તૂ ખરે
મૃત્યુનેય રેતો નાશ તૂ નવા નવા—વેશ.
સર્વનું પ્રતિબિંબ તૂ જીવનનો ગ્રીષ્મ
જ્યોતિ પ્રજ્વલે પ્રકાશ દે નવા નવા—વેશ.
સર્વવ્યાપી તૂ દિગ્ધતિ મારી વળતો
જગન ભેરા નાદ તૂ ધરે નવા નવા—વેશ.
આનંદાનંદ વારી જાડ તૂ પર પ્રાણુ દું
દિવ્ય જ્ઞાનના પ્રસાદ દે નવા નવા—વેશ.
આવી રીતે વ્યંજન રૂપ ગમ્ય. મધ્યમ ગમ્ય

કલાદિ શબ્દોની મૂર્તિમાં પુલ કરીને, જાપ કરીને અને ધ્યાન કરીને તેમાં જોડેલા વ્યાપક સ્વર ભગવાનને લેયા. તેમની સાથે આપે પત્રજી મહારાજનાં વાતો પણ કરી, જ્યાં સુધી તેને નહિ જાણતા હતા ત્યાં સુધી તેને દૂર સમજીને ત્રીજા પુરૂષ સર્વનામ “તે ઇશ્વર” કરીને સંશોધન કરતા હતા અને જોખખ્યા પછી તે સન્મુખ દેખાવાથી બીજો પુરૂષ સર્વનામ “તૂ ઇશ્વર” કરીને વાત ચીત કરી હવે એ સ્વદેશમાં વ્યંજનરૂપ આપણે વિલય એટલે તદુપ બની જવું છે માટે આવો આપણે યોગાભ્યાસ કરીએ. વ્યંજન અને સ્વરની એકતાનું નામ યોગ કહેવાય છે.

હવે આપ અનેક પુસ્તકો રચી શકો છો, ગાયન બનાવી શકો છો અને ગાઈ પણ શકો છો. આવો જરા હારમોન્યમની પાસે આવો. અને આપના ઉદ્દેશ અક્ષરેથી બનેલા અથવા બનાવેલાં ગાયન ગાઓ. જુઓ હારમોન્યમમાં સા રે ગ મ પ ધ ની એ સાત તીવ્ર સ્વર છે અને રે ગ મ ધ ની એ પાંચ કોમળ સ્વર છે અને સર્વ મળીને બાર સ્વર છે. એ સ્વરોને જ્યાંથી વચ્ચડવાનું ત્યાંથીજ સા ગણાય છે અને સા છે એજ જ છે. બહુ હારમોન્યમમાં જેટલા સ્વર છે તે બધાજ જ છે. તેથી આલાપમાં સારિગમપધની સા, સાનીધપમગરે સા એમ બોલવાને બદલે આપ—અ અ અ અ અ અ અ, અ અ અ અ અ અ અ કરીને આદોહી અને અબ દોહી ઉદોહી સુદોહી જાપ કરો. અને કોઈ પણ ગાયન ગાઓ જેમાં કદપ વ્યંજનોનાં ગાયનો માત્ર એક જ માં વિલય થઈ જશે, અને આપને બોલતી પહેરે કે હારમોન્યમના હૃદય સ્વર અને હમારા કંઠ વ્યંજન એક થઈ જયા છે. એજ નાદ પ્રજ્ઞા કહે-

ચવાવાળા યૌગીના આનંદનું વર્ણન ચેષનાજ પણ પોતાની ચક્રસ્ર સ્પષ્ટતાથી કરવાને શક્તિવાન નથી તો બીજાની વાતજ શું કરવી. બસ અદમકારોસિ જે એ જ છે તેજ હું છું. હું નાદ બ્રહ્મ છું આ સર્વ વ્યજન રૂપ સંદિગ્ધો કર્તા હરતા હું છું આ સર્વ સૃષ્ટિ મૂર્તિ રૂપ છે અને હું જ છું.

આથી રીતે રામ, કૃષ્ણ, શંકર ઇત્યાદિનું પુજન, બપ અને ધ્યાન કરવાથી હમને સાચા ઈશ્વરનું દર્શન થઈ ગયું અને તે ઈશ્વરને હમારા હૃદયમાં બેસાડીને તદુપ થઈને સ્વપ્નમુક્ત બનીને આનંદ કરી રહ્યા છીએ સાકાર કહેા અથવા નિરાકાર કહેા હવે તો બંને આનંદ આનંદ છીએ

જે મૂર્તિને માનતા નથી તેને માટે મારા દર્શન ફલંભ છે દારણ કે નિરાકાર દેખાતા નથી અને સાકાર સ્વપ્ન બાવે તો તેને માનતા નથી નિરાકાર કોરા પત્રજી મહારાજ છે અને સાકાર લખેલા પત્રજી મહારાજ છે. બંનેથીએ માટે સાકાર અક્ષર હક્ષર છે અને અનપદને માટે તેજ પચ્ચર છે અનપદની પાસે સાકાર અક્ષરોનું આવડું વ્યર્થ છે તેમ મૂર્તિને નહિ માનવાવાળા પાસે પણ મારૂ આવડું વ્યર્થ છે. હું તેમનાથી સદા દૂર રહું છું તેથી તેઓ અને ત્રીજા પુરૂષ સર્વનામ “તે ઇશ્વર” કરીને સંબોધન કરે છે જેને રીગ્રસર ઇન્દ્રિયાનમેન્ટ યાવ છે તેને પચ્ચર તોડવાની સળ મલે છે તેથી જેહમથી છુન્યા બાદ પણ પચ્ચર તોડવાને અજવાસ કાવમ રહી ભવ છે અને તેથી તેઓ મૂર્તિને પચ્ચર સમજીને તોડવા તૈયાર રહે એમાં કઈ આશ્ચર્ય નથી

પરંતુ મારી અક્ષરરૂપ મૂર્તિનું પૂજન કરીને, બપ કરીને અથવા ધ્યાન કરીને તેને પોતાના હૃદયમાં ઘેવારી છે, તેની અને મારી એકતા ઢોવાથી તોદમ

એટલે જે તે છે તેજ હું છું. અદમકારોસિ કહે છે યાને પ્રથમ પુરૂષ સર્વનામ હું કરીને કહે છે અને જે મારી મૂર્તિને પોતાનીજ મૂર્તિ સમજે છે તે કદી મારી મૂર્તિને ખડન કરી શકતો નથી, પણ તેની પ્રતિષ્ઠા કરવામાં, તેનું સ્થાપન કરવામાં અને હરેક પ્રકારે તેનું માન વધારવામાં તત્પર રહેશે પોતાના હૃદયમાં અને બેસાડીને કહે છે કે સર્વ વ્યજનોની સંદિગ્ધા બ્યાપક થઈને રહેલા અને એળખેા મારી અને પોતાની એકતાને આશ્રય કરીને જે મને બજે છે તે ભલે પોતાનાજ દિલથી કોઈ કાર્ય કરે તથાપિ તેના કાર્ય મારાજ થઈ ભવ છે

શામકંધ્યાણુ

સર્વમા રહેલા હુંને જોગથી તે ખારા, ... એકતાનો આશ્રય કરીને હુંને ભજનારા સ્વધત્ત્વએ વડે તોયે કમો શામ મહારા-સર્વમા સુખ દુખ પણ પોતાને ભજે યૌગી વિવેકજી હુંને ભજે વિશેષ કરીને સારા-સર્વમા હું મોગીથી જાન્ય નથી ગઈ આ જગત સુખનારા બીજા સર્વનું હુંને ભજે જશ ન હુંથી ન્વારા-સર્વમા શઙ્ગાને જત પણ હું છું પુષ્પ રમેા સૌ મહારા જગદાર સૌના જુદા જુદા જેમ રૂપ આકારા સર્વમા હું સ્થ, હું ચક્ર, હું પૂઠરી, હું સાગર, હું દુખ, હું સુખ, એ સર્વ મારા રૂપ છે અને તે હું જ છું મારાથી તે ન્વારા નથી. આ સર્વ વિરવ મારાથી ઉત્પત્ત થયું છે અને હું જ તેનું બીજા છું. બીજા જેમ વૃક્ષથી ન્યારું નથી તેમ હું પણ આ વ્યજનરૂપ વિરવથી ન્યારા નથી એ વિરવ જશ્નના યક, શાળા પાતરા, ફલ, ફૂલ ઇત્યાદિ મારાં જ રૂપ છે અને જેમ એમના રૂપ અને આકાર જુદા જુદા છે તેમ તેના વ્યવહારો પણ જુદા જુદા છે તથાપિ

કાતર કંઠની આત' પોક્કર સાંભળતાંજ તેમનું
સિંહાસન હાલી ઉઠે છે, પછી તે કોઇ પણ પ્રકારે
તેની ઉપેક્ષા કરી શકતા નથી ! ગોવિંદના કંઈ
રૂઢને પણ વારમાં તેમનું આસન હલાવી નાખ્યું
અટ લઇને તે તેની પાસે આવી પહોંચ્યા, તેને યુગ-
કારીને પોતાના બોળામાં લઇ લીધા અને તેનાં
આંસુ લૂછતાં લૂછતાં બોલ્યા—“ભાઈ, રહીશ નહિં
ચાલ હું તને તારી પાઠશાળાએ મૂકી આવું !”

તે શ્યામ સુંદર સ્વરૂપને બેઠને ગોવિંદનું હૃદય
આનંદથી છલકાઇ ઉઠ્યું. આહા, આજ તો મારા
ગોપાલ ભાઈ છે ! રહવાનું ચાલુ રાખીનેજ તેણે
કહ્યું—“વારૂ, મને વચન આપો કે હવેથી મને
કોઇ દિવસ આ પ્રમાણે હેરાન કરશે નહિં, ત્યારે
જ હું છાત્રો રહીશ, ગોપાલ ભાઈ !”

“હાં, હાં, તું ચૂપ તો થઈ જા ! હવે હું તને
કંઈપણ રહાવીશ નહિ.”

“તો હું ગોલાવીય કે તરત તમે આવી જશો
ને ગોપાલ ભાઈ ?”

“હાં, હાં, રે ગોવિંદ, કહ્યું તો ખરૂં ! ચાલ,
ઉઠ, શરૂ તારી રાહ ભેટા હશે !”

“ઠીક, ગોપાલ ભાઈ ! આ તમે તમારા હાથમાં
શું પકડેલું છે ?”

“ગાંઠો, તું એટલું પણ જાણતો નથી ? એ
મારી બંસી છે, બંસી !”

“તમે તે વગાડ્યા કરો છો, ગોપાલ ભાઈ ?”

“હાં હાં, નહિં તો શું એમજ લઇને ફરતો
હઈશ ?”

“વારૂ, તો પછી વગાડોને, ગોપાલ ભાઈ !”

“ચાલ, તને પાઠશાળાએ જવામાં વાર થઈ
રહી છે !”

“લાગવા દો વાર ! હું પંડિતજીને કહી દઈશ

કે હું શું કરું ! વાર ગોપાલ ભાઈએ લગાડી, તે
જલદી આવી જત તો શા માટે વાર થત !”

“નહિં, ગોવિંદ ! તેમને મારા સંબંધી વાત
કહીશ નહિં !”

“ઠીક, તો તમે મને બંસી વગાડીને સંભ-
ળાવો, નહિં તો હું જરૂર કહી દઈશ.”

“વારૂ, સાંભળ ! હું બંસી વગાડી સંભળાવું
છું, પણ—તારા શરૂઆત માટે નામ ન
લઈશ.”

“તમે સંભળાવો તો ખરા ભાઈ ! હું તેમને
કંઈજ કહીશ નહિં.”

મુરલીધરની મનમોહની મુરલીના ધ્વનિથી
આખું જંગલ હચમચ થઈ ગયું ! ગોવિંદના આનંદની
તો કોઇ સીમાજ ન રહી.

X X X X

“હું શું લાવું શરૂ ?”

“તારે કાઈ લાવવાનું નથી, ગોવિંદ !”

શરૂજીને ગોવિંદના ઘરની સ્થિતિનું ખૂબ જ્ઞાન
હતું, તેથીજ પિતાના આદેશ માટે તેમણે તેને કંઈ
પણ નહિ લાવવાનું કહ્યું. પણ ગોવિંદ, લલા એ
કેવી રીતે સહન કરી શકે કે બીજા બધા સહુ પાઠીએ
તો શરૂજીને માટે કંઈ ને કંઈ લાવે અને પોતે
કંઈજ ન લાવે ! તેણે ફરી પૂછ્યું—

“કંઈક તો આજા આપો, શરૂ !”

બાળકની હઠ સમજીને તેમણે કહી દીધું—

“વારૂ બેટા ! તું એક લોટો દુધ લઈ આવજો !”

X X X X

એક લોટા દુધની વાત સાંભળીને બ્રાહ્મણીના
પ્રાણ સૂકાઈ ગયા. ઘરમાં તો એકાદશીના ચોગ
છે, લોટો ભરીને દુધ ક્યાંથી આવે ? ગરીબીના
કાળથી તેનું હૃદય વ્યાકુળ થઈ ઉઠ્યું. આજ તેના

લાઠિલા લાલના ગુરૂદેવને ઘેર શાક છે અને પોતે તેમને એક લોટો દુધ પણ આપવા અસમર્થ છે ! તેને રડવું આવી ગયું માને રડતી બેઠને ગોવિન્દની આંખોમાં પણ આંસુ ભરાઈ આવ્યાં. તે બોલ્યો—
તો રહેવા દે મા ! હું ગુરૂભને કહી દઉં કે હું શું કરું ગુરૂભ, મને દુધ ન મળી શકું !”

એકાએક માને ગોવિન્દના ખારા ગોપાલ ભાઈની વાત યાદ આવી ગઈ. તે બોલી—“બેટા ! તું એક કામ કેમ નથી કરતો ?”

“શું કરું મા ? બતાવ !”

“હું તારા ગોપાલ ભાઈને કહી દેજે, તે તને તરતજ દુધ લાવી આપશે !”

ગોવિન્દ પ્રસન્નતાથી પ્રકૃષ્ટ થઈ ઉઠ્યો અને કહ્યું—“આ તો તે ઘણીજ સારી વાત યાદ દેવરાવી, મા ! અહા, કેટલા સારા છે, મારા ગોપાલ ભાઈ !

× × × ×

“કેમકાન ફેડી નાંખે છે ? એક લોટો દુધ લાવ્યો છે તેમાં આખી પાકયાળા ગળવી મૂકી છે ! લઈ લો, ભાઈ દેવમત ! એનું દુધ કેાઈ વાસણમાં ખાલી કરીને અલગ મૂકો !” ગુરૂભના મોઢાના આ શબ્દો ગોવિન્દના કાળજમાં તીવ્ર ભેગા વાગ્યા ! હાથ ! જરીકોની કોટોને પણ લોકો આટલી ઉપેક્ષાની દ્રષ્ટિથી જુએ છે ! જરીકનું અલિધાન-સ સા-રની દ્રષ્ટિમાં કંઈ મુલ્યજ રાખતું નથી ! પણ, — જેમણે—

દુર્લભન મૂલ્ય મેળો લાગી, કાચ વિદુર થર આઈ !

જરૂરી કે જાહેર આયે, મનુત પ્રીતિ લગાઈ ॥

તે પ્રભુ બહા આ કેમ સહન કરી શકે ? રીન અને દુઃખીના એક માત્ર આધાર તે પરમ પાવન પ્રભુ એ ક્યારે સહન કરી શકે છે કે તેમના પ્રિય રીન જનોની કોઈ આવી રીતે ઉપેક્ષા કરે ! દ્રોષીની

ચીરની પેઠે દુધના લોટામાં તે દુધરૂપે પ્રવિષ્ટ થઈ મથા. ગુરૂભના ઘરમાં જેટલાં વાસણ હતાં—મોટી મોટી કોઠીઓ, બાલ્ટીઓ, લોટા આદિ-સર્વ તે નાની સરખી લોટીના દુધથી ભરાઈ ગયાં અને તે પછી લોટીમાંનું દુધ તો તેમનું તેમજ રહ્યું ! અન-તના દ્વારા અપાવલી વસ્તુ પણ અનંતજ હોવી નેહએ ! તેથીજ તો—

મરત મરત કર મરણ,

મુખે ન છુટિયા કૃપા !

પૂરું કાચ પણ કેવી રીતે ?—તેમાં જે પૂરોના કાચ લાગેલો હતો ! અહા, પૂરોમાંથી નીકળેલી વસ્તુ અપૂર્ણ કેવી રીતે હોય !

જ પૂર્ણમદ પૂર્ણમિદં પૂર્ણપૂર્ણમુદચયતે ।

પૂર્ણત્વ પૂર્ણમાદાય પૂર્ણમિવાવશિષ્યતે ॥

ત્યાં આમજ છે ત્યાં પછી લોટાનું દુધ પૂરું ન કાચ તો તેમાં આશ્ચર્ય શું ? કહ્યું છે કે—

જ પર કૃપા રામ કી દોઈ ;

તા પર કૃપા મરદિ સજ દોઈ .

પ્રકૃતો વરદ હસ્ત જેના ઉપર પડી ગયો તેના ઉપર કોણ કૃપા નહિ કરે ! કષ્ટનાર પહેલાં જે ગોવિન્દ સૌની ઉપેક્ષા તથા અનાકરને પાત્ર હતો તેજ આ સમયે સર્વના આદર તથા શ્રદ્ધાનું એક માત્ર કેન્દ્ર બની રહ્યો હતો. કેમ ન બને, તે પ્રભુ જેને અપનાવે છે તેનો તિરસ્કાર કરવાની હિમતજ કેાનોમા છે ?

અરેખર—

“સમ મેં વો સુહાગિન દે

હુસ કે કિ પિયા આહે !”

× × × ×

“ચાલ બેટા ગોવિન્દ ! આજ હું તારી સાથે

આવીશ. આજ તારે તારા ગોપાલભાઈનાં દર્શન મને પણ કરાવવાં પડશે !”

“આલો શુદ્ધેવ ! મારા ગોપાલભાઈ તો ઘણા હોળા છે. જેવા હું તેમને બોલાવું છું કે તરતજ તે હસતા હસતા મારી પાસે આવી જાય છે અને મને ઘેર પહોંચાડીને આલ્યા જાય છે રસ્તામાં તે મારી જોડે ઘણી મીઠી મીઠી વાતો કરતા આલે છે અને કોઈકોઈ વાર પોતાની સુંદર વાંસળી વગાડતા જાય છે ! ઘણાજ સુંદર છે મારા ગોપાલભાઈ ! આપ તેમને જોશો, તો કંઈ થઈ જશે શુદ્ધેવ ! કોઈ એક વાર તેમને જોઈ લે, પછી થું જીવનભર તે તેમને ભૂલી પણ શકે છે ?”

“ઐટલાજ માટે તો હું તેમનાં દર્શન કરવા આહું છું, બેટા ! પણ શું ખગર, મને તેગનાં દર્શન થશે કે નહિં, ગોવિન્દ !” થાય કેમ નહિં શુદ્ધ ! મારા ગોપાલભાઈ તો ઘણા સીધા છે. એકજ અવાજમાં તો તે આવી જાય છે ! આ લો, હવે જંગલ આવ્યું. હવે હું તેમને બોલાવું છું :—

“ભાઈ ! ગોપાલભાઈ !! આવો !!! હેં, આજ ગોપાલ ભાઈ આવતા કેમ નથી ? શું વાત છે ગોપાલભાઈ ? બીજે તો ક્યારેય તમે આટલી વાર લગાડતા નહોતા !”

“આજ તું એકલો નથી, ગોવિન્દ ! પછી મને શા માટે બોલાવે છે ?”

આ વીણાના જેવો મધુર સ્વર સાંભળીને શુદ્ધેવ કૃતકૃત્ય થઈ ગયા ! પણ જેનો સ્વર આટલો મીઠો છે, આટલો લલિત છે તે સ્વયં કેટલા સુંદર અને મનમોહક હશે—જેવો વિચાર આવતાં તેમની દર્શન પિપાસા ઘણી તિવ્ર થઈ ઉઠી, તેમણે ગોવિન્દને પ્રાર્થના કરી કે બેટા તું તારા ભાઈનું એક વખત

મને દર્શન કરાવી દે ! શું તારા શુદ્ધની આટલી વાત પણ તું નહિં માને ?”

ગોવિન્દ બોલ્યો—“ગોપાલભાઈ ! શુદ્ધ તમારાં દર્શન કરવા આલે છે. આવો, એક વખત તેમને દર્શન આપી જાઓ !”

શુદ્ધએ જોયું કે પ્રકાશનો એક મોટો તેજ પુંજ તેમની નજીકમાંજ ઉભો છે, પણ તેમાં તેમને કંઈ પણ દેખાતું નથી. તેની સામે તેમનાં નેત્ર એકાએકજ ધંધ થતાં જાય છે. ગોવિન્દ બોલ્યો—
“જોયા શુદ્ધ ! મારા ગોપાલભાઈ કેટલા સુંદર છે !”

“ક્યાં ગોવિન્દ ? મને તો પ્રકાશ જગર બીજું કંઈ પણ દેખાતું નથી.”

“આમ શું કરો છો ગોપાલભાઈ ! શુદ્ધને તમે તમારાં દર્શન કેમ આપતા નથી ?”

“ગોવિન્દ ! તમારા શુદ્ધ હોવાને કારણે તેમને આટલા પ્રકાશનાં દર્શન થઈ ગયાં એજ બહુ છે, નહિ તો તે તેટલાનાય અધિકારી નથી. તેમનું હૃદય તો હજી સ્વચ્છ થયુંજ નથી. તેમનામાં પોતાની પંડિતાર્થ, વિદ્વત્તા, મોટાઈ, કુલિનતા, પદ, વેશવ, અને ધન સંપત્તિનો અહંકાર ભરેલો છે; જ્ઞાનનો ગર્વ તેમની નસ નસમાં ભરેલો છે, પછી તેમને મારાં દર્શન કેવી રીતે થઈ શકે ?”

તેમની કૃપા કટાક્ષથી શું નથી બનતું ? જ્યદેવ પંડિતનાં અંતર્યંજી ભૂલી જ્યાં. પ્રેમથી ગદ્દ ગદ્દ થઈને તે શ્યામ સુંદરનાં ચરણોમાં ઝૂકી પડયા !

X X X X
બંનેએ ઘેર પહોંચતાંજ જોયું—ગોવિન્દની માતાના ખોળામાં ગોપાલ સુતેલો છે, અને કહી રહ્યો છે—“મા, બૂબ લાગી છે ! તું મને ગોવિન્દના ભાગની રાટલી ખાવાને આપી દે, હું ગોવિન્દને સમજાવી લઈશ !”

સૌકા ઉપરથી પોતાની રોટલી ઉતારીને ગોલિન્દ તેના તરફ ફેરી મથે—“લે, લે, ભાઈ ગોપાલ ! આજ મારે ખાવુંજ નથી શુદ્ધિએ મહુજ આશ્રુ કરી કરીને ખવરાવ્યું છે ”

“કેમ નહિ ખાય ? મારી સાથે સાથે તારે પણ ખાવુંજ પડશે.”

બન્ને ભાઈ એક રોટલી તોડી તોડીને ખાવા લાગ્યા, શુદ્ધિએ મુગધ દ્રષ્ટિથી આ પ્રેમલીલા જોઈ રહ્યા પ્રાણછી આસુ લૂછીને પોતાના બન્ને લાડિ લાઓમાટે પાણી લાવવા ચાલી ગઈ

આવુ દુર્લભ સૌભાગ્ય એકમાત્ર પ્રેમીઓનીજ સપત્તિ છે, તેજ આવા આનંદને ઉપસોગ કરી શકે છે અમારા જેવા પામર કીસા તો તેમના આવા અનુપમ આનંદની કલ્પના પણ કરી શકતા નથી !

જલ્દા તે પણ શું મલુખ છે કે જેના હીલમા આવા શ્યામ સુંદર સોના ચારની તથાવિર ન સમાઈ જાય ! એકવાર સમાવવાની જરૂર છે પછી તો તે સ્વયંજ મરત યદુને એક પ્રેમ હીવાનીના સ્વરમાં સ્વર મેળવીને કહી ઉઠશે કે—

ઝાઈ ઝહો કુવટા કુબીન અકુબીન ઝહો,
ઝાઈ ઝહો રશિનિ કલકિનિ કુતારી હો .
કેમો પરસેલ નરનોક ખર લોશનિ મે,
લીન્દો મે અલોક સોક સોકનિ તે ન્યારી હો
તન જલ્દ મન જલ્દ ‘ફર’ શુશ્ન જલ્દ,
પ્રાન કિન જલ્દ ટેક દરતિ ન દારી હો .
વશવન વારી, મનવારી કી મુકટ વારી,
પીત ખરવારી વદિ મુરતિ પે વારી હો
લાજ, યરમ, કુળ, મયાર્દા, કાલદા સર્વે ઝાઈ
છટી જશે ! તે અસીની મહુર તાન સામળવાની
પ્રબળ આકાશથી એકવાર ડોહડુ હૃદય વ્યાકુળ
ઘઈ જાય, તો પછી શું-પછી તો આનંદજ આનંદ
છે ! પછી તો ન્યાં જુઓ ત્યાં, હર જગાએ, હર
ચીજમાં તેજ ખ્યારાની મનમોહનિ સૂરત નજરે
આવવા માંડશે પછી તો મરત યદુને એજ
કહેવાયે કે—

હર ચન્દ્ર હર શાખ મે હર વર્ષ મે હરખાર મે,
અરમે બીના આકિએ જલ્દા કહાં મિલતા નહો
દનતા દું તેરી કુદરત કા તમાકા ખર મ,
કિસ જનક કિસ ચીજ મે જલ્દા તેજ ખાતા નહો

પ્રાચીન ચાતુર્વર્ણ વ્યવસ્થા

લેખીકા—ગુણીયજ ઇહેન ભટ્ટ.

‘ચાતુર્વર્ણ’ મયા રુદ્રે ગુણર્મવિમાગદા ।

લલ્ય કર્તારમયિ મા મિદુષ્યકર્તારમવ્યયમ્ ॥

—શી. ૧૪૨

ચારે વર્ણની વ્યવસ્થા શુદ્ધ અને કર્મના સ્વેદ પ્રમાણે મેજ નિર્માણ કરી છે, હું તેનો કર્તા બને નિર્લેપ દોવાથી બહતી પણ છું જગતધારણ અને ૧૨૫

પોષણ કાયમ નથે તે માટે જ્ઞાન વિજ્ઞાનથી મુગ્ધ ગુરૂવની નેટલી જરૂર છે તેટલી જ જરૂર સ્ત્રોત્ય લેશ્ય અને શુદ્ધોની પણ છે, પરન્તુ આ બધા વર્ગોએ પોતપોતાનાં નિર્માણ કાયદાં કર્મો ઇન્ધરાપણુ છુદ્ધિથી નિયમીત કરવાની ખાસ જરૂર છે અને એક વર્ગે બીલા વર્ગના કર્મ તરફ લાલચા રાખી

કે દેશ રાષ્ટ્રી કર્મમાં ગરબઠ કરવાથી એટલે કે બીજાનાં કર્મો કરવાથી પર ધર્મો ભયાવહ જેવી સ્થિતી થાય છે માટે જે વર્ણમાં જન્મ થાય તેને ધર્મસ્વર નિર્મીત સમજી પોતાને ધર્મો ધર્મસજ્જા સમજી ઉત્સાહથી સારાસાર વિચારથી કરતા રહેવાની અતિ અગત્ય છે. પુર્વના રૂષિમુનીઓએ વર્ણ વ્યવસ્થામાં એવા ઉચ્ચ આદર્શની સ્થાપના કરી છે કે હજારો વર્ષથી એ આદર્શ દ્વારા નિયંત્રીત થઈ ભારતીય જીવન સાક્રદ્ય શાન્તીના માર્ગે પ્રવાહીત થઈ રહ્યું છે. વર્ણાશ્રમ વ્યવસ્થામાં ખાસ લક્ષ આપવા યોગ્ય બાબત એ છે કે ભારતીય સમાજના સર્વોચ્ચ સ્થાન ઉપર બ્રાહ્મણ વિદ્વાન સંન્યાસીઓને પ્રતિષ્ઠિત કરવામાં આવ્યા છે અને એ વર્ગને સમાજના આદર્શ પ્રતિકરૂપે આદરસહ માનવામાં આવે છે સમાજના બીજા ત્રણ વિભાગના અખાલ જુદો બ્રાહ્મણ અને સંન્યાસીઓના અનુશાસન પ્રમાણે અનુસરે છે અને પોતાના જીવનનું વહન કરે છે પરંતુ એ વિદ્વાન વર્ગ બ્રાહ્મણ અને સંન્યાસીઓ પ્રાચીન કાર્યમાં અર્થ અને કામ તરફ કેવળ ઉઠાસીન રહેતા હતા, પોતાની જાત માટે સુખ એકધર્મ અને પ્રભુતાની આંકાક્ષાથી પ્રેરાઈ તેઓ કોઈ પણ પ્રકારનું કાર્ય આરંભ કરતા નહોતા. એટી વ્યાપાર શિલ્પ કળા આદી બ્રાહ્મ સંમતી વધારવાના ઉદ્દેશમાં તેઓ કાળાંતરે પણ ભાગ લેતા નહોતા, દેશના શાશન સંરક્ષણ અને ઈંડ વિધાનનું કાર્ય પણ તેઓ કોઈ કાળે કરવામાં પૂવત થતા નહીં અને કોઈના તાબામાં રહી નોકરી પણ તેઓ કરતા નહીં કાંત્રુ કે વણધર્મ વ્યવસ્થામાં આ કાર્યોને બ્રાહ્મણ ધર્મથી પ્રતિક્રુલ ઠરાવવામાં આવ્યાં હતાં માત્ર તત્વોની બોળ કરવી એજ આ વર્ગનું કર્તવ્ય હતું હાંલમાં જેને શોધક કહેવામાં આવે છે એવી રીતનું

કાર્ય આ વર્ગ તે પ્રાચીન કાળમાં અતિ ઉત્તમ રીતે પાર પાડતો હતો. સર્વ જગતનું કલ્યાણ શી રીતે થાય, એજ આ વિદ્વાન વર્ગનું લક્ષ્ય હતું અને જેના પરીણુમેજ શુદ્ધાતિ શુદ્ધ જ્ઞાન બ્રહ્મદશન જેવો સર્વોચ્ચ આદર્શ ભારતીય પ્રજાને વારસામાં મળ્યો છે. આ વર્ગ હાલ જેને દરિદ્રતા જેવા હલકા નામથી ઓળખવામાં આવે છે તેવા ત્યાગને તો પોતાની સ્વેચ્છાથી પોતાના જીવનનું કેન્દ્ર બનાવી લેતા હતા સમાજની ઉત્તરી શી રીતે થાય, એ વિના આ વર્ગનું લક્ષ્ય બીજું કોઈજ નહોતું, મનુષ્ય જીવનના સર્વ શ્રેષ્ઠ આદર્શની સ્થાપના માટે આ વિદ્વાન વર્ગ પોતે સાંસારીક જીવનથી કૌટુંબીક જરૂરીયાતથી ઘેરાયલા છતાં ત્યાગ, પરોપકાર, નિસ્વાર્થ જીવી જ્ઞાનદાનાદિ અતિ ઉચ્ચ આદર્શોનું પ્રતિક સમાજ આગળ સ્થાપિત કર્યું છે, જેના જગતમાં આજ દીન લગી જોડો નથી અને ભાવીમાં પણ એ મુખ બનો આદર્શ મળવો અતિ દુર્લભ છે. આવા મહંદ પરોપકારના કાર્યથી સમાજમાં બ્રાહ્મણોનું સ્થાન સર્વોચ્ચપદે છે. અને તેમના દેહ પોષણનું, શારીરિક જીવન નિર્વાહનું અને સાગમય તપસ્વી જીવન અંગે લાગતી તમામ જરૂરિયાતનું કાર્ય સમાજે પોતાના શરીર ઉઠાવી લેવું જોઈએ, એ સ્વાભાવીક જ છે અને તેથી પ્રાચીનકાળથી રાષ્ટ્રીય શક્તિ તથા આર્થિક શક્તિના સમાજના સંચાલકો અતિ શ્રદ્ધા અને સન્માનસહ બ્રાહ્મણ વર્ગની સ્વતંત્રતા અને સગવડ જળવાઈ રહે એ માટે હરદમ પ્રયત્નશીલ રહેતા આવ્યા છે, રહે છે. એટલુંજ નહીં પણ બ્રાહ્મણ અને સંન્યાસીઓના જ્ઞાનોપદેશ સુન્ન બંધ તર ત્રણ વર્ણના લોકો પોતાની શક્તિ અને સંપત્તિને ઉપયોગ બંદુજન હીતાથ' ધર્મસ્વર પ્રત્યર્થ કરે છે અને એમ કરી જીવનની કૃતાર્થતા માને છે. વર્ણાશ્રમ

વ્યવસ્થાનું આ મુખ્ય અંગ છે અને તેથી બાહ્ય સંપત્તિથી ઉદાસીન સ્વાર્થ વૃત્તિ રહિત વિશ્વકલ્યાણ પ્રેમી એ વર્ગ ઉપર જગતની મુલ્યેભ્ય વ્યવસ્થા માટે નિયમન કાયદા કાનુન વિધીનિવેશ રચવાનો બાર રાજવામાં આવ્યો છે કારણ કે એ લોકોને પોતાનો કોઈ વ્યક્તિગત યા યેતીગત સ્વાર્થ ન હોવાના કારણે બધી વસ્તુના પ્રતિનિધી થવાની યોગ્યતા ધરાવતા હતા તેથી શ્રાક્ષણ અને સન્યાસીઓ નિષ્પક્ષપાત રીતે જગતનું ધારણ પોષણ અને કલ્યાણ થી રીતે ધાય એવી બાબતોના નિયન મુનિપુણ વિચાર દ્વારા કરાવતા હતા અને તેથી જગતનો કાર્યક્રમ સરળતાથી ચાલીના માર્ગે ચાલતો હતો અને હાલો વર્ષથી હીન્દુઓની હજી સનાતન ધર્મને નિભાવી રહી છે હમારી એ પ્રાચીન વર્ણ વ્યવસ્થામાં બીજી એક મુખ્ય ખાસ ધ્યાન આપવા જેવી બાબત એ હતી કે એ દારિદ્ર્યરતિ વિશ્વપ્રેમી શ્રાક્ષણો અને સન્યાસીઓની આજ્ઞાનુસાર દાસીય સમાજ રાણતું રક્ષણ અને શક્તિ વધક કાર્ય ન્યાય સમજ રીતે સમાજના સેવકની ભવનાથી કરતા હતા અને સ્વયં અર્થ લોભુપતાનો સ્પર્ધ પૂજ્ય થવા દેતા નહીં સમાજની કૃષિ શિવ્ય વાણીજ્યવિની વ્યવસ્થામાં પોતાનો હાથ ન રહે, એની સંપુર્ણ રીતે કાળજી ધરાવતા અને સમાજની આંતર સમ્પત્તિની વ્યવસ્થાનો બાર અધ્યારમવાદી રૂપિઓના હાથમાં હતો, તેવીજ રીતે સમાજની બહુ સપત્તિની વહેંચણીને ત્યાં ખેતી વાણીજ્ય શિવકળાના ઉત્કર્ષનો સર્વ બાર વેશ્ય વર્ગના શીરે રાજવામાં આવ્યો હતો દાસીયવર્ગ સમાજના પ્રત્યેક અંગે શક્તિ વૃદ્ધિ થી રીતે ધાય એ કાળજી ધરાવતા હતા તેજ રીતે વેશ્ય સમાજના કુળી શિવ વાણીજ્યને ઉત્કર્ષ કર્મ સમાજનું પ્રત્યેક અંગ ધન ધાન્યના

પરિપુર્ણ પોષણથી સુદૃઢ થી રીતે ધાય તેની કાળજી ધરાવી નિસ્વાર્થ સેવા ભાવથી આ કાર્ય પાર પાડતા હતા અને વેશ્ય વર્ગનો ખજાનો એ કાળખાં જન સાધારણ માટે વિશેષ કરી શ્રાક્ષણ, સન્યાસી, શિવદી, કુદા, લેખકા, રાશી, રક્ષ, અનાય વિગેરેના હીત માટે અહોનિશ ખુલે રહેતો હતો કોઈ જગ્યાએ દેશમાં દુર્ભિદ્ય પડે તેને પહોંચી વળવાની, મહામારી જેવા જીવલેણ ઉપદ્રવો પેદા ધાય તેના ચમનની, દેશ ઉપર બાહ્ય આક્રમણ આવે તેને સામનો કરવામાં જોડતી સ પતિની વ્યવસ્થા કરવા વિગેરેની જવાબ દારી વેશ્ય વર્ગ ઉપર રહેતી હતી અને કમગુરો, ભામાશાહ આદી એના દ્રષ્ટિ રૂપેજ હતા ખુદિવાન લોકો ખુદિદીન વ્યક્તિઓનું ચોષણ ન કરે એ જોવાની અને તકે એ વ્યવસ્થા કરવાની જવાબ દારી દાસીય રાજ્યો ઉપર રહેતી હતી અને તેમાં ને રાજ્યોની લેશ પશુ નિબાળજી અગર શિથોલના જણાવી તો ઉપદ્રો શ્રાક્ષણ વર્ગ પોતાના જ્ઞાન અને તપના સામર્થ્યથી દાસીય રાજ્યોની ખુદિને ઠેકાણે આજુના હતા ને પ્રમાણે રાષ્ટ્ર શક્તિનું સ ચાલન કરનાર દાસીયવર્ગ માટે અર્થ લાભ સાફ ખેતી શિવ્ય વિદ્યા વાણીજ્યવિદ્ય સ્વધર્મ નાશક ત્યાં અર્થદા હીલુતાના કાર્યો ગણાતા તે મુજબજ કૃષિ વાણીજ્ય ડિ દેશની સ પતિ વધારવાના કાર્યમાં જોડાયલા વેશ્યો માટે રાષ્ટ્ર શક્તિનું સ ચાલન કરવાનો તેમજ સમાજ ઉપર પ્રભુત્વનો દાવો કરવાનો લોક કરવાનું કાર્ય સ્વધર્મ નાશક ગણાતું હતું કારણ પ્રભુત્વ અને અર્થ આ બે વસ્તુમાંજ મોહ છે અને સમાજની આર્થિક શક્તિ ત્યાં રાષ્ટ્રીય શક્તિ એકજ વર્ગના હાથમાં રહેવાથી ધર્મ અર્થદા તથા વર્ણવ્યવસ્થા ના હોવાનો એ હ તે વર્ગને ધાય એ દેખીતી વાત છે અને હાલ આપણી નજર પ્રત્યક્ષે તે વાત દેખાઈ

રહી છે કે રાષ્ટ્રશક્તિ યા અર્થ શક્તિનું સંચાલન એક જ વર્ગના અધિકારમાં હોવાથી સમાજનાં પ્રત્યેક અંગે છિન્ન ચિન્ન અવસ્થામાં આવી પડ્યાં છે મહાભારત સુદના કાળથી આ દુર્દેશ આ ધર્મ ભુમી ઉપર આવી પડી છે. કારણ વર્ણશ્રમ વ્યવસ્થામાં ગરબડ થઈ છે આ ગરબડ તો ત્યારે જ હર થઈ શકે કે ન્યાય ધર્મનો મૂર્તીમાન આદર્શ બ્રાહ્મણ વર્ગ રાષ્ટ્ર શક્તિ અને અર્થ શક્તિના સંચાલકોનું યથાર્થ પ્રથકરણ કરે અને તે કરેક ઉપર પોતાના જ્ઞાન અને તપના પ્રભાવથી સુભૃં રીતે કંકડ નજર રાખે. હવે રહી સમાજના ચોથા વર્ગ શુદ્ર ભત્તીની ખામત બ્રાહ્મણોના ધર્મ કાર્યમાં ક્ષત્રી-

યોના રક્ષણ કાર્યમાં વૈર્યોના વાણીજ્યાદિ કાર્યોમાં એ ભત્તીએ પોતાના અંગથી ભનતી તમામ સેવાની મહદ આપવાની વ્યવસ્થા અને તેના બદલામાં એ લોકોના ઘરણુ પોષણનો તમામ ભાર ઉપરના ત્રણે વર્ગે પોતાના શીરે રાખ્યો હતો. એ રીતે પ્રાચીન ઇષ્ટિઓએ ગંધી માનવ ભત્તને ચાર વિભાગમાં વહેંચી કર્મ સમન્વયથી સમાજને સુદૃઢ બનાવ્યો હતો અને આ સમાજ રચના એવી હતી કે બીજાના કર્મની લોહપતા, બીજાના ધનની અપેક્ષાથી થતી પ્રતિદંદીતા અર્થાત્ સંઘર્ષના ક્ષેત્રને અતિશય સંકુચીત બનાવી દીધું હતું અને મનુષ્ય જીવનની સંપૂર્ણ સાધકતા ભારતીય સમાજમાં પરિપૂર્ણ ક્લીતાઈ થઈ હતી.

સાધન

(લે.—શ્રીમત્ સ્વામી જ્ઞાનાનંદજી સરસ્વતીના ઉપદેશ)

(અનુવાદક અને પ્રેષક:—જયકૃષ્ણ શાસ્ત્રી કાવ્યતીર્થ)

પ્રાતઃપ્રભૃતિ સાચાન્તં સાધ્યાહ્વાત પ્રાતરન્તતઃ ।

યત્ કરોમિ જગન્માતસ્તદસ્તુ તવ પૂજનમ્ ॥

—તત્ત્વ

પ્રાતઃકાલથી સન્ધ્યાસુધી અને ફરીને સન્ધ્યાથી પ્રાતઃકાલ સુધી કે જગન્માત ! હું જે કંઈ કરું છું, તે ગંધી તમારી પૂજા છે. આ પ્રકારના જ્ઞાનમાં સંસારમાં કર્મમય રહેવું એજ સંસારીનું ઉત્તમ સાધન છે. અર્થાત્ ભગતિક બધા કર્મોમાં ઈશ્વરને જોવો, બાણવો અને અનુભવ કરવો એજ સાધન છે. કર્મનો પ્રેરક, કર્મ, અને કર્મનો લોકના જે એક માત્ર ચેતન સ્વરૂપ આત્મા છે, તેના સર્વ કાંઈને અનુભવ થઈ શકે છે. કારણ કે ચેતન વિભાનું કે જડ બોલીને તમે જે બધાને બાણો છો, તેમાં મૂંઝા, કર્મ, અને ભોગ નથી. આ જ્ઞાનમાં તમે સંશય રહિત છો, તેથી જ જ્ઞાન અને કર્મ એ આત્માનો ધર્મ છે અથવા આત્માજ છે, એમાં સંશય નથી. ઈશ્વરજ્ઞ જ્ઞાન સ્વરૂપ, અને જ્ઞાનની સ્વૃલ મૂર્તિ કર્મ છે. કર્મ અને જ્ઞાનમાં

બૃહાપણને બાળકજ બુદ્ધિ છે. જ્ઞાની પૃથક દર્શન કરતો નથી. આ વાતને ભગવાન શ્રીકૃષ્ણે ગીતામાં સ્પષ્ટ કહી છે.

સાંલ્કયોગો વૃથાગ્ચાલાઃ પ્રવદન્તિ ન પચ્છિતાઃ ।

તેથી એક જગ્યાએ બેસીને બેચાર કલાક પૂજા પાઠ, જપ, ધ્યાન, વગેરે કરવું, એ કરતાં તમારાં બધાં વ્યાવહારિક કર્મોની અંદર ઈશ્વર દર્શન કરવું અથવા ઈશ્વરને બાણવો અને સમજવાની ચેષ્ટા કરવી એજ ઉત્તમ ઉપાસના છે. ઈશ્વર જ્ઞાન શૂન્ય ઉપાસના કરવી એ કરતાં ઈશ્વર જ્ઞાનમાં જગત્તમાં કર્મમય રહેવું અથવા જગત્તમાં બધાં કર્મો ભગવાનની જ સેવા કરે છું એ જ્ઞાનમાં કરવાં એ ઉત્તમ ઉપાસના વા સાધન છે. ભગવાન શ્રીકૃષ્ણને ઉપદેશ પણ એજ પ્રમાણે છે.

યત્ કરોમિ યદ્દર્શનાસિ યજ્ઞુરોપિ દદાસિ યત્ ।

યત્તપસ્યાસિ કૌતૈવ સદ્કુરુવ્ય મદર્પણમ્ ॥

—મીતા

હો કૌતેય ! તું જે કંઈ કર, આહાર કર, દાન

કર, અને તપસ્યા કર તે બધું જ ભારમાં સમર્પણ કર, અથવા ભગવાનનું જ કર્મ કરું છું અર્થાત્ ભગવાનની તૃપ્તિ માટે કર્મ કરું છું એ જ્ઞાનમાં કર

કર્મ ન કરવા કરતાં કર્મ કરવું શ્રેષ્ઠ છે કારણ કે અસંયત મન વિષય ચિન્તા કરીને અધિકતર મલિન થઈ જશે. તેથી જ ભો કલ્યાણની ઇચ્છા કરતા હો તો મનને વિષય ચિન્તા કરવાને વખત ન આપો અને વિરવાસ કરો કે કર્મ થયા નથી કર્મનું ફલ જ્ઞાન છે હંસવર બધા જીવોની પાસે કર્મ કરાવીને ફલરૂપ જ્ઞાન આપતા આપતા વધારતા વધારતા પરમ જ્ઞાન પરમાત્માની તરફ આકર્ષણ કરે છે તેથી જ ભગવાનનું નામ કૃષ્ણ છે અથવા આકર્ષણ શક્તિ પ્રકાશિતા દુર્ગા છે કે જે દૂરવધાને મટાડે છે—ભગવાનમાં ભેડે છે તણી તે પ્રકાશ વિદ્યા સ્વરૂપિણી ભગવતી દુર્ગા વા ચિત્તિશક્તિ આત્મા છે. પ્રકાશિતા વા પ્રકાશજ્ઞાન પ્રકાશી પૃથક નથી જે પ્રજ્ઞાજ્ઞાન તેજ પ્રકાશ છે તેથી પ્રકાશજ્ઞાન મેળવવા માટે એકમાત્ર સાધનની જરૂર છે કારણ કે સાધન હીન કેવળ વાચિક જ્ઞાન અથવા પુરતકનું જ્ઞાન મનુષ્યને આનન્દ અથવા શાન્તિ આપવા સમર્થ નથી.

ઉપાસનાવિહીનસ્ય સર્વશાસ્ત્રવિદોનપિ વા ।

ચિત્તવિશેષદાનિ રચાતૈવ વ્રતાન્તરેરપિ ॥

—તપ્તીત

સર્વશાસ્ત્રજ્ઞ પુરૂષ પણ ભો ઉપાસના અથવા સાધન વિહીન હોય તો તેના ચિત્તવિશેષને નાશ કરવાનું તરે પણ થતો નથી અથવા તેને શાન્તિ મળતી નથી વર્ણશ્રમાજુસ્કાર સાધન વા ઉપાસના, ચાર પ્રકારની છે, અથવા ચાર સ્તર કે ક્રમ વિશિષ્ટ છે જેમ—સર્વથી નીચો વધુ શૂદ્ર છે, શૂદ્રને સેવા એજ ઉપાસના અથવા સાધન છે. કારણ કે શૂદ્ર શબ્દને અર્થ જે દુ ખમા-શોકમા દ્ર અર્થાત્ શૂદ્રન શીલ તે શૂદ્ર છે અર્થાત્ નિત્ય દ્રેષ જ્ઞાન વિશિષ્ટ છે અને હઝારો વખત સાલગીને, સમજીને પણ જેને જાહેરનિષ્ઠ થતો નથી, અધ્યાત્મ દૃષ્ટિએ તે શૂદ્ર છે તેનાથી જોયો વર્ણ વેર છે પ્રવેશ અર્થમાં વિશ ધાતુથી વેરશ શબ્દ નિષ્પન્ન થયો છે. અર્થાત્ મિત્ર વા પૃથગ ભાવના ભગવાનની સેવ દિ દ્વારા જે

લોકોનું ચિત્ત શુદ્ધ થતું છે અને ભગવાન પરમપ્રિય છે એ જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરીને ભગવાનથી પૃથગભાવ મટાડવા માટે અથવા ભગવાનમાં પ્રવેશ કરવા માટે જે લોકોએ સત્ય ઇચ્છા કરી છે, અધ્યાત્મ દૃષ્ટિએ તેઓ વેરશ છે અને ભગવત્પ્રાસિની ઇચ્છા પ્રગલ્ભ થઈ હોવાથી જે લોકોને ભગવાન વિના વધારે ચાલતું નથી એમ લાગીને બધા સરકારે અને બધા ભાવોની સાથે જે લોકો લડાઈ કરે છે અને સ્વરાજ્ય વા આત્મરાજ્યની પ્રતિષ્ઠા માટે જેઓએ આણવી પણ પ્રતિજ્ઞા કરી છે, અધ્યાત્મ દૃષ્ટિથી તે બધા સત્રિયો છે અને જે લોકો સ્વરાજ્યમાં વા આત્મરાજ્યમાં પ્રતિષ્ઠિત છે અથવા આતુઝ દશિયત નગ્ન શિશુ વા સર્વભાગી, વ્યવધાન શૂન્ય આત્મ યુક્ત છે, અધ્યાત્મ દૃષ્ટિથી તે લોકો પ્રાણી છે, સાધન દ્વારા જ મનુષ્ય બનું જન્મ જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરીને આત્મયુક્ત વા પ્રાણી થાય છે આ બધીને પદ્ય જ્ઞાન ન થયો આ જન્મમાજ પ્રાણી ઇતર વધુ માત્ર એક સૂત્ર ધારણ કરીને પ્રાણી બનવા ન ભાગ્યો તમે જે સ્થાનમાં હો, સાધન કરો અને સાધન દ્વારા પરમ તત્ત્વને જાણીને તમારા મનુષ્ય જન્મ સાર્થક કરો બાહ્ય સૂત્ર ધારણ કરવાથી જ ભગવાન મળતો નથી તમારા બધા સરકારોને અને બધા ભાવોને જ્યારે એક સૂત્રમાં શ્રવિત કરી શક્યો તથા સૂત્ર, ભાવ સમૂહ અને સરકાર શાંતીને જ્યારે ભગવાન યોદ્ધીને યોજાળી શક્યો ત્યારે જ તમે પ્રજ્ઞસૂત્રધારી પ્રાણી થયો. સાધન સંગતિ રક્ષિત કેવળ વાચિક જ્ઞાની બનીને લોગ લાલસાતુર ન થયો કારણ કે વાચિક જ્ઞાની જન્મતા યોગને પ્રાપ્ત કરે છે અને સન્માનિત થાય છે પણ ભગવાનથી બહુ દૂર રહી ભય છે પરમ સંગતિ કેવળ સાધનજ છે જે દિવસ સાધ્ય અને સાધનમાં તમારું અલોક જ્ઞાન થયે તેજ દિવસ તમે શૂદ્ર કૃપા પ્રાપ્ત કરી ધન્ય થયો

આવો સાધકો ભગવાનના સૂરમાં સુર મિલાવી સંવેદિત થઈ જોડતા રહો—

મહાપરંગ મહાવિરજ્જ્ઞાનો જ્ઞાના દુલ્ભ ।

મહોત્તેન મન્ત્રવ્ય જ્ઞાનકર્મસાધિના ॥

કરુણા લહરી

[પંકિતરાજ શ્રી જગન્નાથ વિરચિતા]

(અનુવાદઃ—લાલજી વીરેન્દ્ર જાનિ)

વંશસ્થ રતમ્
વિપીદતા નાથ વિપાનલોપમે
વિપાદમૂઝૌ ભવસાગરે વિમો ।
પરં પ્રતીકારમપશ્યતાધુના
મયાયમાત્મા ભવતે નિવેદિતઃ ॥૧॥
મહેશ, ચિત્તે અતિ ખેદ વાધતાં,
‘વિષાદભૂમિ ભવ સિંધુ ભાસતાં;
વળી અતિકાર ન કાંઈ લાધતાં,
તને સમર્થું સુજ નાથ આતમા. ૧.
* ભવાનલે ચેતન માહરૂં ખળું;
શરણ્ય તારાં ચરણો, પ્રભો, ગળું;
વિચારીને કેવ દયા સુધારુષુધે,
ગતિ કરે મારી યથા તને ગમે. ૨.
તણ મરૂં-ભૂમિ સમાન આ ભવ,
‘મરીચિકાનાં જળ ઝાઝવાં સમ;
* સદાય હ્રદ્ય મન માહરૂં વિભો,
... કૃપા તણે સાગર સ્નાન હે પ્રભો. ૩.
* સરોજ જેવાં તુજ પાદ-પદ્મના,
અપાર મીઠા * મકરદ પ્યારમાં;
‘મિલિન્દ્રેષી મન મારૂં ચોંટિયું,
મહેશ, મેં છે તણ અન્ય માનિયું. ૪.
જગત્રય-ત્રાણુ વિષે ધર્યું પ્રત,
૧વાંધિ તેવાં તણ મૂર્ખ માનવ;

શરણ્ય છીજું થિક શોધતાં જ જે,
પડે ખરે કાળ તણેજ દ્વાર તે. ૫.
રમા મુખે તેજ અપાર જે ભરે,
જગાહતો જે ત્રણ લોક ટાંકણે;
પ્રભો, તમારો ‘નયનારણ્યોદય,
કદા હરે તે સુજ રાત્રિ-તિમિર ? ૬.
મુનીન્દ્ર ચિત્તે ચક્રાર-અધિકા,
સમરત સંતાપ હર-તી અધિકા;
મહાન્ધકારે સુજ માનસે કદા,
ખીલી રહેશે તુજ ચક્રમની પ્રભા ? ૭.
સુધૌવનાનાં મણિ કુંડલો ખરે,
નિહાળતાં તાંડવ-વૃત્ય આહરે;
સુરારે, તેવું મુખ તારૂં ઉજ્જવલ,
કદા થશે તે સુજ દષ્ટિ ગાયર ? ૮.
* સુરાપગા—તુંગ—તરંગમાં વહે,
સુરાસુરો જેહ લલાટમાં લહે;
કદા પ્રભો એ તવ પાદ-પદ્મની,
ધરીશ ધૂલી સુજ માથડે હરિ ? ૯.
મહે ભરેલા સુજ અક્ષ-અન્ય આ,
વિવેકની ‘રશ્મિ રહિત છે થયા;
હરે, ખહોંચી તવ અર્ધ-મંદુરા,
ખતો હવે શાન્ત સુરીલ સર્વદા. ૧૦.

૧ ખેદ શોકનું સ્થાન. ૨ ઉપાસ ૩ સંસારરૂપ દાવાગ્નિમાં. ૪ મુખજળ. ૫ આપની કૃપારૂપ સુધા-સાગરમાં સ્નાન કરવાને સદેવ મારૂં મન અભિલાષા રાખે છે. ૬ કમળ. ૭ રસ. ૮ ભમર. ૯ આપની ચરણો.

૧ નેત્રરૂપ અરણ્યોદય. ૨ મુખ. ૩ આકાશ ગંગા. ૪ અક્ષ=છદ્રિયો, છદ્રિયોરૂપી ધોડા. ૫ લગામ. ૬ મંદુરા તખેલો; અશ્વશાળા આપના ચરણરૂપ અશ્વશાળામંદ

ન વેદ જોને પણ વર્ણવી શકે,
મહેશ્વર પ્રાણપતિ તણ તને;
સતી કદાપિ તણ સર્મને અરે,
મતિ ન મારી ત્યમ અન્યને ભજે. ૧૧.

ન ભગતાં સ્વપ્ન ત્રિષે વળી કદી,
‘કૃપા વિના અન્ય ન આશ મેં કરી;
ગિરા મદીયા યદિ સત્ય હોય જો,
મહેશ ઉદાર મદીય તો કશે. ૧૨.

• ત્રિયોગિની વત

અયિ દેવ દયા નિધિ મને,
તણ દીધી સહુએ અભાગીને;
હજીએ નથી કાં નિદાનતો,
બની પાપાણુ સમે મને રિભો. ૧૩.

મુમહાન્ જગ ધારતાં શિરે,
નથી લાગ્યો જરા ધાક રે તને;
અણુ દૃઢ્ય હું કૃદ લખડો,
પરમાણુ સમ રેહ માહરો.
કરુણાકર તું હિતેશુને,
શ્રમ લાગ્યો શું મદીય ધારણે ? ૧૪.

કરિયો ગિરિધી મને વડા,
અ તું કાં ન હવે ઉગારતો ?
વિનયે વિશ્વ પૂછતાં તને,
શુજને ઉત્તર રે વિચારીને. ૧૫.
ન ધને નહિ રાખ્ય વેઠવે,
નહિ વિદ્યા પ્રતિ ચાચના મને;

કરુણા ભરી દષ્ટિ તાહરી,^૧
હરિ ચાચુ લા એક આખરી. ૧૬.
અતિ નીચ તથેન ફૂંજી,
તરપિ હું ‘દયનીય’ તું થકી;
વમતા રૂણી એર કારણ !

‘શુશ્રો’ અદન તોય આપનું. ૧૭.
નથી લેશ ક્ષુધિતને વધા,
પ્રતિમાર્થે કણ ધાન્ય વીજતાં;
‘ન કલક, કલેક રૂપ એ,
યદિ હું ભઉજ અન્ન આશ્રયે. ૧૮.

નરકે અતિશે પીડાયલો,
તણને સર્મ દૂ હીન છુ થયો;
ભગવન્ સ્થિતિ મારી જો ‘મને,
જનતો પાછળ નિદશે તને. ૧૯.

નરકે મુજ કર્મની કથા,
સ્મરતા યાય અતીત રે વ્યથા;
મુજને જન કહે અનાથ રે ?
વિશ્વ, આ જક અસદ્ય છે ઉરે. ૨૦.

ભવ અવતણા મુખધને,
પ્રતિકુદ પ્રજ્વળ અનેકને;
‘વનહસ્તિ’ મુખેથી રજતા,
તણ હુંને ક્યમ સાન્નિધ્ય મમતા ?
તમતાં તવ દીન દાસને,
કરુણા કાં ન ચિરે જ ચિત્તને ? ૨૧.

અપૂર્ણ.

૧ તારી કૃપા ૨ મને અભાગીને.

• આનું બીજું નામ “વૈતાલીવત” છે. આજ
પ્રથમ નરણ-સ. ૪ જ. અ-૧૦ અમુર બીળમાં સ. ૪.
૨ જ. કુ-૧૧ અક્ષરો

૧ દરને પાત્ર ૨ સપ. ૩ વમતા રૂણી એર
કારણ ૪ શાન્તરે સુરભી થઈન શું ન આપતું ? ૪ કલક
રહિત પ્રભે. ૫ મમતા. અંતરમાં. જ નહીં કાશીના
રસિમાંથી.

ગીતાધર્મ પ્લૉક વર્કસ ઉદ્ઘાટન સમારોહ

‘ગીતાધર્મ’ ના પ્રેમી પાઠકો અને શ્રાદ્ધકોને એ બાણીને ઘણાજ આનંદ થશે કે જત રથયાત્રાના શુભ અવસર પર તા. ૧૬ ૭-૪૨ ના રોજ અસંત ઉત્સાહ સાથે અનેક પૂજ્ય મહાત્માઓ તથા ગૃહ્યમાન્ય સુશિક્ષિત નાગરિકોની હાજરીમાં ‘ગીતાધર્મ’ કાર્યાલયમાં ઉક્ત પ્લૉકવર્કસનું ઉદ્ઘાટન સંપન્ન થયું. આ અવસરે સ્થાનીય મ્યુનિસિપલ બોર્ડના સુવિખ્યાત ચેરમેન રાયબહાદુર પંડિત જનનાથ પ્રસાદ મહેતાએ ઉત્સવનું પ્રમુખપદ સ્વિકારીને ઉદ્ઘાટન કર્મ સંપન્ન કર્યું હતું. નિમંત્રિત સભ્યોનામાં પૂજ્ય સ્વામી શ્રી રામાનંદજી મહારાજ, તથોધન મહંત શ્રી એતવારગિરિજી મહારાજ, તથા અન્ય સંસ્થાનોના મહાત્માઓ તથા પં. ધર્મદત્તજી શાસ્ત્રી, પ્ર. મંત્રિ વર્ણાશ્રમ સ્વરાજસંઘ, પં. દેવીનારાયણજી એરવોકેટ, પં. જનકી શરણુ ત્રિપાઠી સં. ‘સૂચ’, પં. રામબાલક શાસ્ત્રી સં. ‘સંદેશ’, આદિ વિદ્વાનો તથા અનેક સાહિત્યકાર સભ્યો તથા પ્રેસ વ્યવસ્થાપકો, પ્રમુખ ચિત્રકારો, પુસ્તક પ્રકાશકો અને વેપારી બાઈઓએ પધારી ઉત્સવની શોભા વધારી હતી. જેઓમાં પ્રસિદ્ધ નવલકથાકાર શ્રી ગહમરીજી, ચિત્રકળાકાર કેદારનાથજી, ખાણુ ભલદેવજીસહ વ્યવસ્થાપક ‘આજ’, ઠા. સૂર્યભલિસિંહ, વિગેરે સભ્યો મુખ્ય હતા.

પ્રથમ પં. દેવીનારાયણજી વડીલે ‘ગીતાધર્મ’ પરિવારનું કાર્યાલોકન કરાવીને પ્રમૂખ મહાશયને ઉદ્ઘાટન કરવાની પ્રાર્થના કરી તે પછી સ્વામી શ્રી રામાનંદજી મહારાજે આ સંસ્થાના પ્રવર્તક સ્વામી શ્રી વિદ્યાનંદજી મહારાજની અદ્યુત્તમ ઘટનાવલી પર સુંદર પ્રકાશ પાડ્યો તે પછી પં. શ્રી ધર્મદત્તજી અને સભાપતિજીનાં સારગમ્ભિત બાધણુ પછી વિધિવત્ ઉદ્ઘાટન તથા સામૂહિક કાર્યાલયનું પરિદર્શન થયું.

સર્વ આમંત્રિત સભ્યોનો કુલમાળા, મિથાન, જલપાન તથા પાન સોપારી દ્વારા સ્વાગત સત્કાર કરવામાં આવ્યો હતો.

વર્તમાન વિષમ પરિસ્થિતિમાં આ કાર્યનો આરંભ કરવામાં શ્રી લગવાનની પ્રેરણાજ મુખ્ય કારણ હતી તેથી આશા છે કે તેજ સર્વ શક્તિમાન પ્રભુ આ નવા કાર્યથી જનતાની સેવા કરવાનો ઉદ્દેશ પૂર્ણ કરશે. ગીતાધર્મ પ્રેમીઓ માટે હર પ્રકારના ચિત્રોના પ્લૉક બનાવવાની તથા તેમની સુંદર છપાઈ માટે બીજે કયાંય અચૂત ન કરતાં અહિં જ સર્વ પ્રકારની સગવડ થાય, તે માટે ખાસ પ્રબંધ કરવામાં આવ્યો છે. આશા છે કે પ્લૉક બનાવવાનો અવસર આવ્યે કૃપાહુ આહકગણુ કાર્યાલયને બૃદ્ધશે નહિ.

—વ્યવસ્થાપક

ગીતાધર્મ કાર્યાલય કારી. (યુ. પી.)



भजो मन हरिहर हरिहर हरिहर ।

आदि ब्रह्म अद्वैत निरञ्जन भयभञ्जन धरणीधर ।

दुष्ट मारि भूभार उतारत विश्वनाथ विश्वंभर ॥

कवहुँ विहार करत भक्तन संग करि वरवेष मनोहर ।

कवहुँ संहार करत सब जग को धरि बहुरूप भयंकर ॥

वापिक मूल्य—
भारत में ४)
विदेश में ६॥)

मोर मुकट कटि काञ्चनो पीताम्बर वनमाल ।
यह मूर्ति मो मन बसो सदा विहारीलाल ॥

{ साधारण प्रति
भारत में १)
विदेश में १२)

विषयसूची [(रुक्मिणी)]

विषय

पृष्ठ

१—परममराज (कविता)—१०—भी गुरदासजी	१००३
२—सिद्धि—ले०—भीमसरमईच परिभाषाकार्य अद्विष्ट कोटईमही गीताभाष जगद्विष महापण्डितेश्वर	
भी १०८ स्वामी भी विद्यानन्दजी महापण्डित	१००४
३—मनाभिरामा के प्रति—ले०—कवि न भी नन्दकिशोरजी जोशी किशोर विष्णुभाष्य	१००८
४—अज्ञस्वरूप—ले०—ज्ञानतपस्वी भी गीतानन्दजी धर्म	१००९
५—युद्ध—ले०—रामाभी धर्मानन्दजी धन्याजी दर्शनज्यो व्याकरणाचार्य	१०१२
६—सांगाय तु कैवल्यम्—ले०—स्वामी भी शिवानन्दजी योगिधर वैद्य कल्याणप्रिय	१०१७
७—अध्यात्मयोग—ले०—भी नरसिंह	१०२१
८—आधुनिक कृतव्य—ले०—भीमजी विभूति देवी भाष विद्य	१०२३
९—कृष्ण धन जगद्गुरुम्—ले०—भी मुन्शीनजी	१०२५
१०—धन्य भाग्य—(कविता)—१०—भी गोविन्द स्वामी हरीजी	१०२८
११—मुनी जीवन—ले०—भी भी बागुलकाजी तैमज हू ई० वे० विद्याद	१०२९
१२—राखी—(कविता)—१०—भी लालीप्रसादजी विद्याजी नन्दिवन	१०३१
१३—श्री—ले०—एक छदिहान मन्त्र	१०३२
१४—समाधान—ले०—ज्ञानतपस्वी भी गीतानन्दजी	१०३२
चित्रमूर्त्ति—१—जगन्नाथ	मुद्रण

[गुजराती (रुक्मिणी)]

१—शरत् शुद्धि—(सप्त सप्त)	१०३३
२—सन्धि १०६ १५—(ले०—धर्मपुरीपर ले० रमण्डल व बागुभाष)	१०३४
३—गीतानो उपस हार—(ले०—भीमर परमहंस प्रिय नन्द व वै अद्विष्ट ले० भीमजी गीतानन्द)	१०३५
अनन्तमहाभारत भी १०८ २२ भी विद्यानाथ महराज)	१०३५
४—शरत् शुद्धि—(अनु०—सप्त सप्त गीतानन्दजी)	१०३५
५—अधुने युद्ध था अरि कर्तुं ?—(ले०—वर्षाव न साधन रणजी भी० ले०)	१०४१
६—वर्षा विज्ञान—(अनु०—अधुने युद्ध व भी १०४१)	१०४१
७—पक्षी तो काय न थी—(ले०—भी २१ भी शरत् शुद्धि सन्धि १०६ भी १०४१ व न)	१०४१
८—आधुनिक राजकुल परमाभूत—(ले०—वर्षाव न १०४१ भी १०४१ व न)	१०४१
(ले०) ले० भी १०४१ व न १०४१ व न १०४१ व न १०४१)	१०४१
९—शरत् शुद्धि व न १०४१ व न १०४१—(ले०—मुद्राव)	१०४८
१०—त्याग—(ले०—सिद्धि व न १०४१ व न १०४१)	१०५१
११—शुद्धि जीवन—(ले०—५०—भी १०४१ व न १०४१ व न १०४१)	१०५३

શ્રીમદ્ ભગવદ્ ગીતા આલ્પમ.

ખાસ વાંચો.

ગીતા આલ્પમમાં શું જો શો ?

શ્રીકૃષ્ણ ભગવાને કહેલી અરાટે અધ્યાય ગીતા ભાષા ટીકા શુભરાત્રીમાં તથા મહાત્મ્ય સાથે જેનાં પૈજ ૧૪૮ રૂબ એફગી બોર્ડરમાં છાપેલાં તે ઉપરાંત ખાસ મહત્વની વાત તો એ છે કે શ્રીમત ૫૦ ૫૦ અન્ન ગી. લો. જનતસુર, મહામંડલેશ્વર સ્વામી શ્રી વિદ્યાનન્દજી મહારાજના વિદ્યા અભ્યાસ પછી ગીતા પ્રવૃત્તિ તથા ભારતવર્ષના જુદા જુદા પ્રાંતો અને નગરોમાં ગીતા ઉપદેશ તથા ગીતા પ્રવચનો તથા ગીતા મંદીરો વીજેરે પ્રવૃત્તિઓ જે તે વખતે લેવાએલા ફોટાઓ-સારા આટ' પૈપર ઉપર એકરંગી તથા બહુરંગી ચીત્રો દરેક ગીતાના પૈજ સાથે આપેલાં છે જેની સંખ્યા લગભગ એંસી થવા જાય છે—સદર ગીતાની બંધાઈ એવી છે કે તેમાંથી જો કોઈ ચીજ કાઢી લેવું હોય તો પણ કાઢી લેવાય છે. જેથી પુસ્તક અરાખ યજ ચકતું નથી. આવા પુસ્તકની કીમત આ મોઢવારીમાં પણ માત્ર રૂ. ૨-૦-૦ પૌરટેજ રજીસ્ટર્ડ ૦-૧૨-૦. પણ ન્યાં ન્યાં દુમારા સેવાભાવી કાર્ય કરતાઓ છે તે તે જામેએથી તેમની પાસેથી રૂ. ૨-૫-૬ એ રૂપિયા સાડા પાંચ આનાથી મળશે કારણ કે રેલ્વે પારસલથી મોકલવામાં આશે ખર્ચ આવે છે.

ધર્મીજ એાછી ઠોપી સીલક છે, માટે જલદી મેળવી લેવા તજવીજ કરશો.

યુગાંતકારી ગીતા. અદ્ભુત સંવાદ તથા બીજાં પુસ્તકો અને અનેક દેવ દેવીના ચીત્રો જરૂરી મંત્રાવરો.

જરૂર.

તાવીજ ગીતા

વાંચો.

ખાસ શુભરાત્રીમાં આવી ગીતા હજુ સુધી છપાઈ નથી. આજ પહેલીવાર છપાઈ છે. જેથી શુભ-રાત્રી જીજ્ઞાસુ લાઈ બહેનો ને ખાસ ઉપયોગી થઈ પડે તેવી છે માટે જેમ અને તેમ જલદી મંગાવી લેશો.

નં. ૧ ની કીમત: ૦-૨-૧ છે. પણ એક ડઝનથી કમી મંગાવવામાં મોઢી પડી જશે. તેમ નાની હોવાથી મોકલવાનું પણ ક્ષેત્ર નહીં જેથી ડઝન એક મંગાવવી જોઈએ. બારની કીમત રૂ. ૧-૧૪-૦ તથા પૌરટેજ અર્થ ૦-૭-૦ મળી રૂ. ૨-૫-૦ મોકલવા જોઈએ. એથી કમીમાં પણ અર્થ ૦-૭-૦ આવે છે. જેથી કમી મોકલવાનું બંધ કર્યું છે.

જી.સેલ્સે તથા ધર્મીય વહેંચવા વારતે ખાસ સગવડ.

નં. ૧૦૦ થી ૫૦૦ સુધી પ્રત્યેકના બે આના. અર્થ જુદો.

નં. ૫૦૧ થી વધુ મંગાવવારને ગ્રાસ ડીલીવરી મફત.

ધર્મીય વહેંચવા વારતે તેમના ફોટો તથા નામ ઠેઠાંજી છાપી ગીતામાં લગાવી આપીશું તેનો ખર્ચ કીમત ઉપરાંત થશે.

ચોક્કસ ગીતા સીલક છે માટે જલદી લખો—

—વ્યવસ્થાપક

ગીતાધર્મ પ્રેસ, કારી. (યુ. પી)

संस्कार—श्रीमत्परमहंस परमहंसजीवर महाप्रतिष्ठ लोकसमष्टी गीताध्यास श्री १०८ जगद्गुरु
महामण्डलेस्वर स्वामी श्री विद्यानन्दजी महाराज



सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज । अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुभः ॥

वर्ष ७ }

सितवर, १९४२, काशी

{ अङ्क ६

चरणसरोज

बही चरणसरोज तुम्हारे ।

मुन्दर श्याम कमलदललोचन ललित विभक्त प्राणपति प्यारे ।
जे पदपद्म सदा शिव की धन सिधुमुता करते नहि हारे ॥
जे पदपद्म परसि अगोपानन सुरसरि दास कहत अप भारे ।
जे पदपद्म परसि अविपत्नी बलि नृग व्याप पतित बहू तारे ॥
जे पदपद्म रमत बुद्धावन अदिशिरधारे अगणित रिपु भारे ।
जे पदपद्म परसि प्रजगामिनि सर्वसदे सुत सदन बिसारे ॥
जे पदपद्म रमत पाण्डवदत्त दूत मये सब काज संचारे ।
सूरदास तेई पदपद्म विविषताप दुख हरन हमारे ॥

—सूरदासजी

सिद्धि

(ले० — श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य ब्रह्मनिष्ठ लोकसंग्रही गीताव्यास श्री १०८

नगदगुरु महामण्डलेश्वर स्वामी श्री विद्यानन्दजी महाराज)

उपासना के फलस्वरूप साधक को जो सिद्धियाँ मिलती हैं उन को दत्तात्रेयजी ने अलर्क के प्रति इस प्रकार कहा है—

अणिमा, महिमा चैव लघिमा प्राप्तिरेव च ।
प्राकाम्यं च तथेशित्वं वशित्वं च तथा परम् ॥
यत्र कामावसायित्वं गुणानेतानथैश्वरान् ।
प्राप्नोत्यष्टौ नरव्याघ्र परनिर्वाणसूचकान् ॥

—मार्क० ५०

अणिमा, महिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व और कामावसायित्व; परनिर्वाण के सूचक इन आठ ऐश्वर्य के गुणों को साधक प्राप्त करता है ।

सूक्ष्मात् सूक्ष्मतरोऽणोयान् शीघ्रत्वान् लघिमा गुणः ।
महिमाशेषपूज्यत्वात् प्राप्तिर्नाप्राप्यमस्य यत् ॥
प्राकाम्यमस्य व्यापित्वात् ईशित्वं चेश्वरो यतः ।
वाशित्वात् वशिता नाम योगिनः सप्तमो गुणः ॥
यत्रेच्छा स्थानमप्युक्तं यत्र कामावसायिता ।
ऐश्वर्य कारणैरेभिर्योगिनः प्रोक्तमष्टया ॥

योगीजन छोटे से भी छोटे हो जाते हैं, अतः उन में अणिमा होती है, सब के पूज्य होने से महिमा, हल्के होकर चाहे जहाँ पहुँच जाने से लघिमा, उन को कोई बस्तु अप्राप्य नहीं होती, अतः प्राप्ति, वे सर्वत्र व्याप्त हो सकते हैं, अतः प्राकाम्य-

सिद्धि तथा सब कुछ करने में समर्थ हैं, अतः ईशित्वसिद्धि, वशी होने से वशित्वसिद्धि और सब इच्छा के स्थानों में कामनाओं का समाप्त रहना (कामावसायित्व) ये आठ सिद्धियाँ होती हैं । ये सिद्धियाँ तो प्रसिद्ध हैं लेकिन और भी छोटी बड़ी सिद्धियाँ योगियों को उन के अभ्यासक्रम से प्राप्त हो जाती हैं; ऐसा सत्तद् ग्रन्थों में उल्लेख पाया जाता है । तथापि ये सब असल मुमुक्षु की दृष्टि में हेय ही होती हैं । गीता में सिद्धि शब्द का कुछ दूसरा ही तात्पर्य है, वहाँ इस शब्द का प्रथम प्रयोग इस श्लोक में आता है—

न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति ॥

—गी० ३।४

यहाँ सिद्धि का अर्थ नैष्कर्म्यसिद्धि है यह तो स्पष्ट ही है, उपर्युक्त श्लोकों में वर्णित सिद्धियों से इस का कोई वास्ता नहीं ।

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।

—गी० ७।३

इस गीतोक सिद्धि का भी नैष्कर्म्यसिद्धि अर्थ है । 'सिद्धानां कपिलो मुनिः' इस वचन में अर्थ यही होते हुए भी कपिलजी का अन्यान्य सिद्धिसंपन्न होना विसंगत नहीं, तथापि मोक्षशास्त्र में सिद्धि शब्द

से प्रयत्नत नैष्कर्म्यसिद्धि ही माध्य है। अर्जुन को भगवन् ने इसी सिद्धि के लिए प्रयत्न करने को कहा था, क्योंकि गीता का प्रधान उपदेश ज्ञाननिष्ठा का है, अर्जुन भजान का नाश चाहता था। अज्ञान नाश का कारण ज्ञानप्राप्ति ही निश्चित है, यह बात कपिल मुनि ने साख्य द० अ० १ सूत्र ५६ में कही है—

निपतकारणात् तदुच्छिच्छि ध्वन्तिवत् ।

जिस प्रकार अंधकार का नाश उस के विरोधी प्रकाश से होता है वैसे ही अज्ञान का नाश ज्ञान प्राप्ति से होता है। इस प्रसंग में गीता का प्रतिपाद्य कर्मयोग है वा ज्ञानयोग इस विवाद में न पड़ना ही उचित है, यह व्याख्यान आज के प्रतिपाद्य विषय से सवन्ध नहीं रखता, क्योंकि निरन्ध्र के प्रारम्भ में जो सिद्धि शब्द का प्रयोग किया गया है उस की गीता के साथ एक नई और विशिष्ट सगति दिखाता ही यहाँ अभिप्रेत है।

कपिलजी के मत में सिद्धि का तात्पर्य न कर्म सिद्धि है न ज्ञानसिद्धि, किंतु कुछ और ही है, अन्य साध्यकारों ने भी इस का भास मतलब से प्रयोग किया है। यथा—

सिद्धिरपथा ।

—सा० द० ३।४०

पञ्च विपर्ययभेदा भवन्त्यशक्तिप्रवृत्तकरणैव न्यात् ।
अशक्तिप्रतिभेदास्तुष्टिर्नवपापश सिद्धिः ॥४७॥

—साख्य का०

इन दोनों उद्धरणों में सिद्धियों आठ हैं वह कहा है, पर साख्यकार ने यह स्पष्ट नहीं कहा कि वे कौन सी हैं, इस का सुरास कारिका में है—

ऊहः शब्दोऽध्ययने दुःखविषावाहयः सुदृ-
त्प्राप्तिः । दार्ढ्यं च सिद्धयोऽष्टौ सिद्धेः पूर्वोऽशु-
भसिद्धिः ॥ ४५ ॥

इस वारिवा का अर्थ करने में व्याख्याता लोग एकमत नहीं। पाठकों को इस का यथार्थ अभिप्राय समझने में सुविधा हो, इस लिए पहले यहाँ पूर्वपरपरागत अर्थ दिखाया जाता है, कल्पान् गीता के साथ तुलनात्मक दृष्टि से विचार करते हुए, अपना अभिप्राय प्रकट किया जायगा। पूर्वपाठ्या के लिए 'स्वामी हरिहरानन्द आरण्य' वृत्त अनुवाद देना काफी होगा—

ऊह, शब्द, अध्ययन, सुदृत्प्राप्ति, तीन दुःख विषय और दान ये आठ सिद्धियाँ हैं। विपर्यय, अशक्ति और पुष्टि इन के विरोधी हैं।

ऊह माने प्रतिभा, प्रतिभा या अपने पूर्वसंस्कार से जो तत्त्वज्ञान होता है उस को ऊह वा तार सिद्धि कहते हैं। दूसरे का वाक्य सुनकर जो तत्त्वज्ञान होता है उसे शब्द वा सुतार सिद्धि कहते हैं। स्वयं पढ़ने से जो तत्त्वज्ञान हो उसे अध्ययन सिद्धि वा तार तार सिद्धि कहते हैं। गुरु, सहपाठी या मोक्षदायक से मिली चौथी सुहृत्प्राप्ति या स्पर्श सिद्धि है। इस के बाद साधनों द्वारा विविध दुःखविषय क्षमक सिद्धियाँ होती हैं, जिन्हें प्रमोद,

मुदित और प्रमोदमान भी कहते हैं। अन्तिम दान वा अवदान सिद्धि है जो सिद्धियों की सम्यक् निर्मलत्तरूप चिन्वेकल्याति कही जाती है, इसे सदा प्रमुदित भी कहते हैं। इस प्रकार तार, सुतार, तारतार, रम्यक, प्रमोद, प्रमुदित, प्रमोदमान व सदा प्रमुदित ये अष्ट सिद्धियाँ मोक्षमार्ग की सहायक हैं।

अब गीतानुसार इन का स्फुटीकरण किया जाता है—

सांख्यदर्शन गीता के आधार पर रचित है यह बात पण्डितसमाज में विदित्प्राय होगी ही, अतः हमारे मतानुसार इन सिद्धियों का उल्लेख गीता के अध्याय २ श्लोक ७-८ में है। यथा—

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः

पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः ।

यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे

शिष्यस्तेऽहं श्लाघि मां त्वां प्रपन्नम् ॥

न हि प्रपश्यामि मयापनुवा-

द्यच्छ्लोकमुच्छोपनिन्द्रियाणाम् ।

अवाप्य भूमावसपन्नमूर्धं

राश्यं सुराणामपि चाधिपत्यम् ॥

‘दैत्यदोष से मेरी बुद्धि नष्ट हो गई है, अतः मुझे धर्म के विषय में व्याख्यता है। अतः आप से पूछता हूँ कि यथार्थ कल्याणकारी कर्तव्य क्या है, मुझ प्रपन्न शिष्य की योग्य आदेश दीजिए। पृथ्वी का निष्कण्टक राज्य या इन्द्रपद पाकर भी इन्द्रियों की सुखानेवाला यह मेरा शोक दूर न होगा।’ यहाँ पर पूर्वोक्त सिद्धियाँ ही अनुस्यूत हैं जो कि मोक्षोपदेश के अत्यवहितपूर्वसिद्ध अधिकार की जनाती हैं।

गी० २-८ में अर्जुन भगवान् से प्रार्थना करता है कि ऐहिक व आधुनिक समस्त काम प्राप्त होने पर भी मेरा शोक दूर न होगा, आप इस का उपाय बताइए। यहाँ विचारणीय बात है कि ऐहिक राज्य-भोग तथा स्वर्गभोग की स्मृति अर्जुन को अवश्य हुई है तभी यह प्रार्थना संगत हो सकती है। इसी का नाम प्रतिभा या पारिभाषिक नाम उह है। यह सिद्धि उस को पूर्वभवीय संस्कारों से हुई है। फिर उसी श्लोक में अर्जुन कहता है कि ‘मां श्लाघि।’ ‘शास्त्र अनु-शिष्टो’ से श्लाघि बनता है और शासन का अधिकार सिर्फ वेद को ही है। यही बात व्यासजी ने ‘शास्त्र-योनित्वात्’ (वेद शास्त्रों से परमात्मज्ञान होता है) इस वेदान्तसूत्र में कहा है।

गीता के पंदरहवें अध्याय में कहा है कि ‘इति शुद्धतमं शास्त्रम्।’ तात्पर्य यह है कि वेदशास्त्र का अपदेश ही अर्जुन चाहता है और भगवान् यही आज्ञा देते हैं—‘तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते’ (तुझे शास्त्र का ही प्रमाण मानना चाहिए)। इस को जो शब्दसिद्धि कहा गया है, उस का गूढ़ अभिप्राय यह है कि वेदोपदेश में अर्जुन की बुद्धि स्वभावसिद्ध है। इस मनोवृत्ति की स्वाभाविक श्रद्धा भी कहते हैं। इस तरह से प्रथमोक्त दो सिद्धियों का कटाक्ष इसी बात पर है कि पूर्वभवीय संस्कार से परम वैराग्य होकर वेद शास्त्र पर रुचि पैदा हो। इस के बाद अभ्ययनसिद्धि है। इस का उल्लेख ‘शिष्यस्तेऽहं’ वाक्य से किया गया है। अर्जुन के प्रपन्न शब्द से प्रकट होता है कि वह श्री कृष्ण को गुरु व ईश्वर की अभेदबुद्धि से देखता है, जैसा कि उपनिषद् कहती है—

दस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा मुरी ।

तस्यैतं कथिता दार्याः प्रकृत्यन्ते महात्मनः ॥

जिस का देवता और गुरु में एतद्विमान परम अनुराग है उस महात्मा के प्रति ही शास्त्रीय उपदेश श्रुतों का प्रकाश होता है ।

चौथी, पाँचवी और छठी सिद्धि त्रिविध दुःखों का विधात है, इन का उल्लेख द्वितीय अध्याय के ४, ५, ६ श्लोकों में हो गया है, उन दुःख या तार्पा का विधात अर्जुन में अनुमान किया जा सकता है, क्योंकि 'यच्छ्रेय स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे' इस वाक्य द्वारा, उस को ४, ५, ६ वें श्लोकों में कथित दुःखनिवृत्ति के उपायों पर विद्वत्ता नहीं है यह गृहीत होता है ।

सातवी सिद्धि सुदृढतापि है । अर्जुन को माय से ही भगवान् सुदृढरूप से पिळे हैं । इस विषय में महामारत में कहा है—

एकं सत्त्वं दिधा कृतम् ।

माने एक ही व्यक्ति के दो अंश हो गये हैं ऐसा गाढ सीझार्द उन दोनों का था । प्रकृत में यह समझना चाहिए कि अर्जुन भगवान् का शिष्य होने को तैयार हुआ तो भगवान् भी उस के गुरु होने को राजी हो गये ।

आठवी सिद्धि दान है । गुरु को सर्वस्व अर्पण कर देने की शालावा है । अर्जुन कहता है—
येषामर्थे काङ्क्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च ।
त इमेऽवस्थिता युद्धे मार्गास्त्यक्त्वा धनानि च ॥

आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः ।
एताञ्च हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन ।
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किं नु महीकृते ॥

'जिन के लिए हमें राज्यभोग और सुख चाहिए वे ही आचार्य, पितामह आदि सब कुछ छोड़कर युद्ध में मरने को खड़े हैं । ये मुझे भले ही मारते रहें तो भी मैं इन्हें पृथ्वी तो क्या त्रैलोक्य के राज्य के लिए भी न मारूँगा ।' वहाँ पृथ्वी का राज्य या त्रैलोक्य का राज्य गुरुओं के लिए छोड़ने की तो बात ही क्या, 'घ्नतोऽपि' पद से अपने प्राण तक त्यागने की तैयारी है । यह त्याग की चरम सीमा है और गुरु के लिए 'त्वा प्रपन्नम्' कहने से अर्जुन की त्यागबुद्धि की सीमा असीम हो गई है ।

अन इस अर्थ के साथ अन्य व्याख्यातकों का अर्थ मिलाकर पाठक देखकर उचितानुचित का निर्धारण स्वतः कर लेंगे । माता को अपना ही पुत्र सब से प्यारा लगता है, उसी तरह हमें भी यही अर्थ माता है ।

इन सिद्धियों के नामान्तर जो 'आरूप्य'जी या और टीकाकारों से उल्लिखित हुए हैं उन क बारे में अनुमान से बस इतना ही मान्य पड़ता है कि ये नाम मधुसू की ऋभोवृत्ति को दर्शाते हैं ऐसा हो उन क शब्दगत अर्थ से प्रतीत होता है, नहीं तो वे कबल सज्जामात्र है ।

मनोभिरामा के प्राप्ति

(ले०—कविराज श्री नन्दकिशोरजी जोशी, 'किशोर' भिपगाचार्य)

मनपथिक ! आओ, प्रस्तुत करें कुछ आत्महित का पाथेय, माना कि यह सुपमापुत्र वास्तव में अनुपम सुन्दर है। परंतु पुष्पराज गुलाब ने इसे अपनी रूपमाधुरीमय लावण्यता और उज्ज्वल आभा इस लिए थोड़े ही प्रदान की है कि यह इस के द्वारा किसी सत्पथगामी के खिन्न हृदय को छिन्न भिन्नकर उस का कर दे सर्वनाश !

शुक्रराज ने अपनी सौन्दर्यमयी नासिका इसे इस लिए नहीं दी कि यह इस के द्वारा सौन्दर्यसौरभयुक्त पराग की अलौकिक सुगन्ध को खींचकर किसी प्रभु के प्रेमपुजारी को कर दे निराश ! जिस से पड़ जाय उस की आराधना में बाधा !

क्या उषा रानी ने इस लिए इस के अधराधर को लाल नवपल्लववत् बनाया है कि यह अपनी मृदुमन्द मुस्कान द्वारा किसी विक्षिप्त चञ्चल हृदयपट पर अपना मोहमय साम्राज्य स्थापित कर उसे कुचल दे और पटक दे दुःखदाय में !

क्या उस भोली अवोध मृगी ने इसे अपने विशाल नेत्र इसी लिए अर्पित किये हैं कि यह इन की वासनामय अवाला बनाकर किसी मानव के नेत्रपथ द्वारा उस की सघन हृदयकुक्ष में प्रवेश कर किलेले करे ! यदि वह साथ न दे तो उस में लगा दे यड़वानल जिस से वह हो जाय उजाड़ और फिर कभी पनप ही न सके !

क्या प्रकृति नदी ने यह अनुपम सौन्दर्यमयी प्रभा इसे इस लिए सौंपी है कि यह इस के द्वारा उन्मत्त-

मानस के हृदय पट पर भृकुटियों की भावभृंगी से वासनामय प्रेमसिक्त भावों को अक्षित कर, उसे माया-जाल में डाल, काम का शिकार बना, वास्तविक सुख से फेंक दे कोसों दूर !

अपितु पथिक ! इस सुन्दरी को—यह सौन्दर्य का वरदान इस लिए प्राप्त हुआ है कि यह इस के द्वारा संसार के उस मर्माहत, असहाय मानवशिशु को, जो लोभमोहरूपी चट्टान पर वासनारूपी काई से फिसलकर कामरूपी चोट से ही हो चुका है अर्जर ! वास्तविक सच्चे वास्तव्य प्रेम से सान्त्वना देकर उस के कष्ट का अन्त करके आनन्द से पुलकित कर दे। किंतु मनपथिक ! यह तो निश्चित है कि जो मानव काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार से भागता है कोसों दूर और वन चुका है पावन प्रेम का पुजारी ! जिसे अपना चुका है वास्तविक प्रभुचरणों का दृढ अनुराग उस मानव को यह सुन्दरी अपने माधुर्यमय सौन्दर्य द्वारा वासनायुक्त मोहजाल के फंदे में फँसा नहीं सकती, वहाँ तो निश्चय ही इसे माननी पड़ेगी हार।

इसी लिए तो इस सुन्दरी से बार बार अनुरोध है कि तू भूल जा चामनामय मोहकता को ! और अपना ले वास्तविक प्रेम ! और हो जा परम प्रियतम में तन्मय, तभी तो हो सकेगा प्रेम ! तथा इस क्षणिक यौवनसौन्दर्य के नष्ट होने पर भी सतत बढ़ता-रहेगा तेरा प्रेम, और यहाँ होती रहेगी तेरी कदर ! और निश्चय ही अन्त में होगा परम रम्य कल्याण और मिलेंगे वास्तविक सुख ! शाश्वत शान्ति !! और अनन्त प्रेम !!!

ब्रह्मस्वरूप

(छ०—ज्ञानतत्त्व भी गीतान इती शर्म)

अनित्यता में और गीता में भी ब्रह्म का नामरूप तो गति कहा है। जैसा कि इस वचन में दर्शाया गया है—

अनान्दमस्पर्शरूपमव्ययं, तथा रस
नित्यमगन्धवच्च यत्।

—छ० ११११

जा शब्दरहित है, स्पर्शरहित है, रूपरहित है अव्यय है, रसरहित है और गन्धरहित है (वह तत्त्व मनुष्य का मृग्युत्पन्न म छुड़ता है)।

इसी प्रकार गीता में भी कहा है—

ये त्वत्परमनिर्देश्यमव्यक्तं पार्थुपासने।
सर्वश्रममचिन्त्यं च कूटस्थमचरक धनम् ॥

—गी० १२३

जा पुण्य मन बुद्धि स पर सब-बाणी अरुपनीय स्वरूप सदा अचिन्तनी निय अचल निराकार और अविनाशी ब्रह्म की ग्यासना करत हैं व उसी ब्रह्म का प्राप्त हाव हैं। किंतु इस के बारे में सत्यकार कहत हैं कि—

अपदेशोपदेशवात् तस्मिन्निदि०।

‘एक दूसर का कथन करने से ही ब्रह्म की निदिष्ट हो सकती है।’ एक अनित्यता का वचन भी है—

तद्विज्ञानार्थं स गुरुमैवाविशरणं गच्छेत्।

‘ब्रह्म के यथार्थ ज्ञान के लिए गुरु के समीप जाना चाहिए।’ मनुष्यमान का व्यवहार (बिना बाणी के चलता नहीं) चाहे का, कैसा ही पहुँचा हुआ गुरु क्या न हो (मोनेनैव प्रावाचन्) यह न्याय राय १२७

क विषय में लागू नहीं है)। इसी लिए ब्रह्म ज्ञान का उपपन्न हुना हो ता बाणी का व्यवहार अपरिहार्य है। ब्रह्ममूखार भी “अध्याता ब्रह्मजिज्ञासा” ‘अथ ब्रह्म का विचार किया जाता है’ ऐसी प्रवृत्ति पर उल्लेख छोड़ा बाद अध्यात्मवाणी प्रियाल ग्रन्थ रच गये हैं। इन्होंने आत्माओं का स्वस्व हृदय क्षेत्रों द्वारा ब्रह्म का वर्णन इस ही नहीं आवश्यक भी है। कि बहुतों यह मनुष्य का स्वभाव ही है कि उस का किसी वस्तु का ज्ञान कम वा नामरूपान्तर वर्णन निय बिना हाता ही नहीं चाहते वह नाम रूप कल्पित ही क्या न हो परंतु चात्कि अग्ररूप। सब दार्शनिक ग्रन्थों में ब्रह्म नामक परम तत्त्व का धारणा बहुत बखूब पाया जाता है शायद उन सब वा मन्त्रशास्त्र प्रति पात्रन एक ग्रन्थ में मिलता है जिन का नाम ‘योग वासिष्ठ’ है। साहित्य की दृष्टि से भी इस ग्रन्थ का वर्णन मनायाव्य है। आगे इस का सार दिया जाता है, जिस का पाठक मनायाव्य में पढ़ेंगे इतना इशारा काफी है।

आकाशपरमाणुसहस्रांशमात्रेऽपि वा शुद्ध
चिमात्रसत्ता विद्यते सा हि परमार्थसत्ति०।

—१२१११

आकाश के परमाणु के हजारों भाग के भीतर भी जा शुद्ध चिमात्र सत्ता प्रसमान है वही परमार्थ सत्ति है। न वह निम्नादि देती है और न वर्णन की जा सकती है न वह समाप्त है न दूर है। शुद्धाभा का कवल चिद्रूप अनुभव किया जा सकता है (वर्णन नहीं)। वह सब कुछ है, सब की आत्मा

है और सब से रहित भी है। वह सब भूतों की आत्मा, शून्य व सत् असत् दोनों ही हैं। वह न वायु है न आकाश, न बुद्धि आदि है न शून्य, वह कुछ नहीं है फिर भी सब की आत्मा है, वह कोई ऐसा पदार्थ है जो आकाश से भी सूक्ष्म है। न वह काल है न मन, न वह आत्मा है न सत्ता असत्ता, न वह देश है न दिशाएँ, न वह कोई इन के बीच का पदार्थ है न अन्त का, न वह ज्ञान है और न अज्ञेय पदार्थ है।

वह सवेद्यरहित संवित् है, चेत्यरहित चित्ति है, वह संसार की परम पराकाष्ठा है। वह सब दृष्टियों की सर्वोत्तम दृष्टि है, वह सब महिमाओं की महिमा है और सब गुरुओं का गुरु है। वह सब प्राणीरूपी मोतियों का तागा है जो कि उन के हृदयरूपी छेदों में पिरोया हुआ है। वह सब प्राणीरूपी मिर्चों की शीक्षणता है, वह पदार्थ का पदार्थत्व है, वह सर्वोत्तम तत्त्व है। वह वर्तमान वस्तुओं की सत्ता है और स्वयं सत्ता और असत्ता दोनों है, सब जगह सब वस्तुओं से युक्त तथा सब भावों से मुक्त है। सब ओर उस के हाथ पैर हैं, सब ओर उस के सिर और मुख हैं, सब ओर उस के कान हैं, संसार की सब वस्तुओं को घेरकर वह स्थित है। वह इन्द्रियों द्वारा ज्ञायमान सब गुणों से रहित है और उन से युक्त भी है। सब का भरण करनेवाला किंतु असक्त भी है, सब गुणों का भोगनेवाला किंतु निर्गुण भी है। वह सब प्राणियों के भीतर और बाहर है, चर और अचर है। अतिसूक्ष्म होने के कारण अविज्ञेय है, वह दूर भी है और समीप भी है। वह सूक्ष्म से भी सूक्ष्म, स्थूल से भी स्थूल, भारी से भी भारी और अन्धे से भी अच्छा है। वह इतना बड़ा है कि उस के सामने सारा जगत् परमाणु के समान दिखाई पड़ता है,

वस्तु नहीं भी दिखाई पड़ता। वह इतना सूक्ष्म है कि उस के मुकाबले सूक्ष्म आकाशतत्त्व भी अणु के सामने महामेरु जैसा स्थूल मालूम पड़ता है। वह आत्मा है, विज्ञान है, शून्य है, परब्रह्म है, श्रेय है, शिव है, विद्या है और परम स्थिति है। वह सब का अनुभवरूप अन्तरात्मा है, शरीर में वह सदा चिन्मात्ररूप से स्थित है। वह जगत् रूपी तिल का तेल है, जगत् रूपी घर का दीपक है, जगत् रूपी वृक्ष का रस है और जगत् रूपी पशु का पालनेवाला म्वाला है।

वह जगत् में वर्तमान होते हुए भी नहीं है, वह शरीर में रहते हुए भी अत्यन्त दूर है, वह ऐसा प्रकाश है जिस से सूर्य का प्रकाश उद्भूत होता है। उस से विष्णु आदि देवता इस तरह उत्पन्न होते हैं जैसे सूर्य से किरणें। उस से अनन्त जगत् ऐसे उत्पन्न होते हैं जैसे समुद्र से बुलबुले। उस की ओर तमाम दृश्य पदार्थ इस प्रकार जा रहे हैं जैसे समुद्र की ओर नदियाँ। वह सब पदार्थों को और आत्मा को दीपक की तरह प्रकाशित करता है। वह आकाश में, शरीर में, पत्थरों में, लताओं में, घाटियों में, हवाओं में और पाताल में सब जगह वर्तमान है। उस ने आकाश को शून्य, पहाड़ों को कठिन, जलों को बहनेवाला बनाया है।

जैसे बादल से वर्षा की बूँदें गिरती हैं वैसे ही उस अक्षय और पूर्ण अमृत से नाना प्रकार के संसार के दृश्य उद्भूत होते हैं। जैसे मरुस्थल में मृगतृणा की नदियाँ बहती पड़ती हैं वैसे ही उस में त्रिभुवन की उद्भूत और अस्त की लहरें उठा करती हैं। उस सर्वसत्ताओं से परे की सत्तावाचक के कारण ही नियति, देश, काल, गति, स्पन्दन और क्रिया की सत्ता है। परमात्मा का वह महान् ज्ञानात्मक रूप है जिस में

संसार का अत्यन्त अभाव रहता है, यद्यपि देखने में वह मौजूद है। परमात्मा का वह शून्य रूप है जिस में वर्तमान होता हुआ भी हरय जगत् अस्त रहता है। यह परमात्मा का ऐसा रूप है कि महाज्ञानरूप होने हुए भी भारी शिला की नाई जड़ सा प्रतीत होता है। जैसे महाश के घुमाने से उस में चक्र दिखाई देता है और उस को स्थिर कर देने में गायब हो जाता है ऐसे ही जब अज्ञ में स्पन्दन होता है वो संसार की शोभा उदय हो जाती है और जब शान्ति हो जाती है वो जगत् का हरय क्षुब्ध हो जाता है।

इस तत्त्व का अवागम्य सद्गुरु स्वरूप तब अनुभव में आता है जब कि मन वृत्ति का क्षीण करके अपना अन्त कर दे। उस तत्त्व का रूप बह है जिस में हरय जगत् का अभाव है और हरय का अभाव होने से द्रष्टा का भी अभाव सा ही हो जाता है, केवल प्रकाशमात्र का अनुभव सा रहता है।

जीवस्वभाववाली चित्ति की चेत्य की आर प्रवृत्ति न होने पर जा शान्त मलरहित य चिन्मात्र स्थिति होती है वही परमात्मा का स्वरूप है।

चिदाकाश पुरुष की उस स्वाभाविक अवस्था को कहते हैं जिस में निद्रा भी न हो और मन के समग्र कार्य विषय भी न हो, चिदाकाश शब्द श्रुति ने निर्गुण आकाश की तरह है जिस में मूल्य, हरय, दर्शन और चिन्तन कुछ भी नहीं। चिदाकाश वह विचाररहित तत्त्व है जिस से और जिस में द्रष्टा, दर्शन, हरय तीनों का उदय और अस्त होता है, जिस में सब पदार्थों के अनुभव उदय होकर परिवर्तित होते रहते हैं, जो कुछ भी न होता हुआ सदा सब कुछ है। जो सर्व-

वृत्तहित, बल्यना से मुक्त, शान्त, सत, चित्, प्रकाशमय है, जा अमूर्त होता हुआ भी मूर्त है, सगन करता हुआ भी पदार्थ के तुल्य अद है, भोक्ता होने पर भी निर्व्यग्रह है और कर्ता होने पर भी कुछ न करनेवाला है। जैसे दीपक के मौजूद होने पर व्यवहार होता रहता है वैसे ही हम प्रकाशमात्र विलून साक्षी के रहते हुए चित्त की त्रियात्मक इच्छाएँ प्रकृत होती रहती हैं। जैसे कटक, अङ्गूर, केसूर आदि भूषणों के रूप में सोना प्रकट होता है वैसे ही बह भी सैकड़ों पदार्थों के झूठे आकार में अन्य सा होकर प्रकट हो रहा है। उस से ही बाल की गति है, हरय की हरयना है, मन की क्रिया है, कसी के मकान में यह जगत् प्रकाशित हो रहा है। वह परमात्मा से भी परे है, सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है, आकाश के भीतरी भाग स भी शुद्ध सूक्ष्म और शान्त है। उस परम रूप को उपमा जड़ पदार्थों के रूप से दो जा मन्ती है, यदि वे मन शुद्धि आदि स मुक्त रत हुए भी बोधमय हो जायें। जो चिदात्मा जगत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुर्या और तुर्यातीत अवस्थाओं में सदा सत जगह समान रूप से स्थित है उस की ही हम उपासना करते हैं। यह प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से परे होने के कारण अवर्णनीय है, केवल इतना ही कहा जा सकता है कि यह कोई बहुत उत्तम, सूक्ष्म, सर्वोत्कृष्ट शुद्ध अनुभवमात्र तत्त्व है जो कि सब कुछ है, वह न सत् है न असत्, न दोनों का मध्य, वह कुछ भी नहीं तो भी सब कुछ है, वह मन बचन में आने-वाली कोई वस्तु नहीं है, यह शून्य से शून्य और सुख से भी अधिक सुखरूप अर्थात् परमात्यन्द है।

(या० वा० के आधार से)

(ले०—स्वामी श्री रामानन्दजी संन्यासी, दर्शनशास्त्री, व्याकरणाचार्य)

ब्रह्म ह देवेभ्यो विजिग्ये तस्य इ ब्रह्मणो
विजये देवा अग्रहीयन्त । त ऐक्षान्तास्माकमेवायं
विजयोऽस्माकमेवायं महिमेति ॥

—केन १४

उपनिषद् का प्रसंग है—एक समय देवता और
असुरों के युद्ध में देवगणों को विजयलक्ष्मी प्राप्त हुई ।
यह विजय ब्रह्म यात्री परमेश्वर की महिमा से देव-
ताओं को मिली थी । देवताओं का पक्ष सात्त्विक था,
धर्मातुमोदित था; दैत्यों का ऐसा नहीं था, इसी से
'यतो धर्मस्ततो जयः' न्याय से देवता लोग जीत गये ।

यद्यपि देवताओं के हितार्थ ब्रह्म ने राक्षसों को
पराजित किया था, तथापि उस जयलाभ से देवताओं
ने अपने को गौरवान्वित समझा । उन्होंने निश्चय
किया कि यह विजय और महिमा हमारे अतिरिक्त
और किसी की नहीं है, यह जो कुछ किया गया है
या हुआ है, हम ने किया है, हमारे बल वीर्य और
बुद्धि से हुआ है ।

लड़ाई चाहे जिस की हो, इष्ट नहीं है । देवासुर
लड़ते हैं, यह भी ठीक नहीं है, पर लड़ाई होती
जरूर है । क्यों होती है ? इस के अनेक कारणों में
से यह एक प्रधान हेतु है कि 'यह मृत्युलोक या मर्त्य-
लोक चतुर्दश भुवनों के चौथे भाग का एक हिस्सा है,
क्योंकि भूलोक के चार अंश हैं, नरकलोक, पितृलोक,
प्रेतलोक और मर्त्यलोक ।' भूलोक चौदह भुवनों में
से एक भुवन है । चौदह लोकों में सात लोक ऊपर हैं
और सात ही नीचे हैं, ऊपर के सात लोकों में देव-
श्रेणी के जीव निवास करते हैं और नीचे के सात

लोकों में असुरगणों का निवास है । संसार में यह
वात देखी जाती है कि जो लोग ऊँची श्रेणी के हैं,
यानी राजा, महाराजा, सेठ, जमींदार, मिलमालिक,
गृहस्वामी और महंत आदि स्थिर स्वार्थी धनी जीवों
का समुदाय है; वह आराम से रहता, खाता और जो
चाहे सो करता या करा सकता है । वह गिरोह किसी
प्रकार का परिवर्तन नहीं चाहता, वह क्रान्ति का नाम
सुनकर काँप जाता है । क्योंकि क्रान्ति से अपरिमित
ऐश्वर्यसंभार धूल में मिल जाने का डर रहता है ।

जैसे यह समुदाय अपने निरंकुश अधिकार में
किसी का किसी तरह का हस्तक्षेप करना पसंद नहीं
करता, उसी प्रकार देवतागण सर्वप्रकार से सर्वैश्वर्य-
भोगपरायणता के कारण अपने अधिकार में किसी
की दस्तदाजी नहीं चाहते, वे जैसी स्थिति में अब हैं
वैसी ही में सदा रहना धर्मातुल्लभ समझते हैं । वे यह
भूल जाते हैं कि सभी प्राकृतिक पदार्थ परिवर्तनशील
हैं, कोई वस्तु सदा एकरस नहीं रह सकती, जब यह
वात है तो राजा और महंतों के वे वैभव के टाट उसी
चमकौली सूरत में तरो ताजा न रहकर सदा के लिए
मिट जायेंगे । धनी तथा देवता अपने किसी व्यवहार
में परिवर्तन नहीं चाहते, इसी लिए वे अपने समबल
असुरों के राज्य को छीनने का यत्न नहीं करते ।
अपने घरायशिये असुरों के साथ किसी तरह की छेड़
छाड़ नहीं करते । क्यों करें ? उन के पास सब कुछ
है ही, वे धिलासी जीवन को छोड़कर युद्ध की आग में
क्यों कूटने लगे ?

किंतु नीचे के सप्तलोक के असुरगण सर्वदा देवा-

धिकार छीनने में प्रयत्नशील रहते हैं। जैसे जो अकिञ्चन हैं, जिन के पास जीवनधारणायामिनी सामग्री का अभाव है, जो अपने वैध अधिकार के उपयोग से भी वञ्चित हैं, वे आन्दोलन करते हैं, वे क्रान्ति चाहते हैं, वे पूँजीप्रतिषेध के स्थिर स्थाय को सदा एक जैसा कायम नहीं रहने देना चाहते, इसी से भगड़े होते हैं, यही देवामुरसग्राम का रहस्य है। स्थिर स्वार्थी अपना तिल भर भी स्थाय नहीं त्यागता चाहता और हतस्वार्थजन अपने लिए स्थाय चाहता है। वस, इसी सपने का नाम उस समय 'युद्ध' हो जाता है, जब एक अपने स्वार्थ का दायजल से सुरक्षित रसना चाहता है और दूसरा शत्रुओं आदि की सहायता से उसे प्राप्त करने का उद्योग करता है।

शास्त्रों में देवकृति के लोको की बड़ी प्रशंसा की गई है और शास्त्र ही असुरों की निन्दा भी। क्योंकि देवता सात्विक हैं, या राजस हैं और असुर तामस प्रकृति हैं। वे तो सारा जगत् प्रपञ्च सत्त्व, रज, तम इन तीन गुणों से परिपूर्ण है ससार का कोई पदार्थ इन से खाली नहीं है। किसी भी जीवन को उन्नत बनाने के लिए सत्त्वगुण जैसा उपयोगी है हेम दूसरे दोनों नहीं हैं। यद्यपि ये गुण सर्वत्र परस्पर मिले रहते हैं, पर विशेषता यह है कि वहाँ सत्त्वगुण की प्रधानता रहती है और कहीं रजोगुण तथा तमोगुण की।

सत्त्व और रजस्तमप्रकृतिमानों की आपस में पट्टी नहीं बैठती। इन का मेल नहीं होना, प्रत्युत कलह युद्ध हुआ करता है, सत्त्वगुण शीतस्वरूप होने के कारण सुखदा है, वह सरलता, सत्य, पवित्रता, श्रद्धा, क्षमा, धैर्य, दया, लज्जा, शान्ति और संतोष आदि विविध दाय्यवा का स्थान है। रजोगुण अशीति-कर देने से दुःखरूप है, उस में पुच्छल द्वेष, द्राह्म

ईर्ष्या, मान, अजितेन्द्रियता और गर्व भरा रहता है तथा तमोगुण में अलस्य, अज्ञान, निद्रा, दीनता, भय, विवाद, कृपणता, बुद्धिलता, रोष, विषमता, अत्यन्त नास्तिकता और परदोषदर्शन आदि उत्पन्न भरे रहते हैं। सत्त्वगुण का वर्ण श्वेत, रजोगुण का लाल और तमोगुण का रंग काला कहा गया है। इसी से देवता सुन्दर वस्त्रों में लभे हैं और असुरों को कुरूप कहा गया है। जैसे शास्त्रों में देवताओं को सप्त प्रकार से उत्तमोत्तम कहा गया है और उन के पेश्वर्य भी अपरि-मित लिखे हैं, उसी प्रकार का वैभव लोक में धनी समान, कँची भोगीशालों का माना गया है, उन के लिए आराम के सभी सुभीते एकत्र किये गये हैं। भला ऐसी विषमतावस्था में एक को दूसरे से लड़लट्टा, केशाशशी, गुहासुप्ती न हो तो और क्या हो? एक का आकाश पर चढ़ा दिया जाय और दूसरे को पाताल में धुसा दिया जाय तो वहाँ मल ताल का क्या कार है?

दूसरे तरह यह भी कहा गया है कि मनुष्या में भी वैसी सपत्तिसपन्न और आसुरी सपत्तियुक्त व्यक्तियों का सम्पर्क सदा होता रहता है। सत्त्व के मनुष्यतर अन्धान्य जीव अपने सहज स्वभाव के कारण एक दूसरे से शत्रुता रमा करते हैं, अतएव लड़ते रहते हैं। वे अपने स्वभाव में परिवर्तन नहीं कर सकते, क्योंकि ऐसा करने की उन में क्षमता नहीं है। किन्तु मनुष्य के लिए अपने स्वभाव में परिवर्तन कर लेना समर्थ है, अध्ययन करने से वह सार सुख करने में समर्थ है। यदि 'ग्रामातो दुर्पतिक्रम' स्वभाव भिटाया नहीं जा सकता, यह ध्यान सच हो तो उस के प्रवाह की धारा एक आर से दूसरी तरफ़ तो चली जा सकती है। जैसे कोई महा तामसी मनुष्य है, वह सब से सदा मगड़ा ही करता रहता है, उसे यह विचार नहीं

कि 'यह योग्य पुरुष है, इस से विवाद करना अश्रु-
ष्टता है।' यदि ऐसा मनुष्य अपने खराब स्वभाव को
मिटा नहीं सकता तो अभ्यास करने पर उस स्वभाव
की उग्रता को दुराचारियों के विरुद्ध प्रयुक्त कर सकता
है। यदि उस क्रोधी स्वभाव को पापों के विरुद्ध काम
में लाया जाया तो बहुत से अत्याचार कम हो सकते हैं।
कहने का प्रयोजन यह है कि मनुष्य चाहे तो संसार
से सब भगड़े मिटा दे। यदि त्रिगुणात्मिका सृष्टि के
वैषम्य से ऐसा करना संभव न हो तो कम से कम
लड़ाई दंगे कम तो अवश्य हो जाँय। और जो हाँ भी
तो उन की भयंकरता कम हो सकती है।

लड़ाई भगड़ों को सभी बुरा वतते हैं, पर इन्हें
मिटा कोई नहीं सकता। विद्वान्, धनी, मानी, धीर,
शूर, क्रूर, खी, पुरुष सब लड़ते रहते हैं। जो लड़ते
नहीं हैं वे लड़ाकुओं से सहयोग तथा संपर्क रखते हैं।
ऋषि, मुनि, भक्त, संत ये सब शान्त कहते हैं, ये
किसी के चित्त को चोट नहीं पहुँचाना चाहते, ये
सब के साथ आत्मवत् व्यवहार करते हैं। पर उपा-
सना राम, कृष्ण, देवी आदि देवताओं की करते हैं,
जिन के हाव में सदा शशास्त्र रहे हैं और वरावर
लड़ते रहे हैं। जगत् में उन्हीं देवताओं की पूजा
होती है जो हमेशा मरने मारने, कटने काटने को
तैयार रहते हैं। विष्णु लड़ाके हैं, इसी से भक्त लोग
हँस हँसकर उन के लड़ाई के कारनामे पढ़ा करते हैं।
जब देवी गाता राक्षसों के मस्तक को छेदन करके
उन का रुधिर पान करने के लिए अपना खप्पर भरा
करती हैं, प्रतिमा के उस दृश्य को देखकर या तत्सं-
वन्धी कथा को वाँच सुनकर भक्त लोग फूले अन्न
नहीं समाते। 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' का पाठ पढ़ने-
पाठे वेदान्ती लोग गीता को बड़ा महत्त्व देते हैं, किंतु
यह प्रारम्भ होती है लड़ाई के कथानक से। उस का

संग्रह भी युद्धभण्डार महाभारत से किया गया है।
रामायण में लड़ाई भरी पड़ी है। प्रतीत होता है, अतः
राम की विजय हुई, अतः आज घर घर में उन की
पूजा हो रही है। यदि रावण विजयी हो जाता तो
जगत् में उसी की प्रशंसा के गीत गाये जाते। इस का
अभिप्राय यह हुआ कि पूज्याऽपूज्य की योग्यता युद्ध
के कारण हुई। भागवत, शिवपुराण आदि धार्मिक
ग्रन्थों में युद्ध की वार्ता बड़े विस्तार से अच्छे रोचक
ढंग से वर्णन की गई है। यहाँ तक लिखा गया है
कि लड़ाई में आगे बढ़कर कट मरनेवाले की वही
गति होती है जो योगी संन्यासी को प्राप्त होती है।

आज जो सुखी देखने में आते हैं, पहले उन के
पूर्वजों ने लड़ाइयों में रणचण्डी देवी को अपने ऊष्ण
रक्त से स्नान कराकर उन के चरणों में अपने नरमुण्डों
के श्रीफलों को उपहाररूप से समर्पण किया था।
उस त्याग के पुण्य प्रताप से आज भाग्यशाली कहे
जानेवाले कुछ मुट्ठी भर लोग महलों की सातवीं
मंजिल पर बैठे, सोने की थाली में हलुवा खा रहे हैं।
यदि उन के भ्रूचण्ड भुजदण्डों में खड्ग धारण करके
रणभूमि में आने की सामर्थ्य होगी और अपना सिर
देने तथा दूसरों का मस्तक लेने का साहस होगा तो
वे घरातल के सब भोगों के निःसंदेह फिर से एकमात्र
मुख्य अधिकारी होंगे। यह काम युद्ध से होता है,
जिन लोगों को पहले जो सफलता प्राप्त हुई है वह
युद्ध से हुई है।

शंकरजी जंगल में निवास करते हैं। कैलाश जो
उन का प्रधान निवासस्थान था, उस को उन्होंने
कुत्ते को दे दिया। खुद दिगम्बर या व्याघ्राम्बर हैं,
शरीर में भस्म लेपन कर रखा है, हाथ में कपाल है,
पर एक हाथ में त्रिशूल है, इस का युद्ध के लिए उप-
योग भी किया करते हैं। विष्णुजी के चार हाथों में

दे। हस्त आयुधोंवाले हैं। अष्टभुजा भगवती के अधिकांश हाथों में सुशाल, चक्र, धनुष, बाण आदि देखने में आते हैं। इसी प्रकार इन्द्र, कुबेर, यम, सूर्य आदि देवताओं की भी ऐसी ही स्थिति है। वहाँ तक पहुँचे जो प्रधान देवता हैं, वे सध लड़ा करते हैं और इसी लिए उन के पास खास खास शस्त्रास्त्र भी होते हैं। ब्रह्मानी के हाथ में शस्त्र नहीं है इसी से उन का मन्दिर वहाँ वहाँ भूल से बना दिया गया है। इस कथन का यह अभिप्राय नहीं है कि युद्ध उपदेय है, रमणीय है, करणीय है और आवश्यक है। हम ने तो वस्तुस्थिति का दिग्दर्शन कराया है।

कोई सज्जन युद्ध को आवश्यक भी मानते हैं वे समझते हैं कि आपस के झगड़े का निपटारा मित्र युद्ध के नहीं हो सकता। सत्कार में दो ही तो विचार हैं, एक शस्त्रविद्या और दूसरी शास्त्रविद्या। उनका कहना है कि 'शस्त्रेण रक्षिते देशे शास्त्रचिन्ता प्रवर्धते' अर्थात् जो देश, राष्ट्र शस्त्र से रक्षित नहीं होगा, वहाँ कोई भी शास्त्र का विचार नहीं कर सकता। भाव यह हुआ कि जिस देश में लड़कर दुष्टों को न कुचल दिया जायगा, वहाँ कोई पोषो पत्रे कैसे बाँच सकता है? ग्रन्थाध्ययन करता और माला फेरता ता शान्त वातावरण में ही हो सकता है।

हम समझते हैं यह बात ठीक नहीं है। युद्ध से विजिता अपने प्रभाव से निज विधियों को दूसरों पर लादता है और जिस शान्ति की स्थापना करता है वह स्थायी नहीं होती। स्थायी शान्ति बिना अनेक-वृत्ति के परिवर्तन के नहीं हुआ करती और यह काम शिक्षा या उपदेश से जैसी अच्छी तरह हो सकता है वैसा और किसी तरह होना सम्भव नहीं। वास्तविक चेतना का विकास, चरित्रगठन, आमनिर्भरता, उत्तर-

दायित्व का अनुभव, स्वास्थ्य की उत्थति, देशप्रेम, आसीय अनुराग आदि की भावना, यह सब शिक्षा और उपदेश से हो सकता है। उपदेश लोकसम्बद्ध को बनाता है, लोकसम्बद्ध या सदाचार की स्थिति सामाजिकता, सहृदयता, समवेदना और न्यायपरता आदि भावों पर है, युद्धराज के साथ इन भावों की स्वाभाविक शत्रुता है। शत्रुता को मार गिराकर उन की खियों को विधना करना, उन के बच्चों की मातृपितृ-मिहीन करना और उन के गुन्ध का प्राप्त छीनकर उन्हें दर दर का भित्तारी बना देना ही तो युद्ध का उद्देश्य होता है। तब युद्धनीति में सहानुभूति, सहृदयता, समवेदना और न्यायपरता कहाँ रह गई? युद्ध एक बड़ा अभिशाप है जो मित्रता, जीवनगति और उत्थति का कट्टर शत्रु है तथा निर्दयता, निष्ठुरता, क्रूरता और स्वार्थपरता का पक्ष मित्र है। प्रकृति के साम्राज्य में रहकर उस के नियम को मानने में ही कल्याण है, प्रज्वि सबरिथ को पसंद करती है यानी उसे कार्यक्षेत्र में काम करने के लिए चुनती है। और दुश्चरित्र को भिदाती है, यानी उसे कार्यक्षेत्र से हटा देती है। युद्ध करना दूसरा की शान्तिभङ्ग करना सच्चरित्रता में दर्खिल नहीं है। "आनतायियों को वण्ड देने के लिए युद्ध से बढ़कर और कोई सफल प्रयोग नहीं है" ऐसा कहनेवाले को इस ऐतिहासिक सत्य को न भूल जाना चाहिए कि 'एक युद्ध चाहे कितने ही सीढ़े फल के परिणाम का क्या न जन्म दे, पर उस की फाँस में एक बहुत बड़े महायुद्ध का बीज निहित है।' युद्ध के बाद की शान्ति ऐसी होती है जैसी लगी हुई आग के झुम आने पर चिनगारी राख में दबी रह जाती है।

यदि सचमुच कोई युद्ध के लिए लालायित हो है तो वह दारिद्र्य, व्याधि और अज्ञान के साथ लड़े। इन के साथ युद्ध करने में सच्ची शूर धीरता है। स्मरण

रहे कि युद्ध करने में अपनी बढ़ी हुई शक्ति से दूसरों को धर दवाने में, उन के घर बार, वस्तु संपत्ति को जबरदस्ती छीन लेने में कोई बीरता नहीं, किंतु यह नामर्दाना, कायरता, भीरुता और कापुरुषता का ही परिचायक है। यह काम तो डाकू लुटेरे भी कर सकते हैं। इतिहास के प्रमाण से सिद्ध है कि विजयी व्यक्तियों और जातियों को भी युद्ध के द्वारा स्थायी लाभ नहीं हो सकता। आज प्राचीन समय के समुन्नत मिश्र, रोम, असीरिया और वैविलोन कहाँ हैं? आज सिकंदर के जन्मदाता यूनान की क्या हालत है? क्या महमूद गजनवी और मुहम्मद गोरी के ऊँचे अड्डे खड्डों में परिणत नहीं हो गये हैं? सैनिक-समाज कभी उन्नतिशील नहीं हो सकता। आझाधीनता के कारण सैनिकसमाज में व्यक्तित्व और स्वतन्त्रता को कोई स्थान प्राप्त नहीं है। जो युद्ध द्वारा दूसरों का शोषण करता है प्रकृति उस से दूसरे प्रकार से बदला लेकर उसे मिटा देती है। सैनिकशासन में न दलील को दखल है, न अपील का ठिकाना है और न वकील का ही पता लगता है, वहाँ जो मारो, काटो, बस यही ध्येय रहता है, लोग डुसी हो जाते हैं। पर युद्ध के बन्द होते ही हवा बदल जाती है।

युद्ध मनुष्य के भाग्याकाश का राहू है, संसार में जितनी उन्नति हुई है, वह सब शान्ति का ही फल है। शान्ति के द्वारा ही हमें विचार और मनन करने का समय प्राप्त होता है। शान्ति ने ही हमें ज्ञान, विज्ञान

सिखाया है। युद्ध दासता का जनक और स्वतन्त्रता का शत्रु है। विकास के लिए स्वतन्त्रता की आवश्यकता है। युद्ध के कारण मनुष्य को अपने स्वभाव और प्रकृत सुकाव के अनुसार बढ़ने और फलने का अवसर प्राप्त नहीं होता।

अधिक क्या कहें, इस समय युद्ध के प्राचीन इतिहासों को दुहराकर उस की विभीषिका और लाभ हानि सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि यह युद्धकाल है। सारे संसार में युद्ध की आग लगी हुई है, हमारे देश के द्वार पर भी युद्ध की अग्नि सुलग रही है, न मादूम वह कब धधक उठे। इस समय जीवनेपयोगी सामग्रियों दुष्प्राप्य हो गई हैं, खाने पहने की वस्तुएँ मिलनी कठिन हैं। आगे चलकर पानी तथा प्रकाश भी मिलना संभव हो जाय तो आश्चर्य नहीं है। यूरोप की पहली लड़ाई ने इस युद्ध को जन्म दिया, अब यह न मादूम किस प्रलयंकारी अशान्ति की जनक होगी?

जा भी हो, युद्ध सदा से होते आये हैं और आगे भी होते रहेंगे। यदि मनुष्य ने अपनी स्वार्थमयी मनोवृत्ति न बदली तो यह संसार स्वर्ग से नरक हो जायगा। कोई पूछे कि मनुष्यसमाज की व्यवस्था को आमूल परिवर्तित या नष्ट करनेवाला विपैला गोलू कौन है? तो सारे संसार की तरफ से उत्तर मिलेगा कि 'युद्ध'।



योगादेव तु कैवल्यम्

(ले०—श्रीमो श्री शिवानन्दजी योगिराज वैद्य, धन्वन्तरिगुरु)

मान को वश में करिये बिना कोई काम नहीं हो सकता, मनोनिग्रह योगाभ्यास पर निर्भर है। योगी जो काम घंटों या मिनटों में अनायास बना लेता है, उसे अयोगी जन्म भर में भी पूरा नहीं कर सकता। हम ने वेमे संतों को देखा है जो कुछ भी पढ़ता लिखता नहीं जानते, किन्तु यद्यपि वेसे बोलते हैं मानो वेद शास्त्र के वचनों का आनुपूर्वी अनुवाद हो। यह चित्तवृत्तिनिरोध का परिणाम है। जब से वेद में योग की प्रणाली ज्ञाती रही तब से नई बात तो क्या, प्राचीन लोगों की आविष्कृत विद्या की समझने तक की योग्यता नहीं रही। हमारे सभी धार्मिक कृत्यों में योगाभ्यास करने की विधि है। दिनदिवसों के साध्यावन्दन का योग एक प्रधान कर्माङ्ग है। हम आज योग के विषय में कुछ कहना चाहते हैं। हम चाहते हैं इस अत्यन्तापयोगी प्रणाली का फिर पुनरुद्घोषण हो। योगी की अन्त से द्रवि तक की जीवन-चर्या का सश्रित विमान सन ज्ञानभूमिका द्वारा कहा गया है, यथा—

ज्ञानभूमिः शुभेच्छाख्या मयमा समुदाहृता ।
विचारणा द्वितीया स्वात् तृतीया तनुमानसा ॥
तत्त्वापत्तिधनुर्धरा स्यात्ततोऽसंसक्तिनामिका ।
परार्थाभावनी पृष्ठी सप्तमी तुर्यगा स्मृता ॥

१—ज्ञान, द्वादिपूर्वक विवेक वैराग्य से युक्त गुण को जब अग्रमकल्याण की सीमा देखी जाती है, वह 'शुभेच्छा' नामिका ज्ञान की पहली भूमिका कहो गई है।

२—जिस में भ्रमण, मगन आदि हो वह 'विनायका' नामिका ज्ञान की दूसरी भूमिका है।

३—ज्ञान विषयों का समग्र मन सब विषयों का परित्याग करके जब एक विषय (ब्रह्म) में ही वृत्ति के प्रवाहप्रवाह हो जाना है वह, तनु (सूक्ष्म) मन की निदिध्यागनिरूप 'तनुमानसा' नाम की तीसरी ज्ञानभूमि कहो गई है।

४—इन तीन भूमियों से कुछ द्रुप भक्त करण में 'मै ब्रह्म हूँ' यह जो ब्रह्म की अपरोक्ष (प्रत्यक्ष) वृत्ति है वह 'सत्त्वापत्ति' नाम की चौथी भूमिका है। इन चारों में आती जा तीन भूमिकाएँ कटी जायेंगी वे असंप्रज्ञा योग भूमिका बहाती हैं।

५—सत्त्वापत्ति के अनन्तर इस सत्त्वापत्ति भूमिका में वरुधित हुई जा सिद्धि है उस में असंसक्त योगी की 'अवसक्ति' नाम की पाँचवीं ज्ञानभूमिका बहाती है। इस में योगी स्वयं व्युत्थित होता (उठता) है।

६—जिस में परब्रह्म से भिन्न की भावना (विचारणा) नहीं है वह 'परार्थाभावनी' नाम की छठी भूमिका है, इस में योगी दूसरे के उठाने में व्युत्थित होता है।

७—जिस में तुरीय पद में योगी पहुँच जाय वह 'तुर्यगा' नाम की सातवीं भूमिका है, ये भेदियाँ (संज्ञितें) हैं, जो योगी को क्रम से तप करनी पड़ती हैं।

सुख सब चाहते हैं, अगवाध ने गीता में सुख का साधक योग को ही बताया है, यथा—

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य नचायुक्तस्य भावना ।
नचाभावयतः शान्तिरज्ञान्तस्य कुतः सुखम् ॥

—गी० २।६६

जो योगी नहीं है, उसे बुद्धि नहीं है, न भावना ही है, भावना के बिना शान्ति कहाँ? जब शान्ति ही नहीं फिर सुख कैसे मिल सकता है? अतः योग ही सुख का साधन है।

वेदेषु यज्ञेषु तपः सु चैव,

दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम् ।

अत्येति तत्सर्वमिदं विदिस्वा,

योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम् ॥

—गी० ८।२८

जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते ।

वेद, यज्ञ, तप, दान से जो पुण्यफल मिलता है, सब को योगी उल्लङ्घन कर देता है और परब्रह्मरूप उत्तम सनातन पद को प्राप्त होता है।

भगवान् न योग के जिज्ञासु को भी उत्तम कहा है, फिर योगी का तो कहना ही क्या है? यद्यपि व्यासजी ने ब्रह्मसूत्रों में योग का कुछ स्पष्टन किया है, पर उस का अभिप्राय यह है कि उन्होंने भेदरूप अंश की ही समालोचना की है, भावना विशेष रूप योग का प्रत्याख्यान नहीं किया है। पुराणों के अनुसार योग के अधिकारी सभी है।

यथा—

ब्राह्मणक्षत्रियविशं स्त्री शूद्राणाञ्च पावनम् ।

शान्तये कर्मणामन्यत् यद्योगान्नास्ति मुक्तये ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और स्त्री, इन को पवित्र करनेवाला, कर्मों की शान्ति के लिए मुक्ति-प्राप्त्यर्थ योग से बढ़कर और कोई मार्ग नहीं है।

अत्याहार, प्रयास, प्रजल्प, नियमग्रह, जनसंग और चपलता ये योग के विनाशक हैं। और उत्साह, साहस, धैर्य, तत्त्वज्ञान, निश्चय, तथा जनसंग का परित्याग ये योगाभ्यास के साधक हैं। योगी को अभ्यास के योग्य कौन स्थान उपयुक्त होगा इस का परिचय गुरु तथा आकर ग्रन्थों से करना चाहिए। योगग्रन्थों में उस मठ का वर्णन अच्छी तरह किया गया है जहाँ योगसाधन सफलता से हो सकता है। यद्यपि सत्यः चमत्कारक फलप्रद होने के कारण हठ-योग की उपादेयता सर्वजन विदित है। किंतु इस में जरा भी वैगुण्य होने से साधक जन्म भर के लिए निकम्मा हो सकता है। इस में गुरु की सहायता की आवश्यकता हरदम बनी रहती है। सही तो यह है कि यह शुरू से आखिर तक गुरु के सान्निध्य के बिना संभव नहीं हो सकता। किंतु राजयोग के लिए प्रायः ये बातें नहीं हैं। यह हानिप्रद भी नहीं होता और जितना इस विषय का अभ्यास किया जाय उतना ही उपयोग में आ सकता है। इस में प्रत्येक क्रिया समभाव से होनी चाहिए, अतिशयता नहीं; किसी भी काम में अति करना नीतिविरुद्ध है। इस लिए गीता में कहा है—

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न वैकान्तमनश्नतः ।

न चांतिस्त्विमशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ॥

—गी० ६।१६

बहुत खाने, विलुल न खाने, बहुत सोने और विलुल न सोने से योग नहीं होता। भाव यह हुआ कि योगसाधन के लिए अत्यन्त सात्त्विक होना आवश्यक है।

योग से ऐसी कोई सिद्धि नहीं है जो प्राप्त न हो सके। किंतु चास्ताव में योग का उद्देश्य आत्मा और

परमात्मा का साक्षात् दर्शन करना है। इस में प्रयत्न हुआ पुरुष, अपने परम उद्देश्य पर पहुँचने से पहले ही इतना इच्छिशीली हो जाता है कि उस को अथात्म और बाह्य, सारी शक्तियों का आधिपत्य प्राप्त हो जाता है। अगर साधक सिद्धियों के जाल में फँस गया तो उस तक ही रह जाता है, फिर आगे बढ़कर उस आसक्त को नहीं पा सकता जिस के लिए 'यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मनः' यह वचन कहा गया है। जिसे नित्य आनन्द प्राप्त करने की भूख है वह सिद्धियों की सीमा से आगे बढ़े बिना रुक नहीं हो सकता।

चित्त की वृत्तियों क्षण क्षण में बदलती रहती हैं, यद्यपि इन की एक दिन की गिनती का भी कुछ ठिकाना नहीं है तथापि वे सारी 'प्रमाण', 'त्रिरर्थ्य', 'विहृत्य', 'निद्रा' और 'स्वप्न' इन पाँच भेदों में आ जाती हैं। चित्त की अवस्था में भी 'चित्त', 'मूढ', 'विक्षिप्त', 'एकाग्र' और 'निरुद्ध' ये पाँच प्रकार की होती हैं। इन में पहली अवस्था व्यवहारियों की, दूसरी नीचों की, तीसरी जिहामुग्धों की और चौथी तथा पाँचवी योगियों की होती हैं, अर्थात् ये सा योग की अवस्थाएँ हैं। चौथी का नाम 'समज्ञात याम' और पाँचवी का 'असमज्ञातयोग' है। इस पाँचवी दशा में चित्त विनिरुद्ध रह जाता है, यानी वृत्तिरहित हो जाता है अतएव कहा है—

'योगविषयवृत्तिनिरोधः'

निरोध के उपाय 'अभ्यास, और 'वैराग्य' हैं। चित्त को दहराने का चार बार यत्न करता 'अभ्यास' है और चित्त का लोभ परछाड़ कर वासनाओं से रहित करना 'वैराग्य' है। अथवा चित्त पञ्चल है, अगर उस के टिकाने का अभ्यास किया जाय तो वह स्थिर होकर दहरना शीघ्र जाता है। उस को न टिकने

देनेवाली वापनाएँ होती हैं, ये चित्त को हुलायोरस्तती हैं। जब इन को छोड़ दिया जाय तो चित्त निक जाता है। इस प्रकार अभ्यास और वैराग्य से चित्त पहले एकाग्र हो जाता है, फिर इन्हीं उपायों से निरुद्ध हो जाता है। अभ्यास और वैराग्य जितना प्रबल होता है उतना ही जल्दी योग सिद्ध हो जाता है। ईश्वर के प्रतिपान से योग के चित्त दूर हो जाते हैं। अकार का जप और ईश्वर का ध्यान यही 'ईश्वर प्रतिपान' कहा जाता है। योग में जो विघ्न हो जाते हैं वे ये हैं—'व्याधि', 'स्थान' (अयोग्यता), 'संशय', 'प्रमाद', 'आदर्य', 'अविरति' (विषयगुणा), 'भ्रान्तिदर्शन', 'भल्लव्य भूमिबल' (समाधि अवस्था का न पाना) और 'अन्तर्परिवर्तन' (समाधि अवस्था का पाकर भी उस में चित्त का न टहरना) चित्त का चित्त गुड है, उस के लिए अभ्यास और वैराग्य साक्षात् उपाय हैं। चित्तु चित्त को अभी चित्त को गुड करना है। जब के लिए 'निययोग' में 'अविद्या', 'अस्मिता', 'राम', 'द्वेष' और 'अभिनिवेश' ये पाँचों द्वेष दूर हो जाते हैं।

योग के यम, नियम आदि आठ अङ्ग कहे गये हैं। इन में यम पाँच प्रकार का है और नियम के भी पाँच भेद हैं सर्वत्र सम के प्रति प्रसिद्ध होने के कारण इन के विषय में विस्तार नहीं किया गया। समाधि के सा भेद हैं—'सबीज' और 'निर्वीज'।

यद्यपि अनुमान आदि साधनों से भी पदार्थों का परिचय हुआ करता है, पर समाधि में तो इन का साक्षात्कार हो जाता है। यानी नहीं, योगी में सब कुछ करने की और चाहे जैसा हो जाने की सामर्थ्य भी हो जाती है 'युक्त' योगी को सभी कुछ का सबदा भान हुआ करता है और 'युक्तान' को सोचने विचारने पर सब बातों का पता लग जाता है। योगी रुई से

भी हलका हो सकता है और पहाड़ से भी ज्यादा भारी बन सकता है वह चाहे मच्छर से छोटा आकार धारण कर ले और हाथी से भी स्थूल बन जाय। सूर्यमण्डल का भेदन करके योगी परम आद्य स्थान को बेरोक टोक जा सकता है। हनुमान्जी अनायास समुद्र को गोपद की तरह योग के बल से लॉच गये थे। नारदजी योग की महिमा से तीनों लोकों में विचरा करते हैं। योग की ही महिमा थी जिस के बल से संजय दूर बैठे हुए, महाभारत के युद्ध की सब घटना देखा करते थे। योग के शतांश या सद्दशांश के आधार पर लोग बड़े से बड़ा काम करने में समर्थ हो जाते हैं।

विना चित्तवृत्ति के लगाये कोई काम नहीं हो सकता, प्रत्युत बिगड़ जाता है। यदि चित्त ठिकाने न हो तो रोटी बनाते हुए हाथ जल जाय या पदार्थ ही जल जाय या रामरस आदि के अधिक पड़ जाने से खराब ही हो जाय। कपड़ा सीते समय अक्षत-धानी हो तो सूई ही अँगुली के आर पार हो जाय। इन सब कामों में चित्तवृत्ति का निरोध करना पड़ता है, वस, यही तो योग का अंशतः पालन है।

हमारे देश से योग की प्रक्रिया नष्ट हो गई है, पहले विरक्त लोगों को इस के संपादन करने का बड़ा सौकर्य था। वे योगोपयुक्त स्थानों में जाकर अभ्यास करते थे, उन के पास समय था, वन का जीवन निश्चिन्त था, वे सभी दृष्टियों से योग जैसे कठिन कार्य को आसानी से सिद्ध कर सकते थे,

इस से उन के लाभ के साथ साथ देश की एक सर्वोत्तम विभूति का संरक्षण होता था। अब तो तपोमय जीवन बिताने की प्रवृत्ति जाती रही। अस्तु;

अब तक जिस योग के संबंध में कहा गया है उस का मोटा अर्थ है जोड़ना, अर्थात् जीवरूप चैतन्य जो अविद्या में फँसकर परमात्मा परब्रह्म से अलग हो रहा है, उस की इस भिन्नता को दूर करके उस को पहले स्वरूप में लाकर, जहाँ से निकला था वहाँ पुनः पहुँचा देने का नाम 'योग' है। इस प्रकार वेद, शास्त्रों में जीव को मुक्तिपद में पहुँचा देने के, जितने साधन वणन किये गये हैं वे सब चार विभागों में विभक्त किये जा सकते हैं यथा—मन्त्रयोग, हठयोग, लययोग और राजयोग। शास्त्रोक्त किसी मन्त्र या रूप के ध्यान से चित्तवृत्ति निरोध का नाम मन्त्रयोग है। शारीरिक क्रिया द्वारा चित्तवृत्ति का निरोध करना हठयोग है। पट्यक्रभेदन द्वारा वहिमुख्य शक्ति को ब्रह्माण्ड में लय करना लययोग है। और केवल बुद्धि की सहायता से ब्रह्मविद्या दिचार द्वारा चित्तवृत्तियों के उपराम होने का नाम राजयोग है।

योग से आत्म, अनात्म पदार्थों का ज्ञान हो जाता है। इस अवस्था में आत्मा अपने रूप में अवस्थित हो जाता है। पहले प्रकृति के बन्धन में था, अब उस से छूट जाता है, वस, यही 'मुक्ति' है, अर्थात् पहले वह प्रकृति के साथ एक हो रहा था, अब उस से अलग होकर केवल स्वरूपस्थ हुआ है, इसी को 'केवल्य' कहते हैं।



अध्यात्मयोग

(ले०—श्री अरविन्द)

1

अहंकार को जड़ से उखाड़ फेंकना होगा, जिस से अनन्त ईश्वर की जो हमारे लिए इच्छा है उस के सापेक्ष पूर्ण आनन्द, पूर्ण शान्ति, ज्ञान तथा भागवत सत्ता की पूर्ण कर्मण्यता को प्राप्त कर सकें। पूर्ण आत्मसमर्पण का यह भाव यदि अपूर्ण रूप से भी स्थापित हो जाय तो यौगिक क्रिया की फिर कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। कारण, तब स्वयं ईश्वर ही हम में साधक हो जाता है और वही सिद्ध, उस की भागवत शक्ति हम में कार्य करने लगती है, हमारी इन्द्रिय प्रक्रियाओं द्वारा नहीं, किंतु उस प्रकृति की क्रियाओं द्वारा जो पूर्ण रूप से वित्त है, समाप्त विषयो का अनुसाधन रखती है और अंगोप रूप से कार्यरत है। अत्यन्त शक्तिशाली राजयोगिक सयम, अत्यन्त उन्नत प्राणायाम, अत्यन्त अतिरिक्त ध्यान, अत्यन्त आनन्दपूर्ण भक्ति, अत्यन्त निष्काम कर्म भी भागवत शक्ति की परम क्रिया द्वारा होनेवाले लाभ की तुलना में कमजोर सिद्ध होते हैं। कारण, ये सब के सब कुछ हद तक हमारी अपनी योग्यता पर निर्भर रहते हैं, किंतु भागवत शक्ति की क्रिया का वल अपार है, क्योंकि यह ईश्वर की योग्यता है।

इस योगसाधन की सब से पहली प्रक्रिया यह है कि तुम आत्मसमर्पण का स्वरूप करो, सर्वोच्चता और संपूर्ण शक्ति के साथ अपने आप को भगवान् के हाथों में सौंप दो। कोई शर्त न रखो, कुछ भी न माँगो, कुछ योगसिद्धि भी मत चाहो, सिवाय इस के तुम मे और तुम्हारे द्वारा भगवान् के संकल्प की ही श्रृंखला पूर्ण होती रहे। जो मनुष्य भगवान् से कुछ

माँगते हैं, उन को वे उस चाही हुई वस्तु को ही देते हैं। किंतु वे लोग जो अपने आप को दे देते हैं और कुछ नहीं माँगते उन को भगवान् उन सब चीजों को तो देते ही हैं। जिन की उन्हें आवश्यकता हुई होदी, वस्तुि वे स्वयं अपने आप को और अपने प्रेम के रस-मिष्ट वरदान को भी प्रदान करते हैं।

इस योगसाधन की दूसरी प्रक्रिया यह है कि तुम कर्तृत्वभिमान से विलग हो जाओ और भागवत शक्ति की तुम में जो प्रतिक्रिया हो रही है उस को तुम साक्षी रूप से देखने रहो। भागवत शक्ति की यह क्रिया जब होती है तब बहुधा देहादि में क्षोभ और कष्ट होता है, इस लिए तुम में भ्रष्टा होनी चाहिए, यद्यपि पूर्ण भ्रष्टा वा एक नार ही हो जाना सदा संभव नहीं होता, कारण कि तुम में जो कुछ मलिनता दिखाई दे रही है या भीतर ठिपकर पर किये हुए है वह ऊपर उभड़ जाती है। जब तक उस को निर्मूल नहीं कर दिया जाता तब तक बराबर आक्रमण करती रहती हैं और इस समय में संदिग्ध का उठना साधारण बात है। परंतु जब संदिग्ध का आक्रमण हो तब भी उस से भलग हो जाओ और संदिग्ध के चले जाने तक धैर्य रखो, तथा संभव हो तो उन लोगों के ससंग का लाभ उठाओ जो इस मार्ग में कुछ आगे बढ़ चुके हैं।

किंतु इस ससंग का अभाव हो सब भी इस योग के मूल सिद्धान्त आत्मसमर्पण का हटना से पकड़े रहो। जब अदर व्यापुल्लभ हो या बाहर से आवरण हाता हा तब भीना के इन शक्तों का स्मरण करो—

मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिण्यसि ।

‘अपने आप को सर्वात्मना मुझे दे देने पर मेरे प्रसाद से तुम समस्त कठिनाई और संकटों को पार कर जाओगे’ तुम्हें परेशान होने या संघर्ष में पड़ने की आवश्यकता नहीं, तुम्हारी सफलता की जिम्मेदारी को एक शक्तिशाली सत्ता अपने हाथ में लिये हुए है। रोग, संकट, पाप और मलिनताओं का उभाड़ इन से तुम जरा भी मत घबड़ाओ, केवल भगवान् से चिपके रहो। इन से वे मुक्त कर देंगे, परंतु मुक्ति किसी अचानक चमत्कार के रूप में न होगी, वह तो पवित्रीकरण की एक प्रक्रिया द्वारा ही होगी और रोग आदि का उभाड़ इस प्रक्रिया का एक अङ्ग ही है। यह ऐसा है जैसे कोई कमरा बहुत दिनों से बिना झाड़े गूहारे पड़ा हो और अन्त में उस को साफ किया जाय तो उस की धूल गुरी तरह ऊपर को उठती है। यद्यपि वह धूल तुम्हारा गला घोटती सी मालूम पड़ती है फिर भी अपना प्रयत्न जारी रखते हो, वैसे ही यहाँ समझो।

अपने कर्तृत्वभिमान से विलग होने के लिए यह आवश्यक है कि तुम्हें यह ज्ञात हो कि हम केवल साक्षी पुरुष हैं, ईश्वर के कार्य में अनुमति देते हुए फलों का भोग करते हैं। यथार्थ में कर्मों की शक्ति के रूप में भगवती या काळी करती है और श्री कृष्ण को यज्ञरूप से अर्पण करती है, तुम तो यजमान की तरह हो जो यज्ञ को संपन्न होता हुआ देखता है उस की उपस्थिति यज्ञ को प्रत्येक क्रिया में आवश्यक है। इस प्रकार अपने आप को पृथक् कर लेना, कर्तृत्व-भिमान का त्याग कर देना तुम्हें सहज हो जायगा यदि आधार क्या है इस का ज्ञान हो जाय। अन्तःकरण का सर्वश्रेष्ठ व्यापार बुद्धि है, किंतु उस से भी ऊपर परा बुद्धि या विज्ञान है जो ज्ञान के सत्य

का, भाव के सत्य का, कर्म के सत्य का धाम है और इस आदर्श तत्त्व से भी ऊपर आनन्द है जिस में तुम्हारा भागवत अंश निवास करता है। ईसा ने जब कहा था कि ईश्वर का साम्राज्य तुम्हारे अंदर है तब उस का अभिप्राय इसी विज्ञान और आनन्द से था, इस समय हम लोग निम्नतर प्रवृत्तियों में ही जाग्रत हैं तथा विज्ञान व आनन्द में सुषुप्ति। अतः हमें चेतना के इन स्तरों को अपने अंदर जाग्रत करना है, इन का जाग्रत हो जाना और इन की विशुद्ध क्रिया का हम में होने लगना इसी का नाम योगसिद्धि है। जब ऐसा हो जाता है तब हम स्थिति को प्राप्त हो जाते हैं जिसे गीता में भगवान् में वास करना कहा गया है, ‘निवसिष्यसि मय्येव’ ‘निश्चयपूर्वक तुम मुझ में निवास करोगे’ इस भगवद्वाक्य का यही तात्पर्य है। एक बार जहाँ इस स्थिति को प्राप्त कर लिया कि हम मुक्त और धन्य हो गये, हम ने उन सभी चीजों को पा लिया जिन के लिए अब तक चेष्टा करते रहे।

इस योगसाधन की तीसरी प्रक्रिया यह है कि हम वस्तुमात्र को ईश्वर अनुभव करें। ज्ञान की रस-प्रक्रिया में पहले तो साधारणतया यह होता है कि साधक अनुभव करने लगता है कि समस्त देश और काल को व्याप्त करती हुई एक दिव्य और नैर्बिक्रि सत्ता है, सत् आत्मा है जिस में कोई गति नहीं, कोई भेद या आकृति नहीं, वह शान्त और अलक्षण है। उस में समस्त नाम और रूप ऐसे जान पड़ते हैं कि उन में सद्बस्तु का अस्तित्व या तो अत्यन्त संदिग्ध है या नगण्य। इस अनुभूति में ऐसा बोध हो सकता है कि सद्बस्तु तो वह एक है और बाकी सब कुछ माया, निरर्थक और अनिर्वचनीय भ्रम है। परंतु उपर्युक्त अवस्था के बाद तुम यहाँ नहीं रुक जाओ

और अपने आप को इस नैर्बलिक अनुभूति द्वारा परिसीमित न कर लेता। तुम्हें यह दिखाई देगा कि वही आत्मा समस्त सृष्टि वस्तुओं को न केवल धारण कर रहा है और आश्रय प्रदान कर रहा है, बल्कि इन में आविष्ट होकर इन्हें परिपूर्ण कर रहा है। अब अन्त में तुम इस ज्ञान को समझने के योग्य हो जाओगे कि नाम और रूप भी ब्रह्म ही हैं। तब तुम

उस ज्ञान में अधिकधिक निवास कर सकेगे जिसे षण्निषद् और गीता ने जीवन का सिद्धान्त माना है। तब तुम समस्त विद्यमान वस्तुओं में आत्मा को और आत्मा में समस्त विद्यमान वस्तुओं को देख पाओगे—
आत्मानं सर्वभूतेषु सर्वभूतानि चात्मनि ।
तब तुम को सत्य वस्तुएँ 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' ही भासित होंगी। (ब्रजगण)

आधुनिक वर्तमान

(छ०—श्रीमती विभूति देवी अध्यापिका)

हमारे शास्त्रों में त्याग पर बहुत जोर दिया गया है। जो सांसारिक वैभव को समस्त धूलकर त्याग करके भीख माँगने लगता था उस के घरों में बड़े बड़े गृहस्थों के मुकुट झुक जाने थे। इसी प्रकार भक्तों की भी बड़ी महिमा थी, जो अपना सर्वस्व ही क्यों, बल्कि स्वयं तक भूलकर भगवान् के प्रेम में निमग्न हो, पागलों की तरह नाचता फिरता था उस का दर्शन करके लोग अपना जन्म सफल मानते थे। ऐसे ही यज्ञ करनेवालों की भी बड़ी प्रतिष्ठा थी, पश्चिमा में अपना सर्वस्व देकर मिट्टी के बर्तन का काम करनेवाले यज्ञमान उन दिनों स्वर्ग में जाने के अधिकारी समझे जाते थे। उस समय यह सर्वथा वयस्क था, शायद इस की आवश्यकता भी थी। क्योंकि हमारे पास सब कुछ था, हम सब कुछ थे, इसी लिए हमारा त्याग, भक्ति और भजन सर्वथा वयस्क होता था। बस रामाय हम चाहे जितना दें दें सकते थे, जो छोड़ना चाहें, छोड़ सकते थे।

आज भी हम त्याग (ज्ञान), भक्ति और यज्ञ में आधुनिक दर्शन की आवश्यकता है। सिर्फ करना यह

होगा कि पहले जो ज्ञान, भक्ति और यज्ञ के अनुष्ठान की विधि थी आज हम उस में परिवर्तन कर देंगे, क्योंकि आज हमारी बड़ी दशा, स्थिति नहीं है जो आर्यशास्त्र के निर्माणकाल में थी। पहले ज्ञान का पर्यवसान त्याग में था अर्थात् जानी होने की शोभा त्यागी होने में थी। और भक्ति का अर्थ अपनापन भूलकर वन्दन था जो भगवान् में मिल जाना था।

अब हमें अपने स्वार्थ के संरक्षण के लिए देश-भक्ति में लगन हो जाना होगा। क्योंकि अब देश ही भगवान् है, क्या हुआ जो पहले भगवान् ही देश था। पहले यज्ञ में सब कुछ देकर अविच्छन्न हो जाना होता था। अब देशसेवा ही हमारा यज्ञानुष्ठान है, अब देश की चेष्टा पर अपने आप को सर्व-कल्याणार्थ अर्पण कर देना होगा। अब तो देशोन्नति यज्ञकुण्ड है। और प्रत्येक देशवासी को आहुति बनने से काम चलेगा, साथ ही इस प्रक्रिया की दीक्षा लेनी होगी—

हिन्दुस्तानं तथा हिन्दू हिन्दुनादिषु सहरम् ।
स्वदेशे यानि वस्तूनि वर्तनीयानि धर्मतः ॥

अर्थात् पहले जैसे आत्मानात्मवस्तुविवेक, जीव और ब्रह्म की एकता प्रभृति का मनन किया जाता था, आज उसी प्रकार हिदुस्तान, हिंदीभाषा, हिंदूजाति, और रसद्वर आदि स्वदेश की बनी वस्तुओं को उपयोग में लाना होगा। यह काम किसी दबाव से नहीं, बल्कि अपना धर्म समझकर करना चाहिए। 'धारणा-द्वर्धममित्याहुः' के अनुसार स्वदेशी वस्तु ही और हमारी सभ्यता की धारणा (रक्षा) कर सकती हैं।
राजा प्रजा धनी दीनो मजूरः कृपकः सुधीः ।

विदेशी वा स्वदेशी वा सम्मान्या श्रार्य्यभावतः ॥

भारतवर्ष अतिधिसत्कार में सब से बड़ चढ़कर रहा है और है। अलबेखी के भारतभ्रमणवृत्तान्त से पता लगता है कि विदेशी लोग, हमारे अतिधिसत्कार की कैसी प्रशंसा करते हैं। राजा, प्रजा, धनवान्, मजदूर, खेतिहर और पण्डित आदि चाहे कोई विदेशी हो या स्वदेशी, सब का सम्मान करना चाहिए, क्योंकि यह प्राचीन आर्य्यभाव यानी हिंदूसभ्यता है कि हम सब की खातिरदारी करें, जैसे देशनिकाले की आपत्ति के समय हम ने पारसियों को अपने देश का अपने समान नागरिक बना लिया था। इस विषय में उस समय के राजा चन्द्रगुप्त के फरमान देखे जा सकते हैं।

ज्ञानं विज्ञानसहितं धनं मानं मुक्तौशलम् ।
देशतो वा विदेशाद् वै संग्राहं कोटियन्नतः ॥

हम सदा से जिज्ञासु रहे हैं, इस लिए आजकल के उपयोगी कलाकौशल, सोईम द्रव्य, सम्मान (डिग्री) हुनर कारीगरी आदि सीखने में हमें खानदानी सपने के भगड़े में न पड़ना चाहिए। योग्यता संपादन करने की उचित है, वह देश में प्राप्त हो सके या परदेश में जाने से मिल सके। समुद्रपार तो 'क्या दूसरी

दुनियाँ में भी जाना पड़े तो आकर वह योग्यता प्राप्त करने में कभी न चूकना चाहिए, जो हमारे देश को संपन्न और प्रतिष्ठित बना सके। 'समुद्र न लँघना चाहिए' यह हमारे धर्मशास्त्र की आज्ञा है। हम भी इस को शिरोधार्य मानते हैं क्योंकि इस से आहार विहार दूषित होते हैं। पर इस का आजकल की भाषा में यह अर्थ है कि मनोविनोद के लिए, सैर-सपाटा करने समुद्रपार जाकर अपने देश का धन और धर्म न फूँकना चाहिए। जो इस के लिए समुद्र पार जाते हैं उन का सागरोलङ्घन धर्मशास्त्र की दृष्टि से निन्दनीय है। किंतु समाजशास्त्र तथा अर्थशास्त्र की दृष्टि से यह नियम आवश्यक नहीं है, अतः देश का अंगुदय करने के लिए जाने आनेवालों को कोई रुकावट नहीं है, न होनी चाहिए।

मा भवन्तु पराधीना निर्भयास्तु भवन्तु ते ।
धर्मज्ञाः प्रभवो विज्ञा हिन्दवः सन्तु सर्वदा ॥

हिंदू लोग, कभी पराधीन न हों, वे निर्भय रहें, तथा वे धर्मात्मा, सामर्थ्यवाले और समझदारी से काम करनेवाले बनें। यह श्रुति से हमारी प्रार्थना है।
रैयतैः सह जर्मादाराः प्रजया भूभृतस्तथा ।
मजूरैः सह सेठाश्च, वर्ततां प्रेमतः सदा ॥

जमींदार रैयत के साथ, राजा प्रजा के संग, और सेठ लोग मजूरों के साथ, सदैव प्रेम के साथ व्यवहार करें।

दक्षा हि भारतीयानां हिन्दूनाञ्च विशेषतः ।
सज्जाता शोचनीया वै दैवतः स्वास्थ्यतोऽर्थतः ॥

भारतदेशनिवासियों की खासकर हिंदुओं की हालत भाग्य से, तंदुरुस्ती से और संपत्ति से भी बहुत ही शोचनीय हो गई है।

बिना बात के, हर एक वेवहारों पर शहरों तथा

मामो में सांप्रदायिक भगवां हुआ करता है। यह बात विगनी शर्म की है कि भाई या साथी होकर भी हम शत्रु बनने से बाज नहीं आते।

यह समय बड़ा ही भयंकर और शान्तिभंग करनेवाला है, ऐसे मौके पर किसी आवेग में न आकर अपनी बुद्धि दुरुस्त रखनी चाहिए, उस की स्थिरता में परक न पड़ने पावे। अपने हुए हफ्ते को दूर करने के लिए 'सगठन' और 'एकता' की बड़ी आवश्यकता है। संकट सिर पर आ रहा है। यदि हम समय 'सगठन' और 'एकता' न की गई तो अनर्थ हो जायगा। इस लिए—

विवादो नैव कर्तव्यः कर्तव्यं हेतुमेलकम्।

नेचेडु वैदेशिकाःश्वेना हनिष्यन्तीव वर्तिकाम्॥

परस्पर फलह नहीं करो, दिल मिलकर रहने में ही भलाई है। यदि मिलजुल कर नहीं रहेगा तो

दूसरे (विदेशी) लोग तुम्हें इस प्रकार नष्ट कर देंगे, जैसे बाज चिरियों को मार डालता है।

इस लिए आजकल के समय में उन सब कामों के करने की हदता से आवश्यकता है जो अपनी जति और राष्ट्र को उन्नत कर सकें, जिन से धार्मिक हानि न हो और जो प्राचीनता को पुष्ट करते हुए आधुनिकता के अनुकूल हों। आजकल कुछ तो ऐसे नियम हैं जो हमारे लिए ठीक ठीक ऐसे ही उपयोग में आ सकते हैं जैसे प्राचीन काल में आते थे। कुछ विषयों को छोड़कर सब के साथ बातें आ सकती हैं। कुछ बातें ऐसी हो सकती हैं जो इस काल में सुरक्षित रख छोड़नी चाहिए, अभी उन से काम ही न लिया जाय। इन बातों का निर्णय शिष्टमण्डल कर सकता है। शिष्ट में हैं जो धर्म की वज्रनि और देवोद्धार की बातें सावें, कह तथा करें तथा गीताशाय जिन का मार्ग दर्शक हों। अन्त में प्रभु से प्रार्थना है कि वे हमारी इन कामनाओं को पूरी करें।

कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्

(ले०—श्री सुदर्शन)

आनन्दकन्द पूर्णतम पुरुषोत्तम भगवान् जो दृष्ट के समान धर्ममार्गप्रदक आज तक कोई दूसरा नहीं हुआ, यह कहना अत्युक्ति में होगी। वे साक्षात् परमात्मा के पूर्ण रूप से लोक के उद्धारार्थ और समुद्धारार्थ ही अवतीर्ण हुए थे। उन के आदर्श शीलाधरित्र को पढ़ने, सुनने और स्मरण करने से हृदय में सवित्र भावों की लाहरेँ उठने लगती हैं, मन आगुल अवस्था में रहता हुआ ही समाधि अवस्था के सुखसागर में निमग्न हो जाता है। उन के अव-
१२५

तार के ये दो प्रयोजन हैं—लोक का उद्धार और लोक-समृद्ध, जिन्हें गीता के शब्दों में अधर्मनिरुद्धि-पूर्वक धर्मसंस्थापन तथा उस मार्ग पर दुष्टताओं के विनाशपूर्वक साधुओं का परिचालन कह सकते हैं। पर इस के साथ ही अपने आनन्दमय चरित्रों द्वारा दूषित लोगों को आप्लावित करना भी उन के अव-तार का प्रधान प्रयोजन था।

यही कारण है कि भगवान् की बाललोलाएँ सर्वाधिक हृदयवादी होकर मातुर्पुत्री की सीमा को

लॉग गईं । इसी से जगत का सबसे बड़ा शक्तिशाली विभूतियों उन के निकट खिंची चली आईं और उन के प्रेम में विभोर होकर आत्मविस्मृत हो गईं । इन में स्वर्गीय देवतायुग्म के बाद पूर्णकाम और महातपस्वी गर्गाचार्यजी पहले पहल अग्रसर हुए । भगवान् के जन्म के कुछ दिन बाद मानो अपनी तपस्या और ज्ञान को सफल करने के लिए गर्ग ऋषि नामकरण के मिथ व्रज में आये । नन्दजी ने स्वागत सत्कार और आदर के साथ उन्हें टिकाया, ने जानते थे कि ये बड़े ही आचारवान् कर्मनिष्ठ महात्मा हैं इस लिए पूजा पाठ और स्थालीपाक (रसोई) आदि की सुविधा एकान्त में कर दी गई ।

पश्चर गर्गजी नियमानुसार वैश्वदेव की विधि से नैवेद्य अर्पण करने के लिए यज्ञपुरुष का ध्यान करने लगे तो भगवान् साक्षात् रूप से बगल के घर में विराज रहे थे, घोर से घुड़घुओं से चलकर गर्गजी की थाली में भोग लगाने लगे । ऋषि ने नेत्र खोले तो बड़े असमंजस पड़े कि असंस्कृत बालक ने चौका छू दिया ! खैर नन्दगृहिणी ने फिर सब सामग्री प्रस्तुत की किंतु वही हाल हुआ । यह क्रम कई बार चला, तब जाकर गर्गजी को चेत हुआ कि जिस के पीछे हम ने जीवन गँवाया वही तो यह है ! अस्तु ; कुछ दिन बाद भूतभावन शंकरजी काशी-पुरी से व्रज में पहुँचे और नन्दपौर पर शृङ्गानाद बजाया । नन्दरानी द्वार पर आईं और अवधूत भाषा से पूछा कि आप के खपर में कौन सो भिछा दी जाय ? बाबा बोले कि सिर्फ तुम्हारे लाल को कर्नभिन्ना का सवाल है । पर नन्दरानी ने सॉप

होपेनेवाले योगी से कहा कि आप का खपर मोतियों से भर दूँ, पर वच्चे को न दिखाऊँगी, शायद नजर लग जाय ! आखिर भोलानाथ लौट गये तो लालजी को बेचैनी बढ़ी, सचमुच नजर सी लगी गई । अब यशोदा समझीं कि उस बाबा ने कोई दोना किया है, बालकों द्वारा उन्हें खोजकर बुलाया गया और बाबा को देखते ही लालजी खिलखिलाकर हँस पड़े । खैर, इसी प्रकार उन की मधुर मुस्कान पर तब से सारी दुनियाँ अपने को निह्वावर करती आ रही है, यहाँ तक कि कर्कश तर्क से वज्रादि कठोर बुद्धिवाले महावेदान्तो मधुसूदन स्वामी भी व्रज में जाने पर कहने लगे—

अद्वैतबोधीपथिकैरुपास्याः

स्वाराज्यसिंहासनलब्धदीप्ताः ।

शठेन केनापि वयं हटेन

दासीकृता गोपबधूविटेन ॥

‘अद्वितीय ब्रह्म में लीन रहनेवालों में भी सर्वश्रेष्ठ हम को भालियों के बीच में रहनेवाले एक अवारा लड़के ने जबर्दस्ती अपना दास बना लिया ।’ इस तरह भक्तियोग का प्रसार भी इस अवतार का मुख्य प्रयोजन था, जो वात्सल्य आदि, रसों की भावना से वज्रवी हो सकता है ।

जो बालक अपनी खूबियों से पत्थरझिलवालों को भी गलाकर पानी पानी कर सकता है उस आठ इस वर्ष के सुकुमार बालक पर भोली गोपियों का रीस जाना कोई आश्चर्य नहीं । ने उन्हें पुत्र और यन्त्रु जैसा ही समझती रहीं, इस के अल्लावा आगे चलकर जिन मजलीखों का आरोप भगवान् पर

किया जाता है वे एक खास ब्वासनाविधि के लिए ही हैं। उस ब्वासनाविधि के अधिकारी सर्वसाधारण नहीं, किंतु भक्तियोग की चरमावस्था को प्राप्त, निवृत्त एकान्तवासी भक्तआत्मा संवितोष हो हैं।

अनुमो रक्षिकों ने श्री राधातत्व का स्पष्ट प्रकाशन भागवत में न होने का यही कारण माना है। इस लिए भगवान् की रास आदि की भावना के अधिकारी रस की ब्वासना करनेवाले परमईश हो सकते हैं, अन्य ससारी लोग नहीं। देखे वो भगवान् की दिव्य लीलाएँ हर तरह से निरन्तर हो रही हैं, उन के लिए किसी खास उभय का बन्धन नहीं। उन्हीं में से मातृक लोग किसी एक लीला को ब्वासना के उपयुक्त समझकर विकसित कर लेते हैं। पर शोकसप्रदाय यह मानना ही होगा कि भगवान् का पूरा चरित्र शुद्ध सात्विक और आदर्शमूर्त था। यदि यह न माना जाय तो भगवान् की अनेक गीता की उक्तियाँ अनर्थक हो जायेंगी। वे अर्जुन से कहते हैं कि मैं वो पूर्ण-काम हूँ, सिर्फ लोक में आदर्शस्थापन के लिए हो मेरे सब काम हो रहे हैं, मैं जैसा कहूँगो उसी का अनुसरण और लोग करेंगे इस लिए मैं पूरे परपरा में निख भर भी गड़गड़ी करूँ तो अनेक प्रकार का संकरशाेष मुझे लगेगा। (३-२५) अतः भवित्त्वार्थ के प्रत्येक पक्षिक को भगवान् का निश्चित चरित्र सदा अनुसरणीय है—

जब उन्होंने ब्रज में बालमुकुटा सभी लीलाएँ कर लीं वो ग्यारह वर्ष की वय में ही ब्रज छोड़ दिया और धान्तीपिन्धुनि को चट्टाक्ष में दिया-

भयन समाम किया। आगे जब वे भर्षसंस्थान के प्रसंग में द्वारका में रहने लगे तब नित्य प्रातः काल से राजदरबार में आने तक शास्त्रीय मर्यादा के पालनार्थ इन विधियों को करते थे—

माझे सुदुर्ते वस्थाप धार्गुपस्पृश्य माधवः।
दधौ प्रसन्नकरण आत्मानं तमसः परम् ॥

भगवान् माझसुदुर्ते में पठकर पवित्र जल से हाथ मुँह धोकर प्रसन्नहृदय से मायावीत आत्म-स्वरूप का चिन्तन करते थे।

अयाधुतोऽम्भस्पमले ययाविधि

क्रियाकलापं परिधाय वासमी।

चत्वार संध्योपगमादि सचमो

हुतानत्रो ब्रह्म जनाप वापयतः ॥

—भा० १०।७

फिर वे विधिपूर्वक निर्मल जल में डुबकी लगा कर स्नान करते, घोनी डुपट्टा पहनकर अद्वा से संध्या, अग्निहोत्र करते तथा फिर गायत्री आदि का जप करते थे। यह सब सूर्योदय से पहले ही समाप्त हो जाता था, उस के बाद सूर्योदय, तर्पण, हृद्यों को नमस्कार और माझणों का पूजन होता था, सुन्दर भूषणों से भूषित गौओं का दान होता था, तब अनेक मात्रात्मिक कार्यों के बाद वे दरबार में आते थे। भगवान् ने इन आचरणों को स्वयं करके लोगों के समक्ष पूर्ण मर्यादा का मार्ग स्थापित किया है।

अतः पंच जगद्गुरु भगवान् के इस आदर्श पर ही सब को चलना होगा और इसी दृष्टि से उन के प्रत्येक कार्य को समर्थ बँधाने होंगे। यद्यपि

भगवान् श्री कृष्ण की लीला तथा चरित्र अलौकिक हैं, उन का यथावत् अनुकरण क्या शान भी होता अशक्य है, पर वाल्मीकीयों के बाद जब वे संस्कृत होकर गुरुकुल में गये तब से लेकर उन के आचरण मनुष्यों को उस माफिक चलने के लिए ही हुए। उन्हें लोकसंग्रहार्थ इस की सब से बड़ी चिन्ता थी कि—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।

स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥

—गी० ३।२२

बड़े लोगों का जैसा चाल चलन होता है, छोटे लोग उसी माफिक चलते हैं (इस लिए) बड़ों को अपना आचरण प्रामाणिक रखना पड़ता है कि लोग बड़ी का अनुसरण करें। जगत् के अखिल पदार्थों की विनिष्टता इकट्ठी हो जाय तो वह भगवान् के समक्ष समुद्र में बिन्दु की तरह भी न होगी। जगत् की समग्र शक्ति, समग्र भूमि, समग्र यश, समग्र लक्ष्मी और समग्र ज्ञान वैराग्य भगवान् श्री कृष्ण

में ही निवास करते हैं, इन की पूर्णता वहीं से होती है, इस लिए—

दुराराध्यं समाराध्य विष्णुं सर्वेश्वरेश्वरम्।
यो दृणीते मनोग्राह्यमसत्त्वात् कुमनीप्यसौ ॥

बड़ी कठिनता से प्रसन्न होनेवाले, सब ईश्वरों के भी ईश्वर भगवान् विष्णु को आराधना करते हुए भी जो प्राणी विषयभोगों की कुछ भी मान्यता रखता है वह बड़ा ही दुर्बुद्धि है, क्योंकि भगवान् के समक्ष विषयों की सत्ता का लेश भी नहीं रहता। आज भी वे प्रभु ज्ञान वैराग्य आदि से समुज्ज्वल, लोकाभिराम और धारणा ध्यान के लिए सर्वथा उपयुक्त अपनी दिव्य छवि की सृष्टि गीता, भागवत आदि द्वारा सब के समक्ष प्रकट कर रहे हैं, उस का स्मरण और चिन्तन करके अपना जीवन सफल करना चाहिए; यही श्रोतृणा का आदेश है, अतः हमें इस आदेश और आदेशों के प्रति सिर झुका देना चाहिए।

धन्य भाग्य

[२०—श्री गोविन्द स्वामी 'हरीजी']

जै जै धुनि मुहात सुर स्वर्ग में सिहात, हरपि वृत्य करत जात नन्दराय आँगन।

गोपाल कों गोद लें जसुदहि आशीप दें, ब्रह्मानन्द अप्रमेय लमड़त ब्रज गामन ॥

पावत मुख गोपो ग्वाल रोहिणी दाऊ दयाल, मोर घंजर देत ताल गाय प्रेम पागन ॥

लहि दर्शन सनाथ भूमि सब टेकें माय, किलकि किलकि लेत हाथ 'गोविंद' धनि भागन ॥

सुखी जीवन

(ले — गौ० श्री बासुदेव शास्त्री तैलङ्ग, शु० ट्रे० बे० विशारद)

शिष्य—गुरुवर्य, क्या सुखी जीवन के अंदर मनुष्य को हर तरह का कर्तव्य आ जाता है और उस से चित या अनुचित कर्तव्य का ज्ञान हो जाता है ?

गुरु—कर्तव्य उस को कहते हैं जिस के न करने से प्रत्येक मनुष्य की समाज एवं संसार भर के साथ बुराइयों होती हैं, इस लिए मनुष्य को अपने माता पिता एवं गुरुओं से कैसा व्यवहार करना यह बात सीखनी चाहिए। सब से पहले यह कर्तव्य हा जाता है कि अपने पूर्वजों की एकचित्त से सेवा करना आश्रयपालन करना, उन से शिक्षा ग्रहण करना एवं उन का प्रसन्न रहना, साथ ही उन की मर्यादा का भी ध्यान प्रत्यक्ष धृष्ट रहना।

शिष्य—गुरु और माता पिता का अपनी सवालों के प्रति क्या कर्तव्य हो जाता है ?

गुरु—अपनी संतान का बाल्यकाल में ही धर्म, ईश्वरभक्ति, सन्मार्ग पर ले जाना और सुसंगति पर लगाना चाहिए, क्योंकि नीति पुकार पुकार कर कहती है कि 'संसंगति कथं किं न कराति पुणाम्।' विभीषण सुग्रीव से कहते हैं कि—

तान स्वर्गं अपवर्गमुखं धरियं तृणा इव अग ।
तुले न ताहि सकलं मिलि जो मुखं वन सत्ताग ॥

संसंग का प्रभाव बढ़ा ही उत्तम होता है। इसी से वा प्रत्येक बालक का छात्रावस्था में ही सत्संगि और सद्गुणों का आर लगाना चाहिए।

यस्यास्ति सद्गुणविशेषाभावात्

किं तस्य शुद्धिर्वापन्नविनोदः ।

सज्जनों के सद्गुणदेश में निभन रहनेवाला को भिलासमुख भीके मालूम होते हैं। इस लिए अपनी संतान को बाल्यकाल से ही सन्मार्ग पर लगाना चाहिए।

शिष्य—सब से प्रथम गुरु के निकट पहुँचे हुए बालक का क्या कर्तव्य होता है ?

गुरु—नीति में कहा है कि 'पालनीया गुरोराज्ञा' क्योंकि गुरु विद्यादान करता है। और 'सर्वेषामेव दाताना विद्यादानं प्रशस्तये' इस से विद्यादाता की उत्तमता सेवागिरि होने से उस का पूरा अनुवर्ती होना उचित है।

शिष्य—प्राचीन काल में विद्यादान किस प्रकार दिया जाता था ?

गुरु—गुरुकुलों में एवं ऋषिकुलों में पढ़ाने की शैली बड़ी सुन्दर थी, आपकाल की तरह अनेक प्रति घण्टे नहीं थे। पढ़नेवालों के पढ़ावालों में परस्पर पिता पुत्र का सम्बन्ध रहता था। जमीर, गरीब, देशी, विदेशी एक साथ पढ़ते हुए भ्रातृभाव से एक समान रहते थे, सब को एक समान दिया जाता था। आज कल कालेजों के लड़के जब तक पढ़ते हैं तब तक नमस्ते आदि का व्यवहार रखते हैं, जहाँ पढ़ चुके कि बस, गुरुओं तक से अभिवादन आदि का व्यवहार दूर जाता है। नीति में कहा है—

एकाक्षरप्रदातारं यो गुरुं नामिष्यन्पते,

यद्विषयसहस्राणि विद्यायां आपते कृषिः ।

यह अक्षर दत्तवाला भी गुरु हा जाता है जो उस को गुरु की रूपि में नहीं देखता है और मातृ हजार वर्ष कीट पानि में गिरना पड़ता है।

शिष्य—उत्तमान दृष्टि से हम को कौन कौन से नियम पालने चाहिए ?

गुरु—श्रत्येक मनुष्य तथा छात्र को नियमनद्धता, सखप्रियता तथा परिश्रमशीलता तीनों बातें पालनी चाहिए। इस का स्पष्ट अर्थ यह है कि नियम से पढ़ना चाहिए, सत्य बोलना चाहिए और पढ़ने में परिश्रम करना चाहिए। बालकों के लिए श्री गङ्गा-चार्यजी कहते हैं कि—द्वितीयेष्टा गुरु हैं और गुरु की आनापालन करनेवाला शिष्य है। इसी से तो 'गुरुशुश्रूषया विद्या' का उपदेश मुख्य है। नीति रहती है कि—

गुरुवार्थी चेष्यजेद्विद्यां विद्यार्थी चेष्यजेत्सुखम् ।

विद्यार्थी को चाहिए कि आलस्य, मग्न, मोह, चप-रता, व्यर्थ बात करना, अभिमान करना, स्वार्थी होना, ये अपनी मात गिरौलताएँ छोड़ दे।

शिष्य—बुद्ध शिक्षा की बातें सुनाकर वृत्तवृत्त्य वगैरे गुरुदेव ।

गुरु—(१) ईश्वर हमारे अच्छे कर्मों का साथी है, वह बुरे का साथी नहीं है।

(२) ईश्वर सब का आधार है, पालन पोषण-कर्ता है उसे कभी मत भूलो, भूलनेवाला वृत्तवृत्त है। क्या कोई कभी माता पिता को भूलता है ? नहीं, तो फिर ईश्वर भी पिता है। (३) जिस के हृदय में अच्छे विचार हैं वह कभी दुःखों नहीं होता। (४) मनुष्य ज्ञान विचारों में ही अपने को उत्तम बनाता है। (५) धन और स्वास्थ्य से भी बचकर सदाचार का अधिक मूल्य है। (६) मानसिक वृत्तियों को नियन्त्रण

बताने के लिए सतत चेष्टा करनी चाहिए। (७) गुण ही पूजा का स्थान है। (८) चरित्रगठन के लिए आदर्श पुरुषों का अनुकरण करना चाहिए। (९) धर्म और ईश्वर से डरना चाहिए। (१०) पापी मनुष्यों से कभी नहीं डरना चाहिए। (११) समय एक क्षण भी व्यर्थ नहीं खोना चाहिए। (१२) सदाचारी विद्यार्थी का शारीरिक और मानसिक वेग बढ़ जाता है। (१३) न्याय, स्नेह, उत्साह, बुद्धि, विद्या, प्रेम जिस पुरुष में हैं वह देवतुल्य है। (१४) उत्साही पुरुष कभी दरिद्री नहीं हो सकता। (१५) शत्रु से भी गुण ले लेना बुद्धिमानी की बात है। भगवान् राम ने भी लङ्काण को राजन से राजनीति सीखने को भेजा था।

शिष्य—विद्यार्थी के प्रति गुरु का क्या कर्तव्य है ?

गुरु—(१) 'कुशिष्यमध्यापयत कुतो यशः।' गुरु को चाहिए कि कुशिष्य को नहीं पढ़ाये। (२) सब छात्रों पर समान दृष्टि से व्यवहार करे। (३) चित्त की अग्रान्ति के समय कभी शिक्षा न दे। (४) शिष्यों के भाषण एवं कार्य से योग्यता की जाँच करता रहे। (५) गुरु को क्रोधी, लोभी, असत्यवादी, परनिन्दक, असहिष्णु, द्वेषी नहीं होना चाहिए, क्योंकि छात्रों पर इस का नाशकारी दुष्प्रभाव पड़ सकता है। (६) प्रभाव और स्नेह के बिना शिष्यों को योग्य विद्वान् नहीं बनाया जा सकता। उपरोक्त गुरु एवं शिष्यों के कर्तव्यपालन से दोनों का ही जीवन सुखी बन जाता है।

राखी !

(ल०—श्री लक्ष्मीप्रसादजी त्रिपाठी अकिल्भ्यन्)

किसे बाँधने को आई है, शुष्क दिवस बनकर यह राखी ।
आज लट रही है दुनियाँ के, भव उजड़े जीवन की राखी ॥

धृति सा आज धर्मग्रन्थ को, कौन मनस्वी महिमा देगा ।
कौन आज वैष करके इस में, मानवेन्द्र की गरिमा लेगा ॥

शासन का गौरव दर्शाती, रक्तदृषाकुल के खर अतिथार ।
न्याय दण्ड धारण हित उत्सुक, कौन आज है विद्वदुल्लास ॥

अपनी अपनी घान कपाए, सब अपने छुँह बहक रहे हैं ।
अपने स्वार्थसिद्धि साधन का, गौरव देते बहक रहे हैं ॥

पय में कण्ठक नाभ चिझाकर, इस शूल कद हर्ष मनाते ।
समरभूमि में दीख रहे हैं, निज उर्मग रस के रणमाते ॥

हा हा खाते दुखित जनों की, दुनिया का रक्षण अभिप्रायी ।
कौन ! अरे किस के कर बाँधे, जनता मानवता की राखी ॥

कौन भला पशुता को दारों से, इस की रक्षा कर लेगा ।
कौन आज युग की कलुषामय, राखी को सज्जा रख लेगा ॥

शङ्का

(प्रे०—एक संदिहान श्रद्धालु)

तत्रापश्यत् स्थितान् पार्थः०

पुत्रान् पौत्रान् सर्वोस्तथा ।

अवधुरान् सुहृदश्चैव०

सर्वान् बन्धून्वस्थितान् ॥

१-२६, २७

कुलतपकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम् ॥

१-२८

‘वहाँ अर्जुन ने अपने पुत्र, पौत्र, सखा, श्वसुर, सुहृद् और सब बन्धुओं को स्थित देखा ।’ ‘कुलक्षय करने के दोष तथा मित्रों के साथ द्रोह करने के पाप को कौरव नहीं समझते ।’

इन श्लोकों में अर्जुन कौरवों का उल्लेख करते हुए चार शब्दों का प्रयोग करते हैं, यथा—सखा, सुहृद्, बन्धु और मित्र । गीता के ऊपर आश्लेष है कि उस में अनावश्यक पुनरुक्ति बहुत है । जिन की गीता के भगवद्वाक्य होने में कम श्रद्धा है और उस की व्यासकृत रचना में भी संदेह है ऐसे ही पुरुष इन शङ्काओं को करते हैं । तथापि उन्हें निरुत्तर करने के लिए इतना ही कहना पर्याप्त नहीं कि उन की श्रद्धा में कमी है, क्योंकि आजकल का समय बुद्धिप्रामाण्य को मानता है । अतः मैं जानना चाहता हूँ कि व्यासजी उपरोक्त श्लोकों में सखा आदि शब्दों का प्रयोग पर्यायवाचकरूप से करते हैं अथवा उन के अर्थ में कोई सूक्ष्म भेद है ।

समाधान

(ले०—ज्ञानतपस्वी श्री गीतानन्दजी)

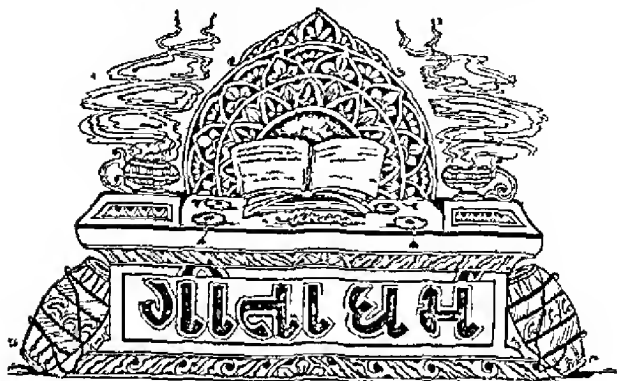
गीताकार के ऊपर जो आश्लेष किया जाता है वह सर्वथा अनभिज्ञतामूलक है, गीता में कहीं भी वृथा शब्दों का प्रयोग नहीं । सच तो यह है कि गीता की यथार्थ व्याख्या अभी तक किसी ने की है या नहीं इस में संदेह है । उस में उपनिषद्, ब्राह्म-विद्या व योगशास्त्र इन तीनों ग्रन्थानों का गूहन है, इस बात का परिचय किसी टीका में शायद ही मिलता हो । अधिक से अधिक टीकाकारों ने अब तक “श्री कृष्णार्जुनसंवाद” की ही व्याख्या की है तथा वह भी संक्षेप है यह हम ऊपर कह चुके हैं, अस्तु । प्रकृत बात यह है कि इन चारों शब्दों में

सूक्ष्मभाव से ही क्यों न हो, अर्थभेद अवश्य है । तथा हि—

अवियोगसहो बन्धुः सर्वदानुगतः सुहृत् ।
एककार्यं भवेन्मित्रं समप्राणः सखा मतः ॥

जो साखी धैर्यनी के साथ वियुक्त हो जाय उस को बन्धु कहते हैं, जो कभी साथ न छोड़े वह सुहृद् है, जो हर एक कार्य को साथ में करता हो उस को मित्र कहते हैं तथा जो अनुराग की अधिकता से प्राणों की तरह कदापि पृथक् न हो उस का नाम सखा है । इस प्रकार इन शब्दों में तात्पर्य स्पष्ट प्रतीत होता है ।

સંસ્કાર — શ્રીમત્પરમહંસ, પરિમાળકાચાર્ય, પ્રજ્ઞનિષ્ઠ, લોકસંપ્રદી, ગીતાબ્યાસ,
શ્રી ૧૦૮ જગદીશ્વર, મહામહાદેશ્વર, સ્વામી શ્રી નિવાલ-કલ, મહારાજ



સર્વશ્રમાન્ પરિત્યજ્ય માયેર્કં શરણં મમ , અહ ત્વા સર્વપાપીકયો મોક્ષાયિષ્યામિ મા શુચ .

વર્ષ : ૭ મું }

કાશી સપ્ટેમ્બર ૧૯૪૨

{ અંક ૬ મા

ચરણસરોજ

બન્નો ચરણ સરોજ વૃન્દાવન ;
શુન્દર રથામ કમલવદન લોચન લલિત ત્રિભુગ પ્રાણપતિ પ્યારે ;
જે પદપદ સદાશિર કો મન સિન્ધુ મુતા કરતે નહિ દારે .
જે પદપદ પરસિ જગપાનન શુરસરિ દરસ કરત અપ આરે ;
જે પદપદ પરસિ અધિ પત્ની અધિ દગ વ્યાધ પતિત બહુ તારે .
જે પદપદ રમત વૃન્દાનન અહિ શિર ધરિ અગણિત રિપુ મારે ,
જે પદપદ પરસિ મજબામિનિ સર્વસ દે સુત સદન વિસારે .
જે પદપદ રમત પાદવદન દૂત ભયે સખ કાજ સંપારે ,
સૂરસ સેર્ક પદ પદજ ત્રિવિધ તાપ દુખ હરન હમારે .

—સરદાશજી

સચ્ચિદાનંદ રૂપ

(લેખક:—રમણલાલ લલ્લુભાઈ)

પરમાત્માની પ્રાપ્તિ થવા માટે મનોનિબ્રહ્મની જરૂર છે. મનોનિબ્રહ્મ કરવા સારૂ સંસાર વાસનાથી ચિત્તને અલગ રાખવું, ચિત્ત વાસનાઓથી અલગ થયું એટલે ચિત્ત વૃત્તિની સ્થિરતા થઈ એટલે અંતઃકરણની શુદ્ધિ થાય છે અને અહંતા મમતા જતી રહે છે. સર્વ કામનમઓનો નાશ થાય છે અને જેમ પ્રકાશ થવાથી આપોઆપ અંધકારનો નાશ થાય છે તેમ મનુષ્યના હૃદયમાં પ્રકાશ થાય એટલે સર્વ વાસનાઓનો આપોઆપ નાશ થાય છે.

મનોનિબ્રહ્મ થયો એટલે નિદિધ્યાસન કરવાં જોઈએ અને ત્યાર પછીની અવસ્થા અતરાય રહીત છે. એકાગ્રતા આવતી જાય છે અને વૃત્તિઓનું વિસ્મરણ થતા બ્રહ્મદર્શન આત્મદર્શન થાય છે.

અંતઃકરણની શુદ્ધિ કરી જીવની ભેદ છુદ્ધિ શાંત પાડે છે. અને પછી સર્વત્ર અદ્વૈત ભાસ થાય છે અને આત્માજ્ઞાસનો અનુભવ કરી એક બ્રહ્મ, સર્વેશ્વર અચ્યુત બ્રહ્મ, તેજોમય દિવ્ય જ્યોતિર્રૂપ પરબ્રહ્મનો અદ્ભુત પરમાત્માનો સાક્ષાત્કાર અનુભવે છે. આ પરમ પુરૂષ ભેદ રહીત પરબ્રહ્મ એવા સચ્ચિદાનંદ રૂપને પ્રાપ્ત થાય છે, બ્રહ્મ તથા આત્માની એકતામાં આનંદ મગન કરી બ્રહ્માકાર વૃત્તિને સ્થિર કરી સચ્ચિદાનંદ સ્વસ્વરૂપના અખંડીત આનંદમાં મસ્ત રહે છે. અને પોતે બ્રહ્મ વિચારમાં પરમાનંદ અનુભવતો પરમાત્મ સ્વરૂપના દર્શનના વિચારમાં એકાગ્ર ચિત્ત જોડી સાન જ્ઞાન વગરનો થઈ જાય છે અને સચ્ચિદાનંદ અનુભવતો શુદ્ધ અદિતીય મગનરૂપ એકાકારરૂપ, શાન્તસ્વરૂપ, ચૈતન્ય વિવર્તમાં તટ્લીન જ્યોતિષ પરમાનંદની પ્રાપ્તિ મેળવી અચ્યુત સ્વરૂપનો સાક્ષાત્કાર અનુભવે છે. એમ અસ્તુ.

ગીતાનો ઉપસંહાર

(સેન્—શ્રીમત્ પરમહંસ, ધર્મિતાજીકાર્યકર્તા બ્રહ્મનિષ્ઠ લોકસચ્ચી ગીતાવ્યાસ જગદ્ગુરુ
મહામંત્રેશ્વર શ્રી ૧૦૮ સ્વામી શ્રી વિદ્યાનંદજી મહારાજ.)

ગીતાશાસ્ત્રને ઉપદેશ ભગવાને અર્જુનને આપ્યાં અને તેનો ઉપસંહાર—

इति ते ज्ञानमाख्यातं गुणानुष्ठानं मया ।

विमूखैर्न दुरोधैर्न यथेच्छसि तथा कुरु ॥

—ગી. ૧૮:૧૧

‘હે અર્જુન, આ પ્રકારે મેં શુભમા શુભ જ્ઞાન તને સંભળાવી દીધું છે તેને સારી રીતે સમજાવિશારીને પછી તારી ઉચ્છાત્રા આવે તેમ કર’ આ રસોક્તિ કર્યાં

અહિં ક્ષણ શુદ્ધોમા કહેવામાં આવ્યું છે કે ગીતાનો પ્રતિપાદ વિષય જ્ઞાન છે

આ શાસ્ત્રને સંજયે પણ ધૃતરાષ્ટ્રને સંભળાવ્યું અને છેવટમાં તેનો ઉપસંહાર કરતા સંજયે કહ્યું—

इत्यहं वासुदेवस्य पार्थस्य च महात्मन ।

सवादमित्यश્રीयन्मुमुक्षुं रोमहर्षणम् ॥

—ગી. ૧૮:૭૪

यत्र योगेश्वर कृष्ण यत्र पार्थो धनुर्धर ।

तत्र श्रीविजयो भूतिर्धनो नीतिवतिर्मम ॥

—ગી. ૧૮:૭૬

‘આ પ્રકારનો મહાત્મા વાસુદેવ અને મહાત્મા અર્જુનનો આશ્રયકારક અને રામાયકારી સવાદ મેં સંજયે અને તે તમને હમણાં સંભળાવ્યો, એના કહેનારા યોગેશ્વર સાક્ષાત્ ભગવાન શ્રી કૃષ્ણ છે અને એનો વિષય પરમ રસસ્થાવર યોગ છે. એ તો હું જે એને સાંભળવા પામ્યો તે માત્ર ભગવાન વ્યાસદેવજીનો મારા ઉપર અનુબંધ છે કેમકે તેમણે

મને દિવ્ય દ્રષ્ટિ આપી હતી કે શબ્દ ધૃતરાષ્ટ્ર, એનું હું વાર વાર સ્મરણ કરું છું અર્થાત્ મનન કરું છું અને તે અદ્ભુત અને પુણ્યપ્રદ હોવાથી મને વળી વળીને હર્ષજ ધર્મ રહ્યો છે અને સાથે સાથે જ ભગવાનના તે અદ્ભુત વિશ્વરૂપનું પણ મને સ્મરણ થયા કરે છે અને વાર વાર હર્ષનો અનુભવ કરું છું એ તો બધું જ છે તે છેજ, પદ્મ તમારે ભણવા જેવી ખાસ મહાવની વાત તો એજ છે કે જે પદ્મમાં યોગેશ્વર શ્રી કૃષ્ણ છે અને ધનુર્ધારી અર્જુન છે, તેજ પદ્મમાં જ્ઞાન અને અત્યંત ભાવપૂર્વક ધર્મ અથવા કામ અને મોક્ષ એ ચારેય પુરુષાર્થ જરૂર હાજર રહે છે એવુંજ હું સમજું છું’

કહેવાની જરૂર નથી કે ઉપરના બન્ને રસોક્તિમાં “યોગ” અને “જ્ઞાન” પદ્મવિષયક છે. આ રાનંદ્ર સ્વરૂપ શું છે? ગીતાની પુષ્પિકા એવાથી માત્રુમ પડે છે કે એમાં ઉપનિષદ, વિદ્યા અને શાસ્ત્ર અર્થાત્ જેને વિદ્વાનો પ્રધાનત્રયી કહે છે તેની ચર્ચા છે તેને શ્રી કૃષ્ણ અને અર્જુન એ બન્ને વચ્ચે થયેલા સવાદનું રૂપ આપવામાં આવેલું છે, એટલા માટે પ્રથમ ભેરપૂર્વક સંજય એટલુંજ કહે છે કે એ શ્રી કૃષ્ણ અને અર્જુનનો સવાદ સંભળ્યો.

“अध्यात्मविद्याविद्यानाम्” તથા “वद प्रवदतामहम्”

—ગી. ૧૮:૨૨

એનોજ અર્થ પુષ્પિકામાં આવેલા—

“अज्ञविद्यार्था” અને “શ્રી કૃષ્ણાર્જુનસંવાદે” એ

શબ્દોમાં સાંભળવામાં આવે છે. અર્થાત્ પ્રજા અને અધ્યાત્મ એકાદ્યવાચી છે. અભ્યુત્થાનના પ્રવરણને ઉત્તર આપતાં, અધ્યાત્મ શબ્દનો અર્થ શ્રી ભગવાન આ પ્રમાણેનો આપે છે—

સ્વમાવોડધ્યાત્મમુચ્યતે ।

—ગી. ૮. ૮૩

વાંચકોને જરૂર શંકા થશે કે “મુરમસ્તીતિ વક્ત્ર્યં, લેપની પત્રાદિ અસ્તીતિ લેપિતવ્યમ્” માત્ર એજ ન્યાયે હું કંઈક લખી રહ્યો છું, બધી વાતો ધડ માથા વગરના જેવીજ છે. છતાં પણ હું તેમને વિશ્વાસ આપું છું કે મારું લક્ષ્ય સ્થિરજ છે. કહેવાની મતલબ એ છે કે પુષ્પિકામાં જે “વ્રજવિદ્યાયાં” શબ્દનો પ્રયોગ થયો છે તેમાં પ્રજા શબ્દનો અર્થ સ્વભાવ છે, અર્થાત્—

સ્વમાવસ્તુ પ્રવર્તતે । —ગી. ૧૧. ૧૪

એમાં જે સ્વભાવનો અર્થ છે—સચ્ચ જ્ઞાન, પ્રકૃતિમાં પ્રતિબિમ્બિત પુરૂષ, પ્રકૃતિસ્થ પુરૂષ—તેજ અહિં સમજવાનો છે. મારો ઉદ્દેશ્ય એજ બતાવવાનો છે કે સંન્યયનો ઉપસંહાર અને વ્યાસ દેવજનો (અથવા ગીતાકારનો) ઉપસંહાર એ બન્નેમાં પુરી એકતા છે.

મહાભારતના જેટલા હસ્તલિખિત ગ્રંથો મળ્યા છે તે સર્વમાં ગીતાની પુષ્પિકા મળી આવતી નથી. તેથી કેટલાએક વિદ્વાનો શંકા ઉઠાવે છે કે એ કોઈ નકલી લેખકની પોતાની કપોલકલ્પિત રચના હશે, વ્યાસજીની નહીં હોય, એટલુંજ નહીં પણ સ્વયં ગીતાજી વ્યાસ રચિત છે કે નહીં એમાં પણ ઘણાં-ઝોની શંકા છે. એટલા માટે હું એજ સિદ્ધ કરવા માયું છું કે શરૂથી અંત પયંત ગીતાના નિર્માતા એકજ વ્યક્તિ છે. અસ્તુ

પુષ્પિકામાં સ્પષ્ટપણે ચાર ભાગો લેવામાં આવે છે. જેવા કે—

- ૧ શ્રીમદ્ ભગવદ્ગીતાસુ ઉપનિષત્સુ,
- ૨ વ્રજવિદ્યાયાં,
- ૩ યોગશાસ્ત્રે,
- ૪ શ્રી કૃષ્ણાનુસંવાદે ।

અને સંન્યય કૃત ઉપસંહારના પણ ચાર અંશ છે. જેવા કે—

- ૧ યત્ર યોગેશ્વરઃ કૃષ્ણઃ ।ત્યાદિ ।

—૧. ૮. ૭૫

- ૨ તથા સંસ્મૃત્ય... ।ત્યાદિ ।

—૧. ૮. ૭૭

- ૨ રાજન્ સંસ્મૃત્ય... ।ત્યાદિ ।

—૧. ૮. ૭૯

- ૩ વ્યાસપ્રસાદાન્કૃતવાન્... ।ત્યાદિ ।

—૧. ૮. ૮૧

- ૪ ।ત્યદ્ વાસુદેવસ્ય... ।ત્યાદિ ।

—૧. ૮. ૮૪

ઉપસંહારના શ્લોક ઉલટા કેમથી શા માટે લેવામાં આવ્યા અને ૭૬, ૭૭ ને એકઠા કેમ કરવામાં આવ્યા એનું કારણ આગળ જણાઈ જશે. હવે એ બન્નેનું સારૂપ્ય બતાવવામાં આવશે.

સૌ કોઈ જાણે છે કે પ્રાણિમાનમાં હું બાળકાસા સ્વભાવ સિદ્ધ હોય છે, પુરૂષાર્થ એજ છે. જેમ કે સાંખ્યકાર કહે છે—

ત્રિવિધદુઃખાત્યન્તનિવૃત્તિરત્યન્તપુરુષાર્થઃ ।

—સાંખ્યસૂત્ર ૧. ૧૧

સંસારી પ્રાણીને ત્રણ પ્રકારનાં જે દુઃખ અપરિહાર્ય લાગે છે એમણે જાણવું પડે છે તેનો નાશ થવો એજ સૌની એક અભિલાષા રહે છે. જ્ઞાનથી

કે અજ્ઞાનથી સર્વ કૌંઠ એજ ચાહે છે શાસ્ત્રકાર
હુ ખના ત્રણ પ્રકારના ભાગ પાડે છે. જેવા કે—

આધિભૌતિક—

કથ મૌખ્યમહ સભ્યે દ્રોણ ચ મધુસૂદન ।
શુભિ પ્રવિયોક્ત્યામિ પૂજાર્હવરિસૂદન ॥

—ગી. ૨૪

‘હે મધુસૂદન, પ્રત્યક્ષ પૂજા કરવાને યોગ્ય
ભીષ્મ અને દ્રીષ્ટાની સાથે હું બાણો વડે સામું યુદ્ધ
કેવી રીતે કરીશ બાણોના મારથી તેમના ચરીર
ને પીકા થશે આ ચારીરિક કંઈ ખ છે’

આધિદેવિક—

‘ગુરુત્ત્વાદિ મદાનુમાના-
ચક્ષુરો મોક્ષું મહ્યમપીહ લોકે ।
હ્યાર્થનામાસુ ગુરુનિદેવ
મુચ્યોય મોગાન્ રધિરપ્રદિગ્ધાન્ ॥

—ગી. ૨૪

‘મહા મહિમાવાન ગુરૂનેને ન મારીને આ
સ સારમા ભિક્ષા દ્વારા પ્રાપ્ત થયેલું અન્ન ખાઈને
શુભરાત કરવું એ વધારે સારું છે આ અર્થ લાભ
સુએની દત્ત્યા કરવાથી તો આ લોકમાજ્ઞ લોહીથી
અરક્ષણી ભોગ લેખવવા પડશે’ આ ક્રુધા
આદિ જન્ય પ્રાણીનું કંઈ ખ છે

આધ્યાત્મિક—

‘ન પૈતૃદિગ્ધ કતરણો ગરીયા
યદા જયેમ યદિ વા તો જયેયુ ।
યાતેવ હતા ન જિજીરિગમ
લેડવસ્થિતા’ પ્રમુને પાર્વતાણા ॥’

—ગી. ૨૪

‘આ યુદ્ધમાં એ કે અમારી જીત થશે કે એ

લોકોની જીત થશે અને એ એમા કોની ઉત્તમ
અણાપ તે પણ અણવામાં આવતું નથી.’

‘જેમને મારીને અમે લોકો જીવવા ચાહતા
નથી તેજ પાર્વતાણા યુએ લડવા માટે સાથે
આવી ઉભેલા છે’ આ માનસ કંઈ ખ છે’

એ સર્વનું મુળ ચરીરાદિ જન્ય કર્મ છે એટલા
માટે એનું મુળ જે કમ છે તેનોજ નાશ કરવો
એકલ છે. કર્મનું મુળ અજ્ઞાન છે. અને—“અહં
કર્તા, મમકર્મણિ કર્મફલ સયોગમ્” ૫૧૧૪ આ એ
અજ્ઞાનનું સ્વરૂપ છે અને ‘આત્મા અકર્તા અકે-
જ્ઞતા છે’ એ ઉપનિષદ્વક્ત જ્ઞાનથી એની નિર્જાત
થાય છે ‘અમે માત્ર યત્નારૂઢ છીએ, યોગેશ્વર
અમારા હૃદયમાં સ્થિત રહીને અમને કમ માં
પ્રવૃત્ત કરે છે, અમે તો એમા નિમિત્ત માત્ર છીએ.’
આ એ જ્ઞાનનો આકાર છે. એટલા માટે કહ્યું છે
કે—

યત્ર યોગેશ્વર-કૃણો યત્ર પાર્થો ધનુર્ધર । ૨, ૪,
૫, ૬ આ અર્જુન પોતાને નિમિત્ત માત્ર સમજે છે
કર્તા નહીં, એ ઉપનિષદ્વક્ત જ્ઞાનનો ભગવાને અર્જુનને
ગીતામાં ઉપદેશ કરેલા છે એમા કમ અકર્મ
બની જાય છે કેમકે તે ભગવદર્પણ, પ્રણામપંથુ સર્થ
જાય છે, અને આધિભૌતિકાદિ (નિવચાદિના લાભ
થી) ત્રિવિધ કૃપ્તને આત્મત (હૃદય) નાથ યર્થ
જાય છે.

આ પ્રકારે પુષ્પિકાના “ભીમદ્ભગવદ્ગીતાસુ
ઉપનિષત્સુ” આ જગ્યાની ૧૮૭૮ ની સાથે ઐક્યતા
અતાવવામા આવી.

હવે ‘પ્રવચિણા’ એ અગ્નિવિચાર કરવામા
આવશે તેના પહેલા સાખ્ય વિષયક એક શકાનું

સમાધાન કરી લેવું જોઈએ. કોઈ કોઈ કહે છે કે સાંખ્ય દર્શન નિરીક્ષર છે. તેના પ્રમાણમાં—

‘દૈશ્વરાસિદ્ધેઃ’ ।

આ સૂત્રનો આધાર આપવામાં આવે છે, એ વિષયમાં તકે વિતકે કરીને શાખા પ્રશાખા વધારવાની બીલકુલ ઈચ્છા નથી. વસ્તુતઃ તો આ સૂત્ર એટલુંજ ખતાવે છે કે ઈશ્વર પ્રત્યક્ષ પ્રમાણથી સિદ્ધ થઈ શકતો નથી. એટલુંજ નહીં પણ, સાંખ્ય દર્શનમાં પરાપર પ્રક્ષ પ્રતિપાદક એક સ્વતંત્ર સૂત્ર પણ છે.

સિદ્ધાન્તાં કપિલો મુનિઃ ।

—ગી० ૧૦૧૨૧

एषा तेषमिदित्ता साङ्ख्ये बुद्धिः ।

—ગી० ૨૧૨૨

एकं साङ्ख्यं च योगं च ।

—ગી० ૨૧૨૩

આ ગીતા વચનોથી ભગવાનની અસત્તા કેવી રીતે સિદ્ધ થશે? છતાં પણ સદિ નિર્માણમાં પ્રતિ ઈશ્વર નિરપેક્ષ છે, એટલેજ સાંખ્ય શાસ્ત્રનો કટાક્ષ હોય તો તે જુદી વાત છે. એટલા માટે ગીતામાં સેક્ષર સાંખ્ય અને નિરીક્ષર સાંખ્ય એ

બન્ને મતોનો પુરસ્કાર કરીને તેમનો સમન્વય કરવાને માટે ૧૮૧૭ અને ૧૮૧૫ એવા બે શ્લોક કહ્યા છે. નિરીક્ષરના અભ્યર્થિતત્વને કારણે તેનો સેક્ષરના પહેલાં ઉલ્લેખ કરેલો છે. કેમકે સાંખ્ય દર્શનનો મુખ્ય પ્રતિપાદ વિષય સૃષ્ટિ છે.

પુષ્પિકાના ‘યોગશાસ્ત્રે’ એ અંશનો ગીતાના ૧૮૧૫ સાથે આનુરૂપ્ય સુરૂપ છે.

તેવીજ રીતે ‘શ્રી કૃષ્ણાર્જુનસંવાદે’ એની સમાનતા ૧૮૧૪ સાથે કંઠતઃ પ્રોક્તવત્ છે.

આ સાદૃશ્ય અંધકારે ભણી જોઈને ખતાવ્યું નથી, કોઈ લિપિકારનું છે, એમ કહેવું તો કેવળ કુઃસાહસ માત્ર છે.

અહિં એક પ્રસંગોપાત વાત એ છે કે ગીતાના પુષ્પિકામાં ત્રણેય સ્થાનોનો ઉલ્લેખ હોવાથી ભણવું જોઈએ કે ત્રણેય શાસ્ત્રોનો સિદ્ધાંત અહિં તહીં અનુસંધેય છે અને તેથીજ ગીતાક્રિતમાં વૈચિત્ર્ય આવી અર્થ છે, એટલે મુખી કે કહીં કહીં તો પરસ્પર વિરોધ પણ પ્રતિત થાય છે.

અસાવધાન વાંચકોને માટે એ સૂચના આપવાની જરૂર છે. હીકેજ કહ્યું છે—

ગીતા “સુ” ગીતા કર્તવ્યા ।



કરુણા લહરી

[પંડિતરાજ શ્રી જગન્નાથ વિરચિતા]

[અનુવાક-—લાલચ વીરેપાર બનિ]

[અનુસંધાન વ્રતાક પૂજક દસ દશી આગળ]

દુઃખિયાં જનનાં દુઃખો હરે,
ભગવન, એમજ જાણી મેં ખરે;
સુકૃતે 'અનહોલના કરી,
ત્યજ કાં તું મુજને હવે હરિ? ૨૨.
વરદ પ્રભુ વેદથી સુભદ્ધ,
પતિતોદ્ધારક નામ તાહરે;
બહુ પાપ કર્યું સૈવ મેં,
ધરી વિદ્યાસ અમાપ તું વિષે. ૨૩.
સુકૃતો ન કર્યાં જરા કહી,
અપકૃયો બહુએ કર્યાં વળી;
અતિ રામ વિહીન હું હવે,
ભગવન શું કહી રે શંકુ તને? ૨૪.
મદ—કામ—વિમેહ મત્સર,
કરતા રાત્રુ મને સુવિહલ;
દમતા તર દેખતાં મને,
હરિ, શું લાજ ન આવતી તને? ૨૫.
શરિયાં હરિ સાક્ષ, અશ્ય તે,
વળી છે ચક્ર ગદા જ હાથ પેં;
તદપિ વ્રજ દેખતાં મને,
દમતા આ રિપુ, રામ તે તને. ૨૫.૫
'હરિ, કૃપ વિષે પડત કો,

શિશુને સઘ અચાવતા જનો;
પડતાં ભવ—અણીવે પ્રભુ,
મુજને કાં ન અચવતા પિટ? ૨૬.
'સુકૃતો કરનારને સદા,
મુખ દેવું' પ્રભુ તારી એ પ્રધા;
પણ પાપ ન હું જ સેવતો,
તદપિ કાં મુખ તું ન આપતો?
મુજને નથી સોજ્ય આપતો.
વ્રજ વિદેશર નામ કેમ તો? ૨૭.
કયાં વચને કદિ પ્રભો,
ઉપજ્યો કોષ જ હોય એ વિભો;
બકવાલ વૃષા મણી બધી,
ભગવન એ મુજ મદાન પાપીનો;
કરુણાર હે દયાનિધે,
જગથી તું ઝટ એ'થી લે મને. ૨૮.
મુજની કૃતિ ભોધ ભે પ્રભો,
મુજને દે, ન સ્વીકાર તે વિભો;
પણ ભે શુભ આશયે હરિ,
ધરીને પ્રેમ પ્રસન્નતા ખરી;
મુજને કંઈ આપશે વિભો,
શિરે' તે ધરી લેઈ હું પ્રભો. ૨૯.
પતિત પ્રભુ કુજ નીચ હું;
અપરાધી અતિ હું કૃપાની કાં;
તદપિ વ્રજનો જ અણીને,
કરુણાથી જ વિભો ઉઠારી લે. ૩૦.

૧ અવનજના—મેદરાદી. ૨ અર્થત રસજાત
દશવેદો આ રસોઃ નિમ પ્રાર્થનામાં ગાથા ચેત્ય હોવાથી
તેમો મુજ સંજુન પાંદ પણ અતે આપ્યો છે
અર્થિ મર્ત્યુમે ગમ સિશુ પધિકેનાપિ નિવાર્યવે જગદ્.
જનદેને પાન્મરણને ન નિવાર્યો મવતા થઈ વિભો ॥

'સુકૃતિ કરતા જનો પ્રાત,
 કર્ણાલુ વુજની કૃપા થતી;
 યદિ હું પ્રતિ તેમ થાય જો,
 તવ કીર્તિ વદ કેવી થાય તો? ૩૧.
 શિશુનાં પિતૃ સ્લાહનો કરે,
 પ્રણયે બાલવયે જ એ અરે;
 કરતાં કંઈ ભૂલ યૌવને,
 ફરી તે તાત સુતાહનો કરે;
 પણ તે નથી લાલનો કર્યા,
 તદપિ તાહન કેમ આચર્યા? ૩૨.
 છંદરિ, હું જ છું દોષ—દુષિત,
 તદાપ દોષ હું કાઢતો તવ;
 રમણી—વિરહે બળ્યો નર,
 મૃગતિ, ચંદ્ર જ નિદતો જ્યમ. ૩૩.
 કર્ણાલુ હું દુર્દશાકુલ,
 પતિતાલંબન પાપી હું ખલ;
 અમૃતામૃતિયે ત્યજે ન છું,
 મુજને મદા જવર વૃથ્યને પ્રભુ. ૩૪.
 ગણશે નહિ કૌશલ્યની,
 કહવાણી મુજ અલપ પ્રાણીની;

૧ કૃપિતાવર—બાલ—બાલને,
 જન મોટાં મન શું મહત્વ દે? ૩૫.
 ૨ ભુજગાહિત—અકિત—ધ્વજ,
 પ્રભુ હું આશ—ભુજગ—દંશિત;
 ૩ પ્રબલ જવર—કુંજરકુંડલ,
 તજશે ના જવર તમે છું શિવ. ૩૬.
 “નથી મેં કંઈ દુષકૃતો કર્યા,”
 પ્રભુ એવું કહી હું શકું ના;
 તદપિ મુજ ભીતિ છે ટળી,
 પતિતોદ્ધારક નામને રમરી. ૩૭.
 જગમાં પુરુષોત્તમ પ્રભુ,
 લજવા યોગ્ય શિવાદિથી જ છું;
 કપકો તદપિ તને વિભુ,
 દધને ઉદ્ધત હું જ રે બપું;
 ધિક આ અવિવેકી ધીરને,
 મુજને છે ધિક મારી બુદ્ધિને. ૩૮.
 હરિ સર્વ જણાવિયું તને,
 નવ માથું કંઈ અન્ય હું કને;
 વસજો મમ માનસે વિભુ,
 વપુ અદ્ભુત સદૈવ તાહરું. ૩૯.

૧ સારા ફેલ કરનારા માણસો પ્રત્યે. ૨ લાડ; લાડ
 પૂર્વક પાલન પોષણ ૩ સારી રીતે શિક્ષા કરવી સારી-
 રિક શિક્ષા. ૪ આત્મા વિચારથી. ૫ કુસુદિવાળો પુરુષ

૧ અત્યાર સુધી પ્રભુને દોષિત ગણતો રવિ, હવે
 પોતાની ભૂલ સમજવા માંડે છે. જુઓ મૂળ પાઠ —
 અહમેવ હિ દોષદૂષિતો, ભગવત્સ્વા સમુપાલમે મુધા ।
 રમણી વિરહજ્વરજ્વલન્નમૃતાંશુ મુગતિર્ચિનિન્દતિ ॥૩૩॥
 ૬ પતિત+આલંબન=પતિતના આધારરૂપ, દે પ્રભો. ૭
 અમૃતાત મદાયાગર દે વિભો.

હવે આલીસમા રજોકથી લગવાનું વિધાન
 સુંદર મનોહર દેહનું વર્ણન શરૂ થાય છે તેને માટે
 હવે પછીના અંકની શરૂઆત જુઓ.

અપૂર્ણ.

૧ ગુરમે યથેલા અને કુખથી પીડાતા બાલકના
 બોલને. ૨ ભુજગ+અકિત=સર્પનો દુરમન (ગરુડ)
 ગરુડનું ચિન્હ છે જેમની જગમાં તે. ૩ આશારથી
 નાજથી કંબોયેલો. ૪ લવંકર તાવરૂપ દાશીને તામે
 રાખનાર અંકુશ સમાન. ૫ દે પ્રભો. ૬ ધીર=અદ્ભુત
 બોલકણે તોજો.

અર્જુને યુદ્ધ શા માટે કર્યું ?

(સં. પડોડ બાપાભાઈ નારણી બી. એ.)

[અનુર્મધાન પૃ. ૬૮૪ થી આગળ]

સર્વભૂતહિતે રતા ।

—ગી. ૨૨૨ દરમ

એમાં જે વસ્તુ ન છે તે ઉપર જણાવ્યા પ્રમાણે-
ના તત્ત્વવેત્તાના રૂપભાવની વસ્તુ સ્થિતિનું વર્ણન
છે. ત્યારે હવે આ ઉપરથી—

વર્તેન્ન ચ કર્મણિ । —ગી. ૨૨

જે વાક્ય અગ્રવાને પોતાને માટે ઉચ્ચારેલું છે
તે અગ્રવાનની સ્વાભાવીક વસ્તુ સ્થિતિનું દર્શક જ
છે પણ અગ્રવાનને આજ્ઞા કરનાર તે વાક્ય નથી,
તેમજ—

કુર્ષોદ્ધિદ્વાસ્તયાઃ । જાણવેસર્વકર્મણિ ।

—ગી. ૨૨૪ ૧૧

આ જણાવેલા વાક્યો પણ તત્ત્વવેત્તાને આજ્ઞા
કારક નથી પરંતુ તે વાક્યો તત્ત્વવેત્તાની સ્વાભા
વીક વસ્તુ સ્થિતિને દર્શાવનાર હોવા અનુવાદક
વાક્યો છે તેમ જળી એજ વાક્યો અજ્ઞાનીઓને
પોતાની સાધના કરવા તરફ પ્રેરનાર અને પ્રેરાયક
રિતિ ઉત્તેજક હોઈ અર્થબાહુલ્ય છે.

જે ઉપર પ્રમાણે તે વાક્યોનો અર્થ ન કરીએ
અને તત્ત્વવેત્તાને પણ ઉપદેશ કરવા માટે તે વાક્યો
અભાવક છે એવો અર્થ કરીએ તો પછી તે ઉપ
દેશ કરનાર શાસ્ત્રનેજ અર્થત્વ આપ્યો. કારણ
પોતાના ઉપદેશનો અધીકારી અલ્પતા બીનાજ શાસ્ત્ર
ઉપદેશ કરતા મંદી અથ તો પછી દારને અરુપમા
જ રૂદન કરું બાધાથી અને એસ આચાર આચરત
વાંથી કેટલાક.

૧૩૧

કારણ તત્ત્વવેત્તા તો તેવા ઉપદેશો સાંભળીને
તેમા પારગન ભળી ગયો છે એટલે જે છાંડાએ
સાતમી ચોપડી પાસ કરી દોય, મેટીક પાસ કરી
દોય, નેને કેઈ પહેલી ચોપડી બાજપોથી કે પ્રાઈમર
નો ઉપદેશ કરવા એસે—તેવું થીકણ આપવા એસે
તો તેને માટે તેવો સાતમી ચોપડી પાસ થએલ
અગર મેટીક પાસ થએલ તે અધીકારી ગણાયજ
નહા, છતા તેની પાસે તેવો ઉપદેશ કરવો તે ઉપ
દેશ કરનારનીજ અપૂર્ણતા સૂચવે, પરીણામે તેવો
ઉપદેશ કરનારજ અજ્ઞાની હરે. ને તેવોજ દોષ
તેવા શાસ્ત્ર પર પણ આવે તેટલા માટેજ આર્યોમા
વીધી નિરૂપના વાક્યો. જે તત્ત્વવેત્તાને માટે નથી
જ પણ અજ્ઞાનીને માટે છે

મતલબ શાસ્ત્રને પોતાને કેઈ દોષ કે આરોપ
ન આવે તે માટે શાસ્ત્ર અધ્યનાર વિદ્વાનો ભરાબર
આગળ પાછગનો એક દર વીચાર કરીનેજ શાસ્ત્ર
નો અર્થ કરે છે કારણ તેમ ન થાય તો ઉપર દર્શા
વ્યું તેમ એક છાંડીએ બધાને હાંકવાને પ્રસંગ
આવે અને તેમ થાય તો વીધી નિરૂપના વાક્યો
તત્ત્વવેત્તાને પણ કેટલાક વીદ્વાનો હમારે પણ તે
યોગ્ય નથી

ગીતા શાસ્ત્ર માટે તો શ્રીમત્ જગદગુરુ શ્રી
બાલ રામભાઈ આ કામ આજરે ૨૩૬૧ ૧૧
ખંડેલ જ પર્વત પેડે બેઠાવ અને અજ કહેલું છે
અને તે એ કે સીતાની અહરના વીધી નિરૂપના
વાક્યો એ કેવળ અજ્ઞાની અને છતામુએ માટેજ

છે પણ તત્ત્વવેત્તાને માટે તેવાં વાક્યો નથી. કારણ તત્ત્વવેત્તાને તો તેવી બાબતોમાં સ્વભાવજી બંધાઈ ગયો હોય છે. હવે આપણે આજ બાળતને જરા આગળ વધીને તપાસીએ તો જણાયે કે પ્રત્યેક તત્ત્વવેત્તા સ્વભાવથીજ લોકસંગ્રહ કરનારોજ હોય છે.

તત્ત્વવેત્તાએ પોતાનું મોક્ષનું પરમ ધ્યેય સિદ્ધ કરી લીધું હોય છે. અને તે સિદ્ધ પદે પહોંચવા તેણે પોતાની અજ્ઞાન અવસ્થામાં જ પ્રથમ કર્મ યોગનો આરંભ કરેલો હોવોજ નોંધ્યો, ત્યાર પછી યોગાભ્યાસ, ઉપાસના, આત્મ અનાત્મ વિવેક, શ્રવણ, મનન, આદીક જ્ઞાનાભ્યાસ, એવા કર્મથી મોક્ષ સુધીના અંતીમ ધ્યેયની પ્રાપ્તિ સુધી તે આવી પહોંચ્યો. હવે ત્યાર પછી લોક કલ્યાણ માટે તેણે તત્ત્વવેત્તાએ જે કર્મ કરવાનું હોય છે, તેનો પણ અંતીમ ધ્યેય મોક્ષજ હોવો નોંધ્યો. અર્થાત્ કર્મ યોગના મૂળ આરંભથી તે ધ્રુવ સાક્ષાત્કાર થતાં સુધીનાં તમામ સાધનો પૈકી જે જે સામાન્ય પુદીના માણસોને નોંધતાં હોય, છતાં મળતાં ન હોય અગર તેવાં સાધનોને સામાન્ય માણસ ઝોળખી શકતા ન હોય, અને તેથી તેવાં સાધનને અભાવે સામાન્ય માણસ જ્યાં અટકી જતો હોય, તે તે સર્વ સાધનો તેને ણતાવવાં, ઝોળખાવવાં, પરીચય કરાવવો, અને તે રીતે સામાન્ય મનુષ્યને મોક્ષના માર્ગમાં આગળ વધારવો એજ લોક કલ્યાણ અને તેજ તત્ત્વવેત્તાએ મોક્ષનું ધ્યેય સંપાદન કર્યા પછી પણ કરવાનું હોય છે. તેમ છતાં બધાય તત્ત્વવેત્તાઓને, સર્વજ્ઞ, લોક કલ્યાણનું એક સરખું જ કાર્ય કરવાનું પણ હોતું નથી, પણ પ્રસંગ અને સંલોગ પ્રમાણે કરવાનું હોય છે.

પરીક્ષીત રાજાએ જાણ્યું કે પોતાને સાતંત્ર

દીવસે મૃત્યુ આવશે સારેજ તે વીરક્ત થયો. અને કોનું રાજ્ય ? અને કોનું કોણ ? એવી રચતિમાં તે રાજ્ય છોડીને મરણ લયથી મુક્ત થવાનો માર્ગ ન પકડે તો 'ખીણ' કરે પણ શું ? ! તે ક્ષત્રી તો હતો છતાં રાજ્યની પૂરવા ન કરતાં ગંગા તીર પકડતું પકડ્યું.

આવે સમયે પરીક્ષીતને લગવાન કદાચ એમ કહે કે હે રાજા, તારું મરણ તો હજી સાતમે દીવસે આવવાનું છે, તો પછી તું છ દીવસ સુધી તો મરવાનો નથી એ વાત તો નક્કી છે. તો પછી ક્ષત્રીય ધર્મ પ્રમાણે તારે તો રાજ્યનું રક્ષણ કરવું નોંધ્યું કે રાજ્ય છોડીને પોતાના એકલાના જન્મનું સાર્થક કરવા—મોક્ષ માર્ગ પકડવો ? લગવાન ગમે તેમ કહે પણ પરીક્ષીત રાજાએ તો રાજ્યને તણખલાની સમાન ગણીને છોડી દીધું અને ગંગા કીનારે આવી અનશન વ્રત ધારણ કરીને ભાગવત 'શ્રવણ કયું', આવા પ્રસંગે શ્રી શુકદેવજીએ આવીને રાજા પરીક્ષીતને ૭ દીવસ સુધી શ્રી ભાગવત સંભળાવીને મરણના બચથી મુક્ત કર્યો—એ મોટામાં મોટું લોક કલ્યાણ શ્રી શુકદેવજીએ કયું છે એમ કોણ નહી કહે ?

તત્ત્વવેત્તાએ લોકસંગ્રહ કરવો એવો જો કે શાસ્ત્રનો ઘોષ અને ઉદ્દેશ છે તો પણ સારસ્વાર વીચાર કરીનેજ તેણે લોકસંગ્રહનો અમલ બળવણી કરવી એ તત્ત્વવેત્તાના હાથની વાત છે અને તેવે પ્રસંગે સંલોગવશાત્ તત્ત્વવેત્તાએ તારતમ્ય દિપિ રાખ્યા વીના છુટકો નથી.

પ્રાચીનબહિઃ રાજાએ યજ્ઞ આરંભ્યા, હનરો પશુ માર્યા, સર્વ પૃથ્વી પર દર્શન દર્શ પાંચમ્યા, એવો પ્રકાર નોંધ નાદહજીએ તે કર્મસક્ત રાજાને પુદીલેલ કયો એટલે એવા કર્મયોગના અતીર-

કથી તેની મતી ચલીત કરી અને નારે તે પ્રાચીન બહિં રાખના કમંથોગની મહત્તાને મુજબથી બાંધી કહાડી. નારકનું આતુ વર્તન કેવું દેખાય છે? અમે ને તો તે યોગ્ય દેખાય છે. કારણ સામાન્ય રીતે પણ અતિ સવત્ર વર્તેયે. એ ન્યાય માન્ય કરવોજ એમજે બીજોના વટોગીયામા વેદીક કમંથોગ આથમવા લાગે, ત્યારે શ્રી કુમારીલ બદ્ધાથા' વીગેરેને તેને કુરીથી ઉજાવવી ન ક્યૌં પરતુ તેજ પાછળથી એટલો બધો પ્રબળ થઈ પડ્યો કે તેના આકરમા બીચારો યાત વેદોક્ત નિવૃત્ત ખાજ' સંન્યાસ પ્રણાશન—ધરયાદી—હુપ્તપ્રાય થઈ ગયા ત્યારે શ્રી શ કરાચાયે' તેને પ્રણાશમા આશ્વીને સર્વે યથાગુણપણે વ્યવસ્થીત કરીને લોકોદાર કર્યો—

ઉપરની તમામ વતો લોકસ પ્રદર્શન છે અને તેઓ પ્રસંગ પ્રમાણે તારતમ્ય લક્ષમા રાખી ને યોગ્ય રીતે ધાય તેજ ઇષ્ટ છે. પરતુ તુના નાણાં જેવુ સાચુ નાણુ કે કી હમને ખોટા જેવું નવું નાણુ જેવું તે તો ઇષ્ટ નથી અસ્તુ.

ગીતાને જે નીત્ય અવીનાશી ભેદજે છીએ તેજ નીત્ય અને તેજ અવીનાશી શ કરાચાય' વીગેરેને પણ સર્વે કાલમા ભેદજે છે. તેમ દરેકને પણ યોગ્ય પ્રમાણમા યોગ્ય રીતે તેજ વસ્તુ ભેદજે છે અને આ સર્વે ગાબત, જરૂર પ્રમાણે બગ વડ્ડીયામા રહેલી છે જ અને ગીતાની ઇચ્છા એટલીજ છે કે સર્વે લોકો ગીતાની અદર સમસ્ત વેદાતનો સ પ્રદ છે એમ માની લઈ એમ સમસ્ત લઈને તેનું અવ્યયન કરીને તે પ્રમાણે વને'

મુદી એજ કે સર્વ તત્ત્વવેત્તાઓ લોક કલ્યાણનું કાંઈ કુરતી રીતેજ સ્વભાવવશથીજ કરતા હોય છે તે દરેકની કલ્પીમાં—કરવામા ફેર આપણને લાગતો હોય અને તેમની વર્તન પદ્ધતીમાં અને

સ્વભાવમાં વીચીત્રતા પણ બાકશે છતા તેઓમાં ઉત્તમ મધ્યમ કનીષ્ઠો ભેદ નથી અને પાડી શકા યજ નહી.

ગીતાએ જે વ્યક્તીને, જે તત્ત્વવેત્તાને ઉત્તમ માન્યો છે તે તો આ રહ્યો—

સુદ્ધિમયાર્વદાસીનમધ્યમદ્વેયવન્દુષુ ।

સાધુષ્વપિ ચ પાપેષુ સમવુદિવિદિશ્યતે ॥

—મ. ૧ શ્લો. ૬

વાસુદેવ સર્વમિતિ સ મહાત્મા સુદુર્લભ ।

—મ. ૭ શ્લો. ૧૬

શાન્તો જ્ઞામવ મે મતમ્ ।

—મ. ૭ શ્લો. ૧૮

ઉપરનાં વાક્યોમાં વશુ'વાણેલી વ્યક્તીઓ—મનુષ્યો—તત્ત્વવેત્તાઓ એજ ગીતાના ધેરવ અનુસાર ઉત્તમમા ઉત્તમ છે.

સાધારણ જન સમાજને ઉપર જણાવેલા છે તેવી વ્યક્તી—તેવા મનુષ્યો—નેવા તત્ત્વવેત્તા હોતા સ બધે શ્રદ્ધા ન બેસે વીશ્વાસ ન આવે તો અમે નીરૂપાય છીએ.

પરતુ શાસ્ત્રને તો તેવી પરીપૂર્ણ વ્યક્તીના અસ્તીત્વમા પૂર્ણ શ્રદ્ધા છે. યાસ્ત તો કોઈપણ તત્ત્વવેત્તાના લોકસ શ્રદ્ધા કાંઈ જરૂરી તેના વગેરે કરાતું નથી તેમ કોઈને ઉચ્ચનીચ મધ્યમ તત્ત્વવેત્તા છે એમ વર્ણવતું નથી.

સાધક અવસ્થાની દૃષ્ટિએ તેવા ભેદ દેખાય એ સ્વાભાવીક છે. સાારશ એજ કે વ્યાસ જનક વીગેરે તેમજ શુકદેવજી-ચાગ્રવ ક્ય વીગેરે શાસ્ત્રની દૃષ્ટીમા તો સરખાજ છે ઉચ્ચ નીચ નથી. ઉપર જણાવેલા તત્ત્વવેત્તાઓમા કોઈએ લોકસ અન્ન કોઈ હશે ને કોઈએ નહીં ક્યૌં હોય તો પણ તેજ કારણથી કોઈ ઉત્તમ-મધ્યમ કનીષ્ઠ કરી જતા નથી.

નેની ખાત્રી થશે કે જનક રાજા કરતા શુકદેવજીની કીર્તિત્વ જોણી આંકવામા તે વીદ્યાનેની મેટી બૃહ થાય છે

બૃહદારણ્યક શાંતેષ્વર ક્ષણે પ્રત્યક્ષ જનક રાજા શરૂ થયેલકથને શુ કહે છે તે આપણે જોઈએ—

યાજ્ઞવલ્કય યો નો ભગવન્ અમર્ચ વેદસે

નમસ્તેડસ્તુ હમે વિવેદા યમમહમ્સિ ।

— શાંતેષ્વર

સોઈ ભગવતે વિવેદાન્ દદામિ મા વાપિ સદ્ દાસ્યત્યેવિ
શાંતેષ્વર

ઉપરના શ્લોકોનો અર્થાથ જોઈએ તો જ્ઞાન સ યજ્ઞ થએલો જનક રાજા શ્રુતકૃત્ય થઇને શ્રીયુક્ત રૂપ યાજ્ઞવલ્કયને એવી પ્રાર્થના કરે છે કે ‘હે ભગવન્, આપે અને આપની જે વીદ્યાથી સાક્ષાત્ અશ્વ દાન—સાક્ષાત્ આમદાન આપ્યું તેને મારે આપને હું શુ આપું ? આપવા જેવું મારી પાસે તો કાંઈ પણ છે નહીં માટે એ હાથને ત્રીભુ માથુ નમાવી નમસ્કાર કરું છું મારા આ વીરેહ દેશ અને હું એ સર્વે આપનાજ છે હું મારા પોતાના સહ આ સર્વે આપની સેવામા અર્પણ કરું છઉં અરુ’

ઉપરની સ્થિતિમા જનક રાજા જો કે જન સમાજમા રહીને લોકકલ્પ જ કરે છે અને યજ્ઞ વદ્ય ત્યાગી થઇને જનક-વાણ કરે છે તેથી જનક ની રહેણી કરણી સારી અને યાજ્ઞવલ્કયની ખરાબ એમ જો આપણે કહેવા ધૂજતા કરીએ તો તુરતજ જનક રાજા એવો જવાબ આપશે કે—

एव निलो महिमा प्रादणस्य, न वर्धने कर्मणा नो कनीयान्

(શાંતેષ્વર)

સ ન સાધુના કર્મના મૂલ્યાન્નો હવ મસાધુના કનીયાન્
एव सर्वैरवर ।

(શાંતેષ્વર)

એનો અર્થ એવો કે—અહા આત્મજ્ઞાન પ્રાપ્ત કરેલ

એવા આત્મજ્ઞ તત્ત્વવેત્તાને જે મહીમા પ્રાપ્ત થાય છે, તે મહીમા નીત્ય અને અવીનાશી હોય છે. શાંતેષ્વર દશામા કર્મયોગનું આચરણ કરવાથી તેને મહીમા કુર્ષ વધેના નથી, તેમ તેવું આચરણ ન કરવાથી તેનો મહીમા ઓછો થનો નથી મત લબ, શાંતેષ્વર દશામા સત્કર્મથી મહીમા વધતો નથી અને અસત્કર્મથી ઘટતો નથી.

તાત્પર્ય એ જ કે સર્વ તત્ત્વવેત્તામા પણ વિરાગી—લોભાત્યાગી એવો એકજ શુકદેવજી સાધુ તો લોકસત્ત્વકનું કૃત્ય જોટલું બધું અધીક મહત્વનું કરે છે કે તેટલું તો જનક રાજાથી પણ ઘણું નથી અને યવાનું પણ નથી

૪મી લોકોમા જન સમાજમા ભળીને રહેનારા તત્ત્વવેત્તાના ખરા સન્માન માટે લોકોને એટલી કાવના પણ ઉત્પન્ન થવા જેવી હોતી નથી કારણ કે તેવી તત્ત્વવેત્તા જન સમાજને પોતાની કેટીનેજ લાગવાનો અધીક સભવ છે, તેના કરતા તો ત્યાગી વીરગી—એવા તત્ત્વવેત્તાઓ જ ખરા તારણહાર મનાય છે. અને તેવાઓને લીધેજ જગત તેમને કાજે છે. આ બાબત તો આપણે પ્રત્યક્ષ દરેકજ જોઈએ છીએ

ગમે તે હો પણ સર્વેથા ત્યાગી હોનારા શુકદેવજી ભરતમુની-યાજ્ઞવલ્કયવાદીક મહાસાધુ તત્ત્વ વેત્તાઓજ અધીક લોકકલ્પાણ કરનારા કરે છે જ્યારે જનગ્રામીક તેવા કરતા નથી સાસથ એજ કે જ્ઞાનની હોવા મુકલીની બાબતમાં જે પ્રમાણે તત્ત્વવેત્તાઓમાં ઉત્તમ અધમ ભેદ બધુવો યોગ્ય નથી તેજ પ્રમાણે તેમના લોક કલ્પાણ સભવે પણ ઉત્તમ અધમ ભેદ ઠોકી બેસાડવો યોગ્ય નથી કારણ સર્વ તત્ત્વવેત્તાનું જ્ઞાન એકજ, મોક્ષ પણ એકજ, અરુ

પાંચમા અધ્યાયને આરંભે અર્જુનનો જે પ્રશ્ન હતો તેનો ભગવાને ઉત્તર આપ્યો છે કે પ્રથમ કર્મ-યોગનું આચરણ કર્યા સીવાય—કર્મ સંન્યાસની સ્થિતિ પ્રાપ્ત થવી ઘણીજ કઠીન છે. જ્યારે કર્મ-યોગ સંપન્ન થએલા મુનિને કર્મ સંન્યાસની સ્થિતિ જલદી પ્રાપ્ત થાય છે, તેથી આત્મશુદ્ધિ માટે કર્મ-યોગજ મુમુક્ષુસાધક પ્રથમ કરે છે. ઉપર ટપકે ભેતાં તરવેતાઓ પણ કર્મ-યોગજ કરેજ છે. પરંતુ એ તેવાઓનો પ્રકૃતિસીદ્ધ સ્વભાવજ છે.

અહીં પણ અર્જુન અગાઉની પેઠે પાપ પુણ્યની કથા કાઢે તો તે માટે અગાઉ નીચુંય ચર્ચાગયો છે. તે એવો કે પાપપુણ્ય કથા કંઈ દુર્બોધ નથી. કારણ કે પાપ અને પુણ્ય એ બંનેને અજ્ઞાનમૂલક છે એટલે અજ્ઞાનને લઈને ઉત્પન્ન થયાં છે, ખરી રીતે પાપ અને પુણ્ય જ્ઞાત પ્રાપ્તિ થયામાં છેજ નહીં. માટે આત્મતત્ત્વ જ્ઞાનનો આશ્રય દરેક મનુષ્યે કરવો જોઈએ. આ પ્રમાણેનું ભગવાનનું વ્યાખ્યાન અધ્યાય ૫ માંના શ્લોક ૧૩ થી ૨૬ સુધી આશરે

૧૫ શ્લોકોથી ચાલેલું છે. તેથી પણ સ્પષ્ટજ થાય છે કે અર્જુનનું મુખ્ય ખરૂં કલ્યાણ કર્તૃવા રક્ષણ આત્મજ્ઞાનમાં જ છે. માટે આત્મજ્ઞાનનુંજ નીરૂપણ ચલું જોઈએ.

ખરી રીતે કર્મ તો કાંઈને છુટતુંજ નથી અને એ તો એમજ થયા પણ કરશે. તેના માટે કંઈ વિશેષ ચિંતાની જરૂર નથી. ચિંતા ક્રૂરત એટલી જ છે કે તેમાં કર્મ કરવાથી મનમાં જે શોક વ્હાની થાય છે તે ન થવા જોઈએ અગર નીકળી જવા જોઈએ અને તે માટે અર્જુનને આત્મ—સાક્ષાત્કારપર્યંત નીરૂપણની સવેગ ગતીથી પહોંચતો કરવો જોઈએ.

આ પ્રમાણે મનમાં વીચાર કરીને ભગવાને ૫ માંના ૨૭-૨૮ અને ૨૯ એ ઉલ્લાખ પણ શ્લોકોથી સમાધીયોગ અભ્યાસ વીધે સૂત્રરૂપે ઉપાદ્યાત કરીને પાંચમો અધ્યાય પુરો કર્યો. સુદાં એજ કે આત્મ વીધયક સમાધીથી તત્ત્વ સાક્ષાત્કાર થતાં એ સાધક સીદ્ધ થઈને ચાંતી બ્રહ્મને પામે છે.

(કેમશાં)

વાર્ણ વિજ્ઞાન

(લે.—શ્રીમત્ સ્વામી જ્ઞાનાનન્દજી સરસ્વતીના ઉપદેશ)

(અનુવાદક અને પ્રેરકા:—જયકૃષ્ણ શાસ્ત્રી કાવ્યતીર્થ)

લેજાઃસ્વરૂપા વરુણ મહાનુભવિમહા ।
સર્વેશ્વરૂપા સર્વેશા સર્વોપારા પરાવરુણ ॥

મૃં વૈ૦ પુણ્યવ ૧

પ્રકાશ સ્વરૂપ, એક, બ્રહ્મ ઉપર અનુભવ કરવા માટે સાહાર, નિરવરૂપ, જગદીશ્વરી, જગત્તો આધાર, એટલી પણ શબ્દ તમો છે.

ઇન્દ્રિય દ્વારા વિષય બ્રહ્મ કરીને જ્યારે તમો

આત્મઅસ્તિત્વનો અનુભવ કરે છે, અર્થાત્ ઇન્દ્રિય-ને વિષય બ્રહ્મમાંથી શેકવાથી “તમો છે” એ જ્ઞાન પણ રહેતું નથી, ત્યારે રૂપાતીત, ગુણાતીત, અરૂપ, નિર્ગુણ, સત્તામાત્ર પરમાત્માની ઉપાસના કરવી અસંભવ છે, તેથી આત્માનું સૂચક સ્વિત્ત શુદ્ધ વ્યોતિત્તનું ધ્યાન કરવાનું ગાયત્રી મન્ત્રમાં કહેલ છે. શુદ્ધ વ્યોતિત્તનું ધ્યાન કરવાથી કયું કલ્યાણ

પ્રાપ્ત કર્યો? ક્ષતિ ભાલે છે ધ્યાન હઈ સાંભળો -

અન્તઃકરીરે જ્યોતિર્મયો હિ શુભ્રો

ય પરસ્મિ યતય ધીજીવોગા । —મું ૩

હૃદયસ્થિત જ્યોતિર્મય શુભ્ર વર્ણનું રોષ રહિત
યતિગણ અર્થાત્ સંન્યાસીગણ દર્શન કરે છે શુભ્ર
વર્ણમાં ગદ્યા વર્ણ વિલીન થઈ જાય છે અથવા
શુભ્ર વર્ણ ગદ્યા વર્ણને આવૃત—આવૃત્તિ કરી
પોતે જ્યોતિ રૂપમા પ્રકાશે છે શુભ્ર જ્યોતિનું
ધ્યાન કરવાથી શું મળશે, સાંભળ્યો? તમારા
શુભ્ર જ્યોતિના ધ્યાનની સ્થિતિ અનુસાર અર્થાત્
ઉક્ત ધ્યાનની રીતે સ્થિતિ થવાથી અનન્તવર્ણ
અંજનામય વિશ્વ અને તમે શુભ્ર જ્યોતિર્મય થઈ
જશો ત્યારે તમને અનન્ત વિસ્તૃત એકમાત્ર
શુભ્ર જ્યોતિનોજ અનુભવ થતો રહેશે ઉક્ત જ્યોતિ
ચમુદ્રમાં ગળી જઈ જુદા, જ્યોતિર્મય, શિવ હુંજ
હું એ પ્રકારનો બોધ થતો રહેશે તે જ્યોતિનું
નામ ચિત્તાકાશ છે પાતજલ યોગદર્શનમા તેને
વિરોધા વા જ્યોતિસ્તત્ત્વો કહે છે આ જ્યોતિસ્વરૂપને
પ્રાપ્ત કરવાથી ચોક્કસ બાહિનો નાશ થાય છે અને
બહુ સુખ વા આનન્દનો અનુભવ થતો રહે છે.
ઉક્ત ધ્યાનમા અર્થાત્ તે જ્યોતિ ચમુદ્રમા અધિક
રીતે સ્થિત થવાથી ઉક્ત શુભ્ર અશમાં નીલ
અશ મળી જઈ અવર્ણ, અરૂપ, જ્ઞાનમય, સુખ
સ્વરૂપ, ચિદાકાશનો પ્રકાશ થાય છે, તે ચિદાકાશ
જેજ ધરિવર—ભગવાન છે. અથવા આ ચિદા-
કાશને પ્રાપ્ત કરવું જેજ શ્રમગ્રસ્ત યોગ કે ક્ષતિ
હવે સમાપ્ત છે. આ વિરત પ્રકારમાં જે કાઈ છે
અને નથી તે બધુંજ તેમા છે. તન્ન શાસ્ત્રમા
ઉક્ત ચિત્તાકાશને શુરુ અને ચિદાકાશને ધરિવર
કહે છે ચિત્તાકાશ અને ચિદાકાશમાં ભેદ નથી
ચિત્તાકાશની નિર્મલ અવસ્થા જેજ ચિદાકાશ છે.

કાઈક સ્વૂત મૂર્તિમાં પહેલા શુરુ આવે છે. તે
શુરુમાં ધરિવર ભુક્તિનો આરોપ કરી વિશ્લેષ રહિત
થઈ દર્શન કરવું પડે છે કારણ કે પહેલા મનુષ્ય
અવર્ણ, અરૂપ, જ્ઞાનમય, સુખસ્વરૂપ આત્મા વા
માનુ દર્શન કરી શકતો નથી તેથીજ પરમ કરુ-
ણામયી મા શ્રદ્ધા વા દર્શન યોગ્ય થઈને આવે છે
મે પહેલા કહ્યું છે કે શુભ્ર વર્ણ મા નીલ વર્ણ મળી
જવાથી તે અવર્ણ, પ્રતિભિન્ન વસ્તુ યોગ્ય, શુદ્ધ
સ્ફટિકવત્ થાય છે તેથી શિવ શુભ્ર વર્ણ અને
કક દેશ નીલ વર્ણ છે શુભ્ર ભલરામની ખાસે
નીલ વર્ણ સી રૂપ છે અને મહાદેવની છાતી
ઉપર મહાકાલીનુ લીલા નૃત્ય છે.

વર્ણનુંકમે ભતિભેદઃ—

સાવશુષ્ણિક શુકલ-શુભ્ર સર્વોત્તમ વર્ણ વા
ભતિ પ્રાકાશ છે ધી અર્થાત્ ભુક્તિ વા જ્ઞાન તેનું
સ્વરૂપ છે રમેશ્વરુષિક રક્ત વર્ણ ભતિ ક્ષત્રિય
છે જ્ઞાનભૂષ કમ તેનો ધર્મ વા સ્વરૂપ છે
રજસ્તમોગુણુષિક પીત વર્ણ ભતિ વૈશ્ય છે. ત્રિપદ
વા પદાર્થ લક્ષકમ તેનું સ્વરૂપ છે તમોગુણુષિક
કૃષ્ણ વર્ણ ભતિ શૂદ્ર છે અને અજ્ઞાનતેનું સ્વરૂપ છે.

સાધક! તમારામાં જેમ ધી વા ભુક્તિ શ્રેષ્ઠ છે,
તે ભુક્તિની ઉપર પરમેશ્વર રહે છે અને શુદ્ધ ભુક્તિ
દ્વારા તેજ પરમેશ્વરને જેમ ભણી શકાય છે, તેમ
પ્રાણુજના હૃદયમાં ભગવાન સર્વદા વસ કરે છે
પ્રાણુજના સત્ય ભગવાનને ભણી શકે છે શારને
યજ્ઞ ભુક્તિ જ્યોતિનો શુભ્ર વર્ણ કહ્યો છે તમે પણ
જો મિત્ર્યા, મલિનતા, આલાસી અને શીકરનો
ત્યાગ કરી શુભ્ર, નિર્મલ, રોષ રહિત, સત્યપરાયણ
પ્રાણુજ જેજ થઈ શક્યો તો તમારા હૃદયમાં
ભગવાનને પ્રાપ્ત કરીને ધન્ય થશો, તમારો મનુષ્ય
જન્મ સાધક થશે.

હે બ્રાહ્મણ વંશમાં ઉત્પન્ન થયેલ દિવ્યગણ ?
 ઉત્તિષ્ઠત જાગ્રત પ્રાપ્ય વરાન્નિવોષત મોહ નિદ્રામાં પડી
 પોતાના અધિકારથી વધારે કેટલો વખત વંચિત
 રહેશે ! બેઠો ! બેઠો ! કયા દોષથી આજ તમે
 લેકો સ્થાન બ્રહ્મ, અધિકારથી વંચિત થયા છો ?
 તે બાણવા યત્નશીલ થાઓ. ભગવાન મનુ વા
 બધા મનુષ્યો શું બોલે છે, સાંભળો :—

અનધ્યાસેન વેદાનામાચારસ્ય ચ વર્જનાત્ ।

આલસ્યાદ્બ્રહ્મદોષાય મૃત્યુર્વિપ્રાજિધાંસતિ ॥

વેદાધ્યયન ન કરવાથી, આચાર રહિત થવાથી,
 આલસ્ય અને અત્નદોષને કારણે અર્થાત્ શાસ્ત્રનિષિદ્ધ
 અન્ન મંદુલ્ય કરવાથી મૃત્યુ વિપ્રતો નાથ કરે છે.
 અર્થાત્ વારંવાર જન્મમૃત્યુના પેષણમાં ત્રાહિ સારિ
 રે છે. કિન્તુ તારે કોણ ? અવિદ્યા, મિથ્યા,
 મતાભિમાન, આલાસી, પ્રીકર, પરિશદ્ધ, અને
 ૥૥ એ બધાં ત્રાણ કરશે કે બંધન કરશે ? જો
 ૥૥ યથા ઇચ્છતા હો, જો પોતાના વળુંમાં રહેલ,
 ૥૥ થમાં રહેલ મર્યાદાની રક્ષા કરવા ઇચ્છા હોય
 ૥૥ સાંભળો :—

શુભ્ર, નિર્મલ, સત્વશુભ્ર પ્રધાન, સત્યપરાયણ
 ઇચ્છતા ન હો તો સત્યાશ્રય કરી, મિથ્યા વગેરે-
 ૥૥ ત્યાગ કરી, સાધન તત્પર થાઓ. ત્યારે તમે
 ૥૥ શક્તિ બ્રહ્મવિદ્યાથી શક્તિ મેળવશો. અને
 ૥૥ મારી આત્મશુષ્પી ગતિ વેગવાળી યશે તેમજ
 ૥૥ પ્રાણ સમયમાં તમે દોષ રહિત, શુભ્ર, નિર્મલ,
 ૥૥ પ્રદ રક્ષકિવત્ થઈને આત્મલાભ—માતૃલાભ
 ૥૥ રીને તમારા મનુષ્ય જન્મની સાર્થકતાનો અનુભવ
 ૥૥ રી કૃતકૃત્ય થઈ જશે.

કોઈ બ્રાહ્મણેતર વળું બ્રાહ્મણ ન હોવાથી
 પ્રકૃષ્ટિત ન થાઓ. જો સત્યાશ્રયી થઈ શુદ્ધ
 નિર્મલ થઈ શકશે તો આવશે જન્મે બ્રાહ્મણ કુલમાં
 જન્મ લઈ સત્ય બ્રાહ્મણ થશે. કારણ કે પરમેશ્વર
 ન્યાયકારી છે. સારે તમે બ્રાહ્મણ ધર્મનું પાલન

કરી ચતુર્થાશ્રમમાં સંન્યાસ લઈ મોક્ષ-પરમશાન્તિ
 પ્રાપ્ત કરશો. સારે આ યાદ રાખજો કે જે સત્ય
 બ્રાહ્મણ છે, તેને જોયો આશ્રમ સંન્યાસ નકરી છે.
 મિથ્યાશ્રયી, લોભી, સંસાર પાશમાં બંધાયેલો
 બ્રાહ્મણ નામધારી વ્યક્તિ માત્ર બ્રાહ્મણ કુલને
 મલિન કરે છે. તેનાથી જગતનું કોઈ પ્રકારનું
 કલ્યાણ થઈ શકતું નથી. બ્રાહ્મણ તો પરિશદ્ધ
 રહિત, પરમ કલ્યાણ સ્વરૂપ છે. અને જગતના
 હિત માટે જન્મ ગ્રહણ કરે છે. ભગવાન વિષ્ણુએ
 પોતાના હૃદયમાં બ્રાહ્મણના પદનું ચિન્હ ધારણ
 કર્યું છે. તેમજ બધા દેવતાઓએ બ્રાહ્મણની પાસે
 શિર નમાવી બ્રાહ્મણને બધાથી ઊંચું સ્થાન
 આપ્યું છે.

બ્રાહ્મણ ગણ ? તમારા અધિકારને કોઈ લૂંટી
 ગયું નથી. જે દિવસ ઇચ્છશો, તેજ દિવસ પોતાનો
 અધિકાર મેળવશો. આલસ્ય કરી મોહ નિદ્રામાં
 વધારે પડી ન રહો. શ્રોત્રિય, બ્રહ્મનિષ્ઠ શ્રુતો
 ચરણ પાસે પોતાનો અધિકાર બાણવા માટે સમિધ
 પાણિ થઈ જાઓ.

તદ્વિજ્ઞાનાયં ગુરુમેવાભિગच्छેત્

સમિત્વાણિઃ શ્રોત્રિયં વ્રહ્મનિષ્ઠમ્ ॥ મુન્

તે આત્માને બાણવા માટે પ્રણિપાત અને સેવા
 કરી પ્રશ્ન કરશે તો તત્ત્વદર્શી જ્ઞાની ગુરુ તમારા
 અધિકાર પ્રમાણે જ્ઞાનનો ઉપદેશ કરશે.

તદ્વિદિ પ્રણિપાતેન પરિવ્રજેન સેવયા ।

ઉપદેશ્યન્તિ તે જ્ઞાનં જ્ઞાનિનસ્તત્ત્વદર્શિનઃ ॥ - ભીષ

આવો પતિત બ્રાહ્મણ ગણ ? ગળે વસ્ત્ર લગાડી
 હાથ નેટી, ભક્તિ વિનમ્ર થઈ ઇષ્ટ દેવી બ્રહ્મવિદ્યા
 માતા ગાયત્રીના ચરણમાં પોતપોતાના પ્રાણની
 પ્રાપ્તિ અર્પણ કરીએ.

ગાયત્રી ઉન્દનાં માતર્મંદ્યોર્નિ નમોઽસ્તુ તે ॥

ૐ તત્ સત

પછી તો કાંઈજ નથી.

(લેન્ડ-સ્વામી શ્રી રામાન હજી સન્યાસી, કર્મનશાસ્ત્રી, વ્યાકરણવ્યાર્થ)

ગંગાદ્વારના 'સિદ્ધાશ્રમ' ની વાત છે, એક વાર ત્યાં એક સન્યાસી 'વિવેક' અને 'ચિત્તરતિ'ના સંવાદરૂપે પ્રજ્ઞાવિદ્યાનું પ્રતિપાદન કરી રહ્યા હતા, તેમણે પ્રવચન આટું રાખ્યું કહ્યું—

અનેક જન્મોમા કરેલા યુવક કમીથી નિત્ય નિત્ય વસ્તુ વિવેક દ્વારા વૈરાગ્ય ઉત્પન્ન થાય છે તે પછી શમ દમ આદિ વૃત્ત સંપત્તિના અતુષ્ટતાથી મુમુક્ષુતા પ્રગટ થાય છે તે પછી વેદાન્ત વિચાર દ્વારા જ્ઞાન તથા મુક્તિની પ્રાપ્તિ થાય છે આ પ્રક્રિયાને સમજાવવા માટે રૂપક દ્વારા પણ કહી શકાય છે, જે આ પ્રમાણે છે—

'વિવેકાશ્રમ' 'વૈરાગ્ય તીર્થ' 'શમારણ્ય' 'દમ સરસ્વતી' 'ઉપરમ સાગર' એ પાંચ સન્યાસી તથા 'મુમુક્ષા' અને 'ચિત્તવૃત્તિ' એ બે તપસ્વિન નિયો છે આ મનુષ્ય ચરીરજ 'પાંચજન્ય મઠ' મણવામા આનું છે કે જ્યાં વિવેકાશ્રમ આદિ સન્યાસી નિવાસ કરે છે

૧—નિત્ય તથા અનિત્ય વસ્તુનો વિવેક, ૨—મહાસુત્ર ફળ ભોગ વિરાગ, ૩—શમ કમાદિ વૃત્ત સંપત્તિ, અને ૪—મુમુક્ષા, એ ચારેયના હોવાથીજ વેદાન્તનું અવલોકન, મનન અને નિદિધ્યાસન દ્વારા શ્રદ્ધાસ્થાન પ્રાપ્ત થાય છે, તે સિવાય નહીં એમા પૂર્વ પૂર્વ ઉત્તરોત્તરતા પ્રતિ હોતું છે, અર્થાત્ સૌથી પ્રથમ નિત્ય વસ્તુ તથા અનિત્ય વસ્તુનો વિવેક હોવો જોઈએ તે સિવાય 'મહાસુત્ર ફલભોગ વિરાગ અર્થાત્ આલોક તથા પરલોભના ભોગોની અનિચ્છા થઈ શકતી નથી વૈરાગ્ય વિના શમ

દમ આદિ સંપત્તિની પ્રાપ્તિ થઈ શકતી નથી અને તેના સિવાય મુમુક્ષુતા તથા મુમુક્ષુતા સિવાય શ્રદ્ધાસ્થાન પ્રાપ્ત થઈ શકતું નથી એટલા માટે સૌથી પ્રથમ નિત્ય વસ્તુ તથા અનિત્ય વસ્તુનો વિવેક હોવો જરૂરી છે જ્યારે મનુષ્યને નિત્યત્વ અનિત્યત્વનો વિવેક થઈ જાય છે ત્યારે તે સંસારને અનિત્ય અને કુખરૂપ સમજીને તેમાં વિરાગપૂર્વક નિત્ય જ્ઞાનરૂપે પરાર્થ (પરમાત્મા) ને માટે પ્રયત્ન કરે છે આ વિષયને કપટ સમજાવવા માટે અહિં વિવેકાદિ સાધનોને સન્યાસીના રૂપમા દર્શાવવામા આવ્યા છે. હવે અહિં પ્રથમ 'વિવેકાશ્રમ' સન્યાસી ઉપરિચિત્ત થાય છે

તે સન્યાસીને ઘણીએ શોધ બોળ કરવા છતાં પણ ક્યય પોતાને રહેવા યોગ્ય મઠ અર્થાત્ સ્થાન મળી શકતું નહિ, કે જ્યાં રહીને તેનું મન પ્રસન્ન થાય તેણે આ જગતમા ૮૩૬૬૬૬૬ અર્થાત્ એક ઠમ ચોરાસી લાખ મઠ જોઈ નાખ્યાં પણ તેમનામાં કયાંય તેની સ્થિતિ બની નહીં એ રીતે ઉત્તમમા ઉત્તમ પર્વત, નદી, સાગર અને બન આદિ અનેક સ્થાનોમા જોતાં જોતાં તેણે 'પાંચ જન્ય' નામે મઠ જોયો તે મઠમા બે પાસલા છે તે કામગ છે એટલે કે તેમાં ફરક પ્રકારની કામનાઓ પૂર્ણ થઈ શકે છે, અથવા તેમા રાત દિવસ કામનાઓના જ શીત ગવાણા કરે છે. તે વિષય સ્થાનમા આવ્યો જાય છે, સુંદર છે, નવ લગાવળથી સુશોભિત છે ચિદ્રિને યોગ્ય છે અર્થાત્ જીવાત્માના નિષ્કામ કર્મ આદિ લેખિત આચારોની સાધનાને લાગક છે અને તિથિપર છે એટલે કે પ્રણામ સાક્ષાત્કારનું સ્થાન

છે. આ મઠ સમસ્ત પૃથ્વિ લોકની ઉપલોગ પ્રાપ્તિના ઉત્કૃષ્ટ સાધનોથી સંપન્ન છે તથા ઘણા જન્મોમાં કરેલાં પુણ્યોથી પ્રાપ્ત થાય છે. જે પરમાત્માની ઉપાસનાથી વિદ્વાનોનાં ચિત્ત શુદ્ધ થાય છે, તે મંગલ મૂર્તિના (આત્મદેવની) આરાધનાને યોગ્ય આ પાંચજન્ય મઠ છે.

સત્જનો, ઇશ્વરની કૃપાથીજ પુરૂષોને અદ્વૈત વાસના ઉત્પન્ન થાય છે. ભક્તિ વિના ઇશ્વર કૃપા પ્રાપ્ત થઈ શકતી નથી, ભક્તિથી ભક્તોનાં મન નિર્મલ થાય છે, અવિદ્યાની ગ્રંથી ટુટી જાય છે અને આત્મસાક્ષાત્કાર થઈ જાય છે, તેજ ઇશ્વરની ભક્તિને યોગ્ય આ મનુષ્ય દેહ છે, જેને ‘પાંચજન્ય મઠ’ કહેવામાં આવ્યો છે. ભક્તિ શું છે ?

દ્રુવસ્ય ભગવદ્દર્શનાદ્વારાનાદિક્તાં ગતા ।
સર્વેશે મનસો વૃત્તિર્મષ્ટિરિત્યભિધીયતે ॥

‘ભગવાનના શુષ્કોને સાંભળીને દ્રવિત થએલા મનની ગંગાના પ્રવાહ જેવી નિરન્તર ભગવદ્દાકાર વૃત્તિને ભક્તિ કહે છે’ ભગવાનના શુષ્કોનું શ્રવણ કરીને જ્યારે એકવાર પણ ભક્ત, છાસ્રાસુ, સુસુકુનું મન હૃદયથી દ્રવિજૂત થઈ જાય છે, પ્રેમ તથા આનંદથી ગદ્ગદ્ થઈ જાય છે અને ભક્તિ રસમાં ડુબી જાય છે, તે સમયે ભગવાનની જે મૂર્તિ તે મનમાં અંકિત થઈ જાય છે તે ચિત્ર પદ ઉપરથી કૃત્રીયા દ્રિષ્ટિ પદ્ધતી નથી દહતી નથી. તેવા મનમાં બાહ્ય વિષય પણ પ્રવેશ કરી શકતા નથી, કેમ કે જે મનોમંદિરમાં રામચંદ્ર (પરબ્રહ્મ) નો નિવાસ થઈ ગયો, ત્યાં (સૂર્યની હાજરીમાં જેમ અંધકાર રદી શકતો નથી તેમજ) સુચ્છ વિષય વાસનાઓ પણ પ્રવેશ કરી શકતી નથી. એટલા માટે મન શુદ્ધ થઈને આત્મસાક્ષાત્કારનું

અધિકારી થઈ જાય છે. એ સર્વ કાંઈ આજ મનુષ્ય શરીરમાં થઈ શકે છે. ઘણું કહેવાથી શું, શ્રેષ્ઠ સન્યાસીઓના નિવાસને યોગ્ય, પાતાલ, પૃથ્વી અને દુલોકમાં પાંચજન્ય સિવાય બીજો કોઈ મઠ (સ્થાન) નથી.

અગર કહો કે સ્વર્ગાદિ લોકોમાં જે દેવતાઓના દિવ્ય દેહ છે તે તો મનુષ્ય શરીરની અપેક્ષા ઘણા ઉત્તમ છે, સ્વામિ વિવેકાશ્રમ સન્યાસીએ ત્યાં નિવાસ કરવાનું કેમ હીક ન ધાર્યું ? તો એ વિવયમાં કહેવાનું એ છે કે દિવ્ય શરીરોમાં યથા રૂચી ભોગ્ય પદાર્થો નિરંતર પ્રાપ્ત થતા રહેતા હોવાથી તેમાં વૈરાગ્ય ઉત્પન્ન થઈ શકતો નથી. અર્થાત્ દેવતાઓને નિલ નવા ભોગ અનાયાસ, ઇચ્છા માત્ર યતાં જ પ્રાપ્ત થતા રહે છે પછી તે તેમને ત્યાગવાની ઇચ્છા થા માટે કરે ? ઉલટ તેમનો રાગજ વધતો જાય છે, એટલે તેઓ સદા વિધેયોન્મુખજ રહે છે. પરંતુ મનુષ્ય દેહમાં તો અલ્પભોગોને કારણે ઇચ્છાનુસાર ભોગ્ય વસ્તુ નહિ મલવાથી કલેશ થાય છે તથા ભોગો પ્રાપ્ત કરવામાં પણ અનેક કષ્ટ ઉઠાવવાં પડે છે. અતઃ ભોગોમાં હોય દ્રષ્ટિ થઈ જવાનો સંભવ છે, તેથી પુરૂષ આત્મજ્ઞાનને માટે યત્ન કરે છે અને તેથી મનુષ્ય દેહ સૌથી શ્રેષ્ઠ માનવામાં આવ્યો છે. એવો નિશ્ચય કરી લીધા પછી લોક લોકાન્તરોમાં નિરંતર આવાગમનથી પિડિત થઈને તે વિવેકાશ્રમ સન્યાસી પાંચજન્ય મઠને પોતા માટે યોગ્ય સમજીને તેમાં નિવાસ કરવા લાગ્યો. શ્રોતુમ્શુ ! એમ સમજો કે મનુષ્ય જન્મમાંજ વિવેક વૈરાગ્ય થઈ શકે છે, પરંતુ તેમાં વિગ્ને અને બાધાઓ પણ કંઈ જોણી નથી. તેમાં સૌથી મોટું વિગ્ન જે ભક્તિ, જ્ઞાનને તદસ તદસ કરી નાખે છે તે ગ્રી છે. (તેમજ ગ્રીને માટે પુરૂષ છે) ઇતિ.

હાથ પુરાણિકમાં જોના સ અધમાં દસાધને
છતેલી બાહુ હારી અધેલાઓનાં અનેક ઉદારણ
ભય પડ્યાં છે. આજ પણ જોજ દશા છે અગર જો
અમારું કથન બરાબર ન લાગતું હોય તે અને
પૂછીએલીએ કે સીએ બનાવટી શોભા શરણગારમાં
જોડેલા સમય અને દૈવ શા માટે વ્યથા ખર્ચી
નાખે છે ? શું પ્રાકૃતિક અર્થાત સ્વાભાવિક શુભે-
થી પતિ આદિ સમજાને પ્રસન્ન નથી કરી શકતા ?
એથી માલુમ પડે છે કે સીએને ઈશ્વર તરફથી
બક્ષિત થયેલા પોતાના સ્વાભાવિક શુભે તથા
ધોષતાઓ ઉપર વિશ્વાસ નથી અન્યથા તેઓ
વિતલી બનીને પોતાના લાભવનો પરિચય કેમ
આપે છે ? એથી તેા જોમજ માલુમ પડે છે કે
તેઓ પણ અનાવદના દ્વામાં મનુષ્યોના ચિત્તકર
દેશવધા માટે છે. અસ્તુ ;

પ્રત્યમાં તપશ્ચર્યાથી કુદા સ્વામી વિવેકાશ્રમ
પતિને કોઈ પણ પ્રકારે (પૂર્વજન્મનાં પુણ્યોના
કૈંદ્ય ધયાને કારણે) પાંચજન્ય મઠની પ્રામિયતાજ
કામને બદલત કરનારી ચેષ્ટાઓથી શુદ્ધ રતિ
સરખી કોઈ જોજ અપૂર્વ સી મઠ મદ દસલી
દસલી ત્યાં આવી પહોંચી—

સા પશ્ચમાલ્પમુપાત્તગાના,

અધ્યવન્દનાલિમગરોરવટિ ।

મતમજામ્બુનરમ્બવર્ણ,

વીડાસવા ધૂનિપદ્મનેત્રા ॥

અર્થાત—તે સી પ ચમ સ્વરખા ગાઈ રહી હતી,
પુષ્પમાલા અને અદનથી તેનું સુંદર શરીર વિભુષિત
હતું, અત્યંત તપેલા સોનાના જેવું ગીર જેવું રૂપ
હતું, અદિશ પીપેટી હતી, જેના પેનથી તેનાં કમલ
સરખા નેત્ર ધુમી રહ્યાં હતાં અને દિવ્ય પુષ્પોથી

શુભેલા સુંદર વાજના ભારથી તેના વિલાસ વધી
રહી હતો, જેના પ્રભાવથી તે વિશુના પરમ પદને
પ્રાપ્ત કરવાની ઇચ્છાવાળા સુસુણુઓને પણ
મોહિત કરી રહી હતી, પણ સામાન્ય મનુષ્ય તેા
તેનું શું નિવારણ કરી શકવાનું હતા ?

તે સીને આવી સ્થિતિમાં જોઇને ‘સ્વામી
વિવેકાશ્રમ’ નું મુખ કમલ કરમાઈ ગયું અને
અલત આશ્ચર્ય પામીને તે મનમાં મનમાં આ
પ્રમાણેનો વિચાર કરવા લાગ્યો કે—

મે ઘણા લાભા વખત પછી અનેક કટ સહન
કરીને આ સ્થાનને પ્રાપ્ત કર્યું છે, અહિં પણ આ
વિદ્ય કયાંથી આવી પહોંચી ? ‘દેરાગ્ય તિથ’
સંન્યસી જે મને પ્રાણુથી પણ પ્રિય છે, તે ઘણા
બીજા છે, તે આ સીની હાજરીમાં અહિં શી રીતે
રહી શકે ? તેના વિના શમ, દમ અને ઉપશમ
આદિ સન્યાસી પણ અહિં રહી શકે નહીં એવી
દશામાં અહિં ‘મુમુક્ષા’ તપસ્વીનિ શા માટે
આવે ? તેના નહિ આવવાથી ‘મુક્તિ’ ને પણ
ગઈજ સમજે ! હાથ ! તેના વિના અમે સર્વ આશ્રમ
વચરના રહી જઈશું, આ મઠ તેા અમારા જેવા
વિરક્ત જનોને નિવાસ કરવાનું સ્થાન છે અહિં આ
કોણ હરામખોર પિશાચિની જેવી આવી પહોંચી ?

કદાચિ યુવતિ મિહુર્ને છત્તેન્ દારવીર્માવ ।

શ્વિદુદ્ધોષ્ય સન્તિ તદ્વત રવાન્ સદસ્થિતિ ॥

અર્થાત—સન્યાસીને સીએનો સ્પર્શ કરવે
એ યોગ્ય નથી, તેા પછી તેની સાથે રહેવાની તેા
વાતજ ક્યાં રહી ? એવું મંદો પુરેવે કહી મયા છે.
ત્રિતાદારોપવા વૃદ્ધો, વિરક્તો વ્યવિતાડપવા ।
યતિર્નિ ગચ્છેત્તે દેશ, યત્ર સ્થાન્ પ્રતિમા સ્થિત ॥
અર્થાત—છતાદાર, વૃદ્ધ, વિરક્ત અને કૌણી

ગમે તેવી સ્થિતિના સન્યાસીને પણ સ્ત્રીના ચિત્ર-
વાળા સ્થાનમાં પણ નહિ જવું જોઈએ. જે પ્રમાણે
વિન્ધ્યાચલ ઉપર પ્રસરેલી છેરી વેલ સર્વ પ્રાણી-
ઓને દુઃખીત કરે છે, તેજ પ્રમાણે સ્ત્રીના સ્પર્શથી
દુષિત જલ વાસુ પણ સન્યાસીને પતિત કરે છે.
સ્ત્રીઓની સાથે વાર્તાલાપ અને તેમને જોવી આદિ
તો દૂર રહું તેમની સ્મૃતિ પણ સાપના ડંસ જેવી
મૃત્યુને પમાડનારી છે. બ્રહ્મા, ઈન્દ્ર, ચન્દ્ર આદિ
દિવ્ય શરીરધારિયોના પણ સર્વ અનર્થ સ્ત્રીઓને
કારણે થયા છે. તો પછી તુચ્છ મનુષ્યોની તો
ગણતરીજૂની છે ? એવો સન્યાસી કહી શકે છે—
જે રાત્રીને નરક સમાન, મુવલુંને માટીના ઢેકા
અરણ્ય અને સ્ત્રીઓને મૃતક મડલાના જેવી સમજે.
અસ્તુ,

આ સ્ત્રી અમારા યતિયોનો મઠ છીનવી લેવા
ચાહે છે. એ ઘણા દોષોવાળી હોવાને કારણે
સંભાષણ કરવાને યોગ્ય નથી. બીજા કોઈ મનુષ્ય
પણ અહિં નથી કે જે જોને પૂછે કે તે અહિં શું
કરવા ચાહે છે ? શું તે અહિંથી ચાલી જશે ? કે
પછી સદાને માટે અહિંજ રહેવા ચાહે છે ? અથવા
હું જ તેને તેનો મનોરથ પૂર્ણ ? જેનું મન પ્રત્યક્ષ
આત્મામાં લાગેલું છે તેનું એ બિચારી શું કરી શક-
વાની છે ? આત્મદ્રવને સ્ત્રી આદિ વિષય બાધા
પરોચ્યાદી શકતા નથી. જેવી રીતે સ્ત્રીમાં પ્રેમ
લપ્ત થયાથી કામિ જનોનો માતૃપ્રેમ નાશ પામે
છે તેવીજ રીતે આત્મ પ્રેમિયોનો વિષય સ્નેહ જતો
રહે છે જેવી રીતે પ્રકાશ યતાં દોરકીમાંનો સાપ-
નો બ્રમ દૂર મર્ધ નથ છે તેવીજ રીતે સ્ત્રી આદિના
દષ્ટિપત્ત શરીરથી જ્ઞાનિયોને કોઈ બ્રમ રહેતો નથી.
જેવી રીતે પેટાં બકરાનું વાઘ ઉપરકંઈજ નોર
ચાલતું નથી તેવીજ રીતે વેરાગ્ય તિથ જેવા સાધી-

ના સહાયક હોવાથી હું વિવેકાશ્રમ ઉપર સ્ત્રીઓ
શું નોર અજમાવવાની હતી ? એ રીતે તે વેદના
સંન્યાસી તે સ્ત્રીને દાસી જેવી અલ્પ સમજીને
બાલ્યા—

કાઠસિ ? કત્યાઠસિ ? હલ્લને !

કુપ્રત્યા ? કિંચ વાન્હસિ ?

નોચિતાસમિન્મટે માતિ

સ્થિતિસ્તવ વરાનને ॥

અર્થાત—હે લલના ! તું કોણુ છે ? કોની સ્ત્રી
છે ? ક્યાંની રહેવાસી છે ? અને શું ચાહે છે ?
હે વરાનને ! આ મઠમાં તારે રહેવાનું બ્યાજળી
જણાતું નથી. જ્યાં શાન્ત, દાન્ત, ઉપરત, વિતિશ્ચ
અને સમાધિસ્થ સન્યાસી, પોતાના આત્મા (સંસ્કૃત
મન) થી આત્માનો સાક્ષાત્કાર કરી રહ્યા છે, જ્યાં
સુમુક્ષુ શ્રેષ્ઠ યતિ હોડો પ્રસંગાત્માને દેહ, ઈન્દ્રિય,
પ્રાણ, મન અને ભુદ્ધિથી પ્રયત્ન નહીંને તેનું દર્શન
કરી રહ્યા છે, જ્યાં વિદ્વાન હોડો, વેદાધ્યયન, યજ્ઞ,
દાન અનેક પ્રકારનાં તપ અને ઉપવાસ આદિથી
આત્મ જ્ઞાનાનુસંધાન કરી રહ્યા છે, અને પંડિત
જન આ હોડ તથા પરલોકના ભોગોથી વિરક્ત
થઈને જે મઠમાં નિવાસ કરીને અસંગ બ્રહ્માના વિષ-
યમાં શ્રુતિનાં તાત્પર્યોનો નિર્ણય કરવામાં ત્રસ્ત છે,
એવા સજ્જનોને નિવાસ કરવા યોગ્ય આ પાંચ
જન્ય મઠમાં તારે રહેવું ઉચિત નથી. પરંતુ તું આ
મઠને છોડીને અન્ય સંસારનાં મંદિરો (શરીરો)
માં જ રહેવાને યોગ્ય છે, કેમકે તેજ તારે ઉપયોગી
નિવરશે.

સુવિશાલ મેત્રોવાળી તે સ્ત્રી વિવેકાશ્રમનાં
ઉપરનાં વાક્યો સાંભળીને ક્રમાવાર ઉત્તર આપવા
લાગી—

હે ભદ્ર ! હું તારી માટી ખેન 'ચિત્તવૃત્તિ' છું, તું મને નથી ઓળખતો, કેમ કે—તું હંમણા ઉત્પન્ન થયો છે. હે વત્સ ! જે જે મઠ તે ત્યાગી થીધા છે અને હાલ જે મઠમાં તું વસી રહ્યો છે તે સંવત્ પાવન કરનારી અધિષ્ઠાત્રી દેવતા અનેજ માણ હું મનને હરણ કરી એવા શબ્દ, રૂપ, રસ આદિ સ્વમત્ત વિષયોને ચાહું છું, અને તે શબ્દ આદિનું સંપાદન કરનારા શુભ કર્મોને પણ ચાહું છું હું કર્મોના ત્યાગની ઇચ્છા રાખતી નથી અને તેમના ફળોના પણ ત્યાગ કરવા ચાહતી નથી જેવી રીતે તું કર્મ સંન્યાસી બનીને કર્મ અને તેના ફળોને છોડવા ચાહે છે. “અરે ! પુત્રવલ્લભ, તથા શોકેષણનો ત્યાગ કરી ઘેર ઘેર બીજા માનવી નોંધ્યો” એવી મતિ સંવદા વિચાર શુન્ય છે. આરંભમાં થનારા ભલે કર્મ આદિ સંસ્કારોનું જે વેદમાં વિધાન છે તથા જે વેદનું અધ્યયન પણ પ્રથમાવસ્થામાંજ થાય છે અને રમણીય ભરોશ અનેક પ્રકારના ધન ધાન્યાદિકોથી યજ્ઞનું અનુષ્ઠાન કરવું જે વેદમાં લખેલું છે, તે ‘કર્મોપાસના કાન્ડરૂપ વેદ’ તો ત્યાગ્ય છે ? અને વૃદ્ધાવસ્થામાં (લાંચા રીમાં) કરવા યોગ્ય સંન્યાસનું જેમાં વિધાન છે, તથા જગતમાં જેનું અધ્યયન કરવામાં આવે છે અને શિક્ષારૂપ અર્થનુંજ જેમાં વિધાન કરવામાં આવેલું છે તે “જ્ઞાનકાન્ડનું” રૂપ સ્તિતિ સમુદ્ભવ છે. ‘ઇત્યાદિ સુખાંજીની વિપરિત મતિ છે. “જ્યોતિષ્ટોમ યાજ્ઞ દ્વારા સ્વર્ગ” મળે છે” એ વેદ તો “મુક્તિદિક્ષા” કદીને ઉપેક્ષણીય છે ? અને “માયુ મુંડાવીને નહમ ધડમ યદને બીજા માનતા ફરવું” એ વે. વચન તત્ત્વ (સુક્તિ) આપનાર છે, એવા પ્રકારની ઝોટલે કે બીજા માનવાની ફરવનાં તે નિર્માલ્ય, દરિદ્ર, અનાય અને

સુખ લોકોજ ક્યાં કરે છે કે જેઓએ પૂર્વ જન્મ માં ચતુર્થ કરેલા હોતાં નથી અહીં. આ મર્યાદા ઓને શિક્ષા આદિથી આટનું મોટું સૌભાગ્ય પ્રાપ્ત થયું છે કે એમના હૃદયથી ભહેકાર્થ જઈને રાજા લોકો રાજપાટ ફાડીને જગતમાં ચાન્યા ભય છે. અગર સંન્યાસી લોકો એમ કહે કે—‘અય મિશ્વાચર્યં વ્રાન્તિ’ ઇત્યાદિ ક્ષુતિયોથી શિક્ષાવૃત્તિનું વિધાન થયેલું હોવાને કારણે તે અવશ્યમેવ ઇષ્ટનું સાધન છે તો ‘રત્ને સંદેશ’ આદિ યોગોએ શો શુન્દો કયો છે ? તેઓના પણ તો સ્તુતિ દ્વારા વિધાન કરેલા છે તેમને ઇષ્ટના સાધન કેમ નથી માનવામાં આવતા તેમનું પણ અનુષ્ઠાન કેમ નથી કરતા ? વળી બ્યવહારથી પણ બીજા માગવી એ કઈસાફ થોડું જ છે ? તેનાથી પુરૂષનું તેજ નષ્ટ થઈ ભય છે. જ્યારે કે મનુષ્યમાં ભુદિ છે અને તે સર્વોપાગ છે, પછી કેઇની પાસે શિક્ષા શા માટે માગે ?

‘આમા વા ગરે વ્રજ્ય’ ઇત્યાદિ વેદાન્ત, જે આત્માને દ્રષ્ટવ્ય કહે છે શું અમે તેને પ્રસન્ન નથી નોંધે રહ્યા ? આ સરીર રૂપ આત્મા તો સ્પષ્ટ નજર સામેજ છે જે હાય પગ આદિ અવયવોની ખાજ રચનાવાળો છે તો પછી વેદનું એમ કહેવું અર્થ વગરનું જ છે કે—‘આત્માનો સાધારણ કરવો નોંધ્યો’ અગર ઉપનિષદ પ્રતિપાદ આત્મા દેહ ઇન્દ્રિયાદિકથી ભિન્ન કેઈ વસ્તુ છે અને તે સૌને પ્યારી છે તો એવો આત્મા સૌ પુત્ર આદિ પ્રિય પદાર્થોજ દોષ શકે છે. કહેવાની મતલબ એ છે કે દેહથી ભિન્ન અગર એ કેઈ આત્મા માન્યો તો પુત્ર સી આદિ રૂપજ દરો અને તેજ પુત્રાદિ રૂપ આત્માને માટે સરીર ઇન્દ્રિયો આદિ જગત પણ પ્યારૂ દરો પછી તેના ત્યાગનું વિધાન શા માટે કરે છે ? પુત્ર સી આદિ રૂપ આત્માને

ધન્વિયો દ્વારા અનુભવ કરવામાં આવેલા વિષયોથી તૃપ્ત કરે, સ્નાન માટીથી શૌચ, શિરમુંઠન, ભૂમિ-શયન, વનમાં વાસ બ્રહ્મચર્ય અને શમ દ્વારે દેહર સાધનોથી આત્માને શા માટે કલેશ આપે છે ? વીણા અને સ્ત્રીના મુખથી ગવાયેલા મનોહારી શબ્દો—ગીતોને સાંભળે, કોમલ કોમલ શૈયા, મૃદુ મૃદુ મૃગનયની સ્ત્રીઓનો સ્પર્શ કરે, સુવસ્ત્રના જેવી કાન્તિવાળા સ્ત્રીઓના રૂપ લાવણ્યનું સદા અવલોકન કરે, ભક્ષ્ય લોભ્ય ચોખ્ખા આદિ ઉત્ત-ભોક્તમ સ્નાદિષ્ટ પદાર્થોનું રાત દિવસ સેવન કરે, માથા ઉપર કરતુરી લગાડે, ગળામાં પુષ્પોની માળા પહેરે અને સદા એજ ચિંતન કરે કે—

“યે મેરે મુખ ખાર ખાર હોવે”

કેટલું કહીએ, “ચિત્તવૃત્તિ” એ એવી ઘણી એકાદીયાત વાતો કહીને ઘણી વાર મુખી બકવાદ કર્યો ને સર્વ વાતો સાંભળીને સ્વામી વિવેકાશ્રમે હસતાં હસતાં ‘ચિત્તવૃત્તિને’ કહ્યું—

તું વિષરિત બુદ્ધિવાળી છે, તારા અજ્ઞાનધ-કારને કારણે મુખ પશુ હઠાવી શકતા નથી, અજ્ઞાન-માં ડુબેલા બંધિને અવિદ્યાજ સારી લાગે છે, શું વિષ્ટાને કીટા ખાંઠની મીઠાસને પસંદ કરી શકે છે ? અગર વજ્રમુખ તત્વાર્થને બંધી શકે છે, તો બહેરો પુરૂષ પણ વીણા તથા દહાં ઉચ્ચારેલા શબ્દોને સાંભળી શકે છે. અગર અર્થ ત વિષયા-સજ્જ પુરૂષ બ્રહ્મના સ્વરૂપનો સાક્ષાત્કાર કરી શકે છે તો કાચનાનું બરડું પણ પોતાની માતાના હાથના રસનો સ્વાદ લઈ શકે છે. અવિદ્યાના દર્પ આ શરીરાદિકમાં આત્મબુદ્ધિવાળા પુરૂષને તત્વની અંધ પણ મળવી દરજી છે. લસણ ખાનારા ભીલ કપૂરની મુગંધને શું ગંહત્વ આપવાના હતા ?

આધ્યાત્મિક અધિદેવિક અને આધિભૌતિક રૂપ તાપત્રથીના સંતાપથી તપી રહેલા પુરૂષને તત્વેન્જાનું સુખ કયાંથી ?

હે ચિત્તવૃત્તિ ! તું વિષય સંબંધી આશ્રહને પરિત્યાગ કરીને પ્રિય—ચિત્—સુખ રૂપ ધરવરનું આલિંગન કર. જ્યાં જ્યાં તને આનંદ પ્રતીત થાય છે તે સર્વ આત્માનો છે. વિષયોમાં મુગ્ધ નથી, એના પ્રેમીએ રહતા રહે છે. ક્ષીર સાગરની માછલી જેમ ક્ષીર સાગરના જલથી તૃપ્ત થતી નથી તેવી જ રીતે આત્માનંદ અનુભવ કર્યા પછી વિષય મુગ્ધ તુચ્છ અને હેય પ્રતિત થાય છે.

હે ચિત્તવૃત્તિ ! તું સમજ કે વાન્છિત વિષયોની પ્રાપ્તિથી સ્નાન્ત થયેલા મનમાં આત્માના મુખશિનો જે આભાસ પડે છે, તે ભે કે આત્મ મુગ્ધા છે, છતાં પણ અજ્ઞાનથી લોક તેને વિષયજન્ય માની લે છે; વસ્તુતઃ તે મુગ્ધ વિષયજન્ય નથી અગર ભે કોઈ અલ્પ મુગ્ધ તણને કોઈ મહા મુગ્ધ પ્રાપ્ત કરવાની તારી ઇચ્છા હોય અને ભે તું વિનાશ રહિત મુગ્ધને ગ્રાહનારી હોય તો દેહત્રયરૂપ ઉપા-ધિનો નાશ કરીને અક્ષય આત્મ મુગ્ધનો સ્વિકાર કર. જેવી રીતે પશુ ગોળા છોડીને ઝુંસાનેજ આતુરતા-પૂર્વક ચાહે છે તેવીજ રીતે તું આત્મમુગ્ધ લણને વિષયોને શા માટે ચાહે છે ? વિષય મુગ્ધની નિરસતા અને અનિલતા ભેઈને પણ બેઠે રી તેનેજ ચાહે છે તે નર નહી પણ ખર છે. જેમ ઉંટ ગાળાનાં સુંદર કુમળાં મધુર અને નવાં પાન છોડી દઈને પીણું, લીમટો, દરીર, શમી, અને કીકર આદિ શંકાવાળાં તથા દહાં પાનનીજ ઇચ્છા કરે છે, તેવીજ રીતે તું વિષયોની ઇચ્છાથી આત્માને લણ રહી છે. અને કુતરાની માફક વિષયોના દુકડા પાછળ ભટકે છે.

હે ચિત્તરત્ને ! વધારે શું કહીએ, આત્માન દયો પરિપૂર્ણ થઈને તું શાન્તિ પ્રાપ્ત કર વિષય નિયમ પૂર્વક સુખ આપનારા નથી, કેમકે પ્રાપ્તિ—કે અપ્રાપ્તિમાં એ ધણુ કરીને દુઃખજ આપે છે, વળી એ ટકાઉ પણ નથી અને એકરસ રહેતા પણ નથી અને આપાતત આજ જેને કંઈક સમયને માટે દસાવે છે, તેનેજ કંઈક સમય પછી સદાને માટે રાગે છે. વિષયની આશામા નષ્ટ થનારા જામર, દરિદ્ર દાથી પતમ અને માછલીને શું તું નથી ભેટી ? બ્યારે એ એક એક વિષયની આશામા નષ્ટ થનાર હોય છે તો પછી તે પ્રમાણીને સલા નાશ થવામા શું બાકી રહે કે જે પાચેય વિષયોને પચિય ઇન્દ્રિયો દ્વારા જોખવે છે કેમકેના શબ્દ જેવો અમરને શબ્દજ સુખનું કારણ હોય તો વિષવાસના લોહિા મધિાના ભુ કવાને શબ્દ સાંજી ને કેમ પ્રસન્ન થતા નથી ? સીઓના આલિંગનના જેવું અમરને સ્પર્શમાંજ સુખ હોય તો વિષથી જન બગતા અગારાના સ્પર્શને કેમ નથી પસંદ કરતા ? અમરને સુવર્ણના રૂપ જેવું રૂપજ સુખ આપનારું હોય તો વિષયલ પટ પ્રત્યુષો કાચડાના રૂપ હરર કેમ નથી રાજી થઈ જતા ? અમરને કેરીના રસનું સેવન કરવાથી થતો આનંદ

ને રસમાજ હોય તો છાદવરણા નો રસ કેમ નથી સેવન કરવામા આવતો ? સુગંધિત ધુપના ધુપડા જેવી મન્દ મન્દ વાયુથી બ્યાપેલી પુષ્પ અદિની અથ ભે આનંદની આપનારી હોય તો ચિત્તાને ધુમાડો પણ પ્રીતીકર હોવો જોઈએ ? સમજી લો, જે વિષયથી સુખ થાય છે તેનાથીજ દુઃખ પણ થાય છે જેવી રીતે નહિ પચેલી મધુર ખીર રોગ અને મૃત્યુનું કારણ બને છે

હે ચિત્તરત્ને ! જોટલા માટે સસાર દુઃખની દવા જે અનન્ત તથા સર્વોત્તમ આત્મ સુખ છે તેને પ્રાપ્ત કરીને તું સ્વસ્થ થઈ જા સસારનો ત્યાગ અને કમીને છોડવા એ તો વિષયોના આક્રમણથી બચવાને માટે પથમ આવશ્યક છે અને જિજ્ઞાસુર્થ પેતાના અભિમાનનો ત્યાગ કરીને થયા સુખ આવશ્યકતાઓ જોઈ પ્રવા માટે છે એમ તો રાજ્ય અને હકમીના બહાર મિજનીને પણ કોઇને સતોષ થતો નથી, અને સ્ત્રીખ માનવા છતાં પણ તે થઈ જાય છે વૈદિક કર્મકાન્ડ તો ઘણી પહેલાંની વાત થઈ જાય છે કમીવાસનામા સતોષ નથી, સતોષ નથી તો શાન્તિ નથી અને “પછી તો કાઈજ નથી”



શ્રી મુકુંદરાજકૃત પરમામૃત

(સં. — વામનરાવ પ્રા. ૫૨૯, બી. એ. એલ. એલ. બી. (યોગ્ય) એલ. સી. પી. (હંડન)

એમ. આર. એસ. ટી. (હંડન) સોલોસીટર.)

[અનુસંધાન અર્થકિ પૃ. ૬૨૬ થી આગળ]

પ્રકરણ ૯મું.

અભ્યાસ યોગ.

કથું ગતાધ્યાયમાં જે,
સ્વરૂપ નિર્ધારી તે લેજે;
પછી એવો અભ્યાસ કરજે,
નિત્ય નિયમે. ૧.

લોહ્યએ સ્થાન એકાંત,
ત્યાં ન થાયે મન ભ્રાંત;
કરી સકળ વૃત્તિ શાંત,
એસવું ત્યાં. ૨.

કરીને વિષયની નિવૃત્તિ,
ચિત્તની પ્રત્યગાવૃત્તિ;
દશ્યમાત્ર પર શબ્દો વિરક્તિ,
ત્યાગ બુદ્ધિ. ૩.

આસાને સ્વસ્થ બેસજે,
અંતર માંહી પ્રવેશજે;
મનોવૃત્તિ એકત્ર કરજે,
ઇન્દ્રિય ચોટી કરીને. ૪.

આલમ્બાન સૂણવું ઇષ્ટજે,
ભાવ અંતરનો ધરજે;

અભ્યાસ સર્વનો કરજે,
ગગન ભેળે. ૫.

સ્થૂળ ઇન્દ્રિયામાંથી,
કહાડવું મન શુદ્ધિથી;
અંતરાકાશે કળાથી,
સ્થિર કરવું. ૬.

બાહ્ય સ્વભાવની જે જે વૃત્તિ,
અંદર બેંચે થાય નિવૃત્તિ;
સ્થિર થાશે સર્વ વૃત્તિ,
અભ્યાસથી આધોઆપ. ૭.

અથવા જતિ વિહરવા દેવી,
ના પૂઠ તેની પકડવી;
અંતરમુખ દૃષ્ટિ કરવી,
સ્થાપવી પછી સ્વસ્વરૂપ. ૮.

પકડે મન વિષય જે જે,
સર્વ વિવેકે વિદારજે;
તો તે અંતરે સ્થિર જાણજે,
કલ્પના—મુખ. ૯.

ત્યાં હૃદય—આકાશે,
હુંપણ જીવને સ્ફુરશે;
દેવળ વિવેકથી જે ભેજે,
તેને માત્ર. ૧૦.

૧=અંતર મુખ જતિ.

૨=પદોરે દૃષ્ટિ ચોટી—દૃષ્ટિને પદોરે ડેખરેખ.

નિવમન.

૧૦૨૨૨૨૨૨૨.

૧=કોહળે.

ત્યારે તે સ્વયંભૂ રહુને,
તે ફરી સમાયે તેમાં ખરે;
જીવદશા ત્યારે ભાષ્ય રે,
નારા પામે. ૧૧.

હંગમે નહી રોકાયોને,
સિદ્ધિત્ય પ્રાપ્ત નહી માનજો;
(તેમ) આ સ્થિતિમાં સ્થિર થાયજો,
જીવ બ્રહ્મ ના થાય શું. ૧૨.

આંબરે પાછા તેથી ફરો,
અભ્યાસ એ રીતે કરો;
તો કલ્પનાનો ભારો,
થાય સમરસ ^{અવ્યવંતરી.} ૧૩.

છાડીને રૂઝૂળ ગતિ,
રહે એવી અતર સ્થિતિ;
તે કાજે અભ્યાસ પ્રવૃત્તિ,
પડે કરવી. ૧૪.

ત્યાં જો જો દશ્ય રહુને,
તે છાડી પાછા ફરે;
જ્ઞાન સ્વરૂપ નિર્ધારિ,
બને થાતે. ૧૫.

દષ્ટિ, દશ્ય છાડ્યાં પછી,
જો ઉલટી ફરે પાછી;
તો દશ્ય આકાર પછી,
હરે કેવો? ૧૬.

સાકારાદિ સર્વે,
શૂન્ય બને સ્વભાવે;
ત્યાં જોવું ભાવે,
આત્મ સ્વરૂપ. ૧૭.
જેમ પ્રવય નીર પૂરે,
આકાર એકે ના ઉરે;
અત કરણાદિ વ્યવહાર નારે,
એક ધણ. ૧૮.

કૂર્મ ^{અથ} અવ્યવ આકુચન કરે,
જેથી હાથ પગ શિર ખરે;
થાતે એકલો પછી ઉરે,
અખલિત. ૧૯.

જાણુ પ્રવેશે એ રીતે,
અંતરમાં જો નિરાતે;
તો ત્યાં એકલી એક થાતે,
અચિત ઉરશે. ૨૦.

થાતે એક એકલો રૂપથી,
અન્ય ત્યાં નથી થેજી;
જ્ઞાન માત્રે ભયો પૂરો,
આત્મારામ. ૨૧.

હતિ શ્રી અભ્યાસ યોગો નામ નવમ
પ્રકરણ સુશ્લુષ્મ-

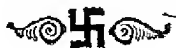
૧=અંતરમાં એટલે સ્વરૂપમાં સમરસ એટલે એક

૨=રહે નહી

૩=શયમે જેમ થાતાના હાથ પગ તેમજ માથુ

કરીમાં જેથી લઈ એકલોજ રહે છે

૧=અંતરમાં એટલે સ્વરૂપમાં સમરસ એટલે એક
૨=સ્વરૂપમય થાય
૩=થીસ રહે



કૃષ્ણં વન્દે જગદગુરમ્

(લેન્—શ્રી સુદર્શન)

આનંદકંઠ પૂર્ણતમ પુરુષોત્તમ ભગવાન શ્રી કૃષ્ણના જેવો ધર્મમયાદા રક્ષક આજ સુધીમાં બીજો કોણ થયો નથી, એમ કહેવામાં જરાય અતિશયોક્તિ થતી નથી. તેઓ સાક્ષાત્ પરમાત્માના પૂર્ણ રૂપથી લોકોના ઉદ્ધાર માટે અને સંગ્રહને માટે પ્રગટ થયા હતા. તેમના આદર્શ લીલા ચરિત્રો વાંચવાથી, સાંભળવાથી અને સ્મરણ કરવાથી દૃઢયમા પવિત્ર ભાવનાઓની લહેરો ઉઠવા લાગે છે, મન જગૃત અવસ્થામાં રહેતું હોવા છતાં પણ સમાધિ અવસ્થાના સુખ સાગરમાં નિમગ્ન થઈ જાય છે. તેમના અવતારનાં આ બે પ્રયોજન છે—એક તો લોકોનો ઉદ્ધાર અને બીજો લોકસંગ્રહ, જેમને ગીતાના શબ્દોમાં અધર્મ નિવૃત્તિપૂર્વક ધર્મ સંસ્થાપન અને તે માર્ગ ઉપર દુષ્ટતાના વિનાશ-પૂર્વક સાધુઓનું પરિપાલન કહી શકાય છે. પણ એની સાથેજ, પોતાનાં આનંદમય ચરિત્રો દ્વારા તૃપ્ત લોકોને તૃપ્ત કરવા એ પણ તેમના અવતારનું મુખ્ય પ્રયોજન હતું.

એજ કારણ છે કે શ્રી ભગવાનનાં બાળલીલાઓ સોથી વધારે દૃઢયથી યદને માધુર્યની સીમા ઓળંગી ગઈ. તેથીજ જગતની સર્વશ્રેષ્ઠ શક્તિ-શાળી વિભૂતિયો તેમના તરફ ખેંચાઈ આવી અને તેમના પ્રેમમાં વિશેર થઇને આત્મવિસ્મૃત થઈ ગઈ. એવાઓમાં સ્વર્ગીય દેવતાનંદ અને તે પછી પૂર્ણકામ અને મહાતપસ્વી ગર્ગાચાર્યો સોથી પ્રથમ આગળ આવ્યા. શ્રી ભગવાનના જન્મના ચોથા દિનસો પછી જન્મે પોતાની તપસ્યા નથા

જ્ઞાનને સફલ કરવા માટે ગર્ગ, રૂપિ નામકરણ કરવાને બાદને મજામાં આવ્યા. નંદરાયણે સ્વાગત સત્કાર તથા માન સન્માનની, સાથે તેમને આવકાર્યા, તેઓ બાળુતા હતા કે એ ઘણાજ આચારવાન કમનિષ્ઠ મહાત્મા છે એટલે તેમને પૂર્ણપાઠ અને રસોઈ, ઇત્યાદિનો પ્રબંધ ખાસ એકાન્ત સ્થાનમાં કરી દેવામાં આવ્યો. એક તરફ ગર્ગણ નિયમાનુસાર વૈશ્વદેવની વિધિથી નૈવેદ્ય અર્પણ કરવા માટે યજ્ઞ પુરુષનું ધ્યાન કરવા લાગ્યા તો શ્રી ભગવાન, સાક્ષાત્ રૂપથી પાસેનાજ ઓરડામાં બિરાજ રહ્યા હતા, ધીમે ધીમે ધુટણીએ ચાલી આવીને ગર્ગણની યાત્રીમાંનો ભોગ આરોગવા લાગ્યા. રૂપિએ આજો ઉઘાડી તો મહા શુભવસ્તુમાં પડી ગયા કે એક અસંસ્કૃત બાળકે ચોકો અભ ઠાવ્યો. ઝેર ! નંદરાયણીએ ફરીથી બધી સામગ્રી તૈયાર કરી આવી પણ પાછા તેના પણ તેજ હાલ થયા. આ કમ કેટલીએ વાર ચાલ્યો, ત્યારે કંઈક ગર્ગણને ભાન થયું કે જેની પાછળ અચે જીવન વિલાંબ્ય છે તેજ તો એ છે. અસ્તુ ; કેટલાક દિવસો પછી જૂતભાવન ચંકરણ કારીપુરીથી મજામાં પહોંચ્યા અને નંદપોર પાસે શૃંગીનાદ બન્યો. નંદરાયણીજ બારણે આવ્યાં અને અવધુત બાવાને પૂછ્યું કે આપના ખરખરમાં શું બિદ્યા આપવામાં આવે ? બાવાએ કહ્યું કે માત્ર તમારા લાતની દર્શન બિદ્યાનો સવાલ છે. પરંતુ નંદરાયણીએ સાપથી લપેટાયતા ચોગીને દાનું કે આપનું ખરખર મોતીથી ભરી આપું, પણ મારા લાતને નહિ દેખાડું. દહાય

નજર લાગી જાય તો હવે જોખાનાય પાછા
હયો. ત્યાં તો લાલને જોયેની ચઢી, ખરેખર જાણે
કે નજરજ લાગી મળે હવે યથોક્ત સમજાય
કે પેના ખાવાએ કંઈક દુરકો હયો છે, બાગડો
પાસ તેમને જોળી કાઢીને જાણવી મળ્યાં અને
ખાવાજીને જાતાજ લાલા ખડખડાટ કરીને હંકી
પડ્યા ખેર ! જોનાજ પ્રકારની જોમની મધુરી
મુકામ ઉપર આખી દુનિયા ત્યારથી જ ચોતાને
જોણાજ કરતી ચાલી આવે છે, એટલે મુખી કે
કંઈક તકેથી વજથી પણ કઠોર લુહિવાળા મહાન
વેદાન્તી મધુમુદન રામી પણ વજમા જઈને એવું
કહેતા થઈ ગયા કે—

અદ્વૈતકીર્તી પવિત્રૈરવસ્થા

સ્વારાયસિદ્ધાસત્ત્વદીપ્તા ।

કોટને જેનાપિ વય દટેન

દાસીદત્તા ગોપવૃષ્ટિજેત ॥

“અદિતી-પ્રકાશા લીન રહેનારાઓમાં પણ
સર્વજ્ઞ મને ગ્વાલજોની વચ્ચે રહેનારા એક
વાદાન જોકરાએ બહારકોર ચોતાને કાસ બનાવી
લીવેલ” આ પ્રકારે શક્તિયોગનો પ્રચાર પણ આ
અવારનું મુખ્ય પ્રયોજન હતું ને વાસ્તવ આદિ
ત્યોની જાવનાથી સારી પેઠે થઈ શકે છે ને
બાગડ પેતાની સતુરાઇથી પાથર જેવા કઠોર
દંડવવાળાઓને પણ ગીમજાવીને પાણી પાણી કરી
માથે છે એવા આડંબર વરસના છુકુમાર ગાંધક
જર જોગીમાળી જોગીઓનું રાણ સર્જાવું એ કાંઈ
મદુ આશ્ચર્યજનક નથી તેઓ તેને પુત્ર અને જન્યુ
જેવેજ સમજતી રહી, તે સિવાય આગળ જતા
જે વજલીલાઓને આશોષ શ્રી ભગવાન ઉપર
કરવામાં આવે છે તે એક ખાસ ઉપાસના વિધિને
મટેજ છે. તે ઉપાસના વિધિના અધિકારી સર્વ

સાધારણ નથી, પરંતુ શક્તિયોગની અરમાવસ્થાએ
પહોંચેલા એકાન્તવાસી અમલાત્મા સત્તિરોપજ છે

અનુભવી તસિકોએ પણ શ્રી રાધા તત્વનો
સ્પષ્ટ ઉલ્લેખ શ્રીમદ્ ભગવતમાં નહિ હોવાનું
એજ એક કારણ માન્યું છે એટલા માટે શ્રી ભગ
વાનની રાસ આદિની જાવનાના અધિકારી રસની
ઉપાસના કરનારા પરમહંસજ હોઈ શકે છે, અન્ય
સચારી લોકો નહીં. એમ તો શ્રી ભગવાનજ
દિવ્યલીલાઓ અનેક પ્રકારની અકનિય આદી
રહી છે, તેમને માટે કોઈ ખાસ સમયનું બંધન
નથી તેમાથીજ જાનિક લોક કોઈ એકાદ લીલાને
ઉપાસના માટે યોગ્ય સમજીને ચિત્તિત કરી લે
છે પણ લોકસમુદાય જેમ માનવુંજ પડશે કે
શ્રી ભગવાનનું આશુ ચરિત શુદ્ધ આત્મિક તથા
આદર્શભૂત હતું જો એમ ન જાનવામાં આવે
તો શ્રી ભગવાનની અનેક ગીતામાં વર્ણવાયલી
હિતિયો અર્થ વગરની બની જશે તેઓ તો
અર્જુનને કહે છે કે હું તો પૂર્ણકામ છું, માત્ર
લોકોમાં આદર્શ સ્થાપન કરવાને માટેજ મારા સર્વ
કામ સર્જવયા છે, હું જેવું કરીશ તેમજ અનુસરણ
બીજા લોકો કરશે એટલા માટે હું પૂર્વ પર પસંદ
વલમાત્ર પણ ફેરફાર કરું તો અનેક પ્રકારનો સક
રતા દોષ મને લાગશે (૩ ર૧) એટલે પ્રતિ
માર્ગના પ્રયેક પવિકને શ્રી ભગવાનનું નીચે લખેલું
ચરિત સદા અનુસરણ કરવા યોગ્ય છે

જ્યારે તેમણે સજમા બાળમુલક સર્વ લીલાઓ
કરી લીધી, ત્યારજ અગીયાર વર્ષની ઉંમરમાજ
તેમણે સજનો ત્યાગ કર્યો અને તાદિપતિ મુનિના
આશ્રમમાં જઈને વિદ્યાભ્યાસ સમાપ્ત કર્યું આત્મ
જ્યારે તેઓ પર્વ સ્વસ્થાપનના પ્રસંગમાં કારકમાં
રહેવા લાગ્યા ત્યારે રાજ પ્રાન કાળમાં રાજ કરે)

જાતમાં જતા સુધીમાં શાસ્ત્રીય મર્યાદાના પાલન માટે નિમ્ન પ્રકારે કાર્ય કરતા હતા—

બ્રાહ્મો મુદ્ધર્તે ઉત્થાય વાર્યુપસ્પૃશ્ય સાધવઃ ।

દૃધ્યૌ પ્રસન્નકરણં આત્માનં તમસઃ પરમ્ ॥

શ્રી ભગવાન બ્રાહ્મમુદ્ધર્તમાં ઉઠીને પવિત્ર જલથી હાથ મોં ધોઈને પ્રસન્ન હૃદયથી માયાતીત આત્મ સ્વરૂપનું ચિંતન કરતા હતા.

અથાશ્રુતોઽન્મસ્યનલે યથાવિધિ
ક્રિયાફલાર્પં પરિધાય વાસસી ।

ચક્રાર સંવ્યોપગમાદિસત્તમો
હૃતાનલો વ્રદા જજાપ વાગ્યતઃ ॥

—મા૦ ૧૦૭

પછી તેઓ વિધિપૂર્વક નિમંલ જળમાં ડુબકી મારીને સ્નાન કરતા, ધોતી ફપટ્ટો પહેરીને શ્વેત ક્ષિત સંધ્યા, અગ્નિહોત્ર, કરતા અને તે પછી ગાયત્રી આદિને જપ કરતા હતા. આ સર્વ સૂર્યોદયથી પહેલાંજ સમાપ્ત થઈ જતું હતું, તે પછી સર્વાધિ, તપ્તપ્થ, વૃદ્ધ જનોને નમસ્કાર અને બ્રાહ્મણોનું પૂજન થતું હતું, સુંદર અલંકારથી સજ્જીત ગાયોનું ઘન કરતા હતા, તે પછી અનેક માંગલિક કાર્યો કરીને તેઓ હરભારમાં જતા હતા. શ્રી ભગવાને આ પ્રમાણેનાં આચરણ ચોતે કરીને લોકોની સામે પૂજા મર્યાદાનો માર્ગ સ્થાપિત કર્યો છે.

એટલા માટે જગદ્ગુરુ શ્રી ભગવાનનાં આ આદર્શ પ્રમાણેજ સર્વ કોઈએ ચાલવું જોઈએ. અને જોજ દ્રષ્ટિથી તેમનાં પ્રત્યેક કાર્યની સંજતિ ભેદાદવી જોઈએ. જો કે ભગવાન શ્રી કૃષ્ણની લીલા તથા ચરિત્ર અલોકિત છે તેમનું સંપૂર્ણપણે અનુકરણ તો શું તેનું જ્ઞાન પણ થવું અશક્ય છે, પણ બાળ લીલાઓ થઈ ગયા પછી જ્યારે તે સંસ્કૃત થઈને ગુરુકુળમાં ગયા ત્યારથી લઈને તેમનાં આચરણ મનુષ્યોને તે પ્રમાણે ચાલવાને માર્ગ થયાં.

તેમને લોકસંશ્રદ્ધાઈ એ વાતની સૌથી વધારે ચિંતા હતી કે—

યદંદાચરતિ શ્રેષ્ઠસત્તત્ત્વેતરો જનઃ ।

સ યત્પમાણં કુરુતે લોકસત્તદનુવર્તતે ॥

—ગી૦ ૩૧૨

શ્રેષ્ઠ પુરુષોનું જેવું ચાલચલણ હોય છે, સાધારણ લોકો તેનુંજ અનુકરણ કરે છે. (એટલા માટે) મોટાઓએ પોતાનાં આચરણ પ્રામાણિક રાખવાં પડે છે. કે જેથી લોક તેનું અનુસરણ કરે. જગતના બધાજ પદાર્થોની વિશિષ્ટતા એકઠી થઈ જાય તો તે શ્રી ભગવાનની સામે સમુદ્રમાં એક ટીપા જેટલી થણ નહીં હશે. જગતની સમગ્ર શક્તિ, સમગ્ર ધર્મ, સમગ્ર યથા, સમગ્ર લક્ષ્મી અને સમગ્ર જ્ઞાન વૈરાગ્ય ભગવાન શ્રી કૃષ્ણમાંજ નિવાસ કરે છે, એમની પૂર્ણતા ત્યાંથીજ થાય છે, એટલા માટે—

હુતારાધ્યં સમારાધ્ય વિષ્ણું સર્વેશ્વરેશ્વરમ્ ।

યો વૃણીતે મતોમાદમસત્તાત્ હુમનોપયસૌ ॥

ધર્મીજ મુરકેલીથી પ્રસન્ન થનારા, સર્વ ઈશ્વરોના પશુ ઈશ્વર ભગવાન વિષ્ણુની આરાધના કરતા રહીને પણ જે પ્રાણી વિષય ભોજોની કંપક પણ ચાહના રાજે છે. તે ધર્મીજ હુણ્ડિ છે, કેમકે ભગવાનની સમગ્ર વિષયોની સત્તાનો અંશ પણ રહેતો નથી. આજ પણ તે પ્રભુ જ્ઞાન વૈરાગ્ય આદિથી સચુત્ત્વલ લોકાભિરામ તથા ધારણા ધ્યાનને માટે સર્વ પ્રકારે ઉપયુક્ત પોતાની કિંચ છળીની સ્મૃતિ ગીતા, ભાગવત આદિ દ્વારા સર્વની સામે પ્રગટ કરી રહ્યા છે. તેનું સ્મરણ તથા ચિંતન કરીને પોતાનું જીવન સફળ કરવું જોઈએ, એજ શ્રી કૃષ્ણનો આદેશ છે, એટલે અમારે જો આદેશ તથા તે આદેશના આપનારા પ્રતિ માથું નમાવી દેવું જોઈએ.

ત્યાગ

(ભેખ — સિદ્ધરાય ખાત્રીભાઈ દેસાઈ)

સાગી કહે છે કે હું વેરાગીજ છું બ્રમવા
લુગડા પહેરવાથી નહિ, ઘીસા લઈ અસુક સ પ્રદાયને
વળગેલો એવો નહિ, કે નહિ રૂકત થોડા વખતથી
થયેલો, પણ અનાદિ કાલનો, ત્યારથી જન્મથી
ત્યારનોજ સિરાગીજ છું એવો સિરાગ ઉદય કેમ
થયો તેનું કારણ કહે છે કે સમ અથવા સર્વભાંરથી
રહેનાર પરબ્રહ્મ તેમાંજ લીનતા થઈ છે, ને તે
અચલ, કદાપિ દળે નહિ તેવી થઈ છે એટલે બીજી
કોઈ પણ વાત મિથ્યા છે—સર્વ વાત તેનેજ આધી
ન છે ને તેમા હું સ્થીર છું એટલે બીજી વાતનો
વિરાગ સ્વાભાવિકજ છે મૂલ પ્રભુ સ્વરૂપ કથાથી
રાગ પામીનું છે નહિ, સર્વદા સિરાગીજ છે

મુળથી સિરાગી હોવાનું કારણ એ છે કે જન્મ
તમા જે વખતે આવડું થયું તે વખતે મારી સાથે
આ શરીર વિના કોઈ હતું નહિ, તેમ જવામાં પણ
તેનુંજ થવાનું છે તો મારું મારું માની લીધેલું તો
કોઈ પણ મારું નથી, એ સિદ્ધ વાત છે, માટેજ
જન્મ મરણની ચચોનો ભયો માયાનો વ્યવહાર
મિથ્યા છે, રચનવત છે, ત્રિકાલમા સ્થીર રહે તેવો
નિત્ય નથી માયાનું સ્વરૂપ કહેતા શ્રીકૃષ્ણ ભગ
વાન કહે છે કે અયક્ષ્ણીનિ મૂતાનિ વ્યક્તમધ્યાનિ
મારત । અવ્યક્તનિવન્નાયત તત્ર વા પરિવ્રજતા ॥
માયા કેવલ વ્યક્ત મધ્યજ માની છે, કેમ કે જૂત
અને અસ્થિમા ન છર્ના કેવલ વત્માનમાંજ તેની
સત્તા મનાઈ છે આમ માયા નિત્ય નથી, ને જ્ઞાની
તો સિરજ્જા છે ત્યારે તેને પૂછતું બેઠએ કે તમે
કદાપિ કદાપિ અલીને માયા પર પ્રેમ કરી જાઓ,
તે શાથી ? એનો સ્વભાવ તો નિત્ય નથી, એ તો
ઘડીમા તુટી જાય છે અને ઘડીમા સાજી થાય છે,
આવી મિથ્યા વાત પર મમતા કેમ કરાશે ? તમ કે
નિર્લેપ સ્વરૂપજ્યોગીથી સિરજા રહે

હુનિયામાં પ્રેમ, અર્થાત્ આ, તે, એવો અકિત
નિષ પ્રેમ માણસને દેરાન કરે છે, જેવો પોતાના

સ્વાર્થ પર પ્રેમ હોય છે તેવો બીજા પર નથી
હોતો, પણ તેથી તરતજ ઉતરતો પતિન પર હોય
છે પણ વિચારવાન પુરૂષો બાંહે છે કે એ પણ
કેવલ સ્વાર્થની સગી છે, એનેજ માટે એની પ્રભાને
માટે, કાગો ધોળા કરવા પડે છે, એમ એ તો માણ
સની પછવાડે કદરૂપ થઈ પડી છે, મહા અનર્થ
કરાવનાર ભૂતની પેઠે વળગી છે આમ વિચાર
મરતા કદાચ પતિનો સ્વાર્થ સમજાઈ તેના ઉપર
સિરાગ આવે, પણ જેણે આપણને જન્મ આપેલો
અને જેના હાથમાં ઉછરેલા તેના ઉપરનો રહેલ કેમ
તૂટે ? એમા પણ વિચાર તો સ્પષ્ટજ છે સર્વ સ્વાર્થનું
સંગુ છે કમાઈ લાવે તો દીકરો નહિ તો પથરો
એ લોક પ્રસિદ્ધ છે, તો તે સ બધામા પણ લપટાર્થ
રહેવામા માલ નથી અહો કેવલ કેવલ નિસ્વાર્થો
જણુતાં મા આપ તે પણ સ્વાર્થ સાધે ! એ ખરે
ખર આખરની છેલ્લીજ ઠોકર છે । પણ તેવી ઠોકર
ખાધા વિના ખરો સિરાગ થતો નથી

લખવાનું તાત્પર્ય એમ નથી કે પતિ, મા,
બાપ, વિગેરેને તથાજને નારી જાઓ, પણ એમ છે
કે તેજ તમારા પરમ એવનું સ્થાન છે, એમ બધી
ભુલાવામા ન પડો એ પ્રધા માયાનાં બંધન છે
તેની ઉપાસનામા આસક્ત ન થાઓ, પણ ખરો
પ્રેમપૂર્ણ પુરૂષ પરબ્રહ્મા બાપો કે માણ થાય—
આત્મજનોના સ બધામાં કદી ને કદી એવો અનુ
ભવ જરૂર થયે કે જેથી મન ચીર ઈને મરી જવાય,
પણ કોઈને કહેવાય નહિ, એમ જાળના બીતર
એવું કાઝીયે કે કાઈ ગમી નહિ, આમ પ્રયત્ન અનુ
ભવ થઈ, વિચાર કરતાં માયાનો એવ નકામો
જણવાથી મન અસરાઈ રહે ને કું આચ્ય તે યોયે
પણ તેને કોણ બતાવે ? આમ જ્યાં બીતર કાઝતું
હાં યોચક કેમ લાગે, અને સારી વાત કોણ
બતાવે કે જેથી એ બીતરમાં આનંદ ઉદય પામે ?
મા બાપ, સમા સ બધીથી તો ખરો, યોયેલો

ઉપાય મળવાનો નહિ કેમકે એ તો ધૂળ ઊપર લીપણ છે, એમના પરના સ્નેહથી ખરો પ્રેમભાવ સમજાવાનો નહિ. માટે જે જે લોક એવી વાતોમાં લીન થયા છે તે કાચી બુદ્ધિના; પામર પ્રાણી છે એમ નક્કો સમજીએ.

માતા પિતાદિકમાં કદાપિ સ્નેહ ભલે ન લાગે પણ પોતે પસંદ કરી સમાનશીલ વ્યસનવાળો ખરો પ્રેમી મિત્ર કયો હોય તેનાથી કેમ છૂટા થવાય ? છૂટા થવા ન થવાની વાત નથી, પણ તેજ તમારો ઇશ્વર એમ સમજવામાં બલ છે કેમકે તે શુદ્ધ બ્રહ્મમય, પ્રેમમય હોય તો તો બુદ્ધિ વાત, પણ તેમ નથી, તે પણ માયામયજ છે. તેઓ પણ માયાના સંગીજ છે, પોતાની વાત પર રોકાયલાજ છે, હુંપદ ત્યજતા નથી, તન્મય થતા નથી, જે 'ત્રવંદા આ માઈ' આ મારા મિત્રનું એમ માની બુદ્ધિને બુદ્ધા રહી સ્વાર્થ બુદ્ધિ બતાવે છે, ને સ્વાર્થ પરાયણ હોય છે. વળી આવા સ્વાર્થ ઉપરાંત એવા અહંપદ યુક્ત હોય છે કે આપણપનમાં જે ખૂંડે હોય તે સમજતા નથી તેથી આપણે તો આપણા મનમાંજ અટવાવું પડે છે, આટલુંજ નહિ પણ પોતેજ ડાહ્યા છે એમ સમજી આપણને મૂળ પક્ષ જનાવવા ચૂકતા નથી. આવા કેવલ ભેદભાવ અને સ્વાર્થ બુદ્ધિવાળા તે મિત્ર કેમ ગણાય ? એમાં પણ આસક્તિ હોવી મિથ્યા છે.

બધાનો દેહિક ત્યાગ કરવાની જરૂર નથી. પરંતુ ત્યાગ કરવો એવી યુક્તિઓ બધા બતાવે છે ત્યારે સત્ય શું ? સત્ય એટલુંજ કે પ્રેમ જો કરવો હોય તો પરમાત્મા સાથે કરો, અનિલ વસ્તુઓ સાથે ને મધિક પદાર્થો સાથે ન કરો. એની પ્રક્રિયા એ છે કે યાવદ્ સેય પર સમાન પ્રેમભાવ માનો, સર્વને પોતાનાં જાણે ને એ સર્વાધાર ઇશ્વર પર આત્મા સમ પર પ્રેમ રાખે. વેદ પુરાણ વિગેરે શાસ્ત્રોનો તેમ બુદ્ધા બુદ્ધા મહાત્મા અને આચાર્યોનો એજ વાર્તાવિક અનુવાવ છે. ખરો આનંદ માગઃ એજ તેમણે શોધ્યો છે. આપણે પણ તેમજ કરવું જોઈએ ને તેમ કરતાં કદાપિ માયાના છત્ર ખોદું સાઈ કહે,

શીતિ નિદા ગમે તે કરે, તો તેની લેથ, પણ દરકાર ન કરો, કર્તવ્યથી ચૂકવું નહિ, પણ એમાંજ આસક્તિ ન થવું. કેમકે જે જ્ઞાની છે તે કર્મણ્ય-મિત્રવૃત્તોડપિ નૈવ કિંચિત્તા રોતિ સઃ ॥

આમ કરવામાં તો ઘર વેચીને તીરથ કરવાની વાત ધંધ, માટે એ ધર્મ કામનો નહિ. ઘર સાથ-વવું અને હરિમનન કરવું એ ખરો માર્ગ છે, એમ ઘણા કહે છે એ ઠીક છે પરંતુ એ વાત ખોટી છે, કારણ કે જેને હરિઉપર ખરો પ્રેમ છે તે હરિ વિના બીજું દેખતો નથી, ને હરિ તો સર્વત્ર છે, ત્યારે આમાં ઘર ને આ હરિ એવો ભેદભાવ ક્યા રહ્યો ? સિદ્ધાંત એજ છે કે ગોક્ષ કેવલ અભેદનો અનુભવ કરવામાં છે બીજા કશામાં નથી, ધર જાણી તીર્થ કરવાની વાત પણ નથી, કેવલ ભેદનો તથા ન્યૂના-ધિકતાનો નિષેધ છે.

ત્યારે ખરો ભક્ત, ખરો પ્રેમી, ખરો જ્ઞાની કણ ? જે અમે પ્રેમી છીએ એમ કહેતા ફરે છે તેવા રાગી લોક ખરો પ્રેમી નથી એ તો એમ કહે છે તેટલામાંજ તેમનો સ્વાર્થ જણાઈ આવે છે, અગે પ્રેમી ને બીજા નહિ, એ ભેદ બુદ્ધિજ તેમનું અજ્ઞાન જણાવે છે; પણ ખરો પ્રેમી, જ્ઞાની, તો એજ કે ને વિરાગી છે અર્થાત્ પોતાના જે પ્રેમ-સ્થાન-શ્રદ્ધા-સિવાય બીજા તમામને જાણતા સરખા પણ નથી, બધું પ્રેમ સ્થાનમય દેખે છે, માઈ તારું એ પરથી વિરાગ પામ્યા છે. ભેદ એ શબ્દ સમજતા નથી. આવનેજ વિરાગી કહેવાતા હોય તો હુનીયામાં વિરાગી ધૂઈ ફરે છે તે કેવા ? જેઓ રાગ અથવા પ્રેમ, અને વિરાગ-ત્યાગ-એ બિને એક રૂપે ઉપર બતાવ્યા પ્રમાણે નથી સમજતા તે તો હુનીયામાં બીજા માગવા માટે વેધ ધરનાર વિરાગીયો છે. ખરા વિરાગી તો પ્રેમીજ છે; કાંઈ પર પ્રેમ ન રાખતાં સર્વને ત્યજીને નાસનાર વિરાગી નથી એ તો કેવલ પેટને માટે ભમનારા છે.

આ પ્રમાણે હોવાથી સિદ્ધાંત કે નિર્વિકાર પરમાત્મા એજ પરમ પ્રેમાસ્પદ છે; તેનો પ્રેમ કરનાર અધિકારીઓને લોક પથ્થરરૂપ ગણે તો પણ ભલે એમના કહેવા ઉપર તે પ્રેમનો સંબંધ નથી.

સુખી બચન

(ને. - ૫૦ શ્રી વાસુદેવ સાક્ષી 'તૈન્ન' શુદ્ધિ દ્વેષ વેદ વિચાર)

શિષ્ય—મુદ્દા, વર્તમાન શિક્ષાનું અતિમ પરિણામ મુખ્યકારી આવે છે કે દુષ્કારી ?

શુર-પ્રિય વત્સ, આજકાલ પ્રથમના ભેષા શુરુકે નથી, જો કે આજકાલ એકથી એક વધી જાય એવી કાલેજો, યુનિવર્સિટીઓ, ખેલવામા આવી રહી છે. પરંતુ તે સાચી શિક્ષા અને કળાનું અધ્યયન કરાવનારી નથી તેમનું કામ પરિક્ષા લેવાનું છે

શિષ્ય—ધરો ભાગે માનજવાના આવે છે કે આ
નિશાથી હાલ થવો તો ઠકથૂ જ છે, અને ચારીરિત્ર
અપત્તિ નહ થઈ ગય છે શું એ વાત સાચી
છે, શરૂ ?

[illegible]

શ્રીમ-ગુરુજી, એ જરા ક્ષણાન્ત આપીને
સમજાવો.

શુદ્ધ—અકબરના અમાતાની એક વાત પ્રસિદ્ધ છે કે એકવાર બાદશાહે પોતાના આદરજીવોની જુદી

પરિણામ કરવા માટે ચાર બકરા તોવીને તેમને અપા
અને કહ્યું કે એક મહિના પછી બકરાનું વજન એટલું
એટલું જ રહેવું જોઈએ, નહીં તો સજા કરવામાં
આવશે. સાંજે તેને માટે અનેક ઉપાય કર્યા,
પરંતુ બીરબલે એક નવોજ ઉપાય વિચાર્યો. બીર
બલ દીવસે બકરાને ખુબ ખવરાવતો અને રાત્રે તેને
વાઘના પાજરા પાસે બાંધી દેતો હતો. તેથી યદુ
એમ કે બારી દીવસે નેટલું ખાચ પીછે તે બધું જ રાત્રે
વાઘના કબજે માથે ખાખ થઈ જતું હતું. આવીજ
વિગ્ન પરિસ્થિતિ આજકાલ આપણા કેશના વિદ્યા
ર્થીઓની છે, એક તરફ વિદ્યાર્થીઓ ખાખ પીને
તૈયાર થાય કે બીજી તરફ પરિણામકામી વાચ તેમના
લોહીને ચાંચી નાખે છે.

શિખ—શુભ, શુ એ પણ સત્ય છે કે અર્થ
અમારા સત્તાનોને અમારા હાથેજ ઉડા ખાડામાં
નાખી દીધા છે ?

શુર—આજ અમે જેવી માયા મરીચિકામાં
કસાએલા છીએ કે અમારી સંસ્કૃતિ, અમારી વેપ
શુભા અમારી ભક્તિ એ સર્વ કંઈને જૂઠી બેઠા
છીએ મુરલિમ રાજ્યકાળમાં અમે અમારું અસ્તિત્વ
નહોતું ગુમાવ્યું, પરંતુ ગત દોઢસો વર્ષે આ અમે
અમારું સર્વસ્વ સર્વ પ્રકારથી ગુમાવી દીધું જ્યારે
નાના પાળણેને સંસ્કૃતિમાં સાકાર્યા અને તેમણે 'એ
બી.સી.' એ અગ્રણી યાદ કર્યા ત્યારે અમે સમજ્યા
કે અમારા બાળકો પશુ નવી ભાષા શીખી રહ્યા છે,
પરંતુ કેટલાક દિવસોમાં અમે જ્યોતના ચારા ઝાતા
બંધને અને નવન સંસ્કૃતિના ઉપાસકો થઈને માતા
પિતાને યજમાનના લાગ્યા, સિન્ડુ ધર્મની તથા
વેદની નિંદા કરવા લાગ્યા અને સર્વ કંઈને જુદું
પાશવે આવડા લાગ્યા. તેના મન પ્રમાણે કાંઈ,
પાંદડું, છુન, ટેટ જ સર્વ કેવળ છે અને જો
હરવર પાસે ધર્મેશ્વરના સાધનો છે, પછી ભલે
તેઓ કોઈક મહાના સશસ્ત્ર જન્યો રહે, પરંતુ
પોતાના ધર્મને નિરૂપણી આપવી એ તેઓ

પહેલું કામ હોય છે, જે આ શિક્ષાનો જન્મ સિદ્ધ અધિકાર છે. સાથેજ ધીજી પણ કેટલાંક ખાસ ફૂલ ખીલવા માટે છે, તે કયાં છે, સાંભળો—

હજી થોડાંક દિવસ ઉપરની વાત છે, મેં એક માસિક પત્રમાં એવો લેખ વાંચ્યો કે જેથી આશ્ચર્ય થયું, એક યાંચીનો છોકરો હતો, જેને પિતાએ પોતાના ઘરનો ધંધો છોડાવીને 'એ૦ બી૦ સી૦ ડી' ભણવા મોકલ્યો. પિતાએ વિચાર્યું હતું કે ધંધાંચીના ધંધામાં હવે શું કસ રહ્યો છે? અગર બાળુ બની જશે તો સો ણસો મહિને કમાઇ લાવશે. જ્યારે તેણે કોઇ પણ રીતે મેટ્રિક પાસ કરી અને આગળ અભ્યાસ કરવાના અર્થની ભેગવાઈ ન બની ત્યારે તે કોઇ નોકરીની શોધમાં ફરવા લાગ્યો. પણ જ્યારે નોકરીનો કયાંય પતો ન લાગ્યો ત્યારે પિતા-એ કહ્યું કે ધરતું કામકાજ જ ઠીક છે. તેમાંથી જરૂર પુરવી રાજી જરૂર મળી રહેશે. ણસ, આમ-સાંભળતાંજ પુત્ર મહાશય બોલી ઉઠ્યા—હું એ કામ તો નથીજ કરવાનો, ભલેને છુએ મરી જવાય. હવે કંહો, આ નવીન સભ્યતાનું ઉદાહરણ છે કે નહીં? આજકાલ વત્તમાન શિક્ષાનું ભુત સવાર છે, સગાઈ અને વિવાહ પણ પરિક્ષાના સર્ટિફિકેટ લેખર નહોતર છે. ગ્રામીન કાળમાં જન્મપત્રીઓ ભેવાલી હતી અને હવે સર્ટિફિકેટ.

પરિક્ષકોની તો ગતિજ વિચિત્ર છે. તેઓ કંઠમાં કંઠ પરતો વિદ્યાર્થીઓને પૂછવામાંજ પોતાની વિદ્વત્તાની મહત્તા સમજે છે. પરિક્ષકોનું કર્તવ્ય તો છે વિદ્યાર્થીઓના જ્ઞાનને જાણવું, પરંતુ એ લોકો તો એજ જુએ છે કે એમને શું નથી આવડતું? ન્યાં સુધી અને ત્યાં સુધી વિદ્યાર્થી નપાસ થાય અને ચોરાસી લાખ ચેનિયોની પેટે ભટકયા કરે. આજકાલની શિક્ષાએ કેટલા કાલિ-દાસ, ભવમૃતિ, ધનન્તરિ, વ્યાસ, વાલ્મીકી, સુર-દાસ તથા તુલસીદાસ પેદા કર્યા છે? અને કેટલાની શારીરિક સંપત્તિનું મહત્વ સાંભળવામાં આવે છે? બીમની ગદા, હનુમાનનો હુકાર, અબ્દુનના ગાંઠિય આદિને ચાહે તમે પુરાણોની ગાંધો સમજો, પરંતુ જેમણે વિરવર રાણા પ્રતાપનું ણલિષ્ટ ચરિત્ર, શિવાજીની વિરતા અને પૃથ્વીરાજની ધનુવિદ્યા

વિષે સાંભળ્યું છે, તેમાંથી શું કોઈ એમ કહેશે કે તેવા વીરોએ દેશોદ્ધાર અર્થે કમર નહોતી કરી? અવધના નવાળ સંઘર્ષી વાત તો પ્રસિદ્ધ છે કે જ્યારે તે હાથીનું પુંછડું પકડી લેતા હતા ત્યારે હાથી જરાય આઘો માછો ઘઈ ચકતો નહોતો.

શિષ્ય—ગુરૂજી, એક પ્રશ્ન ધીજી છે, ભારતિ-યોની એમાં શું ત્રુટિ છે કે જેથી આ રીતે તેઓ પોતાનું અધઃપતન કરાવી રહ્યા છે?

ગુરૂ—ભારતવાસીઓમાં અનેક દોષ છે, અન્ય દેશીય મનુષ્યો વિદેશ જઈને હુજરમળા શીખી લાવીને પોતાના દેશના લોકોને શીખવાડે છે ત્યારે ભારતીય જો કંઈ શીખે પણ છે તો તેનો પ્રચાર કરતા નથી. વિદેશી પોતાના દેશના ઉદ્ધાર અર્થે પરદેશ જાય છે ત્યારે ભારતવાસી મોજ શોખ કરવા પરદેશ જાય છે. વિદેશી પરદેશ જઈને નમ્રતા શીખે છે ત્યારે ભારતીય પોતાની માન મોટાઈને ગાંસડો બાંધી લાવે છે. અન્ય દેશીય વિદેશમાં જઈને સ્વદેશને ભૂલી જતા નથી ત્યારે ભારતીય વિદાયત જઈને સ્વદેશને ઠોકરે મારવાનું યાદ કરી લાવે છે. વિદેશી પોતાના પૂર્વજોને પૂજ્યભાવથી જોતાં શીખે છે ત્યારે ભારતીય પૂર્વજોને હીન દૃષ્ટિથી જોવામાંજ ઠત'વ્ય સમજે છે. આવા અનેક દોષોથી અમેજ અમારું પતન કરી રહ્યા છીએ.

શિષ્ય—ગુરૂદેવ, શું ઉન્નત થવાનો કોઈ સરલ ઉપાય છે? અગર હોય તો તે બતાવવાની કૃપા કરો.

ગુરૂ—અમારી ઉન્નતિમાં ગાંધા નાખનારી છે માત્ર અમારી આપસની ક્રૂટ, સમાજની કુપ્રથા અને અમારી મૂર્ખતા. અમને ધીજીઓએ જોટલા પરાજીત નથી કર્યા, પરંતુ ઘણે બાજે તો અમે ભતેજ પરાજીત થયા છીએ, અમારા આપસ આપસના કણ્યા અને કુત્સિત આચાર વિચારથી.

વિદેશીઓને લાગેાની ભેટ અપ'ણ કરવામાં કોઈમે વાંધો નહી, પણ પોતાના ભૂખ્યા તરસ્યા પડોશીને સુડી અન્ન કે છુંટડો પાણી આપવામાં અમારા પ્રાણ ક'ટે આવી જાય છે. તેથી ન્યાં સુધી ભારતીયોનાં હૃદય કુસંસ્કારનાં મંદિર બનેલાં છે, ત્યાં સુધી તો અમે આત્મોન્નતિ કે આત્મોદ્ધાર કરી ચકતા નથી. અને સુખી જીવત તો પછી સ્વપ્નનીજ વાતો રહી.

પુરુષાર્થી

સાધારણ રીતે ધર્મ, અર્થ, કામ અને મોક્ષ એ ચાર પુરુષાર્થ કહેવાય છે, જેમાં અથ અને ધર્મ કામ તથા મોક્ષના સાધક હોવાથી પરંપરા પુરુષાર્થ છે. પરંતુ અર્થ અને કામ ધર્મનું સાર હોય તો જ પુરુષાર્થ કહેવાઈ શકે છે. અર્થને તે એ ગણવામાં આવે છે કે જે હોય છે તેને પુરુષાર્થ નામ ધનું નથી. જે અર્થ અને કામના પ્રત્યેક વસ્તુ છે. પરંતુ મટે કઈ કશું એ આવરણ રાખવા નથી, એવા પ્રાણીઓને પશુઓથી જુદા. મનુષ્ય ન જોઈએ બધે તેમની મનુષ્યતા તો ગીત્ર જેવા માસકાશી પક્ષીઓની જે રીત જ થવી જાય છે.

જે પુરુષ ધર્મના કામોમાં પ્રવૃત્ત છે, પરંતુ ક્યાં પૂરો વિશ્વાસ રાખીને એમ વિચારે છે કે હવે પુણ્ય આપના રાજા અર્થમાં આવરણ મળશે તે મધ્યમ કે દીન વિચારક છે.

જેઓ વિરમીને અનિત્ય મળીને તેનાથી ઉત્થાન થઈ જાય છે અને એક માર્ગ મોક્ષને પરમ પુરુષાર્થ માને છે તે ઉત્તમ કોટીના વિચારક છે.

એકાધર્મીના પશુ પક્ષી વર્ગ છે જે અસમર્થ કો પુરુષોને દેવ અને કુળપુણ્ય સમજીને તેમને કામ કરીને સન્માન આપવામાં પ્રવેશ કરે છે તે અધમ અધિકારી છે. જે સંસ્કાર માત્રો ત્યાગ કરીને કોઈ આસનમાં ન રહેતા તત્કાલ અર્થ પાછળ કરતા રહે છે તે મધ્યમ અધિકારી છે. જે તત્કાલ પ્રાપ્ત કરીને પશુ પેતાને કૃત્રિમ સમજતા નથી અને જ્યાં સુધી સાતથી ઊંચકા ઉપર આવે ન થઈ જાય ત્યાં સુધી મનોનાથ અને મનની વાસનાઓના નાશને માટે પ્રયત્ન પુરુષ કરતા રહે છે તે પરમ ઉત્તમ અધિકારી છે. પરંતુ તેના સાચા પુરુષાર્થ કહેવાને યોગ્ય છે. જે કે એવા પુરુષોથી યોગ્ય રને કોઈ રેખાઓ લાગે નથી થતો. તે પોતાના આચરણથી નિઃકામ કમ, કામ નિર્લેખ, આદિના આકર્ષણ રાખીને લોકોમાં એક ઉચ્ચ સ્થાન રચાવતા રહે છે જેનાથી અગત આપોઆપ તેના તરફ ખેંચાય છે.

—સ્વામી વિદ્યાનંદ,

શ્રીમત્ ૫૦ ૫૦ પ્ર૦ લે ૦ ગી ૦ શ્રી ૧૦૮ જગદ્ગુરુ મહામહેશ્વર સ્વામી

શ્રી વિદ્યાનંદ મહારાજનું કેાલું—

ગીતામંદિર, ગોપાલેશ્વર રોડ, વડેદરા (ગુજરાત)

पुरुषार्थी

साधारण रीति से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष ये चार पुरुषार्थ कहे जाते हैं, जिन में अर्थ और धर्म काम तथा मोक्ष के साधक होने से परंपरया पुरुषार्थ हैं। किंतु अर्थ और काम धर्मानुसार हों तभी पुरुषार्थ कहे जा सकते हैं, यदि वे भोग विलास के साधन होते हैं तब उन्हें पुरुषार्थ नाम देना अनुचित है। जो अर्थ काम के प्रलोभन में मस्त हैं, परलोक के लिए कुछ करना आवश्यक नहीं समझते; ऐसे प्राणियों को पशुओं से अलग करना कठिन है, उन की तुलना तो गिद्ध जैसे मांस की ताक में रहनेवाले पक्षियों से ही हो सकती है।

जो पुरुष धर्म के कामों में प्रवृत्त हैं, परलोक में पूरा विश्वास रखते हुए साधते हैं कि दान पुण्य आदि का फल आगे चलकर अवश्य मिलेगा वे विचारक मध्यम कोटि के हैं।

जा कि त्रिवर्ग का अनित्य जानकर उस से उपराम हो जाते हैं और एकमात्र मोक्ष को परम पुरुषार्थ मानते हैं वे उत्तम काटि के विचारवान् हैं।

मोक्षार्थी की भी तीन श्रेणियाँ हैं, जो असमर्थ स्त्री पुत्र आदि को हेय व दुःखपूर्ण समझते हुए त्यागकर सन्यास आश्रम में प्रवेश करता है वह अधम अधिकारी है। जो संसारमात्र का तजकर किसी विशेष स्थान में न रहते हुए तत्त्वज्ञानार्थ पत्रिजन करता है वह मध्यम अधिकारी है। जो तत्त्वज्ञान का प्राप्त करने पर भी अपने को कृतार्थ नहीं समझता, बल्कि तब तक सातवीं भूमिका में आरुढ़ न हो जाय तब तक मनोनाश व वासना-नाश के लिए प्रबल पुरुषार्थ करना रहता है वह परमोत्तम अधिकारी है। वास्तव में वही सच्चा पुरुषार्थी कहलाने योग्य है। यद्यपि ऐसे लोगों से संसार का कोई दृश्य लाभ नहीं होता तथापि वे अपने आचरण से निष्काम कर्म, त्याग, निर्लोभ आदि का आदर्श रखकर लोक में एक उज्जल सत्य की स्थापना करते हैं जिस से जगत् स्वतः उस ओर विचलता है।

—स्वामी विद्यानन्द

श्रीमत् प. प. ब्र. लो. गो. श्री १०८ जगद्गुरु महामण्डलेश्वर स्वामी श्री विद्यानन्दजी महाराज
का पता— गीतामन्दिर, गोवागेट रोड, बड़ौदा (गुजरात)



तात ऋषभ सौ होय मात मदालसा मानौ ।

पुत्र कपिल सौ मिलै मित्र महलादहि जानौ ॥

भ्राता विदुर दयाल योपिता द्रुपद दुलारी ।

गुरु नारद से मिलैं अकिंचन पर उपकारी ॥

भर्ता नृप अवरोप सौ राजा पृथु सौ जो मिलै ।

‘भगवत’ भवनिधि उद्धरै चिदानन्द रस में मिलै ॥

वापिक मृत्यु-
भारत में ४)
(विदेश में ६॥)

एक दि घागा नाम का, सय घट मनियाँ माल ।
फेरत कोई संन जन, सतगुरु नाम गुलाल ॥

{ खापारण प्रति
भारत में ॥
विदेश में १८)

श्री गोरखनाथ मंगलनाथ परेख द्वारा गीत-पत्र में सेत, शास्त्रीविनायक, काशी में मुद्रित और प्रकाशित ।

विषयसूची [द्वितीयभाग]

विषय

1

पृष्ठ

१—वाग्देवी की वन्दना—(कविता)—र०—महात्मा जयगौरीशंकर कीटारामजी	१०६७
२—वध और माधु—ले०—श्रीमत्परमहंस परितोषकाचार्य मद्रास लोकसभही गीताप्रकाश श्री १०८ जगद्गुरु महामहोदय स्वामी श्री विद्यानन्दजी महाराज	१०६८
३—अध्यात्मयाग—महात्मा श्री भरविन्द	१०७०
४—महापुरुष—ले०—स्वामी श्री रामानन्दजी सन्यासी दर्शनराजी व्याकरणाचार्य	१०७३
५—महादेव की मद्रा महिमा—ले०—स्वामी श्री शिवानन्दजी योगिराज वैद्य धनन्तरिगुरु	१०७८
६—श्री श्री रामकृष्णदेव की अमृतवाणी—संप्रदाय स्वामी श्री चित्रमय नन्दजी	१०८२
७—मृत्यु—ले०—ज्ञानतपस्वी श्री गीतानन्दजी हार्मी	१०८५
८—गुकार (कविता) र०—श्री छम्पीप्रसादजी निपाटी कठिचन	१०८७
९—सती और सतापी—ले०—श्रीमती विभूति देवी बम्हारिछ	१० ८
१०—गीतागोख्यनामस्ति—(ज्ञानी विरोधाद् गीतागोख्यनाई पौखे मार्ग के संदर्भ की एक श्रृंखला	१०९०
११—सुखी जीवन—ले०—पी० श्री बाबुदेव दासी तैल्ल श्रु हे के विचारद	१०९४
१२—प्रम पद—(कविता)—र०—स्वामी श्री गोविन्द हरौनी	१०९५
१३—शङ्का—ले०—श्री सुदर्शनजी	१०९६
१४—समाधान—ले०—ज्ञानतपस्वी श्री गीतानन्दजी	१०९७
चित्रमूर्ची—१—वीणादागी शारदा	मुद्रण

[शुभराती विभाग]

१—दा २वीं व ना—(म६ प जयगौरीशंकर सीत भण्ड)	१० ९
२—मेधाप्रता—(ले०—रमजुष व सारुभाष)	१०८८
३—सिद्धि—(ले०—श्रीमत् परमहंस परितोषकाचार्य मद्रास लोकसभही गीताप्रकाश श्री १०८ जगद्गुरु महामहोदय स्वामी श्री १०८ स्वामी विद्यानन्दजी महाराज)	१०९८
४—अनखु कानडीया—(ले०—श्री १०८ स्वामी विद्यानन्दजी महाराज)	११०२
५—शक्ति अन्तर्भावना अशक्ति—(ले०—श्री १०८ स्वामी विद्यानन्दजी महाराज)	११०३
६—विपश्यन् उपदेश—(ले०—स्वामी श्री १०८ स्वामी विद्यानन्दजी महाराज)	११०४
७—नाम भक्ति—(ले०—स्वामी श्री १०८ स्वामी विद्यानन्दजी महाराज)	११०५
८—कल्याण लक्ष्मी—(ले०—स्वामी श्री १०८ स्वामी विद्यानन्दजी महाराज)	१११०
९—गीता गीतानन्दजी—(ले०—स्वामी श्री १०८ स्वामी विद्यानन्दजी महाराज)	१११३
१०—नामभक्ति—(ले०—स्वामी श्री १०८ स्वामी विद्यानन्दजी महाराज)	१११५
११—आत्मभक्ति—(ले०—स्वामी श्री १०८ स्वामी विद्यानन्दजी महाराज)	१११६
१२—श्री गुरुदेवकी परमाश्रित—(ले०—स्वामी श्री १०८ स्वामी विद्यानन्दजी महाराज)	११२२
१३—अनखु कानडीया—(ले०—स्वामी श्री १०८ स्वामी विद्यानन्दजी महाराज)	११२५

ગીતાધર્મ का आगामी आठवें वर्ष का उपहार

गीतागौरवाङ्क

ગ્રાહક, અનુગ્રાહક ઓર ગ્રેમી પાઠકોં કી સેવા મેં સચિત કરતે હુએ હર્ષ હોતા હૈ કિ પ્રતિવર્ષાનુસાર હસ વાર મી આપ કી સેવા મેં નવવર્ષારમ્મ પર વિશેષાઢક સમર્પિત કિયા જાયગા । સુદ્રસામગ્રી કી દુર્લભતા ઓર કઠિનાઈયોં કે રહતે મી કાર્યાલય આપ કી સેવા મેં વતને હી મૂલ્ય પર પદલે જૈયા હી સચિત, સજિત્ત, કરીબ ૬૦૦ પૃષ્ઠોં કા વિશેષાઢક મેંટ વરના ચાહતા હૈ, હસ કો મંગવાન્ કા અનુગ્રહ હી કહના હોગા ।

યહ વિશેષાઢક ગીતા કે ઉપર સ્વામી શ્રી વિયાનન્દજી મહારાજ કે લોકપ્રિય, સુપ્રસિદ્ધ માધ્ય કા અન્તિમ તીન અધ્યાયોં પર અવશિષ્ટ અશરૂખ હોગા । સ્વામીજી કી પ્રતિપાદનશૈલી કિતની મુખ્યવસ્થિત, યુક્તિયુક્ત ઓર હૃદય-પ્રાદિષી હોતી હૈ યહ બસાના પાઠકોં કી રસજ્ઞતા કા અપમાન કરના હૈ । ગીતા જેસે ગહન ગ્રન્થ કે અન્તિમ જ્ઞાનવાણ્ઝામક પટ્ક કે કઠિન વિષય કી મી રોચક ઓર સીધે સાદે ઢગ સે સમજાના ઓર ગૂઢ તત્વોં કી કોમલ, સરસ બનાતે હુએ હૃદયગમ કરના હસ માધ્ય કી વિશેષતા હૈ, જિસ કી નમૂને કે તોર પર પૃષ્ઠ ૨૩૦ સે ૨૩૨ તક કુછ ઢાંકોં રૂચી બઢ્ઢ મેં પાઠક દેરોંગે ।

જાન્તા હૈ, ગ્રાહક મહાસમાય તિરાલી વ્યાખ્યાસુત હસ ગીતાગોરવાઢક કે પથમ ભાગ કી સ્વોકાર કર ગત વાર વિશેષાઢકોં કી ધ્યાન પૂર્ણતા કરને મેં ન ચૂકોંગે ।

—વ્યવસ્થાપક, ‘ગીતાધર્મ’ કાશી ।



ગીતાધર્મની વાર્ષિક ભેટ

ગીતાગૌરવાંક

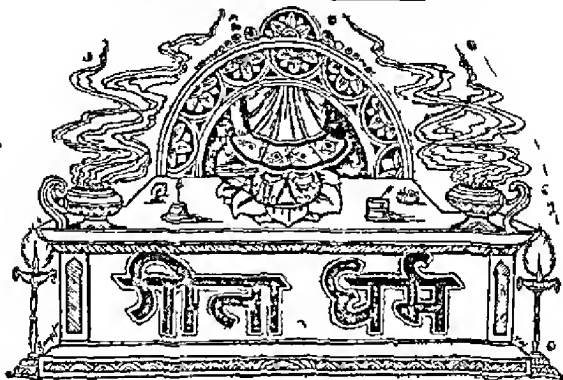
આર્ટક, અનુગ્રાહક અને ગ્રેમી પાંચકોની સેવામાં બહેર કરતા હપ્ત થાય છે કે હરસાલની માફક હુ સાથે પણ આપની સેવામાં વિશેષાંક સમર્પિત કરવામાં આવશે. સુદૃષ્ટ સામગ્રીની દુર્લભતા તથા ઊંચીએ હોવા છતાં પણ કાર્યાલય આપની સેવામાં તેટલાજ સવાજમાં પ્રથમના જેવો સચિત, સજીત્ત, લગભગ ૬૦૦ પૃષ્ઠોના વિશેષાંક ભેટ કરવા ચાહે છે; એમાં ભગવાનની કૃપાજ મુખ્ય ગણાયે.

આ વિશેષાંક ગીતા ઉપર સ્વામી શ્રી વિધાનન્દ મહારાજના લોકપ્રિય, સુપ્રસિદ્ધ માધ્યના છેલ્લા ત્રણ અધ્યાયો પર અવશિષ્ટ અંશરૂપ હશે. સ્વામીજીની પ્રતિપાદન શૈલી કેટલી મુખ્યવસ્થિત, યુક્તિયુક્ત અને દૃઢયશાલીની છે એ વિશે કંઈક કહેવું એ પાંચકોની રસજ્ઞતાનું અપમાન કરવા જેવું ગણાય ગીતા જેવા ગહન ગ્રંથના અંતિમ જ્ઞાનકાણ્ઝામક પટ્કના કંઈક વિષયને સ્વચ્છ તેમજ સરળ સ્પીધા પ્રકારથી સમજાવવા અને ગૂઢ તત્વોને કામળ, સરસ બનાવીને દૃઢયંગમ કરાવવાં એ આ ગ્રંથની વિશેષતા છે. જેનો નમુનો આ અંકના પૃષ્ઠ ૧૧૧૭ થી ૧૧૧૯ મુખીમાં પાંચકને ભેજા મળશે.

આશા છે કે આઠક મહાનુભાવ આ ગીતાગૌરવાંકના પાંચવા ભાગને સ્વિકાર કરી પાછલના ચાર વિશેષાંકોની પૂર્ણતા કરી લેવા ચૂકશે નહીં.

—વ્યવસ્થાપક, ‘ગીતાધર્મ’ કાશી.

संस्कारक—श्रीमत्परमहंस परमहंसजीकाचार्य ब्रह्मनिष्ठ लोकसमन्वित गोवास्वामि श्री १०८ जगद्गुरु
महामन्त्रजोश्वर स्वामी श्री विद्यालन्दजी महाराज



सर्वेष्वर्मान् परित्यज्य मामेक शरणं व्रज । अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

वर्ष ७ }

अक्टूबर, १९४६, काशी

{ अंक १०

कान्देकीचन्दना

जय जगदम्ब जगत सुसकारी ।
जय जगदीश्वरि मातु सरस्वती जय जगपालनहारी ।
जय जय सुसमाधि जय दुखनाशिनि स्रष्ट दह विहारी ॥
वन्दविम्बसम वदन विशये मातावर गलपारी ।
कीर्णा वाम जङ्घ में सोइव जदमुन सकि तुम्हारी ॥
श्वेत वसन कमलासन सुन्दर पावन इस सकारी ।
आ के हृदय वसहु तुम माता साक्षी बुद्धि जपारी ॥
सदा सदैव हम वै रहु जवनी जानि जयम जयकारी ।
'कवलदास' शरदन शिर पावन देहु मुमति सुविचारी ॥
—महामा जय गौरीशंकर सीतारामजी ।

बन्ध और मोक्ष

(ले०—श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य ब्रह्मनिष्ठ लोकसंग्रही गीताव्यास श्री १०८

जगद्गुरु महामण्डलेस्वर स्वामी श्री विद्यामन्दजी महाराज)

उपनिषदों में यह प्रश्न आता है कि हम कहाँ से आते हैं, कहाँ को जाते हैं और बीच की दशा में कहाँ रहते हैं। इस का उत्तर दिया जाता है कि हम शुद्ध बुद्ध नित्य मुक्तस्वरूप परमात्मा से आते हैं, बन्धन में रहते हैं और फिर मोक्ष पाकर उसी महान् आत्मा में लीन हो जाते हैं। प्राणी जिस दशा में से निकलकर आते हैं वह मोक्ष या मुक्ति की दशा है, वर्तमान अवस्था बन्धन है और फिर जिस अवस्था को पहुँचेंगे वह मोक्ष की दशा होगी, जैसा महाभारतकार कहते हैं—

यतः सर्वाणि भूतानि भवन्त्यादियुगागमे ।
यस्मिंश्च प्रलयं यान्ति पुनरेव युगत्तये ॥

सृष्टि के आरम्भ में सब प्राणी जहाँ से आते हैं और उस की समाप्ति पर फिर से जिस में लीन हो जाते हैं वही सब की परम गति है। यही बात गीता में इस प्रकार है—

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत ।
अव्यक्तनिधनान्येव..... ॥

—२१२८

हे भारत, सभी जीव सृष्टि से पहले अज्ञात विलक्षण तत्त्व में लीन रहते हैं, बीच में इस अनित्य रूप में प्रकट हो जाते हैं, पुनः प्रलय के बाद उसी

सर्वधर्मविनिर्मुक्त अव्यक्त दशा में पहुँच जाते हैं। प्राणी का कर्मबन्धन में आना ही सृष्टि और उस से छूटना ही प्रलय या मुक्ति है। इन तीनों दशाओं में आदि और अन्त तो ठीक हैं केवल बीचली दशा का झगड़ा है, इसी में वे बाँतें दिखाई देती हैं जिन्हें जीवनसंभ्रम, उद्योग या 'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः' कहल जाता है। यह बन्धन की दशा महादुःखदायी है, इस ने प्राणियों के हाथ पैरों को बाँध रखा है। वे बहुतेरा चाहते हैं कि अव्यात्मजगत् के उच्च लोकों में उड़-जायँ, पर पैरों में भारी जंजीर पड़ी है। इच्छा होती है कि परम सुख का लाभ करें, पर बदले में दुःख ही मिलता है; रोते हैं, विलखते हैं, कहीं कोई सुनवाई नहीं। बेचस है कुछ बन नहीं पड़ता, अभिलाषाएँ पूरी नहीं होती। इस चर्मखोल के भीतर भयानक अग्नि जल रही है, हृदय के बीच, अस्थियों के अंदर एक द्वन्द्वयुद्ध ठग रहा है। यह सच्ची घटना है, पर सब को इस का भान नहीं होता। जो कुछ भी समझ रखते हैं, सञ्चान हैं वे स्वीकार किये बिना नहीं रह सकते कि अब भी मनुष्यों के हृदयों में महाभारत के युद्ध होते रहते हैं। यही बात आचार्य श्री शंकर ने अपने गीताभाष्य के आरम्भ में कही है—

‘दृष्ट्वा तु पाण्डवानीक’ इत्यारभ्य ‘न यो-
त्स्य इति गोविन्दब्रह्मत्वा तूष्णीं बभूव ह’ इत्ये-
तदन्तः प्राणिनां शोकमोहादिसंसारबीजभूत-
दोषोद्भवकारणप्रदर्शनार्थत्वेन व्याख्येयो ग्रन्थः ।

‘दृष्ट्वा तु पाण्डवानीक’ यहाँ से लेकर
‘उत्सत्वा तूष्णीं बभूव ह’ यहाँ तक बीच के श्लोकों
का तात्पर्य यह है कि अर्जुन की तरह हर एक
प्राणी के अंदर शोक, मोह, राग, द्वेष, आदि सत्ता
बन्धन के कारणभूत दोष प्रकट हुआ करते हैं । यहाँ
विश्रास होता है, इस से बचने का या निकलने का
उपाय क्या हो सकता है ? इस का समाधान है
कि वह भी सत्ता का स्वभाव है, उस में एक ओर
चलनेवाले व्याग की चिंगारियाँ हैं वहाँ दूसरी
ओर ठडक देनेवाले निर्झर और झोल भी हैं ।
एक ओर उथल पुथल है तो दूसरी ओर स्थिरता,
शान्ति भी है । मनुष्य चेष्टा करने पर कर्मव्यय
के जाल से छूटकर सुख गति के मार्ग में जा सकता
है । अब वह स्वयं कर्म के जाल में पँसता है तो
स्वयं ही निष्काम कर्म करके निकलने में भी समर्थ
है । वस्तुतः सत्ता ऐसा जकड़ लेनेवाला नहीं,
मनुष्य अपनी अज्ञानता से वैसा हो जाता है, जैसे
कौड़ी पेड़ के तने में लिपटकर बड़े कि पेड़ अड़सती
छपेटे हुए है, बड़ी दशा बन्धनग्रस्त मनुष्यों
की है ।

बुद्धिमान् की उचित है कि बन्धन के कारण
स्वरूप असत्यविक मोह की, कर्म की सहायता

को त्याग दे । ईश्वर को साक्षी रखकर ऐसा करने
पर बन्धन व्याप ही कट जाता है, बिना कारण के
कार्य का उत्क्रम कहीं से होगा । अहम्भ्य जो अभि-
निवेश है वह कल्पनामात्र है, असंगठ विज्ञानधन
वस्तु में यह अहंकार का आरोप केवल मनोराज्य है ।
अनुभवियों का कथन है—

अविद्यायोनयो भावा सर्वेऽभी बुद्बुदा इव ।
स्रग्मज्ज्वा गच्छन्ति शानैकजलया सपम् ॥

अविद्या से उत्पन्न जितने पदार्थ हैं वे सब
जल में बुद्बुदों की तरह उत्पन्न और विलीन होते
हैं । मन में किसी संकल्प की कामना हुई और मन
का अच्छा या बुरा भाव उस पर जम गया, पदी
अनुकूल प्रतिकूल भाव राग द्वेष को जन्म देता है ।
यह अविद्यायुक्त मन जब तक है तब तक राग द्वेष
है, सुषुप्ति में मन नहीं रहता तो राग द्वेष भी नहीं
रहते । मनुष्य की बुद्धि पर यही एक पद पड़ा
हुआ है जिस से वह असत्यता को नहीं जानता,
फलस्वरूप भय और गमन उस को दबाये रहते
हैं । इस से बचने का उपाय यह है कि बुद्धि
और विवेक को चेतन्य किया जाय, विच को ऐसा
बजाया जाय कि उस में विषयों का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़
न सके, वह किसी से घृणा करे न मोह, न किसी
कृतकृत्यता पर फूलकर अहंकार जगार ।

सिद्धान्त यह है कि निष्काम कर्मयोग का
अनुष्ठान उपासना और ज्ञान द्वारा प्राणी अपने
सब संस्कारों को परिशुद्ध करता हुआ संसार में

रहते हुए ही कर सकता है और जीवत्व को नष्ट करके नित्य शुद्धबुद्ध मुक्तस्वरूप सचिदा-नन्दसत्ता में परिणत होकर सब पुरुषार्थों के अन्तिम लक्ष्य निश्चेयस पद को प्राप्त कर सकता है। तब उस जीवन्मुक्त सिद्ध का क्रियमाण कर्मसंस्कार स्वरूपज्ञान द्वारा वासनानाश के साथ ही समूल नष्ट हो जाता है, सचित्त कर्मसंस्कार उस के केन्द्र को छोड़कर अनन्तव्यापी महाकाश का आश्रय कर लेना है, केवल विदेहमुक्ति के पहले तक भोग द्वारा क्षय होने के लिए प्रारब्धसंस्कार बचे रहते हैं। वासना का नाश होने के कारण अवशिष्ट प्रारब्ध-भोग से क्रियमाण कर्म की उत्पत्ति नहीं होने पाती। वह प्रारब्धसंस्कार जब भुने हुए बीजों की तरह जीवन्मुक्त के अंदर रहकर धीरे धीरे क्षय हो जाता है तब जीवन्मुक्त की विदेहमुक्ति में देर नहीं लगती। उस समय बिन्दु जैसे सिन्धु में समा आया

उस तरह उस की आत्मा व्यापक महान् आत्मा में विलीन हो जाती है। प्रकृति के स्वाभाविक परिणाम से जो चित् जड़ ग्रन्थि बँध गई थी वह यहाँ खुल जाती है—

यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति
नामरूपे विहाय । तथा विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः
परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥

(मुण्ड० उप०)

जिस प्रकार बहती हुई नदियाँ समुद्र में मिलने से नाम रूप को छोड़कर अस्त हो जाती हैं, इसी प्रकार अविद्याकृत नाम रूप से विमुक्त होकर विद्वान् पर से पर दिव्य पुरुष के धाम को प्राप्त हो जाता है। जो मनुष्य ससार में ऐसा उच्च जीवन वितरित है वे धन्य होकर फिर बन्धमोक्ष के झगड़े में नहीं पड़ते, यही सुख शान्ति का सुन्दर जीवन है।

ॐ शान्ति ! शान्ति ! शान्ति !!!

अध्यात्मयोग

(श्री अरविंद)

इस योग की चरम उपलब्धि तब होती है जब हम वात का ज्ञान होता है कि समग्र जगत् एक अनन्त भाग्यतत्त्वरूप की ही अभिव्यक्ति, क्रीड़ा या लीला है। जब तुम समस्त भूतों में व्यक्त सृष्टि के आधार नैरेकिक सत् आत्मा का ही दर्शन नहीं करते, बल्कि तुम सृष्टिमान में श्रीकृष्ण का दर्शन करते हो जो एक ही साथ इस सब कुछ के आधार हैं और

इस समस्त व्यक्त और अव्यक्त सृष्टि से परे भी हैं, तभी अध्यात्मयोग में स्थिति होती है। इस का कारण यह है कि इस सत् आत्मा के परे असत् की निश्चल नीरवता है जिस को यौद्धों ने शून्यरूप में अनुभव किया था, इस निश्चल नीरवता के परे परात्पर पुरुष है।

पुरुषो वरेण्य आदित्यवर्णस्तमसः परस्तात् ।

इस परात्पर पुरुष ने ही अपनी सत्ता से इस

जगत् को रचा है, इस में अन्तर्यामी होकर वह बसा है तथा इसे वह धारण किये हुए है। उस ने ऐसा किया है अपने अनन्त और सान्त ईश्वररूप से, उस लीलात्मय शो कृष्णरूप से, जो अपने प्रेम से हम सभी को अपनी ओर खींचता है, अपनी प्रभुता से हम सभी को विवश करता है और इस विविध जगत् में सुख, शान्ति, सामर्थ्य सौन्दर्य की अपनी शाश्वत लीला को खेलता रहता है।

यह जगत् उस के सन् चित् आनन्द की एक लीलाप्राय है। हम एक दिन अनुभव करेंगे कि यह जड़ प्रकृति भी कोई जड़ रचना नहीं है, वह कोई द्रव्य नहीं है, बल्कि चेतना का ही रूप, गुण है, इन्द्रिय-ज्ञान के विषयीभूत हो सकने के गुण का परिणाम है। स्वयं देवसपन केवल संहति और धृतिरूप गुणों का जुटाव है, सचेतन सत्ता की एक अवस्था ही है। जड़ पदार्थ (अन्न) सजीव पदार्थ (प्राण), मन बुद्धि और इन से परे भी जो कुछ है वह सब भी कृष्ण या अनन्तगुण ब्रह्म ही है, जो इस जगत् में सबिज्ञानन्दरूप से अपनी लीला कर रहा है। जब हम को यह अनुभूति हो जाती है, जब हम इस में सुरक्षित और स्थायी रूप से निवास करने लगते हैं, तब शोक, पाप, भय, धर्म, आन्तरिक सार्प और दुःख की समस्त संभारनाओं तक को हमारी सत्ता में से निकालकर बाहर कर दिया जाता है। तब हमें उपनिषदों के इस सत्य का साक्षात् अनुभव होता है—

आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चन ।

जो कोई ब्रह्म के आनन्द को प्राप्त कर लेता है उस को समार की किसी बीज से भय नहीं रहता। इसी के साथ ईशोपनिषद् का यह सत्य भी अनुभूत होता है—

यस्मिन् सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूद् विज्ञानतः ।
तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः ॥

जब विज्ञान की प्राप्ति होने के फलस्वरूप समस्त सृष्टि वस्तुएँ उस के लिए आत्मरूप हो जाती हैं तब इस अवस्था में पहुँच कर सब वस्तुओं में एकत्व देखनेवाले के लिए क्या मोह हो सकता है और क्या शोक ? तब हम इस जगत् को दूसरे ही रूप में देखते हैं और यह हम को कल्याण, सौन्दर्य, प्रकाश और आनन्द का सागर दिखाई देता है। यह नजर आता है कि यह एक आनन्दमय प्रकृति है जो शक्ति और शान्ति के आधार पर हो रही है। अब हम सभी वस्तुओं को शुभ, शिव, मङ्गल और आनन्दमय देखते हैं। सभी जीवों के साथ हम एकात्म, 'सर्वभूतान-भूतात्मा' हो जाते हैं। इस अनुभूति में स्थिर होकर हम इस योग्य हो जाते हैं कि इसे सत्यता, एकता और प्रेम के द्वारा दूसरों तक पहुँचा सकें और फल-स्वरूप इस ब्राह्मी स्थिति में अपने चारों ओर जगत् में कौण्ठिक के हम केन्द्र बन जाते हैं।

हमें केवल सजीव वस्तुओं में ही नहीं, बल्कि निर्जीव वस्तुओं में भी नारायण का दर्शन होना चाहिए, शिव की अनुभूति होनी चाहिए, शक्ति का साक्षात्कार होना चाहिए। हमारे नेत्र जो इस समय जड़ता के आव में अंधे हो रहे हैं, जब परम ज्योति की ओर खुलेंगे तब हम को यह वता लगेगा कि कोई भी वस्तु निर्जीव नहीं है, बल्कि सभी जीवों में व्यक्त या अव्यक्त रूप से, अन्तर्निहित या विरसित रूप से, न केवल चेतना की वह आवृत अवस्था विद्यमान है जिस को हम अन्न कहते हैं, किंतु प्राण, मन, विज्ञान, आनन्द, चित् और सत् भी विद्यमान हैं। सब वस्तुओं में ईश्वर का स्वात्मचेतन व्यक्तित्व अभिहित है और

अपने ही गुणों का आनन्द लेता रहता है। फूल फल, भूमि धातु आदि सभी वस्तुओं में अपना एक आनन्द है जिस को तुम एक दिन जानोगे, क्योंकि सभी में श्री कृष्ण का निवास है। यह निवास इन के अंदर चेतनरूप से प्रवेश करके हुआ है, जड़ या भौतिक रूप से प्रवेश करके नहीं, क्योंकि जड़ या भौतिक जैसी कोई चीज है ही नहीं। देश और काल तो इन्द्रियानुभूति के लिए केवल व्यवस्था और योजना-मात्र हैं, ईश्वर की सृष्टिरचने की कला में दृश्य को यथावत् उतार लाने के लिए है, कारण कि—

ईशावास्यमिदं सर्वं यत् किञ्च जगत्थां जगत् ।

यह संपूर्ण जगत् और इस जगत् के प्रत्येक प्राकृतिक पदार्थ में केवल ईश्वरसत्ता का आवास है।

अभ्यासयोग के लिए सभी प्राणियों और वस्तुओं में उन का दर्शन होना ही पर्याप्त नहीं है, प्रत्येक घटना, क्रिया, विचार और अनुभव में, अपने आप तथा दूसरों में तुम को उन का दर्शन होना चाहिए। इस उपलब्धि के लिए दो बातें आवश्यक हैं। पहली यह कि तुम अपने समस्त कर्मों के फलों को उन के अर्पण कर दो, दूसरी यह कि स्वयं कर्मों को ही तुम उन के अर्पण कर दो। कर्मफलों के अर्पण कर देने का यह अर्थ नहीं कि तुम्हें कर्मफलों से वैराग्य ले लेना चाहिए, उन से मुँह मोड़ लेना चाहिए या किसी विदिष्ट लक्ष्य को सामने रखकर कर्म करने से ही इनकार कर देना चाहिए। इस का अर्थ यह है कि

कर्म तो अवश्य करने चाहिएँ, पर इस लिए नहीं कि इस से अमुक बात हो या अमुक बात का होना तुम आवश्यक समझते हो। कर्म करना इस लिए आवश्यक है कि यह तुम्हारा कर्तव्य है, इस को तुम्हारी सत्ता का स्वामी तुम से माँगता है और तुम्हें वह करना ही चाहिए, फिर ईश्वर उस का फल जो कुछ भी क्यों न दे। तुम जो कुछ चाहते हो उसे एक तरफ रख देना चाहिए और वह जानने को इच्छा करनी चाहिए कि ईश्वर क्या चाहता है। तुम्हारा हृदय, तुम्हारे आवेग या तुम्हारी अभ्यासगत समतियाँ जिन बातों को ठीक या आवश्यक समझती हैं उन पर विश्वास मत करो। उन से ऊपर बैठ कर गीता के अर्जुन की तरह केवल उसे जानने की चेष्टा करो, जिसे ईश्वर ने ठीक और आवश्यक निर्धारित किया है। इस का दृढ़ विश्वास करो कि जब तुम अपने कर्तव्य का ठीक तरह से पालन करोगे तब उस के फलस्वरूप जो कुछ ठीक व आवश्यक है वह अवश्य होगा। यदि वह फल तुम्हारी आशा या पसंद के अनुकूल न हो तो भी तुम्हें उपर्युक्त विश्वास को बनाये रखना चाहिए। कारण कि जो शक्ति जगत् का शासन करती है वह कम से कम तुम्हारे जितनी बुद्धिमान तो है ही और यह नितान्त आवश्यक नहीं है कि उसके शासन में तुम से सलाह ली जाय अथवा तुम को सतुष्ट किया जाय। इस प्रबन्ध की देर रख ईश्वर रखता है। (कमल)



तो यह कथन है कि आपत्तियाँ आती अवश्य हैं।
क्योंकि—

कस्य दोषः कुले नास्ति व्याधिना को न पीडितः।

व्यसनं केन न प्राप्तं कस्य सौख्यं निरन्तरम् ॥

ऐसा कौन है, जिस के वश में कोई दुष्टि न हो,
कौन ऐसा है, जिसे किसी न किसी रोग ने न सता
रखा हो, जिस को 'कभी भी विपत्ति नहीं झेलनी
पड़ी' ऐसा भी कोई नजर नहीं आता। और ऐसा
भी माई का लाल कोई दिललाई नहीं देता जो सदा
सुग के पालने में झूलता रहता हो, या सदा फूले की
शय्या पर ही शयन करता रहता हो। क्योंकि—

सदा न काहू की रही, पिय के गल में बोंह।

ढलते दलते दल गई, सब तरुवन की छाँह ॥

जो विपत्ति के समय धैर्य धारण कर सकता हो,
कठिन से कठिन आफत के आ जाने पर भी जो
निर्विकारचित रह सकता हो, भर्तृहरि ने उसे
महात्मा कहा है, क्योंकि महात्मा के लिए 'विपत्ति
में धैर्य धारण करना' अठितसिद्ध बात मानी गई है।

‘अभ्युदये क्षमा’

मनुष्य की स्थिति की इयत्ता की सीमा नहीं
निर्धारित की जा सकती, वह कहाँ से कहाँ
पहुँच जायगी, उस की भविष्य में क्या गति होगी,
यह नहीं कहा जा सकता। 'स्त्रियाश्चरित्र पुरुषस्य
भाग्यम्' की बात मनुष्य तो क्या देवता भी नहीं
बता सकते। बहुत से साधारण स्थिति के मनुष्य
महत्त्वपूर्ण पदों को समलङ्कृत करने में समर्थ हो
जाते हैं। हम ने बहुत से गली के भिरारियों को
सिंहासन के अधिपति होते देखा है। साधुसत्त्वानों
के महत्ता में तो अधिकांश ऐसे ही व्यक्तियों का
प्राधान्य है। जिन्हें नेलने का भी शर नहीं था,

जिन्हें कल भील माँगने पर उदरपूर्ति के लिए टुकड़
तक नहीं नसीब होता था वे आज सोने के हौदवाले
हाथी पर चढे चल रहे हैं। हमें ऐसे परिवर्तन के
लिए कुछ नहीं कहना है। हमें तो शिकायत तब
होती है, जब वे अपने अधिकार का दुरुपयोग करने
पर उतार हो जाते हैं। अधिकार को पाकर मनुष्य
दुबलताओं का इतना बड़ा शिकार हो जाता है कि
बढ़ बुद्ध का कुछ दीप्ति लगता है। अधिकार
पाकर मनुष्य उपकार की अपेक्षा अनुपकार ही अधिक
करता है, अभ्युदय पाकर मनुष्य अपनी पूर्वदशा का
भूल जाता है। वह 'अभ्युदये क्षमा', सहिष्णुता
की शिक्षा को भूलकर 'अभ्युदये वृहदन्ता' का लक्ष्य
बन जाता है। अभ्युदयशाली जमींदारों की अन्याय
की तलवार गरीब कृषकों के गले को काटती हुई हम
नित्य देख रहे हैं। सुनते हैं, खड्गबहादुरसिंह
भूपति क्षणमात्र में चाहे जिसे मिटा देने की सामर्थ्य
रखता है, उस का क्रोध बड़े गजब का है। इस ने
अपनी चलती में बहुतों को जगतप्रष्ठ पर से अशुद्ध
अक्षर की तरह सदा के लिए मिटा दिया। फिर कुछ
दिन में यह भी सुना कि उसे लंबा मार गया। अब
वह सटिया पर पड़ा सब रहा है।

एक आदमी बता रहा था कि काशीजी के सब
से बड़े मठ का महत आजकल भी दिन में दो को
मसल जलाकर चलता है, जब कि साधारण लोगों
को घृत दवाई के साथ मिलाकर सूँघने को भी नहीं
प्राप्त होता। जम्मू और काश्मीर के महाराज काशी
आने पर स्टेशन से पैदल चलकर विश्वनाथजी के दर्शन
करते थे, मगर महतजी अपने पास के मठ से भी
पालकी में चढ़कर विश्वनाथजी की यात्रा करने
पधारते हैं। कष्टि इसी का नाम क्या 'अभ्युदये
क्षमा' यानी अधिकार का सदुपयोग है? जिन के

हाथ में दूसरों की जान माल की रक्षा का मार है, जो तपोमय जीवन व्यतीत करनेवालों के लिए आदर्श जीवन का पाठ पढ़ानेवाले हैं, जो शासनदण्ड हाथ में लेकर दूध का दूध और पानी का पानी बर दियाने का दम भरते हैं, जो सदा पोथी पत्रों से धर्मतत्त्व शोधकर जनता के समक्ष उपस्थित करने की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले चुके हैं वे कहें एक अपने अधिकार का सदुपयोग कर रहे हैं ? इसे सत्सार खूब जानता होगा। मनुष्यजीवन का महत्त्व प्रकृति के अस्थायी, आगामायायी, अशोभन पदार्थों की चक्काबौंध में पड़कर अपना कर्तव्य भूल जाने में नहीं है। उस की विशेषता तो अभ्युदय में क्षमा गुण के अपनाने में है। अभ्युदय यानी सपत्तिप्राप्तिकाल में क्षमा, सहिष्णुता धारण करनी और बदृष्टता का परित्याग करना यह योग्यता महापुरुषों में स्वभावनिष्ठ बात होती है।

‘सदसि वाक्पटुता’

मनुष्य सामाजिक प्राणी है, उसे समाज में रहना है, वह समाज में रहकर ही कुछ पा सकता है। जो अत्यन्तान्तर्मुखी हैं वे पहले समाज में रह कर ही अत्यन्तवास के लाभ पर विचार करने का मौका पा सकते हैं। किंतु समाज में रहनेवाला में अपने अपने स्वार्थों को छेड़कर संघर्ष हो जाता करता है, इसी से लड़ाई झगड़े तथा युद्ध प्रवृत्ति अशान्तिप्रद नाना हठों की सृष्टि हो जाती है। समाज में जो चतुर हैं, बुद्धिमान हैं और दयादुःखभाव हैं, वे संघर्ष को दालने का यत्न किया करते हैं। किंतु विवादों को यही मिटा सकता है जिस का उभयपक्ष के समग्राने की याचना हो। जो वाक्पटु होगा, जिस को पुच्छ पुच्छ बोलने की कला का परिचय होगा, वही समाज में स्वयंभू उपस्थित करके उस का सामर्थ्य कर सकता

है। मोठे सेमोठे जो बहुत कुछ बोलता बकता रहता है उस की बाणी की सामर्थ्य नष्ट हो जाने के कारण उस के बहने का किसी पर असर नहीं होता, समाज में वही पुण्य निशङ्क बोल सकता है जो चरित्र-हीन नहीं हो। ऐसा महामा सज्जन ही हो सकता है, ‘सदसि वाक्पटुता’ यानी समाज में बोलने चालने की समीज महानुभावों की स्वाभाविकता में दायित्व है।

‘युधि विजयः’

लड़ाई—भिड़ाई से सभी वचना चाहते हैं, इस में सभी को पूर्ण है। इस से किसी का लाभ नहीं, जो स्वाध्वश मगड़ों से लाभ होना मानते हैं उन को भी इस अनिष्ट व्यापार से अन्त में दुःखित होना पड़ता है। यह ध्रुव सत्य है कि युद्ध द्वारा बलवान् आत्मसात् की दुरे दूसरों की संपत्ति किसी के पास सदा स्थिर नहीं रह सकती और उस के पानेवाला सतृप्त नहीं रह सकता। यह सामर्थ्य तो परिभ्रमा जित संपत्ति का है, जो बहुत दिनों तक टिकती है और उस से इष्टसाधन भी होता है। हमारा तो यह अनुभव है कि अन्यायजित विभूति सदा पास तो रहती ही नहीं, यत्कि वह अपने साथ और भी कुछ ल जाती है।

हम यह नहीं कहते कि युद्ध छेड़े ही न जायें। वे जो लड़ने ही पड़ेंगे। युद्ध जितनी पर आक्रमण कर के शान्तिभङ्ग करते के लिए नहीं लड़ना चाहिए। हाँ, अपने देश पर जो आक्रमण करे वह चाहे जो हो, जितना नामो प्राप्ति हो, उस से संतुष्ट युद्ध करने-वाले याददाओं के लिए ही यह कहा गया है—

दाविषी पुरुरी लोके सूर्यमण्डलभेदिनी ।

परिमादं योयमुक्तं रणे चाभिमुखे हतः ॥

‘वह सूर्यमण्डल को भेदन करके योगियों जैसी

ऊँची गति को लाभ करता है। दूसरों को वरवाद करने के लिए नहीं, किंतु सबको आवाद करने के लिए यदि युद्धप्रसङ्ग आ उपस्थित होता है तो उसी के लिए 'युधि विक्रमः' रणाङ्गण में पराक्रम करने को कहा गया है।

जाति तथा देश की रक्षा के लिए अपने खून के तेल से अपनी पसली की हड्डी की घत्ती जलाकर रणचण्डी की आरती उतारनेवालों का ही स्वर्गाङ्गनायें यशोगान किया करती हैं। देश की रक्षा के समय माला और पोथी पत्रे फेंककर जो हाथ में शमसेर लेकर रणभूमि को चारों धामों की यात्रा समझकर अहमहमिकया पहुँच जाया करते हैं, वे ही महानुभाव कहा सकते हैं, मिट्टी और चन्दन के तिलक छाप की जगह जो अपने शरीर से निकले खून का ऊर्ध्व पुण्ड्र या त्रिपुण्ड्र लगाकर रणदेवता की उपासना करते हैं वे ही मुक्ति (स्वतन्त्रता) पद के असल अधिकारी कहे जा सकते हैं। जो रणभूमिरूप अविमुक्त वाराणसी में जाकर मरनेवालों को अमर समझकर, स्वयं उसी गति को प्राप्त करने की इच्छा से रणक्षेत्र-धर्म-क्षेत्र में सोत्साह जाते हैं उन के वरणार्थ अप्सरारथ परस्पर विवाद करती हैं। जो परोपकारार्थ अपना खून बहा दे, जो किसी से लड़ाई भगड़ा न करे, जो विवाद के प्रसंग में शान्ति स्थापन करने कराने में सारी शक्ति लगा दे, जो बहुत छेड़े जाने पर भी शान्त बना रहे और जो राष्ट्रक्षार्थ युद्ध में ज्वालागुप्ती बन जाय, भयंकर व्यग्र हो जाय वह महानुभाव कहाता है, क्योंकि 'युधि विक्रमः' यानी राष्ट्रीय युद्ध में आगे बढ़कर पराक्रम दिखाना, राष्ट्रक्षार्थ अपना जीवन सर्वस्व सहर्ष निहावर करना महानुभाव सज्जनों का स्वाभाविक धर्म है।

‘यशसि अभिरुचिः’

लोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करनी बड़ी कठिन है, यह

योग्यता से प्राप्त होती है, योग्यता तपश्चर्या विना मिलती नहीं। तपश्चरण संयमी, सदाचारी और विचारवान् ही कर सकते हैं। अभिप्राय यह हुआ कि जिनके नैतिक जीवन उन्नत और उत्तम होंगे, वे ही लोक में यशोलाभ कर सकेंगे। अपने मुख से अपनी प्रशंसा करके कोई भी नामवरी नहीं हासिल कर सकता, नामवरी कर्तव्य से होती है। जो लोग अपने यशःसौरभ से अपनी जाति या देश को सुगन्धित करना चाहते हैं उन्हें कोई न कोई गुण अवश्य संपादन करना चाहिए। मनुष्य अपनी जीविका के लिए जो काम करता है उस में तो उस को परिश्रमी, बुद्धिमान् और अध्यवसायी होना ही चाहिए। किंतु इस के अतिरिक्त भी उसे एक कोई भी गुण, हुनर जरूर संपादन कर लेना चाहिए। जैसे कोई मनुष्य दुकान का काम करता है तो उस में तो वह पारंगत है ही, साथ ही उसे गान, वाद्य, गणित, पदार्थविद्या, अश्वारोहण, मोटर चलाना, साहित्याभिरुचि आदि किसी भी एक या अनेक विषयों में विशेषज्ञता प्राप्त करनी चाहिए। ऐसी स्थिति में मनुष्य यशस्वी होने की प्रथम सीढ़ी पर चढ़ सकता है।

मनुष्य यदि यह सोचकर सभी काम करता रहे कि—‘मेरा नाम हो वदनामी न हो’ ‘मुझे कोई बुरा न बतावे’ तो वह बहुत सी खराबियों से बच सकता है। पर साथ ही यह भी सोचना चाहिए कि ‘मैं समाज के लोगों की दृष्टि बचाकर यह काम भले ही कर लूँ, समाज की तीव्र आलोचनाओं का लक्ष्य चाहे न चूँ, पर ईश्वर की दृष्टि से नहीं बच सकता, ईश्वर के न्याय से अपने को नहीं बचा सकता।’ ऐसा मनुष्य कदापि कुमार्गगामी नहीं हो सकता, मनुष्य अपने बनाने विगाड़ने में खुद समर्थ है। जो अपना सुधार चाहते हैं, अपने आप को बनाना चाहते हैं उन के लिए—

अब बन्दे ! तू उठ बाँध कपड़ क्यों डरता है ?

पर आगे पग फिर देख खुदा क्या करता है ?

इस कहावत के अनुसार परमेश्वर सहायक होकर उसे कार्यक्षेत्र में अग्रसर होने का सामर्थ्य प्रदान करता है। और जो अपने को मिटाने पर तुले हुए हैं उनको—

जिमि कृपय पग देत खगेशा ।

रहै न तेज बल धी लखेशा ॥

यथानुसार जान लेना चाहिए कि तेजस्विता, बल और बुद्धि जो सभी कार्यों के साधक हैं, गुणगामी के पास नष्ट हो जाते हैं। यह निश्चय है कि एक प्रागम्भिक पुण्य की कौशल में सौ पुण्यों को जन्म देनेवाला शून्य निहित है। इसी तरह एक पहले पाप के भीतर हजार पापों के ज्वलन करने की सामर्थ्य भरी है। जो 'यशसिभ्रमिदृचि' हैं, अपनी कीर्ति चाहते हैं, उन के लिए पापकर्मों में अग्रगणि स्वभाव-सिद्ध हानी है।

‘अ्यसने भुतो’

संसार का कोई पदार्थ मनुष्य का मनुष्यता नहीं प्रदान कर सकता, ऐसी कोई शक्ति है या विद्या है— 'विद्याविहीन पशु' यह कहावत प्रसिद्ध ही है। विद्या मनुष्य के लिए कितनी आवश्यक है, इस पर अधिक कहने की इस लिए आवश्यकता नहीं है कि मनुष्यजीवन के लिए इस की अनिवार्य आवश्यकता को सभी लाभ जानने हैं।

इस यह अवश्य कहेंगे कि अपना भग्न चाहने-वाले को एक क्षण भी राग शप, कलह विवाद या दूसरे छोटे कार्यों में अग्र न करना चाहिए, अब शतरंज, चौपड़, ताम आदि खेलने का समय नहीं। किसी का कहना है कि इन खेलों में मनोरञ्जन के साथ साथ बुद्धि की क्षताप्राप्त शक्ति बढ़ जाती है।

यह बात बहुत विचारने पर भी हमारी समझ में नहीं आती, क्या मन्थों के देखने, विचारने तथा मनन करने से भी बढकर शतरंज आदि में बुद्धि के विकास करने की सामर्थ्य है ? शतरंज, गंजीके आदि में किसी एक प्रकृतिवाले पुरुष का चाहे कुछ मनोरञ्जन हो जाय, पर मन्थों में तो सब प्रकार की रचिवालों के लिए पुष्कल सामग्री भरी पड़ी है। पुस्तकों से शिक्षा मिलती है, शतरंज आदिकों से समय बचता है होता है। जिन लोगों को मन्थावलोकन करना नहीं आता वे उसे सीख सकते हैं। जो किसी नेत्र व सिर के राग या अधिक अवस्था हो जाने से मन्थाभ्यास करने में असमर्थ हैं, वे दूसरों से सुन सकते हैं और वैसा ही लाभ उठा सकते हैं जैसा पढ़नेवाले। सब लोगों को स्वाभ्यास करना चाहिए चाहे सुनकर करें या पढ़कर।

सर्वद्रव्येषु विद्यैव द्रव्यभादुरनुत्तमम् ।

अहार्यत्वादनर्थत्वादतयत्त्वाच्च सर्वदा ॥

इन हेतुओं के कारण विद्या का मुक्तानला ससार का कोई पदार्थ नहीं कर सकता कि 'अहार्यत्वात्' 'अनर्थत्वात्' 'अक्षयत्वात्', विद्या बुझाई नहीं जाती, उस की कोई कीमत आँक कर तब बय विक्रय नहीं कर सकता, तथा देने पर बनाय बढ़ने के घट नहीं सकती। यद्यपि लोक में वृत्ति करने के लिए शस्त्र-विद्या और शास्त्रविद्या का नाम लिया जाता है, किंतु दूसरे में शस्त्रविद्या का उपयोग नहीं बन पड़ता, किंतु शास्त्रविद्या चतुर्विधा में भी अधिक अनुभवी होने के कारण अष्टा से देखा जाता है।

भाव यह है कि आपत्ति के समय धैर्य धारण करना, संपत्ति प्राप्त हो जाने पर सहनशीलता से वाप लेना, समा में घबराई से भागें करना, लड़ाई में पराक्रम दिखाना, हमेशा नामवरी हासिल करने

की इच्छा से योग्य काम करना और शास्त्र के पठन पाठन का शौक रखना ये गुण महापुरुषों में स्वभाव से ही होते हैं।

दूसरे लोगों को भी महापुरुषों के उक्त गुणों से लाभ लेना चाहिए। संन्यासी संतों में एक दूसरे को 'महापुरुष' कहते हैं। जो दूसरे संसारी पुरुषों की अपेक्षा विशेषतः रसता है उस को महत्त्व दिया जाता है, इसी से वह महापुरुष कहाता है। भगवान् को भी 'वन्दे महापुरुष से चरणारविन्दम्' आदि

स्तुतिवचनों में महापुरुष कहा गया है। सभी देशों और जातियों में महापुरुषों का अवतार होता रहता है। वे अपने उपदेशों से तथा स्वयं आदर्श बनकर सब का कल्याण करने की भावना से मनुष्यों के लिए एक ऐसा शास्त्रीय सुगम मार्ग बता देते हैं जो सब के लिए सीधा हो, सरल हो।

महापुरुष और उन के गुण सब का कल्याण करते हैं, अतः कहना पड़ता है कि धन्य हैं 'महापुरुष'।

महादेव की महामहिमा

(ले०—श्यामी श्री शिवानन्दजी योगिराज, वैद्य, धन्यन्तरिगुरु)

इस चातुर्मास्य के आरम्भ में एक आश्रम में कोई हावभाव महादेवजी की महिमा के विषय में इस तरह वा प्रवचन कर रहे थे—

यों ता बहुत सी उपासनाएँ हैं, किन्तु सब में यः फलवती उपासना शंकर महादेव की है। महादेवजी की कृपा से जिन स्थानों और व्यक्तियों की महामहिमा लोक में प्रसिद्ध है, आज हम उन का दिग्दर्शन कराकर श्रोताओं को पुण्यशील बनायेंगे—

१—श्री काशीपुरी—

सारी दुनिया में मरना बुरा समझा जाता है, किन्तु काशी के मरण को मङ्गल कहा गया है। यह काशी की महिमा है और इस महत्त्व का कारण भगवान् कैलाशपति हैं। जैसे जीवमात्र में मनुष्य, उस में ब्राह्मण और उस में भी ब्रह्मनिष्ठ श्रेष्ठ है, इसी प्रकार पृथ्वी में आर्यवर्त, उस में तीर्थस्थल और उस में भी काशी का स्थान सर्वोत्तम है। क्योंकि यह अविमुक्त क्षेत्र पंचमोक्षात्मकरूप से विद्या और मुक्ति

दोनों का देनेवाला है। जहाँ की विद्या सब तीर्थों के महत्त्व को प्रकाश में लाती है वह पुरी प्रलयकाल में भी नष्ट नहीं होती। क्योंकि वह महादेवजी के त्रिशूल पर अवस्थित है, अतएव वहाँ तक प्रलयकाल का अथाह जल और प्रलयग्निकी ज्वाला पहुँच नहीं पाती। यहाँ विश्वनाथ नामक षोडशिलिङ्ग के साक्षात् दर्शनों का लाभ प्राप्त होता है, जो गङ्गा और अन्नपूर्ण के बीच में प्रतिष्ठित है। दूसरे तीर्थों में जो प्राणी मरता है वह उन तीर्थों की महिमा से काशी में जन्म ग्रहण करता है, फिर वह काशी में मरकर मुक्ति को प्राप्त होता है।

ब्रजभूमि में भगवान् कृष्णचन्द्र ने अवतार धारण करके क्या क्या लीलाएँ की, अयोध्या को अपने जन्म से कृतार्थ करनेवाले श्री राजा राम ने कौन कौन चरित्र दिग्याये, नैमिषारण्य में अठासी सहस्र ऋषियों के कैसे कैसे प्रभोत्तररूप में सुसंवाद हुए, विन्ध्यक्षेत्र की क्या महिमा है, चारों घाम, वायन अड्डे क्यों

वनाथ गय माधावा आवि नूरनिषां ने कौन सा जनता का उपकार किया खु विवामादित्य कौन थे आचार्य शकर का विज्ञान कैसा है इत्यादि प्रश्न का उत्तर आप लोग किस आधार पर द सकत हैं ? और और भी बहुत स श्रुति मुनि मन्त्र संत साधु वीर आदि प्राचीन समय में हो चुके हैं आप उन के विषय में किसी परिचय से किस परिचित हो सकत हैं ? इन सब का ज्ञान करानेवाला मात्र है माधवा हैं और इतिहास है। य सब आर्या का परिचय देन बाड हैं इन सब का निर्माण इसी कागी नगरी में हुआ है। जिन धर्मों की रचना यहा नहीं हुई उन के खर शान् देने की परीक्षा यहा हुइ है। ऐसी यह काशी नगरी है इसे जा यह गौरव प्राप्त हुआ है इस का एकमात्र कारण महात्मा की महिमा है जो यहाँ के छात्रों की बुद्धि में इतनी शक्ति ला सरी है

२—चन्द्रमा के पुत्र सुभ न काशी में बुधधर शिवलिंग स्थापन कर उन की पूजा स यह वरदान पाया था कि तुम्हारा एक सब नक्षत्रा से कृपा होगा तुम्हारे पूजन से बुद्धि का विकास होगा।

(काशी म ५० ५)

३—एक समय गरुड के पद अचानक गिर गय यह देखकर आश्चर्यचकित हो विष्णु ने कहा कि वज्र के प्रहार में जिस का एक बाल भी शँका नहीं हो सकता प्रह्लाद भी जिस के पक्ष पर विफल है उस के पक्ष कैसे गिर गय ? इसी समय उन की दृष्टि तपस्विनी शशिबली पर पड़ी। देखत ही विष्णु बाइ गये कि हा न हा गरुड ने इस तपस्विनी का का अपराध किया है इसी के कारण ऐसा हुआ है। भगवान् धाल—द्वि गरुड ने आप का कौन सा अपराध किया है जिस कारण इस इतना कठार म्पन्न किया गया है। तपस्विनी म्भर पिया—इस ने

मरे सामन स्त्रीजाति की चार निम्न की है अनक शाय लगाय हैं और जा मन में आया नि सहाय धक गया मैं इस का सहन न कर सकी। भगवान् ने नम्र स्वर में कहा—गरुड का अभिप्राय स्त्रीजातिमात्र की निम्न करन का नहीं था उस ने स्थितों में ना कुछ दुखलगाई हाती हैं उन का निम्नन कराया है वह नारी जाति पर कलङ्क क्या लगायगा ? आप क्षमा कर तपस्वीनों का कठार दूँ देना शमा नहा देता। यह सुन शशिबली ने कहा—मरा कथन का भी अर्थ नहीं कर सकता जा कह दिया हूँ व हाकर रहगा इस का एक ही उपाय है— गरुड गरुडजी की उपासना करके उन्हे प्रसन्न करल ता वह पूर्वस्थिति का प्राप्त हो सकता है। यह सुनकर गरुड ने विष्णु की आज्ञा में गावक्षस्त्र में जाकर गरुधर महात्मा की स्थापना की और शंकर के वरदान से फिर पहल जैसी स्थिति प्राप्त की।

(नगर म ५५ म ५१)

४—द्वगण नेमन के तट पर स्थित आङ्गारधर महात्मा की तपस्या करने से दैत्यसंग्रह का जीत सके थे।

(रत्न म ५७)

५—चन्द्रमा का दक्षप्रजापति की राक्षिणी आदि सत्ताम कन्या व्यापी थीं यद्यपि उन में सभी एक से एक सुन्दरी थीं किन्तु चन्द्रमा का प्रेम राक्षिणी पर अधिक हो गया इस भेदविषे से दुर्गित हो अन्य सपत्नियां ने अपने पिता दक्ष से चन्द्रमा का समका इन का कहा। प्रजापति ने अनेक बार समझाया पर चन्द्रमा न माना। अन्त में प्रजापति ने ना समान भोगीवालों में विषमता का व्यवहार करता है वह नरकगामी हाता है इस प्रकार फटकार कर चन्द्रमा का यह शप दे दिया कि दक्ष रागमग्न हो।

अन्त में चन्द्रमा की दूत आदि दत्ता और

वसिष्ठ प्रभृति ऋषियों ने यह दुर्दशा देखकर कहा कि जो होना था वह हो गया, अब यह प्रभास तीर्थ में जाकर दिव्य हजार वर्ष तक महामृत्युञ्जय का जप करे, तब इस का 'तपेदिक' रोग दूर हो सकता है, अन्यथा कोई उपाय इस के अच्छा होने का नहीं है। चन्द्रमा के ऐसा ही करने से महादेवजी ने उस'का रोग हर लिया। (रेवा खण्ड)

६—एक बार अग्नि को यज्ञों का मातृ स्थाप्यकर अजीर्ण रोग हो गया। वह किसी तरह अच्छा ही न होता था, अतः वह भृगुकच्छ नामक तीर्थ में जाकर महादेवजी का तप करने लगा। देवताओं ने भी महादेवजी की स्तुति करते हुए कहा कि प्रभो, यह अग्नि हमारा मुख है आप इस का रोग नष्ट कर दें। महादेवजी ने ऐसी ही कर दिया। (रेवाखण्ड)

७—कुबेर के पूर्व जन्म की कथा यों है कि—यज्ञदत्त ब्राह्मण ने अपने गुणनिधि नामक पुत्र को शूत आदि का दुर्व्यसन होने के कारण अपने घर से निकाल दिया। वह भूखा ध्याना भोजन की खोज में एक मन्दिर के दरवाजे पर जा पहुँचा और वहाँ शिवकीर्तन सुनने लगा। रात को सब के सो जाने पर प्रकृतिवश मन्दिर में भोग चुराने को घुसा और अपना कपड़ा फाड़कर वस्ती बनाकर प्रकाश किया। जब भोग चुराकर बाहर निकलने लगा तो पाँव लगने से एक आदमी जाग गया। उस ने चोर के सिर में ऐसी लाठी मारी कि वह वहीं मरकर ढेर हो गया।

उस दीपदान के फल से दूसरे जन्म में वह कलिङ्ग देश का राजा हुआ। पूर्वस्मृति के बल से उस ने राज्य भर के मन्दिरों में दीपदान का प्रयत्न कर दिया। फिर मरकर वह पुलस्त्य के पुत्र विश्रवा के घर में उत्पन्न हुआ जिस से उसने महादेवजी की

उप तपस्या की। महादेवजी ने प्रसन्न होकर कहा कि तুম अपना अभीष्ट घर माँगो। ऐसा सुमधुर वचन सुनकर जब उस ने 'ओं' खोली तो सब से पहले उस की दृष्टि पार्वती पर पड़ी, वह उसे कर दृष्टि से घूर घूरकर देखने लगा। इस का परिणाम यह हुआ कि उस की बाईं आँख फूट गई, यह दुर्व्यवहार देखकर पार्वती ने कहा कि यह तापस बड़ा लुप्त प्रतीत होता है जो मुझे बुरी तरह देख रहा है। इस पर महादेवजी ने यों समझाया कि यह तेरा पुत्र है, तुझे जायाशक्ति समभक्त एकटक देख रहा है। इस के बाद महादेवजी ने उसे देवताओं का कोशाध्यक्ष बना दिया। पर कुछदि से पार्वती को देखने के कारण कुबेर नाम पड़ा, बाकी उस का सब ऐश्वर्य महादेवजी की कृपा का फल है। (शिवपुराण ७०.१६२)

८—एक बार यमराज ने मरने पर परलोक गये हुए माण्डव्य ऋषि को पूर्वजन्माजित कर्मागुसार शूली पर चढ़ाने का दण्ड दिया। यह दण्डभोग कर ऋषि ने यमराज के पास जाकर पूछा कि कौन से पाप से आप ने मुझे फाँसी की सजा दी है? यमराज ने कहा—अमुक जन्म में बाल्यावस्था में आप ने अनेक जीवों को शूल की नोक से बाँधा था, उन की यातना से आप को नरक भोगना होगा, जिस का एक भाग आप ने शूली का दण्ड भोग लिया है। यह सुनकर अप्रसन्न हो ऋषि ने 'इतने छोटे अपराध पर यह कठोर दण्ड देकर आप ने मेरे साथ घोर अन्याय किया है' यह कह कर यमराज को शाप दिया कि तুম मनुष्ययोनि में चाण्डालजाति को प्राप्त हो जाओ।

यमराज उक्त शाप से मुक्त होने के लिए जगन्नाथ पुरी के कपालमोचन स्थान में जाकर शंकर की आराधना करने लगे। शंकरजी के प्रकट होने पर यमराज ने अपने ऊपर हुई ज्यादती की ओर उन का ध्यान

सूचिते हुए कहा कि अपने कर्मफलानुसार माण्डव्य ऋषि को फल भोगना पड़ा, इस में मेरा क्या अपराध था ? फिर भी ऋषि ने मुझे शाप दे दिया ।

यमराज के करुणार्ण वचनों को सुनकर शंकरजी ने कहा—तपस्वी के वचन वृथा नहीं हो सकते, हाँ, मैं यह कर सकता हूँ कि शूद्रयोनि में रहते हुए भी तुम को ब्रह्मज्ञान बना रहेगा और शूद्रयोनिजनिष्ठ ग्लानि भी तुम को न होगी । अन्त में यमराज ने एक दासी के घर जन्म घाटन किया और उन का नाम बिदुर पड़ा, जो बड़े प्रभुभक्त और सत्तापी हुए । यह वृथा शंकरजी की थी । (गारुड अष्टक)

१—इन्द्र ने त्वष्टा ऋषि के पुत्र विद्यरूप को मार डाला । पुरवध से दुखी और क्रुद्ध हो त्वष्टा ने दारुण तप करके ब्रह्मा से देवताओं को भयभीत करनेवाले पुत्र होने का वरदान माँगा, जिस से त्वष्टा के घर 'वृत्र' नाम का परम प्रतापी पुत्र उत्पन्न हुआ । इन्द्र से बदला लेने के लिए वृत्रासुर ने चोर तपस्या करनी प्रारम्भ कर दी । उस के तप को देखकर भयाकुल इन्द्र ने दधीचि ऋषि की हड्डियों के घने बज्र से उसे मार डाला ।

पुत्र प्राप्ति था, अतः ब्रह्महत्या इन्द्र के पीछे देसी पड़ी कि जहाँ जहाँ इन्द्र गया वहाँ वहाँ उस का पीछा न होड़ा । ब्रह्महत्या, सुरासन, चोरी, गुरुपत्नी गमन और विश्वासघात इन महापातकों से वचना बटित है, इस से दुखित हो इन्द्र सिंहासन और दासी को त्यागकर तप करने पड़े । अनेक तीर्थ, मन्दिर, समुद्र, नदी, घाटा आदि में जाने पर भी जब ब्रह्म हत्या का शेष दूर न हुआ तो अन्त में इन्द्र ने हिमालय पर्वत पर आकर हनुमत् पान्द्रायण, श्रीय अस्तु में पञ्चाग्नि तप, वृष्टि में सैश्वर्य के विपत्ति, तथा शील में जलधारावास आदि के द्वारा शंकर की तपस्या में

दस हजार वर्ष निता दिये । जब इन्द्र की तपस्या से प्रसन्न होकर शिवजी उसे वरदान देने आये तो उस समय वहाँ सभी देवता उपस्थित हो गये, तब बृहस्पतिजी महादेवजी से कहने लगे कि इन्द्र ने देवताओं के कहने से वृत्रासुर को मारा है, फिर भी इन को ब्रह्महत्या लगा गई, इसे आप दूर कीजिए ।

यह सुन शंकरजी ने ब्रह्महत्या के चार टुकड़े कर दिये । एक भाग नदी में, दूसरा पर्वतों में, तीसरा रजःरज्जु स्त्री में और चौथा शूद्रसेवक प्राप्ति में बाँट दिया । इन्द्र महादेवजी के प्रताप से पहले जैसे ही हो गये । (दशमस्कन्ध)

१०—शुक्राचार्य ने जो देवों के शत्रु हैं, अर्जुन पहाड़ पर महादेवजी की घोर तपस्या करके यह वर मागा—

यदि वृष्टो महादेव विद्यां देहि मरेन्दर ।
यथा जीवन्ति सम्प्राप्ता मृत्युं सर्वेऽपि जन्तवः ॥

आप प्रसन्न हैं तो वह विद्या दीजिए जिस से मरे हुए प्राणी जी उठें । शंकरजी के तपायु कहने पर उस विद्या के प्रभाव से शुक्राचार्य के शिष्य मरे हुए दैत्य जीवित होकर युद्ध में देवतानों का सामना करने में समर्थ होते थे ।

११—बृहस्पति के विषय में कहा गया है कि ब्रह्मा ने सृष्टि करने की इच्छा में मरीचि, अग्नि और अद्विष्टा आदि सात मानसपुत्र उत्पन्न किये, उन में से अद्विष्टा ने काशी में शंकरजी का तप किया । फलस्वरूप महादेवजी ने प्रसन्न होकर वर माँगते को कहा तो अद्विष्टा ने कुछ वर नहीं माँगा, केवल यह कहा कि मुझे मिर्फ आप के दर्शनों की इच्छा थी, मैं और कुछ नहीं चाहता । इस पर महादेवजी ने कहा कि ऋषिवर, तुमने बहुत (बड़ा भारी) तप किया है

शशिष्ठ प्रभृति ऋषियों ने यह दुर्दशा देखकर कहा कि जो होना था वह हो गया, अब यह प्रभास तीर्थ में जाकर दिव्य हजार वर्ष तक महामृत्युञ्जय का जप करे, तब इस का 'तपेदिक' रोग दूर हो सकता है, अन्यथा कोई उपाय इस के अच्छा होने का नहीं है। चन्द्रमा के ऐसा ही करने से महादेवजी ने उस का रोग हर लिया। (रेवा खण्ड)

६—एक बार अग्नि को यज्ञों का माल खायाकर अजीर्ण रोग हो गया। वह किसी तरह अच्छा ही न होता था, अतः वह भृगुकच्छ नामक तीर्थ में जाकर महादेवजी का तप करने लगा। देवताओं ने भी महादेवजी की स्तुति करते हुए कहा कि प्रभो, यह अग्नि हमारा मुन्न है आप इस का रोग नष्ट कर दें। हादेवजी ने ऐसा ही कर दिया। (रेवासख्ड)

७—कुबेर के पूर्व जन्म की कथा यों है कि—क्षुद्र ब्राह्मण ने अपने गुणनिधि नामक पुत्र को तूत आदि का दुर्व्यसनी होने के कारण अपने घर से निकाल दिया। वह भूखा प्यासा भोजन की खोज में एक मन्दिर के दरवाजे पर जा पहुँचा और वहाँ शिवकीर्तन सुनने लगा। रात को सब के सो जाने पर प्रभृतिवश मन्दिर में भोग चुराने को धुसा और अपना कपडा फाड़कर वस्ती बनाकर प्रकाश किया। जन्म भोग चुराकर बाहर निकलने लगा तो पाँव लगने से एक आदमी जाग गया। उस ने चोर के सिर में ऐसी लाठी मारी कि वह वहीं मरकर ढेर हो गया।

उस दीपदान के फल से दूसरे जन्म में वह कलिङ्ग देश का राजा हुआ। पूर्वस्थिति के बल से उस ने राज्य भर के मन्दिरों में दीपदान का प्रबन्ध कर दिया। फिर मरकर वह पुलस्त्य के पुत्र विश्रवा के घर में उत्पन्न हुआ जिस से उसने महादेवजी की

उप तपस्या की। महादेवजी ने प्रसन्न होकर कहा कि तुम अपना अभीष्ट वर माँगो। ऐसा सुमधुर वचन सुनकर जय उस ने औरों को तो सब से पहले उस की दृष्टि पार्वती पर पड़ी, वह उसे कर दृष्टि से घूर घूरकर देखने लगा। इस का परिणाम यह हुआ कि उस की बाईं आँख फूट गई, यह दुर्व्यवहार देखकर पार्वती ने कहा कि यह तापस बड़ा दुष्ट प्रतीत होता है जो मुझे बुरी तरह देख रहा है। इस पर महादेवजी ने यो समझाया कि यह तेरा पुत्र है, तुझे आद्याशक्ति समझकर एकटक देख रहा है। इस के बाद महादेवजी ने उसे देवताओं का कोशाध्यक्ष बना दिया। पर कुछदि से पार्वती को देखने के कारण कुबेर नाम पड़ा, वाकी उस का सब ऐश्वर्य महादेवजी की कृपा का फल है। (शिवपुरा० अ० १६२)

८—एक बार यमराज ने मरने पर परलोक गये हुए माण्डव्य ऋषि को पूर्वजन्मार्जित कर्मागुसार शूली पर चढ़ाने का दण्ड दिया। यह दण्डभोग कर ऋषि ने यमराज के पास जाकर पूछा कि कौन से पाप से आप ने मुझे फाँसी की सजा दी है? यमराज ने कहा—अमुक जन्म में चात्यावस्था में आप ने अनेक जीवों को शूल की नोक से बाँधा था, उन की यातना से आप को नरक भोगना होगा, जिस का एक भाग आप ने शूली का दण्ड भोग लिया है। यह सुनकर अप्रसन्न हो ऋषि ने 'इतने छोटे अपराध पर यह कठोर दण्ड देकर आप ने मेरे साथ चोर अन्याय किया है' यह कह कर यमराज को शाप दिया कि तुम मनुष्ययोनि में चाण्डालजाति को प्राप्त हो जाओ।

यमराज उक्त शाप से मुक्त होने के लिए जगन्नाथ पुरी के कपालमोचन स्थान में जाकर शंकर की आराधना करने लगे। शंकरजी के प्रकट होने पर यमराज ने अपने ऊपर हुई ज्वादती की ओर उन का ध्यान

खींचते हुए कहा कि अपने कर्मफलनुसार भाण्डव्य ऋषि को पल भोगना पड़ा, इस में मेरा क्या अपराध था ? फिर भी ऋषि ने मुझे शाप दे दिया।

यमराज के करुणापूर्ण वचनों को सुनकर शंकरजी ने कहा—तपस्वी के वचन घृणा नहीं हो सकते, हाँ, मैं यह कर सकता हूँ कि शूद्रयोनि में रहते हुए भी तुम को ब्रह्मज्ञान बना रहेगा और शूद्रयोनिजनित ग्लानि भी तुम को न होगी। अन्त में यमराज ने एक दासी के घर जन्म धारण किया और उन का नाम विदुर पड़ा, जो बड़े प्रभुमत्त और ज्ञानी हुए। यह कृपा शंकरजी की थी। (नगर लवण)

९—इन्द्र ने त्वष्टा ऋषि को पुत्र विधिरूप की मार डाला। पुत्रवध से दुखी और क्रुद्ध हो त्वष्टा ने दारुण तप करके ब्रह्मा से देवताओं को भयभीत करनेवाले पुत्र होने का वरदान माँगा, जिस से त्वष्टा के घर 'वृत्र' नाम का परम प्रतापी पुत्र उत्पन्न हुआ। इन्द्र से बदला लेने के लिए वृत्रासुर ने चोर तपस्या करनी प्रारम्भ कर दी। उस के तप को देखकर भयाकुल इन्द्र ने दधीचि ऋषि की इष्टियों के बने वज्र से उसे मार डाला।

वृत्र ब्राह्मण था, अतः ब्रह्महत्या इन्द्र के पीछे ऐसी पत्नी कि जहाँ जहाँ इन्द्र गया वहाँ वहाँ उस का पीछा न छोड़ा। ब्रह्महत्या, मुरापान, चोरी, गुरुपत्नी गमन और विश्वासघात इन महापातकों से ध्वजना कटित है, इस से दुग्नि हो इन्द्र सिंहासन और शची को त्यागकर तप करने चले। अनेक तीर्थ, मन्दिर,

दस हजार वर्ष दिला दिये। जब इन्द्र की तपस्या से प्रसन्न होकर शिवजी उसे वरदान देने आये तो उस समय वहाँ सभी देवता उपस्थित हो गये, तब बृहस्पतिजी महादेवजी से कहने लगे कि इन्द्र ने देवताओं के बहने से वृत्रासुर को मारा है, फिर भी इन को ब्रह्महत्या लग गई, इसे आप दूर कीजिए।

यह सुन शंकरजी ने ब्रह्महत्या के चार टुकड़े कर दिये। एक भाग नदी में, दूसरा पृथ्वी में, तीसरा रजःखट्वा खी में और चौथा शूद्रसेवक ब्राह्मण में बाँट दिया। इन्द्र महादेवजी के प्रताप से पहले जैसे ही हो गये। (रक्षकलवण)

१०—शुक्राचार्य ने जो दैत्यों के मुख हैं, अर्जुन पहाड़ पर महादेवजी की घोर तपस्या करके यह वर मागा—

यदि तूझे महादेव विद्या देहि परेश्वर।
यथा जीवन्ति सम्प्राप्ता भृत्यु सर्वेऽपि जन्तवः॥

आप प्रसन्न हैं तो वह विद्या दीजिए जिस से मरे हुए प्राणी जी उठें। शंकरजी के तपानु कहे पर उस रिधा के प्रभाव से शुक्राचार्य के शिष्य मरे हुए दैत्य जीवित हाकर सुद्ध में देवताओं का सामना करने में समर्थ होते थे।

११—बृहस्पति के विषय में कहा गया है कि ब्रह्मा ने सृष्टि करने की इच्छा से मरीचि, अग्नि और अद्विरा आदि सात मानसपुत्र उत्पन्न किये, उन में से अद्विरा ने काशी में शंकरजी का तप किया। फल-

संन्य नहीं रहता है। दोनों ही भक्त होते हैं, सिर्फ ईश्वरीय बात करते, ईश्वरीय प्रसंग लेकर रहते और भक्तों की सेवा करते हैं। पर इस तरह शोक हो, तो दोनों ही अच्छे भावनाले होने चाहियें। दोनों यदि उस ईश्वरसंबन्धी आनन्द को पा चुके हो तभी यह संभव होता है। भगवान् की विरोध कृपा चाहिये, नहीं तो हमेशा पति की मेरे मेल होता है, एक को दूर इतना होता है। यदि दोनों में मेल न हो, तो बड़ी यन्त्रणा, जन्तान्ति होती है।

३—संसार में रहना हो, तो सुख दुःख भी लगा हुआ है, थोड़ी बहुत तो अशान्ति रहती ही है। राजकुं को कोठरी में रहने से तन पर कुछ कालिख लागती ही है। हयेलियाँ ब्रह्मकर प्राप्त और साथ काल 'हरिनाम' भजना चाहिये। (मवलत यह है कि मन की चञ्चलता के कारण ध्यान जब न हो सके पर भी भगवान् का नामकीर्तन तो सहज में हो जायगा)

४—समी को, कहने से संसार का त्याग नहीं होता। जिन के भोगों का अन्त नहीं हुआ, उन के लिए संसार का त्याग करना कृपा है। उन को वो निष्काम करने करने का प्रयत्न करना चाहिये।

५—संसार करो, उस में दोष नहीं, पर ईश्वर पर मन रखकर करो। यह जानो कि मन संपत्ति, अनीन जायदाद, ठीर ठिकाना, बरिबार ये सब तो मेरे नहीं, ये सब ईश्वर के हैं, मेरा तो बरिबार है ईश्वर के पास। मैं यह कहता हूँ, उन के चरण-कमलों में भक्ति होने के लिए व्याकुल होकर सर्वदा श्रमार्थ करो।

६—संसारी लोग यदि हरिनाम लिया करें, तो बहादुरी है। देखो न, जन्म राजा खूब बहादुर थे, साथ ही मानों वो तलवार खींचते थे—एक ज्ञान की और दूसरी कर्म की। ऐसे संसारी लोगों को एक ओर रहता है पूर्ण भक्तान और दूसरी ओर वे सासारिक कर्म करते रहते हैं।

७—यह बहुत अच्छा है कि घन है, ऐश्वर्य है और भी, ईश्वर की पुकार (मनन कर) रहे हो। गीता में कहा है, जो योगभ्रष्ट हैं, वे ही भक्त होकर धर्मियों के घर में पैदा हुआ करते हैं,—

“शुचीनां श्रीपतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिप्रायते।”

—गी. ११.१

८—किर संसार में रहो, जहाँ में जूटी पतलों की तरह। जहाँ जूटी पतलों को कभी मकान के अंदर ले जातो है, तो कभी बूढ़े करकट के कत-बारखाने में। हवा जिस ओर बहती हो पतल भी वही ओर जाया करती हैं, कभी अच्छी जगह में गई तो कभी बुरी जगह पर। तुम अब संसार में फँके गये हो, अच्छी बात है, अब वही जगह पर रहो; किर जब वहाँ से उड़ाकर उस से भी कहीं अच्छी जगह पर वे (ईश्वर) फँकेगे, तब जो होता हो बड़ होगा। उन पर जात्मसमर्पण (अपने को निष्ठाकर) करो। ऐसा हो तो किर कोई भी गोल बात न रहेगी। तब देखोगे कि वे ही सब कुछ कर रहे हैं, सभी 'शाय की इच्छा' है।

९—ईश्वर की वार ईधते हैं। एक बार तो जब वो माई आपस में समीन का बकरा करते भी। रस्ती से नाव जोलकर चले हैं कि 'ईश्वर मेरे

जमीन है, उधर तेरी है।' ईश्वर यह सोचकर हँसते हैं कि यह सारा जगत् तो है मेरा; उस की थोड़ी सी मिट्टी लेकर ये झाड़ते हैं कि 'इधर मेरी है, उधर तेरी।' ईश्वर और एक बार हँसते हैं। लड़के का रोग दुःसाध्य (कठिन) है। माँ रो रही है, वैद्य आकर कहते हैं—“हर क्या है? माई, मैं अच्छा कर दूँगा।” वैद्य नहीं जानते कि ईश्वर यदि किसी को मारें, तो किस का साध्य (शक्ति) है कि उसे रक्षित करे?

१०—पङ्क में रहनेवाली मछली की तरह रहो। वह पङ्क में रहती है, पर वह बदन में नहीं लगता। ईश्वर के ऊपर मन को स्वच्छ रखकर संसार के सारे काम निकालो।

११—सभी काम फाज करोगे, पर मन ईश्वर की ओर रखना। स्त्री, पुत्र, वाप, माँ सभी को लेकर रहोगे और उन की सेवा भी करोगे, मानों वे कितने ही अपने हैं, परंतु मन ही मन जानना कि वे तुम्हारे कोई नहीं। बड़े अमीर आदमी के घर की नौकरानी सब काम फाज करती है, पर उस का मन देश में अपने ही घर की ओर पड़ा रहता है। इधर वह प्रभु के बालशो को अपने बर्तों की तरह पालती है और कहती है 'मेरा राम' 'मेरा हरि'। पर अपने मन में भली भाँति जानती है कि 'ये मेरे कोई नहीं हैं'। संसार में सब कर्म करोगे, पर अपने ही घर की ओर, जमीर के घर

की नौकरानी की तरह, अपना मन ईश्वर की ओर लगा रखना।

१२—चैतन्य (ज्ञान) लाभ के बाद जाकर संसार में रहो। बहुत उद्यम कर यदि किसी को सोना मिले, तो वह उस सोने को मिट्टी में दबा रख सकता है, वकस के भीतर रख सकता या जल के अंदर भी रख दे सकता है, पर सोने का पुष्ट नहीं होता। मैं कहता हूँ, अनासक्त होकर संसार करो। हाथों में तेल लगाकर कटहल तोड़ो, तो हाथों में कटहल का लासा नहीं लगेगा। कष्ट मन को संसार में रख छोड़ने से मन मलिन हो जाया करता है। ज्ञानलाभ कर तब संसार में रहना चाहिए। शुद्ध जल में भी दूध रखने से नष्ट हो जाता है। उसी दूध का मक्खन चटाकर जल के ऊपर रख छोड़ने से फिर कोई हर नहीं रहता।

१३—संसार में—बिरोध कर कर्मों के भीतर—रहकर पहले पड़ल मन स्थिर करने में बहुत ही विघ्न होते हैं। जैसे, मार्ग के पार्श्वस्थ पेड़; जब अशुभ रूप में 'रहते' हैं, तब उन्हें घिराव में घिरे हुए न रखने से गाँयें, बकरें खा लेते हैं। उन्हें पड़लो अवस्था में घेरे में रखना होता है। प्रकाण्ड हो जाने पर फिर घिराव की आवश्यकता नहीं रहती। तब तो उस मोटे प्रकाण्ड में हाथी बाँध छोड़ने से भी पेड़ का पुष्ट नहीं बिगड़ता है।

(क्रमशः)



मृत्यु

(ले०—ज्ञानदपस्त्री श्री गीतानन्दजी शर्मा)

मरण का भय जीवमात्र को होता है, इस को शास्त्रीय परिमाण में अभिविवेक कहते हैं जो कि पाँच कलेशों में एक है। हर एक जीव को जो दुःख पड़ाने पड़ते हैं उन में से मौत का दुःख सब से अधिक होगा ऐसा मालूम पड़ता है। क्योंकि यह बात केवल अनुमान के ऊपर निर्भर है, सुगुरु, त्रियमाण या मृत व्यक्ति का चेहरा देखकर अनुमान किया जा सकता है कि मृत्यु कोई भयानक घटना है। वस्तु यह क्या चीज है यह तो मृत व्यक्ति ही जान सकता है अथवा नहीं भी जान सकता, क्योंकि कहा जाता है कि मृत्यु के अव्यवहितपूर्व क्षण में उस व्यक्ति को मूर्च्छा घेर लेती है। इस दशा में वह भी मौत का स्वरूप नहीं जान सकता। जो कुछ हो, मृत्यु के दर का अपलाप नहीं किया जा सकता।

यह बात सर्वजीवसंमत होने पर भी दार्शनिक पण्डितों का मत इस के विपरीत है, इस का मुख्य कारण यह है कि पण्डितों की राय यह है कि मृत्यु के पश्चात् दूसरा जीवन लब्ध होता है। मृत्यु जाने से ही जीवन का अन्त न समझ लेना चाहिए। जिस विषय में अन्यत्र प्रमाण नहीं मिलता उस के बारे में मतभेद होगा तो स्वाभाविक ही है। इस महात्मन का मराइ तो अनन्त है इस लिए भगवान् के वचन का आतंक्य मानकर यह समझना चाहिए कि आगे पुनर्जन्म अवश्य है और यह मान लेने पर सुदीर्घकाल से चली आई जन्मान्तरवाद की परंपरा सिद्ध हो गई। कुछ लोग ऐसे भी हैं जिन का यह विचार है कि यह शरीर ही सब कुछ है। उन की चर्चना यह

है कि मृत्यु होकर जब सब शरीर नष्ट हो गया तो फिर बाकी आत्मा आदि कुछ नहीं रहता। ये लोग भी एक श्रेणी के दार्शनिक कहलाते हैं। यह मत सब देशों और सब कालों में रहा है। भारतवर्ष में इस के प्रधान एवं प्राचीनतम आचार्य चार्वाक नामक कोई महापण्डित थे। इस दल के लोग जानकर नास्तिक कहलाते हैं। उन के अनुयायियों को छोड़कर क्या सम्भव, क्या असम्भव प्रायः सब लोगों का यह विश्वास है कि यह देह जीवन का अविष्टानमात्र है। जन्म और मरण जीवात्मा के साथ शरीर का योग होना और वियोग होना ही कहलाता है। एक शरीर नष्ट होने के बाद जीवात्मा का अत्यन्त नाश नहीं होता, एक देह के नष्ट हो जाने पर जीव दूसरे में प्रवेश करता है। वर्तमान समय में यही मत सब को प्राप्त हो गया है, यहाँ तक कि पाश्चात्य देशों में भी लोग मृत्यु-विवाद को धीरे धीरे छोड़कर विश्वास करने लगे हैं कि मृत्यु के बाद भी जीवन है। वे लोग अपने अभ्यवसाय द्वारा मृत व्यक्ति का दर्शन तक कर लेते हैं तथा बात चीत का सम्बन्ध भी स्थापित होने सुना गया है। कहीं तक कहा जाय, वहाँ के पण्डितों ने इस मसले की अधिक गवेषणा करने के लिए एक वैज्ञानिक शाखा स्थापित की है जिस का मुख्य काम यह है कि मृत्यु के परवान् होनेवाली बातों का अनुसंधान इस जीवन में ही कर लिया जाय। इस विषय में गीतकार का मत बता देना अनुचित न होगा—

वासतिं क्षीर्णानि यथा विहाय

मवानि श्रद्धाति नरोऽपराणि ।

तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-

न्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥

—गी० २।१२

जैसे कोई मनुष्य पुराने वस्त्रों को छोड़कर नये ग्रहण करता है वैसे ही शरीर का स्वामी आत्मा पुराने शरीर को त्यागकर दूसरे नये शरीर धारण कर लेता है।

किंतु यह विषय इतना सहज बोधगम्य नहीं है जितना मालूम होता है। इस की विशेष गीतांसा कपिल मुनिजी के सांख्य द्वायन में की है, उन का मिद्धान्त और वेदान्त का सिद्धान्त एक ही है। कहना न होगा कि इस से गीताकार की भी इस में संमति है।

न जायते त्रिपते वा कदाचि-

न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।

अथो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो

न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥

—गी० २।२०

अर्थात् जन्म मृत्यु मिथ्या ही है। इसी हेतु से अविवक्षित वस्तु का टर भी अलीक अयौक्तिक है। तात्पर्य यह है कि मृत्यु डरने की वस्तु नहीं है, इस विषय में योगसिद्धि ने कुछ अंग उद्धृत किया जाना है—

‘वसिष्ठजी का कहना है कि मृत्यु से टपना तो पितृव्य गुरुता है, क्योंकि मृत्यु का दो में ने एक ही अर्थ हो सकता है, या तो मरने पर मृत्यु का मरनेवाला मरना हो जाना या मृत्यु के बाद उसे दूसरा जीवन मिलना। इन दोनों बातों में ने जो भी हो अच्छी ही है। अन्त ही हो गया तो हर कित यात्रा का ? परंतु सब आकाश और नुमीयों ने मरने के लिए

छुट्टी मिली; जीवन का, जिस में नाना प्रकार के हेशे सहने पड़ते हैं, झंझट ही मिला। ऐसा होने से अफसोस किस बात का और हर किस बात का है ? मृत्यु से जीवन का अन्त नहीं होता बल्कि एक शरीर को छोड़कर दूसरे में प्रवेश होता है तो फिर भी डर या अफसोस क्यों हो ? पुराने और रोगी शरीर को छोड़कर नये में प्रवेश करना किस को बुरा लगता है ? यह तो ऐसा ही है जैसा कि फटे पुराने कपड़ों को फेंककर नये कपड़े पहनना अथवा पुराने, टूटे फूटे मकान को छोड़कर नये मकान में प्रवेश करना। ऐसा होने पर तो दुःख के बजाय सुख ही मानना चाहिए। अगर मौत से प्राणी का सर्वथा नाश हो जाता हो और मरकर फिर किसी प्रकार का जीवन न हो तो इस से बढ़कर कौन सा लाभ है ? क्योंकि तब तो संसार के सभी दुःखों से छुटकारा मिल गया; होने न होने या लेने देने के जर की शान्ति हो गई। ऐसी मौत ही तो सचा जीवन है, क्योंकि उस के बाद न सुख है न दुःख। मृत्यु के पीछे जीव को यदि दूसरे नवीन शरीर की प्राप्ति होती है तो बहुत ही हर्ष का अवसर है, क्योंकि तब तो मौत का अर्थ शरीर का ही नाश है। ऐसा होने पर तो सुखी होगा चाहिए, एक शरीर को छोड़कर यदि दूसरा शरीर मिलता हो तो बहुत ही खुशी की बात है; मरने पर तो आनन्द ही होना चाहिए न कि अफसोस ! यद्यपि आत्मा के अस्तित्व का कभी लोप नहीं होता तथापि उस का जन्म मरण अवश्य होता है, यह मानकर उपर्युक्त बातें कही गई हैं।

घास्वय में जन्म मरण का अनुभव होना आत्मा को अज्ञानमूलक है; गीता के मत से आत्मा अशोध्य है; कारण, प्राणमय कोष का आना जाना ही जन्म व मृत्यु कहा जाता है। पाठकों को यह कहना अभा-

वश्यक है कि उपर्युक्त उद्धरणों में मन्थ से श्लोक इत-
स्तव चुन लिए गये हैं, अब उपसंहार में वैसे ही
श्लोक लेकर यह दिखाया जाता है कि आत्मा के लिए
जीवन मरण दोनों मिथ्या घटनाएँ हैं।

चेतन पुरुष (आत्मा) न कभी जन्म लेता है न
मरता है, भ्रम के कारण स्वप्न की नाई इन सब
वातों का अनुभव करता है। पुरुष तो चेतनामात्र
है, वह कब और कहाँ नष्ट होता है? चेतना के
अतिरिक्त पुरुष में और क्या है? लाखों शरीरों का
नाश होता रहता है, लेकिन चेतन आत्मा तो अक्षय
रिप्त रहता है। कौन ऐसा जीव आज तक मरा है

जिस की चेतना किसी प्रकार नष्ट हो गई हो? वास-
नाओं की नाता रूपों में तबदीली होने का नाम ही
जीवन और मरण है। न कोई मरता है न व्यस्र
होता है, केवल भगनी वासनाओं के भँवरवाले गड्ढे
में गिरकर छोट पोटा होता रहता है।

यदि आत्मा का जन्म मरण मिथ्या कायम हुआ
तो वन्ध मोक्ष भी सुतरा वैसे ही हैं। आत्मा के
बन्धन का अभाव बहुत सुन्दर रूप से कपिलजी ने
अपने साख्य दर्शन में विशद किया है, किसी
आगमी अङ्क में उस का विचार पठकों के सामने
रखा जायगा।

पुकार

(२०—श्री लक्ष्मीप्रसाद त्रिपाठी 'अकिञ्चन')

हम मनु के लघु पापर चाकर ।

प्रभुसेवा की आश लगाए, दृगकोरों में प्यास जगाए ।

जगजीवन के कण्ठक पय पर, आहत विश्व बट रहे सत्वर ॥

पदपङ्कज की विपन्न चाकरी, मैं रख लो अब तो करुणाकर ।

हमें न विभ्रम बनीजी देना, हमें न दृष्ट रहा सुख लेना ॥

इस काया की नाथ परोहर, श्री पद पर अर्पित कर देना ।

पावन पदनख की मृदु आभा, दो अन्तर्य आनन्द का निर्भर ॥

प्यास लिए था रोता ग्याया, अब तक बुझा उसे ना पाया ।

नित रोकर पर रोकर खायी, भ्रम की गाँठ खोल ना पाया ॥

प्राणयिक अब तो अङ्कुलाकर, रहा गुहार पकित दुखकातर ।

मध्य मार्ग के दुगम तट पर, विजम्भर मनमोहन नटवर ॥

ले करुणा की पावन शोभी, नाथ करो, कर दद ठिठोली ।

दीन 'अकिञ्चन'—सकल पुकारों, निज पद सेवा में अपनाकर ॥

सती और संतोषी

(ले०—भीमती विमूति देवी अध्यापिका)

स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ।

किसी नगर में एक बहुत बड़े सेठ रहते थे। उन के घर में सात पुत्र, सात पुत्रवधू, स्वयं सेठजी, सेठानी और एक साधु, इस प्रकार सत्रह प्राणियों का कुटुम्ब था। एक समय उस देश के एक प्रसिद्ध ज्योतिषी ने सेठजी से आकर कहा—‘सेठजी ! बड़ा भारी अकाल पड़नेवाला है, बारह वर्ष तक वर्षा नहीं होगी, अन्न बिना देश उजाड़ हो जायगा। कहाँ तक कहें, योग भयानक पड़े हैं, उन के फल से बारह कोस दूर भी मुश्किल से दीया जलेगा।’ यह फलादेश सुनकर बनिये के होश उड़ गये। दुर्भिक्ष की विभीषिका से बचने के लिए सेठ ने अन्न का बहुत बड़ा संग्रह किया और अपने घर में आज्ञा दी कि आज से मेरे सब कुटुम्बी लोगों को दो दो रोटी नित्य मिला करेंगी। बारह वर्ष तक सब लोगों को इतने आहार पर ही निर्वाह करना होगा, अब अनेक व्यञ्जन खाकर शरीर पुष्ट करने का प्रश्न नहीं है, सयाल है येन फेन प्रकारेण जीवित रहने का, अतः सब को फड़ाई से इस व्यवस्था का पालन करना होगा।

सेठ का यह हुक्म सुनकर क्रमशः छ पुत्रवधूओं ने कुटुम्ब का भोजन पकाना छोड़ दिया, उन्होंने कहा कि हम लोग, इस नियम से रोटी बनाकर गिनती से नहीं खिला सकती। यदि किसी ने दो रोटियों में अधिक रोटी माँग ली तो हम उस को क्या कहेंगे, क्या करेंगे ? हम से इन्कार करते नहीं बनेगा। अधिक देने पर सेठजी की आश्लेष्यता का दोषी होना पड़ेगा इस से रसोई बनाना हमारे काबू के बाहर की

बात है। किंतु सतवती पतिव्रता छोटी बहू ने रोटी बनाना स्वीकार कर लिया। घर में और तो सब लोग दो दो रोटी खाकर उठ जाते थे, किंतु उस सब से छोटी बहू का पति बड़ा जवान था, वह दो रोटी खाने पर भी भूखा रह जाता था, इस से और रोटी माँग लेता था। तब वह भाग्यवाली अपना हिस्सा भी उसे दे देती थी, इस तरह अपना भाग पति को खिलाकर आप वतनों को धोकर पी लेती थी।

उपर सेठ के मकान के बाहर बगीचे में शिवालय के पास कुटिया में जो साधुजी रहते थे, उन के पास एक साधु आ गया। पहला साधु दूसरे को एक रोटी देकर दूसरी स्वयं खाता था। एक दिन कोई तीसरा साधु आ गया। पहले साधु ने अपने भाग की रोटी उसे खिलाती शुरू की और आप जंगली फलों तथा पत्तों के रस पर निर्वाह करने लगा। यह साधु हृषीकेश के तपोवन में रह चुका था, वहाँ भी अन्नछत्रवाले प्रत्येक साधु को प्रति दिन दो रोटी देते हैं। इस प्रथा को माधुकरि कहते हैं, वसी तरह यहाँ भी साधुजी को सेठ के घर से दो माधुकरि नित्य मिला करती थीं।

इस प्रकार निर्वाह करते जब एक वर्ष व्यतीत हो गया तो एक दिन खूब जोरों से पानी बरसा। यह देखकर साहूकार ने आश्चर्य करते हुए ज्योतिषीजी को बुलाकर पूछा कि क्या कारण है जो वृष्टि हो गई ? आप तो कहते थे कि बारह वर्षों तक पानी नहीं बरेगा। क्या शास्त्र झूठे हैं या आप अनभिज्ञ हैं ? आप का फलादेश आज तक कभी मिथ्या नहीं हुआ,

आप का गणित और फलितज्ञान बहुत ऊँचा है। आप की पण्डितारी सची है, इस पर मुझे पूर्ण विश्वास है, क्योंकि अनेक बार मैं ने आप की योग्यता का परिचय पाया है, पर इस बार आप से यह भारी भूल कैसे हो गई ? यह सुनकर कुछ सोच विचार करते पर व्योतिवीजी ने जवाब दिया—‘तुम्हारे घर में जो सब से छोटी बहू है वह पतिव्रता है, वर्तनों का धोवन धीकर जीवित रहती हुई तुम्हारे सारे परिवार की सेवा कर रही है। और तुम्हारे मकान के बाहरवाल बागीचे की बुटिया में जा साधुनी रहते हैं वे परम सतीप्री हैं। वे अपनी दोनों रोटियाँ साधुओं को खिलाकर आप वन्य कन्द फलों से निर्वाह करते हैं। इन सभी स्त्री और सतीप्री साधु के तप प्रभाव से यह सुदृष्टि हुई है।

कहने का भाव यह है कि जो स्त्रियाँ सती हैं तथा जो सत सतीप्री हैं, वे जहाँ रहेंगे, उस परिवार या देश को कभी कष्ट नहीं हो सकता। जैसे ही पुत्रों से जमीन आसमान टिके हुए हैं, नहीं, तो आकाश में रंभे तो हने नहीं है और न जमीन किसी लोटे से ही बँध रही है। वे ही सम्भ और आधार हैं। किंतु सती अर्थ में स्त्री को सती होना चाहिए। पर सती के माने यह नहीं कि कठपुतली की तरह हर बात में पति का मूँह जोहती रहे, पति न खाये तो आप भी न खाये, चाहे पतिदेव जूवा खेले में ही क्यों न व्यस्त हो। पुरानी स्त्रियों को साथ स्त्रियों में परिभूत पतिव्रत की भी आवश्यकता है।

ऐसी पतिव्रता सती वे हैं जो सब से पहले अपने स्वरूप को पहचानती हैं, अपनी धर्मोदा पर स्थित हैं, अपने नियमों को पालती हैं, घर का स्वर्ग बनाने में स्वतन्त्र हैं, बुद्ध को एकमूल में माला की तरह गंधने में शत्रु हैं। योग्य पतियों का चुनाव करने की

स्वतन्त्रता भी सतियों में देखी जाती है। सीता, पार्वती, द्रौपदी प्रभृति ने अपने पतियों का स्वयं चरण किया था। सावित्री ने पतिदेवता का स्वयं चरण ही नहीं किया, बल्कि उसे मृत्यु के आक्रमण से भी छुड़ाया था। सती स्त्रियाँ अपने पतियों को कुमार्ग पर नहीं जाने देती, वे उनको दुर्वर्तन से हटा देने में लक्ष्मी नहीं, समर्थ होती हैं। जिस में बुद्धिसेवा का साहस हो, जो आप न खाकर दूसरों को खिलावे, जो अपने पर कुदृष्टि करने वालों की ओरों निवालकर पोंकों तले कुचलने की सामर्थ्य रखती हो, जो सुपतियों की धर्मपत्नी हो, जो पूर्व कामी पतियों के लिए काली नागिन हो और सतियों के लिए जिस की ओरों फूलों की पेंसिलों की तरह चरणों के नीचे बिछ जायँ उस को सती कहते हैं। जिस की बाणी बुद्धि से प्रेरित न हो, जिस का पाप से हृदय कलुषित न हो, जिस की एक कुदृष्टि करके आततायी निगडू ताकने की ताकत न हो सकता हो वह सती है। ऐसी सती जहाँ होगी वहाँ बुद्धि न हो, वहाँ अकाल पड़ जाय, ऐसा कैसे हो सकता है ?

इसी तरह सतीप्री वे हैं जो दूसरों के लिए ही सब कुछ दिया करते हैं। जिन का अपना कोई स्वार्थ न हो, प्रयुक्त परार्थ ही जिन का स्वार्थ हो, जो दूसरे के पसीने की तरह अपना खून खर्च कर दे, जो आप भोग कर दूसरों को छाया में कर दे वह सतीप्री है।

जो क्षण पर क्षण घरे बैठा हो, हरदम मुँह की तरह पड़ा रहता हो, जहाँ पड़ा है, जिस दशा में पड़ा है उसी में स्तुष्ट हो रहता हो वह सतीप्री नहीं है। वह तो आलसी है, दुरिग्रियों का राजा है। भर्जुन ऐसा ही होने जा रहा था, इस पर भगवान् से न रहा गया, उसे फटकारकर कहा—

सती और संतोषी

(ले०—श्रीमती विभूति देवी अध्यापिका)

स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ।

किसी नगर में एक बहुत बड़े सेठ रहते थे। उन के घर में सात पुत्र, सात पुत्रवधू, स्वयं सेठजी, सेठानी और एक साधु, इस प्रकार सत्रह प्राणियों का कुटुम्ब था। एक समय उस देश के एक प्रसिद्ध ज्योतिषी ने सेठजी से आकर कहा—‘सेठजी ! बड़ा भारी अकाल पड़नेवाला है, बारह वर्ष तक वर्षा नहीं होगी, अन्न बिना देश उजाड़ हो जायगा। कहाँ तक फल, योग भयानक पड़े हैं, उन के फल से बारह कोस दूर भी मुश्किल से दीया जलेगा।’ यह फलादेश सुनकर बनिये के होश उड़ गये। दुर्भिक्ष की विभीषिका से बचने के लिए सेठ ने अन्न का बहुत बड़ा संग्रह किया और अपने घर में आग्रा दी कि आज से मेरे सब कुटुम्बी लोगों को दो दो रोटी नित्य मिला करेंगी। बारह वर्ष तक सब लोगों को इतने आहार पर ही निर्वाह करना होगा, अब अनेक व्यञ्जन खाकर शरीर पुष्ट करने का प्रयत्न नहीं है, सबाल है येन फेन प्रकारेण जीवित रहने का, अतः सब को कड़ाई से इस व्यवस्था का पालन करना होगा।

सेठ का यह हुकुम सुनकर क्रमशः छ पुत्रवधूओं ने कुटुम्ब का भोजन पकाना छोड़ दिया, उन्होंने कहा कि हम लोग, इस नियम से रोटी बनाकर गिनती से नहीं खिला सकतें। यदि किसी ने दो रोटियों से अधिक रोटी माँग ली तो हम उस को क्या कहेंगी, क्या करेंगी ? हम से इन्कार करते नहीं बनेगा। अधिक देने पर सेठजी की आशोत्सलह्वन का दोषी होना पड़ेगा इस से रसोई बनाना हमारे काय के बाहर की

चात है। किंतु सतवती पतिव्रता छोटी बहू ने रोटी बनाना स्वीकार कर लिया। घर में और तो सब लोग दो दो रोटी खाकर बठ जाते थे, किंतु उस सब से छोटी बहू का पति बड़ा जवान था, वह दो रोटी खाने पर भी भूखा रह जाता था, इस से और रोटी माँग लेता था। तब वह भाग्यवाली अपना हिस्सा भी उसे दे देती थी, इस तरह अपना भाग पति को खिलाकर आप वतनों को धोकर पी लेती थी।

उपर सेठ के मकान के बाहर बगीचे में शिवालय के पास कुटिया में जो साधुजी रहते थे, उन के पास एक साधु आ गया। पहला साधु दूसरे को एक रोटी देकर दूसरी स्वयं खाता था। एक दिन कोई तीसरा साधु आ गया। पहले साधु ने अपने भाग की रोटी उसे खिलायी शुरू की और आप जंगली फलों तथा पत्तों के रस पर निर्वाह करने लगा। यह साधु हृषीकेश के तपोवन में रह चुका था, वहाँ भी अन्नछत्रवाले प्रत्येक साधु को प्रति दिन दो रोटी देते हैं। इस प्रथा को माधुकरी कहते हैं, उसी तरह यहाँ भी साधुजी को सेठ के घर से दो माधुकरी नित्य मिला करती थीं।

इस प्रकार निर्वाह करते जब एक वर्ष व्यतीत हो गया तो एक दिन खूब जोरों से पानी बरसा। यह देखकर साहूकार ने आश्चर्य करते हुए ज्योतिषीजी को बुलाकर पूछा कि क्या कारण है जो वृष्टि हो गई ? आप तो कहते थे कि बारह वर्षों तक पानी नहीं बरसेगा। क्या सात मूठे हैं या आप अनभिष्ट हैं ? आप का फलादेश आज तक कभी मिथ्या नहीं हुआ,

साधारण सप्तरी पुत्र मन में जो मान रखते हैं वही के मातृक शब्द बोलते हैं, पर सारी लक्ष्मियों के बोलने के मातृक शब्द कबहंती बन जाया है। सावित्री की पमरास में पुत्रवती होने की आशीर्ष हो तो रिचि का नियम तोड़कर सपथान् को भीतर ही बड़ा। प्रमुष्पान में बैठे हुए महात्म्य मुपरीरासकी ने अनन्तान में एक की को शीशम्प वती होन को बह दिया तो उस पर श्रुतवति भी बड़ा। इसी तरह अम्पनी अक्षया में कोई सप्त सत फिरी की 'समुद्र' की माली दे दे, तो वह जिन्सी हो तो भी पुत्रवत् बनकर लड़के के विवाह में समुद्र होने का होशामय या जापगा। अम्पु सत्य वाणी की दित नीलने के छिप को यगवान् कहने हैं उस का और समतिगुण का फल सब बचत होय है सब तन्मुखार शिक्षा उपदेश, प्रवचन और अध्यापन द्वारा लोगों का उपकार किया जाता है, अथवा मन्त्र आदि की सिद्धि से सर्वलाभकारक बनना की दित होता है। दित के बाद वाणी का विद्यमान गुण है जिस के व्यवहार से सर्वसिद्धता और संमान तो मिलता ही है यदि मनुष्य पूर्वजन्म के पुण्यपुत्र से कामेयी का कृपापान बन जाय तो कवित्व शक्ति काकर दश, दश, व्यवहारमान पापनाश और सब गुण की शक्ति से साक्षात्पुत्र को भी गुण्य समझता है। इस में और उन्नति हुई तो प्रभु के लोका, गुण नामकीतन से बनने व वाचुक मल्लो के मानस की कान्तिसिधु में मन कर सकते हैं और अन्त में प्रमुष्पति काके कनक्य हो सकते हैं। तत्पर्य यह है कि ऐसी सम्पन्न वणो कोकरा सब से बड़ी लक्ष्मण है, इस कामपनु लीखर वाणी की कपासना से सब कामना, चारी पुत्रवर्ष सिद्ध हो जाते हैं। इस प्रकार वाणी के दितत्व गुण का ही एक अत्यन्त बड़ा

स्वाध्यायाम्पसन है, स्व-आत्मा के बलविकारक अम्पय-पठन पठन का अम्पमन-विना नाता नियम रक्षता, यह सब का मान है। इस त्रिष स्वाध्याय में विरह भर की क्रियाओं का समवेष्ट होता है और सपूर्ण सद्गुणों का कोई सम्भार या आधार हो सकता है तो वह साजोपाज वेद ही है।

सज्जन, सम्य है कि वेद का स्वाध्याय मुम्हारे बस की बात न हो, इस के लिए पराम कृपालु कैपापन (स्मात्), वाङ्मोक्ति, मुकुली आदि श्रुतियों में गीतापथित महाभारत भागवत, रामायण रच दिये हैं जिन से मुम्हारा काम बहुत सहज हो गया है। इतना स्वाध्याय मुप दन से कर को तो हिर, चाहे मुन की मनु कोई होभी, वेरो के स्वाध्याय की योग्यता या अधिकार अवश्य या लभ्यो। वनों की मुवर्द्धि हो तो सरकता से इन चर्कों में हुई है। अम्पु, यदि यह स्वाध्याय आप का आचयन और बीड़ी का अग्निहोत्र करते हुए अक्षवार पढ़ने में किया जायगा या तिलकयो उपचार, कहानी विवेका में समग्र नष्ट होगा तो इसे भी एक तप कह सकते हैं पर इस का फल बीवती चाय से अधिक कुत्रसावेचला और तबान् से अधिक जहरीला ही होगा यह याद रखी।

मगवान् से अर्थात् हुई अपर कथित रीति से यह शोचकर कि 'मैं जो बोल रहा हूँ वह सत्य है, सिय है, दित है।' ये तीन मल चुकते हुए तथा इन प्ररनी का बसर अन्त धामा से अनुकूल मिलने पर आपस करोते तो बहुत बक बक करने में बल बर्बाद न होय, इस से मुम्हारी बड़ी अद्भुत शक्ति बढ़ेगी। यह वास्तव्य तप मनुष्य की बर ताह से उन्नति करनेवाला है।



सुखी जीवन

(ले०—पौ० श्री वासुदेवशास्त्री तैलङ्ग, शु० द्वै० वे० विशारद)

शिष्य—आदरणीय गुरुवर्य, एक दिन किसी प्रस्तर मूर्ति को अजायब घर (संग्रहालय) में देखकर मैं ने आप से बड़े वृत्तुहल से पूछा था कि ये मूर्तियाँ जो इतनी सुदृढ हृष्ट पुष्ट, प्रत्येक अङ्ग के अवयव से गठी हुई दीखती हैं, क्या वास्तव में प्राचीन पूर्वज ऐसे ही विशालकाय होते थे या यों ही ये मूर्तियाँ शोभार्थ स्थापित हैं ? तब आप ने कहा था कि यह प्रश्न तो प्रत्येक मनुष्य के लिए लाभकारी है और प्रत्येक मनुष्य का इस से अत्यन्त घनिष्ठ संबन्ध है, इस पर फिर विचार करेंगे । आज उस का समाधानात्मक उत्तर दीजिए ।

गुरु—भिय बत्तम, जैसा सुन्दर प्रश्न स्वस्थ रहने का तुम ने किया है ऐसा ही एक समय प्रसिद्ध पद्मल-वान 'सेडो' ने अपने पिता से पूछा था कि ये मूर्तियाँ इतनी गठी हुई, मजबूत, मसोहर और प्रत्येक अङ्ग से चमकती फड़कती मालूम होती हैं । क्या ऐसे मनुष्य भी हो सकते हैं ? तब पिता ने उस की बस्ताह एवं उन्नतिपूर्ण बातें सुनकर कहा कि ये मूर्तियाँ उस समय की हैं जब शारीरिक बल तथा आत्मिक बल ही सब कुछ था । उस समय मनुष्य कायिक, वाचिक, मानसिक बल से पूरा भरा हुआ रहता था । इन शब्दों ने दुबले पतले उदासीन 'सेडो' के शरीर में आश्चर्य-कारक विजली सा प्रवाह पहुँचाया और वह थोड़े दिनों में विश्वविख्यात 'सेडो' हो गया, जिस का सानी कहीं भी न था । आजकल 'सेडोव्यायाम' का घर घर प्रचार हो रहा है, क्या तुम भी इसी प्रकार आदर्श पुरुष बनोगे और संसार में अपना उदाहरण छोड़ोगे ?

शिष्य—ऐसा स्वास्थ्य कब और कैसे ठीक हो सकता है यह भी तो कहिए ?

गुरु—नीति पुकार कर कहती है कि 'धर्माधिकार-मोक्षार्ण शरीर साधनं परम् ।' धर्मादिसब इसी शरीर से होते हैं और यही शरीर यदि रोगी हुआ तो हम किसी कार्य के करने में समर्थ नहीं हैं । जब शरीर निरोग एवं हृष्टपुष्ट होगा तो हमारे स्वास्थ्य तथा विचार सवल होंगे और स्मरणशक्ति भी हरी भरी रहेगी । कहावत है कि जैसा शरीर होगा वैसा ही मस्तिष्क भी होगा । प्रत्येक क्षण हम देखते हैं, जो मनुष्य दुखी है, वह चिड़चिड़ा, उदासीन एवं शरीरसंपत्ति से हीन है, इस के विपरीत जो सुखी है, वह स्वस्थ, तंदुरुस्त है, प्रत्येक कार्य को उल्लसता कूदता हुआ अन्धे मनोयोग से कर सकता है ।

शिष्य—स्वस्थ मनुष्य के क्या लक्षण हैं ?

गुरु—आयुर्वेद में कहा है—

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः ।
प्रसन्नात्पेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते ॥

जिस मनुष्य के वात पित्त कफ बराबर हों, अन्न पचानेवाली और भूख लगानेवाली अग्नि ठीक हो, जिस के रस, रक्त, मेदा, अस्थि, वीर्य, मल, मूत्र उचित अवस्था में हों, जिस के जात्मा, इन्द्रिय, मन, प्रसन्न दया अपने कार्यों में लगे हों वह पुरुष स्वस्थ कहा जाता है ।

शिष्य—तब तो बड़े पेटवाले सेठजी और गद्दी चक्रियों में बैठनेवाले बाबू लोग अवश्य तंदुरुस्त रहते होंगे !

शुभ—नहीं, बड़े मोटे पैरवालों को और जो गरी तर्कियों में पड़े रहते हैं उन्हें स्वस्थ नहीं कह सकते। हम तदुस्त उसी को कह सकते हैं जो ऊपर कहे हुए गुणों से मिलता हो। आरोग्यशास्त्र में कहा है कि दिनचर्या (प्रातः से सायंक तक के कर्म) रात्रिचर्या (सायंकाल से प्रातः काल तक के कर्म) एवं अनुचर्या (छः ऋतुओं में आहारविहार के नियम) पालने से मनुष्य स्वस्थ रह सकता है।

‘माद्ये मुहूर्ते मुच्येत’ आज्ञा मुहूर्त में उठकर धर्म अर्थ का चिन्तन करना चाहिये, यह आज्ञा मुहूर्त अर्ध-अन चार बजे प्रातः रहता है, दिनचर्या का आरम्भ तभी से होता है, अन्य चर्याओं की यही जड़ है।

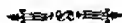
‘स्वत्पादाश्च मुखायह’ भोजन भोजन मुखकारक है, यह प्रत्येक मनुष्य को ध्यान में रखना चाहिये। जो लोग समझते हैं कि जिनका विशेष भोजन करेंगे वतने ही बलवान् होंगे, यह भ्रम है। किसी विशेष का कहना है कि अधिक भोजन करनेवाला अपने पास मृत्यु को बुलाता है। भोजन जीने के लिए किया जाता है न कि मरने के लिए।

शिष्य—क्या व्यायाम को भी आप शरीराभ्यास की श्रेणी में रखते हैं ?

शुभ—सुषुप्तसहिता एक वैद्यक का ग्रन्थ है, उस में व्यायाम के बारे में कहा है कि इस से शरीर में कान्ति, अङ्ग म गठीलापन, श्रुति, आरोग्य आदि प्राप्त होते हैं। और साथ ही जिस का वर्णन सन से पहले किया था वह ब्रह्मचर्य स्वस्थता का विशेष अङ्ग है। उसी से वीर्य जिस को हम शरीर का जीवनरस कहते हैं, तिल में तेल की तरह, घृत में दूध की तरह शरीर में स्थिर रहता है।

शिष्य—आप ने एक दिन मेरी तबियत खराब हो जाने से उपवास कराया था, क्या यह भी आरोग्य रहने का उपाय है ?

शुभ—प्रकृति के अनुसार प्राकृतिक उपचार करना ही आरोग्यप्रद है। एकादशी, प्रदोष, पूर्णिमा, जन्माष्टमी आदि दिनों में उपवास करने का यह फल है कि अन्न से अपन्न हुए दोष मिट जाते हैं। इसी को दूसरे प्रकार से हम अपने आप प्राकृतिक दवा करना कह सकते हैं। इस विधि से शारीरिक स्वास्थ्य के स्थिर होने पर शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार का आरोग्य प्राप्त होता है और फलस्वरूप सभी हम पूर्ण आनन्द और सुखी जीवन लाभ कर सकते हैं।



प्रेमपद—

(२०—स्वामी श्री गोविन्दहरिजी)

जै भोपाल नन्दलाल कस्तूरी तिरक माल, सग सखा गोपी खाल श्री राधिका दुलारी ।
गोविन्द गौचन्द लाल मोरपक्ष सोहै भाष, गोहिनी मुरली हाथ धीत बसन धारी ॥
चिदावन प्रबोधन कदम्ब कुण्ड हैं ललाम, यमुना किनारे श्याम विहरत विशारी ।
दया दृष्टि देव चहत् यमुना की घन्य कहत, निरदित माल रहत प्रेमपद मुरारी ॥

शङ्का

(प्र०—श्री मुद्रशेन)

श्रुतिविप्रतिपत्ता ते यदा स्यात्स्यति निश्चला ।
नमापावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि ॥

—गी० २-४३

‘नाना प्रकार के वेदवाक्यों से विचलित हुई तेरी बुद्धि जब समाधिबुद्धि में स्थिर और निश्चल होगी तब समत्वबुद्धिरूप योग तुझे प्राप्त होगा ।’

इस श्लोक में निश्चल और अचल शब्द एकार्थक

मात्रम पड़ते हैं। द्विरुक्ति करने में ग्रन्थकार का क्या अभिप्राय है ?

एक प्रश्न यह है कि ‘श्रुतिविप्रतिपत्ता’ इस विशेषण का अर्थ क्या है ? विप्रतिपत्ति मतभेद को कहते हैं, तो क्या श्रुति के विषय में मतभेद होना अच्छा है या न होना अच्छा है ? ग्रन्थकार क्या यह चाहते हैं कि अर्जुन की बुद्धि श्रुति के अर्थ के विषय में डोंवाडोल हो जाय ?

समाधान

(ले०—ज्ञानतपस्वी श्री गीतानन्दजी शर्मा)

इस श्लोक का अर्थ अन्यवहित पूर्व श्लोक के अर्थ को दृष्टि में रखकर करना चाहिए। वह श्लोक यह है—
यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्भ्यतिरिष्यति ।
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ॥

—गी० २-४२

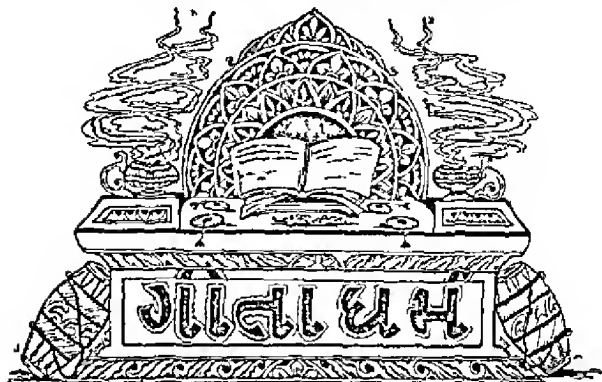
‘जब तेरी बुद्धि मोह के दलदल को पार कर जायगी तब तू उन बातों से विरक्त हो जायगा, जो सुनी हैं और सुनने को हैं ।’

इस श्लोक में श्रोतव्य और श्रुत का अर्थ क्रम से वैदिक भोग और पारलौकिक भोग है, जैसा कि दूसरे अध्याय के आठवें श्लोक में अर्जुन ने कहा है—
‘पृथ्वी का निष्पण्टक समूह, राज्य और स्वर्ग के देवताओं का स्वामित्व मिल जाय, तथापि मुझे ऐसा कोई साधन नहीं सुझता जो मेरे मनस्तापी शोक को दूर कर दे ।’ यहाँ पृथ्वी का राज्य श्रोतव्य और स्वर्ग का स्वामित्व श्रुत समझना चाहिए। ऊपर के श्लोक के बाद ही ‘श्रुतिविप्रतिपत्ता’ यह श्लोक आया है, अतएव इस पद का अर्थ यह हुआ कि श्रुति माने श्रोतव्य और श्रुत, तथा विप्रतिपत्त का अर्थ

है निर्विण्ण या विरक्त (उल्ल जाना)। शङ्काकार यह समझते हैं कि श्रुतिविप्रतिपत्त अर्थात् वेदान्तवाक्यों के अर्थ में मतभेद होना। पर ऐसा अर्थ नहीं है। महाशुनि कपिलजी ने अपने दर्शन के चतुर्थ अध्याय में बहुत से दृष्टान्त और आख्यायिकाओं द्वारा मुमुक्षु के लिए सद्गुपदेश दिया है। वहाँ पर तेइसवाँ सूत्र शङ्काविषयक इस श्लोक के ही अनुसार रचा गया है—
विरक्तस्य हेयहानमुपादेयोपादानं हंसजीरवत् ।

पुंस का श्लोक के अर्थ से मेल करने पर यह तात्पर्य निकलता है कि बुद्धि को हेय का अर्थात् श्रोतव्य और श्रुत कर्मफल का हान करना चाहिए तथा उपादेय अर्थात् समाधि का उपादान करना चाहिए। इसी लिए निश्चल और अचल दो विशेषणों का प्रयोग किया गया है; यह द्विरुक्ति सार्थक है निरर्थक नहीं। दोनों का अर्थ यही है कि तब ही स्थिर बुद्धि हो और योग में भी स्थिर बुद्धि हो। यहाँ पर स्थिर शब्द में भी पुनरुक्ति दोष नहीं, एक स्थिर शब्द का अर्थ है विशेष, चलनवर्जित और दूसरे का अर्थ है सदैव रहित। इत्यम ।

સંસ્કાર — શ્રીમત્પરમહંસ, પરિનાજ્ઞાચાર્ય, પ્રકાશિત, લોકસમગ્રી, ગોતાબ્ધાસ,
થી ૧૦૮ જગદીશ્વર, મહામહાદેવર, સ્વામી શ્રી સિદ્ધાનંદજી, મહારાજ



સર્વવર્માન પરિત્યજ્ય માનિઃ સરજી મજ , અહુ ત્વા ચત્રપાપેભ્યો માક્ષયિષ્યામિ મા શુભઃ

૫૧.૭ મુ }

દારણી આગસ્ટોબર ૧૯૪૨

{ અંક ૧૦ મી

વાઝેવીવન્દના.

જય જગદગ્રમ જમત ગુખકારી,
જય જગદીશ્વરિ માતુ સરસ્વતી જય જમપાલનહારી.
જય જય ગુખમયિ જય દુખનાશિનિ સકલ રેદુ વિદારી,
ચન્દ્રભિરમસમ વદન ચિરામૈ માસાવર ગવધારી.
વીણા વામ અંક મે સોદૃત અચ્યુત શક્તિ તુલહારી,
રંગેત વશન કમવાસન મુન્દર પાનન હસ સવારી.
જા કે હૃદય વસહુ દુમ માતા તાકી બુદ્ધિ અપારી,
સદા સદૈય હમ પૈ રહુ જનની જ્ઞાનિ અધમ અધકારી.
'કવવખાસ' ચરનન સિર નાનન રેદુ મુખતિ મુચિવારી,

—જદાયા જય ચૌરીકાર સીતાશમજી

એકાગ્રતા

(લેન્ડ-રમણલાલ લલ્લુભાઈ)

જીવ મિથ્યા કામનાથી રહિત ઓછે તદ્દન નિષ્પૃહ થાય છે ત્યારેજ શાન્તિના માર્ગના રસ્તો જડે છે. મનુષ્ય ધ્વન્દ્યાદિનો સ્વકલ્પિત આનંદ મોહ અને ક્ષણિક સુખના આનંદને બ્યારે નિષ્કામ કર્મોથી નષ્ટ કરે છે અને સંસારિક વાસનાઓથી પર રહે છે ત્યારેજ અંતઃકરણની શુદ્ધિ થાય છે. આ વસ્તુ પ્રથમજ આવશ્યક છે. ત્યાર પછી અમુક અનુભવો થયા પછી એકાગ્રતા થયા પછી અધિકારી થવાય છે.

પરબ્રહ્મ આત્મદર્શનની પ્રાપ્તિ તે આત્મવૈતિક સુખ છે તે કેવળ યુદ્ધિથી ગ્રાહ્ય અને અતીન્દ્રિય છે, તે અનુભવથી પ્રાપ્ત થાય છે, આ માટે ભગીરથ પ્રયાસની જરૂર છે. આ પ્રયાસો કરવા શારીરિક પ્રયાસોની જરૂર નથી, સંસારિક પદાર્થોની જરૂર નથી, ધનની જરૂર નથી, નાનાં કે મોટાં વંત્રોની જરૂર નથી, પરંતુ આ વસ્તુ પ્રાપ્ત કરવા માટે વિચાર માળાની જરૂર છે, વિચાર કેળવવાની જરૂર છે, યુદ્ધિની જરૂર છે, મનને તેના વેગને સંસારની માયામાં જોતા અટકાવવાની જરૂર છે, મનને ભરકતું અટકાવવાની જરૂર છે, એને સ્થિર કરવાની આવશ્યકતા છે. મન સ્થિર કરવું એ નાની સુની વસ્તુ નથી, એ વસ્તુ તો મહાન કડિન છે. તે કાંઈ બળદમાં મળી શકતી નથી. યાગ્રાઓમાં જવાથી, ગામે ગામ ફરવાથી મળવાની નથી, પરંતુ કોઈ વિરલા પુરૂષની શોકમાં જઈ મહાત્માની શોધ કરી તેમની સાથે સત્સંગ કરી, મનન કરી, જ્ઞાનનો અધિકાર મેળવી પછીજ પુણ્યનો ઉદય થાય છે અને ત્યારેજ આ વસ્તુ પ્રાપ્ત થાય છે. જે મહાન પુરૂષ વિરલા-પુરૂષને આ વસ્તુ પ્રાપ્ત થઈ છે તેઓ આ સંસારમાં રહેવા છતાં મરત થઈ ફરે છે. તેઓ નિષ્પૃહી છે, તેઓ માયાવી પદાર્થોની પરવા કરતા નથી અને અનંત જ્યોતિ સ્વસ્વરૂપ આત્માનાં દર્શન અનુભવતાં હરહંમેશ અખંડિત આનંદ અનુભવતાં મરત મને વિચરતા પરમાનંદ સાક્ષાત્કાર મેળવી છેવટે કેવલ્ય ધામની પ્રાપ્તિ મેળવી જીવન મરણના ફેસમાંથી યુદ્ધિ મેળવે છે.



સિદ્ધિ

(સે.—શ્રીમત્પરમહંસ પરિવ્રાજકાચાર્ય પ્રજ્ઞનિષ્ઠ લોકસંમદી ગીતાબ્યાસ શ્રી ૧૦૮
જગદ્ગુરુ મહામહોપદેશ્વર સ્વામી શ્રી નિવાનદાસ મહારાજ)

ઉપાસનાના ફળસ્વરૂપ સાધકને જે સિદ્ધિયો પ્રાપ્ત થાય છે તેમને દત્તાત્રયીએ 'અલક'ને આ પ્રમાણેની કહી છે—

અણિમા મહિમા સૈવ હૃદિમા પ્રાપ્તિરેવ ચ ।
પ્રાકાશ્ય ચ સયોશિત્વં વશિત્વં ચ તથા પરમ્ ॥
યત્ર કામાવસાયિત્વં ગુણનેતાનયૈસ્વરાત્ ।
પ્રાપ્તોત્યદ્વૈ નરઘ્યામ પરિર્વાણમૂલકાત્ ॥

—મર્ક-૧૦-

અણિમા, મહિમા, હૃદિમા, પ્રાપ્તિ, પ્રાકાશ્ય, ઇશિત્વ, વશિત્વ અને કામાવસાયિત્વ, પરિર્વાણના સ્વરૂપ આ આઠ એકસાથેના શુભોને સાધક પ્રાપ્ત કરે છે

મૂઢમાત્મ સુક્ષ્મતરોડ્ગોપાત્ શોભત્વાહૃદિમા ગુણ ।
મહિમાયોગ્યત્વત્ત પ્રાપ્તિર્નાપ્રાપ્યમસ્ય યત્ ॥
પ્રાકાશ્યમસ્ય વ્યાપિત્વત્ સૈશિત્વં ચેત્તરો યત ।
વશિત્વાત્ વશિતા નામ યોગિત સત્તમો ગુણ ॥
યત્રેચ્છા સ્થાત્માયુત્ત યત્ર કામાવસાયિતા ।
પેરેવ્યંકારજૈરેભિર્યોગિન પ્રાક્તમષ્ટથા ॥

થોડી લોકો સૂક્ષ્મથી પણ સૂક્ષ્મ યર્થ બાધ છે તેથી તેમનામા અણિમા હોય છે, સર્વના પૂજ્ય હોવાથી મહિમા, હલકા થઇને ગમે ત્યાં પડેડી જતા હોવાથી હૃદિમા, તેમને ન પ્રાપ્ત થઈ શકે એવી ઠોઈ વસ્તુ નહિ હોવાથી પ્રાપ્તિસિદ્ધિ, તેઓ સર્વત્ર આપ્ત થઈ શકે છે એટલે પ્રાકાશ્યસિદ્ધિ, તથા સર્વ કાંઈ કરવા સમર્થ હોવાથી ઇશિત્વસિદ્ધિ, વધી હોવાથી વશિત્વસિદ્ધિ અને સર્વ ઇચ્છાઓને

સ્થાને કામનાઓની સમાપ્તિ થઈ ગયેલી હોવાથી કામાવસાયિત્વ સિદ્ધિ એ આઠ સિદ્ધિયો તેમને પ્રાપ્ત થયેલી હોય છે એ આઠ સિદ્ધિયો તે પ્રસિદ્ધ છે, પ્રસ્તુ બીજી પછી નાની મોટી સિદ્ધિયો થોડીઓને તેમના અભ્યાસ ક્રમથી પ્રાપ્ત થઈ જાય છે, એવો તે તે વિષયના શ્રદ્ધામાં હલેલો થયેલો ભવામા આવે છે છતાં પણ તે સર્વ સાચા મુખ્ય હુની નજરમા તો હેયજ દેાય છે ગીતામા સિદ્ધિ શબ્દનો કંઈ બીજોજ અર્થપ્રાય છે, જા આ શબ્દનો પ્રથમ પ્રયોગ નીચે જણાવેલા રસોકર્મા આવે છે—
ન ચ તન્વિતતાયેવ સિદ્ધિ સમયિગચ્છતિ ॥

—ગી-૩૧

અહિ સિદ્ધિનો અર્થ નેષ્ટમય સિદ્ધિ છે એ તો સ્પષ્ટ છે, ઉપર્યુક્ત રસોકર્મા વર્ણવેલી સિદ્ધિયો સાથે એનો કાંઈજ સંબંધ નથી.

અતુલ્યાણ સદગ્નેષુ કચિન્નતિ સિદ્ધયે ।

—ગી-૩૨

આ ગીરોક્ત પ્રિદને પછુ નેષ્ટમયસિદ્ધિ અર્થ છે 'સિદ્ધાન્ત કવિલો મુનિ' આ વાક્યમા અર્થ એવોજ હોવા છતાં પણ કવિપણનું અન્યાય સિદ્ધિ સંપન્ન હોવું (વશગત નથી, છતાં પણ મોક્ષ યાત્રમા સિદ્ધિ શબ્દથી ખાસ કરીને નેષ્ટમય સિદ્ધિ જ માન્ય છે અણુનને અજાણને એજ સિદ્ધિની પ્રાપ્તિ માટે પ્રયત્ન કરવાનું કહેલું હતું, કેમકે ગીતાનો મુખ્ય ઉપદેશ જ્ઞાનનિષ્ઠાનો છે, અણુન અજ્ઞાનનો નાશ કરવા ઇચ્છતો હતો અજ્ઞાન નાશનું

કારણ જ્ઞાન પ્રાપ્તિ નહોતી છે, એ વાત કપિલ મુનિએ સાંખ્ય દર્શનના અધ્યાય ૧, સૂત્ર ૫૧ માં કહી છે—

નિયત્તકારણાત્ તદુચ્છિન્નિ ધ્વન્તિવત્ ।

જેવી રીતે અંધકારનો નાશ તેના વિરોધી પ્રકાશથી થાય છે તેવીજ રીતે અજ્ઞાનનો નાશ જ્ઞાન પ્રાપ્તિથી થાય છે. આ પ્રસંગમાં ગીતાનો પ્રતિપાદ્ય વિષય કમંથોગ છે કે જ્ઞાનયોગ એ વિવાદમાં પડવાનું કોઈ કારણ નથી, કારણ કે તે વ્યાખ્યાન આજના પ્રતિપાદ્ય વિષય સાથે કથોજ સંબંધ ધરાવતું નથી; કેમકે નિબંધના પ્રારંભમાં જો સિદ્ધિ શબ્દનો પ્રયોગ કરવામાં આવ્યો છે તેની ગીતાની સાથે કે નવી અને ખાસ પ્રકારની સંગત બેસાડી ખાસવી, એજ અર્થ માત્ર કતવ્ય છે.

કપિલજીના અભિપ્રાય પ્રમાણે સિદ્ધિનો મત-ક્ષય ન કમ સિદ્ધિ છે કે ન જ્ઞાનસિદ્ધિ, પરંતુ કંઈ મીનોજ છે, બીજા સાંખ્યકારોએ પણ એનો ખાસ મતલબથી પ્રયોગ કરેલો છે. જેમકે—

સિદ્ધિરપ્રધા ।

—સાં. ૨૦ ૩૪૦.

પચ્ચ વિપર્યયમેવા ભવન્ન્યશક્તિઃ કરણવૈકલ્યાત્ ।

અષ્ટાવિંશતિભેદાસ્તુષ્ટિનેવવાપ્ત્યા સિદ્ધિઃ ॥ ૪૭ ॥

—સાંખ્ય ૧૦.

આ બન્ને ઉદાહરણોમાં મિદ્ધિયો આઠ છે એમ કહેલું છે, પણ સાંખ્યકારે એમ સ્પષ્ટ નથી કહ્યું કે તે કયી કયી છે, તેના ખુલાસો કારિકામાં છે—

ઋદ્ધઃ શત્રોડ્યયવનં દુઃસ્વવિષાતાત્રયઃ સુદૃઢાત્તિઃ ।

દાનં ચ સિદ્ધયોડ્યૌ સિદ્ધેઃ પૂર્વોડ્ઢકુલસિદ્ધિઃ ॥ ૫૫ ॥

આ 'કારિકાનો અર્થ' કરવામાં વ્યાખ્યાન કરનારા લોકો એકમત નથી. વાંચકોને એનો સાચો અભિપ્રાય સમજવામાં સહેલું પડે, એટલા માટે

પ્રથમ અર્થ પૂર્વ પરંપરાગત અર્થ દેખાડવામાં આવે છે, તે પછી ગીતાની સાથે તુલનાત્મક દ્રષ્ટિથી વિચાર કરીને, અમારો અભિપ્રાય પ્રગટ કરવામાં આવશે. પૂર્વ વ્યાખ્યાને માટે 'સ્વામી હરિકૃશ્નનંદ આરણ્ય' કૃત અનુવાદ આપવો ઠીક ગણાયે—

ઉહ, શબ્દ, અધ્યયન, સુહૃદપ્રાપ્તિ, તથા દુઃખ વિધાત અને દાન એ આઠ સિદ્ધિયો છે. વિપર્યય, અશક્તિ અને પુષ્ટિ એનાં વિરોધી છે.

ઉહ અર્થાત્ પ્રતિભા; પ્રતિભા કે ચોતાના પૂર્વ-સ સ્કારથી જે તત્ત્વજ્ઞાન પ્રાપ્ત થાય છે તેને ઉહ કે તત્ત્વ સિદ્ધિ કહે છે. બીજાનું કથન સાંભળીને જે તત્ત્વજ્ઞાન પ્રાપ્ત થાય છે તેને શબ્દ કે સુતાર સિદ્ધિ કહે છે. સ્વયં લાગુવા—શીખવાથી જે તત્ત્વજ્ઞાન પ્રાપ્ત થાય છે તેને અધ્યયન સિદ્ધિ કે તાર તાર સિદ્ધિ કહે છે. ગુરુ, સહાધ્યાયી કે મોક્ષપથના કોઈ સહાયકનું પ્રાપ્ત થવું તે ચોથી સુહૃદપ્રાપ્તિ કે રમ્યક સિદ્ધિ છે. તેના પછી સાધનો દ્વારા ત્રિવિધ દુઃખ વિધાત નાશની મિદ્ધિયો હોય છે, જેમને પ્રમેદ, મુદ્ધિત અને પ્રમેદમાન પણ કહે છે. છેવટની દાન કે અવદાન સિદ્ધિ છે, જને સિદ્ધિયોની સમ્યક્ નિર્મળતા રૂપ વિવેકખ્યાતિ કહેવામાં આવે છે, તેને સદા પ્રમુદિત પણ કહે છે. આ પ્રકારે તાર, સુતાર, તારતાર, રમ્યક, પ્રમેદ, પ્રમુદિત, પ્રમેદમાન અને સદા પ્રમુદિત એ આઠ સિદ્ધિયો મોક્ષ માર્ગની સહાયક છે.

હવે ગીતા અનુસાર એમનું સમીકરણ કરવામાં આવે છે—

સાંખ્યદર્શન ગીતાના આધાર ઉપર રચાયેલું છે એ વાત વિદ્વાનોના લક્ષમાં તેા હશેજ, એટલે અગાસ મત પ્રમાણે આ સિદ્ધિયોનો ઉલ્લેખ ગીતાના અધ્યાય ૨ સ્લોક ૭-૮ માં છે. જેમકે—

કામ્યદોષોપહતસ્વભાવ.

પૃષ્ઠામિ ત્વા ધર્મસમુદ્વેતા ।

ચત્ત્વ્રેય સ્થાનિચ્છિન્નં વ્રદિ તન્મે

શિષ્યસ્તેઽહ શાધિ મા ત્વા પ્રપન્નમ્ ॥

ન હિ પ્રપર્યામિ સમાપતુથા

ચત્ત્વોક્તુમ્ચાગમિન્નિદ્રયાળામ્ ।

અવાપ્ય ભૂમાવસપન્નમુદ્

રાગ્ય મુદ્રાળામપિ ચારિત્યમ્ ॥

‘દૈન્ય દોષથી મારી શુદ્ધિ નહ થઈ થઈ છે, તેથી હું માર્ગના વિષયમાં વ્યાકુળ છું, તેથી આપને પૂછું છું કે સાનું કલ્પાલોકારી કર્તવ્ય બતાવો, મને શરણાગત શિષ્યને યોગ્ય આજ્ઞા આપે. પૃથ્વીનું નિષ્કટક સજ્જયકે ઇંદ્રપદ પ્રાપ્ત કરીને પણ ઇન્દ્રિયોને મુકનતારો આ મારો યોગ દૂર થશે નહિ’ અહિ પૂર્વોક્તા સિદ્ધિયોગ અનુસ્થાપ છે કે જે સામાન્યદેશના અવ્યવહિત પૂર્વ સિદ્ધ અધિકારને જણાવે છે.

ગીતા ગદ મા અર્જુન જગત્તને પ્રાર્થના કરે છે કે ઐહિક અને આધુનિક સમસ્ત કામ પ્રાપ્ત થયા છતા પણ મારો યોગ દૂર થશે નહિ, આપ તેનો ઉપાય બતાવો. અહિ વિચારવાની વાત છે કે ઐહિક શબ્દ ભોગ તથા સ્વર્ગભોગની સ્મૃતિ અર્જુનને અવશ્ય થઈ છે ત્યારે જ આ પ્રાર્થના સમત કરી શકે છે. એનું નામ પ્રતિભા અર્થાત પારિભાષિક નામ ઉદ્ધ છે. આ સિદ્ધિ તેના પૂર્વ જનીય સંસ્કારથી થઈ છે. વળી તેજ શ્લોકમાં અર્જુન કહે છે કે ‘મા શાધિ’ ‘જાણુ અનુશિષ્ટો’ થી શાધિ બને છે અને શાસનનો અધિકાર માત્ર વેદને જ છે. એજ વાત વ્યાસજીએ ‘શાસ્ત્રયાજ્ઞિવાન્’ (વેદશાસ્ત્રી પરમાત્મજ્ઞાન થાય છે) એ વદન્ત સૂત્રમાં કહી છે.

ગીતાના ૫૬૪માં આદ્ય વાક્ય કહ્યું છે કે ‘હિ

શુદ્ધતમ શાસ્ત્રમ્’ મતલબ એ છે કે વેદશાસ્ત્રનો ઉદ્દેશજ અર્જુન ચાહે છે અને જગત્તને એજ આજ્ઞા આપે છે—‘તસ્માન્નામ પ્રમાણતે’ (તારે શાસ્ત્રનુંજ પ્રમાણ માનવું જોઈએ) એને જ શબ્દ સિદ્ધિ કહેવામાં આવે છે, તેનો મૂક અભિપ્રાય એ છે કે વેદોપદેશમાં અર્જુનની શુદ્ધિ સ્વભાવ સિદ્ધિ છે. આ મનોવૃત્તિને સ્વાભાવિક શ્રદ્ધા પણ કહે છે. આ પ્રમાણે પ્રથમ ગણાવેલી બે સિદ્ધિયોને કટાક્ષ એજ વાત ઉપર છે કે પૂર્વજનીય સંસ્કારથી પરમ વેદાગ્ય પ્રાપ્ત થઈને વેદ શાસ્ત્ર પર રૂચિ ઉપજાય થાય છે તે પછી આધ્યયન સિદ્ધિ છે. તેનો ઉલ્લેખ ‘શિષ્યસ્તેઽહ’ વાચ્યથી કરવામાં આવેલો છે. અર્જુનના પ્રપત્ત શબ્દથી બાહેર થાય છે કે તે સ્ત્રી મુખ્યને શુર અને ઇશ્વરની અલેક્ષ શુદ્ધિથી જુએ છે, જેમકે ઉપનિષદમાં કહ્યું છે—

યત્ય એવે પરમસિયંધા દેવે તથા મુરૌ ।

તસ્યૈતે વચિલાહ્વાય પ્રકાશન્તે મહાત્મન ॥

જેનો દેવતા અને શુરમાં એક સરખો પરમ અનુરાગ છે તવા મહાત્મા પ્રતિજ્ઞા શાસ્ત્રીય ઉપદેશ રતનોતો પ્રકાશ પડે છે.

ગ્રાંથી, પાંચમી અને છઠ્ઠી ચિદિ ત્રિવિધ દુષ્ટિઓ વિષાત છે, તેમનો ઉલ્લેખ ગીતા અધ્યાયના ૪, ૫, ૬ શ્લોકોમાં થઈ ગયો છે, તે દુષ્ટ અર્થાત્ તાપોનો વિષાત અર્જુનમાં અનુમાન કરી શકાય છે, કેમકે ‘ચત્ત્વ્રેય સ્થાનિચ્છિન્નં વ્રદિ તન્મે’ આ વાક્ય દ્વારા, તેને ૪, ૫, ૬ શ્લોકોમાં કથિત દુષ્ટ નિવૃત્તિના ઉપાયો પર વિશ્વાસ નથી, એ સૂચિત થાય છે.

સાનગી સિદ્ધિ મુદ્દપર્ધા છે, અર્જુનને કહી કાચેજ જગત્તને મુદ્દ રૂપે મ થાય છે. આ વિષે મહાભારતમાં કહ્યું છે—

एकं सत्त्वं द्विधा कृतम् ।

ભાણુ કે એકજ વ્યક્તિના એ ભાગ થઈ ગયા હોય, એવું આ સૌહાર્દ એ બન્નેનું હતું. પ્રકૃતમાં એ સમજાવું જોઈએ કે અર્જુન ભગવાનનો શિષ્ય થવાને તૈયાર થયો તો ભગવાન પણ તેના ગુરૂ થવા રાજી થઈ ગયા.

આકાશી સિદ્ધિ જ્ઞાન છે. ગુરૂને સર્વસ્વ અર્પણ કરી દેવાની શાસ્ત્રની આજ્ઞા છે. અર્જુન કહે છે—

येषामर्थे काङ्क्षितं तो राज्यं भोगाः सुखानि च ।

त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च ॥

आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः ।

एतात्र हन्तुमिच्छामि हन्तोऽपि मधुसूदन ।

अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किं नु महीकृते ॥

જેમને માટે અમને રાજ્યભોગ તથા સુખ જોઈએ, તેજ આચાર્ય, પિતામહ આદિ સર્વ કાંઈ છોડીને યુદ્ધમાં મરવા માટે ઉભા છે. એ લોકો મને ભલે મારતા રહે, તો પણ હું એમને પૃથ્વી તો શું

ત્રૈલોક્યના રાજ્યને માટે પણ નહિ મારું” અહિં પૃથ્વીનું રાજ્ય કે ત્રૈલોક્યનું રાજ્ય ગુરૂઓને માટે છોડવાની તો વાતજ ક્યાં રહી ? ‘હન્તોઽપિ’ પદથી પોતાના પ્રાણ પણ ત્યાગવાની તૈયારી છે. આ ત્યાગની ચરમ સીમા છે અને ગુરૂને માટે ‘ત્વાં પ્રપન્નમ્’ કહેવાથી અર્જુનની ત્યાગ બુદ્ધિની સીમા અસીમ થઈ ગઈ છે.

હવે આ અર્થ સાથે અન્ય વ્યાખ્યાતાઓનો અર્થ મેળવીને વાંચક જોઈ લઈને ઉચિત અનુચિતનો નિર્ણય સ્વતઃ કરી લેશે. માતાને પોતાનોજ પુત્ર સર્વથી ખ્યારો લાગે છે, એ ન્યાયે અમને પણ આજ અર્થ ઠીક લાગે છે.

આ સિદ્ધિઓનાં નામાંતર જે ‘આરણ્યજી’ અથવા બીજા ટીકાકારો દ્વારા ઉદ્દિલખિત થયેલાં છે તેમના સંબંધમાં અનુમાન દ્વારા માત્ર એટલુંજ માલમ પડે છે કે એ નામ ગુપ્તહત્તી ક્રમોક્તિ દર્શાવે છે એમજ તેમના શબ્દગત અર્થથી પ્રતીત થાય છે, નહિ તો તે કેવળ સંજ્ઞા માત્ર છે.

“શ્રવણ કાવડીઓ”

(મં ૧૮— શ્રી કલ્યાણરાય હરિદાસ છાયા)

સાત સમુદ્ર અધવચ બેટ, શ્રવણ સરળો માને પેટ. સમર રામને જી.
કુવાને કાંઠે પીપળો હુવો, ત્યાં શ્રવણને જન્મ હુવો.—સમર
લીલુડી વેલને લીલુડાં પાન, શ્રવણ ધાવે ઝોનીમાઘાં થાન.—સમર
જેમ જેમ માતા પાણીલાં ભરે, તેમ તેમ શ્રવણ ડગલાં ભરે.—સમર
પાંચ વર્ષ શ્રવણ થયો, ગેડી દગો લઇને રમવા ગયો.—સમર
સાત વર્ષના શ્રવણ થયો, પાટી લઇને ભણવા ગયો.—સમર

બાર વર્ષના અવલ ધવો, ને બાળીગણીને દોડીવાર ધવો.—સમર રામને છ
સોળ વર્ષના અવલ ધવો, નાર મુન્દીને પરજુવા ગરો—સમર
મુન્દી નાર મારા વચન મુજો, અધા મા બાપની સેવા કરો—સમર
તમારા માબાપને કુવામાનાવો, મને મારે પિયર મૂકો—સમર
ત્યાથી અવલ ચાલ્યો જાય, સાસરાના ઘર પૂછતો જાય—સમર
સામુજી મારા વચન મુજો, તમારી દીકરીને ખુલ્લે ધરો—સમર
સુઝા જમાઈ તમે જમતા જાય, અમારી નિકરીના અવગુણ ગાય—સમર
તમારી દીકરી નાર કુવા, નાસીદું વાળી ચૂપામા બાગે—સમર
ઘર જીને પરઘર જાય, એનો અમતાર એજો જાય—સમર
ત્યાથી અવલ ચાલ્યો જાય, વજુકરના ઘર પૂછતો જાય—સમર
વજુકર ભાઈ મારા વચન મુજો, બાળી જોડીના લુગડા વજો—સમર
લુગડા વજુજો ઘાર મુઘાટ, સોદાવા પેરે મારા માને બાપ—સમર
ત્યાથી અવલ ચાલ્યો જાય, દરજના ઘર પૂછતો જાય—સમર
દરજ ભાઈ મારા વચન મુજો, અધા માબાપના લુગડા સીવો—સમર
લુગડા સીવજો ઘાટ મુઘાટ, સોદાવા પેરે મારા માને બાપ—સમર
ત્યાથી અવલ ચાલ્યો જાય, મિચીના ઘર પૂછતો જાય—સમર
મિચી ભાઈ મારા વચન મુજો, અધા માબાપની મોજડી સીવો—સમર
મોજડી સીવજો ઘાર મુઘાટ, સોદાવા પેરે મારા માને બાપ—સમર
ત્યાથી અવલ ચાલ્યો જાય, કુવારના ઘર પૂછતો જાય—સમર
કુવાર ભાઈ મારા વચન મુજો, રાહી માટીની ઘાઘર ઘરો—સમર
ઘાઘર ઘડજો ગાડ મુગાડ, પાણીસા પીએ મારા માને બાપ—સમર
ત્યાથી અવલ ચાલ્યો જાય, મુતારના ઘર પૂછતો જાય—સમર
મુતાર ભાઈ મારા વચન મુજો, અગર ચદનની કાવડ ઘરો—સમર
કાવડ ઘડજો ઘાર મુઘાડ, સોદાવા પેરે મારા માને બાપ—સમર
કાવડ કાવડ અવલ ચાલ્યો જાય, વુદાવનની વડે જાય—સમર
કાવડ મેલી આવડીની યજા, અવલ ચાલ્યો પાણી ભરવા—સમર
દશરથ મામા ગજળ કહેઈ, સગા ભાણેજો તમે માયો—સમર



શંકા

(પ્રેમ-એક શ્રદ્ધાળુ)

તત્ત્વાપરચત્ રચિતાન્ પાથં.૦

પુત્રાન્ પૌત્રાન્ સર્વોક્તયા ।

શ્વશુરાન્ સુહૃદશ્ચૈવ.૦

સર્વાન્ વન્ધૂનવચિતાન્ ॥

૧-૨૬, ૨૭ ।

કુલક્ષયકૃત દોષં મિત્રદ્રોહે ચ પાતકમ્ ॥

૧-૨૮

‘હાં અણ્ણને પોતાના પુત્ર, પૌત્ર, સખા, શ્વસુર, સુહૃદ અને સર્વ’ બન્ધુઓને ઉભેલા બોધા, ‘કુલ-ક્ષય કરવાના દોષ તથા મિત્રો સાથે દ્રોહ કરવાના પાપને કારણે સમજતા નથી.’

આ શ્લોકોમાં અણ્ણન કૌશલોનો ઉદ્દેશ્ય કરીને

ચાર શબ્દોનો પ્રયોગ કરે છે, યથા—સખા, સુહૃદ, બન્ધુ અને મિત્ર. ગીતાના ઉપર આક્ષેપ છે કે તેમાં અનાવરયક પુનરુક્તિ ઘણીજ છે. જેમની ગીતાને ભગવદ્ વાક્ય માનવામાં ઓછી શ્રદ્ધા છે તથા તેની વ્યાસ કૃત રચનામાં પણ સંદેહ છે એવાજ પુરૂષો આ શંકાઓ ઉઠાવે છે. છતાં પણ તેમને નિરૂત્તર કરવા માટે એટલુંજ કહેવું પૂરતું નથી કે તેમની શ્રદ્ધા ઓછી છે, કેમકે આજકાલનો સમય બુદ્ધિ પ્રામાણ્યને માને છે. તો હું બાણવા આદિ હું કે વ્યાસજી ઉપદેશક શ્લોકોમાં સખા આદિ શબ્દોનો પ્રયોગ પર્યાયવાચક રૂપથી કરે છે અથવા તેમના અર્થમાં કાંઈ સૂક્ષ્મ ભેદ છે ?

સમાધાન

(લે. — જ્ઞાનતપસ્વી શ્રી ગીતાનંદજી)

ગીતાકાર ઉપર જે આક્ષેપ કરવામાં આવે છે તે સર્વથા અનિહિતા મૂલક છે, ગીતામાં કયાંય પણ કયા શબ્દોનો પ્રયોગ નથી. સાચું તો એ છે કે ગીતાની યથાર્થ વ્યાખ્યા હજી સુધીમાં કોઈએ કરી છે કે નહિ એમાં સંદેહ છે તેમાં ઉપનિષદ, બ્રહ્મવિદ્યા અને યોગશાસ્ત્ર એ ત્રણે પ્રસ્થાનોનું ગ્રહન છે, એ વાતનો પરિચય કોઈ પણ ટીકામાં કઠાવ્યજ મળતો હશે. વધારેમાં વધારે ટીકાકારોએ હજી સુધી “શ્રીકૃષ્ણાર્જુન સંવાદ” નીજ વ્યાખ્યા કરી છે તથા તે પણ સંદોષ છે એમ એમ ઉપર કહી ચૂક્યા છીએ. અસ્તુ, પ્રકૃત વાત એમ છે કે એ

ચારેય શબ્દોમાં સૂક્ષ્મ ભાવથી જ કેમ ન હોય, અર્થ ભેદ અવશ્ય છે. તથા—

અવિયોગસહો વન્ધુઃ સર્વદાનુગતઃ સુહૃત્ ।

एककार्यं भवेन्मित्रं समप्राण. सरता मत. ॥

જે સાથી ભેચનીની સાથે વિયુક્ત થઈ બધ તેને બન્ધુ કહે છે, જે કોઈ પણ સાથ ન છોડે તે સુહૃદ છે, જે હરેક કાર્યને સાથમાં કરતો હોય તેને મિત્ર કહે છે તથા જે અનુસાગની અધિકતાથી પ્રાણની પેઠે કદિ પણ પ્રથક ન થાય તેનું નામ સખા છે. આ પ્રકારે આ શબ્દોમાં તારતમ્ય સ્પષ્ટ પ્રતીત થાય છે.

વિલક્ષણ ઉપદેશ

(મે. રામી શી રામાનંદજી સંવાગી, દર્શનરામી વ્યારજ્ઞાત્યર્થ)

એક સમય જગદ રના 'સિદ્ધાન્ત' માં નાના, પરમદસ, દલી, કાળી, પંચી, માળી, અપુન, વિરજા, કલ, મદત, આદિ સંવાગી મહત્ત્વીય ચર્ચાઓ રહી હતી તેમાં 'રામપારા શરી' નામના સુન્દરી વ્યાખ્યાન આપી રહ્યા હતા, વ્યાખ્યાનના અનુસમાનમાં તેમણે રહ્યું —

એક વખત હું અવધ દેશમાં જામણ કરી રહ્યા હતાં. જાના એક બાલિક પુરૂષ મને પૂછ્યું કે મદારજ, અધે અવધાણી કયાઓ તથા સાધુ પુરૂષે નાં સંતિગા સાબજીએ, પરતુ તે પ્રમાણે આ ચારણ ન કરી શકીએ, તો તેનાથી શો લાભ થઈ શકે છે? એવું સાંભળતુ વ્યર્થજા મે તેના બચાવમાં મેં કહ્યું—ભાઈ, જોતાં મેં જાણ તો પ્રસિદ્ધ છે, પરંતુ એ કે જે ક્ષિતાની સમવન ઉપર સાધારણ મદા દરો, એટલે કે પ્રણવ થોડું ભજન સ્મરણ કરવનું કરતો હશે, તે કયા સાંભળીને વધારે પ્રાપ્તિ જનશે અને વધારે ભજન પુજન કરશે.

“અહીં તહીંની નકામી વાતો કરવામાં વખત વિના વધા કરતા કયા સાંભળવામાં વખત અનિત કરશે સારો છે.” જે જે વાત સામ્યવ્યયે સમજતો હશે તેને કયાનો ઉપદેશ અવશ્ય કરવાથી ઉત્તમ કર્મ કરવામાં અધિક ઉત્સાહ આવશે, તેનાથી તેના દુર્લ્ભસને છૂટી જઈ શકશે. બીજી વાત એ છે કે જે જ્ઞાનામાં અભિમાનની માત્રા વધારે હશે તેનું અભિમાન એકાગ્રી જશે અને તે કુરતા આદિ પ્રમાણને રોષ સમજીને તેમનો ત્યાગ કરવા તત્પર રહેશે.

ભાઈ, રૂપિ, મુનિ, સાધુ, સતરૂપ જોઈની

જર આ સંસારરૂપી ધોર વનમાં અનેક કષ્ટ સહન કરીને, જ્ઞાન અને યદાચારની મુદર સહન આપી ગયા છે, પેવાના જ્ઞાન અને અનુભવના ભાષાઓ ઉપદેશની અનેક રચાણી કરનારો એ સહન ઉપર દાહી ચવા છે, અને આપના તથા કૃતિ પ્રદન કરનારા સંમતિ અને સુમનસોના 'પ્રાપ્તિ રોગ' ઉભા કરી ગયા છે, અને યાત્રો, પ્રથિના મુકામ બતાવી વધા છે જેનાથી છાત્રમુ શાસ્ત્રી મિત્ર, લોક આદિ સુખોના રૂડામાં નહિ રહ્યાના સંવિદ્યાનક પરમ સામ્ય વચર ભરજો આનંદ પૂર્વકે જઈ શકે કયા અવશ્ય કરનારાને જે તોમાં મુખ થઈ જશે કે દમ્યાસ રૂપિ, મુનિ, કેવા પ્રભુ પ્રિમી, મોક્ષાવધામી સમપ્રાણ પદોપકારી, સત્પરમાત્મ અને અરિત સંપન્ન હતા તેમને વેદપ્રાપ્ત, ઉપનિષદોના આદેશ, રૂપિયાઓનું તત્ત્વજ્ઞાન, આધ્યત્મિક ધ્યેય, અનેક પ્રકારના ભાષ્ય, ટીકા, વ્યાખ્યાનની યોગ્યતા, વર્ણાશ્રમ સમંત્રી ચર્ચાઓને અસુવળ રાખનારા, ધર્મશાસ્ત્રાનુમિતિ અનુચલ તથા કેવલતા પ્રતિષ્ઠા આચાર, લોક પરલોકને સમજવાની શિશા તથા સર્વોત્તમ સાધનને સમજવાની કૃતકૃત્યતાને કેટલો મુક પરિચય પ્રાપ્ત થયેલો હતો. તેમણે કેવા કેવા બનાવ્યારી, અસ્થિરચિત્ત, અકલ્પ્ય તથા મનકોસને વધારે માત્ર ઉપર લાવવા માટે કેવા પ્રયત્ન અરિત, તલસ્પર્શી ભુદિ વેલવ, પરમાર્થ તથા વ્યવહારને અનુભવ અને નિરપૂર્ણ ભાષ પ્રગટ કર્યો હતો. સહા જે કોતાને કોવા અરિત રાજ રાજ સાંભળવા મળ્યો, તેનું જીવન અનુજા પછો ન પાય એમ કહિ પજી બની શકે નથી.

પહેલાંના મહાત્મા શુરૂપદ, આચાર્યપદ, પુરો-
હિતપદ, મહંતપદ, મંદલેશ્વરપદ અને અધ્યક્ષ-
પદને અલંકૃત કરતા હતા, તેમનામાં રાજા, મહા-
રાજા, વીર, મહાવીર, અંધકાર, બાળ્યકાર, સમર્થ
આખ્યાતા, પ્રેરક, કથાકાર, નિરુપદ રાજગુરુ,
મહાન સ્મૃતિકાર, નિષ્પક્ષ ન્યાયાધીશ, રૂષિ, સુનિ,
અને સાચા સાધુ બ્રાહ્મણોનો આવિર્ભાવ થતો હતો.
તે સમયે રાજા પ્રજા સર્વ તેમનું શિષ્યત્વ ગ્રહણ
કરતા હતા, તે સમય બારતવર્ષની ચતુર્વિધ
ઉન્નતિના સમય હતો. દેશમાં જ્યારથી યથાર્થ
શુદ્ધત્વ અને શ્રેષ્ઠ શિષ્યત્વ ઘટવા લાગ્યું, સારથી
સાચું જ્ઞાન અને ચરિત્ર આયમી ગયું, તેથી
મનોભાળ, શરીરભાળ અને અંતમાં ધન જનભલ
પણ ક્ષીણ થઈ ગયું.

આ સર્વ વાતો પૂર્વજોનાં ચરિત્ર તથા ભગવત
કથા શ્રવણ કરવાથીજ માણસ પડી શકે છે. ‘અમે
કેવા હતા અને કેવા થઈ ગયા ?’ એનું જ્ઞાન એને
શી રીતે થવાનું ને કયાનંદ શ્રવણ કરતો નથી ? ને
સાંભળશે તે કોઈ વાર મનન પણ કરશે, મનન
પછી નિશ્ચિંતાસનનો વારો છે, એવું કરનારો
ઓતા અવસ્થા લાભ મેળવશે. ‘અમારાથી એ પ્રમાણે
ચાલી શકાતું નથી’ એવું સમજીને ને અપવાદ કથા
તથા સંત ચરિત્રો સાંભળતા નથી તેમને કોઈ લાભ
તો થશે નહિ, ઉલટા તે પૂર્વજોની પ્રસિદ્ધ ખ્યાલિથી
અજાણ્યા રહી જશે; ને જાણવાની સંસ્કૃતિ અને
માટે અત્યંત આવશ્યકતા છે.

બાળ્યો, વેદ, યાજ્ઞ, સ્મૃતિ, આદિનાં ગહન
તરવાને વિદ્વાન જ જાણી શકે છે, એ સર્વ તથા
તેમાં યનારાં ખંડન મંડન તો પડિતેને માટે છે.
સર્વ સાધારણને માટે તો સાધુ સંતોની ઉપદેશ
કથાજ લાભદાયક થઈ શકે છે, કેમ કે તેઓ શાસ્ત્રોના

કંઠસુખાં કંઠસુ ભાવને સરલ દ્રષ્ટાન્તો તથા શુદ્ધિશે
દ્વારા સમજાવવાની કૃપા કરતા રહે છે. હનિયામાં
સાધારણ સતુષ્ઠીની જ સંખ્યા અધિક છે, તેમના
ઉપકાર માટે સંતોએ સર્વ શાસ્ત્રોને મથીને જે તત્ત
કાઠમું છે તેજ સૌના કામની ચીજ છે. સંતોનો
ઉપદેશ સર્વ લોકોને એટલા માટે માન્ય થઈ ગયો
છે કે તેઓ વિષય લોભાગતા, અમાકાર, સિદ્ધિ
અને લોકપ્રતિષ્ઠાનો ભાગ કરીને શુદ્ધ જ્ઞાન, પવિત્ર
ચરિત્ર, સાધુ સ્વભાવ, પ્રભુ પરાયણતા, અપ્રસિદ્ધિ
અને આસુરી સંપત્તિના ત્યાગને અપનાવી રાખે
છે. એવા શ્રેયઃસાધક પ્રભુપ્રેમી મહાપુરુષ કેવ
ધર્મોદ્ધારક હોઈને જન્મદુરુતના ગૌરવપૂર્ણ પદને
સુશોભિત કરે છે. બાઈ, એવા મહાપુરુષના મુખથી
સાંભળેલી કથા કદિ નિષ્ફળ જતી નથી, કેમકે
પ્રજ્ઞાનદ અને પ્રજ્ઞ શ્રોત્રિયના મુખથી ઉચ્ચારિત
ભગવદ શુભાનુવાદનું શ્રવણ અવશ્ય સફળ થાય છે.
પ્રથમ ગાંધી વાતો સાંભળવામાંજ આવે છે, પછીજ
તે પ્રમાણે કાર્ય કરવાનો અવસર આવે છે. તમે એ
વાતની ફિકર ન કરો કે અમે ને વાત કથામાં
સાંભળીએ છીએ તે પ્રમાણે આચરણ થઈ નથી.
તમે તો ‘અમે સત્સંગમાં અવશ્ય જતા રહીશું’
એવોજ નિશ્ચય કરી રાખો, પછી તો કામ બનું
જનાવું જ છે.

તે પછી મહાત્માજી કહેવા લાગ્યા—હું ધીરથી
નીકળીને એક વાર વિદ્યાભ્યાસને માટે કારી ગયો.
ત્યાં એક વૈભવપૂર્ણ મઠ ભણે, ને એક મહંતના
અધિકારમાં હતા; મઠમાં, કોઈ પણ ઉપજોગ
સામગ્રીની કસર નહોતી, મહંતજીને ઘણા લોકો
માનતા પણ હતા. તે સ્થાન તથા મંદિરના અવશ્ય
વૃદ્ધ હોવાને લીધે તેનો ત્યાગ કરવા ચાહતા હતા.
મને તે મંદિરની અધ્યક્ષતા પ્રાપ્ત કરવાનો લોભ

યહ આભ્યો તેથી હું ત્યાં નિત્ય જઈને ઘણીએવાર
કુખી વૃત્ત, સાધન, ભજન, ઉપાસના આદિ કરવા
લાગ્યો. એક દિવસ મને આકાશવાણી સંભળાઈ
કે દેવદત્ત ! આ શું ? તું આ સર્વ વૃત્ત ઉપાસના
શુદ્ધ લાભસાગી પૂતિને માટે કરી રહ્યો છે ? એમ
ન કર (ઉપાસના કરવાથી, આહે તે સ્વાધીને કારણે
જ હતી, હૃદયમાં કંઈક પરિવ્રતા આવી ગઈ,
તેથી હૃદયરૂપ આકાશથી આ પ્રેરણા ધઈ, એજ
આકાશવાણી કે દેવ પ્રેરણા હતી જે દમ્ભ નહીં
કરવાની આજ્ઞા આપી રહી હતી) હું આ પ્રકાર—
ની દેવવાણી સાંભળીને મારા કબજૂલું વ્યવહાર
ઉપર પચાતાપ કરતો (વચાર કરવા તાગ્યો—) કે
એક વર્ષ જેવે કપટ સહિત સકામ ભાવથી ધરવર-
ની ઉપાસના કરી પ્રભુના ઉપર સાચો પ્રેમ તથા
વિશ્વાસ છોડીને લાવયમા ફસાઈ રહ્યો, એ કેટલી
ચરમની વાત છે, પરિત્ર અતઃ કરણથી મેં ભગ-
વાનની ઉપાસના ન કરી, મહત્તાની લાલસાથી
સ્વાર્થી ગમ્યો રહ્યો.

થીજે દિવસે ત્યાં નમરના કેટલાક જાદુ પુરોએ જે
મહંતશના સેવક તથા મદના ભક્ત હતા, મંદિરમાં
કરીન કરવા આભ્યા અને આપસમાં કહેવા લગ્યા કે
આ ધર્માલયની ઉત્પત્તિ તથા પ્રભુને મારે કોઈ જે ગ્ય
પુરુષને અધ્યક્ષ સ્થાને નિયુક્ત કરીને ઉપદેશક
નિમન્વાની આવશ્યકતા છે એવા વિચાર વિનિમય
કરતા કરતા તે લોકોની દ્રષ્ટિ મારા ઉપર પડી,
તેમને તે સમયે હું જ સીધો યોગ્ય જણાવેલ તેથી
તેમણે આવીને મને તે મંદિર તથા મહંત અધ્યક્ષ
પદ મહંત કરવાની પ્રાર્થના કરી હું મારા મનમાં
વિચારવા લાગ્યો—કે પ્રભો, મેં કપટ સહિત એક
વર્ષ જેવું આપની ઉપાસના કરી, પરંતુ ત્યારે
તો કોઈએ મારા તરફ આંખ ઉઠાવીને એક

સરખુય નહોતું, આજ આખે હૃદય અર્પણ કર્યું
અને યથાર્થ વિરવાસ ધારણ કર્યો, ત્યારે આ ભલા
માણસોને આપે મારી પાસે મોકલીને અધ્યક્ષપદ
અર્પણ કરવાની કૃપા કરી, પણ હવે હું આપના
મહંતને પીછાણી ચૂક્યો છું, તેથી મારા મનમાં
હવે એ અધ્યક્ષતાની અભિલાષા રહી નથી મને
તો આપની ચાહ છે, આપ સર્વ જગાએ છો,
આમ વિચાર કરતો હું તે મંદિર અને મહંતની
મહાર નીકળી ગયો.

તે પછી હું અગ્નિકાપુરી ચા થો ગયો, ત્યાં
મારી પડોશમાં એક મહા પાખડી અને ઉપદ્રવી
યુવક રહેતો હતો, તેની કુપ્રવૃત્તિથી હું ખિત
કેટલાક ભલા મનુષ્યો સાથે હું શાન્તિ તથા પ્રેમથી
સમજાવવા માટે તેની પાસે ગયો. તે જાકકાઈને
એણે—અણુતા નથી હું શાન્તો પ્રેમપાત્ર છું
મને કોઈ પણ કહેવાની કાંઈતામાં શક્તિ નથી
અમારામાના જ એકે એમ કહેવાથી કે અમે રાજા
પાસે જઈને ફરિયાદ કરીશું, તે બોલ્યો—કીક છે,
ભલો, રાજા મારોજ પક્ષ કરશે, હું જે કરીશ
તેજ તે મનશે આખરે નિરાશ થઈને સૌ પાછા
ફર્યા તે યુવકના રાજ રાજ વધતા જતા ઉપદ્રવથી
ત્રાસેલા કેટલક લોકો સાથે હું ફરી એકવાર તેને
સમજાવવા જતો હતો, ત્યાં રસ્તામાં સોયે એવી
આકાશવાણી સાંભળી કે, ખગરદાર ! તમે મારા
ભક્ત ઉપર હસ્તક્ષેપ ન કરતા, અદમ સાંભળીને
સૌ ચકિત થઈ ગયા અને કહેવા લાગ્યા—આ કૃષ્ણ
પ્રભુનો પ્યારો કથારથી ? મેં કશું—હું એકલો જઈને
એક લઈ કે સાચી વાત શું છે ? મારા ભા જવાથી
તે યુવાને પૂછ્યું, વળી પાછું કેમ આવવું થયું ?
મેં કહ્યું—હું તમને એક ઉત્તમ સંદેશો સંભળાવવા
આભ્યો છું, તમે પ્રભુના પ્યારા છે એવી દેવીવાણી

અમે સાંભળી છે. 'યુવકે કહ્યું—મહોદય, મને મારાં કત'બો માટે પશ્ચાતાપ થાય છે, ગઈ કાલથી મારા મનમાં પરિવર્તન થઈ ગયું છે, હું, સૌની પાસે ક્ષમા માગીશ, મારી પાસે જે કાંઈ છે તે સર્વનો પ્રભુના નામ ઉપર ત્યાગ કરીશ, આમ કહીને પોતાની સર્વ સંપત્તિ ગરીબોમાં વહેંચી દઇને તે ક્યાંય ચાલ્યો ગયો, તે દિવસ પછી કોઈ નગર-વાસીએ તેને ફરી તે નગરમાં જોયો નથી. ઘણાં વર્ષો પછી મેં તેને કાશીમાં જોયો, તે તૃણવત્ કુબળ હતો અને મરણોન્મુખ હતો. મને જોઈને તેણે કહ્યું—હું મારા બન્ધુ પ્રભુની પાસે જાઉં છું, તેના વિના મને ગમતું નથી, મારાં કૃત્યો પર હું પૂરે-પૂરો પશ્ચાતાપ કરું છું. હું મારા અપરાધોનાં ફળ ભોગવવા તૈયાર છું અને એવી પ્રતિજ્ઞા કરું છું કે હું ફરીથી કદિ પણ એવાં કૃત્ય કરીશ નહીં.

તે પછી મેં અહિં (કાશીમાં) નિયમપૂર્વક સન્યાસ ધારણ કરી લીધો, હવે હું ઘણા દિવસોથી મીઠાઈ અને ખટાશ ખાતો નથી, ભેંસ અને સીવેલું વસ્ત્ર પહેરતો નથી, તમાલ, તામ્રચુલ આદિ પદાર્થોને અડકતો નથી. ઘેર ઘેરથી લીક્ષા માગીને ખાઉં છું. હવે મારું મન શુદ્ધ અને શરીર શુદ્ધ છે, મને પ્રભુજ માત્ર ઇંદ છે બાકી સર્વ ફેટ છે, એમ સ્પષ્ટ કહું છું.

એક દિવસ અસ્વસ્થ દશામાં મને મીઠાઈ ખાવાની ઇચ્છા થઈ. કેટલીક વાર સુધી પિરજ ધારણ કરી રાખ્યા છતાં પણ હું તે લાલચને રોકી શક્યો નહીં. એક દિવસ કહેવાયો એક બ્રહ્મે મીઠાઈ લાવીને મને આપી, મેં તેને ત્રણવાર ખુંધીને કહ્યું—અરે મનવા, તારે માટે આજ ભોગ પુરતો છે, એથી વધારે ઉપયોગ કરવો ઠીક નથી, એટલું કહીને મેં તે મીઠાઈ એક બીજારીને આપી દીધી અને

કહ્યું—અરે હર્ષલ મન, નિયમસર રાખવા માટે હું તને કલેશ પહોંચાડું છું. કોઈ વેરભાવને લીધે નહીં પણ માત્ર મિત્ર ભાવેજ તેમ કરે છું એમ સમજજે, તું થોડાં દિવસ ધૈર્ય ધારણ કર, એક દિવસ હઃખનો અંત આવશેજ અને તે કદિ પાછું દેખાશે નહિ.

હોઠો કહે છે કે જે મનુષ્ય ચાલીસ દિવસો સુધી ધૌલિક આહાર નથી લેતા તેમની શુદ્ધિ બ્રહ્મ થઈ જાય છે. પણ હું નથી સમજી શકતો કે એ વાતમાં કેટલું તથ્ય છે, વીસ વર્ષ પર્વત મેં એવો આહાર લીધો છે કે જેમાં ઘી હાથ જેવા પુદ પદાર્થો નામ પણ નહોતું, વળી એવું મુકું ભોજન પણ એકજ વાર ખાવાને મળતું હતું. હું મીઠું ખાઈને ખાર વરસ સુધી સાંજનું વાગી ઠરતો રહ્યો પરંતુ મારી શુદ્ધિ જરાય બગડી નથી, ઉલટી સુધરી ગઈ. ખાવા પીવાની કોઈ વાત નથી. નિશ્ચિત જીવન અને ઉત્તમ વિચારોથી શરીર શુદ્ધ અને તેજસ્વી, થાય છે. જેમના વિચાર ઉત્તમ હશે તેજ ખીભજો કરતાં અધિક ચિન્તારહિત હોઈ શકે છે. 'ચિન્તા ચિન્તા દ્વયોર્મયે ચિન્તા તુ પ્રાણવાતિતો' ની કહેવત સાચી છે. કહ્યું છે—

એક મુનં દીદ્મ, ન પાવો ન પર ।

ન અજ સિદ્ધમે માદર, ન પુસ્તેપિદર ॥

ન વર આશ્રમાં, ન જેરે જર્મી ।

દમેશઃ પુદં ગેરતે, આદમી ॥

અર્થાત્ અમે એક એવો મરઘડો જોયો છે કે જેને પગ પણ નહિ તેમજ આંખો પણ નહીં, માતા પિતાથી એ પેદા પણ થયો નથી, નથી તે આકાશમાં રહેતો કે નથી પૃથ્વી ઉપર રહેતો, પરંતુ તેનામાં એટલું સામર્થ્ય છે કે તે પ્રતિદિન મનુષ્યનું માંસ ખાયા કરે છે. આ રૂપકમાં જે મરઘડાનું વર્ણન છે તે 'ચિન્તા' છે.

સંખ્યાસી મહારાજે પોતાનું વ્યાખ્યાન આજી રાખતા કહ્યું—નૈમિષારણ્યમાં એક વૃદ્ધ સ્ત્રીએ મારે માટે ‘કપટી’ સ્વપ્નનો પ્રયોગ કર્યો હતો તે સાબળીને વિચાર કરવા લાગ્યો—ઠીક છે, વીસ વર્ષથી અને આ યથાર્થ નામથી કેાઈએ નથી ઓલાઓ, આજ આ વૃદ્ધ કાઠીમાએ સાચા નામથી ઓલાઓ છે. હું જેવો મનુષ્ય છું તેવો એ ભરાભર એકાગ્રી ગર્હ, માફ નામ તો એણે ભરાભરજ પાડ્યું છે એમાં કાંઈ શકા નથી, પણ એણે એ કેવી રીતે બાંધ્યું એજ આશ્ચર્યની વાત છે તેથી મેં તે વૃદ્ધ કાઠીમાને પૂછ્યું—આપે માફ નામ તો યથાર્થ કહ્યું, પણ એ આપે કેવી રીતે બાંધ્યું કે એ નામ ભરાભર છે? તેણે કહ્યું—
તું સંખ્યાધારણ કરીને પણ આત્મચિંતન કરતો નથી, આમ તેમ બદલવા કરે ?—

ઉત્તમા સદ્ગાવસ્થા મધ્યમા ધ્યાનધારણા ।

વનિષ્ઠા પ્રતિભાપૂજા મોર્ચયાત્રાહવમાઝમા ॥

મું હું નથી બાંધાનો કે આત્મચિંતન પશાયણ

સંખ્યાસીને માટે ઉપાસના, ધ્યાન, પૂજા, અને તીર્થાંકિતો બહુ પહેલાની વાતો રહી બાક છે, એ તો મન્દ, ક્ષનિજ અધિકારિયોની ચિંતા મુકિના સાધન છે, વારે તો એનાથી આશ્રય વધતું એકાગ્રી હતું, પણ નથી વધ્યો, એટલે હું ‘કપટી’ નહીં તો કેવો છે? રક્ષાના કહેવાનો પ્રભાવ મારા ઉપર ઘણોજ પડ્યો તેથીજ હવે નિશ્ચિત થઈને ભગવતી બાગીચીના તટવર્તી ‘સિદ્ધાશ્રમ’ માં કેટલોક સમય નિવાસ કરવાનો વિચાર કર્યો છે.

અમર કાંઈ કહે કે આ આશ્રમથી જે તમારા સૌમા અધિક અધમ હોય તેને બહાર કાઢી મૂકે, તો મારેજ બહાર નીકળી જવું પડે કેમકે હું જ એવો ગયો ગુણ્યો છું

મહારાજાજી જમણુ રતાન ગુર સર શિષ્યાપુત્ર
વિદ્યશુભ ઉપદેશ આપીને ચૂપ થઈ ગયા. ‘કાલધો આશ્રમમાં આજ સમયે ‘બીતાધર્મ’ ના રહસ્યનું વિવેક સમન્વિત વિવેચન રાજ થવા કરશે’ એવો નિષ્કૃષ્ટ કરીને સત સખા સમાપ્ત થઈ

નામ મહિમા—

(કથારામ ૧૧)

હરજમ કૃષ્ણ કહે, શ્રી કૃષ્ણ કહે તું જરૂર મેરી,
ચહી મનનખ કે ખાતર કરના હુ ખુશામત તેરી—હર૦
દહી એર ફક શકર, દેતા હું હર બજા વજે,
તોભી હરરૌજ હરીનામ, મુનાતી ના મુજે. હર૦
કરે ગુન ગાન ગોવિંદ કે, તું મુખમે પરી રહે બપા,
નહિ તો મે એય નિકાણ, કરા મુખમે ગામ બપા—હર૦
બ્રહ્મ જી જગાની સારી, સોમ્ય ગુન્દા માફ તેરા
દયા પ્રિયમ બુને મલિ નામ, આખર બજત મેરા—હર૦

કરુણા લહરી

[પંડિતરાજ શ્રી જગન્નાથ વિરચિતા]

(અનુવાદક:—લાલજી વીરેન્દ્ર જનનિ)

[અનુસંધાન અર્તક ૫૦ ૧૦૪૦ થી આમળ]

“વપુરી વશમીશ તાવકં હૃદયાલમ્બનમસ્તુ મે સદા ॥”

‘આવું’ તાફે કમનીય શરીર છે વિલો, મારા
હૃદયને આલંબન આધારરૂપ હો !

હરિયાળી જમીનમાં રથું,

વર વૃંદાવનમાં વિલાસતું;

મણિમંડપ મધ્ય શોભતું,

વપુ એ ^૧દેવતા તલે રૂંડે, ૪૦.

માથે ધરેલા મયૂરપિચ્છ તથા વાળનું વર્ણન:—

શિખિ-પિચ્છ વિષે મણિ સ્ફુરે,

મુકેટાકુંચિત વાલ માથડે;

અતિ નીલ સુવાલની લોરો,

લટકે ચારુ લલાટમાં અહો! ૪૧.

પ્રજ્ઞના મુખનું વર્ણન:—

^૨શરદિન્દુ—સમાન આનન,

વિકસેલાં વળી લાલ લોચન;

હિસતાં કમળો સમાં રૂંડે,

અથવા પુષ્પ સમાં પલાશનાં, ૪૨.

ક્રોળ મંડળ—આલનું વર્ણન:—

જરી પીળું ^૩કંપોળ મંદળ,

પ્રતિબિંબો વહતાં મુકુંદલ;

મણિ—મોતી જડલ છે કડી,

^૪કમનીયા હરિ-કાનમાં જડી, ૪૩.

ભગવાન વિષ્ણુની કંધરા (neck) નું વર્ણન:—

પૃથુ વર્ણલ ચારુ કંધરા,

દીપતી મૌખિક-માલયા મહા;

વધતી હરિ—દેહની ધ્રુતિ,

અધિકી નીલગિરિ-પ્રભાથકી;

નમતો હરિ-કંઠ છે જરી,

કમલાના ઉર-સાર-સારથી, ૪૪.

પ્રજ્ઞના કેટલું વર્ણન:—

વળી કંઠ વિષો અહો ધરી,

વનમાળા ચરણાવલમ્બિની;

ઘન રથામ જ ^૫અગ્ર રંગની,

^૬ભુજગાકાર ભુજનતરે પડી;

કુસુમે વનમાળ શોભતી

^૭સુધુમા હરિતણી અહો અતિ, ૪૫.

શ્રી હરિના હાથનું વર્ણન:—

કમનીય કરો પ્રભુ તણા,

પતિતોદારણના વ્રતે વસ્ત્યા;

મણિ—કંકણ—કાંતિથી અહો,

કરુઆ અંબુજ તુલ્ય શોભતાં, ૪૬.

આમળાઓનું વર્ણન:—

નવ રત્ન મહેલ વીરિયો,

પ્રભુની અંશુલીએ સજાઅહો;

૧ કલ્પવૃક્ષ નીચે. ૨ શરદ કાળનો ચંદ્રમા. ૩ મુખ.
૪ આલનું મંડળ કુંડળના પ્રતિબિંબથી જેના આલનું મંડળ
જરા પીળું દેખાય છે. ૫ સુંદર—મનોહર.

૧ વાદળ—અકાશ ૨ સાપના જેવા આધારની
લાંબી, ૩ શોભા.

+ હરતા મન ને પ્રતિ હરિ,
- કરીને વેણુ—નિનાદ પ્રેમથી. ૪૩.

૬૨ જીવતા રે મનુ વર્ણન—

સદર—ધૃતિને પદારતા,
સહરિ રૂપક રોમ નાજીના,

પશુપાત્ર—પ્રિયા—મુનેમને,
અતિ આકર્ષણરૂપ એ બને, ૪૮.

શ્રી વિષ્ણુના હર-સાથનું તથા જનુ ધૂતલનું વર્ણન

૧ કનક ડવ—ગૌર વસ્ત્રને,
ધરતા સુન્દર હરુ જીવરે,
હરિ—જાતુ પરે પર ધૃતિ,
મળ્યા નૃપરતા અલ્પિતજી ૪૯.

નંધનું વર્ણન—

હરિ—જાલ અલોકિણી અતિ
કરિયા મુખ મળેન્દ્ર'રુદ્રધી,
૨ ત્રિજગન્કમનીય ઇશની,
વર જલા તણી જોડ શોકતી ૫૦.

પરના તળિયાનું વર્ણન—

૩ કુવિરાલુરા શય અકનક,
શુભ ચિ હો જગજ પદ્મ આલિના,
ધરતા પ્રભુ—અર્જુના તથા,
કમનીયા આશુ ધૃતિ સહ ૫૧.

શ્રી વિષ્ણુના ચરણ મુગલનું વર્ણન—

૪ ત્રિધિ—રાકર—આદિ દેવના,
કુરોના અલ્પિ તેજથી ભર્યા,

પ્રજ્ઞના પ્રિય પાદ મુખ આ,
નખ ચંદ્રે સહુ તાપ રાજતા, ૫૨.

કવિની અભિલાસ—

હરતા ફરતા ય માર્ગમા,
વડતા હૃદી જતાય ગહમા,
વપુ આપુ પરેશ તાહર,
હૃયાલભન યાવ માહરે ૫૩

પ્રજ્ઞના સમગ્ર રૂપનું વર્ણન—

૧ નવ નીરઠ નીચિમા—ધૃતિ—
પદ્મ સુદર રૂપ આ અભિ,
નિગમો મુજુ જ્ઞેમને નમે,
વસાએ એ પ્રભુરૂપ ૨ મન્મને,
નરકે વળી હું પડતને,
કરુણા દષ્ટિથી તારસો હરે. ૫૪

પુષ્પિ તાળા

તવ ચરણ પડી હરિ હું માણ,
કર-દય જોડી નિનમ્રતાથી યાણ
કુપીવય કુલમા ભાયે હું જાણ
ત પિ તને પ્રભુ લેરા હું ન જાણું ૫૫

શાકલ વિગ્રહિત

વાયા નિર્મળ રે મુખા સમ વરી,
જે રીખ આપી મને,
તે રૂપમે પછુ ના રમરી અરર મે,
ગર્વે કરી નિર્વે. ૧

+ હરતા મન વિતર્યા હરિ } ૫૬ તરે
- કરીને વેણુ—મુનાદની કૃતિ

૧ સેવાના રસ જોવા પીળ વળને (ધરણ કરતા)
૨ મળે જગતમા સવ થી વધારે પ્રેમ ૩ કુલિકાનંદાક
કૃષ્ણ-વજ્ર બને અંકુશ ૪ ખડા.

૧ નવ-નવીન વર્ણાશળના નીરઠવાદળ ધૃતિ
રેજ નીચિમા અભિમાની ફેમ વર્ણાશળના વડાએ જેનું
ધનસાગ મુરરે તેજ જોમનું હરીર ધારણ કરે જે તેનું પ્રભુનું
૨૫. ૨ મરા મનમાં ક મેડુતના કુગમાં

આ રીતે અપરાધ લાખ કરિયા,
 ૧ તોયે ગણ્યો 'આત્મ-તે';
 તુંથી મહાન દયાનિધિ નથી હરે,
 હુંથી ન દો ૨ મુક્તરે. ૫૬
 જા પાતાળ વિષે જ ઇંદ્રપુરી કે,
 મરે શિરે તું ભલે;
 પારાવાર—મહોદધિ તર ભલે,
 આશા શમી ના હરે.
 આધિ—વ્યાધિ—જરાથી પીડિત
 ૧ યદિ કદયાણુ ધરે સદા;
 ખીને જીવ "રસાયન ૩ શ્રીહરિ",
 તું મિથ્યા શ્રમો અન્યથા. ૫૭.
 જે છે વળ સમાન ૪ પાપ-અયના,
 ૫ પહાડો સદા તોડતું;
 જે છે ઔપધ સિદ્ધ સદા હણવા,
 સંસાર વ્યાધિ તણું.
 દૂર—હલેરા સ્વરૂપ વૃક્ષ દહવા,
 જે અગ્નિ રૂપે રહું;
 એવું નામ "શ્રીકૃષ્ણ" દ્વાર સુખર્તું,
 સર્વત્ર જય પામતું. ૫૮.

૧ પૃથિવી હંદ.
 વિધાલ વિધવાટવી તલ—
 સુલગ્ન—દાવાનલે,
 પ્રચલે ભાડે મદીય મન,
 વ્યથ થે ૧ પ્રભવલે;
 સંપૂર્ણ વિકસીત પદ્મ સમ,
 માધુરી મંદિરે,
 ૨ મુકુંદ ૩ મુખ—મંદિરે, મન
 ૪ ચક્રોર માઈ થલે. ૫૬
 ૫ શિખરિણી
 અહો! ખેસી ગંગા-સુર નદી
 તટે અંતર મુખે,
 સમાધિ ધારીને, વિષમ
 વિષયો છાડી અપે;
 મધુરી મૂર્તિમાં ૧ નવ જલદ શા
 ૨ શ્યામ હરિ પે,
 કદા શુદ્ધાત્મા થી, મમ મનકે
 ૩ મગ્ન બનશે. ૬૦

इति पंडितराज श्री जगन्नाथ विरचता
 करुणा लहरी समाप्त ।

૧ પોતાનો; સ્વજન. ૨ પ્રમત; મુખ. ૩ શ્રીહરિ—
 "શ્રીકૃષ્ણ" નામનું રસાયન, જે જીવ, તું પીલે. ૪
 પાપના ઢગવાના; ૫ પાપના સમૂહના, ગય=સમૂહ; ઢગલો.

૧ બળે, છે. ૨ શ્રીકૃષ્ણના મુખરૂપ ચક્ર પ્રત્યે
 ૩ ચક્રોર પક્ષી. ૪ નવાં લાદણા જેવા ધનરમામ.



ગીતાગૌરવ ભાગ-પાંચમામાંથી કંઈક—

આત્મસંભવિતાઃ સ્તગ્યા
ધનમાનમદાન્વિતાઃ ।

યજન્તે નામયજ્ઞૈસ્તે
દમ્ભેનાવિધિપૂર્વકમ્ ॥ ૧૭ ॥

પોતાને મેઘા માનનારા, અક્રક્રબાજ, ધન, માન અને મદમાં મસ્ત એ આત્મી સૌક, દમ્ભ-પૂર્વક વિધિહીન યજ્ઞ દ્વારા નામના મેળવવાને સાર કર્મ કરે છે.

ગી. ગ્રં. —હે અર્જુન, જે પોતાનાજ મનથી પોતાને સર્વ વાતોમા શ્રેષ્ઠ, સન્માન્ય અને પૂજ્ય માને છે, અહંકારથી પૂજનીય વ્યક્તિઓ પ્રત્યે પણ જેઓ તિનયનો વ્યવહાર કરતા નથી, અને પોતાના ધન સંપત્તિના નિશામા ચક્રવૃત્ત રહે છે, જેવા આત્મી સ્વભાવના મનુષ્ય, જે યજ્ઞ દાન કરે છે તે યજ્ઞની રીતીથી થતા નથી કારણ તેવાઓની થાસે કોઈ યોગ્ય સંપુરક તો આવતાજ નથી તેમને તો તેમની હા મા હા મેળવનાર, ભગલા કાગલ ધમની ધમ સર્ક કરનારાજ મળે છે જેઓ યજ્ઞ સિધ્ધિ શૂન્ય હોય છે. તેથી તેના ફળમાં વૈગુણ્ય (ઉછટો શુણ્ણ) થતુંજ જોઈએ. એ હોક શબ્દ વગર દેવજ ખાખડથી હોકોમાં વાહ વાહ કહેવડાવવાને સાર યજ્ઞ અને દાનના નાટક રચે છે. તેથી તેમના કર્મ તામસી હોવાને કારણે અધો અસ્થિતિ વામસા 'અનુસાર તેમને નરકજ મળે છે

૭૦ પ્ર૦—મિત્ર, જારા પ્રાર્થનું એ સ્વાકાવૃત્ત વર્ણ છે કે તેઓ પોતાને સૌથી નાના સમજે છે, ભગવાનની મહત્ત્વને તો કાંઈ અંતજ નથી, છતાં પણ યુક્તિરિતના શબ્દજ નહીં જાતિવિદ્યાના પર પાવાનું કામ ૧૫૦

પોતે મળે લીધું, તેનું ફળ એ આનંદ છે, તેમના તરફ સદાએ વાંછી નજરે નેનારા મોટા મોટા આત્મી સંપત્તિ-લાભીઓએ પણ કમવાનનેજ અમૃતમાને યોગ્ય માન્યા (ક્રિષ્ણપાત્રને વિશેષ નીચું દ્રષ્ટિથી હતો, કારણ કે એક રીતે તેના હાથમાં આવેલી રૂપિયજીનું થી કૃષ્ણે હરજ કરેલું હતું) તે સમયે ક્રિષ્ણપાત્ર જગદસ્તીથી મોટા જનવાની ઇચ્છા કરી સારે તેનું જસ્ટીત્વજ મટી મળું. મતલબ એ કે—તમે સન્માનને યોગ્ય નેઓ હોય તેમનું સન્માન તો કરોજ, પણ તમારાથી નાનાને પણ જેટલું થાન આપશે તેટલુંજ તમારું માન અધિક વધશે. ને પોતાને સર્વથી મોટા સમજે છે. તે સર્વથી નીચો પાવાનીજ જાળજાયે કોલિય કરે છે. તમે સારા કામ કરશો તો જાણોઆપજ ઠીતિ અને સન્માન મળશે. જેમ ક્યો હોયેલું વજા મળેલું રહે કે તેમજ તમારામા કદરુજુ હશે તો તમે આજોઆપજ નમી જશો અને સદરુજુ નહીં હોય તો હુમ જાઠના જેવા અક્રક્ર રહેશો. આત્મી દોષની જેમ ચિન્હ હોય કે જે, તેઓ ઉદ્ધત અને અક્રક્ર-માજ હોય કે, તેમનામાં ક્ષમા, ક્ષમા તથા નમ્રતા હોવી નથી આમ તેમથી ઉતરપેડી કરીને ધન જોડું કરવાથી તેઓ જાતે પોતાને ઉચ્ચાર્થ બહાર ઉઘાડાઈ જાય છે. જાણામીછ કહે છે કે—

ધુરં નદી જતિ ચક્ષી હંતરાઈ ।

જસ ચૌરે ધન ખલ બીરાઈ ॥

ચોચાણામાં નાનાં નાનાં નદી નાળાં પરજાદ થતાજ ઉચ્ચાર્થ જાય કે, પણ પરજાદ અંધ થયા પછી એક કલા-કર્મા તો તેમનામાંથી જાગમન કરવા જેટલું પણ પાણી મળતું નથી. અને મોટી મોટી ગજા વપુરા આદિ નદીઓ કે તેમજ સદાએ પાણી રહે છે તેજ પ્રમાણે નીચ આદમી જેડુ જગજ અનુચિન રીતે થઈ ધન મેળવીને તેના મદ

અહારમાં આવી જાય છે. પરંતુ જે ખાનદાન મનુષ્ય હોય છે તેઓ અમીર હોય કે ગરીબ હોય પણ તેમનામાં ધીરજ, નમ્રતા સભ્યતા અને સદાચાર રહેવાનાંજ. તીય લોક તેનાથી વિપરીત સદા નાચરંજ, સિનેમા અને ખાન-પાનમાં મગ્ન રહીને સર્વ લોક ઉપર પોતાનો પ્રભાવ જમાવીને પોતાને લોકો ‘નગર શેઠ’ કહે એવી ઇચ્છા રાખે છે. અને તેમ કરતાં જ્યાં તીજેરીનું તળિયું આવ્યું તો પછી હોટેલોમાં આખીએ મારતા રહે છે. તમે બીજા બધા નિશ્ચય વખતે શ્રીવી શ્રીશ (અગર તેનાથી જે નુકસાન થાય તો તમને એકલાને જ થાય) પણ ધનનો નિશો શ્રીવી શ્રીશો નથી. એ ચારે તરફ દેશધને પણ મણાઉપદેશો ઉઠા કરે છે. દિવિ બિહારીલાલે કહ્યું છે કે—

કનક કનક તે સૌ શુભી, માદકતા અધિકાય ।

યહ ખાયે ખોરાત હે, વહ પાયે ખોરાય ॥

કનક (ધંધેરા) થી વધતી કનક (સોનું) ની માદકતા છે. પહેલાના તો ખાવાથીજ ગાંડપણ થાય છે, પણ બીજાના તો મગવાથીજ ગાંડપણ થઈ જાય છે. વાત એવી છે કે આજકાલ ધન ઉપાર્જનના ઉપાયજ બહુ દુષિત થઈ ગયા છે. પહેલાં પોતાના વર્ણને અનુસરીનેજ સર્વ લોક જીવન નિર્વાહ કરતા હતા. અને ધન એકંદુ યતાં તેના વિતરણના અનેક (યજ્ઞ યાગાદિ) માર્ગ હતા, તેથી ધનની માદકતા એટલી વધતી નહોતી પણ હવે તે સર્વને પોતાની પાસમાં બાંધીને વધારું ફાસલ નવાનવા ઉપાયોથી ધનપતિ થવાની ફરજ પાડે છે. બીજાના રોજગાર વૃદ્ધી જાય છે કે ગરીબોના મહેનો કાળિયો છિનવાઈ જાય છે, તેની પરવાહ રહેતી નથી. અગર જે આ ધાર્મિક કારખાનાંઓ પણ કાષ્ટ શાસ્ત્રીય મર્માદાયી યજ્ઞવચ્ચમાં આવ્યાં હોત—એટલે કે, કાપડની મોલો વજ્રકરોનીજ વ્યવસ્થામાં હોત, તેજની મોલોના માલિક તેલીજ હોત, જૂના કારખાનાં ચમારોનાજ હોત, ખાંડનાં કારખાનાં જેડૂતોની માલીકોમાં હોત, રૂંદત-

રોનાં દરેક કામ કામરથોના હાથમાં હોત અને -મોલેજ વિશ્વવિદ્યાલયોમાં પ્રાણજોજ બજાવતા હોત તો કળ-જીમનો રોજ આટલો ન વ્યાપત. આજીય પદ્ધતિને જે માનીએ તો “મિત્રા ચ દાહિસ” માં વેચવા બેઠેલા પંડિતજીને ચમાર તથા કાપડની મીઠ સાથે સંબંધવાળા સર્વ બંકિતજીને વણકરજી કહેવા બેઠેએ, પણ એ બધું થાય ક્યારે ? જ્યારે ‘વર્ણશ્રમ વ્યવસ્થાપક’ ક્ષત્રિય રાજા હોય ત્યારે. આ કુળ કર્મસાધ્યને કારણે આપણી ધાર્મિક રાજ સત્તા નષ્ટ જ થઈ જવાની અને એ પ્રકારે દુર્ગોતિથી સંચિત કરેલું ધન અધોગતિ, અશાંતિને માર્ગેજ ખેંચી જવાનું, તથા એ રીતે આસુરી સંપત્તિના સામ્રાજ્ય વિસ્તારને મુનેરી તક સાંપડી ગઈ છે, પરિણામે—

અનૂચા યત્ર પૂજ્યન્તે પૂજ્યાનાં વ્યતિક્રમ ।

ત્રીણિ તત્ર મવિવ્યન્તિ દુર્મિહં મરણં મયમ્ ॥

જે કામને સાફ જે યોગ્ય છે તેને હાવીને તે કામ અયોગ્ય પાસેથી લેવાથી દુષ્કાળ, જુદા જુદા પ્રકારના રોજ તથા લડાઈ ઝડાડા થવાજ બેઠેએ. એવા ધન સન્માનમાં રૂબેલા લોકોને પાનાપાનના કાંઈ વિવેક તો રહેતો જ નથી. જ્યારે જીવે છે કે, લોકોમાં નિંદા થાય છે, લોકોમાં અસંતોષની માત્રા હદથી વધી જએલી છે સારે આજર રાખવાને સાફ કાંઈ ધર્મ કમંતો ડોંગ રચવાની તૈયારી થાય છે. તેના વખ પોતાની ત્રીકામીથી તો ચતોજ નથી, પરંતુ માદકો પાસેથી લેવાતી કીમત સાથે એક પ્રકારના કરના રૂપમાંજ હેતરપંડીથી એવાં ફંડ એકઠાં થાય છે અને એ દ્રવ્યને ઉપયોગ ‘પુન્ય ખાતે’ થાય છે. થોડો દેવતા સજગાવી તેમથી ધૂણી કઢાડી બનાવવી ચક્ર કરીને હજાર પ્રાણજોને નોતરે આપવામાં આવે છે, પછીનું દ્રવ્ય તો જોવા જેવું અને છે. સમાજની વિષમ વ્યવસ્થાથી યએલા દીન દીન લોકો એક ઉપર એક થેટાની પેઠે વૃદ્ધી પડે છે, અપમાન થાય છે, અને કદી તીરસ્કાર અને મારામારીના પ્રસંગ પણ ઉઠા

બળથી દેત્યોને સુરક્ષિત રાખેલા હતા, તો પણ સમર્થ વિશ્વરૂપે પોતાની વિભાના પ્રભાવથી તેમની સર્વ સંપત્તિ ઊંઘની લથળે તે ધન્દને અપાવી દીધી.

ચોડા દિવસ પછી દેવતાઓની સાથેનો વિશ્વરૂપનો ઝંઝૂંધ વિકૃત રૂપથી તૂટી ગયો. વિશ્વરૂપના પિતા તો આદિત્ય ત્વષ્ટા હતા પણ માતા દેવકીળી હતી, તેથી વિશ્વરૂપ રનેદવચ્ચ યદ્ય ગ્રામ રીતે દેત્યોને પણ મગભાગ આપ્યા કરતા હતા. ધન્દને ખબર પડી કે એ રીતે તેઓ પોતાનો અપકાર અને ધર્મને નામે કપટ કરે છે, વખતે તેઓ દેત્યોનું બળ વધારીને દુશ્મનો નાશ પણ કરી દે. એવા વિચાર કરીને ધન્દે વિશ્વરૂપનો સિરઝેદ કરાવી ધીધો. એ રીતે વિશ્વરૂપનું મુક્ત યથા પછી તેમના પિતા ત્વષ્ટાને મલોજ કોષ ચડ્યો અને તેમણે તેનો બદલો ધન્દને આપવાનો નિશ્ચય કર્યો અને—

“દ્વન્દ્વશયુર્ધ્વપસ્ય સ્વાહા” ‘ધન્દશયુની અભિજિદિ યાત્રા’ એ મંત્રથી તેમણે યજ્ઞ કર્યો, પણ ‘ધન્દશયુ’ કહ્યું જોલવામાં સ્વર ઉપર ધ્યાન રાખ્યું નહીં. તેના ઉચ્ચારણથી એ અર્થ નિકળતો હતો કે ‘ઇન્દ્ર ને યજુ છે તેની’ નહીં કે ‘ઇન્દ્રના યજુની’ બસ ચોડીજ વારમાં યજ્ઞ કુંડમાંથી મહા ભયાનક જ્વન નામક રાક્ષસ પેદા થયો અને અંતમાં મંત્રના અર્થ અનુસાર તે ઇન્દ્ર દ્વારા મરાયો. એક જરા નેટલી સુરી ઘર્ષ જવાથી યજ્ઞ કુંડમાં ફેટલો અનર્થ થાય છે તેનું નિર્દોશ જ્ઞાનસૂર વધ છે. આ ઘોર કળાકાળમાં તો ધરતી અનેક સાધન-સામગ્રીઓ દૂષિત થઈ ગયેલી છે. ઘીને બદલે ને આ આસુરી લોભાએ ‘વનસ્પતિ ઘી’ બનાવેલું છે તેમાં કાર્તિક સોડા, ગિલ્ટ ધાત્તની ધૂણી તથા કઢી કઢી ગાજીલીનું તેલ નાખવામાં

આવે છે. એવી ઓળેથી તથા અગ્નિમૂલક વિધિઓ દ્વારા ને દેવશાય’ કે પિતૃકાર્ય થાય તેનાથી દેવ કે પિતર કદાપિ હ્રમ થવાના નહીં બલકે રાક્ષસ અને પિશાચન તમ થવાના, યજ્ઞાદિ કર્મોમાં શાસ્ત્રોક્ત વિધિને પૂરેપૂરી રીતે માનવી જોઈએ, સારાજ તેનું મધાર્ય’ ફળ થાય. પરંતુ ઉપરના દેખાવ કરી કેવળ વાહવાહને સાહે ને લોક એવાં કર્મ કરે છે તેમાં ધણીએ ત્રુટિઓ રહી જાય છે. બ્યારે માત્ર સ્વરના અપરાધથી યજ્ઞમાનુષ્ટન માર્યો ગયો ત્યારે વિધિહીન તામસ યજ્ઞ કરનારાની એટલી દુર્ગતી થાય કે તેનું કોઈ ઠેકાણુંજ ન રહે. લોકોમાં નામના થાય એ ઇશ્વરેથી સર્ગાશર્મા પૂજા કરવી એ તામસી પૂજા છે એનું કોઈ ફળ થઈ નથી. ચત્તર લોક જેમ નહીં વાહરૂં બતાવી માથનું દૂધ દોહી લે છે તેમજ આસુરી સ્વભાવના લોક અનેક આશાઓ રાખીને યજ્ઞાદિ નામનું બહાનું બતાવી અનેક લોકોને ભૂટ છે. એવા યજ્ઞોનેજ ભગવાન નામ માત્રના યજ્ઞ કહે છે. એજ પ્રમાણે આસુરી લોકોનાં, તેમનાં કહેવાતાં બીજા સત્કર્મોનાં સંબંધમાં સમજી લેવું.

અહીં સુધી ભગવાને આસુરી લોભાના ધર્મોના બહિર્ રૂપ સાધનોની અવધાર્યતા, નિરર્થકતા બતાવી. હાન, યજ્ઞ આદિ બહિર્ રૂપ સાધનોની સફળતાનું કારણ ને ભાવ શુદ્ધિ છે, તે તે લોકોમાં હોતી નથી. ભાવ શુદ્ધિને હેઠળ કે વિવેક, વૈરાગ્ય અને પ્રભુ ભક્તિ, આ અંતરૂપ સાધનોનો પણ આસુરી લોભામાં અભાવજ-હોય છે. તેનું નિરૂપણ કરતાં અને આસુરી સંપત્તિને ઉપમંદાર કરતાં ભગવાને ને કહ્યું છે તેને માટે ગીતાગૌરવ ભાવ-પાત્રોએ જવાબ રજો છે. તેમાં જોઈ લેવું.



વામમાર્ગ.

(લે.—શ્રીમત્ સ્વામી જ્ઞાનાનન્દજી, સરસ્વતીતીર્થ પદશ)

(અનુવાદક અને પ્રેષક—જયદ્રુષ્ટ શાસ્ત્રી કાવ્યતીર્થ)

સર્વેશ્વરોત્તમા વેદા વેદેષ્યો વૈષ્ણવ પરમ્ ।
વૈષ્ણવોત્તમ શૈવ શૈવાદક્ષિણમુત્તમમ્ ॥
દક્ષિણાદુત્તમ વામ વામાન સિદ્ધાન્તમુત્તમમ્ ।
સિદ્ધાન્તાદુત્તમ કૌલ કૌલાત્પરતરં નહિ ॥

જુ. જન્મજ.

સર્વોત્તમ ઉપાસના વેદ છે અર્થાત્ વેદિક કર્મ
મઠ રૂપ ઉપાસના સર્વપ્રેક્ષ છે પણ સાધારણ
મનુષ્યને વેદ—વેદિક કર્મઠાંત મોઘગમ્ય ન હોવાથી
વેદિક કર્મઠાંત ઉપાસનામાં બધાનો અધિકાર નથી,
તેથી અદ્યક્ષ મનુષ્ય માટે વિષ્ણુ ઉપાસના ઉત્તમ
છે ચિત્તિશક્તિનું દર્શન કરવું વા ચિત્તન સ્વરૂપ
આત્માજી ખૂંડ પ્રાણ અને મહાપ્રાણરૂપમાં અથવા
જીવ અને ધરવર રૂપમાં રહેલ છે, તેનો અનુભવ
કરવો એજ વિષ્ણુ ઉપાસના છે વા વિષ્ણુની સામે
બેસવું છે પ્રાણ કે વિષ્ણુ એકજ છે પ્રાણનો

ધર્મ વેદનુમય થવું, આદ્ર થવું, ભક્તિગદમદ થવું,
એ છે તેથી વિષ્ણુ ઉપાસના ભક્તિપ્રધાન છે
એ કે જ્ઞાન, ભક્તિ અને કર્મનો સમન્વય ન
કરવાથી આત્મલાભ થતો નથી, તો પણ વિષ્ણુ
ઉપાસનામાં જ્ઞાનકર્મ કાર્તિકગૌણ અને ભક્તિ મુખ્ય
છે વિષ્ણુ ઉપાસનાથી શિવ ઉપાસના ઉત્તમ છે
કેમકે, અમ જલ, અકલ્યાણ, કુખ, ચોક, અને
તાપદહિત થવું, એજ શિવ ઉપાસના છે અર્થાત્
જ્યારે તમારા જ્ઞાનમાં કુખ, ચોક, તાપ, વગેરે
નહિ રહે અને કેવળ કે યાજ્ઞ કલ્યાણનોજ અનુભવ
થતો રહેશે, ત્યારે તમારી શિવ ઉપાસના યાજ છે,

એમ બાલુચો. અકલ્યાણનો ત્યાગ કરી કે યાજના
સંસ્થાને પ્રાપ્ત કરવું, એજ શિવ ઉપાસના છે
જ્ઞાન વા ચકર એકજ છે, તેથી શિવ ઉપાસના
જ્ઞાનપ્રધાન છે ભક્તિ અને કર્મ જોણ છે શિવ
ઉપાસનાથી દક્ષિણ ઉપાસના પ્રેમ છે કારણ કે
દક્ષિણામૂર્તિનો અર્થ શુર વા જ્ઞાન છે આત્મા વા
ધરિરને પોતાના યોગ—જ્ઞાનરૂપમાં બાલુચો કે
પ્રાપ્ત કરવો એજ દક્ષિણ ઉપાસના છે દક્ષિણ
ઉપાસનાથી વામ ઉપાસના ઉત્તમ છે કેમકે, વામ
ચક્રનો અર્થ પરમ હૃદય વામમાર્ગનો સત્ય
અર્થ પ્રહરેશ્વર દ્વારા શોભાયમાન પદ્ય મહર્ષિ
યાજ્ઞવલ્ક્યે ઇશાવાસ્ય ઉપનિષદના છે-લા મન્દમા
“મુપયા” કહીને આ વામ માર્ગનોજ નિર્દેશ કર્યો
છે સાધારણ માણસની સમજણ માટે ઉક્ત મન્ત્ર
અને તેનો અર્થ નીચે સંક્ષિપ્તેશિત કરે છું

અને નવ મુપયા રાયડરમાન

વિરચાનિ દેવ વયુનાનિ વિદ્યાન ।

યુયાદ્યસ્મન્નુદુરાણમેતા

મૂર્ચિદાન્ત નમ વર્તિ વિષેય ॥

હે કર્મમય વૈરાગ્ય ? હે ચક્ષુષ્યતા વાહન ?
આશ્રમ ધર્મના નિત્યકેન્દ્ર અગ્નિ ? તમે જમ લોકોને
પુનરાવર્તન રહિત પ્રહરેશ્વરમા શોભાયમાન પદ્યમાં
પ્રદ્ય સારુમ્બમાં લઈ ચાલો હે દેવતા ? હે
પરમાત્મન ? તમે કર્મ અને જ્ઞાન બન્નેના જ્ઞાતા
છે; કારણ કે જ્ઞાન અને કર્મ બન્ને તમારું સ્વરૂપ
છે તમે ઉભય સિંગ પરમાત્માનીજ મૂર્તિ હે તમે

અમોને તમે તમારા ચિન્મય વિશ્વરૂપને અચેતન,
મિથ્યામય, જગત્માત્ર રૂપમાં દર્શન કરવારૂપ
વંચનામય અને કુટિલ દ્રષ્ટિમય સકલ પાપોથી
અમોને મુક્ત કરો. અમારાં બધાં પાપો નાશ
કરો. પુનઃ પુનઃ તમોને પ્રણામ હો.

અરે! વામ માર્ગનો અર્થ વ્યભિચાર નથી,
ઐશ્વર્ય આહાર વિહાર નથી, પણ પરમ સુંદરતામાં
મુગ્ધ થઈ જતું પદ છે. જે ઉપાસના પ્રકારનું
શક્તિના તરફથી દર્શન કરાવે છે, અર્થાત્ જે ઉપા-
સના દ્વારા પ્રભામહીમા, પ્રકાશક્રિયા અને પ્રકાશ
ઐશ્વર્યક્ષિતો અનુભવ થતો રહે છે, તેમજ પોતાની
સત્તા રાખી શકાતી નથી પણ કેવળ અર્ધ નારીચ-
રનો વામ ભાગ વા શક્તિ ભાગનોજ અનુભવ
થતો રહે છે, તેજ ઉપાસના વા પથનું નામ વામ
માર્ગ છે.

આ વામ ઉપાસનામાં ઉત્તીર્ણ એક માત્ર શંકર
જ છે, કેમકે પ્રત્યેક વા પ્રકાશિતા ઉમા તેના
સદા અંકમાં રહેલાં છે, પરંતુ બિન્દુમાત્ર કામનો
ગન્ધ પણ નથી. મહર્ષિ વ્યાસ આ વામરૂપનું
વર્ણન કરતાં બોલ્યા છે કે:—

ગૌરીનિરન્તરવિમૂષિતવાગમાર્ગ

નારાયણત્રિયમનન્નમદાપદ્માસ્મ ।

અર્થાત્ ગૌરી વા પરમ સુંદરી કે સમસ્ત રૂપ
જેના રૂપની ચિનગારી માત્ર છે. એવી જે સમષ્ટિ
રૂપ બળવતીથી નિરન્તર જેનો વામ ભાગ વિમૂષિત
છે, છતાં પણ નારાયણ ત્રિય એવા તેને કામરૂપની
શક્તિ થોડી પણ જેને ચલાયમાન કરી શકતી
નથી, કામ જ્યાં બંધનીમૂત થઈ જાય છે, એવો જે
પ્રકાશગ્ન પુરુષાતેને વામરૂપ જાણવો.

વામમાર્ગમાં અધિકારી કોણ છે, તે મેરૂ તન્ત્ર-
માંથી થોડું સંજ્ઞાનું છે.

પરદ્રવ્યેષુ ચોડ્યચ્ચ પરસ્ત્રીષુ નર્પસકઃ ।

પરાપવાદે ચો મુકઃ સર્વદા વિજિતેન્દ્રિયઃ ॥ ૧ ॥

તસ્યૈવાંત્રાણસ્પાત્ર વામે સ્યાદધિકારિતા ।

અર્થ સર્વોત્તમો ધર્મઃ શિવોક્તઃ સર્વસિદ્ધિદઃ ॥

જિતેન્દ્રિયસ્ય સુલભો નાન્યસ્યાનન્તજન્મભિઃ ।

જે પર દ્રવ્યમાં, અન્ધ છે, અર્થાત્ પારકાના દ્રવ્ય
તરફ જે જોતો નથી, અને બીજાની સીમાં પોતાને
નપુંસક માને છે. તેમજ બીજાનું ખરાબ બોલ-
વામાં જે મૂંગા છે અને સર્વદા જિતેન્દ્રિય છે તેજ
પ્રાણીશ્ચ આ વામ માર્ગને અધિકારી છે.

આ સર્વોત્તમ ધર્મ શિવનો કહેલો સર્વ સિદ્ધિ
આપનાર છે તે જિતેન્દ્રિય પુરૂષને સુલભ છે અને
બીજાને અનન્ત જન્મે પણ સહેલો નથી.

તમે બીજી રીતે વામ માર્ગને દેવધ્યાન માર્ગ
કહી શકો છો. વામ માર્ગથી સિદ્ધાન્ત વા વેદાન્ત
ઉત્તમ છે. અન્ય તન્ત્ર પણ કહે છે કે—ઉત્તમો
બ્રહ્મસત્ત્વાદઃ અર્થાત્ અહં બ્રહ્માસ્મિ—“હું જ પ્રકાશ છું”
આ પ્રકારના જ્ઞાનમાં સ્થિર થઈ જતું એજ ઉત્તમ
ઉપાસના છે. પણ આ વેદાન્ત ઉપાસના વા પ્રકાશ-
સદૃશાવ કેવળ જ્ઞાની માટેજ બતાવવામાં આવેલ
છે. આ કેવળ સંન્યાસીનેજ કરવા યોગ્ય છે.
સંસારીને માટે આ અતિશય કઠિન છે. સિદ્ધાન્ત-
થી કોલ ઉત્તમ છે. કારણ કે કોલજ્ઞાન પ્રાપ્ત
થવાથી ઈશ્વર અને પરબ્રહ્મ બંનેનો પ્રકાશ થાય
છે. પરબ્રહ્મ પરમાત્મા અને ઈશ્વર એકજ છે. પ્રકાશ
છોડીને કોઈ કે કાંઈ નથી એમાં કોઈ પ્રકારનો
સંશય રહેતો નથી. ઉક્ત કોલજ્ઞાન પ્રાપ્ત થવાથી
મનુષ્ય વેદાન્તના સર્વ રાત્ત્વિદં પ્રજ્ઞ એ મહામન્ત્રનો
દક્ષ થાય છે, નમો થાય છે.

કલ અર્થાત્ કિનારો, અકલ અર્થાત્ સમુદ્ર,
કલ—શક્તિ—સશુભ પ્રજ્ઞ કે ઈશ્વર છે. અકલ—

શિવ કે પરબ્રહ્મ—પરમાત્મા છે એમ સમુદ્રતા
 કિનારા પાસે જવાથી કઠિણ અને સમુદ્ર બન્નેને
 જાણી શકાય છે, તેજ રીતે કૌલરાજ ધવાથી પર
 બ્રહ્મ પરમાત્મા અને સગુણ બ્રહ્મ બન્નેને જાણી
 શકાય છે. કારણ કે સગુણ બ્રહ્મ નિર્ગુણ બ્રહ્મને
 જાણે છે. અન્ય કોઈ જાણી શકતું નથી તદ્દ્વાર
 વેદતે પ્રજ્ઞયોનિર્મ (શ્લોક ૭૦) તેથીજ સગુણ બ્રહ્મના
 સ્થાનમા જવાથી અર્થાત્ સગુણ બ્રહ્મનું સાત્ત્વ
 પ્રાપ્ત કરવાથી—સગુણ બ્રહ્મ વા ઈશ્વર ધવાથી પર
 બ્રહ્મ પરમાત્માને જાણી શકાય છે

આધકેયણ ! જ્યારે સર્વ નિલબ્ધ ન કરતા
 જ્ઞાનના ધાઓ તમારે અસ્તકે પરમ શુભને અ
 ભયકર સ્થાપિત હો તમે લોકો કૌલરાજ પ્રાપ્ત
 કરો અર્થાત્ કુલ—શક્તિ કે ઈશ્વર, અને અનુલ-
 શિવ કે બ્રહ્મને એકજ ધોલીને જોળખી દેશે તેમજ
 પાછળ રહેલા બધા ધર્મોને પદપદર્શન કરે

કુલં શક્તિરિતિ પ્રોક્તમકુલં શિવ સ્વચ્છલે ।

કુલેન્દ્રુલસ્ય સમ્બન્ધ કૌલમિત્યભિધીયતે ॥

—કુલ તત્ત્વ

કુલ એટલે શક્તિ અને અકુલ એટલે શિવ
 કહેવાય છે કુલમા અકુલના સબન્ધને કૌલ કહે
 વાર્તા આવે છે

સાક્ષ્યો સાધકો ! આ જે વિષ્ણુ ઉપાસના
 અને શિવ ઉપાસના વચ્ચે કદી ભૂરી નથી. આ
 સાધનાનો સ્તર થા કમજીર પહેલી વિષ્ણુ ઉપાસના
 અર્થાત્ ચેતન વા પ્રાણ ઉપાસના છે તે પછી શિવ
 ઉપાસના અર્થાત્ ઉક્ત વિષ્ણુ વા પ્રાણને પરમ
 કલ્યાણ સ્વરૂપ મહેશ્વરરૂપમા જાણવો પછી
 દક્ષિણામુર્તિ વા ગુફની ઉપાસના છે અર્થાત્
 ઉક્ત પરમ કલ્યાણ સ્વરૂપ મહેશ્વરને પોતાના જ્ઞાન-
 બોધરૂપે જાણવો પછી નામ ઉપાસના અર્થાત્
 ઉક્ત શરૂ જે પરમસુન્દર, સમસ્ત રૂપ, સમસ્ત
 સુંદરતા જે આરા શુભનીજ વા જ્ઞાનનીજ છે એમ
 જાણવું, પછી બધાનો પોતામા બોધ કરવો અર્થાત્
 બધા નામ, બધા રૂપો, બધી શક્તિ, ધ્યાન
 આદ્ય છે એ જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરીને મહેશ્વર અને ત્યાગના
 અભાવજન્ય કમથી મુક્ત થઈ “હું જ બ્રહ્મ” જે
 જ્ઞાનમાં જ્ઞાન થઈ જવુ એજ સિદ્ધાન્ત વા વેદાન્ત
 ઉપાસના છે ઉક્ત સિદ્ધાન્ત વા વેદાન્ત ઉપાસનાની
 પાડી અવસ્થા અર્થાત્ “હું જ બ્રહ્મ છું” જે જ્ઞાનમા
 અભિરવાસ અને સર્વ સ્થિત થઈ હું બ્રહ્મ છું જે
 જાણીને, જાનીને બ્રહ્મ થઈ જવુ એજ કૌલ જ્ઞાન
 કે સગુણબ્રહ્મ વા ઈશ્વરજી કૌલરાજી પુરૂષ છે
 નમઃ પરમ શ્રવિષ્ઠા નમઃ પરમ શ્રવિષ્ઠા ॥

આત્માનુભવ

(લેખા—સિકંદરરાય બાવાભાઈ દેસાઈ.)

આ વિશ્વમા પાંચ પ્રકારની જાતિ છે, એવ
 તથા ઈશ્વર કિત છે આ પહેલી જાતિ, કર્તા લોકના
 પણ વસ્તુતાએ આત્મામા રહ્યું છે આ બીજી જાતિ,
 આત્મા તથા સ્તરીયમા આ જોખથી સગી છે આ

ત્રીજી જાતિ, જગતનું કારણ બ્રહ્મ નિર્મારી છે આ
 ચોથી જાતિ અને કારણથી બિન્ન જગત્ સત્ય છે
 આ પાંચમી જાતિ છે બિંબ અને પ્રતિબિંબના
 રૂપન વડે ઈશ્વરના અને એવના લેખની જાતિ દૂર

યર્થ, રક્ત સ્ફુટિકતા દર્શન વડે આત્માના વાસ્ત-
વિક કર્તા લોકતાપણના બ્રમની નિવૃત્તિ યર્થ,
વટાકાશના તથા મકાકાશના દર્શન વડે આત્માના
સંગીપણની પ્રાંતિ નાશ પામી, કનકના અલંકારો
જોવાથી કારણના વિકારીપણની પ્રાંતિ નિવૃત્ત યર્થ,
અને રજ્જુ સર્પના દર્શનથી કારણથી ભિન્ન જગતના
સત્યપણનો બ્રમ મટી ગયો. “હું” બ્રહ્મ છું, અને
જે કાંઈ આ દેખાય છે તે મંધવનગર જેવું વા
મૃગજલ જેવું મિથ્યા છે” એમ ભાવના કરો.
“જગત્ મિથ્યા છે” એવી ભાવનાથી ચિત્ત ક્ષય
પામી સામાન્ય ચૈતન્ય સત્તાની પ્રાપ્તિ થાય છે,
અર્થાત્ સહજકાશનો અનુભવ થાય છે. ચિત્ત
વાસનારહિત સ્થિર થાય તે ધ્યાન, ને અંતઃ-
કરણમાં શીતલતા રહે તે સમાધિ છે. “હું કર્તા
છું” એવી ઘન વાસના સર્વ દુઃખ આપનારી છે
તેથી તે વાસનાને ક્રમાત જતી કરવી. અંતઃકરણમાં
શીતલતા હોય તો જગત્ શીતલ જણાય છે, અને
અંતઃકરણ તૃષ્ણાથી તપત્તું હોય તો જગત્ દાવા-
નલ જેવું જણાય છે. જે આત્મામાંજ પ્રીતિવાળો
છે, અને કર્મન્દ્રિયો વડે ક્રિયા કરે છે, પણ હૃષ્
ચોકને વશ થતો નથી તે સમાહિત કહેવાય છે. સર્વ
જૂતોને પોતાના જેવાં જુએ, પર દ્રવ્યોને માટીના
ટેકા સમાન જાણે, ને જેને સ્વભાવથીજ લયાહિ
નથી તે જ્ઞાની છે. જ્ઞાની જોનાનાં મન, હાથી જેમ
ગાયના પગલાના જલમાં ડુબી જાય નહિ, તેમ
સંસારમાં ડુબતાં નથી, અને અજ્ઞાનીઓનાં મન,
મચ્છર જેમ ગાયના પગલાના જલમાં ડુબી જાય
તેમ સંસારમાં ડુબી જાય છે. અંતઃકરણમાંથી
સર્વ વસ્તુનો પરિત્યાગ કરવાથીજ આત્માની પ્રાપ્તિ
થાય છે તેથી આત્માના અનુભવ માટે સર્વનો
પરિત્યાગ કરવો. ગોક્ષ આકાશમાં નથી, પાતાલમાં

નથી, ને જૂતલમાં પણ નથી; સર્વ આશાનો સારી
રીતે ક્ષય થતાં ચિત્તનો ક્ષય થાય તે મોક્ષ કહેવાય
છે. જે જગત્માંથી દેનેહ ત્યજી સર્વના અધિષ્ઠાન-
રૂપ સત્યજ્ઞાનનું બ્રહ્મમાં જીવે છે તે જીવનમુક્ત
કહેવાય છે. જેમ મહાન પર્વતને મંડ પવન ફોલ
પ્રમાડી શકે નહિ તેમ બ્રહ્મવેત્તાના વિશાળ ચિત્તને
કામાદિ શત્રુઓ લેશ પણ ફોલ પ્રમાડી શકતા નથી.

જેને કાંઈ ઇચ્છા હોય તે તેની સિદ્ધિને માટે
સાધન કરે છે, ઇચ્છારહિત પરિપૂર્ણને કદી પણ
ઇચ્છા સંભવતી નથી. સર્વ ઇચ્છાઓનો સમૂહ
સારી રીતે શાંત થયે આત્માની પ્રાપ્તિ થાય છે.
ઇચ્છા રહિત થયેલો પુરૂષ સિદ્ધિઓના સમૂહને
દેમ ઇચ્છે? સૂયં અભવત શીતલ થાય, ચંદ્ર
અત્યંત ઉષ્ણ થાય ને અગ્નિ નીચી જવાબાવળો
થાય તો પણ જીવનમુક્તને વિસ્મય થતો નથી.
દોરડીમાં સર્પની પેઠે અધિષ્ઠાનરૂપ પરમ તત્વ
વિશે કલ્પિત આશ્ચર્ય સમૂહોમાં જ્ઞાનીને કુતૂહલ
ઉપજતું નથી. સુખ દુઃખ જેના ચિત્તને ચલાય-
માન કરી શકતાં નથી તેનું ચિત્ત મરણ પામ્યું એમ
જાણવું. ચિત્તનો નાશ બે પ્રકારનો છે, સરૂપ અને
અરૂપ. જીવનમુક્તાના ચિત્તનો સરૂપ નાશ થાય
છે ને વિદેહમુક્તાના ચિત્તનો અરૂપ નાશ થાય છે.
ચિત્તના સંસ્થાવ વડે દુઃખ ને ચિત્તના નાશ વડે સુખ
થાય છે. માટે ચિત્તના સંસ્થાવનો ક્ષય કરવો.
ચિત્તરૂપ વૃક્ષનાં ઔળીજ છે, એક પ્રાણની ગતિ,
ને ઊંજી દેહ વાસના. જ્યારે પ્રાણની અતિ થાય છે
ત્યારે ચિત્ત જાગ્રત થાય છે તેમજ વાસનાથી પણ
ચિત્ત ચલાયમાન થાય છે. પ્રાણાયામ વડે અને
ધ્યાન વડે ચિત્ત શાંત થાય છે દેહ વેગ વડે પૂર્વા-
પરનો વિચાર ત્યજી પદાર્થનું જે શ્રદ્ધા તે વાસના
કહેવાય છે. ત્યાં સુધી મન વિલીન ન થાય જાં

સુધી વાસનાનો ક્ષય થતો નથી, જ્યાં સુધી વાસના ક્ષીણ ન થાય ત્યાં સુધી ચિત્ત શાંત થતું નથી ને જ્યાં સુધી તત્વનું વિજ્ઞાન ન થાય ત્યાં સુધી ચિત્તની શાંતી કયાંથી થાય ? જ્યાં સુધી ચિત્ત શાંત ન થાય ત્યાં સુધી તત્વજ્ઞાન થાય નહિ—જ્યાં સુધી વાસનાનો નાશ ન થાય ત્યાં સુધી તત્વજ્ઞાન કેમ થઈ શકે ? અને જ્યાં સુધી તત્વજ્ઞાન ન થાય ત્યાં સુધી વાસનાનો ક્ષય પણ ન થાય, એવી રીતે તત્વજ્ઞાન, ધર્મોનાશ અને વાસનાક્ષય પરસ્પર કારણપણાને પામે છે. જ્ઞાનમુખે ભોગેશ્વરનો દ્રશ્ય ત્યાગ કરી એ ત્રણેનો સાથે ચીરકાલ અભ્યાસ કરવો એઈએ ત્રણેનો ચીરકાલ આદર પૂર્વક સાથે અભ્યાસ કરવામા આવે તો હૃદયની દૃઢ થઈએ નિ શેષ ટુટી જાય છે. ઈ શુરૂએ આપેલી સુક્તિ વડે પ્રાણુભાવનો દૃઢ અભ્યાસ કરવાથી તથા આસનની ને ભોજનની સુક્તિથી પ્રાણની ગતિ નિરાધ પામે છે નિસર્ગ રહી અવહાર કરવાથી, સંસારના સત્ત્વપણાની પ્રાપ્તિ ભજવાથી ને સરીરનો વિનાશ વિચારવાથી વાસના દૂર થાય છે. જેમાં વાસના હીન થએલી છે એવી સુખુષ્ણિ મોક્ષ આપનારી નથી, પણ જેમાં વાસના નિર્બિંજ થયેલી છે તે તુર્ણ મોક્ષ આપનારી ગણાય છે. વાસના, અગ્નિ, ખણ વ્યાધિ, શત્રુ, રનેહ, વેર ને વિષ ઘોઠા અવશેષ રહ્યા હોય તો પણ પીડા કરે છે તેથી તેમનો નિ શેષ નાશ કરવો એઈએ નાસિકાની બહાર બાર આગળ નાસિકા દ્વારા નીકળેલા પ્રાણ હીન થાય છે, ને ત્યાંથી ઠંડે લેા અપાન સરીરના અંતર હૃદયમાં હીન થાય છે. તે સ્થલના ચૈતન્યમાં કેમથી જ્યારે પ્રાણ બહાર નીકળી અપાનમાં અસ્ત પામ્યો હોય ને ત્યાંથી અપાનનો ઉદ્ભવ ન થાય ત્યાં સુધી, તથા અપાન

હૃદયમાં હીન થયો હોય ને ત્યાંથી પ્રાણનો ઉદ્ભવ ન થાય ત્યાં સુધી, ચિત્તને સ્થિર કરવું આથી પ્રાણ ની તથા ચિત્તની સ્થિરતા થાય છે. સુદિ વડે આ સર્વ જાણને એ તમે નિશ્ચય રહેશે તો અહ કારનો વિલય થયે તમેજ પરમ પદ છો. “અદ્વિતીય, આદિ અ તથો રહિત, ચિન્માત્ર, અવિદ્યાદિ મલકો રહિત, વ્યાપક અને આકાશથી પણ અતિ સૂક્ષ્મ જે જ્ઞા છે તે હું હું એમા સંશય નથી હું બલ નથી, હું શુદ્ધ નથી પણ નિરાખ્ય પ્રજ્ઞા હું દેવ ભાવથી વિમુક્ત હું ને સર્વિદ્યાન દરૂપ હું” એવી ભાવના ચલત વડે કરો, તેથી જીવનમુક્ત થશે. આ રમ્ય છે અને આ રમ્ય નથી, આવી ભાવના હું ખના પ્રવાહેનું મૂલ છે તેને સમભાવરૂપ અગ્નિ વડે દગ્ધ કર્યા પછી હું ખનો અવસર કયાંથી ? જે ઠાઈ સર્વ ખનોને પોતાના આત્મામાંજ જીવે છે, અને સર્વ જીવેમા પોતાના આત્માને જીવે છે, તે જ્ઞાને પામે છે. સમાધિમાં સ્થિર થયેલો જ્યારે સર્વ જીવેને જીવે નથી, ને પરમાત્માથી એકીમૂન થાય છે ત્યારે તે કેવલરૂપ થાય છે. શાસ્ત્રના અને સંપ્રદાયના સમાગમ વડે વેરાગ્યનું તથા અભ્યાસનું અનુક્રમ થવા લાગે તે યુગ્મપુખ્ણ આપનારી પહેલી ભૂમિકા ભાવની, વિચારપૂર્વક પૂર્વોક્ત પ્રવૃત્તિ થાય તે વિચારણા નામની બીજી ભૂમિકા, અસંગ ભાવના થાય તે ત્રીજી ભૂમિકા, વાસનાનો વિલય થાય તે ચોથી ભૂમિકા, શુદ્ધ ચૈતન્ય ધન આનંદરૂપે સ્થિતિ તે પાંચમી ભૂમિકા, આમાં અર્ધ ભજતા જેવો ને અર્ધ સૂતા જેવો જીવનમુક્ત રહે છે અસંવેદનરૂપ (જહાજના પકાર્થના જ્ઞાનના અભાવરૂપ) છઠી ભૂમિકા છે, તે આનંદવનરૂપ ને સુખુષ્ણિ જેવી સ્થિતિ છે, અને તુર્ણવસ્થારૂપ સાતમી ભૂમિકા સુક્તિરૂપ છે, પ્રથમની નજી ભૂમિકા

જાગૃત કહેવાય છે, કેમકે તેમાં જગતની સત્યતાની પ્રતીતિ મળેલી નથી, ચોથી અવસ્થા સ્વપ્ન કહેવાય છે, કેમકે તેમાં જગતની વિસ્મૃતિ રહેવા લાગે છે. છઠ્ઠી ગાઠ સુષુપ્તિ ને સાતમી ઘન સુષુપ્તિ કહેવાય છે, કેમકે તેમાં જગતની અધિકતર ને અધિકતમ વિસ્મૃતિ થયેલી હોય છે. “હું નિર્લેપ, અજર, રામરહિત, વાસનારહિત, નિરવયવ ને ચિદાકાશ રૂપ છું.” એમ જાણીને વિદ્વાન શોક કરતો નથી. જ્ઞાની તીથેમાં શરીર ત્યજે વા આંકાલના ઘરમાં શરીર ત્યજે તોપણ આ વાસનારહિત થયેલો જ્ઞાની જ્ઞાનના પ્રાપ્તિ કાલમાંજ મુક્ત છે. સંકલ્પજ

અધનર્તુ કારણ છે તેથી તેનો પરિત્યાગ કરવો જોઈએ અને અસંકલ્પથી મોક્ષ થાય છે માટે તેનો સુદ્ધિ વડે અભ્યાસ કરવો જોઈએ. સર્વ દૈતની નિવૃત્તિ કરવી એજ અધ્યાત્મ શાસ્ત્રનો સિદ્ધાંત છે. અંતરમાંથી સર્વનો પરિત્યાગ કરી બહાર જે વ્યવહાર પ્રાપ્ત થાય તેને યથાયોગ્ય આચરણું જોઈએ. ચિત્તની સત્તા એ પરમ દુઃખ ને ચિત્તનો ત્યાગ એ પરમ મુખ છે. આથી ચિત્તનો ચિદાકાશમાં ક્ષમ કરવો જોઈએ. રમ્ય અથવા અરમ્યને જોઈ સર્વદા પાપાણુની પેઠે સ્થિત થવું જોઈએ. આવો પ્રયત્ન કરવાથી સંસાર છૂટાય છે.

શ્રી મુકુંદરાજકૃત પરમામૃત

(સં. — વામનરાવ પ્રા. ૫૯૯, બી. એ. એલ. બી. (જોગે) એલ. સી. પી. (સં. ૧)

એમ. આર. એસ. ટી. (સં. ૧) સૌથીસીટર.)

[અનુસંધાન અર્થકિ ૫૦ ૧૦૫૭ થી આમળ]

પ્રકરણ ૧૦મું.

દરથભાસ ખંડન.

એ જ્ઞાનાતુલ્ય ના આવે,
તો અજ્ઞાન ખૂબ ભરકાવે;
ન જાણે તેથી ભભાવે,
ગાંડપણ આવે. ૧.
એ જામ તો પાતે વહે,
અજ્ઞાન દંડ પકડી રહે;
વ્યર્થ સદેહ એતો ભાહે,
જાણતો નથી તેથી. ૨.
પ્રકાશમાંથી ઘરમાં જાય,
આંખે તો અંધારાં થાય;

છતી આંખે ના દેખતો થાય,
પાતાને. ૩.
વા રાત્રિને બીજે પ્રહરે,
આંખે ગાઠ તમથી ભરે;
તેવાં અજ્ઞાન—અધારે,
શું થવાય છે. ૪.
ત્યાં તો મન જે જે કંદે,
તે તે સર્વ સંસ્થાપ દેખે;
દશ્ય નિરસી તેથી રહે,
સ્વસ્વરૂપે રનિશ્ચયવે. ૫.

૧=મધરાતે

૨=પ્રભાતમાંથી અંધારામાં ગયેલો માણસ કંઈ જોઈ

બોને પોતાની સાથે પોતે,
 ઉરે ; 'સ્વોપદેશ પોતે,
 એ પ્રકારનો વિવેક પોતે,
 આકૃતિ કંઈ ધરતો નથી. ૬
 એ વિવેક ઉત્પત્તિ જ્યાથી,
 તે અત કરજી જો તેથી,
 છ ઉરે જાણ હેતુ તેથી,
 જાણુ તે થાય છે. ૭.
 પછી દેહ સહિત પ્રદાન શુન્ય,
 થતા હરે પરિપૂર્ણ,
 કંઈ ન દિસે 'સ્થાન 'માન,
 મોઢ સ્થળે ૮.
 સાકાર છે તથા લોક,
 તા જાણુ કયા થયા દેહ.
 બધો પૂરો હું એકાએક,
 વિદાડાશ. ૯
 અતઅર્થે પરિપૂર્ણ,
 શુન્ય થયુ દરય—જ્ઞાન,
 રહેણ પોતે નિરજન્ય,
 એકત્વ રહિત ૧૦

કૃષ્ણતો નથી તેમ શુન્ય કન વરણે આપણે અત ન બીધ
 મારને લીધોઅર્થ એક જગત નથી ને બંધાર ચાં સપડ
 વધી અનુભવ જેમ જે જે કંઈયે તે તે તેની નજર આગળ
 ખડુ થાય છે તેમ અત નથી સપડાવણા મ વૃષ્ટને સવ
 દરજ એની પોતાની કન્યાના નજરે દેખાય છે તેને રિરેકથી
 નિરેકો દૂર કરી અને રવરપત્રી રિવર થાય. એવી એવી
 રિપતિ થાય તેનું વર્ણન ૬, ૮, ૯ થયા જણાઈ છે

૧=પોતે પોતાને/ઉપદેશ કો તેથી

૨=દેશ

૩=માય

અધાર તો ત્યાથી ગણ્ય,
 મન બુદ્ધિ નારકે 'માવળ્ય,
 આત્મ તેજ તો પ્રકારણ,
 વિદાદિત્યનું. ૧૧.
 એ રીતે સ્થૂળ હેતુની,
 પ્રવૃત્તિ તોડી અપતની,
 તોડા તેમ લિંગ દેહની,
 પ્રવૃત્તિ સર્વે. ૧૨.
 જ્યાથી સ્ફુર્તિ સ્ફુરે છે,
 'અસ્ફુર્તિપણે પ્રથમ તે છે,
 જ્યાં આત્મ સ્ફુર્તિ દેખાય છે,
 સ્ફુર્તિ નાથે તત્કાલ ૧૩
 છ તે સ્ફુર્તિનો સાતા,
 સકલપ 'વિકલપ જીવન દાતા,
 'નિશ્ચયનું કારણ, જ્ઞાતા,
 જુજ છે ૧૪

અનુસંધાન તો પ્રથમથી છે,
 'શરૂ થતા તે દેખાય છે,
 તારેજ લીધે અહતા છે,
 તેથી તે પણ જુજ છે ૧૫
 આ પાચ લોકનું અતલકરણ,
 છે જુજ કેવળ તેનું સ્ફુરણ,
 હોડતા સ્ફુર્તિ શુ હજ રિણ,
 કદી ભુલી પડે છે ? ૧૬
 શુ 'તરંગ જળથી છાંડાય કે ?
 શુ વાયુ વ્યોમથી છાંડાય કે ?

૪=તત્ત્વ પામું દેખું નેમ થયુ

૫ સ્વસ્વરૂપે

૬=અત તથા બુદ્ધિના આધાર

૮=અર્થસૂક્ષ્મ વૃત્તિ મા અનુસંધાન કરતાં ને તત્ત્વ

૯=સમુદાઈ જે નાં

તેમ સ્ફુર્તિ તારી તોડાય કે,
કોઈ રીતે ? ૧૭.

તરંગ જળમાં સમાશે,
વાયુ ગળતે સમાશે;

તેમ સ્ફુર્તિ તારી સમાશે,
તારામાં. ૧૮.

આપણો હાથ ક્યાં નાંખીએ ?
છે ચોંટ્યો શરીરે એ;

ત્યમઅંતરસ્ફુર્તિ ક્યમશાળીએ,
એ તો મૂર્તિ મંત છે. ૧૯.

છાડીએ સ્ફુર્તિ તો છે સ્વરૂપ,
કાર્યમાં એ વૃત્તિ સ્વરૂપ;

વિચારે મતિ છે સ્વરૂપ,
મન ચિત્તે પણ એજ છે. ૨૦.

ચિત્તને સ્વરૂપ ચિત્ત તો બને,
કહેતાં હું અહંકાર તે બને;

સ્તબ્ધ રહેતાં સ્વસ્થ તે બને,
જેથી સ્ફુરે સ્વસ્થતા. ૨૧.

જો તેને સ્તબ્ધ કહીએ,
તો સ્ફુરણ સ્મૃતિનું શે થાએ ?

સંકલ્પ વિકલ્પ ક્યાંથી થાએ,
તે કહો. ૨૨.

ધર્મે છે એક નિશ્ચય જો,
ચિંતનફરીફરી શેનું થાયતો ?

હું હું દેહત્વે શે થાય તો,
તે કહો. ૨૩.

માટે અસત્ જેથી રજો,
ધર્મ તે છ' બાણુએ કજો;

અહંકાર છે જ્ઞાન રખજો,
વિના જ્ઞાન તે હોયે ક્યાં ? ૨૪.

સ્મરણ ચિન્નમાં જે રહે છે,
જ્ઞાન વિણ તે અન્ય શું છે ?

વિના જ્ઞાન સ્થિરતા ક્યાં છે,
બુદ્ધિને ? ૨૫.

છે તે જ્ઞાન અધિધાન,
તોજ સંકલ્પ વિકલ્પાત્મક મન;

તેજ જ્ઞાન પરિપૂર્ણ,
માટે એને સ્ફુરણ નથી. ૨૬.

સ્મરતાં નથી તેનું સ્મરણ,
સ્મરણ એનું તો વિસ્મરણ;

તે નથી જ્ઞાન કે અજ્ઞાન,
જાણિ માત્ર જે. ૨૭.

ભાસ વૃત્તિ સ્ફુરણનો છે,
સ્ફુરતાં જ તે દેખાય છે;

પણ યોતે તો નિરાભાસ છે,
સ્વરૂપ. ૨૮.

તે નિરાભાસ કહેવો કેને ?
તેની પણ બાણ છે તેને;

નિરાભાસ બાણવા આ બાણને,
ત્યાં ને ત્યાં સમાવો. ૨૯.

બાણ ને અબાણ તેમાં નથી,
ભાવ અભાવ તેમાં નથી;

સ્વયં વિના બીજું કંઈ નથી,
સ્વ સ્વ રૂપ તે. ૩૦.

ઇતિ શ્રી દરશનાસ ખંડનં નામ દસમ પ્રકરણું સમાપ્ત.

૨=અંતઃસ્ફુરણ મન બુદ્ધિ ચિત્ત અહંકારનાં સ્મરણ સંકલ્પ વિકલ્પ, નિશ્ચય, ચિંતન હું હું ભાવના, સર્વ જ્ઞાન છે. એ જ્ઞાન અધિધાન પરિપૂર્ણ, સ્ફુરણ રહિત, યશ્ન માત્ર છે.

૧=વૃત્તિમાત્રને સ્વરૂપના ૨૫ તરીકે જુઓ, મન, ચિત્ત તથા બુદ્ધિના સર્વ વ્યાપાર એ ૨૫જ છે.

અર્જુને યુદ્ધ શા માટે કર્યું ?

(સં-વક્રીલ બાલાભાઈ નારણી બી.એ.)

[અનુસંધાન ૫૦ ૧૦૪૧ થી આગળ]

ગીતાના ૬ ક્રા અધ્યાયમાં સમાધી—અવધાસનું નીરૂપણુ અવશ્ય સંવૃત્તર કરવાલાયક છે તેમ છતાં ભગવાને ફરીથી એક વાર પોતે કંઈને અગાઉ વર્ણવેલા કર્મ યોગમાં અર્જુનને લેઈ માત્ર શ કા ન રહે તે માટે ૬ ક્રા અધ્યાયની શરૂઆતમાં કર્મ યોગ—નેની મહત્તા અને તેની અવધી એ સંબંધે પ્રથમ ક ત્રણ શ્લોકથી ભગવાને ફરીથી ત્રણ વાર કર્મ યોગનો ઇશારો અર્જુનને કર્યો છે અને તેમ કર્યા પછીજ સમાધી અવધાસના કેમના નીરૂપણનો પ્રશંસાપૂર્વક ભગવાને ૬ ક્રા અધ્યાયમાં આરંભ કર્યો. આ સમાધી અવધાસના નીરૂપણનો ઉપયોગ અર્જુન જે યુદ્ધ કરવાનો હતો તે કાર્યમાં તો ઉપયોગી નથી એમ તો આપણે સૌ કોઈ ઠગુલ કરીશું કારણ ૬ ક્રા અધ્યાયમાં જણાવેલ સમાધીનું નીરૂપણ એ યુદ્ધ માટે તો નીરૂપયોગી છતાં આત્મસાક્ષાત્કાર માટે જરૂરનું છે.

આ ૬ ક્રા અધ્યાયમાંના સમાધી અવધાસ પદ્ય આત્મશુદ્ધિ માટેજ છે એમ ૬ ક્રાનો ૧૩મો શ્લોક એતાં આપણને જણાયે અને તેમાં પણ પહેલા ૭ શ્લોકથી કર્મયોગ માટે કરેલો ઇશારો પણ ક્ષીબર્ધો છે એટલે જેમ વર્ણાશ્રમ કર્મયોગ પોતે આત્મ શુદ્ધિ માટે જેમ જરૂરનો છે અને તે કારણે જ તેનું વારંવાર પુનરાવર્તન કરવામાં આવ્યું છે તેમ તે કર્મયોગ, એ સમાધી યોગને માટે પણ જરૂરનો છે માટે પણ કર્મયોગનો ઇશારો શરૂઆતમાં જ કરી છે.

કર્મયોગ એ સમાધી યોગ માટે જરૂરનો એ માટે પાતળલ યોગ સાચજ બંને પ્રમાણુ છે.

તત્ત્વાચાર્યેશ્વરપ્રણિધાનત્રિવિધોગ

(પાતળલ ૨૧૬)

સમાધિમિત્તનાથ હેન્દ્ર તત્ત્વકરણાદયઃ

(પાતળલ ૨૧૨)

એટલે યોગશાસ્ત્રના મત પ્રમાણે તપશ્ચર્યા વેદ શાસ્ત્ર મત્ર વીગેરે વ્યાસજી—ઈશ્વર પ્રણિધાન (ઉપાસના) એ સર્વ ક્રીયાયોગ છે એટલે કર્મ યોગ છે અને તે બધું સમાધી યોગનું સાધન છે તેમ વળી ચીતશુદ્ધિ દ્વારા અસિદ્ધિ કલેષનો નાશ કરનાર જ્ઞાનનું પણ તેજ સાધન છે. મતલબ એજ કે બીતામાં કહેલ કર્મયોગ એ ચીતશુદ્ધિ—સમાધી સોદ્ધિ—જ્ઞાનસોદ્ધિ—વીગેરેના સાધન જુદ છે માટે તેવા કર્મયોગનું ફલક્ષ કરવું નહીં આ હેતુથીજ ૬ ક્રા અધ્યાયની શરૂઆતમાં ભગવાને કર્મયોગનો ઇશારો ફરીથી અર્જુનને કર્યો અને ત્યાર પછી સમાધી કેમના નીરૂપણનો ભગવાને આરંભ કર્યો આ પ્રાસ્તાવીક વીવેચનથી નીચેના શ્લોકોને અર્થ સરળ રીતે સમજાવે

આઠવશોમ્નેયોનં કર્મ વારણમુચ્યતે ।

ચાગારુદ્રસ્ય તત્ત્વેવ હામ કારણમુચ્યતે ॥

—ગી. ૧૧૨

યદા હિ નેત્રિયર્ષેષુ ન કર્મસ્તુવત્તત્તે ।

સર્વસત્ત્વસંન્યાસી યોગારુદ્રસ્તદાચ્યતે ॥

—ગી. ૧૧૪

ઉપરના વીવેચનથી આ શ્લોકોનો અર્થ તદ્દન સરળ અન્વયથી જેવા કેપાય છે તેવોજ તે રચીક અને સ્વાહતર પણ છે.

તાત્પર્ય એજ કે તે ઉપપત્તિ સુક્ત અને અનુભવથી સત્યજ છે ઉલટ જોટી રીતે અગતઃ બગડે અન્વય કદીને જોટો અર્થ કરવામાં કંઈ મળ નથી.

તાત્પર્ય એજ કે યોગ એટલે સમાધી (નિદાન ધ્યાન એક નીપત્તવ) પ્રાપ્ત થાય એવી ઇચ્છા કરનારાએ પ્રથમ ઉપર હલેલા કર્મયોગરૂપ સાધનનું અવલંબન કરવું જોઈએ ઉપયોગ કરવો જોઈએ અને જ્યારે સમાધી અવસ્થા સાધ્ય થવાની ખાત્રી જણાતાં ઉપર જણાવેલ કર્મયોગ અટકાવવો જોઈએ, અને તો જ સમાધી સિદ્ધ થશે.

મતલબ કે જ્યારે ઇન્દ્રિયો તેમના ચંદાદીક વીધયો અને તે વીધયોનું સંપાદન કરાવનારો કર્મયોગ જ્યારે ઉપરનાં થાય છે—ઉપરમ પામે છે ત્યારેજ યોગારૂપ, સમાધી નીપત્તવ પ્રાપ્ત થવાનો અનુભવ મળશે એ પ્રાપ્ત ધ્યાનમાં રાખવું. અને તેવે પ્રસંગે કર્મયોગ અટકવોજ જોઈએ. કારણ કે—

આત્મા કાય કારણાત્મક પીઠ પ્રજ્ઞાંડમાં જુદો છતાં પરોવાયલો પરંતુ અલ્પીત એટલે શોક મોહ હર્ષ પીંગેરથી પર છે માટે પ્રથમ પીઠ બ્રહ્માંડ પર દહીં દેરવવી જરૂરી છે અને તે માટે જ મા અધ્યાયના ૧૪મા શ્લોક સુધી ભગવાને જડ-અદ્ધા-અપરા-પ્રકૃતિરૂપે અને ઇવરૂપે એકમય પરા-પ્રતીરૂપે જગત કેવી રીતે વીસ્તાર પામ્યું છે તેનું વર્ણન કર્યું. અને તેજ રથને પછી ધીરેકથી ભગવાને જણાવ્યું કે—

દૈવી ભોગ મુળમયી મમ માયા દુરત્યયા ।

મામેવ ચ પ્રવશન્તે માયામેતાં તરન્તિ તૈ ॥

—મી• ૭૧૪

એટલે કે આ સર્વે આત્માથી જુદી નહીં એવં પરમેશ્વરની અર્ચીત્ય ત્રીગુણાત્મક, હર્લેધ્ય (અર્થાત પ્રથમની અજ્ઞાન-અવસ્થામાં આશ્ચર્યરૂપ અને અંતે વીચારજન્ય જ્ઞાન અવસ્થામાં મીશ્ચારૂપ તુલ્ય એવી અનિર્વચનીય) માયા નામની કોઈ એક એકદેસ અર્થાત નાટકીયાણી છે. અને જગત એ તે નાટકીયાણી માયાનું લીલાડંબર છે. અને તે લીલાડંબરને લઈને આશુ જગત તે વમળમાં સપડાઈ ગયું છે. પરંતુ તે નાટકીયાણી માયા, એનો ધણી મેનેજર એ ભગવાનજે માટે માયાના ધણી ભગવાનને શરણે જે જાય તે પેલી નાટકીયાણી માયાથી છુટી જાય છે. અર્થાત તે માયામાંથી તેનો છુટકો થાય એવું કોઈ માણસને જરૂર હોય તો તેવા માણસે માયાના ધણી પરમેશ્વરની પ્રીતિ-પૂર્વક ઉપાસનાં ધ્યાન-ધારણા-કર્મયોગરૂપ સેવા એ બધું કરવું જોઈએ અને ખરખર પૂણ્યકર્મનો આરંભ અને પાપકર્મનો છેડો આવવાનો સંધી-યોગ જેના તસીબમાં લખ્યો હોય, એવાનેજ ભગવાનની સેવા-લક્ષ્મી, ધારણા, શરણાંગતી પ્રાપ્ત થાય છે અને તે મનુષ્યજ પરમેશ્વરનો દહ આશ્રય કરે છે—અને પ્રજ્ઞા જ્ઞાનથી પણ સુક્ત થાય છે. આ પ્રમાણે નીરૂપણ કરીને ભગવાને સાતમે અધ્યાય સમાપ્ત કર્યો. આગળ આઠમા અધ્યાયનો આરંભ થવાનો, તેમાં અજુને આઠ પ્રશ્નો પૂછ્યા છે. તે તેણે સાતમાને અંતે ભગવાનના અખમાંથી નીકળેલા સૂચક ઉદગાર ઉપરથી પૂછેલા છે. અરુ.

યત્રોપરમતે ચિત્તયમ્

—મી• ૬૧૦

એટલે ચિત્તજ ઉપરમ પામે છે અને સમાધી લાગીને યોગી આત્મદર્શન પામે છે અને સુખી થાય છે.

તાત્પર્ય કે યોગાદ્યકારને માટે કર્મયોગ અટકવો જ જોઈએ આવી રીતે સમાધી યોગથી સ પક્ષ યજ્ઞેલા સાધકને પરમાત્માજ દેખાય છે પછી તેવા સાધકનું બહારનું વર્તન ગમે તેવું હોય તો પણ તેને તો સર્વત્ર પરમેશ્વર સ્વરૂપ જ બીરાજતું લાગે છે આત્મ નામજ યોગ ॥

આવે! અભીપ્રાય દર્શાવીને ભગવાને આ ૬ કૃા અધ્યાયની સમાપ્તી કરતા પહેલાં જોવે! ઉપદેશ કર્યો કે—

કર્મિણ્યથાધિકો યોગી સરમાધ્યાયી મવાર્જુન ॥

—ગી. ૧૮૪

કેવળ વર્ણાશ્રમ સભધી કર્મયોગ કરનારા યોગી સાધક કરતાં આત્મ સમાધી યોગ સ પક્ષ ધનારો યોગી અધીક શ્રેષ્ઠ છે માટે હે અર્જુન, તું પણ તેવો યોગી થા જોવી ભગવાને અર્જુનને તારીફ કરી છતાં તે બાબતમા પણ હજુ થઈ કહેવાનું છે તે સારી પેઠે લક્ષમાં રાખવું અને તે એ કે થકાથી ઈધર ભક્તી સાથે સમાધી યોગનો અભ્યાસ કરવો જોઈએ

આવી આશા માનીને તે પ્રમાણે વર્તનારો સાધકજ પરમ યોગ યુક્ત છે એ ગીતાને માન્ય છે

તાત્પર્ય એજ કે જોવા બકલીચુક્ત યોગીને પૂર્ણ જ્ઞાનજાન થાય છે આવે! અભિપ્રાય દર્શાવીને ભગવાને ગીતાને ૬ કૃા અધ્યાય સ પૂર્ણ કરી ૭મો અધ્યાય શરૂ કર્યો

આ ૭મા અધ્યાયમાં જ્ઞાન વીજ્ઞાનનો જે વીચાર ભગવાન દર્શાવે છે તે બે બરાબર સમજાઈ જાય તો આગળ કંઈ પણ વીશેષ બલવાપણું રહે તેમ નથી અને તેજ અભીપ્રાય ભગવાને ૭માના બીજા શ્લોકમાં પ્રતિષ્ઠા કરીને દર્શાવ્યો છે

યજ્ઞાત્મા નેદ્ર મૂયાડન્યક્ષાતત્ત્વમવશિષ્યતે ॥

—ગી. ૭૨

સાતમા અધ્યાયમા ભગવાને કર્મયોગ માટે કંઈ પણ ઉચ્ચાર કર્યો નથી તે બરાબર જ છે કારણ કર્મયોગની કાણ વધારે વખત ચલાવે તો હવે અર્જુનનું માથુ જ પાડી જાત અને પાડે! અર્જુન ફેસડી જાત તેના કરતા કર્મયોગ કરતા બીજી થઈ જાયતો અર્જુનને કહેવા માટે ભગવાન થાસે શીલકમાં હતી અને તેથી અર્જુનના મનનો શોક ગમે તે પ્રકાર જવો જ જોઈએ એ તે શોક નહીં જાય તો અર્જુન યુદ્ધ કરશે જ નહીં એમ ભગવાન બરાબર સમજતા હતા માટે અર્જુનના મનનો શોક દૂર કરવા માટે આત્માને કંઈ હુકમ કે કંઈ શોક નથી તે બાબત અર્જુનને ગળે ઉતાર્યા શીવાય તેનો શોક જશે નહીં, તેમ માની અર્જુન ને આત્માનો અપરોક્ષ અનુભવ કરાવવા માટે ભગવાન આ ૭ મા અધ્યાયમા પ્રવ્રતા થયા ને કહેવા લાગ્યા કે—

આડમાં અધ્યાયમાં તો સ્મરશ્લીય અને વીચાર કરવા લાયક તત્ત્વ શું છે તેનો થોડો વીચાર કરીએ તો જ્ઞક એટલે શું એ પ્રરનનો ઉત્તર તેમા આપેલો છે અને તે જ બરાબર લક્ષમાં લઈએ તો ગીતાની અદર જે જ્ઞક સભધી જ્ઞાન વર્ણવાતું છે તે સદૃજ જ જાણી શકાય તેમ છે શબ્દાથ પરથી જ જ્ઞકનો અર્થ બહુવો હોય તો જે પરમ અક્ષર તેને જ્ઞક કહેવાય છે

હવેનું કારણ માટી અને તે માટી બહારરૂપ એટલે અવીનાશી અને તેમાથી અનેલો લોક તે સ્વરૂપ એટલે નાશવત આ કર્મથી, એકેકે ચીજનું કારણ પછી તે કારણનું કારણ એમ કારણ પર પરા ભેતાં ભેતાં ત્રીશુષ્ક સામ્યરૂપ—મૂળ પ્રતિરૂપ મૂળ

કારણ સાબીત થઈ જાય છે અને તે મૂળ કારણને અવ્યાકૃત—અવ્યક્ત એવાં પણ નામે અપાય છે અને તે મૂળ કારણ મૂળ પ્રકૃતી એજ અક્ષરરૂપ-એટલે અવિનાશી છતાં તે વીકારશીલ છે. અને તે વીકારશીલ છે એમ જેના સ્વયં સીદ્ધ અર્ખાંડ પ્રકાશથી સીદ્ધ થાય, તેનેજ પરમ અક્ષર—પરમ અવિનાશી, યાને પરબ્રહ્મ કહી શકાય છે તેનેજ જ્ઞાત્વ સર્વ ઈત્યાદી સંજ્ઞા—નામ, ગીતાશ્રમાં પણ અધ્યાય ૧૭ રહોક ૨૩ માં આપેલ છે. અને તેજ બ્રહ્મર્તુ વર્ણન ૧૩મા અધ્યાયમાં બારમાથી ૧૭મા રહોક સુધીમાં કરવામાં આવેલું છે. તે બ્રહ્મની, જ્ઞાને એકાક્ષરી મંત્રથી ઉપાસના—યોગ ધારણ કરવી જ જોઈએ તે બાબત પર ગીતામાં ખાસ બાર મુકવામાં આવ્યો છે.

તોપણ તે બ્રહ્મની ઉપાસના ભક્તીપૂર્વક અને યોગાભ્યાસના બળ સાથે થવી જોઈએ એમ તો સુદ્ધામ કહેવાયેલું છે “હે અર્જુન હરેક મનુષ્યને વલ્લુશ્વમ સંગ્રામી પોતપોતાનો કમયોગ તો કરવાનો હોયજ છે. અને તને પણ તેજ કમયોગ (યુદ્ધ) કરવાનુંજ છે. છતાં એ ખાનગી રહસ્ય બરી વાત તને કહું છું તે તું લક્ષમાં રાખજે. અને તે ખાનગી વાત એ છે કે કોઈ પણ વસ્તુવા અર્ખાંડ સ્મરણથી તે પોતાનીજ યથા જાય છે એ ખાસ ધ્યાન રાખજે. જેમ કે—

યં યં વાપિ સ્મરન્ ભાવં ત્યજત્યન્તે કલેવરમ્ ।
તં તમેવેતિ કૌંતેય સદા તદ્ભાવમાવિતઃ ॥

—ગી. ૮ નં

એટલે કે જે જે વસ્તુનું અથવા જે જે સ્થીતિનું સ્મરણ સદા સર્વંદા થાય છે તેનું આ દહ ભક્તને બાવના પ્રકર્ષથી પરંતુ અંતકાળ પર્યંત તે ભાવના અર્ખાંડ રહેતાં અંતે તે વસ્તુ અગર તે સ્થીતિ સિદ્ધ થાય છે. આ સિદ્ધાંતના ભેદ પર ભગવાન એમ કહે છે કે—હું પરમેશ્વર પણ તેવા નીષ્ઠાવાન પ્રયત્નશીલ સાધકને સુલભ રીતે પ્રાપ્ત થઈ છું, તે અવ્યક્ત-અક્ષર-અવિનાશી સ્વરૂપ પુરમગતી ત્રીકાલ અખાધીત-પરમધામ છે. પરંતુ તેનું ધામ અનન્ય ભક્તીથીજ મેળવી શકાય છે. જે મનુષ્યથી પરમેશ્વર પડતો લાભ-કમયોગ ભક્તી જ્ઞાન વીજેર સાધનોથી મેળવવા પ્રયત્ન કરે તો નથી તે મનુષ્ય સંસારમાંથી છુટતો નથી પરંતુ વારંવાર સંસારમાં જન્મે છે ને મરે છે. માટે મનુષ્ય માત્રે સર્વ સાધન સંબ્રહ્મ કરનારા યોગી થવું જોઈએ તોજ તેને પરમ આદ્ય પદ પ્રાપ્ત થયો.

તાત્પર્ય એજ કે અંતરમાં પરમેશ્વર ભાવનાનું અધીષ્ઠાન દહ યથા પછી દેહ ઇદ્રીઓના કાર્ષણ વીકારની ધાસ્તી રાખવાનું કારણ નથી.

આ પ્રમાણે કહીને ભગવાને આદ્યો અધ્યાય સંપૂર્ણ કર્યો. (ક્રમશઃ)



ઉદાસીનતા

સંસારી મનુષ્યો સમને છે કે અમરા સુખ કુખના વિષયતા પરમેષ્વર છે તેમને એ બળ નથી કે તે તો નિર્લેપ છે, કોઈના સુખ કુખ થયે તેને કાંઈજ હાનિ નથી વળતું નથી. સૂર્યની આગે આતશી કાચ રાખાએ તો સૂર્યથી તે કાંઈ બળી જતો નથી બલકે તે સૂર્યના કિરણો મેળવીને બમણી હોઈ છે અને તેનામાં રહેલો ને કાંઈ એક દોષ છે તે બળીને કારમ કાંઈ બળ છે એજ પ્રમાણે મનુષ્યમાં ને કાંઈ પ્રભુ હોય હોય છે તેના રૂપ રસે તેને તેજ પ્રાપ્ત થાય છે એ તો નિયમજ છે કે ને નેવું કરશે તે તેનું પ્રાપ્ત છે ” એમાં કંઈ રસો દોર નથી ચોનાનાં કરોતો દોર છે

એકાગ્ર અને સુંદર બને દર્પણની સામે ઉભા રહે તે સું રતું સુંદર અને એકાગ્રનું એકાગ્ર પ્રતિબિંબ પડેજ એમાં દર્પણનો શુ દોષ તે તો એ બાજતમાં કંઈજ રહિત ઉદસીન છે હસતા હસતા જુઓ તો હસતો ચહેરો બજારી રમતા રમતા જોયો તો રડતું મોંડુ દેખારો એમાં દર્પણનો કે શા નાર અગાનીજ અણાવ

એજ દશા અત્યંતદર્દી મહત્તમ એની છે તેઓ નથી કોઈનું કાંઈ બૂર કરતા કે નથી બહુ કરતા જેઓ સારા ભાવથી તેમનો સંગ કરવા બળ છે તેમના બાવો ઉભવ થાય છે અને જૂરા બાવે જવારામાં જૂરા બાવો ઉભરાઈ આવે છે પરમવાની જરાનરીમ બહુ પડે એવા સધુ મહત્તમા પશુ ભલા જૂરાથી અલિપ્ત રહે છે તેથીજ કાચ રબરવો એવી કાચના કેવળથી છે સધુ જોતોની જમણી જાણુએ પ્રણીઓના શુભ કરોના રૂપ અને કમી બાણુએ અશુભ કરોના રૂપ લાગી રહેવા દોષ છે સાચા મનુષ્ય અદાપૂર્વક દર્શન કરવાથી સારા રૂપ અને અશ્વદથી જોવાને કારણે જૂરા લોક જૂરા રૂપ પ્રાપ્ત કરે છે એટલા માટે મના કરવામાં આવે છે કે જે તમ રામાં અદા ન હોય તો કેઈ સાધુ મહત્તમા પસે જશી નહીં એમન આ પશુ દર્પણના નેકાજ ગુણ છે તેઓ કેવળા મિત્ર થતા નથી કેમકે મિત્ર તે છે કે ને કોઈકને કતુ પણ હેય મિત્રવાજ્યને શત્રુના રાજ હાવી થયે રહે છે સમદર્દી યતીનો અમર્યા એ બંનેથી પર છે

—સ્વામી વિદ્યાનંદ

શ્રીમત્ ૫૦ ૫૦ પ્રાં ૬૦ ૦૧૦ શ્રી ૧૦૮ જગદ્ગુરુ મહામહોદયસ્વર સ્વામી

શ્રી વિદ્યાનંદજી મહારાજનું ઉદ્ઘાટન—

અમદાવાદ—ગીત મંદીર અ સ્ટોડીયા કરવાળી બહાર (શુજરાત)

उदासीनता

संसारि मनुष्य समझते हैं कि हमारे सुख और दुःखों का विधाता परमेश्वर है। वे यह नहीं समझते कि वह तो निर्लेप है, किसी के सुख दुःख में शामिल नहीं होता। सूर्य के सामने आतशी शीशा रखा जाता है तो सूर्य उस को दग्ध नहीं करता, वह आप ही सूर्य की किरणों से मिलकर भभक उठता है और उस में जो कुछ मल होता है वह जलकर भस्म हो जाता है। इसी तरह मनुष्य में जो कुछ गुण दोष होते हैं, उनका फल ईश्वरीय नियम से टकराकर अपने आप मिल जाता है। यह नियम है कि जो जैसा करेगा वह वैसा पायेगा, इस में ईश्वर का दोष नहीं अपने कर्मों का दोष है।

कुत्सित और रूपवान् दोनों ही दर्पण के सामने खड़े होते हैं, उन में बदसूरत का रूप घुरा और सुन्दर का रूप उत्तम दिखाई देता है, इस में दर्पण का क्या दोष; वह तो इस व्यापार में इच्छारहित, उदासीन है। हँसते हो तो अपना खिला हुआ चेहरा देख लो और रोते हो तो मुरझाया हुआ मुँह देख लो। इस में कांड दर्पण को दोषी ठहरावे तो समझना चाहिए कि उसे ज्ञान नहीं है।

यही दशा आनंदशी महत्माओं की है, वे किसी का न घुरा करते हैं न भला। अच्छे आत्मी उन की संगति में जाते हैं तो उन के अच्छे भावों की उन्नति होती है और जो घुरे भाव लेकर जाते हैं उन के घुरे भाव उभर आते हैं। परमात्मा के समकक्ष पहुँच जाने में साधु भी भला घुरा करने से कोई वास्ता नहीं रखते। इसी से साधारणतः यह भावना फैली हुई है कि साधुओं की दृष्टिनी और प्राणियों के शुभकर्मों के फल और बौद्ध और अनुभूत कर्मों के फल लगे रहते हैं। अच्छे लोग श्रद्धा के साथ दर्शन करने पर अच्छे फल के भागों और अश्रद्धा में दर्पण के कारण घुरे लग घुरे फल के भागों होते हैं। अतएव वर्जित किया जाता है कि तुम में जब तक श्रद्धा न हो, किसी साधु सज्जन के पास न जाओ, इन में भी दर्पण का सा प्रभाव है। वे किसी के मित्र नहीं होते, क्योंकि मित्र वह है जो किसी का शत्रु भी हो; मित्रता और शत्रुता राग द्वेष के साथ रहते हैं। समदर्शी ज्ञानी का आत्मा इन में परे है।

—स्वामी विद्यानन्द

श्रीमन्. प. प. ब्र. लो. गो. श्री १०८ जगद्गुरु महामण्डलेश्वर स्वामी श्री विद्यानन्दजी महाराज

का पता—आत्मदायाद—गीतामन्दिर आस्ट्रेलिया दरवाजा बहार (गुजरात)

बड़ीदा—गीतामन्दिर, गोंयागेट रोड, (गुजरात)

संस्वापक—मीमांसा पत्रिका के गीताव्यास श्री १०८ जयद्वगुह महापण्डितेश्वर स्वामी श्री विद्यानन्दजी महाराज



यत्र योगेश्वर कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धर । तत्र श्रीविजयो भूतिधरा नीतिमतिमय ॥

जय निर्विकार जय निराधार जय अप्रतिम प्रतिमाधार ।

जय निराकार निरपेक्ष अपल जय मायाधन साकार ॥

अखिल विश्वपालक घालक दानवकुल दैत्यप्रचार ।

जयति अजन्मा अजय विजय हरि निर्गुण सगुणागार ॥

वार्षिक मूल्य-
भारत में ४)
(विदेश में ६॥)

नीलोत्पलवन स्याम, काम कोटि सोभा अधिक ।
मुनिय ताम्र गुनग्राम, जामु नाम अघ रजग अधिक ॥

{ खाषादन प्रति
भारत में ॥
विदेश में १२)

विषयसूची [हिस्तीविमला]

विषय

पृष्ठ
११२१

- १—शरणप्रतिज्ञा—(कविता)—२०—मोस्वामी श्री तुलसीदासजी
२—गणपति और गीता—ले०—शंभरपरमहंस परितोषकाचार्य अष्टमिष्ठ लोकसमूही गीताव्यास श्री १०८
अगद्वह महामण्डलेश्वर स्वामी श्री विद्यानन्दजी महाराज ११३२
३—श्री श्री रामकृष्णदेवजी का अमृतवाणी—संप्रदुर्गत स्वामी श्री विमलानन्दजी महाराज ११३५
४—अध्यात्मयाग—ले०—श्री कटावन्द ११३७
५—मेरे आराध्य देव (राद्यगीत)—ले०—श्री सुरेन्द्रनाथजी भागद विचारद ११३९
६—महादेव की महानहिमा—ले०—स्वामी श्री विद्यानन्दजी भोगिगण वेद्य बन्धनविग्रह ११४१
७—हा जा अचिन्त्य ! हा जा स्वतन्त्र —(कविता)—२०—श्री ईशान्त बाबू श्रीश
साहित्य-आचार्य रत्न ११४६
८—मधुसूत्री स—ले०—कविनाथ श्री नन्दकिशोरजी ओशी किशोर मिश्रनाथ ११४७
९—मुख की मोमासा—ले०—ज्ञानतपस्वी श्री गीतानन्दजी शर्मा ११४८
१०—माया—(कविता)—२०—कुमारी श्री सरस्वती देवी श्रीवास्तव ११५०
११—पणित और मूल—ले०—स्वामी श्री रामानन्दजी सन्यासी दर्शनशास्त्री व्याकरणशार्थ ११५१
१२—गीतागौरव गमस्ति—आगामी विद्यावाङ्मयी गीतागौरव द्रु पौर्वी भाग के एक चर्च की मजक ११५३
१३—शब्दा—प्रे०—एक गीताप्रमी ११५९
१४—समाधान—ले०—ज्ञानतपस्वी श्री गीतानन्दजी शर्मा ११६०
विषयसूची—१—किञ्चिन्मिता म मानविमिलत ११६४

[गुञ्जराती विभाग]

- १—शरणप्रतिज्ञा—(१० गुञ्जराती सङ्ग) ११६१
२—आ भगवान्—(ले०—मधुसूदनी शर्मा श्री रामकृष्ण सङ्गुभाष) ११६२
३—अने अने गीता—(ले०—अमित्र परमहंस परितोषकाचार्य अष्टमिष्ठ लोकसमूही गीत व्यास
अगद्वह महामण्डलेश्वर श्री १०८ स्वामी विद्यानन्दजी महाराज) ११६३
४—शान्ति कथा ?—(ले०—श्री अमित्र परितोषकाचार्य) ११६५
५—शक्ति अने शक्तिमान
अ शक्ति—(ले०—श्री सुरेन्द्रनाथ) ११६८
अ समाधान—(ले०—ज्ञानतपस्वी श्री गीतानन्दजी) ११६८
६—महापुरुष—(ले०—स्वामी श्री रामानन्दजी सन्यासी दर्शनशास्त्री व्याकरणशार्थ) ११६९
७—अचिन्त्य अने शक्ति कथु ?—(ले०—अमित्र परितोषकाचार्य) ११७४
८—गीता और स्वामी श्री भाग्यश्री कथु— ११७७
९—महादेवजी महामण्डलेश्वर—(ले०—स्वामी श्री विद्यानन्दजी भोगिगण वेद्य बन्धनविग्रह) ११८१
१०—प्रारम्भ—(ले०—सिद्धेश्वर व लाला पदसिंह) ११८६
११—मुण्डी लुपन—(ले०—१० श्री पदसिंह व श्री लाला पदसिंह) ११८६

ग्राहकों से—

यह ग्यारहवाँ अङ्क आप के हाथ में है। इस के बाद के (बारहवें) अङ्क के बाद आप का चालू चंदा समाप्त हो जाता है। आप का आगामी वर्ष का चंदा आने पर आप को नये (साठवें) वर्ष का विशाल विशेषाङ्क 'गीता-गौरवाङ्क' (पाँचवों भाग) उपहार मिलेगा। चंदा बारहवें मास के अन्त तक अवश्य आ जाना चाहिए, जिस से ग्राहक-रजिस्टर आदि समय से व्यवस्थित हो जाय और ठीक समय पर आप को अपना उपहार प्राप्त हो जाय। इसी लिए हम ने इस अङ्क में मनीआर्डर फार्म भी नत्थी कर दिया है।

कागज, स्याही और प्रेस संबंधी प्रत्येक वस्तु कितनी महँगी मिल रहा है इन दिनों, यह अब किसी से छिपा नहीं है। इस महँगी की चपेट में पढ़कर सर्वसाधनसंपन्न बड़े बड़े विख्यात पत्रों ने अपने आकार प्रसार में कमी कर दी है और ऊपर से चंदे के द्रव्य में कटि, लेकिन हम ने न तो पत्र का आकार घटाया, न वार्षिक चंदा बढ़ाया। हम अब भी आप को वैसी ही सेवा करते जा रहे हैं जैसी पहले से करते आ रहे हैं अर्थात् इस वर्ष भी गत वर्ष की तरह लगभग ६०० छ सौ पृष्ठों और पूर्ववत् चित्रों के साथ विशेषाङ्क हम आप को भेंट करेंगे जिस में १६ से १८ अध्याय तक का विस्तृत व्याख्यान पढ़कर आप प्रसन्न हो जायेंगे।

आप लोगों की सहायता और प्रभु की कृपा से ही हम निर्विघ्न रूप से ऐसी सेवा करने में समर्थ हो रहे हैं। इस लिए आप को भी चाहिए कि अपना चंदा भेजने के साथ साथ एक दो नये ग्राहकों से भी चंदा भेजवाने का पूर्ण प्रयत्न करें। यह प्रभु का कार्य है, इस लिए प्रभु आप के प्रयत्न को अवश्य सफल करेंगे।

चंदा भेजने में देर करने से पछताना ही हाथ लगेगा, क्योंकि इस महँगी में द्वितीय संस्करण के प्रकाशन की कोई आशा नहीं। निम्न लिखित बातों पर विशेष ध्यान दीजिए—

- १—अपना चंदा भेजने में इस अङ्क में नत्थी किये हुए मनीआर्डर फार्म का अवश्य उपयोग कीजिए।
- २—मनीआर्डरफार्म के कूपन पर ग्राहक नंबर के साथ अपना पूरा पता साफ साफ लिखिए।
- ३—आप चंदा भेज चुके हों, तो इस फार्म पर अपने मित्र का पता ठिकाना लिखकर उन से ही बार रुपये भेजवाने का अनुग्रह कीजिए।
- ४—बी० पी० मॉगने की अपेक्षा मनीआर्डर से चंदा भेज देना अधिक अच्छा है, क्योंकि इस प्रकार आप का विशेषाङ्क सुरक्षित रूप से आप को प्राप्त होगा।
- ५—३१ दिसंबर ४२ तक मनीआर्डर न आने पर आप का विशेषाङ्क बी० पी० द्वारा आप की सेवा में भेंट दिया जायगा जिस में आप के अधिक पैसे खर्च हो जायेंगे। इस लिए जहाँ तक शीघ्र मनीआर्डर अवश्य भेज दें।
- ६—यदि मनीआर्डर और बी० पी० खर्च दोनों से चरी रहना चाहते हैं, तो अपने निश्चय की गीताधर्म शाखाओं में चंदा जमा करके रसीद ले लीजिए और वही से अपनी प्रति प्राप्त कीजिए। शाखाएँ निम्न लिखित स्थानों में हैं—

१ कलकत्ता, सेठ श्री रामप्रसादजी मंडूदा, ३२ गायछोटी।

२-कलकत्ता, एल० के० मेघानी, १४ अमरतला स्ट्रीट।

३ नागपुर, लाला नन्दलाल मैकूलाल, सीताबर्दी।

४ जयपुर, लाला रामचन्द्र रईस, मुकादमगंज।

५ अकोला, सेठ जगजय छाबसरिया।

६ कपौची, रतोलाल नरभेजी कोटक, प्रिंसेस स्ट्रीट।

७ किशनगढ़, बाबू उमराव बिहारी माधुर स्टेट मेंबर।

संस्कारक—श्रीमत्परमहंस परित्राजकाचार्य अग्रनिष्ठ लोकसप्रदी गोलाभ्यास श्री १०८ अगदगुरु

महामण्डजेश्वर स्वामी श्री विद्यातन्त्रजी महाराज



सर्वेषाम् पितृ परित्यज्य भावेकं शरणं व्रज । अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मात्तयिष्यामि मा शुचः ॥

वर्ष ७ }

नवम्बर, १९४९, काशी

{ अंक ११

शरणमस्तिज्ञा

सत्य कहों मेरा सहज सुमाउ ।
 मुनहु सत्ता कपिपति लङ्कापति तुम्ह सन कौन दुराउ ।
 सब विधि हीन दीन अति जहपति जाको कन्हू न टाउँ ॥
 आवे सरन मनो न तजौ तिदि यह आवत कविराउ ।
 तिनहि लागि घरि देह करो सब करौ न सुखस नसाउ ॥
 पुनि पुनि मुखा उठाइ कहत हौ सकल सया पतिबाउ ।
 महि कोऊ प्रिय मोहि दास सन कष्ट प्रीति कहि जाउ ॥
 मुनि श्रुति के बचन बिबीषन प्रेम मगन मन पाउ ।
 'तुलसीदास' तबि जास प्राप्त सब ऐसे प्रभु कहैं गाउ ॥

—भोव्यामी श्री तुलसीदासजी ।

गणपति और गीता

(ले०—श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य ब्रह्मनिष्ठ लोकसंप्रदायी गीताव्यास श्री १०८

जादगुरु महामण्डलेस्वर स्वामी श्री विद्यानन्दजी महाराज)

(गत गणेशोत्सव के अवसर पर बड़ोदानरेश के 'लक्ष्मीविलास' राजमहल में सरकारी गणपतिपूजा के उपलक्ष्य में महाराजदम्पती, राजबालक, सामन्त और आमन्त्रित सद्गृहस्थों के प्रति पूज्य स्वामी जी महाराज का जो प्रवचन हुआ था उस का सारांश)—

अन्तराष्ट्रियपिरोपशान्तये

शान्तपावनमचिन्त्यवैभवं ।

तत्परं वसुपि कुञ्जरं मुखे

मन्महे किंपपि मुन्दिरं महः ॥

विनोदनी अन्धकार की निवृत्ति के लिए हम ऐसे किसी अनिर्वचनीय तेज का ध्यान करते हैं जो शान्त होते हुए भी पावन है, जिस के चैमव का प्रकाश बुद्धि की कल्पना से परे है, जो मुख से हाथी के आकार का और शेष देह में नराकार तथा लम्बोदर है। वह गणपति अनादि और अव्यय है उन को शंकरसुअन कहने का तात्पर्य यह है कि जैसे शंकरजी के आदि, अन्त और जन्म आदि का निश्चय नहीं है वैसे ही इन के भी आदि अन्त का निर्णय नहीं हो सकता। शंकरजी अष्टमूर्ति कहे जाते हैं, अर्थात् पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र और यज्ञकर्ता ये सब उन के स्वरूप हैं। गीता के शब्दों में कहें तो यह भगवान् की परा और अपरा प्रकृति हैं। अस्तु, यह सामग्री जुटानेवाले तो शंकरजी हुए, इस लिए वे पिता कहे जाते हैं तथा इस सामग्री से यज्ञ (कर्म) करनेवाले

जीवों को सिद्धिदाता गणेश ही है, इस लिए वे उन के पुत्र कहे जाते हैं। उन को अनादिता इसी से सिद्ध है कि शिवपार्वती के विवाह में प्रथम पूजा उन्हीं की हुई और पञ्चदेवपूजा में उन का अग्रस्थान है ही, वल्कि यह भी कहा जाता है—

‘कलौ चण्डीविनायकौ’

कलियुग में दुर्गा और गणपति ही प्रत्यक्ष फलदाता जाग्रत देवता हैं। कहने की तो उन की अद्वि सिद्धि दो पत्नियाँ हैं, पर वे इतने निष्काम-व्रती हैं कि इन को अपने भक्तों के कार्यों को सफल बनाने में ही लगाये रखते हैं। अतएव शायद बृद्ध शंकरजी को पौत्र का मुख देखने का सोमय नहीं हुआ। क्योंकि अब तक यह सुनने में नहीं आया कि गणपतिजी का अमुक पुत्र है। तुलसीदासजी तो उन में बहुत से गुण देखते हैं—

सिद्धिसदन गजवदन विनायक ।

कृपासिन्धु सुन्दर सब लायक ॥

मोदकप्रिय मुद मङ्गलदाता ।

विद्यावारिधि बुद्धिविधाता ॥

वे उन के बुद्धिविधातापने से यही माँगते हैं कि ‘बसहु रामसिय मानस मोरे ।’ अर्थात् वे बुद्धि के देवता भी हैं, जिस आदमी में जितनी बुद्धि होती है वह उतना ही अधिक गम्भीर होता है। उन का हाथी का मस्तक कहने का यही भाव है, क्योंकि गजराज बड़ा गम्भीर और समझदार होता है—

गजपुद्गवस्तु धोरं विष्णोः कथयति चादुशतैश्चासुक्ते । करने की परिपाटी पुराने लोगों में अभी कुछ दिन

—परमेश्वर

पहले तक चली आयी थी । शायद गणेशजी ने इन सकेतों में ही अपना परिवेश रचने दिया होगा । ज्ञानेश्वरजी के शब्दों में इनके स्वरूप की व्याख्या यों है—हे वेदों से वर्णनीय आदिरूप ओंकार, आप को नमस्कार है । आप ही सकल अर्थ और बुद्धि की प्रकाशित करनेवाले गणेश हैं । जो ये अस्तित्व वेद हैं वही आप की सुन्दर मूर्ति है, वेदों के अक्षर आप का निर्देश करीर है । स्मृतियों आप के अवयव हैं, शरीर का भाव देखिए तो अर्थ की सुन्दरता आप के लक्षण की धृति है । अथारइ पुराण मणि-भूषण हैं, प्रमेय सब हैं, परमेश्वर उन का सुन्दर हैं । उत्तम परमेश्वर रंगा हुआ भग्न है, जिस में सादित्यशास्त्र ही उत्तम रत्न बना है और काव्य नाटक रमणुम करनेवाली सुन्दर धर्मियाँ हैं, काव्य नाटकों का अर्थ ही उन धर्मियों की ध्वनि है । व्यास आदि ऋषियों की बुद्धि मेखला से छुहाती है । जो परमार्थ कहते हैं वही आप की भुजाएँ हैं और जो मिल मिल मत है वे ही भुजाओं में शास्त्र हैं । सर्वशास्त्र फलसा है, न्यायशास्त्र अद्वैत है और वेदान्त अत्यन्त सुरस मोदक है । एक हाथ में जो आप हो आप दृष्टा हुआ द्यौत है वह वार्तिक-पारों के व्याख्यान से खण्डित किये हुए बौद्धिक का सकेत है । वरदायक करकमल सत्कार्यवाद का सूचक है, धर्म की प्रतिष्ठा आप का अंग है । जिस में महापुरुष का आनन्द है वह अत्यन्त निर्मल विवेक आप की लंघी सँझ है । उत्तम सवाद आप के शुभवर्ग दन्त है, ज्ञानरूप आप के सूक्ष्म नेत्र हैं, दोनों मोमाँसाएँ आप के दीर्घ ज्ञानों के स्थान में

चूहे के ऊपर उन की सवारी है । इस का यह अभिप्राय है कि चूहे का स्वभाव दूसरों की चीजों को निर्गन्ध कटार कटार कर नष्ट कर खालना होता है । यह उन आदमियों का रूपक है जो धर्म ही परहित का इनन करते और निन्दा घुसाई या निष्फल बक बक किया करते हैं । गणेशजी जब कृपा करते हैं तो उन की चूड़ास्वरूप उपवृत्ति के ऊपर सुबुद्धिस्वरूप स्वयं का विराजते हैं और इस प्रकार लोगों को सम्मार्ग में चलाते हुए वे चूहे की सवारी करते हैं ।

गोदाधर्मियों को दृष्टि से देखा जाय तो वे इन की परममूर्ति ओंकारस्वरूप विज्ञानमय ही मानते हैं । गणेशजी की लम्बोदरवती गुणदायिनी जो 'ओं' कार के साथ सुसादृश्य रखती है, उस का यही तत्त्व है । गीता में भगवान् ने तो इन के साथ इतनी सादृश्यता दिखाई कि (मागवन में श्री राधा की तरह) नाम न लेकर इशारे से इतना ही कहा—'भगव सर्ववेदेषु' तथा 'बुद्धिर्बुद्धिमात्मनि ।' और गीता में यम, कुबेर, वरुण, सूर्य, चन्द्र, शुक, बन्धर्ष जैसे छोटे देवताओं के साथ रुद्र और गणेशजी के प्रसिद्ध अर्द्ध स्कन्द का नाम आया है, पर इतने प्रसिद्ध, अमर्युष, अर्द्ध सिद्धिदाता गणेशजी का नाम नहीं आया इस का यह भी कारण है कि गीता के असली मूल लेखक तो गणेशजी ही हैं । अपनी विभूतियों दर्शित हुए भगवान् ने उन का नाम तो अवश्य लिया होगा, पर गणेशजी ने अपना नाम प्रकट करना अच्छा न समझकर उसे निश्चल दिया होगा । वगैरि प्रसिद्ध धर्मकर्ताओं के विषयों में अपना नाम प्रकट न

दिलाई देती हैं, ज्ञानामृत मद है और विवेकी मुनि उस का सेवन करनेवाले अमर जान पड़ते हैं। तत्त्वार्थ ही प्रकाशमान बाल हैं, द्वैत और अद्वैत निकुम्भ हैं और दोनों द्वैताद्वैतों का जहाँ मिलान होता है वही आप का शोभित भाल है। वेदान्त और उपनिषद् जो उत्तम ज्ञानामृत से युक्त हैं वे मस्तकस्थित मुकुट में पुष्पों के समान हैं। अकार आप के दोनों ज्वरण हैं, उकार विशाल उदर है और मकार मस्तकाकार महामण्डल है, ये तीनों जहाँ एकरूप होते हैं वहाँ वेद समाधि है। उस आदिबीज ॐकाररूप गणेश की उपासना योगीजन किया करते हैं।

यह तो गणेशजी की आध्यात्मिक व्याख्या हुई। इन की दैविक मूर्ति की सफल चरितार्थता महाभारत के लेखरूप से सर्वविदित है ही। भारतान्तर्गत गीता में जिस उत्तम बुद्धियोग का प्रतिपादन है उस का सुबोद्धा लेखक इन से बढ़कर कौन हो सकता था ? जहाँ इस बुद्धियोग के ज्ञाता ये लोग बतलाये गये हैं—

अहं वेद्मि शुको वेत्ति संजयो वेत्ति वा न वा ।

इस वचन में गणेशजी को भी अग्र स्थान देना चाहिए, क्योंकि व्यासजी ने करार किया था कि आप बिना समझे कुछ मत लिखिएगा। अस्तु, जिस प्रकार यह गीता का प्रतिपाद्य तत्त्व राजविद्या (राज, क्षत्रियों की विद्या) कहा जाता है और उपनिषदों में अनेक क्षत्रिय राजा इस विद्या के प्रवक्ता बड़े गये हैं (भक्ता राजर्षयस्तथा—गी० ९।१३) उसी न्याय से गणेशजी ने अपने सेनापति भाई स्कन्द को इस

का तत्त्व अवश्य समझाया होगा। अतएव अब के राजा, प्रजा, सैनिक सब को इस गीता को अपनाना चाहिए। इस पर तो क्षत्रियों को अपना विशेषाधिकार समझना चाहिए, क्योंकि गीता के वक्ता भगवान् क्षत्रिय और श्रोता अर्जुन क्षत्रिय ही थे। किंतु एक शोधक किसी तत्त्व का आविष्कार करता है तो उस पर विशेषाधिकार तो उसी का होता है, पर उस का लाभ सभी उठाते हैं उसी तरह क्षत्रियों का ग्रन्थ होते हुए भी यह सब का ग्रन्थ है। आविष्कारक तो एक व्यक्ति होता है, पर गीता तो राजाओं का एक सांप्रदायिक ग्रन्थ है, सुदीर्घकाल से उन का इस में प्रवेश है; जैसा कि भगवान् कहते हैं—

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् ।

विवस्वान् मनवे प्राह मजुरिक्ष्वाकवेऽज्जवीत् ॥

एवं परंपराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः ॥

—गी० ४।१२

‘मैंने इस तत्त्व को सूर्यनारायण से कहा, उन्होंने राजा मनु को सुनाया, मनु ने इक्ष्वाकु को; इस प्रकार इस को बहुत से राजर्षि क्रमपरंपरा से सीखते चले आये हैं।’ किंतु ‘यथा राजा तथा प्रजा’ के अनुसार सर्वसाधारण को भी इस उत्तम गीताग्रन्थ से अपना गौरव बढ़ाना चाहिए। इस के अभ्यासियों को यदि भगवान् प्रसन्न होकर श्री, विजय, भूति और नीति देते हैं तो गीता गणेशजी का प्रिय आलेख्य होने से, वे भी इन के साथ क्रद्धि और सिद्धियों को अवश्य भेज देंगे इस में सदेह नहीं। ॐ तत्सत्



श्री श्री रामकृष्णदेव की अमृतवाणी

[संवादकां— स्वामी श्री विष्णुपानन्दजी महाराज]

“संगच्छन्म” (संगठन से जाने)

१५—विदेह, वैराग्य को प्राप्त करके संसारम्वहार करना चाहिए। इस संसारवाण्य में काम, क्रोध, भविरूप बहुत से मगर हैं। बदन में हल्की मगार बल में उतरने से मगर का घर बड़ी रहता। विदेह, वैराग्य ही ‘हरी’ है। सत् और असत् के विचार का काम है ‘विदेह’। ईश्वर ही सत् और निम्न असत्, और सभी असत्, अनिरुद्ध का ही दिन के लिए है। सत्, हाना ही बोध रहता चाहिए।

१५—वेद के साथ न जाने से रोग कष्टा नहीं होता है। साधु का संग एक ही दिन करने से बड़ी होता, सर्वदा ही इस को आवश्यकता है। रोग हो सगा ही है। फिर वेद के साथ न रहने से बाकी का हान नहीं होता। काय साथ रहने से वह बोध होता है कि कौन क्या की नाही है, और कौन विन की। साधुसंग से ईश्वर में अनुष्ठान होता है, ईश्वर के कर ‘मैत्र’ होता है। व्याकुलता न होने तक कुछ नहीं होता, साधुसंग करने करते ईश्वर के लिए प्राप्त व्याकुल ही बलता है। साधुसंग करने से और एक उपकार होता है, वह है सत्कर्म का विचार। सत्-निम्न पर्याप्त अर्थात् ईश्वर है और असत् है अनिरुद्ध वस्तुएँ। असत् मार्ग की ओर मन के जाने ही विचार करना चाहिए। हाजी पण्डे केने के पेशों को जाने के लिए ईश्वर बड़ाता है तो सत् समय बड़ावत उठे अनुष्ठान मारता है। इसी तरह भाग्यविचार का ईश्वरविस्तार छोड़कर अनात्म वस्तुओं को और मनकर्म हाजी के बाधनाकर्म में बड़ाते ही उस पर विचारकर अनुष्ठान मारना चाहिए।

१६—मनुष्य मन से ही बल और मन से ही दुःख

होता है। मन को जिस रंग में रंगाने का बड़ी रंग में बल रंग बदेगा। जैसे पुत्रे हुए कपड़ों को रंग रंग में रंगाना हो सता, नील में रंगाना हो नीले और हरे रंग में रंगाना हो हरे हो जाने हैं, इसी तरह किसी रंग में रंगाना मन बड़ी रंग में लेगा। ऐको न, यदि कोई ही अंगरेजी बहो, तो बात बात में अंगरेजी शब्द का प्रयोग है फिर साथ ही पैरो में घूट जूते और सीटी बजाकर गाना, ये सब भी का बहोते हैं। मन को दुर्भोग में रखने से बड़ी प्रकार सत्कर्म सत्कर्मधार और विस्तार हो कर्मता। यदि मन्त्री का साथ रकोने तो ईश्वरीय विस्तार हरिकथा, ईश्वरीय प्रार्थन, बड़ी सब होने। मन को लेभ सब बहो है। एक ओर की ओर दूसरी ओर संगठन हो, तो अन्तर् की को एक मंत्रि और संगठन को दूसरी मंत्रि कादर किता काता है। पर उस कादर का संगठन हो है एक ही मन।

१७—संसार में रह कर शांति करना बड़ा कठिन है। बहुतों विन है, उन को दुर्भोग बलाना नहीं होगा—संगठन ठीक, गरीबी सदा की के साथ मेम न हो का सहाय बाड़ा न माननेवाला, गुरु और हठी हो। फिर भी उपाम है। कभी कभी एकात्म में जाकर उन से प्रार्थना करना और उन को ज्ञान करने का प्रयत्न करना चाहिए। सब भी अनवर काभी, किसी एकात्म जाह में कादर एक ही दिन ऐसे रहो कि संसार के साथ कोई भी सम्बन्ध न रहे और किसी भी विपरीत व्यक्ति के साथ सांसारिक विषयों को लेभ साक्षात्कार न करना हो। ना तो एकात्म में निराध, बड़ी तो साधुसंग होना चाहिए।

१८—संसार जानो जल है और मन है रूप। यदि

जल में अर्थात् मन को संसार में फँक रखो तो दूध जल में मिलकर एक हो जाता है, निखालिध दूध नहीं मिलता। दूध का दही बनाकर उस के मक्खन को जल में रखा जाय तो वह जल के ऊपर ही बहता रहता है। इसी लिए एकान्त में कुछ दिन रहकर साधना द्वारा पहले ज्ञान और भक्तिरूप मक्खन प्रस्तुत कर लो। बाद में उस मक्खन को संसाररूप जल में फँक रखो, तो वह संसाररूप जल के साथ नहीं मिलेगा।

१८—साधुओं के चित्रपट देखने से मन में साधु (जैसे) नावों का उद्दोषण होता है, जैसे लकड़ी का बना नकली फल देखने से असल फल का उद्दोषण होता है। इसी लिए तुम लोगों से कहता हूँ कि सर्वदा ही साधुसंग धारण्यक है। संसार की ज्वालाएँ (दुःखमोग आदि) तो देख रहे हो! लोगों को स्वीकार करने से ही ज्वालाएँ (दुःख, कष्टरूप साध) हैं। साधुसंग में शान्ति मिलने से ही तापदग्ध व्यक्ति साँस लेकर बचते हैं।

१९—जीव ईश्वर का चिन्तन करता है, पर ईश्वर पर विश्वास नहीं होने से फिर भूल जाता है, संसार में आसक्त होता है। हाथी को स्नान करा देने पर, फिर भी वह बदन में धूल या मिट्टी लगा लेता है। मन है मत्त करी। पर हाथी को गहलाकर हो यदि हाथीखाने में छुड़ा दिया जाय तो फिर वह धूल या मिट्टी नहीं लगा सकता। यदि जीव मृत्यु के समय ईश्वर का चिन्तन करे तो उस का मन शुद्ध हो जाता है, फिर वह मन विषय में आसक्त होने का अवसर नहीं पाता, ईश्वर पर विश्वास नहीं है इसी लिए इतना कर्ममोग होता है। शरीर त्यागते समय ईश्वर का चिन्तन हो चके, इसी लिए पहले से उस का तपाय करना चाहिए। यह उपदेश है “अभ्यासयोग।” पहले से ही ईश्वर के चिन्तन का अभ्यास करने से आखिरी दिन में भी उन की याद रहेगी।

२०—संसारी लोग सोचते हैं कि हम बड़े मुदिमान

हैं, पर ये हैं विषयासक्त। वे तो स्वयं खेल रहे हैं, इस लिए निजी चाल भलीभाँति नहीं समझ सकते। परंतु संसार के त्यागो प्राप्त लोग तो विषय में अनासक्त हैं। वे संसारियों से मुदिमान हैं, वे स्वयं तो नहीं खेलते, इसी लिए ऊपरी चाल ठीक ठीक बतला दे सकते हैं। (अर्थात् जैसे कि शतरंज, ताश आदि के खेल में उन के खेलनेवाले निजी हार जीत का फिक्र रहने से जितना समझ सकते हैं, उन से भी अधिक सुगमता से वैफिक दर्शक इन की चाल बतला सकता है।)

२१—विषयी लोगों का ज्ञान कभी कभी एक भाषा मात्र सीख पड़ता है। विषयी लोगों की डेक (अटल सकल) नहीं है। कुछ भी काम हो, पूरा हुआ तो अच्छी बात है, नहीं भी हुआ तो कोई परवाह नहीं। जल की आवरण कता हुई, तो फूसा खोद रहे हैं। खोदते खोदते पानी ही कुछ नीचे पत्थर निकला, तब ही वह जगह छोड़ दी। फिर और एक जगह खोदते खोदते रेत ही रेत निकली, तो उसे भी छोड़ दिया। जहाँ खोदना शुरू किया, उसी जगह खोदते जाना चाहिए, तब तो जल पाओगे। जीव जैसा कर्म करता है, वैसा ही फल पाता है।

२२—हजार उपदेश दो, पर विषयी लोगों का कुछ कर नहीं सकते। पत्थर की दीवार पर क्या कील गाँबी जा सकती है? उस का तिर हट जायगा, तो भी दीवार का कुछ न होगा। सलवार से चोट मारने से घबिमान को क्या होपा? साधु का कमण्डल (दूध) चाली प्राप्त घूस कर खीरता है, पर वह जैसा कटुवा का वैसा ही कटुवा रहता है। मछका एकनागरी खका नहीं हो सकता। बीच बीच में वह गिर जाता है, फिर खका होता है; तब तो वह खका होना और चलाता खीरता है। (अर्थात् महा विषयासक्त होने पर भी कही पबमाना नहीं चाहिए; कोशिश करते करते कमी गिरते कमी उठते हुए अपनी साधना में बछे की तरह घनी इतकरी हो सकते हैं।) (कमलाः)

आध्यात्मयोग

(श्री अरविन्द)

[गायक से आगे]

कर्तव्य कर्म क्या है, इस को बताना बड़ा कठिन है, 'गहना कर्मणो मति ।' अधिकांश लोग कर्तव्य कर्म का वह अर्थ करेंगे जो अंगरेजी के 'ड्यूटी' शब्द से लिया जाता है। यदि वन से इस शब्द की व्याख्या करने को कहा जाय तो कहेंगे कि इस का अर्थ है ध्वज और नैतिक कर्म, वह कर्म जिस को लोग न्याय और सदाचार की कसौटी से ठीक समझते हैं। या जिस को तुम स्वयं अपने अन्तःकरण की साक्षी के साथ यह कह सकते कि यह ध्वज कर्म है अथवा ऐसा कर्म, जिस की समाज, राष्ट्र और मानव जातिका हित तुम से आशा रखता है। परंतु वह मनुष्य जो कर्तव्यविषयक इस प्रकार के व्यक्तिगत और सामाजिक विचारों के बन्धन में जकड़ा रहेगा, निःसंदेह एक ऐसा मनुष्य बन सकेगा जिस को लोग भला आदमी कहते हैं। यद्यपि ये विचार भला भी मनुष्य की दूर मचानेवाली कामनाओं और व्यक्तिगत अहंकार को संयत और नियन्त्रित करने के लिए आवश्यक हैं, पर ऐसे विचार रखनेवाला आदमी इस योग की सिद्धि को कभी नहीं पा सकेगा। वह जो केवल कर्मखलो की एक प्रकार की इच्छा के स्थान पर दूसरे प्रकार की इच्छा स्थापित करेगा, इन उच्चतर कर्मों को पाने के लिए प्रायः और अधिक आवेश के साथ संपर्क करेगा और इन के न मिलने पर घुरी बरद घुरी भी होगा। परोपकार करने के आवेश से अधिक भयंकर और कोई भी आवेश नहीं होगा, पुण्यकर्म के जमे हुए अहंकार को हिला डालना जितना कठिन होता है वतना अन्य किसी प्रकार के अहंकार

को हिला डालना नहीं। इस का कारण यह है कि इस प्रकार का आवेश या अहंकार स्वयं अपनी ही दृष्टि में और दुनियाँ की दृष्टि में भी ध्वज दिखाई देता है, अतएव वह किसी उच्चतर नियम के आगे सिर झुकाने की आवश्यकता जरा भी अनुभव नहीं करता। ऐसे मनुष्य को यदि कल के विषय में शोक न भी हो तो भी उस में राजसिक कर्तव्य का प्रयास और परिश्रम तो रहेगा ही। वह संघर्ष करेगा, युद्ध करेगा, वसुध को होगा, हान्त हो जायगा, गुणों के बन्धन में सदा जकड़ा रहेगा, त्रिगुणातीत नहीं हो सकता।

इसी प्रकार की व्यक्तिगत पुण्य की भावना और सामाजिक कर्तव्य की भावना के बलीभूत होकर ही अर्जुन ने युद्ध करने से इन्कार किया था। उस की युष्टियों के विरुद्ध श्री कृष्ण ने दो भिन्न प्रकार के विचार उस के सामने रखे। एक हीन कोटि का उस मनुष्य के उपयोग के लिए जो गुणों के बन्धन में है पर उन से मुक्त होना चाहता है, दूसरा ज्येष्ठ कोटि का विचार मुक्त मनुष्य के लिए। पहला विचार है शास्त्र और दूसरा कर्मेकलों का ही नहीं बल्कि कर्मों का भी मगवान् को समर्पण। शास्त्र की देन यह होती है कि वह हम से परे हमारी व्यक्तिगत इच्छाओं, दुष्टियों, आवेशों और पक्षपातों से भिन्न, हमारी इच्छा और स्वार्थपरता से ऊपर उठकर एक ऐसे आदर्श को वस्थित करता है जिस के अनुसार यदि हम सच्ची भावना के साथ अपने जीवन को बना लें तो न केवल हम आत्मसंयम ही प्राप्त कर लेते हैं, बल्कि साविक अहंकार के भी

बहुत अधिक मात्रा में घट जाने के कारण हम अपने आप को मुक्ति के लिए भी तैयार कर लेते हैं। प्राचीन काल में वैदिक धर्म ही शास्त्र था। यह वैदिक धर्म मनुष्य के मनोविज्ञान और जगत् के नियमों के गम्भीर ज्ञान पर आधार रखता था और मनुष्य के सामने उस के सच्चे स्वरूप को खोलकर रख देता था तथा उस को यह दिखा देनेवाला होता था कि वह अपने स्वभाव के अनुकूल किस तरह का जीवन बितावे। बाद में स्मृतियों की व्यवस्था हुई। स्मृतियों ने भी अधिक मोटे रूप में बही करने का चयन किया जिसे वेदों ने चतुर्वर्ण्य कहा है, उसी के अनुसार मनुष्यों का सामान्य विभागों में वर्गीकरण करने का वैसा ही प्रयत्न किया। आज यह चतुर्वर्ण्य अन्ध यांत्रिक रीति और सामाजिक रूढ़ियों का भी गया गुजरारूप रह गया है।

बड़े से बड़े शास्त्र का भी अहंकार के लिए, पुण्य-कर्म के अहंकार, पद्धति और व्यक्तिगत संमति के अहंकार के लिए दुरुपयोग किया जा सकता है। शास्त्र अधिक से अधिक यही है कि वह मुक्ति की तैयारी के लिए एक महान् साधन है। वह शब्द-रत्न है।

परंतु हमें केवल तैयारीमात्र से संतुष्ट नहीं होना चाहिए, बल्कि ज्यों ही हमारी आँखें खुलें त्यों ही वास्तविक मुक्ति की ओर दौड़ पड़ना चाहिए। मुक्त आत्मा और वह मुक्ति का साधक भी जिसने अपने कर्मों को भगवान् के समर्पण कर दिया है, बड़े से बड़े शास्त्र के भी परे हो जाता है; 'शब्दब्रह्मातिवर्तते।'

कर्म के समर्पण की सब से बढ़िया नींव यह है कि साधक यह अनुभव करे कि प्रकृति ईश्वर के आदेशानुसार हमारे समस्त कर्मों को करती है और ईश्वर हमारे स्वभाव के द्वारा उन कर्मों को निर्धारित

करता है। इस नींव के पड़ते ही समस्त कर्म ईश्वर के हो जाते हैं, तुम्हारे नहीं रह जाते, न तुम पर कोई उत्तरदायित्व ही रह जाता है। वास्तव में न तो कोई उत्तरदायित्व है न कर्मबन्धन, कारण एक ईश्वर किसी के प्रति उत्तरदायी नहीं है, वह हर तरह से स्वामी है स्वतन्त्र है। तब हमारे कर्म शास्त्र के अनुसार चलने-वाले पुरुष के कर्मों की तरह न केवल स्वभावान्वित अतएव धर्म बन जाते हैं, अपि तु हमारा स्वभाव भी स्वयं एक यन्त्र की तरह ईश्वर द्वारा ही नियन्त्रित हो जाता है। ज्ञान की इस स्थिति को प्राप्त कर लेना हमारे लिए सहज नहीं है, कारण कि अज्ञान के संस्कारों से हम भरे पड़े हैं। किंतु तीन क्रमिक अवस्था हैं जिन के द्वारा इस स्थिति को शीघ्रता से प्राप्त किया जा सकता है। प्रथम अवस्था है इस श्लोक के भाव में तन्मय हो जाना—

त्वया हृषीकेश हृदि स्थितेन

यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि।

हे हृषीकेश, मेरे हृदय में वर्तमान तुम से जैसा मैं नियुक्त किया जाता हूँ वैसा ही करता हूँ। जब यह भाव तुम्हारे दैनिक जीवन में प्रविष्ट हो जायगा तब दूसरी अवस्था को प्राप्त करना सहज होगा और तुम गीता के इस ज्ञान में निवास कर सकोगे—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।

श्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥

ईश्वर सब जीवों के हृदय में स्थित है और सब को बहों से अपनी त्रिगुणात्मिका माया द्वारा इस तरह घुमा रहा है मानों वे किसी यन्त्रचक्र पर आरूढ़ हों। तब तुम तीनों गुणों की क्रिया को अपने अंदर अनुभव कर सकोगे और इस यन्त्र की गतिविधि पर लक्ष्य रख सकोगे। अब तुम 'मैं करता हूँ' न कहोगे,

बल्कि यह अनुभव करेंगे कि ये गुण ही हैं जो कर्म करते हैं। इन अवस्थाओं में विशेषतः उस समय तक जब तक कि तुमागुणों की क्रिया को विवेकपूर्वक न पहचानने लगे, एक बहुत बड़ी कठिनाई रहती है और वह है अपने स्वभाव के अंदर अशुद्धि का मान और पीछे छेने हुए पाप और पुण्य के विचारों का भूत। तुम्हें यह बात सदा स्मरण रखनी चाहिए कि जब तुम मे अपने आप को ईश्वर के हाथों में सौंप

दिया है तब इन अशुद्धियों को वह आप ही, अपनी श्रुतिया द्वारा निकाल देगा। तुम्हें तो केवल सावधान रहना चाहिए, तुम तो न पाप में और न पुण्य में किसी में भी आसक्त नहीं हो सकते। क्योंकि भगवान् ने बार बार अभय वचन दिया है, 'प्रति जाने' मैं तुम से प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूँ 'न मे भक्त प्रणश्यति' मेरे भक्तों का नाश नहीं हो सकता।
! (भक्तश)

मेरे आराध्य देव !

(गद्यगीत)

(ले०—श्री गुरेन्द्रनाथजी आजाद, विशारद)

प्रायेक्ष। दीनता की आह सुननेवाले। प्रकृति-पटरानी के प्राङ्गण में धसिल नव स्थाप के धन-विमिर लानेवाले ॥ ध्यल पुपल के युग में रणचण्डिका बननेवाले मेरे भगवन् ॥ तुम्हारी सौन्दर्यशाली अलौकिक भाषा देखकर मानव आनविभोर हो उठता है। मेरे हृदयमन्दिर के आराध्य देव। मैं तुम्हारी अर्चना करने के लिए रौख, वन, वनवन, निकुञ्जों में सुगन्धमयी पुष्पों की ब्यारिषों ढूँढ़ता फिरा, किंतु निकुञ्जों से लेकर पर्वतीय श्रेणियों के झाड़ु शस्ताड़ों में भी तुम्हारी पूजन की सायमी प्राप्त नहीं हुई।

सुना है तुम दम्प इक्ष्वा की अनुपम ब्याला हो, मातृक इक्ष्वा का अमिलाष बनकर अतिल विरह के प्राङ्गण में द्रेमकीणा होकर करते हो। पुष्पित अल्ल रिषों, कुसुमपत्नी बनकर मनमोहिनी सुवनमोहिनी

भाषा का आवाहन करते हुए मनमत्त को चलाय मान करते रहते हो।

तुम पुन्दावनविहारी की असल ब्रदा तो पल-कलबती कालिन्दी में, गङ्गा के मुरम्ब गङ्गोत्तरी पथ में दृष्टिगोचर होती है। तुम्हीं इक्ष्वा के मानसरो-वर में सहस्र रत्नवाले पङ्क्तियों को बिला, मानस-मुवन में शुभ ज्योति प्रसार, दारुण दुःख हरने को कठणासागर बन जाते हो, कलियों का प्रभुन अमि-लाष, विश्व का विरतिप्रतिमिर, मानव की नरवर पीड़ा इन सब को परिर्वर्तन करनेवाले कठणाचर, रोमानाच, दीनचक्षु, जनादैन तुम्हीं हो।

विभुवर। प्रकम्पित विरह को सान्त्वना देने के निमित्त महामारी में नौ दुर्गा की अलौकिक महा-शक्ति का वाण तुम्हीं झोकते हो। तुम्हीं नरवर भागी के प्राणों का होकर बीणा हो जाय। तुम्हारी

वह मन्द सुखकान कुसुमकलियों में,^२ विकासोन्मुख
वागों में, रसाल की ढालों पर, मधुवनों की कुञ्जों में,
प्रकृति की हरीतिमा में, विष्व की राग रागितियों में,
प्रेमी भक्त के मानससरोवर में श्वेत पुण्डरीक धनकर
विहँसा करते हो करुणेश !

भावों के निर्मल आकाश में तुम्हीं दीपमालिका
बनकर नेत्रों को चकाचौंध दिया करते हो । तुम्हारी
कला रहस्यदर्शन की कुंजी है, वेदान्त की मूल
प्रतिभा ही है । तुम्ही विश्वशुचि चादिका में
सुगन्धिमय पुष्प धनकर नखर जीवों को अमृतरस
पिलाते रहते हो नाथ !

प्रेम की मनोरम कलियों चुन चुनकर जीवात्मा
तुम्हारे निमित्त हीरकहार गूँथने को प्रस्तुत हैं,
किंतु प्रेमपुष्पवाटिका का पथ तिमिराच्छन्न हो
चुका है । उस में हरि की प्रेरणारूपी दीपशिखा
को प्रज्वलित करने की आवश्यकता है ।

मैं इस दुनियाँ का अवोध बालक हूँ, अनभिज्ञ
भोला पथिक । इस स्वप्न की दुनियाँ में उस अनोखी
चितवन और मन्द सुखकान की मैंने एकटक देखना

ही चाहा था कि वह सूरत अन्तर्धान हो गई । तब
से प्रेमभक्ति का दीवाना बन, मानसनिकुञ्ज में अपने
प्यारे प्रियतम प्राणेश को हीरकहार पहनाने की
महिमा का गायन गा, प्रेमसिन्धु में गोते खाने लगा ।
तुम उस शून्य में तिनके को सहारा बना देदी चित-
वन से मेरी ओर देख रहे थे । मैं ने भी अहंकार
के गुणगान को मिटाकर अपने में मिला, मन में
प्रेमसंवलता का संचार किये हुए भवजाल से देवा
उस पार कर लिया नटवर !

भगवन् ! अब यह जीवात्मा तुम में मिलकर
प्रेम की द्रवित रसधार बन गया ! मैं ने अपना
सर्वस्व अर्पण करने के हेतु ही इस पुष्पाञ्जलि के
रूप में गोपालवल्लभ श्याम को हीरकहार पहनाने
की ठाने थी । भक्तहितकारी ! सुर नर रक्षक !
गोवधेनधारी ! आबो, मेरी पूजन की थाली से
हीरकहार पहनकर विश्वयन्त्रुओं के हृदयस्थल में
गीताधर्म को बिठाकर निर्वाणपथ दिखा दो ! बघ,
तुम्ही कल्याणकारी हो नाथ । इस स्वर्णिम अभिलाष
की परिपूर्णा करना तुम्हारे ही हाथ है ब्रजविहारो !
केशव ॥ जनार्दन ॥

रामनाम जिन चीन्हिया भीना पिंजर तासु ।
नैन न आवै नौदरी अंग न जामै मासु ॥
विरह भुजंगम तन डस्यौ मन्त्र न माने कोय ।
रामवियोगी ना जियै जियै तो बाउर होय ॥
मन सायर मनसा लहरि बूढ़े बहुत अचेत ।
कहहिं कवीर ते बाचि हैं जिन के हृदय विवेक ॥

महादेव की महामहिमा (२)

(ले०—स्वामी श्री दिवानन्दजी योगिराज, वैद्य, पन्वन्तगिरुह)

शंकर बड़े दयालु हैं, अन्य देवताओं की अपेक्षा वे जल्दी और थोड़े ही उपाय से प्रसन्न हो जाते हैं। वे अपने शरीर पर भस्म रमाकर जगत् को यह उपदेश दे रहे हैं—'अन्त में सब को भस्मीभूत हो जाना होगा।' उन की मृगुण्डनाला संसार की अनित्यता का बोधन कर रही है। शंकर की सभी वस्तुएँ शिक्षाप्रद हैं। अभिन्न लोग उन्हें भग्नल बताने हैं, पर उन्हें यह नहीं मालूम कि 'शिव' 'शंकर' जैसे अन्वर्थ नामधारी महापुरुष की कोई भी चीज़ भग्नल-जनक हो कैसे सकती है! अस्तु, अब हम उन की महिमा का वर्णन करते हैं, यथा—

१—लक्ष्मणजी—श्री रामचन्द्रजी ने सीताजी के रक्षार्थ के लिए दानवी सेना लेकर रावण को जीतने का लक्ष्य पर चढ़ाई की। युद्ध में रामचन्द्रजी की जीत हावे देव, मेघनाद निरुम्भित शिला पर यज्ञ-तुष्टान करके दैवाक्ष प्राप्त करने गया। विभीषण से समाचार जानकर रामचन्द्रजी ने लक्ष्मण को मेघनाद के मारने के लिए भेजा और लक्ष्मण वहाँ जाकर वाण चरसाने लगे। उस समय मेघनाद का पात कोई दृष्टाक्ष नहीं था, तब भी वह बाहर आकर लक्ष्मण से लड़ने लगा और अन्त में मारा गया। उपर रामचन्द्र रावण को मारकर लक्ष्मण का राज्य विभीषण को दे अयोध्या में आ गये।

अयोध्या में लक्ष्मण को क्षयरोग हो गया, वे सूखकर काँटा हो गये। भाई लक्ष्मण की यह दशा देखकर रामचन्द्रजी ने शुक्र वसिष्ठ को सब हाल बताकर उन से इस रोग के होने का कारण पूछा।

वसिष्ठजी ने कहा कि लक्ष्मण से कुछ बड़े पाप हो गये हैं, एक तो युद्धक्षेत्र से विलुप्त अलग, दूसरे निरक्ष, तीसरे तपश्चर्या में प्रवृत्त और चौथे ब्राह्मणशरीर मेघनाद को मारनेवाला लक्ष्मण सुखी कैसे रह सकता है? यदि लक्ष्मण किसी पवित्र तीर्थ में जाकर शिवा-र्चन करे तो इस का यह रोग दूर हो सकता है।

यह सुनकर लक्ष्मणजी परमपावनी श्री गङ्गा के तट पर हरिद्वार के उत्तर द्वीपकेश तीर्थ में जाकर तप करने लगे। कुछ दिनों में महादेवजी ने प्रसन्न होकर लक्ष्मणजी को अच्छा कर दिया। आज भी उस 'लक्ष्मणशूला' नामक स्थान का सब दर्शन करते हैं, इसी का नाम 'कुजाश्रम' भी है।

—माया पु० भा०

२—परशुराम ने त्रेतायुग में पिता की आज्ञा से अपनी माता का शिर काट लिया था। इस से प्रसन्न होकर पिता जमदग्नि ने पुत्र परशुराम को वर दिया था कि "तुम को संसार में कोई नहीं जीत सकेगा।"

एक समय कामधेनु गाय की प्राप्ति की लालच से दैत्यवंशीय सहस्राशुन नामक प्रसिद्ध राजा ने परशुराम के पिता का शिर काट लिया। इस से क्रुद्ध हो, परशुराम ने युद्ध में सहस्राशुन के हजार हाथ पैरों काट लिये जैसे क्षत्री कर्मजनों को छिन्न भिन्न कर देता है। वन का मोच इतने पर भी शान्त न हुआ, उन्होंने इक्षीस बार भूमण्डल के समस्त क्षत्रिय राजाओं का विनाश कर दिया।

परशुराम ने इस क्षत्रियवध की पापनिवृत्ति के

लिए अश्वमेध यज्ञ किया और दक्षिणा में सब पृथ्वी कश्यप ऋषि को दान कर दी, पर मनुष्यवध की हत्या दूर न हुई। उन्होंने इस के लिए रैवत पर्वत पर जाकर घोर तपस्या की, इतने पर भी पाप न कटा। इस के बाद महेन्द्र, मलय, सह्य, हिमालय, नर्मदा, यमुना, गङ्गा, चन्द्रभागा, इरावती, वितस्ता, चर्मण्वती, गोमती, गोदावरी, गया, कुण्डलेश्वर, नैमिष, पुष्कर, प्रभास आदि पर्वत, नदी और तीर्थों की यात्रा करने पर भी परशुराम नरहत्या के पाप से मुक्त न हो सके।

इतने पर भी सफलता न मिली तो निराश होकर परशुराम कहने लगे—मैं ने आज तक शरीर को व्यर्थ ही कष्ट दिया, प्रतीत होता है आजकल सभी तीर्थ निःसंस्कार हो गये। ये यह विचार कर ही रहे थे कि इतने में नारदजी वहाँ आ गये और परशुराम के अपनी विफलता सुनाने के बाद बोले कि आप महाकालवन अवन्तिका (वज्रैन) पुरी में जाकर महाकाल शिव की तपस्या करें। अन्त में ऐसा करने पर परशुरामजी का उद्धार हो गया।

३—श्री कृष्णचन्द्र—की आठ पटरानियों में जाम्बवती के कोई पुत्र नहीं था। एक समय उस ने श्री कृष्ण से कहा—जिस प्रकार आप ने शंकरजी की उपासना करके रुक्मिणी के आठ पुत्र उत्पन्न किये उसी प्रकार मेरे लिए भी शिव आराधना कीजिए, जाम्बवती की प्रार्थना सुनकर श्री कृष्णजी हिमालय पर्वत पर उपमन्यु ऋषि से दीक्षा लेकर घोर तपस्या करने लगे। उस तपश्चर्या से प्रसन्न हुए भगवान् शंकर के 'परं ब्रूहि' कहने पर कृष्णजी ने ये वर माँगे—

१—मेरी बुद्धि धर्म में दृढ़ हो। २—रण में सब शत्रुओं का विनाश हो। ३—यज्ञ की वृद्धि हो। ४—भौतिक बल मान हो। ५—योग-

साधन की ओर प्रवृत्ति रहा करे। ६—आप में अटल भक्ति हो। ७—आप का सान्निध्य प्राप्त हो। ८—और एक सहस्र पुत्र उत्पन्न हों।

कृष्णजी ने गौरीसहित शिव का तप किया था, अतः पार्वतीजी ने भी वरदान माँगने को कहा, तब कृष्णजी ने हाथ जोड़कर महामाया से भी ये वर माँगे—

१—मुझे ब्राह्मणों के ऊपर कोप करने का अवसर न प्राप्त हो। २—मेरे ऊपर पूज्य पितरों की प्रसन्नता हो। ३—मेरे अनेक पुत्र पौत्र हों। ४—मुझे सांसारिक भोग सदा प्राप्त होते रहें। ५—मेरा कुल पारस्परिक वैमनस्य से वंचित रहे। ६—माताएँ प्रसन्न रहें। ७—हृदय में सदा शान्ति बनी रहे। ८—और सब पत्नियों के ऊपर मेरा समान स्नेह बना रहे। उक्त वरप्रदान करके गौरीशंकर की युगल मूर्ति अन्तर्धान हो गई। —महा० भा० अनु० पर्व

४—रामचन्द्रजी—के असहाय अवस्था में घर-बार छोड़कर वन में आने और वन पर सीताहरण की विपत्ति पड़ने का इतिहास सब कोई जानता है। सीता को लुब्धा का राजा रावण बलान् घुराकर ले गया। राम ने बानर भालुओं की सैन्य संग्रह करके रावण से युद्ध करने की तैयारी की, किंतु अपना और दायु का बलाबल देखकर चिन्ता में पड़ गये। क्योंकि राम के पास रथ, दुर्ग, कोश, और शिक्षित सेना आदि कोई भी युद्धोपयोगी सामग्री नहीं थी। ऐसी अवस्था में राम ने महादेवजी का विधिपूर्वक पूजन किया तो उन्होंने प्रसन्न होकर रामचन्द्र को राजन-पूज्य प्राप्त करने की आज्ञा दी। यद्यपि रावण भी निवमल्ल था और राम ने भी वन का तप किया था, देवी स्थिति में शंकरजी इस लिए तटस्थ नहीं रह सके कि परमेश्वर सीताहरण के कारण रावण अराधी था। गर्वादाहक्यार्थ रावण दण्डनीय था और

राम अभिनन्दनीय। इस प्रकार राम के न्याय्य पक्ष की रक्षा शिवजी की कृपा से हो सकी। —स्क० पु०

५—नृसिंह—वा विलक्षण स्वरूप भगवान् ने अपने भक्त की रक्षा के लिए धारण किया था। बात यह है कि हिरण्यकशिपु का पुत्र प्रह्लाद हरिमत्क था। उस की भक्ति पिता को बहुत ही अप्रिय लगी, मना करने पर भी जब प्रह्लाद न माना तो उस के पिता ने उसे मार डालने के लिए नाता प्रकार के यत्न किये। उस को ही गर्व वातनाओं से भक्त की रक्षा करने के लिए भगवान् ने नृसिंहरूप धारण करके अतिवाध से उस के पिता को मार डाला, इतने पर भी नृसिंह का क्रोध शान्त न हुआ। देवताओं तथा ऋषि मुनियों ने अनेक स्तुतियों की, पर सफल न हो सके। अन्त में सब ने महादेवजी की स्तुति की तब उन के यत्न से नृसिंह का क्रोध शान्त हुआ। इस के बाद नृसिंहजी अपना व्याघ्रचर्माम्बर महादेवजी को देकर अन्तर्धान हो गये। —कि० पु०

विष्णु भगवान् देवताओं के रक्षक हैं। एक समय दैत्यगण बढ़े बलवान् हो गये। देवताओं के पार युद्ध करने पर भी उन का पराजय नहीं हुआ। अन्त में विष्णु ने भी सारा जोर लगाया, पर दैत्यगण उस से मत्त न हुए। आखिर कैलाश पर्वत पर जाकर विष्णुजी शंकरजी का अर्चन करने लगे। उन्होंने मानसरोवरसंभूत स्वर्णकमलों से शिरजी की निच्य पूजा शुरू की। विष्णुजी का नियम था कि शिव-सहस्रनाम का पाठ करते समय एक नाम का उच्चारण करके महादेवजी पर एक कमल चढ़ाने थे। एक दिन महादेवजी ने उन की भक्ति की परीक्षा लेने के लिए अपनी भाषा से एक हजार कूलों में से एक कूल कम कर दिया। सहस्रनाम समाप्त होने समय जब अन्तिम नाम आया तो एक कमल कम देवकर विष्णु-

जी बहुत चिन्तित हुए। उस समय उन्होंने कहीं से कमल का आगमन न देख मटपट अपना नेत्ररूपी कमल निकालकर शंकरजी की सेवा में अर्पण कर दिया। पुण्ड्रिन्दाचार्य ने इसी घटना का अपने शिरमहिमस्तोत्र में 'हरिते साहस्र कमलवलिम्' श्लोक में वर्णन किया है। इस भक्ति से प्रसन्न होकर महादेवजी ने विष्णु को मुरलीन चक्र का प्रसाद दिया, जिस से वे दैत्यों को दण्ड देने में समर्थ हो सके। —वि० पु० ।

७—कल्कि अवतार—के विषय में कहा गया है कि वे 'यदा यदा हि धर्मस्त' 'परित्राणाय साधूनाम्' इस गीतावचन की सत्य सिद्ध करने के लिए पोर कलिकाल में समलप्राम में अवतीर्ण होंगे और परसु-रामजी से द्रोहा लेकर महादेवजी का शपथ करके उन को कृपा से गहड़ के अशरूप घोड़े पर चढ़कर धर्मसंस्थापन और साधु सज्जनों की रक्षा करेंगे।

इसी प्रकार ब्रह्मा, गणेश, कर्तिकेय प्रभृति देवताओं ने भी जो प्रतिष्ठा, सत्कार तथा नाम पया है, वह सब सन्तुष्टि की कृपा का फल है। मार्कण्डेय आदि ऋषिगण भी शंकरमूर्ति से पारामुक्त हो सके हैं।

पूर्वोक्त जिनने शैव देवों का शरण आया है उन सबने प्रतिमस्थापनपूर्वक भगवान् शंकर की लक्ष्म्या या आराधना की है। महादेवजी का नाम कल्याण-कारी होने के कारण ही वे शिव, शंकर, शम्भु प्रभृति नामों से प्रसिद्ध हैं।

इसी प्रकार भक्तियोगियों ने भी महादेवजी के आराधन से अपनी अपनी मनकामना पूर्ण की हैं। उन में कुछ के झुम चरित्र भी थे जिसे आते हैं।

१—सती—महादेवजी ने एक दिन बात करते समय कान्ते रगवाली होने के कारण पार्वती को 'चाडी' कह दिया। यह बात पार्वती को गुप्त गई। उस ने कहा—अब मैं बर्तौ जाऊँ हूँ जहाँ 'गौरी' बन सकूँगी।

वे विन्ध्याचल पर जाकर महादेवजी का तप करने लगीं तो शंकरजी ने उन्हें गौरी बना दिया।

२—लक्ष्मी—एक समय सूर्य के पुत्र रेवन्त उल्टे-पल्टे घड़े पर चढ़कर वैकुण्ठ में आये। लक्ष्मीजी अथवा का सौन्दर्य देखकर इतनी तन्मय हो गईं कि उन्होंने विष्णुजी का जाना और 'क्या देख रही हो' इस प्रश्न के कई बार पूछने पर भी कुछ उत्तर नहीं दिया। यह व्यवहार विष्णु को अशिष्टता का जेंचा। उन्होंने लक्ष्मी को शाप दे दिया कि 'जा घोड़ी हो जा' तू बहुत चंचल है और चाहे जहाँ रमण करने लगती है। अतः आज से 'चंचला' 'रमा' कहायेगी।

शाप सुनते ही लक्ष्मी सन्न रह गई और बोली 'इस जरा से अपराध पर यद कठोर दण्ड! आप की प्रसन्नता को शत्रुओं पर होनी चाहिए थी। मैं तो आप की दासी हूँ, खी हूँ।' ऐसा कहकर वे रोने लगीं। विष्णु बोले—'जब तेरे एक पुत्र होगा तब तू इस शाप से मुक्त हो जायगी।'।

इस के बाद लक्ष्मीजी ने कालिन्दी और तमसा नदी के तट पर जाकर महादेव का तप किया। इस से प्रसन्न होकर शंकरजी ने विष्णु को भेजा, उन से एक वीर पुत्र उत्पन्न हुआ, जो हृदयवंशीय ध्वजियों का आदि पुरुष हुआ। इस से लक्ष्मी का उद्धार हो गया।

—१० भा०

३—अदिति—अदिति और दिति दस्र की दो कन्या करयप ऋषि की स्त्री थीं। जब अदिति के पुत्र देवता दितिपुत्र दैत्यों से संग्राम में हारकर स्वर्गपद से द्यूत हो गये तो अदिति की तपस्या से प्रसन्न हो महादेवजी ने उस के पुत्र देवताओं को विजयी बना दिया था।

—१० भा०

४—प्रभा—प्रभा सुन्दर न होने के कारण अपने पति सूर्य की उतनी प्रेमास्पद नहीं भी जितनी होनी

चाहिए। उसने भी शंकर की उपासना से अपने पति का प्रेम प्राप्त किया था।

५—रति—कामदेव के भस्म हो जाने पर रति विधवा हो गई, उस ने महादेवजी का तप किया। इस से उस ने 'प्रद्युम्न' के रूप में अपने पति को पाया।

६—सावित्री—इस ने प्रभास क्षेत्र में तप करके महादेवजी से वरदान लिया कि मेरे हाथ से स्थापित शिवलिङ्ग को पूजन करके मनुष्य अपनी मनःकामना पूर्ण करें।

अनसूया—ब्रह्मा के मानसपुत्र अत्रि महर्षि अपनी पतिव्रता पत्नी अनसूया के साथ दक्षिण के कामद्वज में निवास करते थे। एक समय वहाँ सौ वर्षों तक पानी न बरसने से सब वन और जलाराध सूख गये।—फर्ही एक वेद पानी के न प्राप्त होने के कारण अत्रि के शिष्य एक एक करके सब चले गये, उस समय अत्रि ने समाधि लगा रखी थी, उन्हें पता ही नहीं था कि दुनियाँ में कैसा हाहाकार मचा हुआ है। अत्रि के पास केवल अनसूयामात्र रह गई, उस ने भी महादेवजी का घोर तप प्रारम्भ कर दिया। यह महादेवजी की पूजा और पति की सेवा करती थी, उस के उग्र तप के प्रभाव से सब देवता वहाँ आये और चले गये किंतु गङ्गाजी वहाँ ठहर गईं, क्योंकि वे अनसूया के पातिव्रतधर्म से बड़ी प्रसन्न थीं। सैकड़ों वर्ष बाद अत्रि ऋषि की समाधि टूटी तो उन्होंने जल माँगा। किसी तरह गङ्गाजी की सहायता से पत्नी ने ऋषि को जल ला दिया।

अत्रि वन को सूखा व अपने स्थान को शिष्यरहित देखाकर अवर्षण के कारण बड़े विस्मित हुए। तब अनसूया के पातिव्रतधर्मप्रभाव से उस मूर्ति में से जिस का यह पूजन करती थी एक सुन्दर पञ्चमुखी स्वरूप का आविर्भाव हुआ तथा अनसूया की प्रार्थना से उस

अवतीर्ण शिव ने सूत्र जल बरसा दिया। यह अनसूया आश्रम अब भी चित्रकूट के पास में है।

—काशीकर

७—अहल्या—इन्द्र के द्वारा छले जाने के कारण उस के पति गौतम ऋषि ने अहल्या को 'पापण की मूर्ति' हो जाने का शाप दिया। साथ ही इन्द्र को कुप्री हो जाने का शाप दे दिया। इन्द्र मारे लज्जा के मेरु पर्वत की गुफा में जा छिपे। इधर वैद्य लोग देवगणों को सताने लगे। स्वर्ग का राज्य ह्रास से निकल जाने के भय से सब देवताओं ने इन्द्र को खोजना शुरू किया। अन्त में पता लगाने पर इन्द्र ने कहा—मैं अब किसी को अपना मुख नहीं दिया सकता। किंतु देवताओं में गौतम ऋषि को प्रार्थना करके राजी कर लिया, अब ऋषि ने इन्द्र के सदस्य नेत्र कर दिव्ये। उधर विश्वामित्र के कहने से रामचन्द्रजी ने अहल्या का उद्धार करके उस को पहले रूप में परिणत कर दिया और वह गौतम के पास गई। मूर्ति गौतम ने विचार कर यह स्थिति थी कि तीर्थयात्रा, सौ चान्द्रायण व्रत, एक हजार कृच्छ्र चान्द्रायण, दश हजार प्राजापत्य व्रत और पृथ्वी के अड़सठ तीर्थों में स्नान करने से तू शुद्ध हो सकती है।

अहल्या के साथ कुछ करने पर जब वह अन्त में दक्षिणेश्वर महादेव के दर्शन करने गई तो उन के किवाड़ बंद हो गये। अहल्या वहीं तप करने बैठ गई पर घोर तप करने पर भी शिव के दर्शन न हुए। इधर अहल्या का पुत्र शनानन्द बहुत दिन से गई हुई अपनी माता को खोजता हुआ वहाँ पहुँचा और उस से घर चलने को कहा, किंतु उस के न मानने पर वह भी वहीं तप करने लगा। इस के बाद गौतम ने अपने पुत्र को बहुत दिन बीतने पर भी लौटते न देखकर डी, पुत्र दोनों की खोज की, आखिर वहाँ जाकर

पत्नी और पुत्र की घोर तपश्चर्या देखकर प्रसन्न हुए और उन दोनों को घर चलने को कहा। पर दोनों ने विना शिवदर्शन किये जाने का निषेध कर दिया।

शिव गौतम भी उन दोनों को महादेवजी का दर्शन दिलाने के निमित्त तप करने लगे। अन्त में भगवान् शिव ने प्रसन्न हो अहल्या को निष्पाप घोषित किया। यह खान जहाँ ने तीनों तपे थे राजगृह नाम से प्रसिद्ध है।

—नागर कथा

८—काशी की एक ब्राह्मणकन्या—काशी के हरिश्च नामक ब्राह्मण की एक अत्यन्त रूपवती कलावती नामक कन्या थी। वह नित्य 'ज्ञानोद्दीर्घ' (ज्ञानवाणी) का दर्शन करती थी। इस के प्रभाव से वह सब कुछ शिवमय देखने लगी। एक समय उस के आँन में से उस के रूप पर मोहित हो एक विद्याधर उसे छठा ले गया। जाते समय विद्याधर को आकाश में एक राक्षस मिला। दोनों लड़ने लगे और दोनों ही मर गये। कलावती विद्याधर को पति मानकर उस के साथ सती हो गई।

विद्याधर मरकर कर्णाटक का राजा हुआ और विद्यावती मलयदेश में पैदा हुई, दोनों का विवाह हो गया।

एक समय बार्दे चित्रकार काशी का भ्रमण लाया। उसे देखकर विद्यावती बड़ी प्रसन्न हुई, उस में जब ज्ञानवाणी का स्थान आया तो उसे देखकर वह मोहित हो गई। उस ने पति से कहा—मनुष्यजन्म दुर्लभ है इसे पाकर सफल बनाना चाहिए। ससार में रहकर कोई अधिक प्राण के बन्धन से बच नहीं सकता है, जो बचे हैं वे विरल हैं और उन्हें जोर परिश्रम किया है जो सब के लिए साध्य नहीं है। इस लिए हम लोग काशी जाकर वस जाँय तो वहाँ के महापुरुषों के सत्संग और अन्त में तरक मन्त्रो-

पदेशमहिमा से हमारे जैसे असमर्थ संसारियों का सौंपकर काशीवास करने आ गया। इस प्रकार अनायास उद्धार हो सकता है। अपनी पत्नी की आज भी असंख्य नर और नारी श्री शंकरपरायण पारमार्थिक बातें सुनकर वह राजा पुत्र को राज्य होकर जन्म सफल कर रहे हैं।



हो जा अचिन्त्य ! हो जा स्वतन्त्र !!

(२०—कविवर श्री ईशदत्त शास्त्री 'श्रीश' साहित्य-आचार्य, रत्न)

भारत-उपवन में चला आज
 करने रे मानव एक भ्रमण ।
 घासों के मृदुल त्रिलोने ने
 उस के श्रम का कर लिया हरण ॥१॥
 बयारी बयारी में फूलों की
 कलियाँ करती थी आकर्षण ।
 गरीबी में भूम भूम पाटल
 करता था रस-रस रसवर्षण ॥२॥
 पर थी शोभा यह क्षणभङ्गुर
 इस का न किसी को रहा ध्यान ।
 वह दर्शक लौट गया चिर-
 दिन के बाद पुनः आया समान ॥३॥
 था स्वर्ग नरक में बदल गया
 जलकर पीली थी पड़ी घास ।
 अपने अतीत पर अध्रु गिरा
 सोचा, सब का है यहाँ हास ॥४॥
 इस परिवर्तन को देख दृढ़
 दर्शक कर उठा महादृष्टास ।
 फूलों के गुच्छों के बदले
 काँटे लेते थे खड़े साँस ॥५॥

उस का निश्चित है नाश
 कि जो बनता है मिट्टी पानी से ।
 ध्रुव है विनाश का मार्ग थरे !
 वञ्चित हम हुए बवानी से ॥६॥
 उस ने अपने प्रति कहा न वृक्ष में
 धर्मज्ञान और बोधशक्ति ।
 तू है निर्लेज अब भी हिंदू
 ऋषि सा कर जीवन से विरक्ति ॥७॥
 जग के प्रलोभनों में मत फँस
 वे वृक्ष को घसने को तयार ।
 तू कब तक हाथ ! उठायेगा
 रे एक पुष्प सा भ्रमरभार ॥८॥
 अपनेपन का अभिमान व्यर्थ
 अभिमान प्रेम का है बाधक ।
 अभिमान कभी सुख का साधक
 अभिमान कभी दुख-आराधक ॥९॥
 ऐसा प्रयत्न कर आज तोड़
 अभिमान चित्त का एकतन्त्र ।
 हो आज जीव से ब्रह्मरूप
 हो जा अचिन्त्य ! हो जा स्वतन्त्र ॥१०॥

ॐ सूची कवि अनु सुहृन्मद निजामी की 'हिफा-
 यत मोविदे हिंदू कि मारिफतयाप्त' के अनुसार ।

मधुव्रती से

(ले०—कविराज श्री नन्दकिशोरजी जोशी 'किशोर' भिंगाचार्य)

मनपथिक ! देखता है, यही है वह दोषाना जो पीता है अधाह मदक मदिरा । और रहता है मद से मदान्ध ! साये है अपना आग । इसे मान ही कहाँ है ?

इस की प्रियतमा ने न जाने कितनी बार अपना सर्वस्व चटाने की उत्सुकता लिए, अपनी जीवन प्रभाव की शुभ पड़ी में पुलकित प्रेमसलिल से स्नान द्राष्ट पवित्र हो, नयनसलिल से सिंधी हुई हृदय-वाटिका से सुमन घन कर सुगोभित किया है विशुद्ध भावनामन्दिर । और स्नेहसे से पूरित जीवनव्यापि से जगाया है सुन्दर चतुर्भुज लोचक । यह पूजनयात्र सजाये वन, मन, नवपीठन सभी अर्पित करने को इस की प्रवीक्षा में न जाने कितनी बार अगणित घड़ियों से सजी रही, और इस उर्मिधरे आवेग में न जाने कितनी बार द्वार पर हो गई विमुग्ध घरा शायी ! ऐसी देश में कितनी ही बार रूपदली चादर लीच, समेटकर निशा-नवेली अहेली निर्मोही की भौति खुप चार चली गई और कितनी ही बार उस की अज्ञानावस्था ही में प्राची ने अपने लालिमायुक्त स्नेहा-बल से आवृत कर रख ली उस की रक्षा । और इसी बीच पधारे भागवान् आस्कर ! जब जब उसे होश आता, तब तब रह जाती अवाह ! अब देखती कि मुक्त गया दीपक और कुहला गये सुमन । और हृन्ध मन्दिर के पूजनीय देवता द्वार से कुछ दूर तालिया के नरकसंगम के समीप अचेत अवस्था में मद् से मत बाडे न जाने किस शक्ति सुख की काल्पनिक यात्रा में हैं खचलीन ! तब वह उठती है और व्यबिध वेदना

मुक्त मर्माहत तन की रही सही भक्ति सचित कर जर्जरित हृदय का सँभालती हुई क्षीण स्वर में बोलती—
छटा । मेरे देवता ॥ उठो ॥ फिर से सजाऊँगी सुन्दर साज । और कहूँगी पूजा अर्चना ॥

मनपथिक ! देखा इस प्रेमिका का प्रेम और उस मदान्ध का दुर्भाग्य ! दुष्परिणाम ! तथा स्वर्गीय सुधा घारा के प्रति करने लायक अनुराग का दुरुपयोग ! मूलता है क्यों ?

अरे ! इसी तरह यदि हरिश्चरणवभलप्रभूत मकरन्दमन्दाकिनी के वीर्यपूर्ण पानीय का करे पान, अथवा सौम्योदी धनु स आराधनापूर्वक हठ, गायुर्धर्मिभित, नौद्वारप्रबल नवनीत का वृन्दासमेत वृन्दावनविहारी को अपरोपित कर, स सके उस का अमृतमय आश्वाद, वा निश्चय ही ये दोनों सुमधुर सुधा की भौति दे सकते हैं, शान्ति, पुष्टि और सुष्टि । तब वह शरावी अपना विर सचित करमल बढ़ाकर क्या न पा आयेगा बुद्धि, सृष्टि, कान्ति और प्रीति ?

मनपथिक ! समझ । यदि इस नियमभरी साधना की सना जाय भादकता । हा वह बन सकता है दानव से मानव, दैत्य से आदित्य । फिर दे सकता है अपनी प्रियतमा का प्रेम का यथार्थ प्रतिदान । तब व दम्पती स सकते हैं वास्तविक अलौकिक आनन्द ।

इसी लिए ता बार बार कहना है कि शराबी ! समझ ले अपने कर्म की अवागमविज्ञता । अब भी कर ले कुछ सुधामयी दिव्य रीति के द्वारा अपन हृदय का परिवर्तन और प्राप्त कर वास्तविक सुख । शारवत शान्ति ॥ अतुल्यम कल्याण ॥



सुख की सीमांसा

(ले०—ज्ञानतपस्वी श्री गीतानन्दजी शर्मा)

सुख का विषय प्राणियों के जीवनसंग्राम से वृत्तान्त घनिष्ठ संपर्क रखता है कि इस की चर्चा या वाञ्छा ज्ञान या अनजान में प्रतिक्षण सब कोई करते रहते हैं। कहा गया है कि 'प्रयोजनमनुद्दिश्य न मन्दोऽपि प्रवर्तते।' दुनियाँ में रहनेवाले प्राणियों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है: एक मन्द या मूढ़ दूसरा बुद्धिमान्। जब मूढ़ों की ये मतलब प्रवृत्ति नहीं होती तो अहमन्दों का कहना ही क्या है। यहाँ विचार्य यह है कि इन दोनों का प्रेरक अभिप्राय क्या है? यह भी स्पष्ट भासित है कि यह तो एक ही है और उस का नाम ये सुख रखते हैं। यह बात अलग है कि नाम एक होने पर भी सब भूतों के लिए नामी विभिन्न प्रकार के हों। अर्थात् मय की दृष्टि में सुख एक किस्म का नहीं हो सकता। मोटे हिसाब से माध्यमतानुसार सुख के तीन प्रकार हैं—

यच्चदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्।

तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिमसादजम् ॥

—गी० १८।३७

यह सुख प्रथम साधन के आरम्भकाल में यद्यपि विष के समान शत होता है, पर परिणाम में अमृत के तुल्य है इस लिए जो भगवत्संयन्धी बुद्धिमसाद से अवन्न सुख है यह सात्त्विक कहा गया है।

विषयेन्द्रियसंयोगाद्यच्चदग्रेऽमृतोपमम्।

परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसंस्मृतम् ॥

—गी० १८।३८

जो सुख विषय और इन्द्रियों के संयोग से हो वह भोगकाल में तो अमृत के सदृश ज्ञात होता है पर परिणाम में विष के तुल्य है, यह सुख राजस कहा गया है।

यदग्रे चानुक्क्ये च सुखं मोहनमात्मनः।

निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम् ॥

—गी० १८।३९

जो सुख भोगकाल और परिणाम में आत्मा को मोहनेवाला हो वह निद्रा, आलस्य और प्रमाद से उत्पन्न होनेवाला सुख तामस कहा गया है।

इन तीनों सुखों में से राजस और तामस के ही अधिकारी अधिकांश होते हैं। प्रथम श्रेणि का सुख कोई कोई भाग्यवान् ही अनुसंधान करते हैं। और यही सुख तो गीता का लक्ष्यभूत उपदेश है, भगवान् ने अजुन का इसी सुख के लिए स्पृहा करने को कहा है। इस का पद इतना ऊँचा है कि—

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद् यतति सिद्धये।

यततामपि सिद्धानां कश्चिन् मां वेत्ति तत्ततः ॥

हजारों मनुष्यों में कोई ही मेरी प्राप्ति के लिए यत्न करता है, और ऐसे अनेक यत्नशील सिद्धों में से किसी बिरले को ही मेरा तत्त्वज्ञान होता है। इस श्लोक के कथनानुसार उस प्रथम श्रेणि के सुख का अधिकारी दुनियाँ में कोई नहीं है, ऐसा कहने में कुछ अन्याय न होगा। क्योंकि सात्त्विक सुख का प्रधान लक्ष्य और योग का प्रधान लक्ष्य एक समान है। जैसे—

यथा दीपो निवातस्यो नेहते सोपमा स्मृता ।

योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः ॥

—गी० ६।१२

निर्वात स्थान में जैसे दीप की ज्योति स्थिर रहती है, वही उपमा सयत चित्तवाले आत्मयोगी को दी गई है।

यथोपरमते चित्त निरुद्धं योगसेवया ।

यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यमात्यनि तुष्यति ॥

मुखमात्यन्तिकं यत्तद् बुद्धिप्राप्तमनोन्द्रियम् ।

वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्नन्ति तत्त्वतः ॥

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिक ततः ।

यस्मिन्स्थितो न दुःखेन पुरुषाणि विचान्यते ॥

तं विद्याद् दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम् ।

स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा ॥

—गी० ६।१०, ११

‘इत अवस्था में योगाभ्यास से निरुद्ध किया हुआ चित्त उपराम पाता है, आत्मा से ही आत्मा का दर्शन कर के योगी आत्मा में ही समुद्र रहता है। बुद्धि से प्राय और इन्द्रियों से अंगोबर, ऐसे अत्यन्त मुरा का अनुभव होता है। इस स्थिति में पुरुष दृक्चयुत नहीं होता और इन से बचकर कोई लाभ नहीं मम मला एवं जारी दुःख में भी इस स्थिति से भ्रष्ट नहीं होता। दुःख के साथ एक ही समय में संयोग और वियोग होना यही योग कहलाता है, गेन्द्रदित तथा एव मन से ऐसा योगाभ्यास बढ़ाना चाहिए।’ यहाँ पर जो परमसुख है वह योग के साथ मिश्रित ही कहा गया है। उस का स्वरूप यह है कि अपने बस में ही हुई राग द्वेषद्वय इन्द्रिया से वियोगभोग करने पर चित्त में जो प्रसन्नता होती है उस से सब

दुःखों का अन्त हो जाता है। और इस प्रसन्नता। ही बुद्धि की स्थिरता या चित्तवृत्तिनिरोधरूप योग सिद्धि का लाभ समझना चाहिए।

अब देखना चाहिए कि जिस सुख के लिए चतुर्विध से लोग अनुभावन कर रहे हैं वह उन्हें यह मिल रहा है या नहीं और मिलता भी है तो किस कोटि का? जिस के पीछे सब लोग व्यापृत हैं उस ससार में तो सुख का लेश भी नहीं, क्योंकि उस के लिए भगवान् का कहना है—

मादुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमश्नाभूतम् ।

नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः ॥

—गी० ८।१५

सुख प्राप्त करके परम सिद्धि को पाये हुए महात्मा लोग अग्निय और दुःखों से पूर्ण इस संसार में पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त होते। अतएव—

अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम् ।

अनित्य और सुखविहीन मर्त्यलोका में आकर भगवान् का भजन करने में ही सार है। इस सब की विवेचना करने से मान्य होना है कि यहाँ कुछ भी सुख नहीं। सुख की यही तो परिभाषा है कि अनुकूलवैदीय सुखम्’ मन में चित्त को पाने की वरावर इच्छा रहे वह सुख है। पर इन सामारिक वस्तुओं में—

परिणामनापसस्कारदुःखैर्गुणवृत्ति-

विरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः ।

—शा० ६० १।१५

विचारशील को सर्वत्र परिणाम ताप, स्कार-दुःख और गुणों के प्रतिविरोध से दुःख ही दुःख नजर आता है। इस का प्रतियोगी सुख यहाँ हो नहीं सकता, ‘नाम्ये सुखमस्मि’ अपूर्ण में सुख कहाँ?

फिर भी जो इस असुर में सुखबुद्धि रखते हैं उन के मननार्थ योगवासिष्ठ का कुछ अंग यहाँ उद्धृत किया जाता है—

यह संसार का प्रवाह क्या सुखदायक है ? यहाँ तो प्राणी मरने के लिए उत्पन्न होते और उत्पन्न होने के लिए ही मरते हैं। संसार की सभी चेष्टाएँ चञ्चल हैं और विभवकाल में प्राप्त जितने विषयभोग हैं वे आपत्ति के मूल और पापजनक हैं। यहाँ की सब संपत्तियाँ आपत्तिरूप हैं, सुख केवल दुःख के लिए है और जीवन मरण के लिए है। कोई भी भोग तब तक सुखदायी, रमणीय मालूम पड़ते हैं जब तक उन पर विचार इष्टि नहीं पड़ती। सभी भोग भयंकर परिणामवाले, शीघ्र ही विकारयुक्त, क्षणमङ्गुर, संसार में फँसानेवाले और भर्षाशुक्र में ही रमणीय मालूम पड़नेवाले हैं। जैसे मिश्राला का अन्त कालिमा में होता है वैसे ही पर सुखाशाओं का अन्त दुःखमय है। जितने वर्तमान पदार्थ हैं उन सब के शिर पर नाश अवश्य

स्थित है, सब रमणीयों के शिर पर अरम्यता और सुखों के ऊपर दुःख स्थित है। भोग के विषय विष [के समान दुःखदायक और सभी रस सरस पुरुषों में भी विरसता उत्पन्न करनेवाले हैं, फिर इन में रमण करता हुआ कौन नष्ट नहीं होगा ? विषयभोग जहरीले साँप के कणों जैसे हैं, स्पर्शमात्र से ही काटकर देरते देरते अदृश्य हो जाते हैं। यह संसार संपूर्ण दुःखों का उद्भव स्थान है इस में रहते हुए सुख कैसे प्राप्त हो सकता है ?

अत्यन्त रोद की बात है कि मूढ बुद्धिवाले लोग झूठे सुख से इस प्रकार खिंचे जा रहे हैं जैसे कि मृगतृष्णा के जल से मूढ मृग वन में दूर खिंचे चले जाते हैं। यद्यपि इन को किसी ने चेबा नहीं तथापि इस प्रकार स्थित है जैसे क्रीत दास हो। बड़े अफसोस की बात है कि सब को मायामय जानकर भी लोग सुखाभास के पीछे विमूढ हो रहे हैं।

ॐ तत्सत्

माया

(१०—कुमारी श्री सरस्वती देवी श्रीवास्तव्य)

सारी दुनियाँ में बलकन ;
बलभती दिव्य कला से !
दे मुक्ति भुक्ति की भाषा ;
सौन्दर्य की भरी बजा से ॥ १ ॥
नखर के शुवि प्राङ्गन में ;
कीर्ति कीर्ति दर्शाती !
मानस की मञ्जु बली से ;
माया मुखवाती भाती ॥ २ ॥
भुम तो मनोः शुगशाक ;
द्विप गर्भ सुपाकर में हो !
अद्विज भगवन् छहरी में ;
बन कर भगवन् निजती हो ॥ ३ ॥

सपनों की सारी दुनियाँ ;
भुम बल पुषल फैलाती !
बामद बानन के सर में ;
भुम भोल कमलिनी गार्ती ॥ ४ ॥
ममता माया फैलाकर ;
सुपभा सौन्दर्य दिखाती !
भुम राग रागिनी काया ;
अम्बर तल में रिललार्ती ॥ ५ ॥
माया मरीचिका रानी ;
कर दो मणि की बजियाली !
जीवन की काखी यती ;
बीते, हो स्वर्णिम शाकी ॥ ६ ॥

पण्डित और मूर्ख

(७०—स्वामी श्री रामानन्दजी सन्यासी, दर्शनशास्त्री, व्याकरणाचार्य)

बहुत से लोगों की आदत दूसरों की अनादरक समालोचना करने की हो जाती है। वे आप कुछ नहीं करते, पर करनेवालों के काम में पस लगाया करते हैं। उन की कैची जैसी जवान दूसरों के कीर्तिपट को कतरने से नहीं छूकती, वे खुद वो आलस्य का निकमा जीवन व्यतीत करते ही हैं, किंतु दूसरों को भी हतोत्साह करना उन का पर्यसा हो जाता है। वे यह खयाल करना भूल जाते हैं कि बाद विवाद से अपना काम नहीं बनता जितना उसे क्रियात्मक रूप देने से होता है। 'बादे घादे जायते तत्त्वचोष' यह बात ठीक है, किंतु इस से यह 'बादे घादे जायते कार्यसिद्धि' ऐसा कदापि नहीं हो सकता।

सारा ससार पण्डित और मूर्ख इन दो श्रेणियों में विभक्त है। कौन पण्डित है तथा कौन मूर्ख है? इसका निर्वाचन करना बहुत कठिन है पर यत्ना लगाने पर यह बात असम्भव नहीं है। जो लोग अपने आप को पण्डित मानते हैं या जिन्हें दुर्निर्गदों ने पण्डित करार दे रखा है, उन की निम्नोदासी समाज के प्रति तथा उनके प्रति जो अनभिज्ञ हैं, मूर्ख हैं बहुत अधिक हो जाती है। शण्डितों को उचिन् है कि वे अनभिज्ञों को, अनजानों को, मूर्खों को उपदेश ही भर न देते रहें, बल्कि उन से काम भी कराते रहें। अगर कोई बुद्धिमान आशानियों के साथ किसी विषय पर बाद विचार करे तो उसे अपनी इज्जत की आदा त्याग देनी चाहिए। यदि कोई मूर्ख यह समझ से कि मैंने किसी एक विद्वान को परास्त कर दिया है तो इस में

आश्चर्य न करना चाहिए। क्योंकि मामूली पत्थर भी तो बहुमूल्य मोती को तोड़ सकता है। बहुत कम कीमत की छोटे की हथौड़ी सोने की पीट सकती है। जब कौवे काँव काँव करने लगते हैं तो कोयल गाना छोड़ देती है और जिस समय जनवा हो हल्ला मचाती हुई अपनी मूर्खता का परिचय देने पर उतार होती है तो विद्वान् व्याकृता अपनी उपदेशपूर्ण बहना बंद कर देता है। अतः पण्डितजन, मूर्खों से विवाद न करें, प्रत्युत उन्हें कार्य में लगाते रहें। भाव यह है कि मूर्खों के अन्याय तथा अशिष्टापूर्ण व्यवहार से बुद्धिमान पुरुष क्षुब्ध और शोकात् नर्तक हुआ करते। अगर एक निरंकुश पत्थर बहुमूल्य सोने के प्याले को फोड़ धोड़ दे तो पत्थर बहुमूल्य और सुवर्ण कम कीमती न हो जायगा। क्योंकि—

इममुरगरपैः प्रयान्ति मृदा

घनरहिता विपुलाः प्रयान्ति पद्मभ्याम्।

गिरिशिखरगताऽपि काकपद्मिः

दुखिनगर्तैर्न समत्वयेति हंसैः ॥

जगत् में सब जगह यह देखने में आता है कि मूढ़ लोग हाथी, घोड़ों और रथों आदि पर चढ़कर बड़े ठाट बाट के साथ सँभल तथा अकड़ कर चलते हैं। किंतु पण्डित लोग बिबेन होने के कारण पैदल चलते दिखाई देते हैं। इस से किसी को यह गलत धारणा न कर लेनी चाहिए कि 'मूर्ख भेद्य और पण्डित कतिप होते हैं।' क्या पहाड़ के ऊपर सच से ऊँचे बैठे हुए कौवे उन हत्तों से उत्तम सम्झे जा

सकते हैं जो नदी किनारे के नीचे भाग में बालू पर बैठे हुए हों ? कदापि नहीं। बहुत से मूर्ख ऊँचे आसन पर बैठकर अपने आप को सब से बड़ा मान लेते हैं। किंतु वे यह बात भूल न जायें कि उन से भी ऊँचा वह कौवा या बगुला है जो बाँस के अग्र भाग में उन से भी ऊँचा बैठा है। यदि उठने बैठने में ही श्रेष्ठता की कसौटी से काम लिया जाता हो तो किसी भी विश्वविद्यालय के धुरंधर विद्वान् से विन्ध्याचल के पहाड़ पर रहनेवाला भील उत्तम गिना जाना चाहिए। क्योंकि वह बहुत ऊँचे पर बैठा है।

बहुत से मनुष्य हैं तो मूर्ख पर धनी हैं, वे धन-पात्र होकर दुनियावी देशों आराम की जिंदगी व्यतीत कर रहे हैं। जैसे हमारे देश के बहुत से सेठ, साहू-कार, राजकुमार, जमींदार और महंत आदि हैं। इन के लिए उन्नत होने का बहुत ही स्वर्णसुयोग हाथ लगा हुआ है। इन के पास उन्नति के सब साधन सुलभ हैं। ये चाहें तो स्वर्ग में सीढ़ी लगा दें, चन्द्रमा का अमृत सर्वसाधारण में बाँट दें। पर ये ऐसा करते नहीं अपने भोग विलास में इतने निमग्न हैं कि इन्हें और कुछ करने का अवकाश ही नहीं मिलता। अतएव इन के लिए काला बख्तर भैंस चरावर है, पांथी पत्थर की पटिया जैसी भारी है, पाठशाला ऊपर खेत के समान है, पण्डित पागलों जैसे हैं और कागज पाले की सफेदी की सतह के समान है। फिर भी—

निरक्षर वीक्ष्य महाभयान्त्रं

विधानवधा विदुषा न हेषा ।

रत्नावर्तसाः कुलटाः समीक्ष्य

किमार्यनार्यः पतिता भवन्ति ॥

मूर्ख लोगों को धनवान् समझकर समझदारों को विद्यालुगन न त्याग देना चाहिए। क्या नाना रत्न-जडित आभूषणों को धारण करनेवाली कुलटा को

देखकर आर्य्य ललना पतित हो जाती हैं ? कदापि नहीं। मूर्ख नट के ढोल के समान हैं, जो शोर तो बहुत करता है किंतु भीतर से पोला है। पण्डितजन इस की शीमी की तरह हैं, वहाँ हल्ला गुल्ला तो कुछ नहीं, पर डाट खोल देने से गुण प्रकट होने लगता है। कहाँ तक कहें अन्धों के घर में सुन्दर कन्या और नास्तिकों के समुदाय में वेद की जो गति होती है वही हालत विद्वान् की मूर्खों में है।

बड़े बड़े उच्च कोटि के महापुरुषों ने मूर्खों में अपनी जान तक दे डाली, एक कापालिक श्री शंकराचार्य का शिरच्छेदन करने पर उतारु हो गया, गौतम बुद्ध पर लोगों ने ढेले फेंके, स्वामी दयानन्द को जहर का प्याला पीना पड़ा, हजरत मुहम्मद को अपने कार्यक्षेत्र से भागना पड़ा और ईसामसीह को शूलीस्वीकार करनी पड़ी थी। और भी बहुत से उपकारी, सुधारक, संतों के ऊपर बजाय फूलों के मूर्खों ने अनेक प्रकार के गजब ढाये थे।

चाहे जो हो, संतों को उपकार करने से मुँह न मोड़ना चाहिए। जब कि मूर्खे उपकार करने के लिए हैं तो विद्वान् संतों को उपकार करने से कभी पीछे कदम न रखना चाहिए। फाँटे उपवन में आने से मना करते हैं, किंतु पुष्प लोगों को अपने पास आने के लिए आकर्षित करते हैं। यह निश्चय है कि मूर्खता संसार से कभी भी विलुप्त न मिटाई जा सके, किंतु उस का विप्रेल प्रभाव अवश्य कम किया जा सकता है, जो बहुत काल तक स्थायी रह सकता है। पानी नित्य नहीं बरसता, पर उस की तरी का असर अगली बरसात तक काम देता है। भोजन हरदम नहीं खाया जाता, पर उस की कृति बहुत देर तक पचनर बनी रहती है। इसी तरह महात्मा सदा नहीं होते। सैकड़ों वर्षों के बाद किसी विगिड

व्यक्ति का आविर्भाव हो जाता है, वे विशेष विभूतियाँ अपना काम करके चली जाती हैं, इस लिए उन के सदुपदेश सदैव नहीं सुनने को प्राप्त होते। पर वे श्रवण किये हुए वचन उस समय भी काम देते हैं, जब कि उन का सुनना बंद हो जाता है। जगन् में गूर्प पड़त हैं और विद्वान कम, पर इस से कोई हानि नहीं है। दुनियाँ में मिट्टी, कंकड़ बहुत हैं और अन्न, फल, फूल प्रभृति कम हैं, फिर भी कोई काम रुकता नहीं।

एक संत विद्या की प्रशंसा में कहा करते थे कि विद्या यही चीज है 'विद्याविडो न पशु' कहा गया है, इस के बिना मनुष्य अधा बताया गया है। कोई इस को विवाद का साधन बना लेते हैं, पर वस्तुतः यह शान का कारण। विद्या का सब से पहला काम मनुष्यत्व संपादन करना है, फिर बाद में इस से धन कमाना आदि कोई भी काम ले लिया जाय। इसे केवल धन प्राप्त करने मात्र का साधन बनाने व भानेवाले, मोती के बड़े दाक शरीरने जैसी भूल करते हैं। जिस में धन एकत्र करने के लिए अपनी नामवरी और विद्या खर्च कर दी, वह उस के समान है, जिस ने खलिहान बनाया और उसे जला खाड़ा।

नैमिषारण्य में हम ने एक महात्मा से यह सुना— जो विद्वान् संयमी नहीं है वह अथा मसालची है, वह दूसरों को तो राह दिखाता है, किंतु खुद आप अपने को मार्ग नहीं मिलता। जिस ने अथवा प्रमाद, अज्ञान में नष्ट कर दी, वह उस के तुल्य है जिस ने रुपया दो खर्च कर डाला, पर खरीदी कोई चीज नहीं। विद्या की शोभा सदाचार के साथ है, जो विद्वान् सदाचारी होते हैं उन का मुकाबला देवता भी नहीं कर सकते। दुराचारी के पास जाकर विद्या, ऐसे दूषित हो जाती है जैसे कुत्ते की खाल में भरा गन्नाजल। मणि इत्तम

पदार्थ है, पर यदि वह सोंप के फण पर स्थित हो तो किसी काम की नहीं।

एक समय सिद्धाश्रम में कोई शम्बासी महात्मा कह रहे थे कि हम लोग बहुत से पोथी पत्रे बाँधने या लिखनेवाले को पण्डित नहीं मान सकते, जैसा दुनियाँदार माना करते हैं। हमारे मत से—

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसङ्कुल्पवज्रिताः ।
ज्ञानान्निर्दग्धकर्मणं तमाहुः पण्डितं ध्रुवा ॥
परिच्छेदो हि पाण्डित्यं यदापन्ना विपत्तयः ।
अपरिच्छेदकर्तृणां विपदः स्युः पदे पदे ॥
मातृवत् परदारेषु परद्वेषेषु लोष्ठवत् ।
आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः ॥

ज्ञानी पुरुष उसी को पण्डित कहते हैं कि— जिस के सभी समारम्भ अर्थात् उद्योग फल की इच्छा से विरहित होते हैं और जिस के कर्म ज्ञानाग्नि से भस्म हो जाते हैं। अर्थात् जो फल की इच्छा छोड़ कर कर्म करे वही पण्डित है, जो विचार से काम नहीं लेने उन की विपत्ति का कोई ठिकाना नहीं, अतः जो खूब सोच समझकर काम करता है वही पण्डित है। जो दूसरे की लो को भाना के समान, पराये धन को ढेले की तरह दया सब जीवों को अपनी आत्मा के बराबर मानता है वह पण्डित है।

पण्डित लोग राजा महाराजाओं की मित्रता का भरोसा नहीं रखते और न बालकों की मोठी मोठी बातों पर ही विश्वास करते हैं, क्योंकि राजाओं की दोस्ती मरने से संह पर टूट जाता करती है, और बालकों की बातें रात भर में बदल जाती हैं। जो पण्डित ऐसा करते हैं वे विद्या को भार बनाने हैं, जब कि विद्या से काम न लिया जाय तो योग ही है। विद्या एक दीपक है जो मनुष्य की गंधर्व में गिरने से

वचा लेता है तथा चट्टान से सिर टकराने नहीं देता। एक समय मनुष्य, राक्षस और देवता ये तीनों मिलकर ब्रह्मा के पास गये और उपदेश देने की प्रार्थना करने लगे, ब्रह्माजी ने तीनों को 'दृ' इस अक्षर का मन्त्रोपदेश दिया। यह श्रवण करके मनुष्य ने 'द' का अर्थ 'दान' लगाया, राक्षसों ने 'द' का प्रयोजन 'दया' समझा और देवताओं ने 'दृ' का अभिप्राय 'दमन' इन्द्रियनिग्रह माना। इस 'दत्त, दान्यत, दयध्वम्' के उपदेश को तीनों ने सिद्धान्तरूप से अङ्गीकार कर लिया। क्योंकि ब्रह्माजी विद्वान् थे, अतः उन्होंने तीनों का उच्चारण एक इशारे से तथा संक्षेप से कर दिया। कहा भी है—

यं तपो ज्ञानमहिंसा च

विद्वत्पणामं च सुशीलता च।

ज्ञानि यो धारयते स विद्वान्-

न केवलं यः पठते स विद्वान् ॥

जो सत्य, तप, ज्ञान, अहिंसा, विद्वानों को नमन और सुशीलता को धारण करता है वह पण्डित है केवल पोथी पढ़नेवाला ही पण्डित नहीं कहाता।

इसी प्रकार—

मूर्खचिन्तानि पठित्ति गर्वो दुर्वचनं मुखे।

विरोधी विपवादी च कृत्याकृत्यं न मन्यते ॥

जो गर्व, दुर्वचन, विरोध, कटुभाषण, कृत्याकृत्य-विचार से रहित होता है उसे मूर्ख समझना चाहिए।

किसी कवि ने बहुत ही ठीक कहा है—

मूर्खत्वं मूलमं भजस्व कुमते

मूर्खस्य चाष्टौ गुणाः।

निश्चिन्तो बहुभोजनोऽतिमुत्तरो

रात्रिन्दिवा स्वभाक् ॥

कार्यकार्यविचारणान्वधिरौ

मानापमाने समः।

प्रायेणाऽऽमपवर्जितो दृढवपुः-

मूर्खः सुखं जीवति ॥

हे कुबुद्धि जन ! मूर्ख बना रह, क्योंकि इस की प्राप्ति में कोई कठिनाता नहीं। मूर्खता में आठ गुण रहते हैं एक तो निश्चिन्तता, दूसरे खूब खाने की आदत, तीसरे बकबादी होना, चौथा दिन रात सोना, पाँचवें क्या करना उचित है, क्या अनुचित इस के विचार में अंधे और बहिरों की तरह शून्य रहना, छठे मान और अपमान दोनों में बराबर, सातवें प्रायः रोग-रहित रहना और आठवें मोटा हाजा बने रहना।

यहाँ तक पण्डित और मूर्ख के विषय में विचार हुआ। इस कथन को कोई घुमा न माने, घुमा आदमी घुमा नहीं है, किंतु उस की घुमाई मात्र हमें घुरी प्रतीत होती है। जो व्यक्ति जिम्मेदारी के स्थान को रोककर अपनी मूर्खता से वाज नहीं आता वह वह शिकायत के योग्य है ही। जो सेठ होकर भजदूतों को अपना कुटुम्बी नहीं समझता, भूस्वामी होकर कृषकों के साथ आत्मीयता का व्यवहार करना नहीं चाहता, हमारे मन से वह भी मूर्ख है। जो महंतजैसे महत्त्व के पद को तो प्राप्त हो गया, पर किसी को कुछ नहीं समझा सकता, मन्दिर के पुजारी पद को धियाकर जो पूजा अर्चा के साधारण मन्त्र और विधान से एकदम शून्य है, वह अवश्य मूर्ख है। किसी व्यक्ति का धर्मगुरु के स्थान को इस लिए दखल किये रखना कि वह भूतपूर्व धर्माचार्य का शिष्य या पुत्र है, तो यह आर्य्य जाति के लिए सब से बड़े दुर्भाग्य की घात है। जिस आसन से बड़ी बड़ी शक्तियों के समाधान की आशा हो, जो गरिमा

सदाचार की शिक्षा देने के लिए स्थापित हों। उन्हें यदि मूर्ख अधिष्ठित कर लेता कितने वष्ट की बात है ?

हमें मालूम है कि हमारी इन सच्ची बातों का शक्तिशाली मूर्ख और उन का पोष्य वर्ग आक्षेप करार देगे। वे हमें पण्डितार्थ का गर्व करनेवाला अभिमानी बता सकते हैं। कोई चहे जो कुछ भी क्यों न बहे, हम तो अपना कर्तव्य पालन करना चाहते हैं। हमारा उपदेशरूपी धन्त्रमा अपनी धन्त्रिका सर्वत्र फैलावेगा ही, कोई भी जगद् बर्षा नहीं रद्द सकती, इस लिए चातक की प्रसन्नता और चारों के राय की हमें जरा भी परवाह नहीं। भले बुरे, सत्य असत्य, पाप पुण्य, सुख दुःख आदि का सदैव साथ रहना सासारिक नियति है। अतएव विधाता की सृष्टि में रहकर हम प्रसन्नता और राय को कदापि अलग अलग नहीं कर सकते। जहाँ एक है वहाँ दूसरा रहेगा ही, बातों की ओर ध्यान देते हुए अपना काम करते

ही रहना होगा। हमारे कथन से गर्मोदित सजनों को रष्ट न होना चाहिए, क्योंकि हम उन की साहिबी हथियाने की गरज से तीव्र समालोचना में प्रवृत्त नहीं हुए हैं। जो अपने स्वरूप के अनुरूप और अपनी पद प्राप्ति के अनुरूप अपना कर्तव्य पालन करने में प्रवृत्त है उस का कोई बुरा नहीं कर सकता।

संन्यासी धर्मप्रधान है, उसे धर्म के विषय में विचार और प्रचार करने का अधिकार आचार्यवरण श्री शङ्कर भगवत्स से प्राप्त है। वैदिक काल के संन्यासी भले ही 'जड्वन् मूकवन् चरेत्' हों। पर श्री शङ्कराचार्य के संन्यासी योग और उपदेश के लिए ही अवतारित हुए हैं। अत वे किसी स्थान के अधिपति का दुराचारी और मूर्ख देखना नहीं सहन कर सकते, या तो वे अपनी स्थिति सुधारे जो कि यत्न से सम्भव है। अन्यथा उस पद या स्थान का खाली कर दें जो इन की अयोग्यता से अनुपयोगी हो रहा है।

गीतागौरव-गमस्ति

(आगामी विशेषाङ्क—गीतागौरवाद, पाँचव भाग के एक सङ्गम की मल्लक)

नियतस्य तु संन्यासः

कर्मणो नोपपद्यते ।

मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः

परिकीर्तितः ॥ ७ ॥

नियत कर्म का त्याग नहीं बन सकता है, अविवेक से उस को छोड़ देना तामस त्याग कहा गया है।

गी० गी०—हे अर्जुन, कर्म करते रहना मनुष्य-स्वभाव का लक्षण माना जाता है, इस लिए निषिद्ध कर्मों

से बचने के लिए शास्त्रों ने जिन यज्ञ, तप आदि शुभ कर्मों का मनुष्यहित की दृष्टि से निश्चित कर दिया है, उन नित्य नैमित्तिक कर्मों का त्याग अव्यवहारिक और अहितकर है। जो व्यक्ति उन कर्मों से होने-वाले अन्तःकरणशुद्धिरूप आत्महित और लोक-पकाररूप परहित का अविचारनश्व न समझकर कर्म त्याग कर देते हैं उन का यज्ञ तमोगुणी त्याग है।

क० प्र०—विष सज्जनों, जिस में विनाशित के विष विरतार चेता बनी रहे उस का काम शरीर है—'वैश्यापत्य शरीरत्वम्' यह तात्पर्य का सिद्धान्त है। अतएव कोई शरीरवासी कितना ही निष्कर्म, बने किसी न किसी कर्म से

घस में चेष्टा होती ही रहेगी जब तक कि देह का संस्पर्श है। वह चेष्टा सत्कार्योन्मुखी होती रहे इस के लिए ऋषि मुनियों ने नित्य नैमित्तिक यज्ञ, दान, तप कर्मों का विधान कर दिया है साथ ही इन के अङ्गभूत पठन पाठन, प्रणालन, दृष्टमन, हवि, वाणिज्य और इन कामों में सहायता आदि के कर्म स्वभाव और परिस्थिति की अपेक्षा से नियत कर दिये हैं। इन कर्मों का स्वरूप से त्याग करनेवाला मनुष्य अपने कर्तव्य का पालन न करने के कारण पाप का भागी होता है। क्योंकि इस तरह से कर्मों की परंपरा टूट जाती है और संसार भर में विच्छेद मच जाता है। अच्छे कर्म छोड़ दिये जायें तो उन का स्थान बुरे कर्म से लेंगे यह निश्चित है, इस लिए भगवान् कह रहे हैं कि स्वभावसिद्ध पाप कर्मों का त्याग बन ही नहीं सकता है। जैसा त्याग करने का आदेश भगवान् कर रहे हैं वह ऐसा त्याग नहीं, किन्तु आराक्ति और फल का त्याग है। ऐसा त्याग करने संसार का भार भी बहुत हल्का हो जाता है, नहीं तो कर्म-ताप का या जीवनव्योगी आवश्यक कर्मों का सम्पादन करने से इस का भार दूसरों पर पड़ता है। हर एक मनुष्य तो जीवित रहने के लिए अन्न जल की आवश्यकता रहती है, त्यागी भी इस से छूटते नहीं। और एक मनुष्य के कर्तव्य का त्याग देने से यदि औरों के कष्ट बढ़ते हैं तो वैसे कर्म-यागी बहुत से हो जाने पर वह समान दुखी हो जायगा।

यह कोई आवश्यक नहीं कि अव्यक्त संस्थाही लोग भी अपना अन्न पकावें और अपने लिए व्यापार रोजगार करें। ती ऐसे कर्म करें जिन से जनता सत्य ज्ञान से युक्त होकर अपना कर्तव्य करने में समर्थ बने, यज्ञ, दान, तप में इस की रुचि बढ़े। इन कर्मों के त्याग की तामस कहने का मतलब यहो है कि ऐसा करने से दुनियाँ भर में अंधेर छाता मच जाता है। रास्ता कितना ही बुरा हो वह चलने से ही तप हो सकता है, इस के लिए पैरों की ही काट डालना अच्छा नहीं। भूले के सामने रखा हुआ अन्न कितना ही गर्म हो, यदि वह बुद्धि का उपयोग न कर थाली को फेंककर लहान कर दे तो उस मूढ़ के समान ही कर्मत्यागी कहा जायगा। कर्म की बाधा कर्म करने के रहस्य से ही मिटती है और वह रहस्य है यज्ञार्थ (सर्वहितार्थ) कर्म करना। धर्म से आच्छन्न रहने से तामसी लोग इस बात को नहीं

समझ पाते, अतः वे अपने हितों में आये हुए कर्मों को भी छोड़ बैठते हैं।

सज्जनों, कच्चेपन में किसी कर्म का त्याग मत करो, तुम में से कोई ऐसा त्यागी न बन जाय कि 'घर पर हुई खटपट, तो हम चले मठ पर। बाबा ने काटी चोटी, तब खाने की दी रोटी।' बाबा ने बताया काम, हम तो बधा रमते राम।' इस का उदाहरण यों है कि एक महात्मा किसी वटवृक्ष के नीचे कुटी बनाकर भगवद्भजन में अपना अधिकांश समय बिताते और यथावकाश संध्या समय सर्वसाधारण की उपदेश दिया करते थे। उन की इस निष्काम चर्चा से यही दूर दूर तक प्रसिद्धि हो गई, इस लिए विविध त्रिप्यों के समाधान और संसर्ग के लिए चारों ओर से उन के पास लोग आया करते थे। इसी तिलतिल में एक लड़का उन के आश्रम पर चला आया और वहाँ रहने लगा, महात्मा के बहुत मना करने पर भी वह वहाँ से न हटा, किन्तु शिष्य बनने के लिए जिद करने लगा। महात्मा ने पता लगाया तो मालूम हुआ कि वह लड़का यदा आलसी और पढ़ने से जो चुराया करता था, एक दिन संस्पर्शकों ने पाप पीटा तो घर से भागकर महात्माजी के यहाँ चला आया। महात्मा तो लोगों को कर्ममार्ग पर चलाने के लिए ही वहाँ रहते थे, उन्होंने यह सोचकर कि जो बात घर पर भी वह यहाँ भी होगी, उस की परीक्षा के तौर पर नकली शिष्य बना लिया और आज्ञापालन का अभ्यास डालने के लिए लड़के से मोटे मोटे काम लेने लगे, जैसे बतन मँगना, नदी से जल भर लाना, जमीचा सोंबना आदि। दो चार रोज तो चेलाजी ने पक्का पकाया ठाकुरजी का प्रसाद मजे से खाया, पर अब काम असरने लगा। एक दिन वह नदी पर पड़ा लेकर पानी भरने गया तो तंग आकर पड़े की वहाँ छोड़कर भागने लगा।

अब कुछ दूर चला गया तो पड़े ने अज्ञाते हुए स्वर में जोर से आवाज दी कि ए बाबाजी, जरा ठहरिए, कुछ मेरा भी निवेदन सुनते वाइए। चले ने इधर वधर नजर दौड़ाई कि कहीं गुड़जी ने तो मुझे भागते हुए नहीं देख लिया। अब कोई नजर न आया तो वह दवे पावें फिर बढ़ने लगा। इतने में पड़े ने फिर वही आवाज दी तो उसे सुनकर चेला सब रद गव, क्योंकि अब चौकता होने से उस की नजर पीढ़े की ओर थी

इस से पहले की मोकते हुए स्पष्ट सुन लिया । वह एक बार तो आराम को सुनकर डर गया कि प्रलय हाता है गच्छी ने इस में आद की करामान मर ही है और जो इस प्रकार बोझता है वह मुझे घेरकर दरा की मार से मेरी इट्टियों तोड़ डाले तो यह भी कोई बड़ी बात नहीं । अब यह सोचकर तब से पहले की जगह में आना ही अवसर माना और बीरता हुआ चले के पास आकर कुछ दूर से ही हाथ जाड़कर कहा न गया

इस पर तब की अवपरागी देते हुए चला-व-वे तू मर ही तकलीक से बचड़ा गया पर इस हाकत में मुझे मृत प्याह, सरी गरी की बो कह दान पदम । अरे पृथ्वी मुझे तो देल कि मैं कड़ हाकर तुम चेतन के तिर पर नियम चढ़ता हूँ तूने कपो इस पर भी विचार किया है? सड़वा बोला कि है गोल मंडल महाराज मैं कुछ नडा श्रमता हूँ आप जैसा कहे गैसा हा ककगा पर अभी मुझ पर इतनी दया करा कि पढ़ले की तरह धुपचाप बाहर एक बार फिर मरे तिर पर चढ़ जाओ नहीं तो मुझ की चिमटा तिर आते ही हाग और मरी साज खोंच लगे

इस पर इतत हुए चले न कहा अरे नीच मैं बड़ी ता पुनरा धादता हूँ कि अन्ध से नाचो न मुझ को तू अपने तिर पर मुगी से क्यों चढ़ता है अगर नहीं मालम तो काज धालकर हून—

मैं पड़ल मिनी मैं तगाकर हाकर अपने आप में चल रहा था एक दिन एक कुम्हार आया और कुदर धार मारकर मुझे अपने मा बाप से बिजुआकर दार झार कर काका । फिर मुझे गदग पर लादकर घर लाया और पानी चढ़ाते हुए कूट कूटकर मलक बाका यदि मैं ने अपने किसी अवपन को विगाकर बचाने की कोशिश की तब वही कल पर न गरी की अट्ट मार पड़ी । मज्जे ही यह सोचता कि मरे आकत के पहाई की इति शान्तानी है स्था ही बल से भारी आकत मुझ पर बहल पड़नी एक रो बार गदगे की सवादी और बाक पर किलते हुए हलना जैसे तब पगे से मुझे नीच नीच में थह मान हाता कि अब मैं सकडा से पार पा गया हूँ पर कुछ देर में ही पानी के धुपचुता की तरह मरी आद पृथ्वी में पिलती जाती । फिर दहा के पीठने हुए तो मध कपूर ही निकाह हाता गया और एक मुझ जैसे अनाम के बाप विपदाकर धुप में तपन के होड़ दिया तब मैं ने जाना कि अब रहत मित्र गई और बल कृष्ण कुम्हार से

निरद हूय, इस से मैं ने अपने में जुटे हुए साथी के साथ टडी खोंच ली तो मेरा हा हाहा निरकाश भी बाप बनकर निकल गया । एक सहारा था तो यही कि मुझ जैसे बहुत से दुर्निपाकमल वन्धु सिसक सिसककर प्राण पारण चिपे हम घोटकर पडे थ उन में कुछ हतमाय दूट घूटकर अपनी प्यारी वृत्ति मिट्टी में लप्रीन जाने की ताक में थे । मैं ने समझा कि रायर इही तरह हम सब की हुरकाय मित्र जाय पर अभी ता मेरा सब से भारी वह सत्यानास जाने की बाधो था जित की कवना मैं अपने कर दोही कुम्हार के लिए स्वयं मैं भी नहीं कर सकता था शरी पड़ले तो हम सब एक खास मगद में सजाकर रले गये हल धन्येक के नीच में पात पृथ का सहारा दिया गया मैं मृत उस समय इस से ऐसे नाच उग जैसे हाँव के मुँह में फँसा हुआ मीठक मक्खो पकड़ने में रह लेता है बल होने दो मैं बाप हतार से हमारा सबध काटकर निपलावक खोंच घोट ही मड और इमार र सगे अतिरध की मरिमाधे करने में कोई कसर न रखन के लिए निरकाश भाग की वदत मैं धुँवधाश गया बल क समद मदाक का बाधानन तथा आने देख्य भी कीकी पड़ जाती और निरकाश दाल भी पली बरनी में कुशल न हाता । एलो अलप धार यातना होने चरड पहर भागनी बड़ी ।

नागन बच्चे तू सकला हागा कि यह भद्र कोरी मन्ध हूँकिर विचमन में बमते हुए मुझ पर मुपनी के कोधानन को बड़ोत करने में सहाय दे रहा है नहीं तो इतनी अपय की बक बक करने के लिए ज्वालामुखी की भी बात करने वाली भाग से सदी सकामत साभित निक्क आना नामुप किन बात है पर इस बात की तू सब एन कपेटि बल विपतिमाता में शुभ से आसीर तक हमारा सबध एकपाय बह बरम धनु था जित ने हिरवकडिपु के राज्य में वही भोंवे के मार हमार सजातियो की लल जाने दिया और बिही के बकी की अलुत रल दिया गया भक्त पद्धार को हाकिम के रावान्ध और सीता माता की अग्नि के आरो में अथत रल कम से कम मैं की अपने इस धुन निरकाश से शही दिता और जित ने टोक हाक की थह देगा तिरदा या बाका बुनक हो दया । इही से बन सब के नीच इन महात्मा की मैं ही पखड आया और इहने मुझे धाकर वह देरदुम (कलम—) शक्ति की दाना मैं ही सपूष अनाम्

मालक का चालक होऊँ। महात्माजी ने निगमशक्तियों द्वारा मेरे मुख में विष्णु, कण्ठ में रुद्र, तल में ब्रह्मा और अङ्घ्र में सच देवी, देवता और तीर्थों को भर दिया असंख्य तर नारियों के समूह विनीत भाव से मेरी पूजा कर के यह प्रार्थना की गई कि 'सर्वकामप्रदो भव।' तब नवरत्न की विजयादशमी के शुभ अवसर पर मैं धाम्याष्टुरों पर समासीन होकर कामधेनु से भी अधिक पवित्र, सामर्थ्यशाली बनकर मस्तो से झूम रहा था तो मैं ने देखा कि यही मेरा चिरगन्तु या परम हितकारी कुम्हार अन्यमनस्क रहा तब के पीछे लड़ा था। उस समय मैं ने इन महात्माजी का ही निहास किया नहीं तो मन यही कहता था कि वर को गोदी में ला लिया मैं। बघे, बुद्धा होने से अब मुझे महात्माजी ने अवकाश प्रदान (पेंशन) कर दिया है, पर मैं नहीं चाहता कि बेकार होकर मुफ्त में दिन काटूँ। एवधि अब मैं कृतकृत्य और न चतुर्धीयमी हूँ तथापि अकर्मण्यता को त्यागकर कुछ न कुछ महात्माजी की निष्काम सेवा कर ही दिया करता हूँ, योकि जीवन का यही आशय है। अब तु मेरी इस आपत्ती रामकहानी से सम्भ गया होगा कि मैं क्यों तुम्ह चेतन न मस्तक पर सवार हुआ करता हूँ। मेरी तरह तु यदि नहीं हो सहरपं झेलकर मोक्षान्विता से कर्मों को न त्यागेगा तो न जाने इन्द्रपद पर चढ़ेगा या ब्राह्मपद पर! क्योंकि भूक जड़ का पाला तो एक निरे गवौर कुम्हार से पड़ा था, तु तो एक नररत्न महानुभाव की शरण ली है। इस लिए तु सम्भारो से काम लेकर अज्ञान की जड़ साबड़ गणों में मत भाग, ज्ञानचक्षु को खोलकर कर्मयोग का आश्रय ले।

सज्जनों, इस मनमोहक घटना से अचरित में भरकर निर्निमेष दृष्टि से चेला कुम्भोपदेश श्रवण कर रहा था, अतः उसे मान ही म हुआ कि गुरुजी जल को प्रतीक्षा में बैठे हुए जल भुनकर साक हो रहे होंगे। किन्तु दम्प बहड़े के समान वरदृष्टि चेले की राह पर लाने के लिए ही गुरुजी दुर्वासविचार थे, अन्तर में तो वन की वही कण्ठ की तरङ्गिणी हिलोरे से रही थी। इस लिए कुछ विलम्ब होते हा वे नदी की ओर चले आये और एक लता की बाट से यह सारा किस्सा सुन लिया। जब पड़े ने मौन मुद्रा बाँध ली तो गुरुजी सामने आये और वात्सल्यभाव से चेले की तरफ देखते हुए उस घड़े को मन्त्रपाठ करते हुए नदी के गंभीर द्वार में स्थापित

कर दिया। अस्तु, यह तो दृष्टान्त की बात हुई, उस चेले के समान तुम लोग इस कुम्भग उपदेश को धारण करोगे तो किसी कुम्भधर्म में नहाने जितना ही पुण्य के भागी होओगे।

केवल दिया पड़ लेने से भी अन्तःकरण शुद्ध नहीं हो सकता, उस के लिए कर्मों की कर्ताव्यता अनिवार्य है, क्योंकि वर बुद्धिविभक्त के आजमाने का धराया या परखने की कसौटी कर्म ही टहरने। विकारयुक्त काम तो सभी करते हैं पर निद्रता की चरितार्थता इसी में है कि अर्तग, अराग, अद्वेष, अकल होकर कर्म किये जायें। यदि विद्वान् होकर भी कामना, क्रोध, लोभ, मोह आदि रिपुओं को न जीता गया तो मूर्ख और विद्वान् एक से हैं—

काम क्रोध मद लोभ की, जय लग मन में खान।
क्या पण्डित क्या मूर्खता, दोनों एक समान ॥

यहाँ शुभ कर्म की अनिवार्यता मतलब का यह तात्पर्य है कि एक गुणशक्ति और एक मूर्ख दोनों होकर दैर्घ्य का टिकित ले, यानी दोनों एक से ही कर्म करें तो इन की यात्रा में साथ साथ एक ही प्रकार की गाड़ी में बैठना होगा और एक ही दरवाने से निकलना पड़ेगा। यदि उस विद्वान् शास्त्री को मूर्ख के साथ मर्हों बैठना है तो ऊँचे दर्जे का टिकित लेना चाहिए, यानी अच्छे कर्म करने चाहिएँ। शुष्क विद्या पढ़ने से मूर्खों के समान से निजता नहीं होती, कर्मों से होती है— 'शाखाप्यपोत्यापि भवन्ति मूर्खा यस्तु कियवान् स नरो हि विद्वान्।' अतएव भगवान् कहते हैं कि 'यतो धर्मं तपस्वैव पावनानि मनीषिणाम्' बुद्धिमानों की पवित्रता निष्काम कर्मों से ही प्रकट होती है। यह अन्तःकरण मलिन होने के समावकाले कपड़ों के समान है, रक्षा रंक, पानी दरिद्र, पण्डित मूर्ख इन सब के कपड़े मलिन होते और धोने पड़ते हैं, इसी तरह अन्तःकरण को शुद्ध करने के लिए भी साफ पानी के साथ कर्मों की आवश्यकता सभी को है; चाहे जोगी जती, सिद्ध साधक, जगम रक्षामी कोई भी हो। अन्तःकरण के शुद्ध रहने पर ही अर्द्धा, भक्ति वपञ्जती है,— 'स्वयं चित्ते बुद्धयः संभवन्ति', और वह शुद्ध न हुआ तो वर में भाइ अल्लाहों के तुल्य कँटीले अत्याचार पैदा होंगे। विशेषता यह है कि ऐसा होने पर मूर्ख लोग तो कम, पर पड़े लिखे या चतुर मुखान लोग ही अनाचारों की अयंकरता में बानी मार के जाते हैं तथा अपनी बुद्धि, बल या धन के प्रभाव से मूर्खों

को हर तरह से हवाते रहते हैं। इस लिए बुद्धिवादी को तब ही-यशुकि पर निम्नोक्तों के साथ स्पष्ट देश चाहिये जैसे कि किसान अपनी सेतो का नारा करता रहता है—

कृषी निराश्रितं चतुर किसानता।

जिम्मे बुध सज्जि माह मद् मान्ता॥

यदि तनकर फल विषय न आर्द्र।

स्वर्ग अरु अतहु दुःखदाई॥

—तु० शंकराचार्य

यस, शान व तप से अपानुसार मन धन और तन की शुद्धि होती है। इन को हीरक्य समझनेवालों का यह भाव्य है कि जैसे काम्य कर्म हो-पूर्ण हैं वसी तरह भविष्यो-इश्वर्यवास चतुर्मुख ज्योतिशो-इत्यादि नियम कर्म भी हो-पूर्ण हैं। क्योंकि तन नियम कर्मों के लिए पात्र को तन नूतने, मज्जाका बनाने और तीव्रने दोनो में तथा इनकाश में लोचनारा या पशुपात से दिसा का डेर मँज जाता है। इस लिए नियम कर्म भी काम्य कर्मों के मुख्य हुए होने से व्याप्य है क्योंकि किसी शायो को न मारी (या हिसाब सर्वोपनि) 'यद वेद को जानो है। अतः यज्ञों को दिसा भी निविज समझनी चाहिये। रही भक्त कारणभूति की बात सो तो हिसाबमान नियम कर्मों के दिसा की भाषणी मन्त्र जादि के नर से सुगमताको लक्षती है; मीन लगे व निरक्षरी, राग चोवा जाने तो क्यों इन नियम कर्मों की अलक्ष्य में कहा जाय। जैसा कि मर्यादा का कथन है—

जपस्तु सर्वधर्मेषु परमा धर्म उच्यते।

अहिंसाया हि भूताता जपयत् प्रवर्तते॥

यशसो जपयोजयिष्य इत भगवतात् से जपयत् यज्ञ तन से भेज है क्योंकि इस में दिसा का कोई सम्बन्ध नहीं रहता। इस कर्म का स्वार्थ यही है कि हिसाबके नियम कर्मों की त्याग देना चाहिए। जन्तु इन कर्मों-इहो की मुक्ति-यत् गोता तथा व्याप्य-शायो का कथन इस प्रकार है— या हिसाब सर्वोपनि यद वेद-यत् को

प्राणिदिसा का निषेध करता है तब यज्ञादि कर्मों में परहितार्थ दूधरद्वय शुद्ध और घमरासाय दिसा का निषेध नहीं करता, क्योंकि दूसरे देवजन सेवी दिसा करने को आज्ञा देने है। इस लिए तन देवजनो के पूर्वार्ग का जिज्ञास करने यह मानना चाहता है कि यद शायो-योजित दिसा करने में कोई दोष नहीं होता है। 'वैश्विको दिसा दिसा न भवति' कहने का यही मतजब है कि लोक और शायो-दिसा से इनकी दिसा अनिवार्य है अहिंसा को मन्त्रन करने के लिए होने से यह भी अहिंसा ही है। और यज्ञों में साराध यज्ञ का-धर यज्ञाना मन्त्रों नहीं सात्विक पूजा में उन के बड़े दूसरी शीर्षो नियम है बहिर पशुपति तो तापस यज्ञों है। इसी वास्ते हिसाब-यज्ञ मन्त्र-यज्ञ यो-यज्ञ आदि काम्य यज्ञों की कीमत कितनी हो-यज्ञों को न मिलती ही इन काम्य कर्मों का मन्त्रान् जो तो-यज्ञो कर रहे हैं। और नियम कर्मों में जो कुछ दिसा होती है वह फल और भाग्यिक का त्याग कर देने के कारण मन्त्रान् के मा-ये पड़ेगी व कि निमित्तमान निष्काम-यज्ञों के दिसने में। गोता का भगवत् इत प्रकार की दिसा को अहिंसा में परिवर्त कर देने के लिए ही तो हुआ है। इस लिए यह सिद्धांत स्वयं है कि नियम वैश्विक कर्म हो-पूर्ण नहीं तन का त्याग मन्त्रान्-यज्ञ है। यहाँ मन्त्रान् के पैसे त्याग को तापस कहने का यही भाव है कि जो कोई अपने यज्ञ, कर्म-यज्ञ, स्वयं और परिष्कृत के अनुसार यज्ञों में दिसा-यज्ञो कुछ कर्म-यज्ञ के त्याग को घम से मुक्ति का हनु समझ कर सेवा त्याग करता है तो वह मोह से होने के कारण तापस है। क्योंकि मोह की अलक्ष्य तपो-यज्ञ से है और तपो-यज्ञो की अलो-यज्ञ निरिचन है इस लिए यज्ञान् त्याग यह त्याग नहीं है जिस के करने से यज्ञान् कर्म-यज्ञ से मुक्त हो जाता है। वह तो हो-यज्ञान् या अन्तरा-यज्ञ हो-यज्ञ के कारण यज्ञों के लिए भी अन्तरा-यज्ञ का हनु है।

शङ्का

(प्र०—एक गीताप्रेमी)

यागदर्शन के साधनपद्धति में जन सिद्धियों का वल्लभ है जो पाँच यमों में प्रतिष्ठित हान से प्राप्त होती हैं। ये सूत्र क्रमशः य हैं—१५, १६, १७, १८, १९, २०। अतुन का शास्त्रभवन का भाष्य अतिशारी

यदि भागवान् मानत हैं या क्या उस में व भाव-यज्ञो-यज्ञ यों ? इस का का-यज्ञ गीता में है या नहीं, यदि है तो इसका स्वार्थों का स्वरूप निर्दिष्टार्थ-यज्ञ करन की कृपा कीजिए।

समाधान

(ले०—ज्ञानतपस्वी श्री गोवानन्दजी शर्मा)

अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः ।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह ये पाँच यम हैं। इन प्रत्येक में सुप्रतिष्ठित होने का फल शब्दा में निर्दिष्ट सूत्रों में दिया ही गया है, यथा—

१—अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः ।

अहिंसा में प्रतिष्ठित होने से साधक के प्रति सब कोई वैर त्याग कर देते हैं या वैर के प्रति वैरभाव नहीं रहता है। अर्जुन में यह अहिंसा की प्रतिष्ठा कहाँ तक हुई थी इस का प्रमाण गीताप्रकरण के पूर्ववर्ती महाभारत के सदर्भ में उस समय मिलता है जब युद्ध का प्रारम्भ करने के पहले अर्जुन आदि पाण्डव निरख होकर विनीत वेप में शत्रुसैन्य के अंदर पितामह भीष्म और गुरु द्रोण के पास युद्धविजयाथे आशीर्वाद ग्रहण करने गये थे। उस समय किसी शत्रु ने उन को मारने की तो बात ही क्या, वन्दो भी नहीं बनाया। गीता से ही इस के समाधान का आग्रह हो तो उस के लिए यह श्लोक है—

कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन ।

इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन ॥

यहाँ पर भीष्म और द्रोण के हमले का जवाब वाणों से देने में अर्जुन अपनी असमर्थता दिखा रहा है। इस से सूचित है कि उस में अहिंसा की प्रतिष्ठा हो गई थी।

२—सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम् ।

सत्य में प्रतिष्ठित होने से क्रियाफल की प्राप्ति अवश्य होती है। अर्जुन में इस की सत्ता की सूचना गीता के २५ वें इस वाक्य से होती है—

शुरुमहत्वा हि कथिरमदिग्यान् ॥

इस श्लोक में गुरुओं को मारकर पापपूर्ण राज्य भोग की अपेक्षा शुरुओं को न मारकर मित्रा के अन्न से निर्माद करने को सुझकर बतलाना अर्जुन की सत्यनिष्ठा की ही सूचित करता है।

३—अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वत्रोपस्थानम् ।

दूसरे की चीज को आत्मसात् न करना अस्तेय है, इस की प्रतिष्ठा से सर्वत्र उपस्थित होते हैं। अर्जुन में इस की प्रतिष्ठा के लिए यह श्लोकाश्रय दिखाया जा सकता है—

‘यैपामर्ये काङ्क्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च’

इस श्लोक के अनुसार अर्जुन राज्य को कुटुम्ब या दूसरे की वस्तु मानता था, अपने लिए इस की जरूरत उसे नहीं थी। ‘प्रतिष्ठा’ माने बाहरी दिखावा नहीं किंतु उस पर दिके रहने का हृदय से असल इरादा चाहिए, यह नहीं कि ‘मन में भावे मूढ़ हिलावे।’ इस प्रतिष्ठा के साथ यह श्लोक भी संबन्ध रखता है—

‘अवाप्य भूमावसपन्नमृद्धं

राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम् ।’

यहाँ पृथ्वी और स्वर्ग का एक छत्र निःकण्टक राज्य भी अपने लिए हेय बतलाया गया है।

४—ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः ।

ब्रह्मचर्य में प्रतिष्ठित होने से वीर्यलाभ होता है। यहाँ ब्रह्मचर्य शब्द का अर्थ है गुरु के पास जाकर शिष्यभाव से रहना। सो अर्जुन कह ही रहा है—

‘शिष्यस्तेऽहं दाधि मां त्वां प्रमन्नम् ।’

मैं शिष्य होकर आप की शरण में पड़ा हूँ, मुझे आदेश दीजिए। इस ब्रह्मचर्य व्रत से अर्जुन को वीर्यलाभ के लिए भगवान् की यह आज्ञा है—

“युद्धस्य जेतासि रणे सपत्नान् ।”

५—अपरिग्रहस्यैव जन्मकयन्तासंबोधः ।

अपरिग्रह माने अलोभ; इस का आधार गीता का १८।५३ वॉ यह वचन है—

‘अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम् ।’

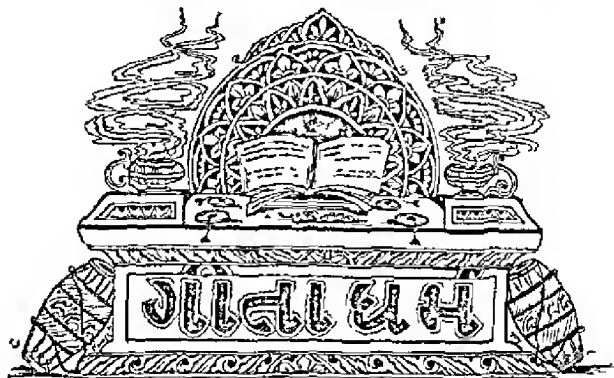
यहाँ क्रम से छः रिपुओं का उल्लेख होने से परिग्रह का अर्थ लोभ हुआ, जो कि पाँचों का मूलमूल है। अतः सूत्र का अर्थ यों हुआ—योगी लोग निर्लोभ होने पर यह जान लेते हैं कि हमारा आगामी जन्म कैसा होगा। यह फल अर्जुन को हाथों हाथ मिल चुका था, क्योंकि वह कहता है—

‘अवाप्य भूमावसपन्नमृद्धं

राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम् ।’

इस विवेचन से अर्जुन में पाँचों सिद्धियों की सत्ता सुस्पष्ट होती है।

સંસ્થાપક:—શ્રીમત્પરમહંસ, પશ્ચિમજાતિયાઈ, જાલનિષ્ઠ, લોકચામડી, ગીતાબ્યાસ,
શ્રી ૧૦૮ જગદ્ગુરુ, મહામહાશયર, સ્વામી શ્રી સિવાનંદજી, મહારાજ.



સર્વધર્મો પરિત્યજ્ય માત્રેકં શરણં મજા, અપહં ત્વા સર્વપાપેભ્યો મોક્ષદિધ્યામિ મમ દુષ્ટ.

વર્ષ: ૭ મું }

કારતી નવેમ્બર ૧૯૪૨:

{ અંક ૧૧ મા

શરણ પ્રતિજ્ઞા.

સત્ય કહોં મેરો સહજ મુસાઉ ;
મૂનહુ સખા કપિપતિ લંકાપતિ પ્રમદ સન કીન દુરાઉ .
સખ તિથિ હીન રીન અતિ જડમતિ જાડો કત હું ન ઠાઉ ;
આયે સરન ભાઈ ન તભે તિહિ યહ જાનત મહિરાઉ .
તિનહિ લાગિ ધરિ દેહ કરોં સખ કરોં ન મુજસ નસાઉ ;
પુનિ પુનિ જુજા ઉઠાર કહત હોં સકસ સખા પતિયાઉ .
નહિ કોણે પ્રિય મોહિ દાસમમ કપર મીતિ બહિ જાઉ ;
મુનિ રૂપતિ કે વચન વિકીરન પ્રેમ મગન મન આઉ .
'પુલસિદાસ' તજિ આસ માસ સખ બૈસે પ્રમુ કહું ગાઉ ;

— મોસ્તાબી વૃક્ષસીદામજી

આત્મભાવ

(લે. — ધર્મધુરધર શેઠ રમણલાલ ભટ્ટભાઈ)

દેહિનોઽસ્મિન્વથા દેહે કૌમારં યૌવનં જરા ।

તથા દેહાન્તરપ્રાપ્તિર્ધીરસ્તત્ર ન મુચ્યતિ ॥

— ગી. ૨૧૨

મનુષ્યની બાહ્યાવસ્થા ગયા પછી જ્યાં તેને યુવાવસ્થા પ્રાપ્ત થાય છે, ત્યાં પછી જે હું બાળક હોતો તેજ હું જીવાન થયો છું, એવી રીતે બેચ અવસ્થાઓમાં યોગાત્મક અસ્તીત્વ અને એકપણ તેને જણાઈ રહે છે. ખોટે દેહાભિમાનની જીવની બાલ, તથા જ્ઞાવાસ્થામાં જે ફેર જણાય છે તે તો મ શરીરની અવસ્થા બદલાવાથી જણાય છે, આ બદલાવાથી નહીં. એજ પ્રમાણે બીજું શરીર પ્રાપ્ત થવું, એ પછી આગલા દેહના નાશને ધે છે; પૂર્વ શરીરમાં રહેલા આત્માનો નાશ થવાથી નહીં. વળી દુરંતના જન્મેલા બાળકની સ્તનપાનમાં પ્રવૃત્તિ થાય છે તે પછી પૂર્વ જન્મના સંસ્કારને સ્પીંધે થાય છે. ખોટે જીવદીમાન પુરુષ શરીરનો નાશ થવાથી આત્માનો નાશ માનતા નથી તેમ અજ્ઞાની જેમ શોક કરતા નથી.

આત્માનું યથાર્થ સ્વરૂપ જાણનારા મહાપુરુષોએ સત્, તથા અસત્ પદાર્થો વિષે નીર્ણય કરેલો હોય છે તેથી આત્મા સત્ય સ્વભાવવાળો સાક્ષી રૂપે બ્યાપી રહેલો છે તેનું સ્વરૂપ નાશ રહીત છે. ક્ષય તથા વૃદ્ધિ આદિ છોડે વિકારથી રહિત છે અને તે આત્માનો નાશ કરવાને કોઈ પણ સમર્થ નથી.

તત્ત્વવેત્તાઓએ કહ્યું છે કે આત્માનો કોઈ કાળે નાશ થતો નથી. સુખ દુઃખાદિ સાથે સંબંધ નથી અને સદાય એકરૂપ રહેનાર, નાશ રહિત તથા અભાવ અને સર્વવ્યાપક છે.

આ આત્મા કોઈ કાળે જન્મતો નથી અને મરતો પણ નથી તેતો જન્મ તથા નાશના વિકારથી રહિત છે તે કંઈ ઉત્પન્ન થઈને કે જન્મીને અસ્તીત્વ લોગવતો નથી. પણ પોતે સત્ રૂપ છે. અજન્મા છે. તે જેવો છે તેવેજ રૂપે તે સદા એક રસ રહે છે. તે વૃદ્ધીના ક્ષીણતાના વિકાર રહિત છે તેથી શરીરનો નાશ થવા છતાં આત્માનો નાશ થતો નથી.

ખોટે તત્ત્વજ્ઞાની મહાપુરુષો સર્વથા આનંદી શોક મોહ વિશેષથી પર રહીને અખંડીત આનંદ અનુભવે છે. આવા મહાન પુરુષો પોતે જ્ઞાનનો પરમાનંદ અનુભવે છે અને પરોપકારથી જીજ્ઞાસુઓને આત્મજ્ઞાનનો ઉપદેશ આપી જીવન મરણના ફેરામાંથી મુક્ત કરાવે છે અને પોતે મુક્તી મેળવે છે અને જીજ્ઞાસુ જનતાને મુક્તી અપાવે છે.

પણ મુક્તી મળે ક્યારે ?
પ્રથમ જ્યાસુષ્ટી થાય તારે.

૯૦ તત્ત્વ



તૂર્ણીં વમૂવ હ' અહીં સુધીના વચ્ચેના શ્લોકોનું તાત્પર્ય એ છે કે અર્જુનની માફક હરેક પ્રાણીની અંદર શોક, મોહ, રાગ, ક્રોધ, વિગેરે સંસાર બન્ધનના કારણજાત દોષ પ્રકટ થયા કરે છે. અહિં જ્ઞાસા થાય છે કે તેનાથી બચવાનો કે તેમાંથી નિકળવાનો ઉપાય કયો થઈ શકે છે? તેનું સમાધાન એ છે કે એ પણ સંસારનો સ્વભાવ છે, તેમાં એક બાજુ બળતી આગની ચીનગારીઓ છે, તો બીજી બાજુ ઠંડકે આપનાર નિર્ગર કેટલાક ઝરા પણ છે, એક બાજુ ઉચ્ચપાથલ છે, તો બીજી બાજુ સ્થિરતા, શાંતી પણ છે. મનુષ્ય પ્રયત્ન કરવાથી કર્મ બન્ધનની બાંધથી છુટીને સુખશાંતીના માર્ગમાં જઈ શકે છે. જ્યારે તે પોતે કર્મની બાળમાં ફસાય છે. ત્યારે તે પોતેજ નિષ્કામ કર્મ કરીને નિકળવામાં પણ સમર્થ છે. વસ્તુતઃ સંસાર એવો પકડી લેવાવાળો નથી, મનુષ્ય પોતાની અજ્ઞાનતાથી એવો ધર્ષ લાય છે કે જેમ કેઈ ઝાડના યડને બાયમાં પકડીને કસે કે ઝાડે મને જખરહસ્તી પકડી રાખ્યો છે, એવીજ દશા બન્ધનપ્રસ્ત મનુષ્યોની છે.

બુદ્ધિમાનને ઉચિત છે કે બન્ધનના કારણ સ્વરૂપ અવાસ્તવિક શોક મોહને, કર્મની સંગ્રહતાને, છોડી દે. ધરવરને સાક્ષી રાખીને એવું કરવાથી બન્ધન પોતેજ કપાઈ જાય છે, વગર કારણે કામનો ઉલ્લેખ લેવી રીતે થશે? અહંરૂપ જે અભિનિવેશ છે તે દત્તનામાત્ર છે, અખંડ વિજ્ઞાનયન વસ્તુમાં આ અહંકારનો આરોપ આત્ર મનોરાજ્ય છે. અનુભવિયોનું કહેવું છે—

અવિગ્યાયોનયો માયા ચર્ચેડમી સુદુલ્લુદા દવ ।

છળમુદ્ભૂય ગચ્છન્તિ જ્ઞાનેઞ્જલભી હયમ્ ॥

અવિદ્યાથી ઉત્પન્ન થયેલા જેટલા પદાર્થ છે તે

સર્વ પ્રાણીના પરપોટાની માફક ઉત્પન્ન અને વિલીન થયા કરે છે. મનમાં કેઈ સંકેતપની કામના થઈ અને મનનો સારો કે ખુરો ભાવ તેના પર પડ્યો, તેજ અનુકૂલ પ્રતિકૂલ ભાવ રાગ દેષને જન્મ આપે છે. આ અવિદ્યાયુક્ત મન જ્યાં સુધી છે, ત્યાં સુધી રાગ દેષ છે, સુપ્રસિદ્ધ મન નથી રહેતું તો રાગ દેષ પણ નથી રહેતો. મનુષ્યની બુદ્ધિ પર આ એક પકડો પડ્યો છે. જેનાથી તે અસલીયત ને બાજુતો નથી, શ્વેતસ્વરૂપ ભય અને અજ્ઞાન તેને દખાવી રાખે છે. તેનાથી બચવાનો ઉપાય એ છે કે બુદ્ધિ અને વિવેકને ચેતન્ય બનાવી રાખે, ચિત્તને એવું બનાવવામાં આવે કે તેમાં વિષયોનો પ્રભવ પ્રભાવ પડી જ ન શકે. તે કેહાંથી ન ધૂણા કરે ન મોહ, ન કેઈ કૃતકૃત્યતા પર કુલાછને અહંકારી બની જાય.

સિદ્ધાન્ત એ છે કે નિષ્કામ કર્મયોગનાં અનુષ્ઠાન ઉપાસના અને જ્ઞાન દ્વારા પ્રાણી પોતાના સર્વ સંસ્કારોને સંસારમાં રહીનેજ ધવિત્ર કરી શકે છે. અને જીવત્વને નષ્ટ કરીને નિત્ય શુદ્ધબુદ્ધ મુક્ત સ્વરૂપ સંનિઃકાલંક સ્થાતમાં પ્રેરીત થઈને સર્વ પુરુષાર્થોના અતીમ લક્ષ મોક્ષ પદને પ્રાપ્ત કરી શકે છે. ત્યારે તે જીવનમુક્ત સિદ્ધના ક્રિયામાળ્ય કર્મસંસ્કાર સ્વરૂપજ્ઞાન દ્વારા વાસનાનાશની સાધેજ મુળમાંથી નષ્ટ થઈ જાય છે, સંચિત કર્મ સંસ્કાર તેના દેન્દ્રને છોડીને અનંતવ્યાપી મહાકાશનો આશ્રય કરી લે છે. કેવલ વિરેહ મુક્તિ યતા પર્યંત ભોગ દ્વારા શય થવાને માટે પ્રારબ્ધ સંસ્કાર બચી જાય છે. વાસનાનો નાશ થવાને કારણે અવશિષ્ટ પ્રારબ્ધ ભોગથી ક્રિયામાળ્ય કર્મની ઉત્પત્તિ થવા પામતી નથી. તે પ્રારબ્ધ સંસ્કાર જ્યારે ચોક્કિ નાખેતાં બીજની માફક જીવ-મૃત્યુની અંદર રહીને

છે. શ્રી ગીતાજીમાં વિભૂતિ યોગમાં કહ્યું છે તેમ તે દરેકમાં છે. આપણે તુલશી પત્ર કે પુસ્તક—ધર્મનાં પુસ્તકો ગીતા આદીને આંખે શા માટે અઠાડીએ છીએ ? કારણ, તેમાં ઇશ્વર છે, તેથી તે આંખે અઠાડવાથી આંખો પવિત્ર થાય છે.

કેટલાકને સ્વર્ગમાં જવાની પણ ઇચ્છા નથી. કારણ કાંથી ચોક્કસ નથી. કોઈ કોઈ સકામ સાધકો તે ચાહે છે. એ મલી પણ શકે છે, એ કાંઈ મોટી વાત નથી. કોઈ ઇશ્વર સાથે એક રૂપ થવાનું માગે છે.

“Hinduism is the Empire of all Religions” કારણ દરેક ધર્મના સિદ્ધાન્તો આપણે તેમાં જોઈએ છીએ. દાખલા તરિકે, પારસી અગ્નિને માને છે, આપણા ધર્મમાં અગ્નિ દેવ છે, સુલભાન પોતાને ખુદાના બાંદા (બાંસ) માને છે, આપણામાં પણ બાંસ—સખા ભક્તિ છે. દાખલા તરિકે હનુમાન, અર્જુન વગેરે. ખ્રીસ્તીઓ પોતાને Son of God માને છે, ચીના Confucious (પવિત્રતા) પરા-પકાર માને છે.

વિવેકાનંદ કહે છે “Buddhism is not Legitimate” (વિદ્રોહિ સંતાન છે) છતાં યુદ્ધ ધર્મ ચંકરાચાર્યે તજ્યો નથી. પણ જરૂર પડતાં તેને અંદર સમાવ્યો છે. “Hinduism” માં એવી એક મોટી તાકાત છે, બારે હોાર ધર્મ છે.

મૂર્તિ પૂજા.

બધાજ મૂર્તિપૂજક છે. છતાં કેટલાક હિન્દુઓની નીંદા કરે છે. એવો એક પણ ધર્મ કે પંથ નથી કે જેમાં મૂર્તિપૂજા નથી. સુલભાન મસ્તીક કાં બનાવે ? પરમેશ્વર એક નાની સરખી રૂતિમાં પણ સમાઈ શકે છે અને સમગ્ર જગતમાં પણ વ્યાપી શકે છે. પરમામા અગ્નોઃઅગ્નીયાન મહત્તો મહીયાન્” છે. ખ્રીસ્તીઓમાં “Roman catholic” તો પૂરે

છે, “Protestant” ના ગર્ભમાં કોસ છે, આર્ય સમાજીઓ ના પાંદે છે. કારણમાં જણાવે છે કે પૂજા કરીને જ્યાં લાં કૂલો ફેંકાઓ, તેથી ત્યાં દુર્ગંધ માટે છે. અને દયાનંદ સરસ્વતિની છબી તેઓ પોતાની પાસે રાખે છે. વેદમાં મના કહેવાય છે, પણ હવન તો એ લોકો પણ કરતા. આગ તો મૂર્તિ જ છે. જડ (માટી પરથર જેની મૂર્તિ બને તે) પણ ચેતન છે વણા દેવ દેવોની વાત છે તેથી ગલતી થઈ જાય. આર્યોના હવનમાં પણ વણાય છે.

ઇન્દ્રાય સ્વાહા, પ્રજાપતયે સ્વાહા, વાયવે સ્વાહા, અગ્નયે સ્વાહા તેઓ બધા પ્રશ્ન છે, તો અમારા બધા પણ પ્રશ્ન કેમ નહિ ? અમે પણ કહી શકીએ કે કૃષ્ણ, કાર્તિક સ્વામી, લક્ષ્મી, પાર્વતિ વગેરે પ્રશ્ન છે. જેને જે ચાહે તે રૂપે તે પૂરે.

સાયકાન્તાં દિતાર્યાય જ્ઞાણો રૂપકલ્પના હંમી. કત આમ છે કે સાધક ભક્તની ખાતર ભગવાન સાકાર બન્યા છે. મૂર્તિમાં તુરો કદ્યો તો લાં પણ વર્યા છે. જુઓ—

“તુલસીદાસ કે કારણે કૃષ્ણ બચે રઘુનાથ” એ સત્ય વાત છે. તે સાધારણ નિયમ છે. મોટા માટેજ છે એમ નથી, બધાને માટે છે. તુલસીદાસ તો ચોટા હતા, તેવી ઉચ્ચ સ્થિતિમાં પણ પૂજા તો કરતા. (તુલસીદાસ ચંદન ઘસે તિલક કરે રઘુવીર) રામકૃષ્ણ (અદ્વૈતવાદમાં) સિદ્ધ હતા. મોહમ્મિ-વોહમ્મ હતા. તે પણ કાલિની પૂજા તો કરતા. આ બધા માટે સત્ય છે. કોઈને પ્રેમ ન હોય એ જૂદી વાત છે. નિરાકાર રૂપમાં જોવા માગતા હો તો એ પણ હિન્દુ ધર્મમાં છે. “નિદા ન કરો” એ સિદ્ધાન્ત છે. એ મોટી અને સત્ય વાત છે.

ચેતન-ચલ પંકિત નામે શાસ્ત્રી હતા. તેઓ આધ સરાવતા, હતા તે વખતે શક્તિનો અંચાર

થયો બસ થઈ ગયું । તે પાગલ બની ગયા । કૃષ્ણ ।
કૃષ્ણ । બોલના લાગ્યા. ન્યાય દર્શનની ચોપડીએ
જળમા રુબાડી દીધી, રાધા માફક ચાંપી ભાવને
પ્રાપ્ત થયા આવા પડિત પક્ષ પ્રકાશ થતાં મૂર્તિ
પૂજક બન્યા કે/લાચ પ્રખર “યોગીય” નાસ્તીક
જીવનની છેલ્લી ઘડીએ આસ્તીક બન્યાના
કાખલા છે

ભગવાન શુરૂ રૂપમા આવે છે શુરૂને મૂંઝી શિવ
ભાવ કરો તો હોય છે “નાદૈત્મ્ ગુરુણા સદ્”
શુરૂ પાસે રહી જોની સેવા આત્મા પાવનથી ચિત્ત
શુદ્ધિ થાય, આ શુરૂ મત્ર છે વિદ્યા મેળવવા માટે
સેવા નહિ કરે અને ચોરી કરે, તેથી કંઈ વળે નહિ
વિદ્યા તો મળે નહિ અને મળે તો ફળે નહિ અને
જેવા હોય તેવા રહી ભય, લાભ તો ન મેળવે
શુરૂ પ્રભુ થઈ આવે ત્યારે પાગલ બની ભય, અને
તે ઝીજ આવી ગયે બધું પૂત તપ હોડી રો
જોજ ભગવાનની શુરૂની પૂજા અને તેની વાણીને
પ્રચાર

ઝનીઓ વપ કરતા હતા, ત્યાં ફરતા ફરતા
કમચ દ્રશ્ય પધારે છે, ઝનીઓ પ્રભામ કરીને
કહે છે—અમે નાણીએ છીએ આપ સ્વયં પ્રજ્ઞ
હો, આદેશ આપો અમે પૂજા કરીશું, સેવા કરી
શું શમે કહ્યું અત્યારે હું રાજા—અનુબંધી મર્યાદા
માં આવ્યો છું માટે તમે કહેો છો તેમ ન થાય હંમજા
પૂત કરો જ્ઞાનનામાં ગોવિંદ બાળ સ્વરૂપે અવતર્યો
ત્યા પૂજા લઈ ભવ બુદ્ધાવતાર થયો તો જોને સેવા
બીજી વાત નહિ કુદ્દમ્ કરણમ્ ગચ્છ, સપ્તમ્ કરણમ્
ગચ્છ વેદાન્તને હાથે રાખો પક્ષ શુરૂ (પ્રત્યક્ષ
પ્રકુને) ન મૂકો

મૂર્તિ પૂજા કેમ કરવી ‘ફેટો’ મૂર્તિ પર ભગ
વાન રર ભાવ કેમ આવે, કલ્પનાનો આશરો લો
સારામા સારી મૂર્તિ રાખો સદ્-વર્ણી ભાવ
આરોપો, વિશ્વાસ રાખો કે ‘છે’ તૂલસીદાસે
અનુભવ્યો, રામકૃષ્ણે અનુભવ્યો, વિશ્વાસ મોટી
વાત છે “મેયોત્તિમન” નું પહેલું વાક્ય—

‘There Shall beno Alog in my way’
યાદ હશેજ પ્રદલાદનો વિશ્વાસ “તે સ્તંભમાં છે”
ફોર્સટ કહેતા “મને જીસસમા વિશ્વાસ છે, જોના
નામી હોડો” વગેરે આપણા દેખતા થતા આજ
વિશ્વાસ નથી, બધા આર્થ સમાજ છે અથવા
બનશે વિશ્વાસ ભય તો પ્રાથના કરીને મેળવે,
કલ્પના (Imagination) કરતા રહો પછી છ
કામ થાય છે તે જીએ

મિત્ર અમેરિકામા છે, કલ્પનાથી તેનાથી
મળાયે પતિ દૂર દેશ છે, કલ્પનાથી તેનાથી
મળાયે સુદામાના શુરૂ દૂર બેઠે તેની સ્થાંતિ
જોઈ શકયા, આમ તે હાજર છે તે કહે છે હું,
તમારી સાથે—હાજર છું મૂર્તિ ત્રા એકતાર
થવાથી—પ્રત્યક્ષ આવે થાય છે “Try” ધીર
ધીર આપણા દિલમા પ્રકટ થયે પ્રત્યક્ષ થયે
ભગવાનનું રચાન રાખે બરમા તેના માટે ઉત્તમ
સ્વર્ણ પસંદ કરે, ઘડકેલાસ નહિ મૂર્તિ પાછળ
બ્રહ્માર્ષણ કરો આ સિવાય હિન્દુ ભવિતિ—હિન્દુ
સમાજનો યુનરૂપધાર નથી સંક્રાંતિ થાજો,
પ્રચાર કરો, ગ્રેમ ભાવ રાખો, તે સિવાય
વારત કે દુનિયામાં કથાય પણ ચાન્તિ નથી.

કલ્પેત્ત

શંકા

(૩૦—શ્રી સુદર્શન)

અતિવિપ્રતિપક્ષા તે યદા સ્થાસ્યતિ નિશ્ચલ ।
સમાધાવચ્ચલા બુદ્ધિસ્તદા યોગમવાપ્સ્યસિ ॥

—મી૦ ૨૧૫૩

“ અનેક પ્રકારનાં વેદ વાક્યોથી વિચ્છિન્ન થયેલી તારી બુદ્ધિ જ્યારે સમાધિ વૃત્તિમાં સ્થિર અને નિશ્ચલ થશે ત્યારે સમત્વ બુદ્ધિરૂપ યોગ તને પ્રાપ્ત થશે.”

આ શ્લોકમાં નિશ્ચલ અને અચલ શબ્દ એકજ

અર્થના માત્રુમ પડે છે. આવી દ્વિરૂપિત કરવામાં અંધકારનો શું અભિપ્રાય છે ?

એક પ્રશ્ન એ છે કે ‘અતિવિપ્રતિપક્ષા’ આ વિશેષણનો શો અર્થ છે ? વિપ્રતિપત્તિ મતભેદને કહે છે, તો શું શ્રુતિના વિષયમાં મતભેદ હોવો સારો છે કે મતભેદ ન હોવો સારો છે ? અંધકાર શું એમ ચાહે છે કે અભ્યુત્તની બુદ્ધિ શ્રુતિના અર્થના વિષયમાં અંવાઠાલ થઈ જાય ?

સમાધાન

(૩૦—જ્ઞાનતપસ્વી શ્રી ગીતાનંદજી)

આ શ્લોકનો અર્થ અવ્યવહિત પૂર્વ શ્લોકના અર્થને નજર સામે રાખીને કરવો જોઈએ. તે શ્લોક આ છે—

યદા તે મોહકલિલં હૃદિર્ન્યતિતરિણ્યતિ ।
તદા ગન્તાસિ નિર્વેદં શ્રોતવ્યસ્ય શ્રુતસ્ય ચ ॥

—મી૦ ૨૧૫૨

‘જ્યારે તારી બુદ્ધિ મોહના પડકારને ચીરી ॥ ખરે ત્યારે તું તે વાતોથી વિરક્ત થઈ જાય, કે જે સાંભળી છે અને સાંભળવાની છે.’

આ શ્લોકમાં શ્રોતવ્ય અને શ્રુતમે અર્થ ક્રમથી ઐહિક લોગ અને પારલૌકિક લોગ છે, જેવું કે ધીના અધ્યાયના આઠમા શ્લોકમાં અભ્યુત્તને કહ્યું છે—‘પૃથ્વીનું નિષ્કંટક સમુદ્ર શબ્દ અને સ્વર્ગના કેવલાએ ઊપર સ્વામિત્વ મળી જાય, છતાં પણ મને એવું કાંઈ સાધન દેખાતું નથી, જે માણ મનને તપાવનારા શોકને દૂર કરી નાખે.’ અહિં પૃથ્વીનું શબ્દ શ્રોતવ્ય અને સ્વર્ગનું સ્વામિત્વ શ્રુત સમજવું જોઈએ. ઉપરના શ્લોક પછીથીજ ‘અતિ-વિપ્રતિપક્ષ’ એ શ્લોક આપ્યો છે, એટલા માટે એ પદનો અર્થ એ થયો, કે શ્રુતિ એટલે કે શ્રોતવ્ય

તથા શ્રુત, તથા વિપ્રતિપક્ષનો અર્થ છે નિવિષ્ણુ કે વિરક્ત (કંટાળી જવું) શંકાકાર એમ સમજે છે કે અતિવિપ્રતિપક્ષ એટલે વેદાન્ત વાક્યોના અર્થમાં મતભેદ હોવો. પરંતુ એવો અર્થ નથી. મહાશુનિ કપિલજીએ પોતાના દર્શનના ચોથા અધ્યાયમાં ઘણાં ઘણાં દષ્ટાન્તો તથા વાર્તાઓ દ્વારા સુમુક્ષુને માટે સદુપદેશ આપ્યો છે. આં તેવીસરું સદૃશ શંકા વિષયક આ શ્લોકનેજ અનુસાર રચવામાં આવ્યું છે.

વિરક્ત્ય હેયદાનમુપાદેયોપાદાનં દંસક્ષીરવત્ ।

એનો શ્લોકના અર્થ સાથે મેળ કરતાં એવું તાર્કિક નીકળે છે કે બુદ્ધિને હેયનો અર્થાત્ શ્રોતવ્ય તથા શ્રુત કર્મરૂઢિનો ત્યાગ કરવો જોઈએ તથા ઉપાદેય અર્થાત્ સમાધિનું ઉપાદાન કરવું જોઈએ. એટલાજ માટે નિશ્ચલ અને અચલ છે વિશેષણો પ્રયોગ કરવામાં આવ્યો છે; આ દ્વિરૂપિત સાધક છે નિરર્થક નથી. જન્મેનો અર્થ એજ છે કે ત્યાગમાં સ્થિર બુદ્ધિ થાય અને યોગમાં પણ સ્થિર બુદ્ધિ થાય; અહીં સ્થિર શબ્દમાં પણ પુનરુક્તિ હોય નથી, એક સ્થિર શબ્દનો અર્થ છે વિશેષ, ચલન વળાંક અને ધીમનો અર્થ છે સંકેત રહિત. ઇત્યાદિ

મહાપુરુષ

(લે.-૨નામી શ્રી રામાનન્દજી સન્યાસી દર્શનશાસ્ત્રી વ્યાક્રમચાર્ય)

‘વિપતિ ધૈર્ય’

આ સ સાર સાર એવો અચાહ અને દુર્ગમ છે એમા મનુષ્ય જીવન એક તુલ્ય નૌકાની માફક છે એ જીવન નૌકાને કેટલાય આઘાત અને પ્રત્યાઘાતોનો મુકાબલો કરવો પડે છે કેઈ કેઈ કષત તો તેનો આપત્તિયાના મજબુત પત્થર સાથે અચકાઈને જૂંકેજૂંકે ધકેલ્ય છે અને કેઈકવાર તે ચતુર નાવીની સાવધાનીથી પાર પણ લગી જાય છે મનુષ્યના આયુષ્યનો મોટો ભાગ દુ ખોશી જ રીખાતો વ્યતિત થતો જોવામા આવે છે હવે તો સમજીએ છીએ કે બધો સ સાર દુ ખડપ ઢાડ ઉપર પથરી પાથરીને સુઈ રહ્યો છે સુખ શાંતીનો મદીમા તો અમે જહુજ સાબળ્યા કરીએ છીએ પરંતુ તે ત્યાં પણ જહુજ થોડી જોવામા આવે છે કે જ્યાં તેનું સ્થાન બતાવવામા આવે છે સાબળવામા આવ્યું છે કે તીર્થોમા સુખ શાંતીનું વાતાવરણ હમિયા રહે છે, પણ જઈને જોવાથી તો તેનાથી વિપરીત દશાનોજ અનુભવ થયો. કેટલાક લોકોને જોતું કહેતા સાબળ્યા છે કે મહેના પડવાની અંદર સુખ સંતોષનું સામ્રાજ્ય સુશોભિત રહ્યું હોય છે, પરંતુ જઈને જોવાથી ત્યાં રાગ દ્વેષ અને કામનાની જ્વાળાઓ શરીરને સળગાવી દેતી હોય તેવી લાગી. એમ પણ સમજાવું હતું કે લૂંચા મહેલોમા, ખબ્બાના બંદારોમા, ખમણમા, મેલમિલાપના મેળાઓમા અને નાચ જેવ, દેશ આદિના તમાસામા, સુખ શાંતી પ્રાપ્ત થયો, પરંતુ એ ધારણા પણ સાચી ન નીકળી

એ નિર્વિવાદ સાબુજ છે કે મનુષ્યજીવનકાલ આપત્તિના વાટજોથી ઘેરાયેલું છે, અથવા તેનો માર્ગ કંટા અને કંકરાથી પથરાયેલો છે, અર્થાત્ આપત્તિ એની સાથેજ લાગેલી રહે છે, જ્યારે એવીજ વાત છે, તો પછી સમજદારી એમાંજ છે કે મનુષ્ય આપત્તિઓથી બચે અને સૌથી પહેલો તેને ઓગળી લે, તથા તેને આવવાના માર્ગને શોધી કાઢે તેનો સામનો કરે, તેનાથી હારે નહિ, આપત્તિથી તેનાથી કરી જવામાં ને નાસી છૂટવાથી પણ મરી જતી નહો, તેનો તો સામનો કરવો પડે છે શબ્દ હરિશ્ચંદ્ર આપત્તિએને હીલતા હસતા હસતા પાર ઉતરી ગયા, રાજા રામચંદ્રજીએ વિપત્તિઓને બ્રહ્માની કુલમાળાની પેઠે ધારણ કરીને વીતાવી દીધી, તથા નળ, પાણ્ડવ, પ્રતાપ, અને શિવાજી આદિએ આ વિપત્તિરૂપ સાગરને ગાયની ખરીની પેઠે ગણીને પાર કરી દીધો, આ સર્વ પ્રકારની આપદાઓનો સામનો કરવાનો સરલ ઉપાય ભવુંહરિએ ‘નિપતિ ધૈર્ય’મ’ સુત્રમા બતાવી દીધો છે અસહ્યમા તો આપત્તિ એ મનુષ્યનું ખરા અને ખોટાપણ પારખવાની પરિક્ષા છે, આપત્તિની ભઠ્ઠીમા ન પડ્યો હોય, એવો સ સારમા કેઈ મહાપુરુષ નથી જેઓ આપત્તિને સાગર તરવામાં સફળતા પ્રાપ્ત કરી સુકયા છે, તેઓનેજ જીવનસુખનું રત્ન મરી શક્યું છે

હુલ્લેહ હાતા હૈ દેસ્તાં, આપ્ત અને કે વાદ ।
રોગ લાગી હૈ દિના, વશર પૈ પિસ જાને કે વાદ ।।
જમા સુધી મેદીને પથર ઉપર બરાબર ન

।માં આવેલાં મુખી તેનો રંગ બરાબર પ્રગટ નથી. તેવીજ રીતે જ્યાં મુખી મનુષ્ય મુશીની આગમાં બરાબર તપતો નથી, ત્યાં મુખી સાચું સોનું છે એમ નથી કહી શકાતું, હંમેશાં એમ નથી કે શ્રેષ્ઠ અને સાચા બનવાને માટે ય ઉપર આપત્તિઓ આવવીજ જોઈએ. હંમેશાં રહેતું એમ છે કે આપત્તિઓ અવશ્ય આવેજ છે. કે—

य दोषः कुले नास्ति व्याधिना को न पीदितः ।
।सनं केन न प्राप्तं कस्य सौख्यं निरन्तरम् ॥

એવો કોણ છે કે જેના વંશમાં કંઈ કલંકજ ન વ, એવો કોણ છે કે જેને કોઈ ને કોઈ રોગે ાન ન કર્યો હોય, જેને કદી પણ વિપત્તિઓ ધી ઝીલવી પડી એવો પણ કોઈ નજરમાં નથી વનો, અને એવો પણ કોઈ માનો જણ્યો વામાં નથી આવતો કે જે હંમેશાં મુખના પાલણીમાં લેતોજ રહેતો હોય અથવા તો જે કૂલેની પયારી પર જ હંમેશાં સૂઈ રહેતો હોય. કેમકે—

सदा न काहू की रही, पिय के गल में बौंह ।
ढलते ढलते ढल गई, सब तरहन की छौंह ॥

જે આપત્તિની વખતે ધૈર્ય ધારણ કરી શકતો ાય, કદીનમાં કદીન આક્રિતના સમયમાં પણ જે નિવિપરચિત્ત રહી શકતો હોય, તેને ભત્રુંહરિએ ાહાતો કહી છે. કેમકે મહાત્માઓને માટે વેપત્તિમાં ધૈર્ય ધારણ કરવું' એ પ્રકૃતિસિદ્ધ ાત માનવામાં આવી છે.

‘अम्युदये क्षमा’

મનુષ્યના અસ્તિત્વની મુદતની સીમા નિર્ધારિત કરી શકાતી નથી, તે કયાંથી કયાં પહોંચી જશે, તેની ભવિષ્યમાં શું દશા થશે, તે નહિ કહી શકાય. ‘स्त्रियाश्चरित्रं पुरुषस्य भाग्यम्’ ની વાત મનુષ્ય તો શું

દેવતા પણ નથી બતાવી શકતા, ઘણા બરા સાધારણ સ્થિતિના મનુષ્યો મહંસ્વપૂર્ણ પદ ઉપર પહોંચી જઈતેને સમલંકૃત કરવામાં સફલતા પ્રાપ્ત કરી નાંચ છે. અમે ઘણા રસ્તામાં રખડના બિખારીઓને સિંહાસનના અધિપતિ બનેલા જોયા છે. સાધુ-સંસ્થાઓના મહંતોમાં તો અધિકાર્ય એવીજ વ્યક્તિઓનું પ્રાધાન્ય છે. જેઓને યોગવાના પણ હોરા ન હતા, જેઓને ગધ કાલે બિખ માંતમાં પણ પેટ ભરવાને માટે ટૂંકડો રોટલો મળવો મુશ્કેલ હતો, તેઓને આજ સોનાની અંબાડીવાળા હાથી ઉપર બેસીને જતા જોઈએ છીએ. હંમેશાં એવા પરિવર્તનને માટે કઈજ કહેવાતું નથી. અમારે તો ફરીયાદ ત્યારેજ કરવી જરૂરી થઈ પડે છે કે જ્યાંદે તેઓ પોતાના અધિકારનેા દૂરઉપયોગ કરવા તત્પર થઈનાંચ છે. અધિકાર પ્રાપ્ત કરીને મનુષ્ય દુર્બલ-તાઓનેા એવો શિકાર થઈ નાંચ છે કે તેને કંઈને બદલે કંઈ જણાવા મંડે છે. અધિકાર પ્રાપ્ત કરીને મનુષ્ય ઉપકારને બદલે અપકારજ વધારે કરે છે, અભ્યુદય પામીને મનુષ્ય પોતાની પૂર્વદશાને ભૂલી નાંચ છે. તે ‘अम्युदये क्षमा’, સહિષ્ણુતાના આદેશ ભૂલી જઈને ‘अम्युदये वृहण्डता’નું લક્ષ બની નાંચ છે. અભ્યુદયશાળી જમીનદારોની અન્યાયની તલવારને ગરીબ ખેડુતોનાં ગળાં કાપતી હંમેશાં જોઈ રહ્યા છીએ. સાંભળ્યું છે કે ખટગબહાદુરસિંહ ભૂપતિ ક્ષણ માત્રમાં આહિ તેને નાણુદ કરવાનું સામર્થ્ય રાખતો, તેમનો ક્રોધ તો અજબજ હતો. તેણે પોતાની હયાતિમાં કેટલાયને જગતપ્રથમ ઉપર-થી અશુદ્ધ અક્ષરની માફક સફાને માટે નાણુદ કરી નાખ્યા હતા, પણ પછી થોડા દિવસોમાં એ પણ સાંભળ્યું કે તેને લકવાએ માર્યો છે, હવે તે ખાટલામાં પડ્યો પડ્યો સજાજ કરે છે.

એક બાઈ કહી રહ્યા હતા કે કારીના સૌથી મોટા મકાના મહત્ત્વ આજકાલ ખરે ખરો ધીની મથાણ સળગાવીને ફરવા નીકળે છે, જ્યારે કે સાધારણ મનુષ્યોને ધી દવાની સાથે થસી ચોપડીને સૂઝવાને પણ નથી મળતું જન્મ અને કારમીરના મહારાજા સોદેખ કારી સ્ટેશન પરથી પગે ચાલીને વિશ્વનાથજીના દર્શન કરવા જતા હતા, પણ મહત્ત્વ નજીકના મકામાંથી પણ પાલખીમાં બેસીનેજ વિરવ નાથજીના દર્શન કરવા પધારે છે કહો, આનું નામ શું ? 'અમુદવે છમા' એટલે કે અધિકારનો સડ પશોગ છે ? જેમના કાષ્ઠમાં બીજના બીજ મલની રસાને બાર છે, જે તપોમય જીવન વીતાવનારાઓ માટે આદર્શ જીવનનો પાઠ શીખવનારા છે, જે શાસનદંડ કાષ્ઠમાં લઇને દૂધનું દૂધ અને પાણીનું પાણી કરી બતાવવાને હમ સંજો છે, જે સદા પોત્રી પત્રોમાંથી જન્મતરવ ચોખીને જનતાની સામે રમ્મ કરવાની જવાબદારી પોતાના ઉપર લઈ ચુક્યા છે, તેઓ કયાં કુખી પોતાના અધિકારનો અરુપયોગ કરી રહ્યા છે ? તે સસાર સારી રીતે બહુતો હશે મનુષ્ય જીવનનું મહત્ત્વ પ્રકૃતિનું અસ્થાથી, આજ આપાથી, અશોભન પદાર્થોની વધારે પડતી સમર્કમા પડીને પોતાનું કર્તવ્ય જૂલી જવામાં નથી, તેની વિશેષતા તો અજુહાસમાં ક્ષમાનો શુલ્ક લેળવવામાં છે અવયુદય અર્થાત્ સપત્તિના પ્રાપ્તિ કાળમાં કામા, કલ્કિજ્વલા ધારણ કરવી અને ઉદ્ગુહકતાને પરિત્યાગ કરવો, એવી યોગ્યતા મહાનુભાવ પુર પોતા સ્વભાવ સિદ્ધ હોય છે.

‘સદતિ વાકપટુતા’

મનુષ્ય સામાજિક પ્રાણી છે, તેને સમાજમાં રહેવું છે, તે સમાજમાં રહીનેજ કઈક મેળવી શકે છે જે હમણાં બોક્સાન્ટસેથી છે, તે પહેલેા સમા-

જમાં રહીનેજ બોક્સાન્ટવાસના લાભ ઉપર વિચાર કરવાનો અવસર મેળવી શક્યો છે પરંતુ સમાજમાં રહેવાવાળાઓમાં પોતાપોતાના સ્વાધીને માટે આપસમાં સંઘર્ષ થતો રહે છે, અને તેથીજ લડાઈ અગડા તથા યુદ્ધ ઇત્યાદિ અશાન્તિપ્રદ અનેક પ્રકાર ના કહેયોની સૃષ્ટિ ઉત્પન્ન થઈ ગય છે, સમાજમાં જે ચતુર છે, શુદ્ધિમાન છે અને કયાળુ સ્વભાવના છે, તેઓ સંઘર્ષને ટાળવાનો પ્રયત્ન કર્યા કરે છે પરંતુ વિવાદોને તો તેજ મટાડી શકે કે જેનામાં ઉભય પક્ષને સમજાવવાની શૈલ્યતા હોય જે વાકપટુ હશે, જેનામાં યુક્તિયુક્ત બોલવ ની કળાનું પરિગાન હશે, તેજ સમાજમાં સ્વપક્ષ ઉપરિચિત્ત કરીને તેનું સમર્થન કરી શકે છે વખત બે વખત જે બહુજ ભેલ પ્રોત્ત કર્યા કરે છે, તેની વાણીનું સામર્થ્ય નહ કષ્ટ બેયેનું હોવાથી તેના કહેવાની કોઈના પર અસર થતી નથી, સમાજમાં તો તેજ પુરવ નિશ કપણે બોલી શકે છે કે જે અસ્વિકાર્ય ન હોય, એવા મહાત્માજ સન્નજન હોઈ શકે છે ‘સદતિ વાકપટુતા’ અર્થાત્ સમાજમાં બોલવા બાજુ બાની ચીતો તો મહાનુભાવોની સ્વાભાવિકતામાંથી સહજ જડી આવે છે

‘યુધિ વિવ્રમ’

લડાઈ—અગડાથી સૌ કે ઈ બચવા ઇચ્છે છે, તેના પ્રત્યે એનો તિરસ્કાર છે, તેનાથી કોઈને લાલ નથી, જે સ્વાર્થવશ અગડાથી લાલ થતો માને છે તેમને પણ એ અનિષ્ટ વ્યાપારથી આખરે તો દુઃખી થવુંજ પડે છે એ તર્કન સાચુ છે કે યુદ્ધ દ્વારા બળાકારે પ્રાપ્ત કરેલી બીજાની સંપત્તિ ફેરોની પાસે સદા સિધ્ધ રહી શકતી નથી, અને તેને મેળવનારા અગ્રુષ્ટ પણ રહી શકેતા નથી. એ સામર્થ્ય તો પરિશ્રમાભીત અપતિનું જ છે કે

જે ઘણા દિવસો પર્યંત ટકી રહે છે. અને તેનાથી ઇંદ સાધન પણ થઈ શકે છે. અમારો તો એવો અનુભવ છે કે અન્યાય દ્વારા પ્રાપ્ત થયેલી વિભૂતિ હંમેશાં તેની પાસે તો રહેતીજ નથી, ઉલટી તે પોતાની સાથે કંઈક વધારેજ લેતી જાય છે.

અમે એમ તો કહેતાજ નથી કે યુદ્ધ કરવું જ નોંધએ, એ તો લડવું જ પડશે, પણ યુદ્ધ કોઈના ઉપર-આક્રમણ કરીને શાન્તિભંગ કરવાને માટે તો નહિ જ લડવું નોંધએ. હા, આપણા દેશ ઉપર જો કોઈ આક્રમણ કરે, તો પછી તે ચાહે તે હોય, કેટલાયે પ્રસિદ્ધ શક્તિ સામર્થ્યવાન હોય, તેમની સામે રહીને યુદ્ધ કરવારા યોદ્ધાઓને માટેજ તો એમ કહ્યું છે કે—

દ્વાવિમૌ પુરુષૌ લોકે સૂર્યમણ્ડલમેદિનૌ ।

પરિવાદ્ય યોગયુક્તઃ રણે ચામિસુરોહત ॥

‘તે સુર્યમંડલને ભેદીને યોગી સુની જેની ઉંચી ગતીને પ્રાપ્ત કરે છે. બીજાઓને બરબાદ કરવાને નહિ, પરંતુ સૈને આબાદ કરવાને માટે અમર જો યુદ્ધ કરવાનો પ્રસંગ આવી પડે તો તેનેજ માટે ‘યુધિ વિક્રમ’—રણાંગણમાં પરાક્રમ કરવાનું કહેવામાં આવેલું છે.

જાતિ તથા દેશની રક્ષાને માટે પોતાના લોહીના તેલથી પોતાની પાસણીના હાલકાની બતો સળંગાવી રણચંદ્રીની આરતી ઉતારનારનાજ સ્વર્ગની અપ્સ-રાઓ યથોગાત કર્યા કરે છે. દેશની રક્ષાને વળતે માળા તેમજ અન્ય પોથી પત્રોને ફેંકી દઈને જેઓ હાથમા સમશેર પકડી રણભૂમિને ચારધામની ચાત્રા સમજીને તુરતા તુરત પહોંચી જાય છે, તેમને જ મહાનુભાવ કહી શકાય, કુમકુમ અને ચન્દનના તિલક છાપાની જગ્યાએ જેઓ પોતાના શરીરમાંથી નીકળતા ખુનથી ઉત્કૃષ્ટ પુષ્ક યા ત્રિપુષ્ક ધારણ

કરીને રણદેવતાનો ઉપાસના કરે છે, તેઓજ મુક્તિ (સ્વતંત્રતા) પદના સાચા અધિકારીઓ કહેવાલાને યોગ્ય છે, જે રણભૂમિરૂપ અવિમુક્ત વારાણસીમા જઈને મરી મટનારને અમર સમજીને, અને સ્વયં પણ તેજ ગતિને પ્રાપ્ત કરવાની ઇચ્છાથી રણક્ષેત્ર ધર્મક્ષેત્રમાં ઉમંગથી દોડી જાય છે. તેમની સાથે વરવા માટે અપસરાઓ અંદર અંદર વિવાદ કરે છે, જેઓ પદોપકારને માટે પોતાનું લોહી વહેવડાવે, જેઓ કોઈથી પણ લઠાઈ-ઝગડા ન કરે, જેઓ વિવાદના પ્રસંગમાં શાન્તિ સ્થાપન કરવા કરાવવામાં પોતાનો સર્વ શક્તિ લગાડી દે, જેઓ બહુ છેડતી કરવા છતાં પણ શાંત બન્યા રહે, અને જેઓ રાષ્ટ્ર રક્ષાઈ યુદ્ધમાં જવાતાસુખી બની જાય, બચ-કર વાધ બની જાય, તેઓને જ મહાનુભાવ કહી શકાય. કેમકે ‘યુધિ વિક્રમ’ અર્થાત્ રાષ્ટ્રીય યુદ્ધમાં આગળ પડીને પરાક્રમ બતાવવું, રાષ્ટ્રરક્ષાઈ પોતાના સર્વસ્વ જીવનનો સહર્ષ સાગ કરવો એ મહાનુભાવ સંજ્ઞાનોનો સ્વાભાવિક ધર્મ છે.

‘યશસિ અમિરુચિ.’

લોકમાં પ્રતિષ્ઠા મેળવવી ઘણી મુશ્કેલ છે, તે માત્ર યોગ્યતાથીજ મળે છે, યોગ્યતા તપશ્ચર્યા વગર મળતી નથી, તપશ્ચરણ સ યમી, સદાચારી, અને વિચારવાન હોય તે જ કરી શકે છે. મતલબ એ કે જેનું નૈતિક જીવન ઉત્તમ અને ઉત્તમ હોય, તેજ લોકમાં સન્માન પ્રાપ્ત કરી શકશે. પોતાના માટે પોતાના ગુણગાન કરીને કોઈ પણ નામના મેળવી શક્યો નથી, નામના કર્તવ્ય કરવાથીજ પ્રાપ્ત થાય છે. જે લોકો પોતાની પ્રતિષ્ઠાની સુવાસથી પોતાનો જાતિ અને દેશને મુશ્કેલ કરવા ઇચ્છે છે, તેમણે કોઈને કોઈ ગુણ અવશ્ય પ્રાપ્ત કરવો જોઈએ, મનુષ્ય પોતાના જીવનને માટે

જે કાર્મ પ્રયત્ન કરે છે, તેમા તો તેને પરિશ્રમિ, બુદ્ધિમાન અને અધ્યવસાયી બનવું જ પડે છે, પરંતુ તે સિવાય કોઈ એક પણ શુભ હુમલો જરૂર પ્રાપ્ત કરી લેવો જોઈએ જેવી રીતે કોઈ એક મનુષ્ય કુશળનું કામ કરે છે, તો તેમા તો એ પારંગત છે જ, સાધૈજ તેને જ્ઞાન, વાદ્ય, ગણિત, પદ્યવિદ્યા, અસ્ત્રશૈલ્ય, મોટર ચલાવવી, સાહિત્યશિક્ષા, આદિ કોઈ પણ એક અથવા અનેક વિષયોમાં વિશેષજ્ઞતા પ્રાપ્ત કરવી જોઈએ જેવી રીતિમાજ મનુષ્ય યથાસ્વીયવાની પહેલી સીડી ચરચડી શકે છે.

મનુષ્ય એમ સમજીને સર્વ કામ કરતો રહે છે—‘મારી નામતા યાવ પણ જાનનામી ન થાય’ ‘મને કોઈ ભુરો ન બતાવે’ તો તે લગ્નજી ખરા ધીવે થી જાયી શકે છે, પણ સાધૈજ વિચાર કરવો જોઈએ કે ‘હું સમાજના હોકાની નજર સુધાવીને આ કામ ભલે કરી લઉં, સમાજની લીજ આલો ચૂનાએનું લક્ષ ભલે ન જનૂ, પણ ઇશ્વરની દ્રષ્ટિથી નહિ બચી શકું ઇશ્વરના ન્યાયથી મને પોતાને નથી બચાવી શકતો’ એવો મનુષ્ય કદી પણ કુમાર્ગંગામી થઈ શકતો નથી મનુષ્ય પોતે પોતાને બતાવવા બગાડવાને સમર્થ છે જે પોતાનો મુધાર ચાહે છે પોતે પોતાને મુધારવા ચાહે છે તેને માટે—

‘अथ वद' तूँ कठ शैंव कदार क्यों करता है ?

घर आगे पग फिर देख खुदा क्या करता है ?

આ કહેવત મુજબ પશ્ચિમી સહાયક સમને તેને કાર્યગ્રેવમાં આગળ વધવાનું સામર્થ્ય પ્રદાન કરે છે અને જે પોતાનો નાશજ કરવામા મદ્યગ્રસ્ત છે તેમને—

जिमि कुपय पग देव खगेगा।

रहै न छेज बल पी खवलगा ॥

જેનાનુસાર બાળી લેવું જોઈએ કે તેજસ્વિતા,

બલ, અને બુદ્ધિ જે સર્વ કામોના સાધક છે, તે કુમાર્ગંગામીની પાસે નહ થઈ જાય છે એ નિશ્ચયજ છે કે એક પ્રારંભિક પુરુષના પેટમા એ પુરુષોને જન્મ આપનારે બીજા કામ્યકું પડવું છે જેવીજ રીતે એક પ્રાથમિક પાપની અદર હબર પાપોને ઉત્પન્ન કરવાનું સામર્થ્ય મળું પડવું છે જે ‘यसि अभिरुचि’ છે, પોતાની કીર્તિ ઇચ્છે છે, તેમને માટે પાપકર્મોમા અમૃત્તિ સ્વભાવસિદ્ધ આવી જાય છે.

‘व्यसनं मृती’

સ સારનો કોઈ પણ પદાર્થ મનુષ્યને મનુષ્યતા નથી આપી શકતો, જેવી કોઈ શક્તિ અગર છે તો તે સિવા છે—‘विषाग्निहीन पशु’ એ કહેવત પ્રસિદ્ધ છે (વિષા મનુષ્યને માટે કેટલી આવશ્યક છે, એના પર વધારે કહેવાની એટલા માટે આવશ્યકતા નથી કે મનુષ્યના જીવન માટે તેની અનિવાર્ય આવશ્યકતાને એ કોઈ જાણે છે)

હમારે એટલું તો અવશ્ય કહેવું પડશે કે પોતાનું જનું ચાહનારે એક લાભ માત્ર પણ ગણાય કે કલહ વિગાદ મા તો બીજા એટલા કામોમા નહ ન કરવી જોઈએ હવે ચેતરજ, ચોપાટ, તાંસ વિગેરે રમવા એલવાનો વખત નથી રહ્યો કેટલાકનું કહેવું છે કે જે રમવાથી મનોરંજનની સાથે સાથે બુદ્ધિની ઉદ્ધાપેદ શકેલી વર્ષી જાય છે. એ વાત જનુંજ નિચાર કરવા છતા પણ અમારી સમજમાં ન આવતી, શું થયો જોવા, વિચારવા તથા મનન કરવા તે કરતાં પણ વધારે ચેતરજ વિગેરેમા બુદ્ધિને વિકસિત કરવાનું સામર્થ્ય છે ? ચેતરજ, અજીશ, વિગેરેમા કોઈ એક પ્રતિષાળા મનુષ્યનું ભલે કંઈ મનરંજન થઈ જતું હોય પણ અન્યાયા તો સર્વ પ્રકારની રૂઝિવાજાને માટે પુરુષ સામર્થ્ય જરી પડી છે પુરતકોથી યિદ્ધા મળે છે ત્યારે ચેતરજ

વિગેરેથી વખત બરબાદ થાય છે. જે લોકોને ંધાવલોકન કરતાં નથી આવડતું તેઓ તે શીખી શકે છે. જેઓ કોઈ આંખ અથવા માથાના રોગથી અથવા તો વધારે અવસ્થા થઈ જવાથી ંધાવ્યાસ કરવામાં અસમર્થ છે, તેઓ બીજા પાસેથી તે સાંભળી શકે છે અને તેથી જોવોજ લાભ ઉઠાવે છે કે જેવો વાંચવાવાળો ઉઠાવે છે. બધા લોકોએ સ્વાધ્યાય તો કરવુંજ નેહ્યો, ચાહે તો તે સાંભળીને કરે કે પછી વાંચીને—

સવેદ્રવ્યેષુ વિદ્યૈવ દ્રવ્યમાહુરનુત્તમ્ ।

અહાર્પ્યત્વાદનર્પત્વાદક્ષયત્વાચ સવેદા ॥

આ હેતુઓને લઈને વિદ્યાને મુકાબલો સંસારનો કોઈ પદાર્થ કરી શકતો નથી. ‘અહાર્પ્ય-ત્વાન્’ ‘અનર્પત્વાત્’ ‘અક્ષયત્વાત્’, વિદ્યા ચોરી કરીને ચોરાતી નથી, તેને કોઈ કિમત કરીને વેચી કે ખરીદી શકતું નથી, તથા તે આપવાથી ઘટી શકતી નથી પણ વધે છે. જો કે લોકોમાં ઉગતિ કરવાને માટે શાસ્ત્ર વિદ્યા અને શસ્ત્ર વિદ્યાનાં નામ લેવામાં આવે છે, પરંતુ જ્ઞાપસ્થામાં લાચારીથી શસ્ત્રવિદ્યાને ઉપયોગ થઈ શકતો નથી. પણ શાસ્ત્ર વિદ્યાને વૃદ્ધાવસ્થામાં પણ વધારે અનુભવી હોવાને કારણે શ્રદ્ધાની દ્રષ્ટિથી જોવામાં આવે છે.

ભાવ એ છે કે આપત્તિને વખતે ધૈર્ય ધારણ કરવું, સંપત્તિ પ્રાપ્ત થયા પછી સહનશીલતાથી કામ લેવું, સભામાં ચતુરાઈથી વાતો કરવી, લડાઈમાં પરાક્રમ બતાવવું, હમેશાં નામ પામત કરવાની ઇચ્છાથી યોગ્ય કામ કરવું અને શાસ્ત્ર વાંચવાને શોખ રાખવો એ શુભો મહા પુરૂષોમાં સ્વભાવ થોજ હોય છે.

બીજા લોકોએ પણ મહાપુરૂષોના ઉક્ત શુભોનો લાભ લેવો જોઈએ. સંન્યાસી સધુ સતોમાં એક બીજાને ‘મહાપુરુષ’ કહે છે. જે બીજા સંસારી પુરૂષોની અપેક્ષા વિશેષતા રાખે છે, તેને મહાત્મ આપવું પડે છે, તેનાથીજ તે મહાપુરૂષ કહેવાય છે. ભગવાનને પણ ‘વન્દે મહાપુરુષ તે ચરણારવિન્દ્ય’ ઇત્યાદિ સ્તુતિ વચનોમાં મહાપુરૂષ કહ્યા છે. બધા દેશો તથા જાતિઓમાં મહાપુરૂષોના અવતાર થયા કરે છે. તેઓ પોતાના ઉપદેશોથી તથા સ્વયં આકર્ષે જનીને સૌંદર્ય કલ્યાણ કરવાની ભાવનાથી મનુષ્યોને માટે એક જોવો શાસ્ત્રીય સુગમ માર્ગ બતાવે છે કે જે બધાને માટે સીધો હોય અને સરલ હોય.

મહાપુરૂષો અને તેમના શુભો સૌંદર્ય કલ્યાણ કરે છે, અતઃ કહેવુંજ પડે છે કે ધન્ય છે, ‘મહાપુરૂષ.’

અર્જુને યુદ્ધ શા માટે કર્યું ?

(સં—વક્રીલ બાલાભાર્ગ નારદજી બીંડ એં)

[અનુસંધાન ૫૦ ૧૨૨૮ થી આગળ]

ગર્તાકિમાં જણાવ્યા પ્રમાણે કહીને ભગવાને આક્રમો અધ્યાય સંપૂર્ણ કર્યો. અને પછી નવમા અધ્યાયનો આરંભ કર્યો. આ નવમો અધ્યાય તો નીરૂપમ છે, એટલે તેને કોઈની ઉપમા આપી

ન શકાય તેવો છે. સારાંશ જોજ કે આ નવમો અધ્યાય શરૂથી છેવટ સુધી મધુર અને સર્વ અમૃતના સારરૂપ છે. એટલુંજ નહીં ઈશ્વરમાં જણાવીશું. ગીતા રસીકોએ આ નવમા અધ્યાયની મધુ

જના જન પ્રયોગે પોતાની મેળે સમજીને જાખવી બેઠાં છે. આ નવમી અધ્યાય જ્ઞાનપ્રધાન, ઉપાસના પ્રધાન, ભક્તી પ્રધાન છે, એટલે આ નવમા અધ્યાયમાં જ્ઞાન સહા, ઉપાસના સહાય અને ભક્તી સહાયે પ્રુચ્છત્વે, પ્રધાનપણે નીરૂપણ કરેલું છે, તેમ છતાં આ નવમા અધ્યાયમાં પણ એક વાક્ય ભજવાનના પ્રુખમાંથી એકું સરી પડ્યું છે—

સંન્યાસવોયુક્તમા ।

—જી. ૧૮૨

એટલે કર્મફલના ત્યાગથી સંન્યાસથીથી પ્રુજા થીતવાયેાં થઈને તે અર્જુન, તે પ્રુજા થઈય ને મને પામીય.

“સંન્યાસવોયુક્તમા” આ શબ્દોમાં વળી નિરાતિ અને પ્રગતિ એ બન્ને નિશાને ઉદ્દેશ કરવામાં આવેલો છે

આ ૧૪થી પ્રવૃત્ત ઝીનાશાક કપ વસ્તુ થીક કરવા માગે છે, કથેા ઝીનાને સહીન કરવાનો છે, તે જાખન સર્વ પ્રુચ્છનાં હક્કમાં રહે અને કેાઇ પણ જીતાભક્તથી જુલવાય ખાઈ ખાંદે રહે ચઢી ન આવ, તે જાતર ભજવાન ઝીતામાં વખતે વખત ઇચ્છા કરતા રહે છે તે શ્રીનેાં એક ઇચ્છા તે “સંન્યાસવોયુક્તમા” શબ્દોમાં સમાયેલો છે. તે એ કે ઉપદેશ કર્મફલનેાં ત્યાગ કરીને તે જાખથી પ્રુજા થીતવાના થઈને અનુપે શોધ પામવાનો છે આ ઝીતાનેાં પ્રતિષ્ઠા વીવ.

આ નવમા અધ્યાયને અંતે જ્ઞાન માં શ્લોકની જાણ અને શબ્દો જોતાં આપણને સકલ જાગરે કે આ નવમા અધ્યાયનો કોઈ શ્લોક ભજવાને અત્યંત ઉચ્ચેરમાં થઈને કહ્યો છે તે શ્લોક આપણે બેઠાં છે—

હિ પ્રવર્તમાન્યા પ્રુજ્યા મદ્યા રાજવપસ્યા ।

મનિવમપુર્ણ છોદમિથં કામ્ય મમત્ત્વ માનુ ॥

કાશય કે એમાં ૧૪૫ પેાલીવાળા શીલો, વેરપે અને દુરો છે તેમાં પણ મારા જામલ કરીને ૧૨મ મળીને પામે છે તે પછી પરિત્ત એવા જાકલો, ભકતો અને રાજકૃપીઓ તે ૧૨મ મળીને પામે એમાં તે કઈ નવાઈ નથી. ૧૨મ આ અનીલ વીનાશી નાશવત અને દુષ્પ્રમથ સહારમાં આવીને શોધેાં મંદિરનીજ ઉપાસના, મેવા કરવી એકે, તે શીવાય જીલે રાહવારી મારે દુનીયામાં નથી

ઉપર જણાવ્યા પ્રમાણે નવમા અધ્યાયનેાં ચાર છે

આજ કલમાં અધ્યાયમાં અર્જુનની પ્રાર્થનાથી ભજવાને પોતાની બનેક વિભુલીએનેાં ઉદ્દેશ કથેાં છે ૧૨મ તેમનેાં ઉદ્દેશ એટલેાં છે કે એને વ્યાપક ઇચ્છાની વીરાટ કચ્છની ભાવના થઈ ચાલી નથી, એને નીરજન નીરાકારમાં ઇચ્છાની ભાવના થઈ ચકી નથી, ભાવના અનુભવી ચકી નથી, તેવાએ માટે અમુક અમુક વસ્તુમાં ૧૨મિચ્છ રહેલો છે એવુ જાક દેવડ વચમાં આવે કે તુરત તેને ૧૨મિચ્છની રમૂસિ થઈ આવે છે પણ તેજા ઉપાસકે પોતાની ભાવના એક વસ્તુમાંથી જીલમાં અને જીલ વસ્તુમાંથી ત્રીલમાં એમ ફરક વસ્તુમાં ઇચ્છા વ્યાપેલો છે રહેલો છે, એવી ભાવના વધારતા જવી, તેમ કરતા કરતા ઉપદેશ વીરાટ ઇચ્છાની ભાવના તરફ અનુભવ પહોંચી ચકયો. આજ પ્રમાણ ફરક મુર્તિની અંદર ઇચ્છાના અંદરી તરફ સમજવુ એટલે કે ફરક મુર્તિ એ ઇચ્છાની અમુક એક ચકી, કરાના મતિક તરીકે કલ્પા એલી છે, તેથી તેવલા મુર્તિ ચકી સત્તા પનાવનાર

ધૈર્યનું ભાન તે સુર્તીની સેવા, પૂજા, બકતી અને દર્શનથી થાય છે, પરંતુ ધીમે ધીમે ધૈર્યની ખીણ સુર્તીઓ, બીજા પ્રકારની શકતીઓના પ્રતીક તરફ આપણી ભાવના લેવાવી છેવટ વીરાટ, નીજન, નીરાકાર ધૈર્ય તરફ ભાવના પહોંચશે.

ધૈર્યની સુર્તી ખરી રીતે હોય શકે નહીં. પરંતુ તેનો અસુક અસુક શકતીઓને લક્ષમાં રાખી તેવી તેવી સુર્તીઓ વિદ્વાનોએ કહેલી છે.

ધૈર્યને ત્યારે જગતનું અગર ધર્મીય અને ગરીબાનું રક્ષણ કરવાનું હોય છે ત્યારે ધૈર્યની વીણ સુર્તી કદપવી પડે છે, કારણ વીણનું કાર્ય જગતનું રક્ષણ કરવાનું છે, પરંતુ શકતી વીણ, સામયિક વીણ, જેમ મનુષ્ય પાંગળા ગણાય તેમ હેવ પણ પાંગળાજ હોય. તેથી વીણરૂપે જગતનું પાલન કરવાનું હોય છે, ત્યારે પાલન કરવાના સાધન તરીકે લક્ષ્મીની જરૂર પડે છે કારણ લક્ષ્મી યાને દ્રવ્ય શીવાય સર્વ પ્રકારનું રક્ષણ અશક્ય છે. તેથી રક્ષણ કરનાર હેવ વીણની શકતી યાને સી તરીકે કે લક્ષ્મીની કલ્પના વીણનોએ કરેલી છે તેજ પ્રમાણે જગત અગર પાપીઓનો સંહાર કરવાનો હોય ત્યારે ભગવાનની સંહારક શકતીને મહાદેવ અગર શંકર તરીકે કલ્પી તેની સુર્તી વિદ્વાનોએ કલ્પી છે પણ તેવા મોટા દેવ મહાદેવ અને શંકર પણ શકતીને અભાવે કંઈ કરી શકે નહીં માટે તેની શકતી પાવંતી યાને હીમાલય પર્વતની કન્યાને કલ્પવામાં આવેલી છે. કારણ અગાઉના જમાનામાં ત્યારે પાપાણુ યુજ ચાલેતો હતો ત્યારે મનુષ્યો પાસે પાપાણુનાં હથીઆરો હતાં તેવે સમયે સંહાર કરનાર દેવને સંહારક શકતી તરીકે પાપાણુના મોટા ગંજ જેવા હીમાલયની પુત્રી પાવંતીનેજ શકતી તરીકે આવેલી છે.

આ સંહારક દેવને મહાદેવ એટલે મોટા દેવ અથવા શંકર એટલે કલ્યાણ કરનાર કહેવાય છે. તેનું કારણ એ કે તે પાપીલોકોનો સંહાર કરી પ્રવીણ લોકોનું કલ્યાણ કરે છે, એટલે સૃષ્ટિને સારી રીતે ચલાવે છે, માટે તેનું નામ શંકર. હાલના જમાનામાં મેલસ્ટ્રેટો યજ્ઞને પાપી ખરા શુન્હેગારોને સખત નરથત કરી, પવિત્ર પ્રુન્યથાળી મનુષ્યને નિર્ભય બનાવે તો તેવા મેલસ્ટ્રેટ પશુ તેટલા પુરતા તે તે પ્રદેશના મહાદેવ અગર શંકર ગણાય

આ રીતેજ બીજા ધૈર્યની શકતીની સુર્તીઓનું સમજવું. જેવા કે મણપતી નવ દુર્ગાઓ વીગેરેનું સમજવું. આ બધા દેવોમાં ધૈર્યની એક અંશ એક પ્રકારની શકતીને અનુલક્ષી સુર્તી બતાવી છે અને પછી તે શકતીને અનુલક્ષી તેની રત્નતીનું એક મોટું પુરાણ લખાયું છે. જેમકે વીણ પુરાણ શીવ પુરાણ, હેવીપુરાણ, ગણેશ પુરાણ વીગેરે.

આ બધાથી ધૈર્યની એકેક શકતીનું ભાન મનુષ્યને થાય છે

પરંતુ આ પ્રણાલીકામાં આ રૂઢીમાં ખામી છે કે એક શકતીમાંથી બીજા શકતી અને પછી ત્રીજા શકતી તરફ ધૈર્યની ભાવના વધારી છેવટ સર્વ શકતીઓ સર્વ દેવોમાં એક નીરંજન નીરાકાર, વીરાટ ધૈર્યનીજ શકતીઓ નીરંજનની આરિપાએલી છે એમ સમજી જઈ વીરાટ ધૈર્ય તરફ ભાવના વધારવી જોઈએ.

ત્યારે હાલ તો સુર્તીઓને લઈને લોકો એક ઠગણું પણ આંગળ વધતા નથી. બીજા શકતી કલ્પીજ શકતા નથી શીવ બકતો વીણ શકતીને માનતા નથી. વીણ બકતો શીવનું નામ લેતાં અભાગય છે, આ સ્થિતિ નફમાં લઈ જનારી છે.

(ક્રમશઃ)

ગીતાગૌરવ ભાગ-પાંચમામાંથી કંઈક—

અશાસ્ત્રવિહિતં ધોરં
તપ્યન્તે યે તપો જનાઃ ।

દમ્માહંકારસંયુક્તાઃ

કામરાગવલાન્વિતાઃ ॥ ૫ ॥

કર્પયન્તઃ શરીરસ્થં
મૃતપ્રામમચેતસઃ ।

માં ચૈવાન્તઃશરીરસ્થં

તાન્વિદ્ધ્યામુરનિશ્ચયાન્ ॥ ૬ ॥

જે મનુષ્ય શાસત્ર વિધિથી રક્ષિત કેવળ મન કલ્પિત ધોર તપ કરીને દંબ, અહંકાર, કામના, આસક્તિના બળ ઉપર શરીરસ્થ યંચ મહાજૂતેના-શમુદાયને તથા શરીરાન્તર્ગતહું અતર્પીથીને પણ કદ આપે છે તેવા અરિવેદી મનુષ્યોને તુ આસુરી સિદ્ધાંતવાળા બધા.

ગીઠ જા૦—હે અર્જુન, જે તપ આદિ કર્મો કરવાનું શાસ્ત્રમા વિધાન નથી, જેમા કોઈ મુશ્કેલ તથા વિધિનું પાલન કરવામા આવતું નથી તથા નરના પ્રકારના બાધાકેશરોથી શરીર, ઈન્દ્રિયોને કદ પહેચાડવામાં આવે છે એ બીભત્સ રીતીને ધોર તપ કહેવામાં આવે છે એવા કર્મ કરનારાઓમા મહાનો હેશ માત્ર પણ હોતો નથી એવા હોડા પોતાનો પ્રભાવ જમાવવાને તથા બીજાને હંગવાને એવાં પાપકંડ રચીને પોતાની તપસ્થાના અહંકારથી કુલ્થા રહે છે એઓમા તેમની અત્વત આસક્તિ રહેલી હોય છે, તેથી તેઓ ઈશ્વરના દાસ તો નહીં પણ કામનાના દહંકાસ બનીને કોર કમોથી પોતાના પચ મહાજૂન, મન, ભુદ્ધિ, અહંકાર, કયા

ઈન્દ્રિયો અને ઈન્દ્રિયોના પાંચ વિષય રૂપ જૂન ચમુદાયને (ગીઠ ૧૩૫) એટલે કે શરીરને ક્ષીણ હર્ષજ તથા શુષ્ક કરીને પોતાના તથા બીજાના આત્માને પણ તસ્ત કર્યા કરે છે આ પ્રમાણે શાસ્ત્રથી પ્રતિકુળ આચરણ કરનારા ઓમ શક્તિથી રક્ષિત તથા આચરણ હોય સક્ષિત થમોડી તથા સ્વાર્થી મનુષ્ય સોળમા અધ્યાયમા વર્ણન કરેલી આસુરી સંપત્તિનાજ અનુરાગી પધિક છે. રાવણ, ત્રિપુરાસુર, આઘાસુર આતિની જેકે તેમની તપસ્થાથી પણ સારને કલેશ પહેચે છે

કંઠ ધ૦—મિત્રો, જાજ કાલ મજા મેઝો પોતાના સ્વાર્થી સાધનાના બીજા કોઈ ઉપાય ન હેખાતા જપ્, તપ, સમાધિ વગવવી અત્ર ધૂણી તાપવી આદિના બરસાવ મલાખા કરે છે. મોટા મોટા મેળામાં, તોજ સમાનેમાં અત્ર કોઈધારિંક પર્વના અવસર ઉપર તમે ભોલું દઈ કે, કોઈ બીજા પિતામહની આસુરીના ઉપર સતા છે, કોઈ પચાગ્નિથી મીડીને એ ઇસ્ત અગ્નિસ્થપીના તપ કરે છે, કોઈ ઈશ્વરી છે, કોઈ હર્ષનાહ છે, કોઈ કપે માથે બટાએલા છે તે કોઈ ભરમ એઓને ખાતરણ મેટલા હોય છે, પરંતુ તેમની કાનત પૈલા ઉપર બાગેલી હોય છે, અમરાળી તેઓ અજના અછે દૂર રહે છે આ પ્રમાણે એ જામી તપરૂપી છેવમા પીઠારૂપી બીજા વાને છે તેનાથી રેશા થનારા ફળથી તેમને આપો જન્મારો પીઠાજ ભોલવવી પડે છે. બે અંત કરણ સ્વચ્છ હોય, તેમાં મુગ્ધ રચારી ગધ પણ ન હોય અને પરમાત્મ તરફ બાગેલું હોય તે તેઓ તપરથના ઉપશોક્ત પ્રકાર દુષિત નથી પણ કેદલાય પ્રકાર છે કાઆનુમેરિત પણ છે પણ બે અંતરકર સાદે હોય તે કોઈ તપસ્થાની કુશનશરી કરવાને એવાં વિદ્યેવાળા

સ્વયંભાગ્યાવેશ્ચ સા માટે ? ને લોકોના શરીર તેમના કાષ્ઠમાં રહેતા નથી અને મન, યમ નિયમોનું પાલન કરવામાં અશક્ત હોય છે એવા લોકોને સાર રહેલાં કલ્પયોગનાં આસન, મુદ્રા, બંધ આદિ બતાવેલાં છે, તથા શીતોષ્ણ આદિ દ્વંદ્વ સદનના અભ્યાસને અર્થે 'પંચાગ્નિ તાપન આદિની પણ પ્રક્રિયા છે, પણ એ સર્વ ઉચ્ચ સ્થિતિમાં પહોંચવાને સાર થોડા ઠાળ સુધી કરવા યોગ્ય સાધન મ ર છે. અભ્યાસમાં ભોક્ષા એ વાત ઉપર ખ્યાન ન આવતાં એ બાદ આરંભરેને જ પ્રધાન થયે સમજે છે અને જન્મમર તેમને જળામાં ઘટાવાવી રાખે છે. પ્રથમના ઋષિ મુનિઓ પણ મનોનિમગ્ન તથા પોતાના ક્ષેપ ઉપર સદાએ દ્રઢ રહી સકાય તેને સાર રહેલાં વિશેષ નિયમોની સાથે કઠોર તપ કરતા હતા, પણ તે પ્રભુપિલચે' મનું કંટું, નહીં જોવા પણ અંશે પૈસા પિલચે'. અસહમાં તો જાળન, ખ્યાનના સાત્ત્વિક પ્રકાર ગીતાના છઠા અધ્યાયમાં કથિત છે તે જ ઉત્તમ છે. યથા—

યુક્તાદ્યવિહારસ્ય યુક્તચેષ્ટસ્ય કર્મસુ ।

યુક્તસ્વપ્નાવબોધસ્ય યોગો મવતિ દુઃસ્વપ્ના ॥ ૧૭ ॥

નેતા બહાર વિહાર નિયત છે, જેમનાં કર્મોના વ્યવહાર તેણી જાળીને થાય છે, ને નિયમિત રીતે જાણે છે અને નિયમિત રીતે જાગૃતા રહે છે, તેવાઓને સાર થોડા દુઃખને નષ્ટ કરનારા અને સુખપ્રદ થાય છે. થોડું ખાતું જાગર એકવાર ખાતું એ એક પ્રકારનો ઉપવાસ છે, જે કાંઈ મનની પ્રસન્નતાને ભોજે શુદ્ધી જૂએ મરે તો તેને ઉપવાસ કહેવાય નહીં. મનનું સમતપપલ્લું જાળવી રાખવાને સાર મત કરવામાં આવે છે. તેમ ન થાય તો મતોનું કાંઈ પણ પ્રયોજન નથી. હક જામર જાળાકારથી જે કામ થાય તે અમુકોનું થવાનું, દેવતાઓનું નહીં. તેથી એના ઉપવાસ, મત જામર નિયમ રાખે કે જેનથી શરીરની શક્તિ ક્ષીણ ન થતાં મનને ઉત્સાહ અન્યે રહે. આ વાતોમાં લોકમાં દેખાડો કરવાની બાબત કદી પણ ન

રહેવી જોઈએ. પ્રભુ તો તમારાં કર્મોને હજારો આંખોએ દેખે છે, તેમની દર્શનશક્તિ સુવિશાળ પહોંચેને ભેદને અંધારી શુદ્ધાઓમાં નેટલી સહેલાપથી પહોંચે છે તેટલી બહાર પહોંચતી નથી. કોઈ કંઈ જાળમરો કરીને (સ્વસ્થતાથી નહીં) કરવામાં આવે તો તેમાં દંભ અને અહંકારની માત્રા જરૂર હોવાની. તેવે સમયે 'પ્રભુ તિરોહિત' થઈ જાય છે અને તપસ્યા, કેવળ એક વ્યવસાય માત્ર જ થઈ જાય છે. અહંકારકારી તપસ્યા, ઉપાસના, પ્રજ્ઞાના દરવાજામાં કદી પહોંચતી નથી, એ વિષયનું એક રસક દ્રષ્ટાંત સંભળાવવાનું અનુમિત નહીં ગણાય —

દિમાલયના કોઈ તપોવનમાં એક બારી તપસ્વી તપોધન નામના મહાત્મા રહેતા હતા. તેઓ કદી ઉખાં-બાહુ યજ્ઞને, કદી એક પગે ઉભા રહીને, કદી માન એક જ માસ ખાધેને તો કદી મહીનાઓ સુધી પવનનો બહાર કરીને, એમ એકથી એક કંઈ પણ તપ કરતા હતા. તેમનાં એવાં કઠોર મતોની વાત સંભળીને દૂર દૂરથી અનેક સાધુ મહાત્માઓ તેમનાં દરોને આવવા લાગ્યા. સારે મહાત્માઓએ પોતાનો કંઈ જોનાથી પણ વધારી દીધે તેમણે સર્વે તપસિદ્ધ કરી દીધું કે પ્રત્યેક બાર બાર વર્ષે હમે હમારો એક એક નિયમ વધારતા ચાલીશું અર્થાત, પહેલા મુનિ, પછી તેની સાથે જ ક્રમશઃ ઉધ્ધવાહુ, અગ્નિભક્ષી, વામુભક્ષી ઇત્યાદિ યજ્ઞને તપ કરીશું. તેઓ એવો વિચાર કરતા હતા કે—હું જેટલાં સાધન કરું છું તેટલાં સાધન કરવાની હિંમત કોઈ પણ તપશ્રીમાં નથી. યજ્ઞને સાધુ આ તપોવનમાં આવ્યા પણ મારી એધીએ પહોંચેયો તેમના કોઈ પણ નહોતો, બાટલું કંઈ પણ સાધન હું કરું છું. અરવ, આ પ્રકારે તપસ્યા કરતાં કરતાં યજ્ઞ વર્ષો વીતી ગયા. અને તેમની અરિત અર્થ નારદ જના કાન સુધી પણ પહોંચી ગઈ એટલે તેઓ પણ પોતાની દિશ્વ બીજા વમાનતા અને મુખથી શી તાપશ્વ હનિ કરતા કરતા તપસ્વી મહાત્માના આશ્રમ ઉપર

આવી ચઢ્યા પહેલુ તારદણના આવવાથી પણ મદા
રમતા ચિત્તમાં ઠાંધિ પણ આદરભાવ પ્રગટ થશે નહીં
અને માણવી રીતથી તેમને કહ્યું—કહો તારદણ, આપ
કેવી પાસ જઈ રહ્યા છો ?

તારદણએ કહ્યું—મદને, હું જ્યોત્ષ્ણા સ્ત્રીને વૈકુંઠ
તરફ જતા હતા, ત્યાં માર્ગમાં મેં આપની મુલાકાત
આન સંભળ્યા, તેથી આપનાં દર્શનની ઇચ્છાને શેષી
કર્યો નહીં.

મદાભાણએ કહ્યું—આપે મળી કૃપા કરી પણ
આપ મુકુન્દમાં જન્મેલા છો તો ત્યાં પ્રભુને એ જરૂર પૂછી
જેને કે મારો હૃદય કરવામાં આવેલી વાર ક્યા માટે
યાદ છે ? મારાથી અધિક તપ કરનારો પણ શું કાંઈ
કામ તેમની કૃપિમાં છે ? તારદણએ એ વાતનો સહન
રતીકાર કરી તેમની વાતોમાં પ્રાપ્તિ જ
શકિ છે 'આપ જન્મ ન થયો હું શીધ પ્રભુને પૂછીને
આપને મૂલ્યાંકન આપીશ' એટલું કહીને તારદણએ ભાંયી
વિદાય લીધી વૈકુંઠમાં જઈને તેમણે પ્રભુને કહ્યવ
પ્રજ્ઞામ કર્યા અને અન્ત્ય સમાચારોની વચમાં એ મર્ગ
પણ છેડી કે—દિમાલયના તપોવનમાં તપ કરનારા તપો
વન મહામાતે હૃદય કહા સધી કેમ થશે નથી ? કાલ
વાને પૂછ્યું કે—એ તેલવા દિવસથી તપ કરે છે ? તારદ
ણએ કહ્યું—હું શુ કહું આપ જાણતા જ હો, કદાચ
સે કોઈ મર્ગ થયાં તેઓ તપ કરે છે તેમણે કહ્યુંમા કંઈ
એટલાં જમાં તપ, યોગ આદિ સાધન કર્યા છે કે કાંઈએ
એક જ જીવનમાં એટલા તપ કરેલાં સંભળ્યાં પણ નહીં
હોય હવે તો તેઓ વૃદ્ધ થઈ ગયા હાલ પરી થયા અને
વાળ તો પાડીને ગ્રંથ થઈ ગયા

કનકાને કહ્યું—ભૂલો તારદ આ ચોપડીએ પડી
છે તેમાંથી કાઢી નાખવળી પ્રસન્ન થયાંને તેમનું
નામ જોઈ સો, તેમાં એ પ્રમાણે લખ્યું હતો તે પ્રમાણે
થશે તારદણ પુસ્તાક લખને આદિથી અંત સુધી લખી

મયા એક વાર નહીં બેવાર નહીં, પણ ત્રણ વાર પણ
તપોવન મહાત્માનું નામ તેમણે નિઃશૃંઝી નહીં. અંતમાં
જરા કમ ઇંધી મોલ્યા—પ્રભો, સામંતનું છે કે મર્ગ
લોકની રક્તશામા ધણે મોટાના માટે છે, પણ હવે તો
એમ જ જુદું છે કે આપને ત્યાં પણ એવું જ અધર આવ
મયા માંડ્યું છે આટલા મોટા તપસ્વીનું આપને કાં
નામ જીવંત પણ નથી !

પ્રભુએ હસતાં હસતાં કહ્યું—મા નામાવળીમાં
એમનું નામ ન હોય તો તેમાં મારો દેવ નથી, બદલાવથી
જે લોક તપ કરે છે તે મને તેલવા મોટા તપસ્વી હોય
તો પણ તેમનું નામ અહીં લખ્યું કરવામાં આવતું નથી
આ સામંતનાં તારદણએ વિચાર કર્યો કે—વાત તો
પરાયર છે. એ તપસ્વી જરૂર ચક્ર કરી છે તેમાં કોઈક
નથી તેણે મારી સાથે પણ તપસ્વાના જળ હવર છુપો
વર્તાવ કર્યો હતો તારદણ કનકાન પાસેથી વિદાય
લખને કમલ મુલુકોક તરફ આભા અને તપસ્વીજના
અશ્રમ હવર પહોંચી થઈ તેમને દેખતાં તપસ્વીએ
પૂછ્યું—મદારાજ, મારી વાતનો જવાબ કાળ્યા કે નહીં ?

તારદણએ કહ્યું—હા મેં આપને કાર પૂરી કાઢી
કરી પણ કનકાવળના હૃતરથી મને મહું આશ્ચર્ય થયું
તેમણે કહ્યું કે આપની ઉપાસના બદલારના ભારની
સાથે બંધ એથી છે તેથી તે આપને હવર આપવા દેતી
નથી આ સંભળીને તપસ્વીજ ધણાજ થઈ જતા થઈને
મોલ્યા—દેવજો, કનકાને વચાકાંજ કહ્યું છે ખરેખર છે
કે મારામાં બદલારની આત્મા રહેલ છે હું સર્વદા મારી
તપસ્વાનું અભિમાન રાખુ છું મારામાં એ મોટો દેવ છે
હવે આજ્ઞા હું આપની દાસ સંસ્કર કરીને અભિમાનો
ત્યાગ કરી છું એટલું કહીને મદાભાણે તે તપોવનમાં
રહેનારા નાના મોટા ધર્મ સિદ્ધ, સાધક તપસ્વીઓને
અમદિરે પોતાના આશ્રમમાં આમંત્રિત કર્યા અને
પોતાને કાચે સર્વનાં ચરણ પ્રજ્ઞાલન કર્યા, ચિન્તિત કાવચી

સર્વનો સત્કાર કરીને નારદજીની સાક્ષિમાં પ્રાર્થના કરી કે—મહાનુભાવ વૃંદ, અસાર સૂધી હું મને પોતાને સર્વ શ્રેષ્ઠ તપસ્વી સમજવો હતો તે મારી મોટી ભૂલ હતી. તપસ્યાના ગર્વમાં ચક્રચૂર રહીને આટલું જીવન મેં ટાઢ તડકો સહન કરીને કુંઠો સમાન નિરર્થક વીતાડી દીધું છે. હવે હું આપની કૃપામાં છું. આપ મારી સામર્થ્યનુસાર યોગ્ય તપશ્ચર્યાનું વિધાન કરીને મને અનુગ્રહિત કરો. વૃંદ તપસ્વીજનાં વિનયપૂર્ણ વચનોથી સર્વ સમાજત મુનિવૃંદનાં હૃદય મહાગદ ચર્ષામાં. એ તો સ્વાભાવિકજ હતું, પરંતુ એક અપદિત ઘટના પણ બની ગઈ. એક ખુણામાં દિવ્ય ખરિની સાથે પ્રકાશ છતાં ફેલાઈ ગઈ અને તેમાંથી વિમાન સમેત બે સ્વર્ગીય વ્યક્તિઓ પ્રગટ થતાની સાથેજ તપોધન મહાત્માને વિમાનમાં બેસાડીને લાધી ગઈ. તે પછી સર્વ લોક નારદજીની પ્રદક્ષિણા કરી રીતે પોતપોતાના આશ્રમમાં ચાલ્યા ગયા. કહેવાનો અભિપ્રાય એ છે કે, કોઈ બીજા ઉપર મોટા યજ્ઞને પોતાનો પ્રભાવ જમાવવાને સાર કોઈ ગમે તેટલાં સારાં ધામ કરે પણ તેનાથી સફળતા મળશે નહીં. ધાર્મિક ધામમાં સરળતા અને નમ્રતાની સર્વથી અધિક આવશ્યકતા છે. એમ હોય તો કોઈ ક્રિયામાં કોઈ ભૂલ ચૂક થઈ ભય તો તેને ભજવાન પૂરી કરી દે છે.

વસ્તુતઃ વિચાર કરવામાં આવે તો કોઈ પણ કર્મ પદ્ધતિથી પણ સફળ વિધિ વિધાનથી થયેલા મનપૂર્વક કરવામાં આવે તો પણ તે પ્રજ્ઞતા મહીમાને પહોંચી શકે એવી શોભતાવાળું યત્ન નથી. સર્વ સમર્થ, અનંત બ્રહ્માડિના અધિપતિ સર્વ શક્તિમાન પરમેશ્વરનો પ્રેમ મેળવવાને અર્થે, હૃદય જન્મ મનુષ્યોનાં કર્મ સમર્થ થઈ શકતા નથી. ક્યાં તેનું અનંત ઐશ્વર્ય અને ક્યાં આપણી અર્થિયોનાં હૃદય હૃદય વસ્તુઓ. આપણે સમજીએ છીએ કે તેની રજીત પ્રાર્થના અગર જપ તપ કરીને તેને સંપૂર્ણ કરી લઈશું, પણ એ તો મન વાણીથી

અગ્રાચર છે. આપણે સમજીએ છીએ કે પ્રજ્ઞને સુંદર સિંહાસન ઉપર બેસાડીને તેમને સુશોભિત કરીશું, પરંતુ એ તો સમસ્ત જીવનોના સિંહાસનોના અધિપતિ છે. આપણે ધારીએ છીએ કે સુંદર સુંદર વસ્ત્રાભૂષણોથી તેને પ્રસન્ન કરી શકાય છે, પણ એ તો પોતાના ભક્તોને અષ્ટ-શિદ્ધિ નવનિધિ પ્રદાન કરે છે. તેની પાસે ક્યાં વસ્ત્રાભૂષણોના અભાવ છે? આપણે સમજીએ છીએ કે પ્રજ્ઞને વિવિધ ફળ, મિષ્ટાન્ન, હાથપગ ભોજન આદિથી સંપૂર્ણ કરી લઈશું, પણ એમની પાસે તો મહાલક્ષ્મી અને અનંતપૂર્ણ વિરાજી રહ્યા છે. ખરી વાત એ છે કે પ્રજ્ઞને કોઈ પણ વસ્તુની જોટ નથી, તો પણ પોતે મહાન દયાળુ છે, તે પોતાને માર નહીં પડે કૃપા કરીને આપણા ઉદ્ધાર કરવાને સાર, આપણને પોતાના જ્ઞાતિ નિરંતરમાં લઈ જવાને સાર તથા આપણી શક્તિ તારતમ્ય જેવાને સાર અતિ સામાન્ય કર્મો અને પદાર્થોનો પોતે અંગીકાર કરે છે. એ અંગીકાર કોઈ અભાવને કારણે નહીં પણ આપણા ઉપર અપાર-દયા દેખાડવાને સાર કરે છે. મરીજ, દુષ્ટી સર્વ પોતાના સામર્થ્ય અનુસાર સાદામાં સાદો ઉપકાર લઈને પ્રજ્ઞના કૃપામાં પહોંચી શકે છે. પ્રજ્ઞ કર્મના ગૌરવ કે વસ્તુના મૂલ્ય ઉપર ધ્યાન નથી આપતા, પરંતુ અંતરના પ્રેમ તરફ શુદ્ધ હૃદયની શ્રદ્ધાભરી ભક્તિ તરફ નિરંતર ધ્યાન રાખે છે. એક સ્થલે શિવપુરાણમાં તેમણે કહ્યું છે કે—

પરિપૂરણસ્ય નિત્યસ્ય મમ કિં ક્રિયતે નરૈઃ ।

ફિન્તુ સર્વોત્તમા દેવિ મયા ભાવો હિ મુશ્કલે ॥

અર્થાત્ હું નિત્ય પરિપૂર્ણ સ્વરૂપ છું, મારો સંતોષ મનુષ્યો દ્વારા અથવા કેવી રીતે થઈ શકે? હે દેવી, સર્વ જીવોનો અંતરાત્મા હું કેવળ તેમના ભાવને જ અલગ કરી છું. અર્થાત્ પ્રજ્ઞની ઉદારતાને જુઓ, ઉપકાર તો કોઈ પણ સેતા નથી પણ બદલામાં કેટલો પુરસ્કાર અપાઈ શકે છે, એ ઉદારતા સર્વ સમર્થ પ્રજ્ઞને શોભે છે. બે કોઈ

જનીયનો ધાળો કોઈ ધનિકને પુલનો એક ગુરુદેવો
કરે છે તેવો ધનિક સદેશ્વરના તેને ચાર આઠ આના
પુરસ્કાર આપી દે છે, કોઈ કૃપાક (ખેડુત) પહેલા કૃપ
જની વરુ જમીનદારને નબર કરે છે તે જમીનદાર તેના
સામક્ષ્ય પ્રમાણે કાંઈને કાંઈ પ્રતિદાન આપે છે, કોઈ
ભિક્ષુક બાહ્ય કોઈ રાજાની પાસે એક પ્રુપમાત્ર લઈને
ઉપસ્થિત થાય છે તે રાજા તેને સંતુષ્ટ કરીને વિદાય
કરે છે આ સર્વ ધનિક, જમીનદાર અથવા રાજા અદ્ય
સમુદિવાન અને અદ્ય હૃદાર છે તે પશુ તાન શા કૃપ
દારને બદલે એટલા મોટા ઉપદાર આપી દે છે તે પછી
સર્વ ઐશ્વર્યવાન, અનંત હૃદાર પરમ દયાળુ ભગવાન
જક્તોએ આપેલા નજવા ઉપદારને બદલે મોટા પુરસ્કાર
આપે તેમાં શો સંકેત છે ? પ્રશ્નને નિમિત્તે કરું છું કોઈ
નામ વિરૂદ્ધ જનું નથી એ એક મુનિચિત્ર વાત છે
પશુ તે કામમા કેવળ મલ્લ પ્રજાએ નિમિત્ત દેવા બેઠાએ,
મોતોમાં પ્રતિષ્ઠા વધારવાની કામના કે રૂપીયા પૈસા મેળ
વાની વાસના તેમાં અપ્રધાનરૂપમાં પશુ રહેલી હોય તે
તે કામ પ્રજા પ્રીતિ સંપાદન કરી શકશે નહીં હા, શેષ
અંશમાં એટલીજ મર્યાદા પ્રતિ કાલે થઈ જાય, પરંતુ એ

લોક કેવળ લોક દેખાવને સાર, સીધા સાચ લોકોને કમ
વાને સાર જપ તપના દેખીતો અમ કરે છે તેમના તે બને
લોક નષ્ટ થઈ જાય છે

જહો સુધી અનુભવના 'વાસ્તવિક ન અભ્યુત્થારા
અદ્યુત્થારાની કામન પૂર્વક કરવાથી થી મતિ થાય છે ?'
એ પ્રશ્ન સમાધાન કમવાને કર્યું આ કમનો ભાવ
એ નિકળે છે કે—અનુભવી શ્રદ્ધા તેની પ્રકૃતિ સ્વભાવને
અનુસાર ચાલિક, રાજ્ય અથવા તામસ હોય છે તથા
તેને અનુસરીજ અનુભવા કર્મોમાં અંતર પડે છે અને
તે કરીને અનુકરણ તેને પ્રથમ પ્રથમ નતિ પ્રાપ્ત થાય છે
પરંતુ રાજ્ય કે તામસ શ્રદ્ધા હોવાથી આશુરી કક્ષામાં
કમેકમે સાફ તેને રહેવું જરૂર એવું કાંઈ નથી પોતાની
સ્વાધીનતાના ઉપયોગને નિયંત્રિત કરીને શારત્રીય
આચરણને બેઠને અથવા શાંકળોને પોતાની પ્રકૃતિના
સ્વાભાવને ધરી ધરી સુધારતા જનુ એ હરેક અનુભવું
કર્તવ્ય છે હા, એઓ તેમ નથી કરતા અને કુલ પ્રકૃતિ
સ્વકાવત્ત્વ અભિમાન કામોને શાંકળો વિપરીત
આચરણ કરે છે તેમને આશુરી કુદિનાજ કહેવા બેઠાએ
અત્ય



મહાદેવનો મહામહીમા

(લેન્—સ્વામી શી શિવાનંદજી, યોગીરાજ, વૈદ્ય, ધન્યવંતરિગુરુ)

આ ચાતુર્માસ્યની શરૂઆતમાં એક આશ્રમમાં
કોઈ એક મહાનુભાવ મહાદેવજીના અધિમાના
નિષ્કર્ષમાં આવી રીતે પ્રવચન કરી રહ્યા હતા—
' એમ તે ઉપાસનાઓ કહ્યા પ્રકારની છે પરંતુ
અમામા શીલતાથી હેલવતી થતી હોય તેવી ઉપા-
સના શક્ય મહાદેવની છે મહાદેવજીની કૃપાથી એ
કોનો બને બલિયોનો મહામહીમા લોકમા

પ્રસિદ્ધિ પામે છે, તેમનું દિગ્દર્શન કરાવીને બાજ
અધે શ્રોતાઓને પુલકશાલી બતાવીશું—

૧—શ્રી કાશીપુરી—બધી કુનિયામાં અત્યુને
ગુરુ સમજવામાં આવે છે પરંતુ કાશીના મરણને
મગલ કહ્યું છે. એ કાશીનો મહીમા છે, અને એ
મહાવત્ કારણ જગવાન કૈલાસપતિ છે એમકે
જગમાત્રા અનુભવ, અનુભવેમા પણ બાહ્ય અને

બ્રાહ્મણોમાં પણ બ્રહ્મનિષ્ઠ શ્રેષ્ઠ છે, તેવીજ રીતે પૃથ્વીમાં આર્યાવર્ત, તેમાં વળી તીર્થસ્થળ અને તેમાં પણ કાશીનું સ્થાન સર્વોત્તમ છે, કેમકે આ અવિમુક્ત ક્ષેત્ર પંચકોશાત્મકરૂપથી વિદ્યા અને સુક્તિ બંનેને આપનાર છે. જ્યાંની વિદ્યા બધાં તિર્થોના મહત્વને પ્રકાશમાં લાવે છે તે પુરી પ્રલય કાલમાં પણ નષ્ટ થતી નથી. કેમકે તે મહાદેવજીના ત્રિશુલ પર અવસ્થિત છે. અથવા હાં સુધી પ્રલય કાળનું અપાહ પાણી અને પ્રલયાગ્નિની જ્વાળાઓ પહોંચી શકતી નથી, અહિં વિશ્વનાથ નામના જ્યોતિર્લિંગનાં સાક્ષત્ દર્શનનો લાભ પ્રાપ્ત થાય છે, જે ગંગા અને અન્નપૂર્ણાની વચમાં પ્રતિષ્ઠિત છે. ખીન્ન તિર્થ સ્થાનોમાં જે પ્રાણી મરે છે, તે તે જોના મહિમાથી કાશીમાં જન્મ ધારણ કરે છે. છી તે કાશીમાં મરીને સુક્તિને પ્રાપ્ત થાય છે.

વૃજભુમિમાં ભગવાન કૃષ્ણચંદ્રે અવતાર ધારણ કરીને કેવી કેવી લીલાઓ કરી, અયોધ્યાને પોતાના જન્મથી કૃતાર્થ કરવાવાળા શ્રી રાજા રામે કેવાં કેવાં યજિન બતાવ્યાં, નૌમિધારણ્યમાં અઠવાસી હજાર રૂપીયોએ કેવા કેવા પ્રશ્નોત્તરરૂપમાં સુસંવાદ કર્યાં, વિન્ધ્યક્ષેત્રનો શું મહીમા છે, ચારે ધામ અને બાવન હંદા કેમ બનાવવામાં આવ્યા, માનધાતા વિગેરે જુપતિઓએ જનતાને શો ઉપકાર કર્યો, રણુ, વિક્ર-માદિલ દોષ હતા, આચાર્ય શંકરનું વિજ્ઞાન કેવું છે, વિગેરે પ્રશ્નોના ઉત્તર તમે કયા આધાર પર આપી શકશો? બીજા પશુ ધણુજ આધિ, સુનિ, ભક્ત, સંત, સાધુ, વીર વિગેરે પ્રાચીન કાળમાં થઈ ગયા છે, તમે તેમના વિષયમાં વગર પરિચયથી કેવી રીતે પરિચિત થઈ શકશો? એ બધાનું જ્ઞાન કરાવનાર શાસ્ત્ર છે, લોક કથાઓ છે અને ઇતિહાસ છે. એજ બધા આર્યોના પરિચય આપ-

નાર છે, એ બધાનું નિર્માણ આ કાશી નગરીમાં થયું છે. જે અર્યોની રચના અહિં નથી થઈ, તેના ખરા યોદાની પરિક્ષા અહિં થઈ છે. એવી આ કાશી નગરી છે, તેને જે એ ગૌરવ પ્રાપ્ત થયું છે તેનું એકમાત્ર કારણ મહાદેવજીનો મહીમા છે, જે અહિંના લોકોની બુદ્ધિમાં આટલી શક્તિ લાવી શક્યો છે.

૨—અંદમાના પુત્ર બુધે કાશીમાં બુધેશ્વર શિવલિંગ સ્થાપન કરીને તેની પૂજાથી એ વરદાન મેળવ્યું હતું કે ‘તમારો લોક બધા નફરતથી ઉભો રહેશે, તમારી પૂજાથી બુદ્ધિનો વિકાસ થશે.’

કાશી ખં. ૦ ૫

૩—એક વખત ગરૂડની પાંખો અચાનક તૂટી પડી, તે જોઇને આશ્ચર્ય ચકિત થઈ વિષ્ણુએ વિચાર કર્યો કે વજ્રોના પ્રહારથી જેનો એક વાળ પણ વાંકો થઈ ચકતો નથી, અદ્વાર પણ જેની પાંખો ઉપર વિકલ નિવડે છે, તેની પાંખો કેમ તૂટી પડી? તેટલામાં તેમની દષ્ટિ તપસ્વિની શાહિલી પર પડી, તેને જોતાજ વિષ્ણુ સમજી ગયા કે ગમે તેમ હોય પણ ગરૂડે આ તપસ્વિનીનો કોઈ અપરાધ કર્યો છે, તેના કોપથીજ આમ બન્યું છે. ભગવાને કહ્યું—દેવિ! ગરૂડે તમારો શો અપરાધ કર્યો છે કે જેને કારણે તેને આટલો કઠોર દંડ આપ્યો? તપસ્વિનીએ જવાબ આપ્યો—તેણે મારી સામે સ્ત્રી ભાતિની ધોર નિન્દા કરી છે, તેને અનેક દોષ લગાડ્યા છે, અને જેમ મનમાં આવ્યું તેમ નિઃસંકોચ જોલી નાખ્યું છે, હું તેને સહન કરી શકી નહિ. ભગવાને નમ્ર સ્વરમાં કહ્યું—ગરૂડને અભિપ્રાય સ્ત્રી ભાતિ માત્રની નિન્દા કરવાનો ન હતો, તેને સ્ત્રીઓમાં જે કંઈ દુર્ગુણતાઓ છે તેનું માત્ર દિવદર્શન કરાવ્યું છે, તે નારી ભાતિ ઉપર કંઈક શા માટે લગાડે? આપ

હામા કરો, તપસ્વિ જનોએ આવો કરો દઈ આપવો એ કીક નથી તે સાબળીને શાણકીએ કહ્યું—મારૂં કહેલું કોઈ પણ અન્યથા કરી શકતું નથી, જે કહી દીધું છે, તે ચક્રનેજ રહેશે તેના માત્ર એજ ઉપાય છે—'ગરૂડ શકવેલની ઉપાસના કરીને તેમને પ્રસન્ન કરી લે, તો તે 'પૂર્વ' સ્થિતિને પ્રાપ્ત થઈ શકશે એ સાબળીને જરૂરે વિશ્વની આશાથી ગોઠવુંકિત્રમા જઇને ગરૂડેશ્વર મહાદેવની સ્થાપના કરી અને ચક્રના વરદાનથી ફરીથી પહેલાંના જેવી સ્થિતિ પ્રાપ્ત કરી

૪—દેવમણ નર્મદાના કિનારા પર સ્થિત કોઠારેશ્વર મહાદેવની તપસ્યા કરીને દેવ સમૂહ ને જીવી શકેલા હતા. (રેવા ખંડ અ. ૪૭)

૫—ચક્રમાએ હસપ્રભતિની શાહીણી વિગેરે સત્તાવીસ કન્યાઓ સાથે વિવાહ કર્યા હતા, જે કે તેમા એકથી એક સર્વ સુદરહતી, ૧૨૮ ચક્રમાને પ્રેમ શાહીણી પર અધિક ચર્ચા થયો એ લેદ દર્દિ થી દુખિત ચર્ચા અન્ય સપત્નિઓએ પોતાના પિતા હમને તે વિષે અન્દમાને સમજાવી કેવા કહ્યું પ્રભવતિએ અનેક વાર સમજાવ્યું, પણ ચક્રમાએ ન માન્યું છેવટે પ્રભવતિએ—જે સમાન સંખ્યા વાળાઓમા વિષમતાનો અવહાર કરે છે તે નરક ગામી થાય છે' એ પ્રકારનો ફિટકાર આપીને ચક્રમાને એવો આપ આપી દીધો કે તુ હવે રોગજસ્ત થા.

જાને ચક્રમાની ધન્દ આદિ દેવતાઓએ તથા વસિષ્ઠ આદિ ઋષિઓએ એવી દુર્દયા બેઠાને કહ્યું કે જે ધવાનું હતું તે તો થઈ ગયું, હવે તો તે પ્રભાસ તિથેમાં જઇને દિવ્ય હંભાર વર્ષ સુધી મહામૃત્યુ-જ્વળનો જપ કરે, ત્યારે તેનો 'તપેદિત' રોગ દૂર થઈ શકે, અન્યથા બીજે કોઈ ઉપાય તેને માટે

સારા થવાનો નથી ચક્રમાએ તેમ કરવાથી મહા દેવજીએ તેનો રોગ દૂર કર્યો (રેવા ખંડ)

૬—એકવાર અગ્નિને ઘડોનો માસ ખાધ ખાધે ખાધે જાણુ રોગ થઈ ગયો હતો, તે કોઈ પણ પ્રકારે સારો થતોજ ન હતો, તેથી તે જુગુકચ નામના તીર્થમા જઇને મહાદેવજીનું તપ કરવા હાજરે દેવતાઓએ પણ મહાદેવજીની સ્તુતિ કરતાં કહ્યું કે પ્રભુ, આ અગ્નિ જમારે ગુણ છે આપ તેનો રોગ નષ્ટ કરી દો. મહાદેવજીએ તે પ્રભાણેજ કરી દીધું (રેવાખંડ)

૭—કુબેરના પૂર્વ જન્મની કથા જોવી છે કે—ચક્રદત્ત નામના બ્રાહ્મણે પોતાના ગુણભિષિ નામના પુત્રને તે જીવાર નિગેરેનો દુઃખની કોવાને કારણે પોતાના વરમાથી કાઢી ગુણે. તે જુગુકે તરસ્યા કોજળની ચીધમા એક મ દીરના દરવાજા પર જઈ પહોંચ્યો અને ત્યાં શિવકીર્તન સાંભળવા હાજરો રાત્રે બજાના સૂઈ ગયા પછી તે પ્રકૃતિપશુ મદીરમા ભોગ ધરાવેલા પદાર્થો ચોરવા માટે ઘેટા અને પોતાનું કષ્ટુ ક્ષત્રીને તેની બત્તી બનાવી સળ ગાળીને પ્રકાશ કર્યો ત્યારે પદાર્થો ચોરીને તે બહાર નિકળવા હાજરે ત્યારે તેના પગની કોર વાગવાથી એક આદમી બળી મથો અને તેણે તેને ચોર સમજીને માથામા એવી હાડી મારી કે તે બાજુ મરીને દમચો થઇ પડ્યો

એ દીપકાનના ફળથી બીજા જન્મમા તે કલિક દેશનો રાજા થયો. જુગેરમૃતિના ભળથી તેને રાજ્ય જરના મદીરપાંદીપકાનનો પ્રજન્ન કરી દીધો. ત્યાંથી મરીને તે પુલસ્તના પુત્ર સિંધવના વરમા ઉત્પન્ન થયો. જ્યાં તેણે મહાદેવજીની ઉચ્ચ તપસ્યા કરી મહાદેવજીએ પ્રસન્ન થઇને કહ્યું કે તમે તમારે અભિષેક વરદાન આવો એનું સુમધુર

વચન સાંભળીને જ્યારે તેણે આંખ ખોલી ત્યારે સૌથી પ્રથમ તેની દષ્ટિ પાર્વતી પર પડી, તે તેને કૂર દષ્ટિથી તાકી તાકીને જોવા લાગ્યો. તેનું પરિણામ એ થયું કે તેની ડાળી આંખ કૂટી ગઈ, આ હવે વહાર જોઈને પાર્વતિએ કહ્યું, કે આ તાપસ ઘણો દુષ્ટ માલમ પડે છે, જે મને ભુરી નજરે જોઈ રહ્યો છે. તે ઉપરથી મહાદેવજીએ તેમને એમ સમજાવ્યું કે એ તારો પુત્ર છે, તમે આધારક્રિત સમજીને એકીટસે જોઈ રહ્યો છે. તે પછી મહાદેવજીએ તેને દેવતાઓનો કેશાધ્યક્ષ બનાવી દીધો, પણ કુદૃષ્ટિથી પાર્વતીને જોવાને કારણે કુબેર નામ પડ્યું, બાકી તેનું બધું એકધર્મ મહાદેવજીની કૃપાનું ફળ છે.

(ચિવપુરાન ચં. ૬૨૧)

૮—એકવાર યમરાજે મરીને પરલોક ગયેલા માણસોએ ઋષિને પૂર્વજન્મમાં કર્મનુસાર શૂળી પર ચઢાવવાનો હંક ક્યો. આ હંક લોગવીને ઋષિએ યમરાજની પાસે જઈને પૂછ્યું કે કયા પાપથી તમે મને કાંસીની સજા આપી છે ! યમરાજે કહ્યું—અમુક જન્મમાં બાલ્યાવસ્થામાં તમે અનેક જીવાને સંભાળીને વિધવા હતા, તેમની યાતનાથી તમારે નરક લોગવવું પડ્યું, જેનો એક ભાગ તમે શૂળીનો હંક લોગવીને લોગવી દીધો છે. એ સાંભળીને ઋષિએ ‘આટલા નાના અપરાધ માટે આવો કઠોર હંક આપીને તમે મારી સાથે ઘોર અન્યાય કર્યો છે’ એમ કહીને તેમણે યમરાજને આપ આપ્યો કે તમે મહુખ્ય યોનીમાં ચંડાલ જાતિને પ્રાપ્ત થાઓ.

યમરાજ ઉક્ત આપથી સુક્ત થવાને માટે જનનાથપુરીના કપાલમોચન સ્થાનમાં જઈને શંકરની આરાધના કરવા લાગ્યા. શંકરજીના પ્રગટ થવાથી યમરાજે પોતાના ઉપર થયેલી બળ જબરાઈ પ્રતિ

તેમનું ધ્યાન ખેંચતાં કહ્યું કે પોતાના કર્મફળાનુસાર માણસોએ ઋષિને ફળ લોગવવું પડ્યું, તેમાં મારો શું દોષ હતો ? તે પણ ઋષિએ મને આપ આપ્યો. યમરાજનાં કર્મણપૂર્ણ વચનો સાંભળીને શંકરજીએ કહ્યું—તપસ્વિનાં વચન વૃથા થઈ શકતાં નથી, હા, હું એટલું કરી શકું છું કે શુદ્ધયોનીમાં રહેવા છતાં પણ તમને બ્રહ્મજ્ઞાન રહેશે, અને શુદ્ધ યોનિ જનિત ગ્લાનિ પણ તમને થશે નહિ. આખરે યમરાજે એક ઢાસીને ઘેર જન્મ પામ્યો ક્યો અને તેમનું નામ વિદુર પડ્યું, જે મોટા પ્રભુભક્ત અને જ્ઞાની થયા. આ કૃપા શંકરજીની હતી.

(નાગર પંથ)

૯—ઈન્દ્ર મહારાજે ત્વષ્ટા ઋષિના પુત્ર વિશ્વ રૂપને મારી નાખ્યો. પુત્રવધથી દુઃખી થઈ અને ક્રોધ કરીને ત્વષ્ટાઋષિએ ઢાંચુ તપ કરીને બ્રહ્મા પાસે દેવતાઓને ભયભીત કરનારો પુત્ર ઉત્પન્ન થાય એવું વરદાન માગ્યું, જેનાથી ત્વષ્ટાને ઘેર ‘વૃત્ર’ નામનો પરમ પ્રતાપી પુત્ર ઉત્પન્ન થયો. ઈન્દ્ર પાસેથી બદલો લેવા માટે વૃત્રાસુરે ઘોર તપસ્યા કરવાનો પ્રારંભ કરી દીધો. તેનું તપ જોઈને ભયભીત થયેલા ઈન્દ્રે ક્ષીયી ઋષિના હાંકાંથી બનેલા વજ્રથી તેને મારી નાખ્યો.

વૃત્ર બ્રાહ્મણ હતો, તેથી બ્રહ્મહત્યા ઈન્દ્રની પાછળ એવી પડી કે જ્યાં જ્યાં ઈન્દ્ર ગયા ત્યાં ત્યાં તેનો પીછો ન છોડ્યો. બ્રહ્મહત્યા, મુરખાપણ, ચોરી ગુરૂપતિગમન અને વિશ્વાસઘાત એ મહા પાપોથી બચવું ઘણું જ કઠણ છે, તેનાથી દુખી થઈને ઈન્દ્ર સિંહાસન અને શચીનો ત્યાગ કરી તપ કરવા માટે નીકળી પડ્યા. અનેક તીર્થ, મંદીર, સમુદ્ર, નદી, તલાવ વિગેરેમાં જવાથી પણ જ્યારે બ્રહ્મહત્યાનો દોષ દૂર ન થયો ત્યારે આખરે ઈન્દ્રે હિમાલય પર્વત

૫૨ જાળને કુચ આન્દ્રાયણ, શ્રીમ્ભજનુમાપચાગિન
તપ, વરિમાં જુરણ મેહાનમા રહીને તપા ઠડીમા
જલધારાવાસ અર્થ કરીને ચ કરની તપસ્યામા
હથ દંબર વષ વિતાવ્યું જ્યારે ઇન્દ્રની તપસ્યાથી
પ્રસન્ન થઇને ચ કરણ તેને વરદાન આપવા આવ્યો,
ત્યારે સા જર્વ દેવના હાજર થઇ ગયા. તે સમયે
જુહસ્પતિ મહાદેવજીને કહેવા લગ્યા કે ઇન્દ્ર
દેવતાઓના કહેવાથી જવામુરને માર્યો છે, છતા
પણ તેને પ્રજાકલ્યાણી, તો તેને તમે દર કરો.

આ સામગ્રીને ચ કરણએ પ્રજાકલ્યાણના ચાર
કુકડા થયાં એક જામ નદીમાં, બીજો પૃથ્વીમાં,
ત્રીજો જળ સ્વરૂપે સીમા અને ચોથો શુદ્ધસેવક
પ્રજાલુભા એમ વહેતી રીધા ઇન્દ્ર મહાદેવજીના
પ્રતાપથી પડેલાના જેવા થઇ ગયા. (૨૪અઃ)

૧૦—શુક્રાચાર્ય ને દેવોના શુર છે, તેમને
અગ્રુદ પદાર ૫૨ ૨ કરણની ચોર તપસ્યા કરીને
આત્મ વરદાન માગ્યું—

યદિ તુજે મહાદેવ વિદ્યા વેદિ મહેશ્વર ।

યથા લીલમ્ભિ સમ્પાતા મૃત્યુ સર્વેષામ્બલ્લ ॥

આપ પ્રસન્ન હો તો એવી વિદ્યા આપો કે
જેનાથી મરી મથેલા પ્રાણી જીવતાં થાય ચ કરણ
ના તપાસ્તુ કહેવાથી જો જિજ્ઞાસા પ્રભાવથી યુક્ત
આચાર્યના શિષ્ય મરી ગયેલા હેતો જીવતા થઇને
યુક્તમા દેવતાઓનો સામનો કરવામાં સમર્થ
થતા હતા.

૧૧—જુહસ્પતિના વિવશમાં એમ કહેવાય છે
કે પ્રજાએ સદિ કરવાની જગ્યાથી મરિથી, અગ્નિ
અને અગ્નિના વિચેદ સાત માનસપુત્ર ઉત્પન્ન થયાં
તેમનામાંથી અગ્નિશક્તિ કારીમા જઇ ચ કરણ તપ

કર્યું કૃતસ્વરૂપ મહાદેવજીએ પ્રસન્ન થઇને વરદાન
માગવા કહ્યું તારે અગ્નિશક્તિ કઈ વરદાન માગ્યું
નહી, કેવળ એમ કહ્યું કે મને કૃતવ તમારા દર્શનની
કચ્છા હતી, હું બીજી કઈ ઇચ્છતો નથી તે ઉપર
થી મહાદેવજીએ કહ્યું કે જીવિત, તમે બહુ મારે
તપ કર્યું છે, તમે ઇન્દ્રશિ સર્વ દેવતાઓના શુર થયો,
તમારું 'જુહસ્પતિ' નામ થયે છે તમને વાચસ્પ
તિની ઉપાધીથી વિભૂષિત કરે છું તેમજ સર્વના
શુર અને મહાદેવજીની કૃપાથી થયું (૨૫ અં.)

૧૨—નરનારાયણનો ઉત્તરાખંડમા મોટો
મદીમા છે, આ પ્રદેશને જાડોનારાયણપામ કહે છે
કે જે ચાર પામમાં એક મુખ્ય પામ છે ત્યાં નર
નારાયણે ભગવાન શિવજીનું તપ કર્યું હતું તેમની
તપસ્યાથી પ્રસન્ન થઇને જ્યારે મહાદેવજીએ તેમને
વરદાન માગવા કહ્યું, ત્યારે નરનારાયણ ચક્રજીનું
સ્વરૂપ ભોળે પ્રસન્ન થઇ ગયા અને ધોરણ—'અમને
તમારા દર્શનના લાભથી સર્વ કાંઈ મળી ગયું, હમ
દોડો એટલીજ પ્રાર્થના કરીએ છીએ કે સદા
આપનો નિવાસ અદિજ રહે' ત્યારથી શિવજી
દેનારન યના નામથી ઉત્તરાખંડમાં નિવાસ કરે છે
આ તેજ સ્થાન છે કે જ્યાં મહિષનું રૂપ ધારણ
કરીને જોગખી લેવાથી ચક્રજીએ પાડડોનો
ઉદ્ધાર કર્યો હતો. આજ કાલ ઉત્તરાખંડના એ
પત્તિ પ્રદેશને દેશાશ્વ કહે છે અદિ મોટામોટો
જીવિ, મુનિ, ધીમી યતિ, તપ, ધ્યાન કરવામાં
દમણ પશુ લાગેલા જેવા મળે છે.

આ સર્વ નિદર્શનોને કૃતિત અલ્પમા અધિત
અર્થે જો નિકળે છે કે જેનાથી મનુષ્ય તથા સ્થાન
પણ પૂજનીય થઈ જાય છે અને તેવા સામર્થ્યનું
નામ છે, 'મહાદેવનો મહામદીમા'

પ્રારબ્ધ

(વે.—સિદ્ધરસાય બાલાભાઈ દેસાઈ)

વ્યવહાર ઉપર આત્મપ્રેરણાનુસાર દષ્ટિ કરાવી, યત્ર તત્ર સર્વત્ર આત્મ લાભ છે એટલા અનુભવ સુધી લાવનાર જે પ્રારબ્ધ તે મનુષ્ય માત્રને કેવી રીતે દગો દે છે તે પણ ભેદુ ભેદુએ, ભેદે તે ગમે તે કરે કરાવે તોપણ આત્માનંદમાં વિશેષ અપવાનો નથી.

હો કીસ્મત ! તેં આજ સુધી બહુ દગાબાજ કરી છે. અસુકમાં પરિપૂર્ણ સુખ છે એમ જેખાડી, પરિણામે તેમાંથી મહા કષ્ટ નીપજવી આપ્યું છે એવી દગાબાજી તેં પ્રથમથી મારી સાથે ચલાવી છે એમ હવે મને સમજાયું છે, એટલે હવે તું મને ક્યાં લઈ જાય છે ? શા માટે તું મને લઈ જવાનો યત્ન કરે છે, હું તો હવે અલેક્ષણી સમુદ્રના તટે આવી ચૂક્યો છું. તું મારો છે એમ સમજાવીને તે મને તારે ભરોસે દીધા છતાં તેં મારી ભરખભરમાં હરરાજી કરી એજ તારી દગાબાજી છે, હવે તારી વિશ્વાસ નકામે છે, તારાથી દોરાવું એ બૂલ છે. અલેક્ષના પ્રદેશમાં પ્રારબ્ધનો અવકાશજ નથી.

પ્રારબ્ધ—કીસ્મત કેવી દગાબાજી કરે છે તેનો મને પૂર્ણ અનુભવ છે અને એવો અનુભવ પ્રત્યેક માણસને થયો હશેજ. પ્રથમ અને સર્વથી મોટી દગાબાજી તો એજ છે કે આ દુનિયામાં અવતરવાનો હેતુ જે છે તેજ કીસ્મતે વ્યર્થ કરી નાખ્યો છે. નીજરૂપ થવું, આત્મ લાભ પામવો, અલેક્ષ અનુભવવો એ અર્થે જગતના અનુભવની યોજના છે, તો તે દષ્ટિથી વ્યવહારને ન લોગવવા દેતાં કીસ્મતે તો આપણને પોતાના જેવાં કરી દીધાં, પોતારૂપ થનાર્યાં. કીસ્મત જે ખરું ખોટું બતાવે

તેજ ખરું ખોટું માનતા આપણે થયાં. એમ થવામાં બાધ કંઈ નથી, પણ આણે તો એમ કરી કરીને આપણને રંજાડવા માંડયાં, પ્રત્યેક અનુભવમાં રંજાડાખ આપવા માંડ્યું પણ એણે વિસ્તારદેશી વિશ્વાસની મોહિની એવી છે કે જેમ જેમ એવી રંજમાં પડતા ગયાં તેમ તેમ પણ આપણે કીસ્મતને તે કીસ્મતનેજ વળગતાં ગયાં, બીજી કોઈ પાસ દષ્ટિ કરી નહિ. કીસ્મતે પણ આપણને પોતાની ગોઠમાં વધારે લપેટી લેવા માંડયાં; એમ લપેટીને પણ ઉવટ શું કયું ? ભરોસે લઈને હરરાજી કરી. છુપી રીતે શા કયો; નિરંતર મામિક વેદનારૂપ કલેષ આપ્યો. એવા કીસ્મતને ભરોસે રહી તે દોરે ત્યાં દોરાવું વ્યર્થ છે.

કહીં કહીં અતિ રમણીય તેજમય બ્રાહ્મકાર બતાવીને પણ અંદરથી તો મહા આપત્તિરૂપ પરિણામ ઉપજાવી આપ્યું. ખરા મુખને પણ મરણ વિચોગ-આહિ બયના ત્રાસથી મુખરૂપે લોગવવા ન દીધું, સનમ—માશુક—સાત્ત્વિક દારાહિ સમજો, કે પારમાર્થિક આત્મમયતા સમજો પણ તે સનમના હીંદારનું જે પરમ સુખ તેમાંજે તેં જુઠાઈ પાડવાની યોજના સ્વભાવ સિદ્ધજ જડી રાખી-વ્યાવહારિક માશુકના દરોનમાં આપોતું નિમિષોન્મેષ પામવું તેમાં જુઠાઈ પાડવાની યોજના કરી રાખી છે, પરામાર્થિક માશુક આત્મમયતા તેમાં પણ વ્યવહારના વિશેષરૂપી ક્ષણ તેં સ્વાભાવિક રીતેજ ઘાલી દીધી છે. તારી દગાબાજી પકડાય કે સમજાય તેમ નથી, વસ્તુ—ગાંતીથી સ્વભાવ સિદ્ધ પદાર્થોમાં પણ તારી દગાબાજીની રચના તેં ઘાલી દીધી છે, એવું જે તું તેનો વિશ્વાસ વ્યર્થ છે.

અમુક કાર્ય સાધવું છે, તેના આટલાં આટલાં કારણો—સાધનો છે, એ સર્વનો ચોક્કસ હોવાનું કરીને અમે સાકળ ગોઠવીએ છીએ અને એ સાકળને છેડે ફલ-કાર્ય-મળશે જ એમ આશા રાખીએ છીએ, પણ તે સાકળના આકાંક્ષા અને યોગ્યતા હોઈએ છીએ તેમા, કેટલું જોઈએ તેવી રીતે, તું કેટલાંક આકાંક્ષા એવા ઉલટા કરાવી દે છે કે એ સાકળને છેડે પદોત્પાદનને બદલે વખતે વેલા ઉલટા આકાંક્ષાથી કેટલાંક અમે જ્યાંથી નીકળ્યા હતા ત્યાં પાછા આવીએ છીએ, કે વખતે ઇચ્છા કરીને પ્રાપ્ત ન કરતા કોઈ વિપરીત ફળને પ્રાપ્ત કરીએ છીએ ધર્મીવાર અમે સ્પષ્ટ જણતા હોઈએ છીએ કે અમુક વસ્તુને સરવાળો અમુક જ થાય છે છતાં તેનો સરવાળો અમે કાગળ ઉપર લખવા બેસીએ છીએ ત્યારે તું અમારી પાસે કાઈકતું કાઈક લખાવી દે છે શા માટે એમ કરે છે ? તું દુઃખાચાર નહોત્ય તો આતુ' શા માટે કરે ? પાપ સમજવા છતાં પાપ કરાવે ! ખોટું સમજ્યા છતાં ખોટું કરાવે ! તારો વિશ્વાસ બંધ છે

એ એ પદાર્થો, મનુષ્યો આદિને મારા, મારાં એમ જાણીને એમનું અને મારું હૃદય મેં પ્રેમથી ભરપૂર કર્યું, એક તલપૂર અવકાશ રહે નહિ તેવું કર્યું, છતાં તેમના હૃદયોમા કેવે પ્રાર્થ, શા હેતુને અર્થ, તે જોઈ જાતી હીધું ? પ્રેમમા પલ અપ્રેમ શી રીતે દાખલ કરી દીધો ! લાખો આશાઓથી પાયો વ્યભીને તૈયાર તે કરી આપ્યો, તે તે ગયો ધર્મો અને તે ઉપર અમારી પાસે મ્હોટી મ્હોટી ઈમારતો અલખી, સસાર પરમાર્થ, લાભ અલાભ ઈત્યાદિમાં અનેક દેવાવા લેવાના અભિલાષની ઈમારતો બધાવી, છતાં ઈમારત તૈયાર થતા થતામા તો તે તારો આપેલો જ પાયો તુરત કેટલું જાણે

તેવી રીતે તાણી લીધો, અને ઈમારત બરબાદ કરી નાખી કોઈ રથને કોઈમા ખોળામા તે અમારું માથું મુકાવ્યું, તે ખોળાને વળી મીઠો, એવો કે તુરત વિશ્વાસ આવે ને ધેલાનરૂપ નિદ્રા આવે, તેવો બનાવ્યો, ધણા વિશ્વાસથી ત્યાં માથું મુકાવ્યું, છતાં કેટલું જાણે તેવી રીતે એવા મનુષ્યની જ પાસે પાછું તે અમારું માથું મુકાવ્યું. સસાર, પ્રેમમાં ડેર, આશાના પાયાની ઈમારતનું બરબાદ થવું, વિશ્વાસમાં વિશ્વાસઘાત, એથી જ બરેલો છે, આપણે સમજી ન શકીએ; તેવી રીતે ક્રીરમત એવા લાખો અનુભવ કરાવે છે, એ જ તેની દગાબાજી છે, એનો વિશ્વાસ બંધ છે

કેટલું એમ કહેશે કે તમે સંચારના વિષયોને વળગવા જાઓ ત્યારે એવા પરિણામ આવે એમાં કોઈ આશ્ચર્ય નથી તો તે ઉપર કહેવાનું કે "કે" એવી પ્રતીતિ જે જે વિષય માટે થાય છે, જ્યાં જ્યાં હું હોઉં, મને અમુક મળે, મારું અમુક થાય, એવી પ્રતીતિથી આશા બધાય છે, તે સર્વ 'કે' માથી ફિલ્લે ઉઠાવી લીધું અને કોઈ નથી, કોઈ મારું નથી એ આદિ "નથી" મા કરાવ્યું અને 'કે' ને મુકી 'નથી' મા પડવાથી જે કલેષ થાય, ફિલ્લેમા દઈ થાય, તેથી માત્ર રાઇને જ સતોષ માનવો પાડ્યો, પરંતુ એવા રાવામા એ તે અમને નંજવા વારો આપ્યો નથી, એટલે તું દગાબાજ છે—એવ રાવામા દુનીયાનું જોઈએ દુનીયાના એવા મિત્રમા આરોપ, અનેક નિદા જેવ ઈર્ષ્યા આદિના પ્રતાપ, અમારે માટે તે તૈયાર કર્યા છે—એવું રાજુ શા માટે ખેડે છે ? અસ્તિથી નારિયમા જતા શું દઈ થાય છે ? એમ પ્રશ્ન કરવાનું કારણ નથી કારણ કે અમે જે દઈ દીલ રાઇએ છીએ તેનો મમં જુડો જ છે અમારી આખો જ અમુકારા રૂપ ઘડી અર્થ

છે, આખોજ અંદરનાં પરિતાપથી ઓગળીને અશ્રુ-ધારા રૂપે વહે છે, કલેષ પીઠા આક્રિધી વહે છે, એમ નથી, એ તો દીલમાં જે ઉંડો દાગ છે, જે ઉંડો તીવ્ર ઘા રૂપી ઠાપ પડેલો છે, તેને ધોવા માટે આલતી જલ ધારા છે, આવી જાતની જે ધારા તેજ ખરા પચ્ચાતાપરૂપ છે, તેથી માણસનું અંતઃકરણ સુપરિશુદ્ધ થતાં તેને આત્મસાક્ષાત્કાર થાય છે, એ અશ્રુધારામાં ગળી જતી આખો, દીલદાગ જેનો સાક્ષી પોતાનો આત્મા તે વિના અન્ય કાંઈ જોતી નથી પરમ પ્રેમમાં વિલીન છે, ને જોજ આવાં અશ્રુની ખુદાઈ છે, મીઠાઈ છે છતાં આવી દિવ્ય મીઠાઈ તેમાં પણ કીસ્મતનો દગો વિદ્યમાન છે કે તેણે, ઠાણે જાણે શા પ્રકારે, એ મિદ્ધ અશ્રુધારાને ખારી જનાવી સુદી છે ! ત્યારે જોવી રીતે પરિતાપ પામવા કરતાં ત્યાગ કરવો તેજ સારો છે, અસ્તિથી ઉઠીને ખરી રીતે નાસ્તિમાં જવું એ તેતુંજ નામ છે નો તે વિષે જોતાં પણ ત્યાંજે કીસ્મતની દગાળાઈ ઉભી છે. આવા પરિતાપના મારથી કોઈને મુંડાવ્યું, કોઈને ભગવાં કરાવ્યાં અને ત્યાગ કરાવ્યો તો પણ રૂળ શું આવ્યું ? જે અસ્તિમાંથી તેમને ઠાલ્યાં તે કરતાં બેવડી અસ્તિ તેમને વળગાડી, એક ઘર મુંડાવ્યું અને સો ઘર કરાવ્યાં, બેવડી ઉપાધિ લોકેષણથી વળગાડી, તારો વિશ્વાસ કરાવજ કેમ ?

અસ્તિમાં, નાસ્તિમાં સર્વત્ર કિસ્મતની દગાળાઈની જાળ પ્રસરી છે એવો અનુભવ થાય તો તેનું કારણ એકજ હોવું જોઈએ કે અનુભવ પામનારને આત્મ પ્રેરણાનું ઉચ્ચ તાન લાગેલું છે, તેથી જ તેને કિસ્મતમાં તૃપ્તિ આવતી નથી, તેને છેલ્લે આત્માનુભવ થાય છે જ, પ્રારબ્ધનો જ્યાં અવકાશ નથી ત્યાં સર્વભયતાનો સ્વાદ જડે છેજ, એજ

અદ્વૈત પણ જાણવા છતાં, મોટે, અદ્વૈત જાણવા છતાં, મનમાં તેનો પરિપૂર્ણ સાક્ષાત્કાર છતાં, આવા લેખો લખવાનું જે દ્વૈત તે પણ ઠાણે જાણે શા માટે કિસ્મત કરાવે છે. એવી સૂક્ષ્મ એ કિસ્મતની દગાળાઈની જાળ છેજેનો વિશ્વાસ શો ?

આવો આવી દગાળાઈ ક્યાં ક્યાં કહીએ ? કિસ્મત તો એટલે મુઠ્ઠી દગાળાઈમાં રમે છે કે “હા” ની “ના” કરે છે, ને “ના” ની “હા” કરે છે, હવું ન હવું કરે છે ને ન હવું હવું કરે છે, એ વિરવાસ આખી અન્ય ઉપભવે છે. એમ તેનું સ્વરૂપજ અચિંત્ય, પણ દગાળાઈમય છે, ભલે કિસ્મત એમ કરે, એમ કરવાથી શું ? જોયો શું થનાર છે ? એવી જે જે દગાળાઈ કિસ્મત મારી સાથે રચ્યું છે તેમાં સર્વત્ર મને તેની દગાળાઈ કરતાં મારો જે માલીક છે, મારો જે શુરૂ છે, મારો જે તારનાર છે, તેવા સર્વભય આત્માનાજ ભણકારા કાને પડયા ગયા છે. જે જે સુખ સંપત્તિ પ્રેમ ભોજ ઇત્યાદિમાં મને તૃપ્તિ થઈ નથી, નિવેદ આવ્યો છે, કે વિશ્વાસમાં વિશ્વાસઘાત આશામાં નિરાશા, કારણ સતે કાર્યાભાવ એ આદિ અનુભવાયું છે, આં બધે મને સર્વ સુખ, સર્વ સંપત્તિ, સર્વ પ્રેમ, સર્વ વિશ્વાસ સર્વ વ્યવહાર, સર્વે સ્થૂલ, તેની પાર, છતાં તે સર્વ મય અને તે સર્વરૂપ, એવા આત્મારૂપી માલીકનાજ અનુભવો અધિક દેહ થતા ગયા છે, પ્રારબ્ધનો તેને સ્પર્ષ નથી, તેજ પરમ તત્ત્વ છે, તેનાથીજ સર્વ પ્રકારે સમાધાન અને આનંદ છે, એમ અનુભવ થયો છે. આમ છે માટેજ કિસ્મતની દગાળાઈથી શું ? એમ કહેવાનો સમય આવ્યો છે. આ પ્રકારે આવી દીધી, આ આખી દગાળાઈમાં રમાડાતો છતાં પણ હું રચ્યો છું, એટલે કિસ્મતનો પામર શ્રદામ ન થતાં હું ઉલટો તેનો મોટો ઉપકાર

માનનાર થયો છું, કે તેણે આવા અનુભવો કરાવી આત્મ પ્રેરણાના ભંડારને હરીપિત કરી, યૌવ્ય સ્થાને મનોભાવી મુકયો, એથીજ આ દુઃખાળામાં તે વખાણા છતાં હું બહુ ખુશી છું. કેમકે જો તે રમતે અને છેવટ ખારો માલીક મળી ગયો, અને આત્મ દામ થયો, તે તો હરણાળ કરના માંથી હતી કાંઈ

થયો જોય અને વેચવા કાઢી હતો, પણ જે ખારો ખરો માલીક હતો તેજ અને જો હરણાળમાંથી મળી ગયો, એ, હવે કે કિમત? તું તારે કાંવે તે કરી દે, મને તે અનુભવ કરાવ, પણ તેથી અને કશું યનાર નથી, એટલી જો ખારો માલીકની કુલ છે. તું જો બંધ છે તે બંધ જ છે

સુખી જીવન

(લેન્—૫૦ ફી વામુદેવ શાસ્ત્રી તૈવમ, શુભ દેવે વિશારદ)

શિષ્ય—પૂજ્ય ગુરુજી, એક દિવસ કોઈ એક પત્નરની મૃતિને સમ્બાલવામાં એકને મેં તમને પણા પુત્રવતી પૂછ્યું હતું કે જો મૃતિથી જે આટલી સુદૃઢ હૃદયુષ, પ્રત્યેક અંગના અવયવથી મજબૂત જોવામાં આવે છે, તે શુ વારતવમાં અત્રા ઉના સોડો એવાજ વિચારવાય થતા હતા કે આ મૃતિયોજ માત્ર ચોભાયે તેની સ્થાપિત કરેલી છે? ત્યારે આરે કશું હતું કે આ પ્રશ્ન તો પ્રત્યેક મનુષ્યને ખાટે લાભકાયક છે અને પ્રત્યેક મનુષ્યનો એની સાથે ઘનિષ્ટ સંબંધ છે, ખાટે એના વિશે ફરી કે કોઈ વાર વિચાર કરીશું તો આજ હવે તેનો સંતોષજનક જવાબ આપવાની કૃપા કરો

ગુરુ—પ્રિય વત્સ, એવો સુંદર પ્રશ્ન રસ્ય રહેવાનો તમે આ વેળાએ કર્યો છે તેવોજ પ્રશ્ન એક વાર પ્રસિદ્ધ પહેલવાન 'સેન્ડો' એ પોતે ના પિતાને પૂછ્યો હતો કે આ મૃતિયો આટલી બધી મજબૂત, મનોહર અને પ્રત્યેક અંગથી સુરેશિત વ્યક્તિની કૃતકૃતી ને માહુમ પડે છે, તે શુ એવા મનુષ્ય પણ દોષ થકે છે? ત્યારે તેના પિતાએ તેનો ઉત્તર આપ્યો અને તેની ઉત્તરિપૂર્ણ વાતો સાંભળીને કશું હતું કે જો મૃતિયો એ જમાનાની છે કે

ન્યારે શારીરિક બળ તથા આત્મિક બળનું અર્થ જણાતું હતું તે વખત મનુષ્ય કાષ્ઠિક, વાચિક અને માનસિક બળથી પૂરા સંપન્ન રહેતા હતા એ સમયે એ દુઃખાળા પાતળા ઉદાસીન 'સેન્ડો' ના શરીરમાં આશ્ચર્યકારક વિજળીના જેવો પ્રવાહ પડેલાયો અને તેથીજ યોગ્ય દિવસોમાં તે તે વિશ્વવિખ્યાત 'સેન્ડો' બની ગયો, કે જેની બરાબરી કરનાર કોઈ ન હતો, આજકાલ 'સેન્ડો' બાબત 'નો યોરેયર પ્રવાર ઘર્ષ રહ્યો છે, શુ તમે પણ એ પ્રકારે આદર્શ પુરુષ બનશો અને સારા સાથે તમારું ઉદારરણ મુકશો?

શિષ્ય—જેવું સ્વાસ્થ્ય ક્યારે અને કેવી રીતે પ્રાપ્ત થઈ શકે, તે તો કહેવાની કૃપા કરો?

ગુરુ—નીચિયાજ પોકારીને કહે છે કે 'વર્મોવ વામનાદાણા શરીરં સાધન પરમ્' ધર્મો સર્વ આ શરીરથી થાય છે અને આ શરીર જો કરી રોગી થઈ જાય તો અમે કોઈ પણ કાર્ય કરવાને સમર્થ રહેતા નથી ન્યારે શરીર નિરોગ અને હૃદયુષ્કરો ત્યારેજ અમારું સ્વાસ્થ્ય તથા વિચાર સ્વબળ બનશે અને સમસ્થ શક્તિ પણ ઉત્તેજિત રહેશે. કહેવત છે કે જેવું શરીર હશે તેવું જ માંસિક

(મગજ) પણ હશે. પ્રત્યેક ક્ષણે અમે જોઈએ છીએ કે જે મનુષ્ય હુખી છે, તે ક્રોધી, ઉદાસીન અને શરીર કંપતિથી હીન છે, એનાથી ઉલટ જે સુખી છે, તે સ્વસ્થ અને તંદુરસ્ત છે, તે પ્રત્યેક કામને ઉછળતાં કુદતાં સારી પેઠે મન લગાડીને કરી શકે છે.

શિષ્ય—સ્વસ્થ મનુષ્યનાં કંયાં લક્ષણો છે ?

શુદ્ધ—આયુર્વેદમાં કહ્યું છે—

સમદોષઃ સમાગ્નિઃ સમધાતુમલક્રિયઃ ।

પ્રસન્નાભેન્દ્રિયમનાઃ સ્વસ્થ ઇત્યભિધીયતે ॥

જે મનુષ્યમાં વાત, પિત્ત અને કફ ધારાળર હોય, અન્ન પચાવવાવાળો અને બુદ્ધ લગાડનારો જઠરાગ્નિ તેજ હોય, જેનાં રસ, રક્ત, માંસ, અદિથ વિધે, મળ, મૂત્ર, સારી અવસ્થામાં હોય, જેનાં આત્મા, ઇન્દ્રીય તથા મન પ્રસન્ન તથા પોતાના કામ-માં લાગેલાં રહેવાં હોય, તે શુદ્ધ સ્વસ્થ કહેવાય છે.

શિષ્ય—ત્યારે તો મોટા પેટવાળા શેઠીઆઓ અને ગાદી તકીયા પર પડયા રહેનારા બાળુસાહેબો અવસ્થ તંદુરસ્ત રહેતા હશે ?

શુદ્ધ—નહી, ઘણા મોટા પેટવાળાને અને જે ગાદી તકીયા પર પડયા રહેતા હોય તેમને સ્વસ્થ કહી શકાય નહીં. અમે તો તંદુરસ્ત તેને કહી શકીએ છીએ કે જે ઉપર કહેલા ગુણોથી સુક્ત હોય છે. આરોગ્યધાત્રમાં કહ્યું છે કે દિનચર્યા (પ્રાતઃ-કાળથી સંધ્યાકાળ સુધીનાં કામ) રાત્રિચર્યા (સંધ્યાકાલથી પ્રાતઃકાળ સુધીનાં કામ) અને ઋતુ-ચર્યા (છ રીતુઓનાં કાર્ય) આહાર વિહારના નિયમ પાળવાથી મનુષ્ય સ્વસ્થ રહી શકે છે.

‘પ્રાણે મૂર્તે સુધ્યત’ બ્રાહ્મ શુદ્ધતામાં ઉઠીને ધર્મ અર્થનું ચિતન કરવું જોઈએ, આ બ્રાહ્મ મૂર્તિ આશરે ચાર વાગે સવારે રહે છે, દિનચર્યાને આરંભ ત્યારથી થાય છે, બીજી ચર્યાઓનું આ મુળ છે.

‘સ્વત્પાહારઃ સુલાવહઃ’ થોડું લોજન મુખકારક છે, એ પ્રત્યેક મનુષ્યે ધ્યાનમાં રાખવું જોઈએ. જે લોક સમજે છે કે જેટલું વિશેષ લોજન કરીશું એટલાજ બળવાન થઈશું, એ ભ્રમ છે. કેાઈ વિશે-પસંદા કહેવું છે કે અધિક લોજન કરનારા પોતાની પાસે મૃત્યુને બોલાવે છે. લોજન જીવવા માટે કરવામાં આવે છે નહિ કે મરવા માટે.

શિષ્ય—શું વ્યાયામને પણ આપ શરીરોપયોગ-ની વસ્તુ સમજો છો ?

શુદ્ધ—સુશ્રતસંહિતા એકાદેવકનો અંથ છે, તેમાં વ્યાયામના વિષયમાં કહ્યું છે, કે એનાથી શરીરમાં કંતિ, અંગમાં મજબુતાઈ, સ્ફૂર્તિ, આરોગ્ય વિગેરે પ્રાપ્ત થાય છે. અને સાથેજ જેનું વર્ણન સોથી પ્રથમ કર્યું હતું તે બ્રહ્મચર્યા સ્વસ્થતાનું વિશેષ અંગ છે. તેનાથી વીધે જેને અમે શરીર-નો જીવનરસ કહીએ છીએ, તે તલમાં તેલની માફક અને ફૂલમાં અક્ષરની માફક શરીરમાં સ્થિર રહે છે.

શિષ્ય—તમે એક કિપસ મારી તબિયત ખરાબ થયેલ હોવાથી ઉપવાસ કરાવ્યા હતા, શું એ પણ તંદુરસ્ત રહેવાને ઉપાય છે ?

શુદ્ધ—પ્રકૃતિને અનુસરીને પ્રાકૃતિક ઉપાય કરવા એજ આરોગ્યપ્રદ છે. એકાદશી, પ્રદોષ, પૂર્ણિમા, જન્માષ્ટમી વિગેરે કિવચેતોમાં ઉપવાસ કરવાનું એ ફળ છે કે જનશ્રી ઉત્પત્ત થયેલા દોષ તેનાથી મટી જાય છે. તેનેજ એક પ્રકારે અમે પોતે પોતાની પ્રાકૃતિક દવા કરવી એમ કહી શકીએ છીએ. આ વિષિ અનુસાર શારીરિક સ્વાસ્થ્યના સ્થિર થયા પછી શારીરિક અને માનસિક બન્ને પ્રકારનું આરોગ્ય પ્રાપ્ત થાય છે અને તેના ફલસ્વરૂપ ત્યારે અમે પૂર્ણ આનંદ અને સુખી જીવનનો લાભ પ્રાપ્ત કરી શકીએ છીએ.

પ્રાહ્લકાને—

આ અગ્નિઆરતો અંક આપના કાયદા છે હવે પછીના (આરમા) અંક પછી આપનું માણુ
લવાજમ પૂરું થઈ જાય છે આપનું આવતા વર્ષનું લવાજમ મળેલી આપને નવા (આઠમા) વર્ષનો
વિશાળ વિશેષાંક "ગીતાગોરવાંક" (પાંચમે ભાગ) એટલા મળશે લવાજમ અરમા અહિનાની
આખર સુધીમા અવરથ મળી જવું એકએ એવા આપને એટલો અંક બરાબર વેળાસર મળી જાય
એટલા માટે અમે આ અંક સાથે મનીએંડર ફોર્મ પણ ભેરડું છે

કામળ શાહી અને પ્રેસને ઉપયોગી પ્રત્યેક વસ્તુ આજકાલ ટેલી મેલી થઈ ગઈ છે એ હવે
ટોઈથી અભવ્યું નથી આ મેળવારીના કારણે ચર્ચ સાધન સંપત્તિ મોટા મોટા પ્રશ્નિક પત્રોએ પોતાના
આકાર પ્રકાર બદલી દીધા છે અને કૌંસથી લવાજમમાં વધારો કર્યો છે પરંતુ અમે નથી તો એના
આકાર પ્રકારમાં બદલો કર્યો કે નથી લવાજમ વધારું અમે આજ પણ આપની તેવીજ સેવા કરી
રહ્યા છીએ કે જેની પ્રથમથી કરતા આપના છીએ એટલે કે નવા વર્ષમાં પણ તમા વર્ષની માફક જ
અમ ૬૦૦ રૂલ અને પ્રથમના એટલાજ મિત્રો સાથેનો વિશેષાંક આપને એટ તરિકે આપીશુ જેમા
૧૫ થી ૧૮ અખાત સુધીનું વિરતન વાપખાલ વાચીને આપને અવરથ સંતોષ થશે

આજ સૌથી સહ વતા તથા પ્રજાની કૃપાથીજ અમે આવી સેવા કરવા હિતમાન થયા છીએ
તો આપ પણ આપનું લવાજમ મેલેલી તથા સાથે સાથે એક એ નવા પ્રાહ્લકા પાસે પણ લવાજમ ભરાવી
મેલકવા બેટો પ્રપત્ત કરશે આ પ્રજાનું કાર્ય છે તેથી પ્રજા આપના પ્રપત્તને અવરથ સરખ કરશે
લવાજમ મેલકવામાં વિલમ કરવાથી માત્ર પરતાવે કરવાનું જ કથમાં રહેશે, કેમકે આવી
મેલવારીમાં બીજા આજીવિ કાળવા એવા હાલ સંભવ રહ્યા નથી નીચેની વાંતો કૌંસ તમામ
ધ્યાન આપશે—

૧—આપનું લવાજમ મેલકવામાં આ અંકમાં ભેરડા મનીએંડર ફોર્મનો અવરથ ઉપયોગ કરશે

૨—મનીએંડર ફોર્મના કુલ ૧૧ ઉપર આપને આઠ નખર તથા પુરપૂરું ચરનાનું ૨૫૯
અમરમાં લખશે

૪—વી. પી. મગરવા કરતાં મનીએંડરથી લવાજમ મેલકવાનું મુદ્દમ પડે છે કે કેમ તેથી
વિશેષાંક મુશ્કિલ સ્થિતિમાં આપને મળી જશે

૫—૩૧ ડીસેમ્બર ૧૯૪૨ સુધીમાં મનીએંડર નહિ આવે તો વિશેષાંક વી. પી. કારા આપની
સેવામાં મેલકવામાં આવશે જેમાં આપને અર્થ પણ વધુ આવશે એટલા માટે તુરત મનીએંડર કરી
દેવાનું મુકશે નહિ

૬—અમર વી. પી. કે મનીએંડરના અર્થથી જમ્યું હોય તો આપને હાંની નજીકથી કેઈ
ગીતામથની કાખમાં લવાજમ ભરી રસીક મેળવી મેલો અને ત્યાંથીજ આપને વિશેષાંક પ્રાપ્ત કરશે
કે જ એના નામ કેઈ જ્યાં પાછળના પૃષ્ઠ પર આવેલા છે—અથા અમારી શાખાઓ છે, ત્યાં
તમામ પ્રાહ્લકા માટે ધનિકામાં અનિઓંડર ફોર્મ બીડેલાં નથી, એટલે પ્રાહ્લકા વૃન્દ સ્થાનિક
શાખાઓમાં લવાજમ ભરવાની કૃપા કરશે.

ગીતાધર્મ મેળવવાનું ઠેકાણું.

- ૧ મુંબઈ, ગીતાધર્મ, ઑર્ડીસ માધવબાગ સામે,
મુલજીભાઈ બીદડીંગ બીજો માટે સીં ૫૦ પીં ટેક.
- ૨ મુંબઈ, શ્રી નગીનદાસ ફૂલચંદ ગિનાઈ,
ચીનાઈ બીદડીંગ મસજીદ બંદર રોડ.
- ૩ મુંબઈ, આરં મદનલાલની. કંપની
૭૨ અખદુલ રહેમાન રફ્રીટ.
- ૪ મુંબઈ, શાહ મુંદરજી ભગવાનજી, પ્રાં મગનલાલ,
મુંદરજી, માધવબાગ દરવાજા સામે લાલબાગ.
- ૫ અમદાવાદ, મોદી છોટાલાલ મૂલચંદ,
ગીતામંદિર, આરટીડીયા દરવાજા બહાર.
- ૬ અમદાવાદ, ડાં નવનીતરાય પુરષોત્તમદાસ વ્યાસ,
ગીતા નિવાસ, સારંગપુર, તલ્લીયાની પોળ.
- ૭ અમદાવાદ, પારી લાલભાઈ, નરસીભાઈ,
શ્રીફ જાનર, માણેક ચોક.
- ૮ વડોદરા, મણીભાઈ જસભાઈ દેસાઈ, મુલતાનપુરા,
૯ વડોદરા, સ્વામી આત્માનંદજી મહારાજ,
ગીતામંદિર, ગોધાજેટ રોડ.
- ૧૦ વડોદરા, જગજીવનદાસ હરજોવિદાસ શુદ્ધસેધર,
રાવપુરા રોડ, લીમાપોલને નાં.
- ૧૧ ખંભાત, શા, મંગલદાસ, મગનલાલ આસ્તર,
૫૫ વાસુદેવની પોલ.
- ૧૨ સુરત, ભાનુશંકર દરજીવનદાસ વિઠ્ઠલરાડી નાજાવટ.
- ૧૩ આણંદ, પટેલ ગોરખનભાઈ શામલદાસ આસ્તર.
- ૧૪ ભરૂચ, કીરાલાલ કોટારલાલ એનેજર ચાનોદય
પ્રિન્ટીંગ પ્રેસ, નવા દહેરા રોડ.
- ૧૫ નડીયાદ, અંબાલાલ, ડાહ્યાભાઈ, આસ્તર, લખાવાડ.
- ૧૬ ઢાહોદ, બદ સોમેશ્વરભાઈ રાગ્નરામ.
- ૧૭ નવસારી, શેઠ હરજોવિદાસ, કે. ગોખરજીવાલા
મોટાજાનર.

- ૧૮ દસોઈ, શેઠ યુનીલાલ ગિરધરલાલ જીનવાલા.
- ૧૯ મહેમદાવાદ, બેશી ગટોરલાલ જગનલાલ, લીવાલા.
- ૨૦ પેટલાદ, કાઠિયા મોતીભાઈ જેઠાલાલ, વઢકુરા પાસે
- ૨૧ પાદરા, પરસોત્તમદાસ, મનસુખદાસ, બનરમાં.
- ૨૨ ગોધરા, આશાભાઈ, શ્રીરામકૃષ્ણ ઑર્ધલ મિલ્સ.
- ૨૩ સંખેડા, બક્ષી જેઠાલાલ કેશવલાલ, બનરમાં.
- ૨૪ કોયલી, અમૃતલાલ કાલીદાસ કંઠર.
- ૨૫ રાજકોટ, એમ. જી. કોટેયા, ટાઉનહાલ પાસે,
રમેશ રટ્ટીયા.
- ૨૬ રાજપીપલા, ભગવાનજી રામદાસ રેશન રોડ.
- ૨૭ ઉમરેક, ભક્ત સોમેશ્વરભાઈ રાગ્નરામ, ચોક્સીની
પોળને નાં.
- ૨૮ જુજ, ડાં બી. એન. ડાયા,
ડાયા હોમિયોપેથિક ડિસ્પેન્સરી.
- ૨૯ બાજવા, શેઠ હીમતભાઈ રજુકેડાદાસ કંઠર.
- ૩૦ અમરેલી, મુલશંકરભાઈ જગજીવનદાસ, ત્રિવેદી
નાગનથ દરવાજા.
- ૩૧ કલોલ, ચીમનલાલ ત્રીકમલાલ શાહ, રોટાખીપર
ધી છોટાલાલ મિલ્સ, લીખોટા.
- ૩૨ ભાવનગર, શેઠ મગનલાલ નાનાભાઈ મોતીઆમપાસે.
- ૩૩ ધર્મજ, મણીભાઈ જી. પટેલ ગિરધર જીવન.
- ૩૪ માંકવી (કચ્છ) શેઠ મયુરાદાસ પુરષોત્તમદાસ કચરેલી
- ૩૫ Mombasa.—Chunibhai Magganbhai.
Amin C/o The Bombay. Trading
Stores. P. o. Box. No. 354.
- ૩૬ Johannesburg—Raojeebhai. Chunibhai. P. o. Box. No. 4838.
- ૩૭ Johannesburg—Ashabbhai Gordhanbhai. patel. P. o. Box. No 6220.

લેખને અહીં મનીઓફર મોકલવાની ખરખર કરવી ન હોય તેમજે લિપર લખેલાં રજોઓમાંથી કોઈ એકાદ રજો પૈસા ભરીને વિશેષાંક પ્રાપ્ત કરી લેવા.

લિપર લખેલાં રજોઓએ મનીઓફર ફ્રાંક બીડેલાં નથી એટલે ત્યાં ભરે જથ્થે લવાજમ ભરી તે વાં લેખએ.

શ્રેયનાં સાધન

વિદ્યાના જેવું બીજું મેત્ર નથી, સત્યના જેવું તપ નથી, રાજના જેવું કૃષ્ણ નથી તથા ત્યાગના જેવું સુખ નથી આ લોક તથા પરલોકમાં પાપ કર્મોથી બચીને પુણ્યવાન થવું, આ ત કરણને શુદ્ધ રાખીને સદાચારનું પાલન કરવું એ સર્વોત્તમ શ્રયનો માગ છે ફલેશ્વ મનુષ્ય જન્મ મેળવીને જે પ્રાણી સંસારમાં આસક્ત રહે છે તે અયત મુદ છે તે કૃષ્ણથી દૂરી થકતો નથી, કેમકે આસક્તિજ દુષ્ટનું કારણ છે જે પરમ શ્રયને બાહ્યતા છે તેમજ પ્રત્યેક ઉપાય દ્વારા કેષધી તપની રક્ષા કરવી જોઈએ, મત્સરથી ધનની રક્ષા કરવી જોઈએ, માન તથા અપમાનથી વિદ્યાની રક્ષા કરવી જોઈએ તથા શ્રમ દ્વી પેતાની રક્ષા કરવી જોઈએ હયા પરમ ધર્મ છે, સમા પરમ બલ છે, આ મજાન પરમ જ્ઞાન છે જેણે સર્વ આરોગીનો સાગ કરી દીધો છે, સર્વ આશાઓના ત્યાગ કરી દીધો છે, પરિગ્રહ (દાન લેવા) માત્રનો ત્યાગ કરી દીધો છે તથા સર્વ વાસનાઓને દૂર કરી દીધી છે, તેજ પરમ વિદ્વાન છે ભોગ્ય પદાર્થોનો ત્યાગ કરનારો કદી શોકાતુર થતો નથી, તે કૃષ્ણના સત્પાપથી સદા બચેલો રહે છે શ્રમ દમને ધારણ કરનારા તથા બ્રહ્મવેત્તા પુરુષોનો અજ કરનારા પુરુષોને ખાટે આ સર્વ શ્રેયનાં સાધન કહેવામાં આવ્યાં છે

—મહાભારત શાન્તિપર્વ.

શ્રીમત્ ૧૦ ૫૦ બ્રહ્મો ૩૧૦ શ્રી ૧૦૮ નગદ્ગુર મહામહેશ્વર સ્વામી

શ્રી વિદ્યાનંદ મહારાજનું કેકાલું—

અમદાવાદ—ગીતામંદીર આસ્ત્રોદીવા રરવાજ બહાર (ગુજરાત)

श्रेय के साधन

विद्या के समान नेत्र नहीं, सत्य के समान तप नहीं, राग के समान दुःख नहीं तथा त्याग के समान सुख नहीं है। इस लोक तथा परलोक में पापकर्मों से बचकर पुण्य-शील होना, अन्तःकरण को शुद्ध रखते हुए सदाचार पालन करना सर्वोत्तम श्रेयोमार्ग है। दुर्लभ मनुष्य जन्म पाकर जो प्राणी संसार में आसक्त रहते हैं वे अत्यन्त मूढ़ हैं। वे दुःख में छूट नहीं सकते, क्योंकि आसक्ति ही दुःख का कारण है। जो परम श्रेय चाहते हों उन्हें प्रत्येक उपाय द्वारा क्रोध से तप की रक्षा करनी चाहिए, मत्सर से धन की रक्षा करनी चाहिए, माने तथा अपमान से विद्या की रक्षा करनी चाहिए तथा प्रमद से अपनी रक्षा करनी चाहिए। दया परम धर्म है, क्षमा परम बल है, आत्मज्ञान परमज्ञान है। जिस ने सब आरम्भों का त्याग कर दिया है, सब आज्ञाओं की तिलाञ्जलि दे दी है, परिग्रह (दान लेना) मात्र को छोड़ दिया है तथा सब वासनाओं को दूर कर दिया है वही परम विद्वान् है। भोग्य पदार्थों का त्याग करनेवाला पुरुष कभी शोकातुर नहीं होता, वह दुःख के संताप से सदा बचा रहता है। शम दम को धारण करनेवाले तथा क्रोधमेता पुरुषों का सङ्ग करनेवाले पुरुषों के लिए ये सब श्रेय के साधन कहे गये हैं।

—महाभारत, शान्तिपर्व

श्रीमत् प. प. व. लो. गो. श्री १०८ जगद्गुरु महामण्डलेश्वर स्वामी श्री विद्यानन्दजी महाराज

का पता—अहमदाबाद—गीतामन्दिर आस्टोडिया दरवाजा बहार (गुजरात)

बड़ीशु—गीतामन्दिर, गोयागेट रोड, (गुजरात)



जयति मनहरन सुखभवन दुखदमन
 अगम ऐश्वर्य सकलेश स्वामी ।
 जयति व्रजराजसुत महाअद्भुतगते
 जयति परब्रह्म सब अन्तर्यामी ॥

वार्षिक मूल्य—
 भारत में ४)
 विदेश में ६॥)

भटा कहा सीजे नहीं, बुरा कहा न खिझेंत ।
 'रूपरसिक' सो जानिए, आनंदरूपी संत ॥

{ साधारण प्रति
 भारत में ॥
 विदेश में १२)

श्री गोवर्धनचरण मंगलमार्ग पदेन द्वारा गीतापत्र में देस, छापीविनायक, कारी में मुद्रित और प्रकाशित ।

विषयसूची [द्वितीयभाग]

विषय

पृष्ठ

१—श्री गीतामहिमा—(कविता)—१०—कुँवर बलवीरसिंहजी	११५५
२—गीता के अध्यायों का नामकरण—ले०—श्रीमत्परमहंस परियोजनाकार्य अग्रनिष्ठ श्रीरामजी गीताभाष्य	११५६
श्री १०८ अंगवृद्ध महाप्रबलेश्वर स्वामी श्री विद्यानन्दजी महापूज्य	११५६
३—श्री श्री रामकृष्णदेवजी की अमृतवाणी—धर्मद्वैत—स्वामी श्री विनमयानन्दजी महापूज्य	११५९
४—मुक्त का समय है—ले०—स्वामी श्री रामानन्दजी शन्तापी, रघुनन्दाजी, व्याकरणकार्य	१२०१
५—दीपावली—ले०—स्वामी श्री विद्यानन्दजी योगेश्वर, वैद्य, चन्द्रनारायण	१२०७
६—कार्यसिद्धि क्यों नहीं होती ?—ले०—विमूक्ति देवी अभ्यारिका	१२११
७—सुखी जीवन—ले०—पी० श्री बापुदेवदाजी तैल्लर, पु० ई० डे० विशारद	१२१५
८—गीतागीतचन्द्रिका—आध्यामी—विशेषज्ञ गीतागीतचन्द्रिका चर्चों भाग के एक छंदों की श्रृंखला	१२१९
९—शब्द—ले०—एक विशारद	१२२२
१०—समाधान—ले०—दानतपस्वी श्री गीतानन्दजी शर्मा	१२२३
११—गीताजयन्तीपर्व	१२२३
विषयसूची—१—द्वितीय सूति श्री गीता देवी	१२२४

[शुभशती (वैशाख)]

१—श्री गीतादेवी की आरती—	१२२५
२—हुँ टोप ?—(ले०—धर्मपुरेश्वर शं० रामकृष्ण बापुकाजी)	१२२६
३—अष्टपति अपने गीता—(ले०—श्रीमत् परमहंस परियोजनाकार्य अग्रनिष्ठ श्रीरामजी गीताभाष्य	१२२७
अनन्दाश्रम महाप्रबलेश्वर श्री १०८ स्वामी विद्यानन्दजी महापूज्य)	१२२७
४—भृत्य—(दानतपस्वी श्री गीतानन्दजी शर्मा)	१२३०
५—श्रीकृष्ण अपने समाधान—	१२३२
अर्थात्—(ले०—श्री गीतादेवी)	१२३२
अ समाधान—(ले०—दानतपस्वी श्री गीतानन्दजी शर्मा)	१२३३
६—ज्ञान, अज्ञान, कर्म—(जगन्मोक्षदायी साकी साहित्य)	१२३४
७—अज्ञान से मुक्त होना ?—(ले०—श्रीमत् परमहंस परियोजनाकार्य अग्रनिष्ठ श्रीरामजी गीताभाष्य)	१२३६
८—पंडित अपने भूमि—(ले०—स्वामी श्री रामानन्दजी शन्तापी, रघुनन्दाजी, व्याकरणकार्य)	१२३९
९—रक्ष कर्मियों गीता छंदों के अर्थ—(ले०—स्वामी श्री विद्यानन्दजी योगेश्वर, वैद्य, चन्द्रनारायण)	१२४५
वैद्य, चन्द्रनारायण)	१२४५
१०—गीता गीतचन्द्रिका ५ भागों की छंद—	१२४८
११—धर्मद्वैत छंद—(ले०—श्री १२वीं अंगवृद्ध)	१२५१

पहले इसे पढ़िए—

इस अङ्क के साथ गीताधर्म का सातवें वर्ष और आप ही सातवें वर्ष का आप का चढ़ा समाप्त हो रहा है। आगामी अङ्क 'गीतागौरवाङ्क' नामक विशेषाङ्क होगा जिस में गीता के सोलहवें अध्याय से अठारहवें अध्याय तक पर जगद्गुरु स्वामीजी महाराज का विस्तृत भाष्य और व्याख्यान संग्रहीत होगा, यह आप को माख्य ही है।

इस विशेषाङ्क की रचिरता, उपयोगिता, और महत्ता के सम्बन्ध में हमें अब कुछ नहीं कहना है, क्योंकि वह बात अब आप से छिपी नहीं है। इस लिए हम इतना ही कहना चाहते हैं कि यदि आप उस विशेषाङ्क को ठीक समय पर प्राप्त करने की कमिलापा रखते हैं, तो १९४३ के अपने चढ़े का चार रुपया मनीआर्डर द्वारा ५ जनवरी, १९४३ तक गीताधर्म कार्यालय में अवश्य भेज दें। इस काम में आप को विशेष खर्च न करना पड़े, इसी लिए हमने रात (रयारहवें) अङ्क में छपा हुआ मनीआर्डर फार्म नत्थी कर दिया था। अतः प्रार्थना है कि अगर अभी तक आप ने उस का उपयोग न किया हो, तो अब से मी ध्यान दीजिए और अपना चढ़ा शीघ्र भेज दीजिए। अबवा अपने नगर के गीताधर्म की शाखा में ५) जमा कर दीजिए।

आप से विशेष प्रार्थना हम यह करना चाहते हैं कि जैसे आप ने गीताधर्म को स्वयं अपनाया है वैसे ही अपने दो चार मित्रों को भी गीताधर्म का ग्राहक अवश्य बनाइए। इस भयंकर महँगी के जमाने में जो हम एकरूप—बिना गीताधर्म को चक़्कित किये और बिना चढ़ा बढ़ाये—आप की सेवा करते जा रहे हैं वह आप की इस सहायता के बल पर। अतः गीताधर्म को अपना जान कर आप दो चार ग्राहक बनाने की अवश्य कृपा करें। गीताधर्म का प्रचार कोई व्यापारिक कार्य नहीं, प्रभु की सेवा और पुण्यप्रचार का कार्य है। इस लिए जो इस की वृद्धि में सहानुक होंगे उन्हें प्रभु बड़ायेगे। इस में जरा भी सन्देह नहीं।

चढ़ा भेजने में दिलचस्प न करें। अन्त्याप, कहीं विशेषाङ्क समाप्त हो गया और बाद को आप का चढ़ा आया, तो बेकार ही होगा, क्या कि ऐसे जमाने में विशेषाङ्क के पुनः प्रकाशन की कोई भी आशा नहीं है। नीचे लिखी बातों पर ध्यान दें—

१—अपना चढ़ा भेजने में इस अङ्क में नत्थी किये हुए मनीआर्डर फार्म का अवश्य उपयोग कीजिए।

२—मनीआर्डरफार्म के कूपन पर ग्राहक नंबर के साथ अपना पूरा पता साफ साफ लिखिए।

३—आप चढ़ा भेज चुके हों, तो इस फार्म पर अपने मित्र का पता ठिकाना लिखकर उन से ही चार रुपये भेजवाने का अनुग्रह कीजिए।

४—वी० पी० भेजने की अपेक्षा मनीआर्डर से चढ़ा भेज देना अधिक अच्छा है, क्योंकि इस प्रकार आप का विशेषाङ्क सुरक्षित रूप से आप को प्राप्त होगा।

५—४ जनवरी ४३ तक मनीआर्डर न आने पर आप का विशेषाङ्क वी० पी० द्वारा आप की सेवा में भेज दिया जायगा जिस में आप के अधिक पैसे खर्च हो जायेंगे। इस लिए जहाँ तक शीघ्र मनीआर्डर अवश्य भेज दें।

६—यदि आप ने मनीआर्डर भेज दिया हो और भूल से आप के नाम वी० पी० चली गई हो, तो आप वो० पी० कोटायें नहीं, वही अपने पोस्ट आफिस में रोक रलें और हम को सूचना दें। हम पोस्ट आफिस से प्रबन्ध करके आप को निःशुल्क वी० पी० दिला देंगे जिस से हमारा और आप का धर्म्य खर्च बच जायगा। अवश्य किसी मित्र को ग्राहक बनाकर वी० पी० उन्हीं को दिला सकते हैं।

७—यदि मनीआर्डर और वी० पी० खर्च दोनों से बरी रहना चाहते हैं, तो अपने निश्चि की गीताधर्म शाखाओं में चढ़ा जमा करके रखी दे कीजिए और वही से अपनी प्रति प्राप्त कीजिए। सामान्य निम्न लिखित स्थानों में हैं—

१ कलकत्ता, सेठ धी रामप्रसादजी मूंदरा, ३३ फाउण्टेन स्ट्रीट।

२ फलकत्ता, एल० डे० मेघानी, १४ अमरतला स्ट्रीट।

३ आगपुर, लाला नन्दलाल मैकलाल, सीतावर्ण।

४ जयपुर, लाला रामचन्द्र रईय, सुषादमगज।

५ अकोला, सेठ जगन्नाथ छाबसरिया।

६ कर्जोली, रतीलाल नरसोजी कोटक, प्रियेय स्ट्रीट।

७ किशनगढ़, बाबू उमराय बिहारी मायुर स्टेट बैंक।

संस्कारक—श्रीमन्मरमईस परिजानकाचार्य महानिष्ठ लोकसमदी गोवाण्यास श्री १०८ जगद्गुरु
महामहोदयवर स्वामी श्री विद्यालम्बजी महाराज



सर्वेषामान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज । अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

वर्ष ७ }

दिसम्बर, १९४१, कारी

{ भा. १२

श्री गीतामहिमा

हरियुत्तमकृपप्रकट, पार्व उद्घोषनकारिणि ।
 व्यास महाभुनि रचित महाभारतसञ्चारिणि ॥
 द्वैत देवदत्तदाणि, निमित्त शुक्तिस्वप्नकारिणि ।
 ब्रह्मात्मैक्याविश्वप्रवाहिनि, वचनमहाकारिणि ॥
 कव दशमयी गीते ज्वलि, महाभोहतपनसिनी ।
 जय ज्वलि दास 'बलवीर' रिय हानदिनेशप्रकाशिनी ॥

—२०—कुंवर बलवीरसिंहजी ।

गीता के अध्यायों का नामकरण

(ले०—श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य ब्रह्मनिष्ठ लोकसंग्रही गीताव्यास श्री १०८

जगद्गुरु महामण्डलेश्वर स्वामी श्री विद्यानन्दजी महाराज)

यह विषय अत्यन्त महत्त्व रखता है, यहाँ तक कि उस का गीतासिद्धान्त से घनिष्ठतम संपर्क है। तथापि सर्वसाधारणों में—दिग्गज पण्डितों से लेकर ग्रामीण अज्ञों तक—यह समझ रूढ़ है कि गीता-ग्रन्थ के लिपिकारकों ने अध्यायों को मनमाना नाम दिया है। इस का मुख्य कारण तो गीतातात्पर्य का अज्ञान है ही। लेकिन अन्य एक गौण कारण भी है और वह भी उतना ही बलवत्तर है। वह यह कि परंपरागत गीता की हस्तलिखित प्रतियों में किंचिन्मात्र अनमेल देखने से परिवर्ती लेखकों ने समझा होगा कि यह बात अकिञ्चित्तर है, और इस के फलस्वरूप उन के भी पश्चात् होनेवाले लिपिकारों में अराजकता स्वाभाविक फैल गई और आज उपलब्ध पुस्तकों में प्रायः किसी का किसी से संपूर्णतया ऐक्य नहीं।

मेरी समझ में अगर अध्यायों का विषय निश्चित कर दिया जाय तो उन के नामकरण में भी—माया-शैथिल्य नैरपेक्ष्य से—एकसूत्रता आ सकती है, और गीता के पिण्डितार्थविषयक विप्रतिपत्ति मिलाने में भी बहुत सी सहायता मिलेगी।

इस बारे में “इदम् इत्यम्” करने की मेरी आन्तरिक इच्छा होने पर भी—

“कृष्णो जानाति वै सम्पक्”

यह श्रुति मुनियों की राय स्मरण करके इस विषय सादस में प्रवृत्ति नहीं होती तथापि—

“अकरणान्मन्दकरणं श्रेयः”

अथवा गीतोक्ति के अनुसार—

“कर्मण्यायो ह्यकर्मणः”

—गो० ३।८

इस न्याय से एतद्विषयक एक प्रयत्न मेरे अवलोकन में आया है जिस से मैं सर्वथा सहमत हूँ। पाठक पाठिकाओं के लाभार्थ उस को आगे अपने अभिप्रायानुसार लिखता हूँ। उस का मनन करने से गीतार्थ समझने में सब का बड़ा उपकार होगा।

प्रथमाध्याय का नाम पुष्पिका, में, “अर्जुनविषाद-योग” ऐसा दिया है। इस में अर्जुन शब्द का स्वारस्य ठीक नहीं जँचता। गीता कहने के लिए संजय को प्रवृत्ति देनेवाला पृतराष्ट्र शोकग्रस्त ही था। क्योंकि युद्ध के दसवें दिन भीष्मपितामहजी के पतन का वृत्तान्त सुनकर यह महाप्रश्न पूछा गया।

और दुर्योधन को भी शोक हुआ था। यह बात “तस्य संजययन् हर्षम्” इस पाद से प्रमाणित होती है।

इस प्रकार तीनों को शोक होने से एक ही का नाम लेना-तर्कशुद्ध नहीं मान्य पड़ता।

इस पर कहा जा सकता है कि जो विषय अधिकता से रहता है उसी पर से अध्याय का नाम पड़ता है।

लेकिन यह कारण भी संतोषजनक नहीं। किस का शोक ज्यादा, किस का कम यह नापने का कोई तोल माप नहीं है।

“योग” शब्द की भी समालोचना आवश्यक प्रतीत होती है। गीता का प्रतिपाद्य विषय योग है इस में भगवान् की, व्यास की (पुष्पिका में “योगशास्त्रे” यह पद) और सत्य की एक समति है। यथा—

इमं विवस्वते योगं भोक्तवानिममभ्यसम् ।

—गी० ४।१०

व्यासभसादाच्छ्रुतवानेतद्विष्णुसमहं परम् ।

योगं योगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कृत्यतः स्वयम् ॥

—गी० १।१०३

तथापि ‘योग’ विषयक ग्रन्थ में प्रत्येक अध्याय के नाम में “योग” शब्द रहना चाहिए ऐसी बात नहीं कही जा सकती ।

समस्त लीबिन् किसी ने पाञ्चशास्त्र का ग्रन्थ रचा । उस में “तपश्चरुण्यज्ञात्मनो नाम प्रथमोऽध्यायः” ऐसा कहना कहाँ तक सार्थक होगा ।

“विगादयोग” कहने में यही आपत्ति होगी । जिस पर भी इस का समर्थन योगदर्शन की परिभाषा की सहायता से क्यचित् हो भी सकता है ।

“योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ।”

गी० २० स० पा० भू० २

शिव, गुरु, निश्चिन्त ये तीन भूमिका परमार्थतः योगोपयोगी न होने पर भी “योग” पदवाच्य उत्तर है । प्रथमाध्याय में लोकप्रसक्त अर्जुन के इन्हीं अवस्थाओं का चित्रण है ।

फलत यहल्ले अध्याय का नाम सर्वथा में नहीं तो बहुतांश में भेरा समन है ।

द्वितीय अध्याय का प्रचलित नाम “साङ्ख्ययोग” है । यह नाम सर्वथा यथार्थ है । अर्जुन का स्पष्ट पूछा हुआ प्रश्न एक ही है—

यच्छ्रेयः स्फाप्तिधितं ब्रूहि तन्मे ।

—गी० २।१०

प्रथमाध्याय में और (इस श्लोक को छोड़के) द्वितीय के आठ श्लोकों में अर्जुन का सब रोना गाना ही है । तथापि योगाधिकार की सीढ़ी पर उठने का कम बड़ी कुशलता से ग्रन्थकार ने इस में दिखाया है । पश्चात् भगवान् का प्रतिवचन शुरू हुआ । अर्जुन जैसा श्रेय चाहता था उस का स्वरूप भी उस ने भगवान् से कह दिया—

नहि प्रपश्यामि समापनुयात्

यच्छोकःकुष्ठोपपन्नमिन्द्रियाणाम् ।

—गी० २।१०

शोक का कारण भी बता दिया—

पापमेवाश्रयेदस्मान् हर्षवैशानाततापिनः ।

—गी० २।११

अहो भव महत्पापं कर्तुं म्यसिता वयम् ॥

—गी० २।१२

अन्त में भगवान् ने भी सब व्याख्यान का उपसंहार करते हुए उसी का उपाय बताया है—

यई त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ।

—गी० २।१३

लेकिन श्रुति कहती है—

तरति शोकमात्मवित् ।

सो १।१६ के पूर्वार्द्ध में भगवान् ने जो कहा “मानेक शरणं मम” इस का और सुनिश्चय का एक ही तत्पर्य हुआ । दशमाध्याय में भगवान् आत्मा को अपनी प्रधान विभूति बतलते हैं—

अहमात्मा शुद्धात्मा सर्वभूतेश्वरः ।

—गी० १०।१०

सब भूतों में एक ही आत्मा है और वह मैं अर्थात् मम है । अमर्त्यता ही परम श्रेय है जिस का उपाय

तीय अध्याय में कहा है। फलतः यहीं पर गीता
 आस है। ब्रह्मविद्या और सांख्य एक ही बात है।

ज्ञानं महद् यच्च महत्सु राजन्

वेदेषु सांख्येषु तथैव योगे।

यद्यापि ह्यष्टं विविधं पुराणे

सांख्यागतं तत्सकलं नरेन्द्र ॥

सांख्यदर्शनकार ने ज्ञान की परा कोटि दिखाई
 । क्योंकि पुरुष और प्रकृति का अन्तर दिखाने में
 रूप का असल स्वरूप कहना पड़ता है, और पुरुष
 स्वस्वरूप है यह कहने से वह उपनिषदों का
 विषय हो जाता है। ब्रह्म तो—

‘एकमेवाद्वितीयम्’

है, ऐसा श्रौत सिद्धान्त है। तब क्या सांख्य का भी
 यही मत है। यह शङ्का आनुपन्निक होने पर भी
 उस का समाधान यहाँ देना उचित समझता हूँ। सो
 पुरुषानात्व का खण्डन सांख्यसूत्र के आधार से ही
 किया जाता है।

जन्मादि व्यवस्थातः पुरुषबहुत्वम्।

सां०, ६०, ५०, सूत्र १४१

आदि पद से व्यापि, जरा, मृत्यु वगैरह सम-
 श्राना। पुरुष एक ही हो तो एक का ही जन्मादि-
 भोग होगा। लेकिन बहुपुरुषों का जो देखने में
 आता है उस की व्यवस्था होना जरूर है। इसी के
 कारण पुरुषों का नानात्व मानना पड़ेगा। परंतु
 वस्तुतः पुरुष ब्रह्मरूप होने से एक ही है, बहु नहीं।

उपाधिभेदेऽप्येकस्य नानायोग आकाश-
 स्येव घटादिभिः।

१११५०

देह नाना होने पर भी देही एक ही है। सूत्र का
 अर्थ स्पष्ट है।

उपाधिभिद्यते न तु तद्वाच्यम्।

१११५१

एवमेकत्वेन परिवर्तमानस्य न विरुद्धधर्माध्यासः।

१११५२

“निर्गुणं गुणभोक्तृ च” इत्यादि परस्पर विरुद्ध प्रतीत
 होनेवाले गीतोक धर्म विवर्तवाद का आश्रय करने से
 सुसंगत ही है। पुरुष एक ही है, नाना नहीं।

अन्यधर्मत्वेऽपि नारोपात् तत्सिद्धिरेकत्वात्।

१११५३

कर्तृत्व भोक्तृत्वादि प्रकृति के नाना धर्म हैं।
 उन का आरोप पुरुष में करने से नानात्व सिद्ध नहीं
 हो सकता, क्योंकि वह (पुरुष) आत्मरूप एक
 ही है।

नाद्वैतश्रुतिविरोधो जातिपरत्वात्।

१११५४

श्रुति में नानात्व का उपदेश जातिपरत्वेन (देव
 मनुष्यादि) ज्ञेय है, आत्मा एक ही है।

यहाँ प्रसंगतः अवश्य ज्ञातव्य एक बात कहना
 यह है कि सूत्रों का अर्थ स्वतन्त्रभाव से किया है।
 वस्तुतः वे गीता के आश्रय से रचित हैं। समया-
 न्तर में उन श्लोकों का संघन्य दिखाया जायगा।



श्री श्री रामकृष्णदेवजी की अमृतवाणी

[सप्तकला—स्वामी श्री विन्मयानन्दजी महाराज]

“संसारमय” (गतावृत्ते जागे)

१२—संसार में रह जाने से ही ऐसा हुआ करता है, कभी ऊँचे में उठा, तो कभी नीचे गिरा। कभी खुश मजि भाव होता है, तो फिर वह कम हो जाता है। बिचरी को सेहर रहने से ऐसा होता है। संसार में भय भी कभी ईश्वर का सिन्दूर, हरिनाथ सज्जन करते हैं, तो फिर कभी बिचर में मग्न हो बैठते हैं। जैसे सामान्य भक्तिधर्मी कभी मिठाइयों पर बैठती हैं, तो कभी धन या मग्न पर भी बैठती हैं।

१३—हम तो स्वयं देख रहे हैं कि संसार अनित्य है। इसी मकान को देखो न। कितने लोग जाते और कितने गये। कितने पैदा हुए और कितने शरीर छोड़ गये। संसार धमी है तो कभी नहीं, अर्थात् अनित्य है। जिन के लिए इतना ‘श्री मेरा’ (मोह) कर रहे हो, ओहों मूढों ही कोई नहीं। (बाल बच्चे) कोश के कीड़े (रोगम आदि के) अपने ही जाल में फास मरते हैं। इसी तरह संसार सिध्दा अनित्य है, उन को (ईश्वर को) जानकर संसार कितना व्यर्थ, तो अनित्य नहीं है। (अर्थात् जानी तथा मनु के सच्चे भक्त के लिए संसार अनित्य अर्थात् न-बनती से फैलानेवाला नहीं है।)

१५—संसार में साधक बड़े जोषों को होच नहीं रहता। वे आज में पड़े हुए ही हैं, पर उन को यह बात बड़ी से बात में बढ हुए हैं। हरिकथा (ईश्वरीय अर्थ) इन के धामने होने से, वे वहाँ से (रह) गये जाते हैं। वे कहते हैं—“हरिमय बनने के समय होगा, कभी कभी” (अर्थात् मग्नवृत्तन मुक्तये में सिवा कायगा, कभी तो साक्षादिक कर्म करना ही भोग कर्तव्य है।) जो

और बाल बच्चों की तरह कर के रोते और कहते हैं—, “होय। मेरे मरने से इन का क्या हान होगा ?” जिस (कर्म) से इतने दुःख भोगते हैं, फिर वे बड़ी करते रहते हैं। जैसे कैंट के मुँह में से कटोली बाध करते खाते रगड़-काकर खल गिरता है, फिर भी वह कटोली बाध वहीं छोड़ता। बहू जीव अपने तथा परिवार के पेट के लिए दास्य करते हैं, और पिथ्या कहना, अथवा (ठगपना), छद्मपद कर बन की कमाई करते हैं। जो ईश्वरविन्दन करते हैं, ईश्वरोप श्रान में मग्न रहते हैं, बहू जीव उन्हें पागल करकर इन को हँसो करते हैं। संसार में बहू जीव मनु के समय भी संसार की बात ही करते हैं। शाही भाषा करने से, मशराना करने से या लोगों में जाने से बचा होगा ? संसार की भाषा कि बहू रहने से मनुष्यज में बड़ी शोक पड़ती है। दुःखपरी (तोता) साधारण समय में तो ‘दावाकणा’ कहते हैं, बिलो के पकड़ने पर इन के मुख से अपनी ही बोली निकलती है—‘टेंटे’ करते हैं। गीता में कहा है—‘मनुष्यज में जो बीरोगे, परलेक में बड़ी होगे।’ अरु रोग ने ‘हिरन’ ‘हिरन’ समान कर देहत्याग किया था, इस लिए हिरन होकर पैदा हुए। ईश्वर का विन्दन कर देहत्याग करने से ईश्वर का काम होता है, फिर वह संसार में नहीं जाना होता।

१६—लक्ष्म, धृष्टा और भय इन तीनों के रहने तक (ईश्वरलभ) नहीं होता है। ज्ञाना, धृष्टा, भय तथा आवि और अनिष्टमय से सभी जीव के लिए बाध (फैलानेवाली मनुष्य) है। इन सब के दृष्टि से ही सब को संसार से मुक्ति होती है।

२७—नहीं; तुम लोगों को सब त्याग करना क्यों होगा ?.....तुम लोग संसार कर रहे हो, इस में दोष नहीं है; पर ईश्वर की ओर मन रखना होगा। नहीं, तो नहीं होगा। एक हाथ से कर्म करो और एक हाथ से ईश्वर को पकड़े रहो। कर्म पूरे होने से, दोनों हाथों से ईश्वर को पकड़ोगे।

२८—साथ ही साथ विचार करना सब आवश्यक है। कामिनी कामन अनित्य है। ईश्वर ही एकमात्र नित्य वस्तु है। रूप से क्या होता है ?—मात होता है (मिलता है), दात होती है, कपड़े होते हैं, रहने की जगह होती है वस; इतने तक। परंतु इस में भगवान् का काम नहीं होता है। इस लिए क्या (धन) कमी जीवन का उद्देश्य (रूप) नहीं हो सकता। इसी का नाम विचार है। और सुन्दर देह में ही क्या है ?—विचार करो।

२९—जो 'संसार में धर्म, संसार में धर्म' ही श्रेष्ठ कहा करते हैं, वे यदि एक बार भगवान् का आनन्द पावें, तो उन को और कुछ अच्छा नहीं लगता, काम काज की घब ऐंठ कम हो जाती है, क्रमशः ज्यों ज्यों आनन्द बढ़ता जाता है, त्यों त्यों कर्म और नहीं कर सकते,—केवल उसी आनन्द को झूँते रहते हैं। भगवदानन्द के पास विषयानन्द क्या चीज है ? एक बार भगवदानन्द का स्वाद मिलने से, उसी आनन्द के लिए वे माग दौड़ते हैं, तब संसार बाहे रहने बाहे जाय।

३०—जो उन को पकड़े रहते हैं, (अपना जो ईश्वर की चरण में रहते हैं) वे इस विषय चोक में जो एकदम से रुक नहीं जाते; अथवा जो शोक खाकर ही संभल जाते हैं। गन्ताजी में जहाजों के जाने से घीरों की डेरियाँ क्या करती हैं ? ख्याल होता है कि मानों वे एक-बारगी झूब गईं और संभल नहीं सकती; कोई कोई तो उलट ही गईं। फिर बड़ी बड़ी जहाजों मन दोनेवाली किडियाँ दो बार बार हिल झुककर जैसी की तैसी स्थिर हो गईं; किंतु

दो बार बार उन्हें भी झोंका खाना ही होगा। कितने दिन के लिए ही संसार के मुत्र आदि के साथ संबन्ध है ? मनुष्य सुख की आशा से संसार करने जाते हैं,—शादी की, लड़के हुए, वे लड़के बड़े हुए, तो उन की भी शादी करवाई—कुछ दिन तो अच्छे बीतें। बाद को एक बीमार पड़ा, दूसरा मर गया या कोई बह गया (कुमारी हुआ), तो (इस की) भावना-चिन्ता में से मनुष्य एकदम व्यतिन्यस्त (व्याकुल) हो जाया करते हैं।

३१—साधुसंग सर्वदा करना आवश्यक है; साधु ईश्वर के साथ आलाप करा दे सकते हैं। जरा कष्ट कर सत्संग करना चाहिए। घर में सिर्फ विषयों की बात होती है। रोग तो लगा हुआ ही है। पक्षी ठौर पर बैठकर तब 'राम राम' बोलते हैं; वन में उस जाने पर फिर टें टें करते हैं।

३२—संसार में होगा क्यों नहीं ? सर्वदा ही शुद्ध का संग, शुद्ध की सेवा और साधुसंग आवश्यक है। एकान्त में रात दिन उन का चिन्तन; नहीं तो साधुसंग चाहिए। मन अकेले रहने से ही क्रमशः शुष्क हो जाया करता है। एक घड़े में जल यदि अलहदा रख छोड़ो, तो क्रमशः सूख जायगा। किंतु गन्ताजी में यदि उस घड़े को ढूँढा रखोगे, तो वह (घड़े का जल) नहीं सूखेगा। लोहार का लोहा आग में खूब खाल हो गया, फिर (आग से) अलहदा कर रखो, तो लोहा ज्यों का त्यों काला ही हो जाता है। इस लिए लोहा को बीच बीच में (कमी कमी) आग में देना चाहिए। (अर्थात् लोहे के आग के संग की तरह संघारिणों को कभी कभी साधुसंग अवश्य करना चाहिए।)

३३—लोगों के साथ निवास करना हो, तो कुछ लोगों के हाथ से अपनी रक्षा करने के लिए कुछ तमोगुण दिया जा जरूरी है। पर दूसरा अनिष्ट (गुराई) कर बैठेगा, तो बदले में उस का अनिष्ट (गुराई) करना उचित नहीं है।

(क्रमशः)

युद्ध का समय है

(लेख—स्वामी श्री रामानन्दजी सन्यासी, धर्मशास्त्री, व्याकरणाचार्य)

कैसा समय आ गया, कहीं भी शास्त्रि संशोध की बातें नहीं सुनाई देती। जहाँ जाते हैं, जिस से बातें करते हैं वहाँ बनाप आनन्दप्राप्ति के यह प्रतीत होगा है कि कोई हमारे ऊपर गरम तेल डिक्क रहा है। आनन्द जिस वस्तु को छू दो उसी से लड़ाई मगाई की गन्ध आने लगती है। जिस वस्तु को चाहे, चाहे वह हमारे जीवन के लिए कितनी ही आवश्यक क्यों न हो, छेड़ने पर भी नहीं मिलती। मिलती भी है वो बड़ी मठर्था से, तबारी विद्वान्मति में। चीनी, धी, छेड़ के भाव पर आने चाहते हैं, क्योंकि ये असली रूप में देखने की भी नहीं मिलते। मुजर्ण, चौरी तो शास्त्र रक्षियों के हिसाब से हस्तगत हो तो हों। सुनते हैं बख, नमक, कागज तो मसो देश-निकाले के नियम में आ गये। अन्न का रौता तो सभी को रोजे, सुनते, देखते हैं, जब इन सब का कारण पूछा जाता है तो उत्तर मिलता है कि 'लड़ाई का समय है।'

पहले प्रवास के लिए हमें बड़े बड़े भण्डोले, धन कीले, रगान, सीगीन, विज्ञापनो से प्रोत्साहन किया जाता था, अब वह सब सामग्री हमें घर से पौंच धरने की रोक में प्रदुष्ट हो रही है। जो वस्तु यहाँ पड़ी सड़ रही है वह बाहर नहीं जा सकूँगी, और जिस के बिना यहाँ के लोगों का काम चौपट हो रहा है वह चीज बाहर से यहाँ नहीं आ रही है। हमारी बगल में बड़ी से बड़ी घटना घट जाती है, कई महत्त्वपूर्ण कार्य हो जाते हैं, पर हमें उस का कुछ भी समाचार नहीं मिलता। न विवेक गये आपजनों के सहिते १९९

बखत पर पहुँचते हैं। जब इस की वजह का सवाल किया जाता है तो जवाब मिलता है कि 'युद्ध का मौक़ा है।'

तो हो रहा है, जिसे सब भोग रहे हैं, उस का प्रष्टपेण करके अधिक कहना मुज्जा केसर है। हम सुनते हैं, युद्ध हो रहा है। पहले सुना था हमारे कोस की दूरी के परदेश में बीर लोग अपने खून की पिचकारी से नाग खेल रहे हैं। किंतु अब सुनते हैं हमारे देश के दरवाजे पर रण के घाजे बजने शुरू हो गये हैं। बस, हमें और अन्य लोगों को यही युद्ध का स्वरूप भाहम है। एक सिद्धाप्रमस्य सन्यासी ने बताया कि तुम लोग चाहती युद्ध क्या देख रहे हो, यह तो तुम्हारे घरों में तुम्हारे करीर में भी हो रहा है, पर लोग समझ नहीं रहे हैं, यद्यपि उस की धाँव में सब जले जा रहे हैं।

जितो धर्पो धधर्मेष सत्यं वैवानृतेन च ।
जिताधीरैश्च राजानः सीमिश्च पुरुषाः कर्त्री ॥

अर्थात्—इस कलियुग में याने इस फाले जमाने में अधर्म धर्म से लड़ रहा है, जोत अधर्म की हो रही है। सौर्य, उपद्रवियों तथा बालाकों के मुकाबले में राजा की-दासता की सारी शक्ति व्यय हो रही है, फिर भी लड़ाई में जीत सरकरों की हो रही है। कियों पुरनों से भागकर आजाद हो खिली की तरह हवा में उड़ने पर उतर रहे हैं। इस मयानक वसाल सरदों के धपेड़े से भारत का पोत समुद्र में डूबकर गारत होने जा रहा है। इसी लिए सर्वगुणसंपन्न सर्वोपरि विराजमान श्रीमान् भारतदेश निवास्त आर्त्त

हो रहा है। इसी से इस की परेपकारवृत्ति पर स्वार्थपरता ने अपना अधिकार जमा लिया है। धैर्य को आलस्य ने न मालूम कहाँ भगा दिया। सावधानी और असंशय के स्थान को वहम तथा संदेह ने अपने अधिकार में कर लिया है। विद्वत्ता तथा सरलता को मूर्खता तथा चालाकी समाप्त किये जा रही है। न्यायनिपुणता को निर्दयता चूस रही है। वाञ्छनीय स्वतन्त्रता को गुलामी की जंजीरों ने जकड़ रखा है। वीरता को अकर्मण्यता मास किये जाती है। क्षमा को भीरुता ने खदेड़ दिया है। चतुराई को कुटिलता भ्रष्ट किये डालती है। स्वाभिमान को चापलूसी नष्ट कर रही है। साधुता को वशकता कष्ट दे रही है। अब भारत 'अकुतो भयः' नहीं रह गया है। न यहाँ अब 'साधवः सन्तु निर्भयाः' के ही दीर्घदीरे देखने में आते हैं। 'शान्तं शिवं मुन्दरं' के भाव स्वप्न में भी नहीं दिखाई देते। अब ईश्वर की छाया में बैठकर ध्यान की रखवाली करनेवाले सरल ग्रामीण 'सजला सफला शस्यश्यामला' आदि गीत गाना ही भूल गये। इस कालिक मास तत्रापि पूर्णिमा को ब्राह्मणों की आवा से हजारों लोग गङ्गास्नान किया करते थे। क्षत्रिय प्रजा को ऐसे मौके पर संकटों से बचाया करते थे। देश के बाजारों और राजानों को वैश्य लोग ऐसे समय धन धान्यपूर्ण कर देते थे। और शूद्र सेवा-भावप्रेरित हो मौका आने पर कुछ भी कसर उठा नहीं रखते थे। इन सब के सहयोग से जनता का हृदय छेड़कर नहीं होता था।

पहले देश में युद्ध की फसिल चारहमासी नहीं होती थी। कभी युद्ध होते थे तो वे वीर योद्धाओं तक ही सीमित रहते थे। साधारण प्रजा से इन का कोई संरन्ध्र न होता था। याने मौकों पर तो प्रजा वमासवीनों की तरह अटूटी बपी रहती थी।

कभी हुआ भी तो विजेता द्वारा लूटपाट हो गई। तैमूरलङ्ग जैसे कठले आँम की मूर्खता तो कभी कभी हो जाती थी। कभी युद्ध होता था तो वह कुछ ही दिन में अपना निर्णय करके ऐसे बीत जाता था जैसे तुफान एक तरफ से आकर दूसरी ओर को निकल जाता है। पहले के युद्ध हार जीतमात्र से संबन्ध रखते थे। उस में बहुत से धर्मयुद्ध हुए हैं। किंतु आजकल की लड़ाई जीवन भरण का प्रश्न हल करने के लिए लड़ी जाती है। आजकल के लड़ाके छल, कपट, अन्याय आदि खोटे उपायों से एक दूसरे को जगत् पृष्ठ पर से अशुद्ध अक्षर की तरह सदा के लिए मिटा देने को किये जाते हैं। एक जाति जो प्रबल होगी दूसरी को मिटा सकती है। उस का सर्वस्व स्वतन्त्रताहरण करके उसे पाँवों तले कुचल सकती है। इसी तरह कई जातियाँ मिट गई हैं और बहुतों ने अपने पाँव कब्र में लटका रखे हैं। और कुछ के 'रामनाम सत्य है' की तैयारी हो रही है। हूण, शक, ह्वसी, आदिद्रविड़, छाल इण्डियन आदि जातियाँ कहाँ हैं ? हैं, ता उन का क्या हाल है ? किंतु मिटानेवाले को यह न भूल जाना चादिए कि यह किसी के विनाश का काये या मनोरथ प्रकृति को अप्रसन्न करने का हेतु है। जो किसी को मिटाना चाहता है वह खुद मिटकर रहेगा। पाण्डवों ने पुन पुनकर कौरवों को परलोक भेज दिया, पर अपने आप इन पर जो धीती उसे जगत् जानता है। कहाँ हैं आज उन'के वंशधर जो भारतदेश में होनेवाले युद्ध के दर्द पर मेल के तेल की मालिश करते।

यदि अभी भी भारत अपनी भूल सुधार लेता तो गनीमत थी। अभी इतना काम नहीं बिगड़ा है जो सँभालने पर तादवरध्य न हो सके। पर है काम फठिन, किंतु फठिनता के हल करने से ही

सुखादुःख मिलता है। कठिनाता यह है कि महा-
भारतीयुद्ध के बाद से। आज तक विश्व में युद्ध की बात
ही आ गई है। लड़ाई की परंपरा का अन्त ही नहीं
आ रहा है। अर्जुन ने श्री कृष्णचन्द्र के सामने युद्ध-
जन्य वे अङ्गचने' वपस्थित की थीं निम्न काङ्गीगीता के
पहले अध्याय में उल्लेख है। पर श्री कृष्णजी ने
उन पर ध्यान नहीं दिया, जिस से वह सर्वपासी
अवच्छिन्नय युद्धप्रवृत्ति ल जाता। पर परिस्थिति के
कारण वे देना कर नहीं सकते थे। वे वैद्यराज थे,
वे भारत की नदी पहचानते थे। उस समय के
भारतीयधर्ममात्र में अनैतिकता, स्वाध और युद्धिमान्य
ऐसा रोग लग गया था कि उस की औपधि सिवाय
'युद्ध' के और कोई रा नहीं सकता थी। दर असल
भगवान् को गम्भीर समझ पसर नहीं थी। वे जानते
थे कि प्रकृति चरित्रिणी को जीने नहीं देती। उस
समय के चने चने महापुरुषों, योद्धाओं तथा योद्धों के
सामने भरी समा में एक युवतो ही को तन करने
का वीरमत्त्वकाण्ड बहुत सारी दुश्चरित्रता का संकेत
है। उस समय माद्यों की 'सूत्रार्थ न इत्ययमि
विना युद्धेन केचन।' की घोषणा के साथ धृति
प्रदान न करने की दुर्निति, कितनी पुरी धाव है।
जुआ खेलने के बहाने बोरता देना तो और भी बुरा
वदाहरण वपस्थित करता है। उस समय यदि ऐसा
हुआ तो वल्लभधनाओं के मृदुधारी को युद्ध के जलसे
में मृदु का पारितोषिक दिया जाना ठीक ही हुआ,
पर उस समय तो जो हा गया, वह अवच्छिन्नय
हुआ। किन्तु आजकल युद्ध का सिलसिला पहाड़ी
नदी की तरह निरन्तर क्यों जारी है? प्रतीत होता
है आज भी हम स्वीजति की प्रविष्टा को कायम
रखने के योग्य नहीं हैं। माद्यों के हक को ठुकरा
देना आज भी हमारे द्विप साधारण सी बात है।

वृत्तियों की आदें आज भी हमें बेअसर बाधक शरद
मादूम देती है। हाथों कि एक आद में सौ भट्टियों
से अधिक आँव है। और विधवाओं की हाव तथा
अनार्यों की पीछ मानो आकाश में चिड़िया खुदों
'गंदे सी मतीत हाती है' यद्यपि उन में चंदे चंदे राज-
मासों के धरापायी करनेवाले कम गोडों से भी
अधिक भयानकता है।

राजग ने किसी समय सीता का अपहरण किया
था। उस घटना को लाखों वर्षों का जगाना कीत
गया। पर आज भी लोग पुस्तकों में उस की निन्दा
का वह कारनामा चने चाव से पढ़ते सुनते हैं। यहाँ
तक नहीं, प्रतिवर्ष रामलीला का स्वाग या नाटक
रचकर लोग राजग और राम की लड़ाई कराकर दस-
हरे के दिन खुदपुण्ड दे, परछाक में पहुँचाने का अभि-
नय किया करते हैं और खुद तमासवीन व रूप में
जज बनकर खद कहते हुए पैसला देते हैं कि
"ऐसे को यह दुष्ट मिलना वपयुक्त ही हुआ है क्योंकि
इस ने एक सती स्त्री का अपमान किया था देवना
तथा अश्रियों को पीडा पहुँचाई थी।" किन्तु वे अभि-
नेता लोग अपने कर्तव्यों की ओर ध्यान नहीं देते।
क्या वे स्वीजति का संभाव करते हैं? क्या वे
'विद्रोही वे देवा' याने देवतास्वरूप विद्वानों की
व्यवस्था का लक्ष्मण नहीं करते? क्या वे ज्ञानिष्ठ
सन्ध्यासियों के लपटगातुसार चलते हैं? यदि यह
सब कुछ नहीं हाता ता फिर लोगो का क्या हक
हासिल है कि वे दूसरे के द्विष्टों का मसाला की पोशनी
में अन्वेषण करें? और किसी प्रविष्टि प्रकृष की भूल
का विल से ताड़ बना देने पर हुर्राज बजाव रहे।

हम युद्ध की बात कह रहे थे, हम ने यहाँ तक
खद कहा है कि हमारे प्रत्येक कार्य युद्धस्थल ही रहे
हैं। जाति और व्यक्तियों की तो लड़ाई होती है।

पर हमारे शरीर में द्वन्द्वयुद्ध मचा हुआ है। जिसने जीवन तो बहुत दिन से धारण कर रखा है, पर किया कुछ भी नहीं। जिसने मनुष्यजीवन में शक्ति तथा बुद्धि पाकर यों ही वरवाद कर दिये, जैसे कोई अनभिज्ञजन दूध से नापदान धो दे। जो उस के शरीर के कुक्षेत्र को देखो तो मालूम होता है इस की देही में बुद्धि, बल; ओज, विचार और आचार आदि के साथ मूर्खता, आलस्य, निस्तेज, नासमग्नी और दुर्गुण प्रभृति पाण्डव तथा कौरवों का युद्ध हो रहा है। जब कि लड़ाई की दशा है तो फिर उसे शान्ति कहाँ? फिर तो 'वदान्तस्य कुतः सुखम्' बना ही बनाया है। ये सब युद्ध के प्रसंग टालने ही नहीं, प्रत्युत मिटाने होंगे। इन लड़ाइयों के विपवृक्ष का मूलोच्छेद ऐसे उपाय से करना होगा जैसा गीता में कहे—
 "अश्वत्थमेनं सुविरुद्धमूलमसङ्गशस्त्रेण हृडेन छित्त्वा"
 इस उपाय से श्री कृष्ण ने अजुने का किया था।

यस्तुतः युद्ध एक प्रकार की पशुता है। इस का बद्गमनस्थान वही प्रवृत्ति या भावना है जो एक कुत्ते को; किसी दूसरे कुत्ते को देखकर उस के साथ लड़ने के लिए उत्तेजित करता है। युद्ध करनेवाले उस की चाहे जितनी प्रशंसा के सीठने सीठ लें। पर है यह उस ज्वालामुखी आग की लपट जो ईश्वरीय मानव उपवन को झुलसकर रख देती है। युद्ध चाहे जिन का हो, उसे चाहे जंगली करें या सभ्य लोग करें, पर उस की भीषणता समान ही होती है। झूठ बोलनेवाले जंगली और मिथ्या प्रचार करनेवाले सभ्यों में क्या अन्तर है? छल और पापण्ड से दोनों काम लेते हैं। हाँ, यह भेद अवश्य है कि जंगली लोगों का झूठ तथा कपट सीधा याने सब की समझ में आने लायक होता है। और सभ्यताभिमानियों का अस्पष्ट, दुर्बोध और जटिल होता है। सभ्य फहाने-

वाले लोग अपने-भावों को छिपाने की योग्यता रखते हैं, और ऊपर से उस असत्य आदि पर आदर्शवाद का पर्दा डालकर बड़े बड़े विद्वानों की आँखों में धूल शोँक देते हैं। जैसा कि आजकल हो रहा है। आजकल किसी के झूठ सच का पता ही नहीं लगता। यदि कोई जिम्मेदार मनुष्य उन झूठ के ठेकेदारों से यह पूछता है कि क्या तुम्हारी सभ्यता का तकाजा यही है कि तुम मैदान के ऊँचे किनारे पर खुले आम झूठ बोलो तो वे विला तकल्लुफ यह उत्तर दे देते हैं कि क्या किया जाय 'लड़ाई का समय है।'

जो क्रीडा, विनोद या खिलवाड़ थोड़ी देर होता या थोड़े दिनों होता है, वह अच्छा लगता है। देखा होने से समय स्वास्थ्य बचाकर मनुष्य फिर भी उसे देखने सुनने के लिए प्रवृत्ति करता है। यदि कोई सिनेमा, सरकस या नाटक रात दिन लगातार महीनों या हफ्तों होता रहे तो सब दर्शकों के रसभंग का कारण हो जाता है। देखने और दिखानेवाले के समय तथा स्वास्थ्य की धरवादी के कारण से यह रसाधायक नहीं रह जाता। जब कि विनोद कौतुक का यह हाल है तो अवाञ्छनीय युद्ध के लिए तो कहना ही क्या है? यदि युद्ध भी कभी कभी हो, और जब हो तब जल्दी समाप्त हो जाया करे तो ठीक हो। पर जो यह खूँटा गाड़कर दुनियाँ में डेरा ही डाल दे, याने बहुत काल तक होता रहे तो सभी खिन्न अव्यवस्थित तथा हतोत्साह हो जाँयेंगे। पहले समय के युद्ध जल्दी समाप्त हो जाते थे। यद्यपि नैपोलियन, तातारियों और यवनों के हमले तत् तत् देशों पर बहुत दिन होते रहे, पर वे उसी देश तक सीमित रहते थे जिन पर आक्रमण होता था। वे होते भी कभी कभी थे। वे रण्डयुद्ध थे। पहला यूरोपीय युद्ध भी अधिक दिन तक चलता रहा, पर

वह भी सीमित था। किंतु वर्तमान युद्ध इतना भयानक है कि इस की लपटें सभी देशों को मगल में ले रही हैं। जो लड़ रहे हैं वे तो मरते ही हैं, उन का अपरिमित सामग्रीसभार जो मान की रक्षा तथा मुक्त के लिए प्रयुक्त होना चाहिए था उस से नरसंहार का काम लिया जा रहा है। किंतु दुःख तो यह है कि वे भी मर रहे हैं जो लड़ाई की चहारदीवारी के बाहर खाली हाथ रहते हैं। जब लड़ाकों से पूछते हैं कि इन निरीह निदोष नर नारी तथा बाल बृद्धों का भाव में बाने की तरह क्यों मरना जा रहा है तो यह जवाब देकर पीछा छुड़ा लिया जाता है कि 'हम नहीं चाहते किसी भी अशैक्षित नागरिक का बलि बर्बाद हो, इतने पर भी जो कुछ हो रहा है, हम उस के लिए लाचार हैं, क्या करें 'युद्ध का समय है।'

जब मैं बिस्वीह का जिला देख रहा था तो वहाँ "जौहर का मैदान" निरीक्षण करते हुए मुझे पास के एक खण्डहर से पक्षीरूपधारी एक देवता ने कहा कि "यहाँ सनी पद्मिनी के साथ हजारों असुरपरवा राज दाराधे जलकर भस्म हो गई, इस का कारण युद्ध था।" मुझे आज भी वहाँ अपनी मा बहना के अरण्यवर्ण चरणचिन्ह दिखाई दिये। वे भावना-जगत् में आज भी अमर हैं। युद्ध की बदौलत विस्वीहमाद आज खण्डहरों के ढेर में परिणत दिखाई देता है। क्योंकि सैनिकसमाज, अर मनुष्यों की जान तक की परवाह नहीं करता तो उन के भाल, असत्रान, तथा घर द्वार की विन्ता क्यों करने देगा ?

मैं घूमते हुए एक समय पंजाब देश के उस स्थान पर पहुँच गया जहाँ गुरु गोविन्दसिंहजी के दो पुत्र त्रिलो ही दीवार में चुनना दिये गये थे। मैं उस दीवार का पकड़कर बैठ गया। मुझे तन्द्रासमाधि में उस में से हँसने की आवाज आई। और यह

सुनाई दिया कि—'हे मनुष्य ! इस दीवार को मत पकड़, हम देग, जलति तथा धर्म के लिए इस दीवार के सिंहासन पर सदा के लिए अभिषिक्त हुए हैं। इस को वहीं स्पर्श कर सकता है जो धर्मदेवता के मन्दिर में अपने मस्तक के श्रीफल को (नारियल की) अपने ही हाथ में लेकर भेद अर्पण करने आवे। जिस समय हमें यहाँ राजतिलक देकर हिंदुजाति के हृदय का सम्राट् बनाया गया था, वह युद्ध का समय था।' जब मैं ने उस दीवार के पीछे अँधेरे पार्श्व में देखा तो वहाँ काला मुर किये लोहगुद्गलित एक भयानक सा आदमी साकर कह रहा था कि 'मैं एक सम्राट् का सूबा था' भत्तों की हत्या करके "बालकों, जियों और बृद्धों के साथ अन्याय नहीं करना चाहिए" इस सर्वसाधारणसमय नियम की धोर अवहेलना की है। मैं अधिकार के स्वार्थवाद में मनुष्यता का भूल गया था। युद्ध के नशे ने मेरा बुद्धि-विभ्रम कर दिया था, मुझे यही सूझा कि इस समय सर्वथा अनुचित भी उचित ही है, उस समय जिस काम को करके मैं हँसा था, आज उसे याद करके रो रहा हूँ। मैं ने यह निश्चय दृढ़ कर लिया था कि इस वस्तु जो चाहे किया जाना अक्रमन्धी में दारिद्र्य है, क्योंकि 'लड़ाई का समय है।'

प्रवृत्ति धन, जन, विद्या और पराक्रम आदि का पसंद नहीं करती, वह सदाचार से जो सामाजिक जीवन की डुनी है अधिक प्यार करती है। पितृ धन, विद्या और पराक्रम से सदाचार का समिक्षण नहीं है उन से शान्ति के बानावरण की आशा नहीं करनी चाहिए। मानव सामाजिक प्राणी है, विना समाज के वह न जी सकता है, न जीवन को पूर्ण तथा विनाशो बना सकता है। उसे समझ लेना चाहिए कि उन्नत व्यवस्था की सफलता का साधन

युद्ध नहीं, किंतु सदाचार है। यह जीवनमयन का आधारस्तम्भ है। युद्ध में पहले सदाचार याने सच-रित्रता को जलाञ्जलि देनी पड़ती है। सदाचार बाहर की वस्तु नहीं है, वह अन्तःकरण की चीज है। सदाचार का यह मूल सिद्धान्त है कि वह सारे संसार के लोगों को अपनी ही तरह का प्राणी मान लेता है। जब यह निश्चय कर लिया जायगा कि जिस कार्य या जिस प्रकार के व्यवहार से हमें कष्ट होता है यदि हम भी उसी प्रकार का व्यवहार किसी दूसरे के प्रति करते हैं, तो उसे भी उस से कष्ट पहुँच सकता है और वह कष्ट उसी प्रकार का होगा जैसे हमारे प्रति किये गये किसी के असत्य व्यवहार के कारण हमें दुःख उठाना पड़ता है तो हम भी कभी झूठ बोलने का व्यवहार करके किसी को उसी प्रकार की दुःखपूर्ण परिस्थिति में डालने का यत्न न करेंगे। यदि मनुष्य लोगों से 'आत्मौपम्येन' का व्यवहार कराना, करना प्रारम्भ कर दे तो उसे सदा सदाचार से रहने का अभ्यास हो सकता है। फिर उसे दुराचार करने की प्रवृत्ति ही नहीं होगी। सत्य भाषण, अस्तेय, कर्मव्यय, अपरिग्रह और मादक द्रव्यनिषेध की आदत स्वाभाविक हो जायगी। क्योंकि इन के पालन करने के स्वाभाविक अभ्यास का नाम सदाचार है। सदाचारी महात्मा के सत्यादि गुण प्रकृतिसिद्ध हो जाते हैं, याने आदत में शामिल हो जाते हैं। यदि सब नहीं तो अधिकांश लोग सदाचार के परिपालक हो जायें तो किसी तरह का भी चाहे वह व्यक्ति युद्ध हो अथवा स्वाययुद्ध, वर्णयुद्ध, श्रेणियुद्ध, धर्मयुद्ध और जातियुद्ध हो—युद्ध होना ही बन्द हो जाय। सदाचार से मनुष्य उन्नत होता है, उस में प्राकृत पदार्थों का घरोर टाक अपनी बुद्धि और पराक्रम के अनुसार यथेच्छ उपयोग करनेयोग्य बन जाता है। उस से जीवन की अगान्ति मिट जाती है। फिर इस से सुख मिलता है। बस, इसी की प्राप्ति सब का ध्येय है। किंतु युद्ध का दैत्य इस महल को किसी के याने न अपने न दूसरे के काम में आनेलायक छोड़ता है। युद्ध सभी प्रकार की सामाजिक अवस्था को अस्त-

व्यस्त कर देता है। यदि आज तक 'युद्ध' में मरे हुए मनुष्यों की हड्डियाँ एकत्र करके ढेर लगाया जाय तो वह हिमालय की सव से ऊँची चोटी से भी ऊँचा निकल जायगा। युद्ध की यन्त्रणा के सामने नरक की यातना फीकी है। यह लोगों के सुख शान्ति को हगम कर देता है और उन के चित्तों को स्मशान बना देता है। जहाँ रोने के सिवाय और कोई काम ही नहीं हुआ करता। युद्ध ने सदा ज्ञान का रास्ता रोका है। और उन्नति के अभिलाषी मनुष्य के साथ जुली शत्रुता की है। युद्ध और ज्ञान का तेजस्तिमिरवत् एक स्थान में रहना असंभव है। ज्ञान की जिज्ञासा उन के हृदयस्थल में उत्पन्न होगी जो शान्ति की अनुभूति कर रहे होंगे। युद्ध के आकाश में तो क्रोध, द्वेष, तथा ईर्ष्या के मेघ उदय हुआ करते हैं। मनुष्यात्मी शत्रुता को ज्ञान ही कम कर सकता है, युद्ध उसे बढ़ाता है। स्वतन्त्रता, जो मनुष्य की परम प्रिय वस्तु है युद्ध उसे हटाकर उस की जगह गुलामी का अभिषेक करता है और जो विजयी होकर विजयश्री का अधिकारी बनता है उस के सामने बड़े भारी भावी महाभारत का पड़ाई खड़ा करने का बीज घनन कर देता है, जैसे पहले यूरोपीय युद्ध ने इस युद्ध का बीज बो दिया था।

आज जिन राष्ट्रों की स्वतन्त्रता छिन गई है, उन से पूछो कि संसार स्वर्गमय है कि नरकमय ? वे उत्तर देंगे स्वतन्त्र ही स्वर्ग है और उस की अनुभूति करनेवाले उस स्वर्ग के देवता हैं। जो देश प्रेम के लिए युद्ध में प्राणत्याग करते हैं उन की पुस्तकों और लोरु में भी बड़ी प्रशंसा होती है। हम भी उन का आदर करते हैं। यदि युद्ध का दैत्य ऐसे त्यागियों को खा न जाता तो वे देश की श्रीवृद्धि के कारण होते।

जिन का स्वातन्त्र्य अपहरण हो गया है ऐसे राष्ट्रों को यह कहकर सान्त्वना नहीं दी जा सकती कि जीना है, जीते रहो। स्वातन्त्र्य तथा परातन्त्र्य में क्या अन्तर है। चिन्ता न करो, फिर सुदिन आयेगे, अब तो यह समझकर सब कुछ सहन कर लो, क्योंकि 'युद्ध का समय है।'।



दीपावली

(ले०—स्वामी श्री शिवानन्दजी योगिराज, वैद्य, धन्वन्तरिकु)

तमसो ज्योतिर्गमय ।

जैसे यह 'दीपावली' बीत चुकी, वैसे ही असंख्य दिवालियाँ बीत चुकीं, और प्रत्येक, मनुष्य के जीवन में सैकड़ों व्यतीत हो जायँगी। किंतु मनुष्य इस के सत्त्व की ओर ध्यान दे तो उसे अधिक लाभप्रिय होने का सौकर्य प्राप्त हो सकता है। आर्यधर्म में अनेक पर्व हैं। किंतु यह दीपावली का पर्व अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसमें घनवयोदशी 'नरकचतुर्दशी' 'महालक्ष्मीपूजन' (दीपावली) 'गोवर्द्धनपूजा (अन्न हूद) 'यमद्वितीया' (भैयादोज) ये पाँच पर्व पर-परानिहित हैं।

दीपावली से नवीन वर्षारम्भ होता है। गुजरात आदि देशों में इसे अधिक महत्त्व दिया जाता है। वहाँ के लोग एक दूसरे के पास शुभसंदेशपूर्ण पत्र भेजकर सवत्सर के प्रारम्भ में मङ्गलकामना किया करते हैं।

पशुपत शरदः शतम्, जीरेम शरदः शतम् ।
श्रुणुयाम शरदः शतम्, अदोनाः स्याम शरदः शतम् ॥
इत्यादि अनेक वचनों में सैकड़ों शरदः ऋतुओं तक पूर्ण और स्वतन्त्र जीवन का उपयोग करते हुए जीवित रहने का शिवसंकल्प किया गया है। इस से प्रतीत होता है कि शरीर के स्वस्थ और दीर्घजीवी रहने के लिए शरदः ऋतु सब से महत्त्वपूर्ण समय है। इस ऋतु में दीपावली पर्वमहोत्सव मनाने का अभिप्राय

यह है कि हम अपने जीवन को प्रकाश में देखें और अन्धकार से बचें।

शुद्ध पर्व की दृष्टि से 'दीपावली' का उज्ज्वल आलोक संसार के सब उत्सवों से विशिष्ट प्रतीत होगा। यह भौतिक आनन्द की अनुभूति बहुत ही स्पष्टणीय वस्तु है। किंतु इस से भी अधिक इस में स्थायी आध्यात्मिक कल्याण की भावना है। ऋणियों ने दीपावली में सासारिक अशुद्ध्य की सिद्धि के साथ साथ आत्मिक कल्याण की साधना को अधिक महत्त्व दिया है। सब मनुष्यों के लिए एक प्रकाश का और दूसरा अन्धकार का ये दो मार्ग हैं। एक का नाम 'देवयान' है और दूसरे का 'पितृयान'। पहले में सत्य, धी तथा ज्योति का साम्राज्य है। और दूसरे में अनृत, पाप तथा अज्ञान का धोखाड़ा है। भौतिक दृष्टि में सूर्योदय और सूर्यास्तमूलक ज्योति तथा अन्धकार का जा सङ्ग है, वही अध्यात्म जगत् में ज्ञान और अज्ञान का है। सूर्य, अग्नि तथा विश्व आदि चों को प्रकाशित करनेवाली ज्ञानस्वरूप महाप्रज्ञाति ही महादीपक है, और उस शाश्वत के अज्ञान, अविद्या माया के आवरण से आवृत हो अज्ञानान्धकार में निमग्न हैं। अन्धकार में ही प्रकाश की आवश्यकता पड़ती है। क्योंकि हम जीवरोटी-प्रविष्ट प्राणी हैं, हमें प्रकाश चाहिए। अतः अध्यात्म-प्रकाश की तीव्र अभिलाषा को व्यक्त करने के उद्देश्य से हमारे पूर्व महापुरुषों ने 'दीपावली' को केन्द्रबिन्दु बनाकर 'हर' में प्रकाश करने की व्यवस्था की है। इस दिन सब आराधन 'तमसो ज्योतिर्गमय' हमें

० ३ प्रकाश के जगत्तय शान ! हमें अपने से बचने की ओर ले चल ।

अँघरे से प्रकाश मिले इस भावना को चरितार्थ करने-
वाले पुरुषार्थ को उत्तेजन देने का यत्न करते हैं। इसी
भावना से प्रेरित होकर हिंदुओं के यहाँ आकाशदीप
जलाने की प्रवृत्ति देखने में आती है।

आर्यजनता ही नहीं, किंतु पृथ्वीमण्डल के
सभी देशों, धर्मों, संप्रदायों और मतों के लोग किसी
न किसी रूप में दीपोत्सवप्रणाली का आश्रयण कर-
के अपनी हार्दिक प्रसन्नता व्यक्त करते देखे गये हैं।
उन में किसी समय या ऋतु का नियम नहीं है, जब
चाहा तब राजनीति या सामाजिक कारणों से इसे
मना लेते हैं। हमारा देश धर्मप्रधान देश है, इस में
जो भी कुछ सामाजिक, सामयिक, दैविक, भौतिक,
व्यावहारिक और नैतिक आदि कार्य किये जाते हैं
उसी धर्म की सीमा में मान लिये जाते हैं।

परापुराण में महादेवजी ने अपने पुत्र कार्तिकेय
से कहा है कि विरुण सदा यह इच्छा करते रहते हैं
कि हमारे वंश में कार्तिक मास में दीपदान करके
विष्णु भगवान् को प्रसन्न करनेवाला कोई सुपुत्र
उत्पन्न हो। पीतया तिल के तेल से जो दीपक
जलाता है उसे अरवमेघ यज्ञ करने की आवश्यकता
नहीं रह जाती।

शृणु दीपस्य माहात्म्यं कार्तिके शिखिवाहन ।
पितरश्चैव वाञ्छन्ति सदा पितृगणैर्वृताः ॥
भविष्यति कुलेऽस्माकं पितृभक्तः सुपुत्रकः ।
कार्तिके दीपदानेन यस्तोष्यति केशवम् ॥
घृतेन दीपको यस्य तिलतैलेन वा पुनः ।
ज्वलते यस्य सेनानीरश्मयेवेन तस्य किम् ॥

यहाँ पर यहाँ तक लिखा है कि उस ने सब नित्य
नैमित्तिक यज्ञ कर लिये, और सब तीर्थों में स्नान
कर लिया जो कार्तिक मास में विष्णु के आगे दिया
अलता है। उस के पाप तभी तक गर्जना करते हैं

जब तक वह कार्तिक में दिया नहीं जलाता। स्वर्ग,
मर्त्य और रसातल में उस के पुण्य तब तक सिंह-
गर्जन करते रहते हैं जब तक कार्तिक में उस का
दीपक जलता रहता है। लिखा है दीपक चुरानेवाला
अन्धा और उस के बुझानेवाला काना होता है।

दीपावली के दिन महालक्ष्मीरूपा शक्ति की उपा-
सना की जाती है। इस पर्व की वैश्यवर्ग के लिए
विशेषतया विधि है, पर अन्य वर्णों के लिए निषेध
नहीं है। लक्ष्मी की सब को आवश्यकता पड़ती है,
इस से उस की उपासना भी सब को करनी चाहिए।
वैश्य लोग स्वार्थ के लिए, अर्थात् अपने भण्डार परि-
पूर्ण करने के लिए लक्ष्मीपूजन करते हैं। किंतु इतर
वर्ण स्वार्थ परार्थ के लिए उस की आराधना करते हैं।
जैसे ब्राह्मणवर्ण लक्ष्मीप्राप्ति के साधनभूत विज्ञान
की उन्नति के लिए, क्षत्री लक्ष्मीसंरक्षिका शान्ति-
कामना से और शूद्र लक्ष्मी के व्यवस्थापक श्रम की
सिद्धि के निमित्त दीपावली के दिन महालक्ष्मी की
आराधना करते हैं।

जिन लोगों को समुचित रूप से पूजाविधि नहीं
मालूम है या समय पर पूजासामग्री नहीं उपलब्ध
है, उन्हें 'ॐ सिद्धि श्री महालक्ष्म्यै नमः' इस मन्त्र से
जो भी पूजापकरण समय पर प्राप्त हो सके उस से
पञ्चोपचार या षोडशोपचार या साधारण ही प्रदोष-
काल में लक्ष्मीपूजा कर लेनी उचित है।

पूजन के बाद यह स्तुति करनी चाहिए—
अङ्गं हरिः पुलकभूषणमाश्रयन्ती,

मृद्राङ्गनेव मृकुलाभरणं तमालम् ।
अङ्गीकृताऽखिलविभूतिरपाङ्गलीला

माङ्गल्यदास्तु मम महादेवतायाः ॥
जो उक्त माङ्गल्यपूजन का उच्चारण सुमनसा से
नहीं कर सकते वे—

विश्वरूपस्य भाव्यांशसि .

पद्मे । पद्मालये ॥ शुभे ॥

महाकृष्णि ! नमस्तुभ्यं

सुखराशि कुक्ष्य मे ॥

इस वचन से लक्ष्मीस्तवन कर सकते हैं। जो विद्वान् पुरुष हैं उन के लिए वो 'श्रीसूक्त' की वैदिक स्तुति है ही। तान्त्रिकों के लिए 'श्रीयन्त्र' पूजन की विधि सर से अच्छा प्रकार है।

महाभारत के अनुशासन पर्व में लक्ष्मी के रहने के स्थान बताया गया है, वहीं उस के न रहने की जगह भी बताई है। जैसे—

यः संविभागी, विपदाकपभाषी,

दुद्रोपसेवी नियदर्शनयः ।

अन्यप्रलापी, न च दीर्घमूर्खी

तस्मिन् सदाहं पुरुषे वसामि ॥

जो स्वयं को बराबर हिम्मा देनेवाला, विपभाषी, दुद्रोपसेवी, सुन्दर, मित्रभाषी है और आलसी नहीं है, उस पुरुष में सदा मेरा वास रहता है।

यो न पश्येत् स्थितं भर्मा, नियतं स च मे विपः ।

इत्यादि

जो बधिरद्विष्ट स्त्री को नहीं देखता, जिस में त्याग, सत्य और शौच के गुण विद्यमान हों वह पुरुष लक्ष्मी का धारा है। यथा—

यपोपदिष्टा पुरुषमकिमुक्ता

पत्युर्वचो नाक्रमते च नित्यम् ।

नित्यं च मूर्खो पतिमुक्तेरपि

वक्ष्याः क्षीरो नियतं वसामि ॥

उस स्त्री में लक्ष्मीवास करती है जो आशाकारिणी, गुह्यजनमक्ता, पति के कथन को न टालनेवाली और जो पति के मुक्तदोष का भोजन करनेवाली हो। -

१२२

इत्यादि विशिष्ट महागुण जिस स्त्री, पुरुष, व्यक्ति में होंगे उसे त्यागकर लक्ष्मी देवी अन्यत्र नहीं जा सकती। ऐसे पवित्र लोगों को ही दीपावली के दिन महालक्ष्मीपूजन का थायाधे अधिकार है।

पञ्चैत्युक्तः पादारसेवी

आचारहीनः परशदसेवी ।

संकीर्णचारी परिवारहीन-

स्तं निष्ठुरं दम्पत्यं स्पजापि ॥

जो मनुष्य मन्त्ररहित, परस्त्रीगामी, आचारहीन, दास और सर्वोर्ण स्वभाव का होगा मैं उस कठोर दम्भी का घर त्याग देती हूँ। यथा—

कुचैल्लिप्तं दन्तमज्जघारिणं

विमुञ्चति श्री रविचक्रपाणिम् ॥

इत्यादि

लक्ष्मी फिर कहती है कि जिस के विचार अच्छे नहीं हैं, जो मँडल कपड़े पहनता है और जिस के दाँत मँडल हों, वह मेरे अंगार में कँकाड़ा हो बना रहता है।

जो माता पिता, पत्नी, गुरुपत्नी, अनाथ, असहाय, दीन बन्धुओं का कृपणता के कारण पालन नहीं करता, कुछ ही दिनों में उस के घर से लक्ष्मी ऐसे निकल जाती है, जैसे फूटे घड़े से पानी बह जाता है। फिर वह चाहे विष्णु ही क्यों न हो।

ऐसे ही जो स्त्री पापप्रिया, विगुणस्वभावा, पति को अपनी आज्ञा पर नचानेवाली, अपमानिता, तथा कामवासना को न सहनेवाली होगी, मैं वधू के घर तक नहीं पटकती। ऐसी को दीपावली पर लक्ष्मीपूजा का अधिकार नहीं है। लक्ष्मी जैसे पवित्र तपास्वयं देवता की भाराधना के ही अर्थायत सवादन करने में समर्थ हो सकते हैं गिन के अन्तःकरण सर्व-भूतहितभावना से पवित्र हो गये हों।

दीपावली के विषय में पुराणों में कई तरह के इतिहास मिलते हैं। यद्यपि सब का अन्तिम उद्देश्य एक ही है—समान ही है। पर इस महोत्सव मनाने के अनुष्ठानों की विधि विधानों में कुछ भेद सा है। हमें सब से अच्छा आजकल के उपदेशोपयोगी यह इतिवृत्ति मालूम पड़ा कि—“जब राजा बलि ने राज-लक्ष्मी को छीनकर अपने वंश में करके कैद कर दिया तब जनता लक्ष्मीहीन हो गई। श्रीहृत् देवगण तत्पश्चात् राज बली के वन्दी हो गये। देश में दारिद्र्य और दुःख का अवाञ्छनीय दौरा होता गया। भगवान् विष्णु ने इन्हीं तीन दिनों में लक्ष्मी का देवताओं-सहित उद्धार किया था। जिस दिन लक्ष्मी वनवन से छूटी थी उस दिन यही कार्तिक की अमावास्या थी। इस लिए लोगों ने लक्ष्मी की छूटने की खुरी में आकर घर घर दीपावली का आनन्दोत्सव मनाया था। आज भी ऐतिहासिक विजय की दृष्टि से यह दीपावली फिर हमें उस गई हुई भारतलक्ष्मी के उद्धार की याद दिलाती है। जिस का उद्धार विष्णु भगवान् ने किया था। आज भी हमारी लक्ष्मी बलपूर्वक बल्लिष्ठ में याने बलवानों के देश में प्रतिदिन चली जा रही है। आज हमारी लक्ष्मी और हमारे देवता हम से जुड़े हो गये हैं। हम फिर उन के संपर्क में आने का मार्ग ढूँढ़ रहे हैं, पर अज्ञानान्धकार में रास्ता नहीं सुझाता। इसी से हम सब लोग एकत्र हो, एकभावना से प्रेरित हो दीपावली का प्रकाश कर रहे हैं कि इस वर्षारम्भ में हम अपने गन्तव्य मार्ग को अन्वेषण करके उस पर चले।”

आज हम ‘नमः शान्ताय तेजसे’ वचन से प्रभु का स्मरण करते हुए, इस वर्ष—

‘यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पाथी घनुर्यरः।

तत्र श्रीविजयोभूतिध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥

इस भगवद्वाक्य का उपदेश देते हुए यह मन्त्र-कामना करते हैं कि—

(१) यह वर्ष सत्तम सपरिवार आप के हृदय-मन्दिर को दीपावली के दीपसमूह के प्रकाश की तरह

विज्ञान, आनन्द, सत्य, त्याग और प्रेम के दीपकों से प्रकाशित करे।

(२) इस वर्ष आप लोगों का अन्तःकरणसरोवर विश्व के प्राणिमात्र के प्रति अखण्ड स्नेहभावना के अमृतसर से परिपूर्ण हो।

(३) यह संवत् आप को बुद्धि, लक्ष्मी और शक्ति का उपासक बनावे।

(४) इस वर्ष जो कुछ खाया पहना जाय उस से निष्पन्न वीर्य, स्वास्थ्य से वर्द्धित यह आप लोगों का भौतिक वेह सब की सेवा के उपयोग में आने के योग्य हो।

(५) इस वर्ष हमारे सब काम मिल जुलकर एकदिल से हो सकें जिस से मतभेदमूलक कार्यभेद से हमारा समय और शक्ति व्यर्थ व्यर्थ न हो।

(६) इस साल हमारे रक्षक राजा की पूरी शक्ति हमारी रक्षणवेक्षण के उपयोग में 'सन्तोषदा आ सके और प्रजा तथा राजा में यत्किञ्चित् कटुता सर्वथा न रहने पावे।

(७) इस वर्ष सब का ईश्वर, वेद, धर्म पर विश्वास और भी अधिक दृढ़ हो जावे और मादृममि, जाति, तीर्थ, मन्दिरों मठों पर श्रद्धा अधिकाधिक बढ़े।

(८) इस वर्ष चोरी, हिंसा, व्यभिचार, असत्य और मादक द्रव्यों के सेवन का हृदय से परित्याग करके सब लोग, 'रामराज्य' के सुख का अनुभव करने में समर्थ हों।

(९) “इस वर्ष सर्वशक्तिमान् प्रभु अपनी विनाशालोलाताण्डव बन्द करा दें, जिस से प्रभुप्रदत्त विभूतियों का दुर्बल, प्रबल सबल लोग यथेच्छ यथा-शक्ति उपयोग कर सकें।”

(१०) इस वर्ष सब लोग अपने अपने वर्णाश्रम-धर्मानुष्ठानसुर भगवान् से इस संकटकाल से त्राण पाने की इच्छा से यह प्रार्थना करें कि—

सर्वेऽत्र मृत्विनः सन्तु, सर्वे सन्तु निरामयाः।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद्दुःखमाप्नुयात्॥

फाले वर्षे तु पर्जन्यः पृथ्वी शस्यशालिनी।

केशोऽयं सौभरहितः साधवः सन्तु निर्मयाः॥

कार्यसिद्धि क्यों नहीं होती ?

(ले०—विमूढि देवी अष्टाध्यायी)

‘भिदा दग्धा परान्नेन’—

संसार के सब काम करने, सोचने और करने से होते हैं, पर सब कामों में करने का नजर पहला है। जैसे किसी पाठशाला में कुछ लोग पढ़ाने और बहुत से पढ़ने जाते हैं। वहाँ पहले कहा जाता है फिर उसे सुना सोचा जाता है। कह बह सकता है जिसे कहना आता हो, याने जिस ने कहना सीखा हो। कथन करना वाणी का विषय है, याने जीभ का काम है। जिह्वा सराव न होगी, याने दग्ध न होगी तभी कहा जा सकता है। सभी नहीं कह सकते, कथन करने की सामर्थ्य संपादन करने के लिए व्यग्रपूर्ण करनी पड़ती है, गुण के चरणों में रहकर सपामय जीवन विताना पड़ता है। जिसे कहना आता है वह चाहे वा संसार में भाग लगा दे तथा लगी अग्नि को सहज में बुझा दे। पहले समय में जो जिस को भला घुरा कुछ भी कह देता था, वह कथन सफल हो जाता था। पुराणादि ग्रन्थों में शाप देने की बातें आती हैं। उन का प्रयोजन यह है कि प्राचीन पुरुषों की वाणी सफल होती थी। यदि यह बात है वा अनाकल ऐसा क्यों नहीं होता ? इस प्रश्न का उत्तर है कि—‘भिदा दग्धा परान्नेन’ याने दूसरे का मुक्त का माल उड़ाने से जीभ जल गई। सोच यह है कि दूसरे का दिया हुआ भाजन करनेवाला की वाणी में कुछ भी सामर्थ्य नहीं रह जाता, अतः वे अपनी वाक्शक्ति की अभिवृद्धि नहीं कर सकते। मनुष्य का स्वभाव है कि जब इस का काम बैठे बैठे चल जाता है सो वह असफल नहीं करना चाहता।

भला दूसरे के दिये भोजन से जिन का निर्वाह हो जाता था वे ‘गुरुगृह’ में जाकर क्यों पढ़ने की खटपट में पड़ने लगे हैं ?

‘भिदा दग्धा परान्नेन’ इस वाक्य में ‘पर’ शब्द से अपने से दूसरे सभी का समन्वय मानना चाहिए। वह ‘पर’ चाहे कोई आने कुटुम्ब, जाति या देश का हो या अपना पिता, दादा, भाई आदि हो। करने का प्रयोजन यह है कि पराई कमाई पर (चाहे वह अपने बाप, दादा ही की क्यों न हो ?) सौजन्य मारनेवालों की वाणी जलकर खाक हो जानी है। इसी कारण अमीरों के लड़के अपने बाप दादों का घन पानी की तरह बहाकर भी याने साधनों के होते हुए भी ऐसे बड़े विद्वान नहीं होते जैसा एक गरीब का लड़का हो जाता है, क्योंकि दूसरे की कमाई पर पड़नेवाले जवान के धनी नहीं हो सकते। देश की वे ही जातियाँ विदेशों में जाकर व्यापार द्वारा घन-धन हो सकी हैं जिन्हें अपने बाप दादों की कमाई का सहारा या मरोसा नहीं था।

फिर बात यह भी है कि दूसरे का दिया अन्न खाने वाला अन्नदाता को नेकसलाह नहीं दे सकता। क्योंकि वह उस के सामने दबता है। यदि अन्नगृहीता दरीजवान से कुछ कहेगा भी तो उस का अन्न अन्नदाता पर नहीं पड़ सकता। दग्धनिष्ठ का प्रभाव किसी पर ऐसे ही नहीं पड़ता जैसे सुना हुआ अन्न का दाना भंडारित नहीं हो सकता। भीष्म पितामह जैसा महापुरुष, अरी सभा में अपने कुटुम्ब की रज-स्वला दुयवि की को नंगी करने का भीमत्स हरय

देखता रह गया, परन्तु तक नहीं कर सका। भोका आने पर "अर्धस्य पुरुषो दासः" इत्यादि वचनों से अपनी दुर्बलता को खुद स्वीकार किया है। कारण स्पष्ट है कि पराजित से उस की जिह्वा जल चुकी थी। अन्न का प्रभाव शरीर पर अवश्य ही पड़े बिना नहीं रहता। सुना करते हैं कि अनिष्ट अन्न खाने से किसी ब्रह्मनिष्ठ महात्मा ने एक रानी का हार चुरा लिया था। पराजितों से वचने के लिए ही संन्यासियों को भिक्षाचर्या का विधान किया गया है। वे अतन्म अनिकेत होते हैं, अतः धूम धूमकर भिक्षा से माधु-करी खाने के परिश्रम के कारण उन के आहार का 'पराजिता' दोष दूर हो जाता है। और वे प्रणवजप और प्राणायाम द्वारा अपने भोजन में पराजित दोष नहीं आने देते। जो दूसरे से प्राप्त अन्न खाकर उस का कार्य कर देगा उस को दोष कहाँ रह गया ? इसी से संन्यासी लोग प्रणवजप, प्राणायाम, कथा, उपदेश आदि द्वारा जो लोकोपकार साधन कर देते हैं उन की जिह्वा सफल रहती है, दग्ध नहीं होने पाती।

यह अनुभव की बात है कि जो लोग दूसरों की ऐशियाँ के मोहताज हैं, वे सदा हतश्री देखे गये हैं। धर्म का खानेवाले छाया में रहते हैं, परिश्रम से बचे रहते हैं, अच्छे अच्छे माल खाते हैं, चाहे जहाँ जा आ सकते हैं इत्यादि बहुत से सुभीते की जिन्दगी व्यतीत करते हुए भी वे तेजहीन से प्रतीत होते हैं। उन की बातें सुननेमात्र से प्रतीत हो जाता है कि इन को संतोष भी नहीं है। नित्य अच्छे अच्छे पदार्थ खाते रहने पर भी तृप्त जैसे नहीं मालूम पड़ते। कोई काम वस्तु मिलने पर अंदाज से अधिक खाकर दिन भर परेशान बने रहते हैं, जब देखो खाने ही की बातें करते रहेंगे। सब से बड़ी दुःख की बात तो यह है कि इन के पास पहाड़ जैसा विपुल समय रहता

है, इन्हें रात दिन फुरसत ही फुरसत रहती है, खाने पीने की चिन्ता नहीं रहती है। फिर भी ये विद्या नहीं पढ़ते, न भजन ही करते हैं, क्योंकि उन की वाणी पराजितभक्षण से निकम्मी हो जाती है।

सौ आदमी ऐसे एकत्र किये जाँय जिन का जीवन धर्मादाय पर निर्भर हो, याने जो धर्म के नाम पर पराया अन्न खाते हों और सौ आदमी उसी स्थिति के वे एकट्ठे किये जाँय जो कमाकर खाते हों। दोनों समूहों का मुकाबला करके देखा जाय तो पराजितभक्षी समुदाय ही हतश्री प्रतीत होगा, उन के विचार भी संकुचित होंगे। क्योंकि मँगनी के भोजन में वह दम नहीं है जिस से ओजस्यता प्राप्त हुआ करती है।

जब कि मनुष्य समझे है, अविकलेन्द्रिय है फिर अपनी जीविका के लिए अपने ही जैसे साधोपाध मनुष्य पर क्यों निर्भर रहता है ? मनुष्य को चाहिए कि वह किसी से लेने की इच्छा न करे। बिना काम किये किसी की वस्तु की तरफ देखे भी नहीं। राजा, धनी आदि ऋषि, मुनि, साधु संतों, अर्थों को श्रद्धापूर्वक देना चाहते थे, मगर वे न लेकर धन्य कन्द मूल फलों से अपनी जीविकानिर्वाह करते थे। उन्हें यह मालूम था कि—'जिह्वा दग्धा पराजित'।

। 'करो दग्धौ प्रतिग्रहात्'—

अर्थात् जब दान लेने से हाथ दग्ध हो जाते हैं तो उन में कुछ भी करने का दम बाकी नहीं रह जाता। मनुष्य की काये सिद्धि का सर्वोपरि साधन हाथ उस दशा में निकम्मा हो जाता है जब कि वह दान लेने के लिए किसी के हाथ से नीचा हो जाता है। आजकल के लोगों की मनोवृत्ति जितनी ले लेने में तेज है उस की शतांश भी देने में नहीं है। लोग लेने में सहस्रबाहु को भी मात कर देते हैं और देने में जगन्नाथजी की तरह

टूटा होने का कमाल कर देने हैं। अब कि राजा दिलीप आवश्यकता से अधिक देना चाहता था और वरतन्तु जरूरत से ज्यादा लेना अस्वीकार नहीं करता था वह भी एक समय था। और आज भी यह जमाना है कि शूदीवा दाता के कपडे तक धारने पर आमादा हो जाता है। जिन हाथों में अपनी जति, देश तथा दुर्बलों की रक्षा के लिए और आततायियों का दण्ड देने के वास्ते, अकृपण धृष्टाश्व हानी चादिए थी, दान लेने से उन हाथों को माना लकवा सा मार जाता है। आजकल जिसे देना चाहे समर्थ ही दा, सभी दान लेने के अधिकारी बनते हैं। पहले राजा राज्य करते थे, पर अपनी जीविका के लिए कोई खास काम किया करते थे। आजकल की भनायुक्तियों अनवर हो गई हैं। वर्तमान काल में वे खुर कहाते हैं जो दूसरों की कमाई पर मौज उठा रहे हों। हाथ पर हाथधरे बैठे रहना आजकल की अमीरी में दाखिल है। पहले की अमीरी अधिक से अधिक संस्था में गरीबपरवरी में थी। जिन हाथों से कोई कमा नहीं सकता जो दाय दान लेने से आग में लकड़ी की तरह जल चुके हैं उन हाथों से सोने की थाली में हलवा खाने की इच्छा करने का किसी को कोई अधिकार नहीं है। न्याय तो यह है कि जितना करो उतना खाओ।

दूसरे देश के लोग स्वाधलम्बन से जीवन विधान उत्तम समझते हैं। स्वामी सत्यदेवजी परित्रासक कहते थे कि अमेरिका में मेरे साथ जो विद्यार्थी पढ़ते थे, वे फालेज के अतिरिक्त समय में कहीं न कहीं मजदूरी करते थे और उसी से वे अपनी पढ़ाई का खर्च चलाते थे। एक दिन स्वामीजी ने अपने मित्र सदापानी को बाजार में इजा हाँवते देखा, स्वामीजी ने तपाक से उस के पास हँसते हुए गये और कुछ

बात करनी चाही। मगर उस ने स्वामीजी की तरफ देखा तक नहीं। बात वा क्या करनी थी और अपने पैसैजरो से बोलता रहा ? अपने पन्थि मित्र का वह व्यवहार स्वामीजी को बहुत बुरा लगा। अगले दिन जब वह विद्यार्थी स्वामीजी से फालेज में मिला तो स्वामीजी ने कहा 'तुम बड़े असह्य हा' ऐसी चोता-चरमी, वह विद्यार्थी स्वामीजी के कथन की उपेक्षा नहीं करते हुए मुस्कराकर बोला—'माई ! उस समय मैं ह्यूटी पर था यदि मैं आप से बातें करने लगता तो मेरी सवारी (पैसैजरो) हाथ से निकल जाती, मैं बेरोबर मजदूर तो हूँ नहीं, उस दिन भर खाई, मेरे पास तिके दो घंटे का समय रहता है। शहर में मेरे बहुत से परिचित हैं। यदि सब से ५-५ मिण्ट भी बातें करने में गुजार दूँगा तो मेरा साध समय व्यर्थ बरबाद हो जायगा, फिर एक काम करते समय उस काम समाप्त करके उस से अतिवृद्ध काम करने लग जाने की आदत हालकर अपना स्वभाव न बिगाड़ना चाहिए। दानजीवन में स्वभाव अच्छा न बनाया गया था पढ़ना बेकार है, क्योंकि यही स्वभाव जन्म भर काम आता है, इस में आप तथ्य बुरा मानते हैं, आशा है अब आप नापानी दूर कर देंगे।' स्वामीजी कहते थे कि यह बात सुनकर मुझे बड़ी शरम आई। हमारे देश में तो समय का कोई मूल्य नहीं है। और मेहबूब मजदूरी का बकपन को धूल में मिला देनेवाली मानी जाती है। और हमारे देश में बाप दारों की कमाई पर दिन व्यतीत करनेवाले, भाग्यशाली और मौज मारनेवाले समझे जाते हैं। एक रईसजारे अपने पूर्वजों की कीर्ति की बर्फी प्रशंसा कर रहे थे। मेरी समझ से बुझुर्गों की बर्बाद भर करके अपना कर्तव्य पूरा कर लेना समझनेवाले कुछ नहीं कर सकते। किसी प्राचीन संभाननोय महा-

पुरुष की प्रशंसा करने से कुछ लाभ नहीं, जब तक उन के प्रदर्शित मार्ग पर न चला जाय। हम कहीं तक कहें, सब को यह याद रखना चाहिए कि—
‘करो दग्धौ प्रतिग्रहात्।’

‘मनो दग्धं परस्त्रीभिः’—

‘मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः’ अर्थात् मनुष्य का जब कि मन ठीक है, उस में किसी प्रकार के पाप की कालिमा नहीं पुती है तो फिर आदमी जहाँ रहे, जहाँ जाय और जिस स्थिति में रहे उसे कोई हानि नहीं पहुँचा सकता, उसे कोई नहीं बाँध सकता। डाक्टर किसी रोगी का अंगच्छेद कर देता है, मगर उसे कोई दोषी नहीं उहरा सकता, क्योंकि उस का दिव साफ है। और जो अपने मन में बुरज भरे फिरते हैं, जो कपट से लिपट रहे हैं और जिन के मन द्वेष से भरे हैं, उन्हें सब जगह बेचैनी है, भय है तथा बन्धन है।

फिर जिन का मन ठीक नहीं, जिन का मन स्थिर नहीं, वे कोई कार्य यथार्थतः नहीं कर सकते। यद्यपि मन का स्वरूप ही ‘संकल्प विकल्पात्मक’ है, पर वह अभ्यास करने से सदा नहीं तो उत्तरे समय के लिए उस काम में एकाग्र होकर लग सकता है, जो कार्य मनुष्य करना चाहता है। क्योंकि सब काम मनोयोग-पूर्वक हो सकते हैं। चिन्ता, चञ्चलता, आलस्य, भ्रम, प्रमाद प्रभृति दोषों से मन अधिक डाँवाडोल हो जाता है, पर इन दोषों की निवृत्ति के उपाय इतने कठिन नहीं हैं जितना ‘मनो दग्धं परस्त्रीभिः।’ यह कठिन है। अर्थात् दूसरे की स्त्रीविषयक चिन्ता से मन जलकर राख हो जाता है। रामचन्द्र से परास्त होने के कारण रावण की निन्दा नहीं है, क्योंकि वीरों की हार से निन्दा नहीं होती। उस प्रतापी राजा की

अपकीर्ति दूसरे की स्त्री पर कुट्टि डालने के कारण हुई। परस्त्री पर दृष्टि डालनेवाले अपना यश, धन और बल सौन्दर्य आदि नाश कर बैठते हैं, क्योंकि उन का मन जल जाता है। जब कि मन का मद्या-मेट हो गया, फिर कुछ भी पास नहीं रह जाता, परस्त्री के कारण सुन्दोपसुन्द जैसे किसी से परास्त न होनेवाले दो प्यारे भाई परस्पर लड़कर मर गये। नहुष राजा स्वर्ग के ऊँचे स्थान से गिर गया, चन्द्रमा कलङ्की हो गया। वाली मारा गया। शिशुपाल की भी यही दशा हुई। कीचक भी इसी हालत को पहुँचा। परस्त्री के पीछे यवन नृपतियों ने राजस्थान के महल स्मशान में परिणत कर दिये। विरवामित्र की दुर्दशा का हाल सब जानते हैं। जिन्होंने ‘मातृ-वत् परदारेषु’ की शिक्षा नहीं मानी, उन्होंने अपना सब कुछ गवाँ दिया।

कहाँ तक कहें—परस्त्रीविषयक दूषित भावों से जिन का मन दुष्ट हो गया है, वह क्या अपनी भलाई सोच सकता है? और क्या दूसरे की? प्रत्येक अभ्युदयाकाङ्क्षी पुरुष को—

‘जिहा दग्धां परान्नेन करो दग्धौ प्रतिग्रहात्।
मनो दग्धं परस्त्रीभिः कार्यसिद्धिः कथं भवेत्॥’

इस कुलार्णव तन्त्र के वचन पर सदा ध्यान रखकर वाणी, हाथ और मन को दूषित होने से बचाने का सदा यत्न करना चाहिए। ये तीन संसार की कार्य-सिद्धि के प्रधान साधन हैं।

एक संत कहा करते थे कि जब कि संयमी पुरुषों के सब कार्य सुचारु रूप से संपन्न हो जाते हैं, फिर और लोग यह विचार क्यों नहीं करते कि हमारी “कार्यसिद्धि क्यों नहीं होती?”

सुखी जीवन

(ले०—पौ० श्री बासुदेवशास्त्री तैलङ्ग, शु० द्वे० वे० विशारद)

शिष्य—प्रभा, आज मुझी जीवन के अन्तर्गत धर्म का धर्म समझाने की कृपा कीजिए।

गुरु—वत्स, प्रत्येक व्यक्ति को धर्म के सदारे चलना पड़ता है और अधर्म से बचना पड़ता है, अथवा मरणसमय पर भी प्रिय मित्र धर्म का सदारा लेकर जाना पड़ता है। मरणसमय न भाई, न बन्धु, न पुत्र, न स्त्री, न धन, न धन कोई भी दुःख से विमुक्त नहीं कर सकते और दुर्बल, भीषण यमदूतों के कराठ पाश से विद्धमात्र भी अभय नहीं दिखा सकते। यदि विरवासी, परमप्रिय मित्र कार्द है तो वह धर्म ही है, शास्त्रों में कहा है 'धर्मात्तुगा गच्छति जीव एक' भागवत महापुराण के माहात्म्य अध्याय ४ में भी वो गोकर्ण ने अपने पिता से कहा है कि—

‘धर्म भजस्व सततं स्पृज लोकधर्मान्’

हमारे धर्म की पुष्टि में 'वेदप्रणिहितो धर्म' अधर्मस्तद्विपर्ययः।' वेद से कहा हुआ धर्म और वेद से जो नहीं कहा गया उसी को अधर्म कहते हैं। यह वो सर्वसिद्ध है कि वेद ईश्वर के स्वरूप हैं और धर्म से से इस धर्म की उत्पत्ति है, अतः अनायास ही इस धर्म की ईश्वर के साथ ही अनादिता सिद्ध हो जाती है और इस धर्म की ससारप्रियता का कारण यही है, तभी तो समय समय पर ईश्वर का अवतार लेना पड़ता है और स्वकीय धर्म की रक्षा करनी पड़ती है। इसी को गीता में कहा है— 'प्रतिग्राह्य साधूना ... धर्मसंस्थापनार्थाय च।' भगवद् ह्यमशक्तो कशावतार वेदव्यासजी का मत है कि 'धारणधर्ममित्याहुर्धर्मो धारयते प्रजा' धारण

करने से धर्म कहते हैं और वह धर्म प्रजाओं का धारण करता है।

शिष्य—ऐसा सुना गया है कि धर्मातुसार न चलकर प्रत्युत जो अधर्म से भित्रता करता है वह पशुवत् है। यह कथन कहाँ तक सगत है।

गुरु—मनुष्य और पशु बराबर हैं, जो कार्य मनुष्य करता है उसी को पशु भी करते हैं, खाना, पीना, सोना, धूमना, स्त्रीसेवन आदि सभी समान हैं। यदि हम शास्त्रीरिति से देखते हैं तो मनुष्य में जा विशेष गुण रहता है वह धर्म है। नीति पुकार पुकारकर कहती है—

आहारनिद्राभयमेषु न च

सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम्।

धर्मो हि तेषामधिको विशेषो

धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः॥

शिष्य—अद्वेय, प्राय देखा जाता है कि अनेक मनुष्य कभी किसी एक धर्म का और कभी किसी दूसरे का स्वीकार कर लेते हैं। जैसे—'अन्त शाका वहि शैवाः सभामध्ये च वैष्णवा।' यह ठीक है या नहीं?

गुरु—गीता में कहा है—'भेयान्त्वधर्मो विरुण।' 'स्वधर्मो नियतं भवे।' अन्यत्र भी कहा है—'धर्म एव ह्यतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षित।' जा धर्म की रक्षा करता है उस की धर्म भी रक्षा करता है। जो धर्मनाश करता है उस का धर्म नाश कर देता है।

शिष्य—पूर्वकाल में वो आजकल जैसी अशक्त

नहीं थीं और कानून भी ऐसे नहीं थे, तो फिर अराजकता खूब मची रहती होगी।

गुरु—वेदव्यासजी कहते हैं—

न वै राज्यं न राजासीद्धृष्टो न च दाण्डिकः ।
धर्मेणैव प्रजाः सर्वाः रक्षन्तिस्म परस्परम् ॥

प्राचीन काल में न कोई राज्य था, न राजा था, न दण्ड था और न कोई दण्ड देनेवाला ही था। किंतु परस्पर प्रजा की रक्षा धर्म से ही होती थी। इसी बात को तो वेद भी कहता है—“सत्यं वद, धर्मं चर” सत्य बोलो, धर्मचरण करो। जब से अधर्म का प्रभाव अधिक हुआ है तभी से राजा और राज्य तथा कानून आदि बने हैं। इस के पहले तो न्याय से ही धर्म पर शासन रहकर प्रजा सुखी रहती थी।

शिष्य—गुरुवर्य, धर्म और समाज का कुछ संबंध है या नहीं ?

गुरु—धर्म समाज का वस्तुतः आधारस्तम्भ है, इसी से धर्म को समाज से पृथक् नहीं कर सकते। वस्त्र से सूतों को जिस प्रकार अलग नहीं कर सकते, इसी प्रकार धर्म को समाज से पृथक् नहीं कर सकते। ऐसा होने से समाज निःसार तत्त्वरहित हो जाता है। उस समाज से हम अपने आप को उन्नत नहीं कर सकते। अतएव सुती जीवन के लिए ‘धर्माग्र प्रमदितव्यम्’ धर्म से विमुख मत बनो।

शिष्य—गुरुदेव धर्म के कितने, कौन से लक्षण हैं ये भी बताइए।

गुरु—नारदजी युधिष्ठिर को तीस लक्षण बताये हैं और कहते हैं कि—

‘वस्ये सनातनं धर्मं नारायणमुवाचछतम् ।
सत्यं दया तपः शौचं तितितसेवा क्षमो दमः ॥
अहिंसा, ब्रह्मचर्यं च त्यागः स्वाध्याय आर्जवम् ।

सेवेऽध्यावनतिर्दास्यं सख्यमात्मसमर्पणम् ॥

नृणामयं परो धर्मः सर्वेषां समुदाहृतः ।

त्रिंशल्लक्षणवान् राजन् सर्वात्मा येन तुष्यति ॥’

अर्थात् तीस लक्षण ये हैं—सत्य बोलना, दया रखना, तप करना, पवित्रता रखना, सहन करना, ज्ञान, मन को रोकना, इन्द्रियदमन, किसी को दुःख न देना, ब्रह्मचर्य, त्याग, पढ़ना, सरलता, सेवा, नभस्कार, दास्य, सख्य, आत्मसमर्पण इत्यादि तीस हैं। ये मनुष्य को, प्रत्येक समाज को पालनीय हैं। इन नियमों का रखरखन कभी हो ही नहीं सकता।

शिष्य—किंतु यह विषय बड़ा जटिल है क्या आप हृष्टान्तरूप से मुझे समझाने की कृपा करेंगे, यह बात मुझे एवं संसार के प्रत्येक मनुष्य को हितकर होगी।

गुरु—अच्छा, प्रश्न तो तुम्हारा बड़ा गम्भीर है और लोकहितार्थ दृष्टि से पूछा है तो अवश्य हमें अब विशद विवेचन सहित कहना चाहिए। क्या तुम्हें मालूम है कि सनातनधर्म की प्रत्येक बातें और प्रत्येक शब्द, अक्षर समाज का धेम कुशल करनेवाले हैं। इन से मूर्ख से मूर्ख निरे जड़ मनुष्य भी लाभ उठाते रहते हैं और फिर आजन्म सनातनधर्म के कृतज्ञ बने रहते हैं। पहले इसी को हृष्टान्त से समझने की चेष्टा करो। एक अधम पापी जीव बाँझ था, जो सर्वदा अच्छी बातों से कोसों दूर रहता था और कभी अपने पञ्चर का मार्ग सोचने का कष्ट भी नहीं करता था। एक दिन किसी कार्यवश बाँझ जा रहा था, रास्ते में श्रीमद्भागवत की सप्ताह हो रही थी। उस ने सोचा कि ये कहाँ की आफत है यहाँ से तो फान पन्द करके चले जाना चाहिए। जिस समय वह जाने लगा, न जाने उसे ये शब्द कैसे

सुनाई पड़े कि "देवताओं के पैर धूम्र पर नहीं टिकते और वे बोलने भी नहीं हैं।" अस्तु ये शब्द उग के हृदय में जम गये। जिस समय वह अपनी देवी के पास जाता है तो वहाँ पहले ही से कुछ जामूसी सिपाहियों ने ढाँकू का पकड़ने के लिए देवी को तोंड कर गिरा दिया और एक सिपाही सड़ा कर दिया। जिस समय वह ढाँकू चोरी करने के लिए देवी से, अनुकुर रयान का नाम निर्देशकर लामबियक प्रश्न पूछता है कि मुझे भान कितना ठपका मिलेगा, उसी समय वह सिपाही बोल देता है कि इतनी सख्या में आज तुझे ठपका मिलेगा और सेवा मार्गे निकलकर होगा। इन शब्दों के सुनते ही उसे भ्रम हान लगा और उस के मस्तिष्क में "देवों के पैर नहीं टिकते और वे बोलते नहीं हैं" ये शब्द दोड़ने लगे। फिर क्या था उस ने तलवार से सिपाही के दाँत टुकड़े कर दिये, उसी समय से वह ढाँकू सनातनधर्म पर अटा करने लगा और उस ने निषिद्ध रम्य छोड़ दिया, क्योंकि जब मुझे एक धर्मशास्त्र ने अनुसुमुख से यथा दिया तो अच्छी प्रकार चारदार मनन, चिन्तन, निदिध्यासन करने पर लामबन्द वस्तु क्यों न हिलेगी होगी।

वस्तु, इसी से तो मैं ने कहा है कि इन नियमों का पालन करनेवाला कभी कुपय म नहीं फैलेगा। अच्छा अब अन्य लक्षणों को सुनो। सब से पहले वर्ष का लक्षण है सत्य। आज यदि सपूर्ण भारतवर्ष में ऐसा जाय तो हमें कोई निरलं ही सत्यवत्ता मिल सकते हैं। आजकल जहाँ देखते हैं वहाँ धोखे की टट्टी और भ्रमत्व का साम्राज्य दृष्टिगत होता है, सभी होगी, कपटी, धूर्त, आडम्बरी, 'इदि हाहाहल विषय' की सुक्ति को परिहार्य कर रहे हैं, कलिदेव। तेरी बलि-हारी है, तू सबों में सप्ताय हुआ है, लहाँ 'सर्व कस्विदं ब्रह्म' का पाठ भारतीय सदैव पढ़ा करते थे,

वहाँ आज 'सर्वत्र कलि' का पाठ सत्य दिखाई दे रहा है, चाहे अन्त परिणाम भयंकर हो।

शिष्य—गुरुवच, इस से पहले तो अवश्य सत्य का पालन होता होगा।

गुरु—हाँ, यदि हम रामचन्द्रजी के समय का कालखण्ड इतिहास में देखते हैं तो हमें स्पष्ट भाव हो जाता है कि उस समय सत्य ही सब कुछ था और उसी से सब सुखी जीवन व्यतीत करते थे। जिस समय श्री रामचन्द्र शरणागत विभीषण को लंका छोड़ देते हैं तो सुमीषादिक पानशों को गलबली गन्ध जाती है और वे कहते हैं कि, नाथ विचारके काम करें। 'रान विनती सुनिय जगतारन।' अर्थात् आप ने जो विभीषण को लंका छोड़ देना दिया है इस में हमें संदिग्ध है, शायद रावण/आकर आप से संधी कर ले तो फिर क्या होगा। तब भी राम कहते हैं कि यदि ऐसा होगा तो मैं भरत को अपने साथ रखूँगा और अवध का राज्य रावण का दिला दूँगा। किंतु मेरी प्रतीक्षा कभी असत्य नहीं हो सकती। 'द्विशरो नामि संघसे रामो द्विनो मियापते' राम एक शत्रु को एक याग ही छोड़ते हैं और एक बात को दूसरे रूप में नहीं बदलते।

शिष्य—गुरुदेव, यह आप ने अत्यन्त रोचक ऐतिहासिक, सामाजिक, पौराणिक कथाव्ययन अच्छा सुनाया। आज के समय में ऐसे ही उपा-ध्यान कुछ असर कर सकते हैं।

गुरु—इसी का एक दृष्टान्त और भी सुनो जो थोड़े समय का ही है। जिस समय शक्राचार्य, दिग्विजयार्थ भ्रमण कर रहे थे उस समय प्रयाग में उन्होंने एक जलती पिता देखी, पूछने पर सादृश हुआ कि य कुमरिल भट्ट थे, जिन्होंने आजन्म सत्य बोलते बोलते हा समय व्यतीत किया था। एक समय

के असत्य से प्रायश्चित्तरूप अपना मरना ही निश्चय किया, शिष्य, ये सत्यप्रतिज्ञ के लक्षण हैं। ये सब हमारे भारत ही में तो हुए थे, अन्यत्र नहीं।

शिष्य—अब दया पर भी समझाइए। सत्य का अब मैं आज से आचरण करूँगा।

गुरु—यदि प्रत्येक मनुष्य सत्य, दया पर दृढ़ रहे, तो वह अपने देश की, अपनी जाति की रक्षा कर सकता है अन्यथा संदेह है। इस को छेदित से दृष्टान्त से ही तुम समझ सकते हो। समुद्रमन्युन के समय विप को पीने का किसी को साहस नहीं हुआ, किंतु शिव ने दया करके उस विप को पी लिया, तभी से नोलकण्ठ नाम हो गया है। इस के सिवाय कुछ दिन पूर्व शिवि राजा ने अपने शरीर का मांस काटकर ही तो कयूतर के बंदले में दिया था, क्या तुम्हें मालूम नहीं। इसी से तो कहा है कि—
“बड़े दीन को दुःख सुनि, लेत दया उर आनि।
हरि हाथी से कयडुति, कहु रहीम पहिचानि ॥”

शिष्य—ठीक है इस को भी अच्छी प्रकार से समझ गया हूँ, सत्य दया तो हो चुके। अब तप पर भी कुछ दया होनी चाहिए। मेरी धृष्टता को क्षमा करें।

गुरु—तीसरा लक्षण तप है। एकादशी आदि व्रत को तप कहते हैं। वैसे तो निष्काम ईश्वर का मनन, चिन्तन ही तप कहा जाता है। किंतु विरोध में मन और इन्द्रियों का वशीकरण ही तप है। अब तुम्हें सूक्ष्म रूप से सभी लक्षणों का विवेचन कर देता हूँ, क्योंकि मुझे समय बहुत कम है। इसी में पढ़ाना और अनुभाष्य का हिंदी भी लिखना, इस की भी बहुत माँग है। अस्तु, चतुर्थ लक्षण है शौच अर्थात् पवित्रता। यह दो प्रकार की होती है।

अध्यन्तर और बाह्य। सात्विक अन्न खाने से सात्विक मन बनेगा और तामस अन्न से तामस मन बनेगा, राजस से राजस ‘यादृशं भक्षयेदन्नं बुद्धिर्भवति तादृशी’ मनुष्य जैसा अन्न खाता है उसी प्रकार की उस की बुद्धि बन जाती है।

शिष्य—गुरुवर्य, यह तो आप को स्पष्ट करके समझाना होगा।

गुरु—जिस समय भीष्म शरशय्या पर पड़े थे और धर्मोपदेश दे रहे थे उस समय द्रौपदी हँसी। भीष्म ने पृष्ठा, द्रौपदी बोयीं हँसी। तब द्रौपदी ने कहा कि जिस समय मैं सभा के बीच नहीं जा रही थी उस समय आप ने न्याय अन्याय, धर्म अधर्म नहीं कहा और आज बड़े गहन विषय का तत्त्व सुना रहे हैं। भीष्म ने कहा द्रौपदी ठीक है। उस समय अधर्मी दुर्योधन का अन्न खा रहा था, इस से मन भी अधर्मी हो गया था, अब अर्जुन के बाण से पापमय अन्न का खून निकल गया और मन शुद्ध हो गया। यही अन्तर है। इसी लिए तो हमारे पूर्वजों ने पवित्र अपवित्र की सीमा बाँध दी है और कहा है कि नोच जाति के अन्न नहीं खाना। पाँचवाँ लक्षण है तिविहा, सहनशीलता को कहते हैं। इस का उदाहरण भी बहुत कम मिलता है। क्या तुम्हें मालूम नहीं है कि इस का प्रत्यक्ष ज्वलन्त उदाहरण ईश्वरचन्द्र विद्यासागर हैं। जिन्होंने, बंगाली बाघू का सामान उठाकर घर तक पहुँचा दिया और बूँ तक नहीं किया, क्या ऐसा आज भी कोई है। ऐसा करने से कोई छोटे थोड़े ही हो जाते हैं, किंतु आज तो इस विदेशी सभ्यता से खचें घर के कार्य करने में भी लज्जा आती है, क्योंकि अपद्वेष्ट मैंन फिर कहीं से हो सकते हैं, फिर तो खुली हो गये। धन्य है नवीन शिक्षा ! तुम पश्य है !! किंतु स्मरण रहे कि फिर बही प्राचीन सभ्यता

का प्रवाह बहनेवाला है। थोड़ा थोड़ा तो प्राचीन रंग अत्र जमने लगता है। ईश्वर रखक है।

छठा लक्षण है अहिंसा। किसी को दुःख नहीं देना, भारना नहीं यही अहिंसा कहलाती है। शत्रुओं से कहा है कि 'अहिंसा परमो धर्म' अन्य सब लक्षणों का अर्थ तो स्पष्ट ही है। किंतु सत्य और आत्म-समर्पण कुछ विरोधता रखते हैं। सत्य, सत्ता से मित्रता का व्यवहार ही सत्य कहलाता है। देखिए हमारे शत्रुओं ने धर्म का कितना सुन्दर लक्षण बनाया है। आज यदि हम सभी सत्य धर्म का पालन करें तो समाजसंगठन, सुधार, व्रजति, कला कौशल, व्यवसाय सभी का क्षेत्र विस्तृत हो सकता है। धन्य हो श्रुति महर्षियों! आप धन्य हो ॥ आप की ये सनातन किन्ति गहन गव में पड़ी हुई हैं। इन्हें कुछ सुमति प्रदान करिए और भारत, गणान, जगत् का बदल करिए सभी भारतसंपन्न का दावा हो सकता है।

शिष्य—आत्मसमर्पण क्या है। य शब्द तो कई बार सुना है।

गुरु—आत्मसमर्पण भी एक वडा भारी यह है। मान्य, आदरणीय एवं बन्धनीय हैं।

भोग्यसामग्री ईश्वर-अर्पण कर, अपने उपयोग में लेना और संपूर्ण इन्द्रियों को ईश्वराधीन कर देना ही आत्मसमर्पण कहाना है। इस का विवेचन अन्यत्र 'मध्यस्तबन्ध में' किया जायगा।

शिष्य—जो इन लक्षणों का छोड़कर प्रत्युत इस के विरुद्ध आचरण करते हैं उन्हें क्या होता है।

गुरु—उन का सर्वनाश हो जाता है। और यहाँ दुःख भोगना पड़ता है। उन का मन यहाँ से वहाँ और वहाँ से यहाँ घूमा करता है। उन्हें घर की स्त्री, पुत्र, माता, पिता कुछ अच्छे नहीं लगते, वे स्त्री को भी अनुचित शिक्षा देने रहते हैं और उन का रूप ही अन्य हो जाता है। जिस प्रकार एक गन्ना है वह स्तनों में गन्ना ही रहती है। किंतु नीचे गिरने पर रूप बदल देती है।

'श्रिताः कार्यं स्वर्गात्ततति शितसस्तत्तिष्ठिपरं ।
पदीयाः पुत्रादभिमनवनेश्वापि जक्षयिषु'.....
विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतशतः ।

अतः जो धर्मानुसार आचरण करते हैं वे धन्य,

गीतागौरव-भारति

(आगामी विरोधाह—गीतागौरवाह, पाचवें भाग के एक सर्ग की सुरुआत)

तत्रैवं सति कर्तार-

मात्मानं केवलं तु यः ।

पश्यत्यकृतबुद्धिश्चा-

स पश्यति दुर्मतिः ॥ १६ ॥

ऐसी दशा में जो मनुष्य असंस्कृतबुद्धि होने के कारण केवल अपने को ही सब कर्मों

का कर्ता समझता है, वह दुर्बुद्धि वस्तुतः कुछ नहीं समझता ।

गी० गी०—हे अर्जुन, जब नास्तविक स्थिति ऐसी है कि आत्मा साक्षीरूप केवल आत्मासकमात्र कर्ता है, कार्य करने का अपने में साक्षान् अनुभव करनेवाले दूसरे ही चार हैं, तब जो मन्दबुद्धि इस बात को समझने के लिए सखसंग, विवेक, विचार आदि का सहारा नहीं लेता और भ्रमण आत्मा को कर्मों के

१२२०

साथ जोड़कर कर्ता मान बैठता है वह अभिमानिक पुरुष आत्मा के अकर्तृत्व का रहस्य नहीं समझता है। आत्मतत्त्व तो निष्कल, निष्क्रिय, शान्त, नित्य, शुद्ध, बुद्धि, शुष्क, सूक्ष्म, परिपूर्ण सदानन्द चिन्मात्र है। जो उस को कलाओंवाला, क्रियावान्, चञ्चल, बदलने-वाला, दूसरे के साथ विकारवान्, अज्ञ, फंसा हुआ, मोटा पतला, अवृत्त, दुखी सुखी और जडवत् समझता है वह नहामूर्ख है।

क० प्र०—प्रभुभेमी सज्जनों, कर्तृवाभिमानी जीवगण पूर्णतः पाँच हेतुओं को अपने ऊपर आरोपित करके अपने को ही कर्ता भोका मानते हैं, यही वन का काल्पनिक बन्धन है। विचारपूर्वक देखा जाय तो इन पाँचों में आत्मा कहाँ दिखाई देता है? वास्तविकता यह है कि सृष्टि जैसे विषयवस्तु न होकर नेत्रों के विषय की प्रकाशित करता है जैसे ही आत्मा कर्मरूप न होकर कर्मों को प्रकट करता है। अतः तरह-तरह देखनेवाला प्रतिबिम्ब या दर्पण शीतों से उपनृत है, पर प्रतिबिम्ब का प्रकाशक वह है, वही तरह आत्मा कर्म या कर्तारूप न होकर वन दोनों को प्रकट करता है। परन्तु गिरि की मुद्रि को यह मान होता है कि मैं कर्ता भोक्ता हूँ, वह अपने चैतन्य का अपलाप कर अपने ही जड बनाता है, वह आत्मा के विषय में मध्य रात्रि के रूपकार में डूबा हुआ है। इस पर उसे विश्वास नहीं आता कि आत्मा कर्मों से परे, और साक्षीरूप है। कर्मविश्रुतारो जन जल में पड़े हुए सूर्य के प्रतिबिम्ब की तरह आत्मा तो भी समझता है, वस के विचार से जल सूख गया तो मानो सूर्य भी नष्ट हो गया, जल में लहरें उठती हैं तो वह सूर्य को भी हिलता हुआ कल्पना कर लेता है। निद्रित मनुष्य को जब तक चेत नहीं होता तब तक स्वप्न स्वप्न ही मालूम होता है, जब तक आँखों में पीछिया रोग है तब तक सब और पीलापन ही नजर आता है, स्पन्दोद्भव श्वा भी शृगमुष्ण को शब्द मानने लगता है; वही हाल जलान व अभिमान से आच्छन्न पुरुष का है। वह सज्जन, भवानुभाव या मुहूर्तों के सामीप्य को तथा शास्त्रविचार की छाया भी अपने पर नहीं पढ़ने देना चाहता, खोस, जैसे बाइबेल के गतिवेग को चन्द्र पर आरोपित करते हैं जैसे ही वह देहात्म-भुक्ति के कारण आत्मा पर, देहहृषी जाल के बन्धन को

मनवृत्त करता है। और फिर वह उस मूल के कारण देहहृषी कैदखाने में कर्म की दृढ़ गोंड से बाँध जाता है। अतएव जो निर्मल आत्मस्वरूप पर प्रकृति के किये हुए कर्म आरोपित करता है वह कोई कल्पों तक संसार से मुक्त नहीं होता है।

यहाँ संदेह हो सकता है—जो पुरुष अकर्ता आत्मा को कर्ता समझता है वह क्या गलती करता है? नित्यवर्ति का अनुभव तो यही कहता है कि देह आदि जब अधिष्ठानों में वह कार्यानुभवकर्तृत्व कभी नहीं देखने में आया जो चेतन आत्मा में अनुभूत है। इस लिए प्रत्यक्ष प्रमाण के बल पर आत्मा में ही कर्तृत्व सिद्ध होता है, यदि ऐसा नहीं है तो स्रुत शरीर में कोई चेष्टा देखने में क्यों नहीं आती? अतः यही सिद्धान्त मानना चाहिए कि जैसे घायु चलने पर दृष्ट दृष्टता है वैसे ही आत्मा के चेष्टा करने पर शरीर चळता फिरता है। इस शङ्का पर कह सकते हैं कि यह बात ठीक है कि कर्तृत्व आत्मा में है, क्योंकि वह भूत देह आदि जड वस्तुओं में नहीं देखा जाता। परन्तु भुक्तिचयन और युक्तिबल पर विचार करने से आत्मा की कर्तृता सिद्ध नहीं होती। आत्मा आकाश की तरह अक्रिय निरवयव है इस से वस में चलन-क्रिया संभव नहीं। क्रिया को आत्मा का निमी धर्म मानें तो कोई रुकावट न होने पर धर्म धर्मी में अवश्य रहना चाहिए, पर सुप्रति अवस्था में पूर्ण निष्कण्टक एकाग्रता रहने पर भी आत्मा में कोई चेष्टा नहीं होती; इस से सिद्ध होता है कि आत्मा का कर्तृत्व धर्म नहीं है। वह शरीर का धर्म है, पर आत्मा के सहकार से प्रकट होता है, जैसे कि किसी अग्रप्रकाश (चुम्बक) के समीप छायापण लेहे के टुकड़े नाचने लगते हैं। सुप्रसिद्धा का यह भान सर्वजन विदित है कि 'मैं ऐसा सुख से तोया कि कुछ भी न जान सका,' 'सुखमहमस्वाप्तं न किंचिदेदिपम्।' और वस काल में आत्मा तो रहता ही है, जैसे स्वप्न का अनुभव होता है वैसे ही सुप्रति का यो आभास होता है। वहाँ आत्मा सुख का अनुभव करता है, पर वस में कर्तृत्व नहीं रहता, क्योंकि वस सद्य देह के सब व्यापार शान्त रहते हैं। यदि कही कि सुप्रति में भी सुख से तोया रूप क्रिया तो आत्मा में है ही। तो यह कहना भी संगत नहीं, क्योंकि 'हे' 'पड़ा है' आदि क्रिया सामान्य से निरवयव वस्तु की सत्तामात्र प्रतीति होती है न कि किसी विशेष क्रिया की, इस लिए सुप्रति में तोया तो जपरी बात है, असल में वहाँ सुखी रहना ही

मलता है। जैसे 'आकाश सदा है' ऐसा कहने से विरल आकाश को किसी वेद या परिचयन का बोध नहीं होता, वन में बहुत होना स्पष्टाकारण है जैसे ही आगामी को समझो, पर आकाश तो इस से भी सूक्ष्म है।

तब प्रश्न होता है कि कर्ता कौन है, पूर्वोक्त शेष कारणों से जो एक कर्ता है वन का क्या स्वरूप है? इस प्रश्न से यह मथ्यमाना चाहिए कि काल में आगामी नियम मुक्त, निर्दिष्ट और असंग है। प्रकृति से प्रकृतिव्यय वस्तुओं से का कार्यते इस का कोई सम्बन्ध नहीं। किन्तु जीवी के सत्त्वात्मा अनादित्व अविद्या के कारण भ्रम आगामी का ही इस प्रकृति के साथ संग सा हो रहा है। वना वह प्रकृति द्वारा संवर्धित वस्तुओं में विद्या अविद्यान करके समय उन कर्मों का कर्ता बन जाता है। इस प्रकार कर्ता बना हुआ जीव ही 'अविद्यानी आत्मा या ईश्वर साक्षी कहा जाता है। यद्यपि प्रकृति तब है पर आगामी के समान से वह चेतन धर्म से अनुत्पन्न होकर अद्वयभाववय वन चेतन के स्वरूप को दियारूप से अकालित करता है, वह आत्मा का साक्षीवन और प्रकृति के समान में आगामी कर्ता कहा जाता है। पूर्वोक्त शेष कारणों में जो एक कर्ता है वह इसी वन का है और यहाँ पर आगामी को वेदक, संवर्धित, अकालीन वनकारक वन का वस्तुत्व स्वरूप कहा गया है। अब आगामी इतना बड़ाहीन और परे का वस्तु है तो इस को कर्म करने जैसे अद्वयवाचिक रूप में उगाने के लिए ऐसी जोशी कोशिश क्यों की जा रही है? इस प्रश्न पर यह कहने है कि वन मुक्तस्वरूप, देशदि रूपन से असंख्य आगामी के रूप कर्म करने की वही मर भी कोशिश नहीं की जा रही है। जो सदा में आ रहे वन के लिए कहना है कि उन का चित्त कर्म किये सुदकार नहीं। वे लोग कर्म कादे अपना सुदकार कर लें, देश सम्मान ग्लान के लिए श्रमियों की भी कर्म करने की आवश्यकता है, इस के लिए वे मथ तक मोहित रहें तब तक कर्म करें और सारीप्राण के बाद भी आवश्यकता समझें तो सदा में फिर भी अवनियोगों को यही आह्वान मानवान में विज्ञापना है। इसी से वे कहने हैं—

“अदि देशभूता शरीरं पृथक् कर्मावधारणम्” जैसे एक स्वयम्भूत शरीर आगीश्वर के परे में जीव माना है जैसे ही यह मीमांसा प्रकृति के विगुणित पदे में पूर्व गया है। आलोचक पर से ही अपना वेद आकाश और वने के जोर से मथ्या

भी है जैसे ही प्रकृति आगामी के समान से कर्तृत्वप्रकार करती और वन तब कर्मों को जोशाना पर योग देती है। अब इस पर से ही ही नाना कर्मों के साथ होने पर ही हो सकती है, यदि वह जीव में शक्ति बंद कर दें या कुछ गहन करे तो इस पर वेदका वन की मार पड़ती है यही हाक अद्वय में कर्मविगुणों का समय को प्रकृति एवं काल विज्ञापनी है। इन विचारिक कर्मों के त्याग का कुछ देशीय अर्थवर्तकों ने यह विज्ञापना है—

य मूला प्रविद्या यान्ति बुधिया मिथ्यामलान्वेषिण ।
त तत्रैव निवृत्त्य निर्देशतर नदीहता मुचिहता ॥
केचिन् पञ्चशिक्षीहताश्च अद्विष्टा कापालिकाद्यापरे ।

जो मूल वषय तब दृष्टांतपत्र समान कर्मों को त्यागकर किसी अद्वय, कर्मित वस्तु की शीघ्र में दूर निवृत्त होते हैं, कर्मों वन पर सुचित होकर वन दृष्ट होते हैं। वे निवृत्तपत्र कर्मों का केरों किसी को नगा कर्मों विज्ञापन होते हैं, किसी का तिर मुक्त होते हैं किसी को शेष विज्ञापन का शेष कर्मों से अकालित कर छोड़ देते हैं और किसी के तिर पर गुरु का मार शरीर निवृत्त बाहर करता है। कर्मों वन में मुक्तिया को ऐसा वन होते हैं तिर शीघ्र पता नहीं कि वन की तत्कारक वह अविद्येवनीय वस्तु वन के शीघ्र भी पड़ती है या नहीं। वस्तु यह तो कर्मों की वन हुए, पर प्रकृति से वन में देशाद्विमानियों के लिए वन वन तब है। वस्तु का पदार्थपत्र बड़ा सूक्ष्म, निवृत्त और हुँव है, उस को शक्ति में बड़े कर्म करने पड़ने है, किन्तु इत्यादि स्वरूप तो वन को वन है। अपनी वन विष तत्त्ववर्ति की मागवान में इस जैसे भी वेदक, विज्ञापन हो जायें, वह इत्यादि रूपन नहीं मृण कहावेगा। हाँ, इतक हो सकता है कि प्रकृति के साथ में वनते हैं, इस लिए वन के साथ विज्ञापन का वन के लिए वन के लिए वन की मार पर मथ होकर कुछ कर्मों की कर दिया करे। अब इस इस के वन में आगामी हो जदे है तो तत्त्ववर्त उस में मृणते हुए ही वन सकते हैं।

सूत्र ३ इस ईश्वर और जीववत्त समझने के लिए विगुण (विगुणों) का त्याग सम्पन्न करना होगा। इत्यादि शक्ति में वस्तुओं को वस्तुत्व आकार में आकर मृणता की सीमा को मृणत मानो है, पर वस्तुत्व का आधार वह है इस से

मात्र होता है कि उस में भी कुछ परमस्वूप अटकाव है। इसी से उस का अनुमान हो जाता है, पर विद्युत् तत्त्व इतना महास्वूप है कि इन्द्रियों से उस का अनुमान भी नहीं हो सकता। अब अर्पण प्रति प्रमाण के बल से जानकर लोगों ने नये साधनों द्वारा उस को विकसित कर लिया है, पर वह आकाश से भी अधिक विस्तृत सर्वव्यापक है। ऐसे ही प्रमाणों के बल पर साधक लोग परमात्मा का श्रावण लगाकर उस की ओह लेते रहते हैं और वपासना द्वारा उस की प्रकट भी कर लेते हैं। उस की सूक्ष्मता इसी से समझ ले कि पृथ्वी, तेज, वायु (जल) वायु और आकाश की अपेक्षा विद्युत् अतिपरम सूक्ष्म है, उस से भी कितना ही गुणा परमात्मा १०० परमस्वूप है। अब जिस प्रकार परमस्वतन्त्र विद्युत् तत्त्व को मशीनों द्वारा पुनर्जीवित कर, तरह तरह से प्रवाहित करके काम में लिया जाता है वैसे ही विलेप, निराकार, ईश्वर, प्रकृति (माया) के ताविश से कर्ता, भोक्ता बद्ध जीव बन जाता है। उस विद्युत् में प्रकाश और गन्त नहीं होती, क्योंकि वह आकाश से ज्यादा निर्गुण है, तो भी विविध पदार्थों के संयोग से उस में प्रकाश और ताप भी आ जाता है, वैसे ही जीव में कर्तृत्व शोक्तृत्व आदि धर्म न होते हुए भी प्रकृतिवश आरोपित हो जाते हैं। अब उस कार्यबद्ध विद्युत् की मुक्ति हो कर ? अब अलग, ताप, आकर्षण करते करते ठंडे तार द्वारा जमीन में चली जाय तब ! नहीं तो बहुत दिन तक उस को 'पावरहाऊस' में कैद रहना पड़ेगा। एतदेव यह जीवात्मा कर्मों से व्याधृत रहकर हो अपने को धरा छोले तब उस की मुक्ति हो, प्रकृति ने उस को इसी लिए कैद किया है।

यहाँ देखना चाहिये कि विद्युत् तत्त्व कितना अधिक

सूक्ष्म, तीव्र, असंग, निर्लेप, निर्विकार और नीरूप है तथा अवरोधरूप से हमारे पृथ्वीलोक का धारण, पोषण, आकर्षण और अधोपार्थ कर रहा है। इस महास्वूप पदार्थ की मनुष्य ने बुद्धि के बल पर आवद्ध करके क्रियावान् कार्यक्षम बना डाला, वस्तुतः क्रियाकारिता विद्युत् में नहीं, पदार्थों में होती है, परन्तु वह विद्युत् प्रभाव से ही है। हम कहते हैं कि पंखे को बिजली चला रही है, पर असलियत यह है कि बिजली के धर्म का असर पड़ने से पंखा अपने स्वभावशः स्वयं घूमता है और हम घुमानेवाले का आरोप बिजली पर कर देते हैं। यही न्याय पूरी तीर से परमात्मा पर लागू है। वह स्वयं अकर्ता होकर प्रकृति के साथ कर्ता मात्र पड़ता है। एवं विद्युत्स्वरूप के ज्ञाता वैज्ञानिक की अपेक्षा इतर लोग जैसे मूर्ख हैं, फिर भी उस के काम में अपने विचारानुसार दोग अठाकर अनधिकारचैष्ट्या का कुफल भोगते हैं वैसे ही आत्म-तत्त्वज्ञानज्ञान की बात न मानते हुए अपने को ही कर्ता, भोक्ता मानकर संसार के स्वभावान्वित कर्मों में हस्तचैष करते हैं वे दुर्मति हैं।

इस रीति से भगवान् ने यह बतलाया कि केवल अपने को कर्ता मानना अहंकारभरी दोषयुक्त बुद्धि का पोषक है, जैसा नहीं है वैसे अपने को मानना, यह निराधार अहंता का लक्षण है। कर्म का कर्तृत्व अपने पास कितना है कितना नहीं, इस का विचार करने से स्पष्ट होगा कि मनुष्य के पास अहंकार करनेयोग्य कर्तृत्व नहीं, जो कुछ कर्तृत्व मनुष्य के पास आ सकता है वह अधिक से अधिक पाँचवीं हिस्सा है और वह भी दूसरों की अनुकूलता होने पर ही मिलनेवाला है, कोई अपने बल पर नहीं। इस लिए जो कर्तृत्व का प्रमेय करता है उस का प्रमेय अयोग्य, असत्य और त्याज्य है।



शङ्का

(प्रे०—एक जिज्ञासु) "

“अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्तासंशोधः।”

इस पातञ्जलसूत्र का जो अर्थ गताङ्क में दिया गया है वह संतोषजनक नहीं मालूम पड़ता। विशेषतः “कथन्ता” पद का विवरण बहुत ही अस्पष्ट है।

अहिंसा, सत्य इत्यादि चार यमों का फल जैसा वर्तमान काल से सर्वन्ध रखता है वैसे ही इस यम का भी होना उचित है। सो मेरा जिज्ञासु यह है कि अजुन को अपने इस जन्म संबन्धी कार्यकारणभाव के विषय में कौन सा सत्य ज्ञात हुआ।

समाधान

(ले०—ज्ञानतपस्वी श्री गीतानन्दजी शर्मा)

बहूनि मे व्यतीताणि जन्मानि तव चार्जुन ।

तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्स्य परंतप ॥

—गी० ४।२

आरुणादि मे को भवानुप्रकृषो

नमोस्तु ते देववरप्रसीद ।

विज्ञातुमिच्छामि भवन्तप्राचं

न हि भवानामि तव प्रवृत्तिम् ॥

—गी० ११।११

इन वचनों से मालूम पड़ता है कि कृष्ण वस्तुतः

बौन है और मेरा कहेव्य क्या है इस बात में अर्जुन

को श्रुति पकरा गई थी ।

११ वें अध्याय के ३२, ३३ और ३४ वें श्लोकों में भगवान् ने इस का खुलासा किया है ।

तुझारी आत्मा जन्ममरणरहित होने पर भी तुझारा जन्म "निमित्तमात्र" है । तुझारे द्वारा मैं लोकसंसार करना चाहता हूँ । कारण, शरीरूप से मैं अकर्ता हूँ ।

यही तुझारी जन्मकथन्ता है । और यह तुझारे अपरिमल धर्म से स्वैर्य का फल है । जैसा कि अर्जुन आगे कहता है—

“स्पृक्तिर्व्या”

—गी० १५।७३

तत्सत्

गीताजयन्तीपर्व

गीताजयन्ती महोत्सवपर्व—यह महोत्सव—इतना रुढ़ हो गया है कि पञ्चाङ्गचोषित मन्त्रलिरिनों में भी इस को आदर का स्थान प्राप्त है । तथापि वार्षिक प्रयातुकार हम अपने पाठक पाठिकाओं तथा अन्यत्र द्वित्चित्तकों को इस का गुण स्मरण कराते हैं ।

१८ दिवसर को सब गीतानेमियाँ का कर्तव्य होगा चाहिए कि गीता देवी की वधासाङ्ग पूजा करें, जिस का गीतापाठ भवचनादि एक प्रधान अंग रहे ।

सहस्रैर्य के लिए स्थूल रूप की कल्पना करने की शाल स्वर्ग व्यक्त्त्या देता है, जिस का महामण्डलेस्वर श्री स्वामी विद्यानन्दजी ने बहोदा, अहमदाबाद इत्यादि स्थानों में गीता देवी की प्रतिमा प्रतिष्ठापित करके केवल लोकसंग्रह के उद्देश्य से अनुनोदित किया है ।

हमारे गी० ४० प्रे०, कार्यालय में गीताजयन्ती का कार्यक्रम तो अथाविधि संग्रह होगा ही ।

व्यवस्थापक—

गीताधर्म, काशी ।

ગીતા જ્યન્તી પર્વ

ગીતા જ્યન્તી મહોત્સવ પર્વ—આ મહાપર્વ—ઐટલું રૂઢ થઈ ગયું છે કે પંચાંગો-માં/પણ એની તહેવારના દિવસોમાં ગણના ગણાવા લાગી છે. છતાં પણ વાર્ષિક પ્રથાનુસાર અમે અમારાં વાંચક સાઈ બહેનોને તથા અન્યાન્ય હિતચિન્તકોને એનું શુભ સ્મરણ કરાવીએ છીએ.

તા. ૧૮ મી ડીસેમ્બરે સર્વ ગીતા પ્રેમીઓનું એ કર્તવ્ય ગણાવું જોઈએ કે તેઓ તે દિવસે ગીતાદેવીની યથાસાંગ પૂજા કરે, જેના અંગે ગીતા પાઠ, પ્રવચન આદિ ખાસ કરવા કરાવવામાં આવે.

મનની એકાગ્રતા માટે રૂથલ રૂપની કલ્પના કરવાની શાસ્ત્ર પણ આજ્ઞા આપે છે, જેને મહામંદલેશ્વર શ્રી કૃષ્ણમી વિદ્યાનંદજીએ વડોદરા, અમદાવાદ, ઇત્યાદિ સ્થાનોમાં ગીતાદેવીની પ્રતિમાઓ પ્રતિષ્ઠાપિત કરીને કેવળ લોકસંમહના ઉદ્દેશ્યથી અવુમોદન આપ્યું છે.

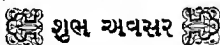
અમારા ગી૦ ધ૦ પ્રે૦ કાર્યાલયમાં ગીતાજ્યન્તીના કાર્યક્રમ તો યથાવિધિ સંપન્ન થશેજ.

વ્યવસ્થાપક—

ગીતાધર્મ, કાશી.

શ્રી મદ્ભગવદ્ગીતા આલ્પમ

મુલ્ય માં રૂ. ૧) કમી.



શુભ અવસર



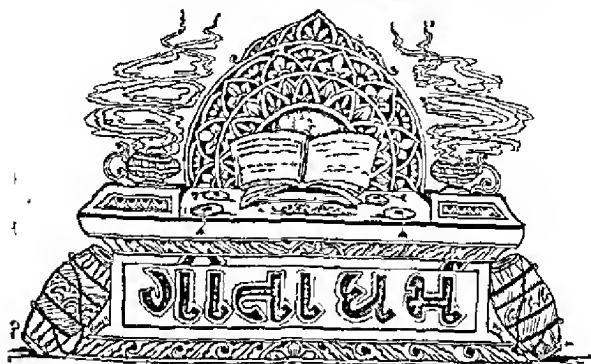
મુલ્ય માં રૂ. ૧) કમી.

આ આલ્પમમાં શ્રીમત્. ૫૦ ૫૦ પ્ર૦ લો૦ ગી૦ જગદ્ગુરુ, મહામંદલેશ્વર શ્રી ૧૦૮ સ્વામી વિદ્યાનંદજી મહારાજની ગીતા પ્રવૃત્તિને અંગે ભારતવર્ષના જુદા જુદા પ્રાન્તો અને નજરામાં ગીતાનો ઉપદેશ તથા ગીતા પ્રવચનોના સમયનાં ચિત્રો બહુરંગી તથા એકરંગી મળીને કુલ ૭૨ છે. અને ગીતા સંસ્કૃત રલોક તથા તેના અર્થ શુજ્ઞરાત્રીમાં રંગીન બોર્ડરમાં છાપેલા છે, તેની કીમત. પ્રથમ. રૂ. ૨) બે રાખેલી હતી. પણ એક ગીતાપ્રેમી શ્રદ્ધસ્થ તરફથી એક હબ્બર રૂપીયા ગીતા આલ્પમના પ્રચાર વાસ્તે અમને મળેલા છે. જેથી હાલ કીમત રૂ. ૧) એક રાખેલા છે. શાખાઓમાંથી પારસલ ખર્ચ છ આના વધુ લઈ અપાશે. અને અત્રેથી દપાલ મારફતે ગંગાવનારે પોસ્ટ ખર્ચ બાર આના આપવા પડશે. માટે જેમ બને તેમ મેળવી લેવા ઉતાવળ કરવી. એક હબ્બર કોપી આ કીમતમાં આપવાની છે. તે પછી તેની અસલ કીમતેજ વેચાશે.

વ્યવસ્થાપક—

ગીતાધર્મ, કાશી.

સંસ્થાપક:—શ્રીમત્.પરમહંસ, પરીમાજ્ઞાનાય, પ્રજાનિદ, દૈત્યધમ્ની, ગીતાબ્યાધી,
શ્રી ૧૦૮ જગદ્ગુરુ, મહામંદવૈશ્વર, સ્વામી શ્રી સિદ્ધાનન્દજી, મહારાજ.



સર્વધર્માનું પરિત્યજ્ય માત્રે સારત્વં મજ્જ ; અહં ત્વા સર્વજ્ઞપેતૃયૌ માફાયિષ્યામિ મા શુચઃ.

વર્ષ: ૭૩ }

કાશી ડિસેમ્બર ૧૯૪૨ :

{ અંક ૧૨ મા

શ્રી ગીતાદેવીની આરતી.

હે માતૃ દેવી ગીતે ! સંતાન સૌ તમારાં ;
કરીએ મળીને વંદન, ફરીકારએ અમારાં. હે-
હિન્દુ અને મુસલમાન, વિરવાસી, પારસી, જિન ;
દેવી ! સમાન રીતે સંતાન સૌ તમારાં. હે-
રામી અને નિરોગી, નિર્ધન અને તર્કશર ;
જ્ઞાની અને નિરક્ષર, સંતાન સૌ તમારાં. હે-
વાલ્મીકિ, વ્યાસ, નાનક, ખીરો, કબીર, વૃક્ષસી ;
અકબર, શિવાજી, માતા ! સંતાન સૌ તમારાં. હે-
સોની સમાન માતા, સોએ સમાન તેથી ;
ના ઉચ્ચ નીચ તારે, સંતાન સૌ તમારાં. હે-
આહો બધા પરસ્પર, શાહો બધા પરસ્પર ;
એ પ્રાર્થના કરે આ, સંતાન સૌ તમારાં. હે-

હું કોણ ?

(લે—ધર્મપુરંધર શેઠ રમણલાલ લલ્લુભાઈ)

ધણ્યો મનુષ્ય પોતાના જીવનમાં ધણીએ વાર વિચાર કરે છે કે હું કોણ છું ? પરંતુ માયામાં લીન થએલો મનુષ્ય ધણી આજળ વિચાર કરતો નથી. પરંતુ પુર્વ જન્મનો સંસ્કાર હોય તેવો મનુષ્ય આ ભાગત પૂર્ણ વિચાર કરીને તેની શોધમાં રહે છે, પરમાત્માની કૃપા હોય તો પરમાત્માના ચિન્તનમાં પોતે પોતાનો વખત ગાળે છે અને કોઈ પ્રશ્નનિષ્ઠ મહાત્માની શોધમાં રહે છે. શ્રદ્ધાનિષ્ઠ મહાપુરૂષનો ઉપદેશ અને વચનામૃત શ્રદ્ધા કરી મોહ, લોભ, માયાનો સાગ કરવાની વૃત્તી ધારણ કરી, આ સંસારમાંથી ચિત્ત મનોવૃત્તીઓ એકાગ્ર કરી શ્રી ભગવદ્ વિચારમાં લીન રહે છે.

મનુષ્ય વિચાર કરે છે કે હું એટલે ? આ શરીર છે કે તે સીવાય બીજી વસ્તુ છે ? જો શરીર હું છું તો શરીરમાંથી ચેતન વસ્તુ જતી રહે છે. એટલે મૃત દેહ કાંઈ મોલતો નથી, ચાલતો નથી, કોઈ પ્રકારની ક્રિયા તે કરી શકતો નથી. માટે આ શરીર તે હું નથી. ભારે જો ચેતન વસ્તુ હું છું, એજ વસ્તુ તે આત્મા, પ્રજ્ઞા, માટેજ તત્વજ્ઞાની પુરૂષો આત્મવિચાર એટલે હું આત્મા છું. હું પ્રજ્ઞા છું, હું ચેતન છું, એમાં મગ્ન રહી આ સંસારની અસત્ય વસ્તુઓનો ત્યાગ કરી માયાથી પર રહી સુખદુઃખ રહિત આ સંસારમાં વિચરતો છતાં નિરપેક્ષ રહી પરમ આનંદ અનુભવે છે અને ઇવંજે જીવન મુક્તી મેળવે છે, આ વિષે એક દૃષ્ટાંત જરૂરી છે.

એક ચોરશામાં કેટલાંક માણસો બેઠેલા છે તે ચોરશામાં વિજળીની ખતીઓ છે અને બીલકુલ અધાર્ણ છે. હવે બેઠેલા માણસે ને પ્રકાશ તો બેઠ્યો છે. પરંતુ કેટલાંકે તેમાં એવા છે કે પ્રકાશ લાવવા માટે પ્રયાસ કરવા તૈયાર નથી અને કેટલાંક એવા છે કે આ ચોરશામાં પ્રકાશ તો આવવોજ બેઠ્યો અને પ્રયાસ કરવોજ બેઠ્યો, તેથી કોઈ વીજળીના નિષ્ક્રાંત પુરૂષને યોલાવી લાવી સ્વીચો દબાવી, પ્રકાશ થયો અને ચોરશામાં પોતે જીવ આનંદ લીધો. એટલે સંસારરૂપી ચોરશામાં માયારૂપી અંધકારને ફર કરવા અને પ્રકાશ લાવવા પ્રશ્નનિષ્ઠ મહાપુરૂષની જરૂર રહે છે. અને પ્રશ્નનિષ્ઠ તત્વજ્ઞાની પુરૂષ પોતાના જ્ઞાનના અનુભવથી જ્ઞાનનો ઉપદેશ આપે છે તેથી મનુષ્ય તત્વજ્ઞાન, આત્મજ્ઞાન મેળવે છે અને હું કોણ છું ? તેનું જ્ઞાન, મેળવી પરમાનંદની પ્રાપ્તી મેળવે છે ?

પરંતુ આ વસ્તુ મને ક્યારે ?

અંતઃકરણની કુદી યાય ભાદે.

(જી ઇતિ)

ગણપતિ અને ગીતા

(મેન્—મીમાંસામર્કસ પરિમાળકાર્ય પ્રતનિષ્ઠ લોકસંમદી ગીતાબ્યાસ શ્રી ૧૦૮
જગદીશ્વર મહામયકૃતસ્વર સ્વામી શ્રી વિવાનન્દજી મહારાજ)

(અર્થ) અણેશોત્સવના અવસર ઉપર વડોદરા નરેશના 'લક્ષ્મીવિલાસ' રાજમહેશ્વરના સરકારી અણુપતિ પૂજારી ઉપલક્ષ્યમાં પ્રકાશથી સાહેબ, રાજબાલકો, સરકારો અને આપનીય સહ-ગૃહસ્થો સમક્ષ પૂજ્ય સ્વામીશ્રીને પ્રવચન યજ્ઞ કર્તુ તેનો સારાંશ.)

મન્ત્રપાત્રિમિતોપશાન્તવે

સ્થાનપાવનમવિમ્લવૈમવમ્

તગ્રરં વપુષિ કુચરં મુલે

મનમદે કિમપિ દુન્દિલ મદઃ ॥

વિવત્કૃષ્ણી અપકાવની નિર્ણયને માટે અમી આજા કોઈ અનિર્વચનીય (અવર્ણીત) તેજસ્વી ન કરીએ છીએ જે શાલીની ગૂંત તો છેજ સાચે સાચે પાવન પણ છે, જેના વેળવનો પ્રકાશ બુદ્ધિની કલ્પનાની બહાર છે, જે મોટેથી દાંથીના આકારના અને ઊંડાંનું ચરીર નરાકાર તથા લંબાકાર (મીઠા જે પેટપાળા) છે તે ગણપતિ અનાદિ અને અમલ્ય છે તેમને શકરપુત્ર કહેવાનું તાર્કિક્ય છે છે કે જેમ શકરજીના આદિ અત અને જન્મ વિશેરેનો નિશ્ચય નથી તેવીજ રીતે તેમના પણ આદિ અતનો નિર્ણય ધર્મશાસ્ત્રો નથી શકરજી અણુપતિ કહેવાય છે, અર્થાત પૃથ્વી, જલ, આગ, વાયુ, કોકાશ્ય, સૂર્ય, ચંદ્ર, અને ધરતકર્તા એ સર્વ તેમના સ્વરૂપ છે. ગીતાના ચંબોમાં કહીએ તો એ ભગવાનની પરા અને અપરા પ્રતિ છે અસ્તુ, આ સામગ્રી એકેવી કલ્પનાના તો શકરજી ક્યાં જોટલા માટે તેઓ પિતા કહેવાય છે, લગ્ના એ સામગ્રીથી યજ્ઞ

(કર્મ) કરવાવાળા જીવોને સિદ્ધિદાતા અણેશજી છે, જોટલા માટે તે તેમના પુત્ર કહેવાય છે. તેમની અનાદિતા એનાથી સિદ્ધ છે કે શિવ પાર્શ્વીના વિવાહમાં પહેલી પૂજા તેમની ઘર્ષ અને પચરેવ પૂજામાં તેમનું આસન આગળ છેજ, વળી એમ પણ કહેવામાં આવે છે—

“કલોષ્ઠીવન્દી વિનાયકી”

કલોષુષ્ઠામા દુર્ગા અને ગણપતિજી પ્રલપ્ત રૂલ આપનાર ભગતા દેવતા છે કહેવામાં તો શીદિ સિદ્ધિ તેમની થી પતિયો છે પણ તે જોટલું નિષ્કામ ભતનું આચરણ કરે છે કે તેમને તેઓ પોતાના ભક્તોનાં કાર્યોને સફલ બનાવવામાજ પ્રયત્નશીલ રાજે છે તેથીજ કદાચ વૃષ્ટિ રાક્ષસને પાતનું મુખ જોવાનું સૌશામ્ય પ્રાપ્ત ન થયું કેમકે જલાર મુખી એવું સાંભળવામાં આવ્યું નથી કે ગણપતિજીનો અમુકા પુત્ર છે તુલસીદાસજી તો તેઓમાં લગ્ના લગ્ના ગુણ જુએ છે—

સિદ્ધિસદ્ગત ગગનવદન વિનાયકા

કૃપાસિન્ધુ મુન્દર સવ લાયકા

મોહકપિય મુદ મજ્જલદાતા

વિગ્નાવરિધિ મુદિવિષાતા ॥

તે તેમના બુદ્ધિવિષાતાપણને લીધે (અણેશજી પાણેથી) એમ માગે છે કે 'ભસદ્ સમસિય માનસ મોદ' અર્થાત તે બુદ્ધિના દેવતા પણ છે, ને મનુષ્યમાં જેટલી બુદ્ધિ હોય છે, તે તેટલોજ વધારે અલ્પદીર, પણ હોય છે. તેમના આધારે કાચીનું

મસ્તક કહેવાનો એજ ભાવ છે, કેમકે 'ગજરાજ
ઘણજ ગંભીર અને સુમન્યદાર હોય છે—

ગજપુલ્લવસ્તુ ધોરં વિલોકયતિ, ચાદુશતૈશ્વ મુહુર્કે ।

—મર્દદરિ

ઉદર ઉપર તેમની સ્વારી છે. તેનો એવો અકિ-
પ્રાય છે કે ઉદરોનો સ્વસ્થાપ ખીલ્યોની વસ્તુઓને
નિરર્થક કાપી કાતરીને નષ્ટ બ્રહ્મ કરી નાખવાનો
હોય છે. આ એવા આદર્શીઓનું રૂપ છે કે
જેઓ વ્યર્થજ પારકાના હિતનું હનન કરે છે અને
નિહા પુરાઈ કે નકામો બ્રહ્મવાદ કર્યા કરે છે. ગણે-
શજી બ્યારે કૃપા કરે છે ત્યારે તેમની ઉદરના જેવી
પ્રવૃત્તિ ઉપર સુષુપ્તિસ્વરૂપ સ્વયં પોતે આવીને
બેસાજ છે. અને એ પ્રકારે લોકોને સન્માન
કેવળ ચલાવીને તેઓ ઉદરની સ્વારી કરે છે.

ગીતાધર્મશિયોની દૃષ્ટિથી જોવામાં આવે તો
તેઓ તેમને પરબ્રહ્મ ઈશ્વર સ્વરૂપ વિજ્ઞાનમયજ
માને છે. ગણેશજીની લાંબી સંહાકૃતિ, જે 'સ' ઈ-
કારની સાથે સુસાદૃશ્ય રાખે છે. તેનું એજ વલ્લ
છે, ગીતામાં ભગવાને તો તેમની સાથે એટલી
તાદાત્મ્યતા બતાવી કે (ભાગવતમાં શ્રી સુધાજીની
માફક) નામ ન લેતાં ઈસારાથી એટલુંજ કહ્યું કે—
'પ્રથુવઃ સર્વં વેદેયુ' તથા 'શુદ્ધિશુદ્ધિમતામસ્મિ'
અને ગીતામાં યમ, કુબેર, વરૂણ, સૂર્ય, ચંદ્ર, શુક્ર,
કંદર્પ, જેવાં નાના નાના દેવતાઓની સાથે રૂઢ
અને ગણેશજીના પ્રસિદ્ધ બાઈરકંદનું નામ આપ્યું
છે, પણ એટલા પ્રસિદ્ધ, અબ્રૂજ્ય, રીદિસિદ્ધિ-
દાતા ગણેશજીનું નામ ન આપ્યું તેનું એ પણ
કારણ છે કે ગીતાના અસલી મૂળ લેખક તો ગણે-
શજી છે. પોતાની વિભૂતિયોં દર્શાવતાં ભગવાને
તેમનું નામ તો અવશ્ય લીધું હશે. પણ ગણેશજીને
પોતાનું નામ પ્રગટ કરવાનું કીક ન લાગવાથી તે

કાઠી નાખ્યું હશે. કેમકે પ્રસિદ્ધ અંધકર્તાઓ-
ના નિબંધોમાં પોતાનું નામ પ્રગટ નહિ કરવાની
પદ્ધતિ પહેલાના લોકોમાં કેટલાક સમય પહેલાં
સુધી ચાલતી આવી છે. એટલે કહાય ગણેશજી-
એ આ સંકેતોમાંજ પોતાનો પરિચય રહેવા લીધો
હશે. જ્ઞાનેશ્વરજીના શબ્દોમાં તેમના સ્વરૂપની
વ્યાખ્યા આ પ્રમાણેની છે—હું વેદોથી વર્ણનીય
આદિ રૂપ ઈશ્વર, આપને નમસ્કાર છે. આપજ
સકલ અર્થ અને શુદ્ધિને પ્રકાશિતા, કરનારા ગણેશ
હો, જે આ સધળા વેદ છે તેજ આપની સુંદર
મૂર્તિ છે, વેદોના અંદાર આપનું નિર્દોષ શરીર
છે, રમૂતિઓ આપના અવયવ છે, શરીરનો
ભાવ જોઇએ તો અર્થની સુંદરતા આપના લાવણ્ય-
ની દ્રુતિ છે. અંદાર પુરાણ મહિમાપણ છે, પ્રમેય
રત્ન છે, પદ રચના તેમનું કુન્દન છે. ઉત્તમ પદ-
ભાષિત્ય રંગાયેલું વસ્ત્ર છે, જેમાં સાહિત્યશાસ્ત્રજ
ઉત્તમ તાનાવાના (આઠા ઉલ્લાસ તાર) છે અને કાવ્ય
નાટક રમણે કરવાવાળી સુદ ઘંટડીયો છે, કાવ્ય
નાટકોનો અર્થજ તે ઘંટડીયોનો ખનિ છે. વ્યાસ
આદિ રૂપિયોની શુદ્ધિ એજલા સરખી સુંદર ભાસે
છે. જે પદ્ધતિનું કહેવાય છે તેજ આપના હાથ
છે અને જે જિજ્ઞાસુ મત છે તેજ આપના
હાથોમાં રાજો છે. તકશાસ્ત્ર ફરસી છે, ન્યાયશાસ્ત્ર
અંકુશ છે અને વેદાંત અત્યંત સુરસાગર મોઢક છે.
એક હાથમાં જે આપોઆપ પૂરી ગયેલો હાંત છે
તે પાર્તિ કક્ષોના વ્યાખ્યાનથી ખંડીત કરેલા બૌદ્ધ-
મતનો સૂચક છે. વરદાયક કરકમલ સત્યાર્થવાર્ધનું
સૂચક છે, ધર્મની પ્રતિષ્ઠા આપના અભય હાથ છે.
જેમાં મહાસુખનો આનંદ છે તે અત્યંત નિર્મલ
વિવેક આપની લાંબી સંઠ છે. ઉત્તમ સંવાદ
આપના સદૃઢ હાંત છે, જાનકદિ આપનાં સૂક્ષ્મ નેત્ર

છે, બન્ને સીમાસાચી આપના હીલ કાનોના
શ્યાનમાં ભેવામાં આવે છે, જ્ઞાનામૃત મહ છે અને
વિવેકી મુની તેમનું સેવન કરનાર ભમશ હોય એમ
માલમ પડે છે તત્વાર્થજ પ્રકાશમાન વાળ છે,
દેવ અને અદેવ નિકુલ છે અને બન્ને દેતાદેવોનું
જ્યા મીલન થાય છે તેજ આપનું ચોક્ષિત કપાળ
છે વેદાત અને ઉપનિષદ જે ઉત્તમ જ્ઞાનામૃતથી
યુક્ત છે તે મસ્તકસ્થિત મુગટમાં પુષ્પની સમાન
છે^૧ અહાર આપના બન્ને ચરણ છે, ઉકાર વિચાર
પેટ છે અને મકાર મસ્તકાકાર મહામહલ છે,
જે ત્રણે જ્યા એકઠા થાય છે ત્યા વેદ સમાવિષ્ટ છે
તે આદિબીજ સ્ફારરૂપ ગણેશજીની ઉપાસના
ચોગીજન કયા કરે છે.

આ તો ગણેશજીની આધ્યાત્મિક વ્યાખ્યા
થઈ તેમની દૈનિક મૂર્તિની સફલ ચરિતાર્થતા
મહાભારતના લેખકરૂપથી સર્વ વંદિત છેજ ભાર
તાન્તર્ગત ગીતામાં જે ઉત્તમ ભુક્તિયોગનું પ્રતિ
પાદન છે, તેના મુખોદ્ધા લેખક તેમનાથી વધીને
બીજો કોણ કોઈ શકતા હોતો ? જ્યાં જો ભુક્તિ
યોગના જ્ઞાતા જો લોકોને બતાવવામાં આવ્યા છે—

અહં લેષિ શુકો વેતિ સજયા વેતિ વા ન વા ।

જો વચનમાં ગણેશજીને પણ અગ્રસ્થાન
આપવું નોંધ્યો, કેમકે વ્યાસજીએ કરાર કર્યો હતો
કે તમે વગર સમજે કઈ પણ લખશો નહિ અરજી,
જેવી રીતે આ ગીતાનું પ્રતિષ્ઠા તત્વ રાજવિદ્યા
(શાસ્ત્ર, ક્ષત્રિયોની વધા) કહેવાય છે અને ઉપ
નિષદોમાં અનેક ક્ષત્રિય રાજા આ વિદ્યાના પ્રવક્તા
કહેવામાં આવેલા છે (મહત્તા રાજર્ષયસ્વતથા—
ગી• હા.૩૩) તે વચે ગણેશજીએ પોતાના સેના

પતિ બાઈકક દને તેનું તત્વ અવરય સમજાવ્યું હતો.
એટલા માટે અત્યારના શાસ્ત્ર, પ્રજ્ઞા, સૈનિક સૌએ
આ ગીતાને અપનાવવી નોંધ્યો. તેના ઉપર
ક્ષત્રિયોએ તો પોતાનો વિશેષાધિકાર સમજ્યો
નોંધ્યો, કેમકે ગીતાના વજા ભગવાન ક્ષત્રિય અને
ચોતા અર્જુન ક્ષત્રિયજ હતા, એકે એક શોધક
કોઈ તત્વનો અવીરક ર કહે છે તો તેના પર વિશે
ષાધિકાર તો તેનો જ રહે છે, પણ તેનો લાભ સર્વ
કોઈ ઉઠાવે છે, તેવીજ રીતે ક્ષત્રિયોના અથ હોવા
છતા પણ એ સર્વનો અથ છે અવિરકારક તો એક
વ્યક્તિ હોય છે, પણ ગીતા તો રાજાઓને એક
સાપ્રદાયીક અથ છે, વધુ લાભ કાઢવી તેમનો
તેમાં પ્રવેશ છે, જેમ કે ભગવાન કહે છે—

इमं विस्वस्ते योगं प्राक्तवानद्भ्यव्ययम् ।

विश्वान्न मनवे प्राह मनुर्दिवाक्येऽज्वीत् ॥

एव परपराप्राप्तमिमं राजपथा बिभु ॥

— ગી• ૬.૧૬, ૧

‘એ આ તત્વ સુધનરાયણને કહ્યું, તેમણે
રાજા મનુને સમજાવ્યું, મનુએ ઇંદ્રવાકુને, આ
રીતે તેને મહાથ રાજર્ષિ’ કુલપર પશાથી શીખતા
ચાલ્યા આવ્યા છે’ પરંતુ ‘યથા શાસ્ત્ર તથા પ્રજ્ઞ’
અનુસાર સર્વ સાધારણને પણ આ ઉત્તમ ગીતા
અથથી પોતાનું ગૌરવ વધારવું નોંધ્યો તેના
અર્થ સિધ્ધિને અગર જો ભગવાન પ્રસન્ન થઈને શ્રી
વિભય, મૂર્તિ અને નીતિ આપે છે તો મોટા ગણેશ
જીનું પ્રિય આલેખન હોવાથી, તેઓ પણ તની
સાચેદાદિ અને સિદ્ધિયોને અવરય થી કલી આપશે,
એમાં કોઈ સંકેહ નથી

છ તત્સવ

મૃત્યુ

(લે.—જ્ઞાનતપસ્વી શ્રી ગીતાનંદજી સર્મા)

મૃત્યુનો ભય જીવમાત્રને હોય છે, તેને શાસ્ત્રીય પરિભાષામાં અભિનિવેશ કહે છે. કે જે પાંચ કલેશોમાંનો એક છે. દરેક જીવને જે કાંઈ દુઃખ ઉદા-વવાં પડે છે તેમાંથી મોતનું દુઃખ સૌથી વધારે હશે એમ માલમ પડે છે. કેમકે આ વાત કેવલ અનુ-માન ઉપર નિર્ભર છે, સુમૃધુ, ત્રિયમાણ્ય અથવા મરનાર વ્યક્તિનો ચહેરો જોઈને અનુમાન કરી શકાય છે કે મૃત્યુ કોઈ કયાનકાળનાવ છે. ખરે-ખર તો તે શું ચીજ છે એ મરનાર વ્યક્તિજ જાણી શકે છે અથવા તે નથી પણ જાણી શકતો, કેમકે દેહવાય છે કે મૃત્યુની અવ્યવસ્થિત પૂર્વ ક્ષણમાં તે વ્યક્તિને મુર્છા થેરી લે છે. એવી દશામાં તે પણ મોતનું સ્વરૂપ નથી જાણી શકતો. એ ગમે તેમ હોય, પણ મૃત્યુના ડરનો અપહાસ કરી શકતો નથી.

આ વાત સર્વજીવસંમત હોવા છતાં પણ દાર્શનિક પરિકલ્પનોના મત તેનાથી વિપરીત છે. તેનું મુખ્ય કારણ એ છે કે—પંડિતોનો મત એવો છે કે મૃત્યુ પછી બીજું જીવન પ્રાપ્ત થાય છે, મૃત્યુ થવા-થીજ જીવનનો અન્ત આવ્યો ન સમજી લેવો જોઈએ. જેના વિષયમાં પ્રસક્ત પ્રમાણ નથી મળતું તેના માટે મતભેદ થાય તે તો સ્વભાવિકજ છે. આવા મતામતના ઝગઠા તો અનંત છે એટલા માટે ભગવાનનાં વચનોને આસવાક્ય માનીને એ સમજવું જોઈએ કે આગળ પુનર્જન્મ અવશ્ય છે અને એમ માની લેવાથી સુદીર્ઘ કાલથી ચાલી આવતી જન્માન્તરવાદની પરંપરા સિદ્ધ થઈ ગઈ. કેટલાક લોકો એવા પણ છે કે જેમની એવી માન્યતા છે કે આ શરીરજ સર્વ કાંઈ છે. તેમની

વિચારશૈલી એવી છે કે મૃત્યુ પામીને જ્યારે સર્વ શરીર નષ્ટ થઈ ગયું એટલે પછી આત્મા વિગેરે કશુંજ બાકી રહેતું નથી. એ લોકો પણ એક પ્રકારના દાર્શનિક કહેવાય છે. આ મત પણ સર્વ દેશો અને સર્વ કાલમાં રહ્યો છે. ભારતવર્ષમાં તેના પ્રધાન અર્થાત્ પ્રાચીનતમ આચાર્ય ચાર્વાક નામના કોઈ મહાપંડિત હતા. આ હલના લોક આજકાલ નાસ્તિક કહેવાય છે. તેના અનુયાયિ-ઓને છોડીને બીજા સહ્ય, અસહ્ય ઘણે ભાગે સર્વ લોકોનો એ વિશ્વાસ છે કે આ દેહ જીવનનું અધિ-ષ્ઠાન માત્ર છે. જન્મ અને મરણ એ જીવાત્માની સાથે શરીરનો યોગ થવો અને વિયોગ થવો તેનેજ કહેવાય છે. એક શરીર નષ્ટ થયા પછી જીવાત્મા-નો અત્યન્ત નાશ થઈ જતો નથી, એક દેહ નષ્ટ થઈ જવાથી જીવ બીજા દેહમાં પ્રવેશ કરે છે. વર્ત-માન સમયમાં આજ મત સર્વને ગ્રાહ્ય થઈ ગયો છે, એટલે સુધી કે પાશ્ચાત્ય દેશોમાં પણ લોકો પ્રકૃતિવાદને ધીરે ધીરે છોડીને વિશ્વાસ કરવા લાગ્યા છે કે મૃત્યુ પછી પણ જીવન છે. તે લોકો પોતાના અધ્યવસાય દ્વારા ત્રુટ વ્યક્તિનાં કર્શન સુધાંત કરી લે છે. તથા વાતચીતનો સંબંધ પણ સ્થાપીત થયેલો સાંભળવામાં આવ્યો છે. ક્યાં સુધી કહીએ, ત્યાંના પંડિતોએ આ બાબતની અધિક ગવેષણા કરવાને માટે એક વૈજ્ઞાનિક મંડળ સ્થા-પિત કયું છે જેનું મુખ્ય કામ એ છે કે મૃત્યુ પછી થનારી ઘટનાઓનું અનુસંધાન આ જીવનમાંજ કરી લેવામાં આવે. આ વિષયમાં ગીતાકારનો મંત્ર ચત છે તે જતાવી દેવો અનુચિત નહિં અણ્યાય—

વાસાસિ જીર્ણાનિ યયા વિહાય
નવાનિ યુદ્ધવિ નરાજપરાણિ ।
તયા શરીરણિ વિહાય જીર્ણા-
ન્યન્યાનિ સયાતિ નવાનિ દેહી ॥

—શ્લોક ૧૨૨

જેવી રીતે કાંઈ મનુષ્ય જુના કપડાં કે છી દહને
નવા કારણ કરે છે તેવીજ રીતે શરીરનો સ્વામિ
આત્મા જુના શરીરનો ત્યાગ કરી બીજા નવા શરી-
રને ધારણ કરી શકે છે

પરંતુ આ વિષય સમજાવવો એટલો અણ સહે
લો નથી કે એટલો તે પ્રાક્ષમ પડે છે તેની
વિશેષ મીઠાસા કપિલમુનીશ્રીના સામ્ય દર્શનમાં
કરવામાં આવી છે, તેમનો સિદ્ધાન્ત અને વેદાન્ત
નો સિદ્ધાન્ત એકજ છે કહેવું અનાવરણ્ય છે કે
તેમાં બીતાકારની પણ સમિતિ છે

ન કારણે ત્રિવલે વા કદાચિ-

માય મૂલ્યા મવિવા વા ન મૂય ।

અજા નિત્ય શારવણાડર્થપુરાણ

ન દન્યતે દન્યમાને જરીરે ॥

—શ્લોક ૧૨૩

અર્થાત્ જન્મ મત્સ્ય સિમ્યાજ છે એવાજ
હેતુથી અવિધમાન વસ્તુનો કદ પણ અલીક અણ
કિતક છે. મતલબ એ છે કે મત્સ્ય એ કાવનારી
વસ્તુ નથી, આ વિષયમાં ચોખવાસિદ્ધનો ઘોરો
ઉલ્લેખ કરીએ છીએ—

વસિષ્ઠજી કહેવું છે કે મત્સ્યથી કંઈ તે બિલ
કેવ મુખ્યતા છે, કેમકે ચીતનો જન્મ તેર આ મે
માંથી એકજ થઈ શકે છે કે યા તો મરવાથી મત્સ્ય
મ્યનો સર્વથા અન્ત આવી જવો કે પછી મૃત્યુ પછી
તેને બીજુ જીવન મળતું આ જન્મે ચીતમાંથી
કાંઈ પણ હોય જન્મેય સારીજ છે અન્તજ થઈ

ગયો તો પછી કદ કઈ વાતનો ? સર્વ આફતો અને
સુખીખતોમાંથી સફાને માટે રાહત મળી, જીવન કે
જેમાં નાના પ્રકારના કલેશ સહન કરવા પડે છે તે
ટળી ગયા બધી બહુજ મટી અર્ધ, આમ થવાથી
અફસોસ કઈ વાતનો કરવાનો અને કદ કઈ વાતનો
માનવાનો ? મૃત્યુથી જીવનનો અત આપતો નથી,
પરંતુ એક શરીરને છોડીને બીજામાં પ્રવેશ થાય
છે, તો પછી તેમાં કદ અને અફસોસ આ માટે કર-
વામાં આવે ? જુના અને રાગી શરીરને છોડી
દેવું અને તથાને પ્રાપ્ત કરવું એમાં કેને શે કુ લાગે ?
આ તો એવુંજ છે કે જેમ કાટલાં જુના કપડાં કે છી
ને નવા કપડાં પહેરવા અથવા જુના કાંચા તુપ્યા
મથાનને છોડી નવામાં પ્રવેશ કરવો આવું થાય
તો તો કુળને મદદે મુખજ માનવું એવુંજ, અગર
માત્રથી પ્રાણીનો સર્વથા નાશ થઈ જતો હોય અને
અર્ધ પછી કાંઈ પણ પ્રકારનું જીવન ન શકેતું હોય
તો તેનાથી વધારે બીજો લાભ કયો ? કેમકે ત્યારે તો
સમ્પારના થવું કુપેથી છુટકારો મળી ગયો, કરવા
ન કરવાના અને આવવા લેવાના તાપનીજ નિશ્ચિતિ
થઈ અર્ધ એવું મત તો સાચુ જીવન છે કેમકે
તેના પછી ન મુખ છે ન કુળ અને મત્સ્ય પછી
જે જીવને બીજા નવા શરીરની પ્રાપ્તિ થાય છે તો
મથોજા હવ નો અવસર છે, કેમકે ત્યારે તો મોતને
અર્ધ શરીરનોજ નાશ છે, એવું થાય તેર તો મુખી
ન મૃત્યુ એવુંજ, એક શરીરને છોડીને વળી બીજુ
શરીર મળતું હોય તો મથોજા આનંદની વાત છે,
એવા પ્રવા માટે તો આનંદજ થવો એવુંજ, નહિ
કે અફસોસ એ કે આત્માના અસ્તિત્વનો કદી નાશ
થતો નથી, તથાપિ તેનું જન્મ મરણ અવરથ થાય
છે, એ માનીને ઉપરની વાતો કહેવામાં આવેલી છે
વાસ્તવમાં જન્મ મરણનો અનુભવ થવો એ

આત્માને અજ્ઞાનમૂલક છે; ગીતાના મતથી આત્મા અચોત્સ્ય છે; કારણ, પ્રાણમય કેવલું આવલું અને જવું એને જન્મ મૃત્યુ કહેવાય છે. પાઠકોને એ કહેલું અનાવશ્યક છે કે ઉપર્યુક્ત ઉદાહરણમાં શ્લોકો આમ તેમથી જુદી લીધા છે, હવે ઉપસંહારમાં તેવાજ શ્લોક લઇને બતાવવામાં આવે છે કે આત્માને માટે જીવન અને મરણ જન્મે મિથ્યા છે.

ચેતન પુરૂષ (આત્મા) નથી જન્મ લેતો અને નથી મરતો, જન્મને લીધે સ્વરૂપની પેઠે આ સર્વ વાતોનો અનુભવ થયા કરે છે. પુરૂષ તો ચેતના માત્ર છે; તે કયાં અને કયાં નષ્ટ થાય છે? ચેતનાના સિવાય પુરૂષમાં બીજું શું છે? લાખો શરીરો-

નો નાશ થતો રહે છે, પરંતુ ચેતનાત્મા તો અક્ષય સ્થિર રહે છે. કેટલા એવો જીવ આજ સુધી મર્યો છે કે જેની ચેતના કોઈ પ્રકારે નષ્ટ થઈ ગઈ હોય? વાસનાઓની અને કારણોથી બદલા બદલીતું નામજી જીવન અને મરણ છે, નથી કોઈ મરતો અને નથી કોઈ ઉત્પન્ન થતો; કેવલ પોતાની વાસનાઓના આડામાં પડીને ઘોટ પોટ થતો રહે છે.

અગર જો આત્માનું જન્મ મરણ મિથ્યા સિદ્ધ થાય તો બન્ધ મોક્ષ પણ તદ્દન તેવું જ છે. આત્માના બંધનનો અભાવ ઘણીજ સુંદર રીતે કપીલજીએ પોતાના સાંખ્ય દર્શનમાં બતાવ્યો છે. કોઈ આત્માની અંકમાં તેનો વિચાર પાઠકોની સામે સુકીર્ણ.

શંકા

(પ્રેમ-એક ગીતાધર્મી)

ચોગદર્શનના સાધનપાદમાં એવી સિદ્ધિઓનો ઉલ્લેખ છે કે જે પાંચ યમોમાં પ્રતિષ્ઠિત થવાથી પ્રાપ્ત થાય છે. તે સૂત્ર ક્રમશઃ આ છે—૩૫, ૩૬, ૩૭, ૩૮, ૩૯, ૪૦, અર્જુનને શાસ્ત્ર શ્રવણનો

ચોગ્ય અધિકારીનો ભગવાન માને છે તો શું તેનામાં આ આવશ્યકીય-ગુણ હતા? તેનો કોઈ ઉલ્લેખ ગીતામાં છે કે નથી, અગર છે તો કૃપા કરીને શ્લોકોના સ્વરૂપનિર્દેશપૂર્વક વિવરણ આપવાની કૃપા કરો.

સમાધાન

(લેન્ડ-જ્ઞાનતપસ્વી શ્રી ગીતાનંદજી શર્મા)

અહિંસાસત્યાસ્તેનમ્નઃકર્મપરિહાયામાઃ ।
અહિંસા, સત્ય, અસ્તેય, બ્રહ્મચર્ય, અપરિબ્રહ્મ આ પાંચ યમ છે. એ પ્રયોગમાં મુપ્રતિષ્ઠિત થવાનું ફક્ત શંકામાં નિર્દિષ્ટ સૂત્રોમાં અપાઈ જાય છે, યથા—

૧—અહિંસાપ્રતિષ્ઠાયાં તત્ત્વત્રિયૌ વૈરત્યામાઃ ।

અહિંસામાં પ્રતિષ્ઠિત હોવાને કારણે સાધક પ્રત્યે સર્વ કોઈ વૈર ત્યાગ કરી દે છે અથવા વૈરી

તરફ વૈરભાવ રહેતો નથી, અર્જુનમાં આ અહિંસાની પ્રતિષ્ઠા કયાં સુધી થઈ હતી તેનું પ્રમાણ ગીતા પ્રકરણના પૂર્વવર્તી મહાભારતના સંદર્ભમાં તે સમયે મલી આવે છે કે જ્યાં સુધીને પ્રારંભ કરતા પહેલાં અર્જુન આદિ પાંડવ નિરસ્ત્ર થઈને વિનીત વેષમાં શત્રુસૈન્યની અંદર પિતામહ લીધાની પાસે સુદ્ધ વિજયાધર્મ જારી રાંદ લેતા ગય

હતા તે વખતે કોઈ ચુકે તેમને તો મારવાની વાત બાબુએ રહી પણ તેમને કોઈએ બધી પણ નહિ જનાવ્યા. ગીતા દ્વારાજ તેના સમાધાનને આશરે હોય તો તેને માટે આ રહોક છે—

કથં મીષમહં સંલ્યે દ્રોણે જ મધુતરુત ।

દુષ્ટિઃ પ્રતિયોત્સ્યામિ પૂજાર્હવરિસૂદન ॥

અહિ બીજા અને દ્રોણના હુમલાને જવાબ આપીશો આપવામાં અર્જુન પોતાની અસમર્થતા બતાવી રહ્યો છે. તેનાથી સૂચિત થાય છે કે તેનામાં અહિસાની પ્રતિષ્ઠા યદ્યર્થ બંધી હતી.

૨—સત્યપ્રતિષ્ઠાયાં ત્રિયાફલાત્રયત્વમ્ ।

સત્યમાં પ્રતિષ્ઠિત હોવાથી ક્રિયા ફલની પ્રાપ્તિ અવશ્ય થાય છે. અર્જુનમાં તે હોવાની સૂચના ગીતાના ૨૫ માં આ વાક્યથી મળી આવે છે.

ગુરુનદત્વા દિ સ્વિત્પ્રદિગ્ધાન ॥

આ રહોકના શુદ્ધ અને મારી પાપપૂર્ણ રાજ્ય લોભ કરવા કરતાં ગુરુઓને ન મારીને નિઃશાના અસત્યો નિર્બાક કરવો અને તેને મુખપર માનવો એ અર્જુનની સત્ય નિષ્ઠાને સૂચિત કરે છે.

૩—અસ્તેયપ્રતિષ્ઠાયાં સર્વેરત્નોપર્યાપ્તમ્ ।

બીજાની વસ્તુને આરમસ તન કરવી એ અસ્તેય છે, તેની પ્રતિષ્ઠાથી સર્વ રત્ન ઉપસ્થિત થઈ જાય છે અર્જુનમાં તેની પ્રતિષ્ઠા માટે આ રહોક વાક્ય બતાવી શકાય છે—

‘યેવામયે કાઠક્ષિત નો રાજ્યં મોગાં હુસ્તાનિ વ ।’

આ રહોક અમુસાર અર્જુન રાજ્યને કુટુંબ અથવા બીજાની વસ્તુ માનતો હતો, પોતાને માટે તેની જરૂર તેને ન હતી. ‘પ્રતિષ્ઠા’ માત્ર બહાર કે ખાડવાની નહિ પરંતુ તેના ઉપર દડી રહેવાનો દૃઢયથી સાચો ધરાકો રહેવો એકંદરે, એમ નહિ કે

‘મનયાં જાવે અને મુંડી હલાવે’ એ પ્રતિષ્ઠાની સાથે આ રહોક પણ સબંધ રાખે છે—

‘જવાપ્ય મૂળાવસપ્તમ્વદ્’

રાજ્યં મુરણામપિ વાધિપત્યમ્ ।’

અહિ પુરૂષી અને સ્વચંદ્ર એકંદર નિષ્કંટક રાજ્ય પણ પોતાને માટે તુચ્છ બતાવ્યું છે.

૪—મહાચર્યપ્રતિષ્ઠાયા વીર્યલાભઃ ।

અહિચર્યમાં પ્રતિષ્ઠિત થવાથી વીર્યલાભ થાય છે. અહિ પ્રહાયક રાજાનો અર્થ છે, શુરૂની પાસે જઈને શિષ્ય ભાવથી રહેવું. તે તો અર્જુન કહી જ રહ્યો છે—

‘નિષ્ચરતેડદં કાપિ મા ત્વા પ્રવ્રજમ્ ।’

હું શિષ્ય થઈને તમારા શરણમાં પડ્યો છું, મને આદેશ આપો, ત્યાં પ્રહાયકમતથી અર્જુનને વીર્યલાભને માટે ભગવાનની એ આજ્ઞા છે—

“મુદ્ધમ્યત્વ જેતાસી રણે સપત્નાર ।”

૫—અપરિમદ્ધયેયં જનમક્રયન્તાસંવોય ।

અપરિમદ્ધ એટલે અલોભ, તેના આધાર રૂપ

ગીતાના ૧/૧૫૩ માં આમુ વચન છે—

‘અર્હકારં નહં વ્યર્ષં કામ ક્રોધં પરિમદ્મ્ ।’

અહિ કેમથી છ વિષયોના ઉદ્ભવે બે હોવાથી પરિમદ્ધનો અર્થ લોભ થયો, કે જે પચિનો મુલભૂત છે એટલે મુખનો અર્થ એ થયો—યેગી લોક નિર્દોષ હોવાથી એમ બહુ લે છે કે ભમારો આજ્ઞામી જ નમ કેવો થયો આ રહ અર્જુનને હાથ-હાથ મળી ચુક્યું હતું, કેમકે તે રહો છે—

‘જવાપ્ય મૂળાવસપ્તમ્વદ્’

રાજ્યં મુરણામપિ વાધિપત્યમ્ ।’

આ વિવેચનથી અર્જુનમાં પાંચે ચિદ્ધિઓની સત્તા મુરપટ જણાઈ આવે છે.



જ્ઞાન, ભક્તિ, કર્મ.

(શ્રીમત્ સ્વામી જ્ઞાનાનંદજી સરસ્વતીના ઉપદેશ)

(અનુવાદક અને પ્રેષક:—જયકૃષ્ણ શાસ્ત્રી કાવ્યતીર્થ.)

સદેવ સૌમ્ય હૃદયમ્ આસીત્ એકમેવાદિતીયમ્ ।

તદૈક્ષત વહુ સ્યાં પ્રજાયેયેતિ તત્તેજોડસ્ટજત ॥

(છાં. ૪૦)

હે સૌમ્ય ? (પ્રિયદેશન ?) આ વિસ્તીર્ણ
ઉત્પત્તિ પહેલાં એક માત્ર અદિતીય સત્ સ્વરૂપ
આત્માજ હતો. તે આત્માએ ઈક્ષણ વા બોધ કર્યો
કે “હું પ્રજા હું” અને બહુ યવાની ધ્રુવ છરીને
તેજ ઉત્પન્ન કર્યું.

અન્નમયં દિ સૌમ્ય મનઃ આપોમયઃ પ્રાણઃ સ્વેજોમયીવાક્ ।

(છાં. ૪૦)

હે સૌમ્ય ? મન અન્નમય છે, પ્રાણ જલમય છે,
અને વાક્ય તેજોમય છે. અર્થાત્ તેજથી વાક્ય,
જલથી પ્રાણ અને અન્નથી મન ઉત્પન્ન થયું છે.

નિષ્કલ, નિરંજન, કેવળ સત્સ્વરૂપ, અદેવ
પરમાત્માએ એક રસથી બહુ રસનો આસ્વાદ કરવા
માટે બહુ યવાની ધ્રુવ છરીને બધા પહેલાં ઈક્ષણ
વા બોધ કરીને તેજ ઉત્પન્ન કર્યું. એટલે કે તુરિય
વા નિર્ધન અવસ્થામાં “હું હું” એ પ્રકારનું જ્ઞાન
રહેતું નથી. પ્રથમ ઈક્ષણમાં અર્દ્રગણાલિ અર્થાત્
“હું જ પ્રજા હું” આ પ્રકારનું જ્ઞાન થયું. વીળ
ઈક્ષણમાં રંગો યે સઃ અર્થાત્ આત્મા સ્વસ્વરૂપ વા
આનન્દ સ્વરૂપ છે એ પ્રકારનું જ્ઞાન થયું અને
ત્રીજા ઈક્ષણમાં સર્વે સત્ત્વિદં પ્રજા “નકરી બધું પ્રજા
છે” એ પ્રકારનું જ્ઞાન થયું. આ વિશ્વપ્રજાંદ તેજ,
જલ અને અન્ન સ્વરૂપ પ્રજાના સ્પષ્ટ પ્રકાશ સિવાય
અન્ય કશું નથી. તેથીજ પ્રજા તેજોમય, વાક્ય-

મય—જ્ઞાનમય છે. જલમય, પ્રાણમય—ભક્તિ-
મય છે, અને અન્નમય, મનોમય—કર્મમય છે.
હવે જુઓ; પ્રજાનું મૂળ ધન તેજ, જલ અને અન્ન
અથવા વાક્ય, પ્રાણ અને મન છે. આ ત્રણ કારણો
દ્વારા પ્રજા બહુ થયેલ છે. હવે કયા ઉપાયનું અવ-
લમ્બન કરીને ખંડ ખંડ અથવા બહુ થયેલ છે,
તે સમજવાની ચેષ્ટા કરો.

પ્રથમે મનમાં સંકલ્પ કરી, પ્રાણમાં વેદનમય
વા ભક્તિમય થઈ અને જ્ઞાનમાં સંકલ્પાનુસાર રૂપ
ધારણ કર્યું. પ્રજાને કોઈ વસ્તુને આધીન થઈ
સંકલ્પ કરવો પડેતો નથી કારણકે આ વિશ્વ પ્રજાંદ
જે કોઈ છે અને નથી તે બધુંજ ભક્તિના જ્ઞાનમાં
છે અથવા આ વિશ્વ પ્રજાબોધ માત્રજ છે. પ્રથમે
બોધ કરીને આ વિશ્વરૂપ લીધું છે. તદૈક્ષત તત્તર્કમ-
મયત્ (૪૦. ૪૦) પ્રથમે ઈક્ષણ વા બોધ કરી વિશ્વ-
રૂપ ધારણ કર્યું છે પ્રથમે સંકલ્પ કર્યો કે “હું
આકાશ હું” અને સંકલ્પના આકારમાં વેદનમય
વા આદ્રંભાવ યુક્ત થઈ, તદાકાર અનુભવ કરી
આકાશરૂપ લીધું. તેજ રીતે સંકલ્પ કર્યો કે “હું
સૂર્ય હું” અને સૂર્યગંગા વેદનમય થઈ “હું સૂર્ય”
આ જ્ઞાન દ્વારા સૂર્યરૂપ ધારણ કર્યું. તેજ રીતે
હું દેવતા, હું મનુષ્ય, હું બધું, જલ જગત્ ઈલાદિ
બોધ કરીને આ વિશ્વરૂપ પ્રદલ કરેલ છે.

જુઓ; જ્ઞાન, પ્રાણ અને મન દ્વારાજ પ્ર-
વિરચરૂપ લીધું છે. પ્રથમે જગત્ બોધ કરી જગત્-
રૂપ લીધું છે, તમારે પ્રજાબોધ કરીને પ્રજારૂપ

બોધમાં કર્મ કરવાથી કર્મનું ફલ આશ્રિત થાય છે. અથવા કર્મ ફલ કર્મ કરનારને આધીન થાય છે.

સાંભળો; આટલા ક્ષિપ્ર જગત્ બોધમાં કર્મ-મય રહીને નાના પ્રકારના શોક દુઃખાદિમાં પીડિત થયા છે. આજથી માંડીને આત્મબોધમાં કર્મ કરવા અભ્યાસ પરાયણ થાઓ તો સુખ દુઃખાદિ

તમોને વ્યથિત કરી શકશે નહિ. બધાં કર્મો સત્ય, પ્રાણ અને જ્ઞાન વા સમ્બિદ્ધાનંદ લક્ષ કરીને કરી શકશો તો પરમ કલ્યાણ પ્રાપ્ત કરશો.

નહિ સત્યાત્ પરાશ્ચિર્નહિ પ્રાણાત્ પર પ્રિયઃ ।

નિહિ જ્ઞાનાત્ પરં કિંચિત્ તદેવત્ ત્રયમાશ્રય ॥

ૐ તત્ સત

અર્જુને યુદ્ધ રા માટે કર્યું ?

(મં—વરીલ બાલાસાઈ નારજી બીં ૐ)

[અનુર્મધાન ૫૦ ૧૧૭૬ થી આગળ]

આપણને માસ્તર એકઠો ઘુટાવે છે તે પીપ્પીમે દ્વામાંથી દશકો, તેમાંથી ક્રેડો પછી ૧) ૧) ૧) ગેરે મુધી જતાં અક્ષર વાંચન, તેમાંથી વીશેષ ચત્ર, વીગેરે વધારતાં વધારતાં છેવટ લક્ષ્ય આ-લ્યાં શાસ્ત્રો વેદોને આપણે વાંચીએ તે છે. પણ તે લક્ષ્ય જીવી જઈને એકઠોજ ઘુટતા આજો જન્મ પડ્યા રહીએ તો તેનાથી આપણું શ્રેય તો થાય નહીં, ઉલટું વીદાનો ત્યાં ઇતર સર્વ આપણને મુખાં કહે. તેજ સ્થીતિ આપણી એકજ સુતર્તિને વળગી રહી બીજી શક્તી પ્રતિ આદરમાન ન કરવામાં ન જોખખવામાં આવી ગઈ છે. અને તે પણ વળી એક સુતર્તિનું રહસ્ય પણ આપણે સંપૂર્ણ જાણવા પ્રયત્ન કરતા નથી, જાણતા નથી. અને જારી રીતે તો આપણે ઉપલક દર્શન કરીને આપણા આત્માને પણ કળીએ છીએ કે મેં ઇશ્વરનાં કે ઇશ્વરની સુતર્તિનાં દર્શન કર્યાં.

દર્શન કરવાનો ખરો અર્થ કદાચ તે સુતર્તિના પુનરી પણ નહીં જાણતા હોય. અગર જાણતા હોય, તો વળી જે મૂર્તી, જે ઇશ્વરી શક્તીની તે

ઉપાસના પુન—દર્શન કરવો હોય તે શક્તીનો આવીલાંવ તેવા પુનરી કે દર્શન કરનારમાં ધવોજ ભેદમે.

દાખલા તરીકે એક શેકને ત્યાં એક નોકર છે, તે નોકરનું કામ શેકની ખાસ તેલનાતમાં રહેવાનું છે. અને શેકના હરેક કામ વખતે શેકને શી શી જાખતોની જરૂર પડે છે, શેકને કયો પે.ચાક—કર્યું ચાક—કર્ષ વસ્તુ પસંદ છે, શેકનો સ્વભાવ કેવો છે, તે બધાથી ખરો સેવક—ખરો નોકર જાણકાર થઈ જાય છે, અને પછી અમુક પ્રસંગે શેકને કયો પોશાક—વસ્તુ—વીગેરેની જરૂર છે તે શેકના હુકમ કયાં વગરજ ખરો નોકર તૈયાર રાખે છે અને તેવા નોકર પર તેના શેક માયા મમતા રાખી —

જનન્યાચ્ચિન્તયન્તો મામુ ચે જનાઃ પર્યપાસતે ।

શેપાં સતતયુક્તાનાં યોગક્ષેમં વદામ્યહમ્ ॥

તેવા નોકરના યોગક્ષેમ—તેવા નોકરના સંસારની જરૂરીયાતો પુરી પાડે છે.

અને બરાબર ચાદ છે કે આવા નોકરો મુખ્ય માં લારીઓ અને કલકતામાં પણ છે. ।

જ્યારે સાધારીકે મનુષ્યમાં શેકની યાત્રાને પારખી જઈ સમય અનુસાર નોકરી આપનાર નોકરો છે અને તેને ન્ય હ કરનાર શેકો છે તો પછી ઈશ્વરની એક યાત્રા-મુર્તિની ઉપાસના સમજીને ખરા હીલથી ઉપાસના અને સેવા ખાતર સેવા કરે પૈસા કે ખીજા લોકથી નહીં, તો તે યાત્રી જરૂર તેવા પુઝારી અગર દર્શન કરનાર પર પ્રસન્ન થાય એમાં શંકાજ નથી. તે બાબત ઉપરનું બગવદ્ વાક્ય—વીચારવા જોઈ છે

પણ આપણા જન સમાજે એકઠો ધુન્વો છે, તેમાંથી કોઈ બગડો ધુન્વો કહે તો સામે દડવા ઉઠાડે છે, પછી તે સમ જને મેં કાઢી ગયે પણ શેની આવે—

આવી આવના, આવા વીચારો, જગવાને દશમા અધ્યાયમાં પોતાની વીલુતી જોતા વર્ણવમાં વ્યજ્ઞ કયાં છે

ખરી રીતે નીર જન નીરાકાર ઈશ્વરનું ધ્યાન તો ઉત્તમમાં ઉત્તમ છે ને તેજ ધ્યાન સહજ યાને કેદરતી છે માટેજ—

ક્ષત્તમા સદ્જાવસ્થા મધ્યમા ધ્યાનપારણા ।

૧. વીજેરે લખાયતું છે.

આ દશમા અધ્યાયમાં જગવાને એક વાત જણીજ મહત્વની દર્શાવી છે અને તે એ કે—

અહમ્મામા ગુડાકૈશ સર્વભૂતાગચરિત ॥

(અ. ૧૦ શ્લો. ૨૦)

તેમાં જગવાનું કહે છે કે—હે અર્જુન, સર્વ ભૂત પ્રાણી માત્રના હૃદયમાં રહેનારો જે આત્મા તેજ જગવાનું હરેક વસ્તુના અંદરનું સારભૂત તત્ત્વ તેજ જગવાનું અર્થાત્ હરેક મનુષ્યને જો એમ આત્મી થાય કે જગવાનું તો પોતાના હૃદયમાંજ છે, પોતાનોજ આત્મા એ જગવાનું છે, તો તેની

માન્યતાથી મનુષ્યનું કે યાજ્ઞ યર્જન જાય છે કારણ, પછી પોતાના હૃદયને પોતાના આત્માનો મનુષ્ય હૃદયપથેગ કરશે નહીં, તેના પર ખરાબ સંસ્કાર ચઢાવશે નહીં, અનીતીમાં ચાલશે નહીં અને તે રીતે પોતાના હૃદયને પોતાના આત્માને સુદ બનવી ચીતશુદ્ધિ થતા પરમ પદને પામશે અને સદેહે જ જનક વીદેહી જેમ, મુક્ત સ્થિતિમાં વીચરશે

આ દશમા અધ્યાયને છેવટે જગવાનું અર્જુનને કહે છે કે હે અર્જુન, મરી વિભૂતિપોના ઝાઝા વર્ણનથી, અતી રિસ્ત રથી કહેવાની છું જરૂર છે, હેન હું તને નોખણુ કહી ઉઠે કે આ સમસ્ત જગત મારો એક અંશ (ભાગ) માત્ર છે અને જગત જ્યારે કેવળ મારો એક અંશ છે તો હું પરમાત્મા કેવડે મોટો હોઈશ તેના હે અર્જુન, તુંજ વીચાર કર, તુંજ અનુમાન કર તુંજ ત્રોડી મારું

આ દશમા અધ્યાયના છેવટના જગમાં જગવાને સર્વ રહસ્ય જણવી દીધું છે, એમ કહેવામાં કંઈ વાપો નથી

‘ અહમ્મામા ’

એ તો આ પ્રસ્તુત ગીતા માંહેલું એક મહાવાક્ય જ છે અને સર્વ હું જ છું એ પણ દશમા અધ્યાયના અંતમાં જણવીને જગવાને દશમે અધ્યાય પૂર્ણ કર્યો

અને અધ્યાયમાં અધ્યાયનો અ રમ થયો, પણ આ અધ્યાયમાં અધ્યાયના પહેલાજ શ્લોકમાં અર્જુનથી એમ જોલી જવ મું છે અને જોલ જજ કે—
મોહોદય વિગતા મમ ।

(અ. ૧૧ શ્લો. ૧)

અર્જુન કહે છે કે હે જગવાન અને જે પ્રત્યક્ષ જોલ હતો તે હવે તદ્દન ગયો, નષ્ટ થયો છે અને

રો મોહ કંઈ રીતે ગયો, કયા કારણથી ગયો, ામ જો ભગવાન પૂછતા હોય તો અર્જુન, તેજ હેલા રલોકમાં કહે છે કે હે ભગવન, આપે મારા ર કૃપા કરીને મારા કલ્યાણ માટે-અધ્યાત્મ ારાવાણું જે પરમ ગુણ વચન કહ્યું, તેથી મારો મોહ દુર થયો.

અહીં વીચારવા જેવી વાત એ છે કે અર્જુન- નો મોહ અધ્યાત્મ સંબંધી વીચારથી ગયો છે, ને તે પરથી આપણે સમજી શકીશું કે અર્જુનને હવે આત્મા સંબંધીનો વીચાર બરાબર સમ- જવામાં આવી ગયો છે. છતાં અર્જુનનો યુદ્ધ ન કરવું એવો જે મોહ છે તે હજી ગયો નથી, એવો ખુબી તેમાંથી ઉઠે છે. જો કે અર્જુનને હવે એમ તો લાગવા માંડ્યું છે કે, યુદ્ધ ન કરવું એવો મારો જે નીશ્ચય છે તે પણ જો ભગવાનના ઉપદેશથી તુટી નય તો ઠીક. એટલે અગાઉ ગીતાની શરૂઆતમાં અર્જુનમાં જે હઠ, જે રોષ, જે ઉદતાઈ આપણને દેખાતી હતી, નહ-તે રોષ-તે ઉદતાઈ હવે નરમ પડેલી જણાય છે, છતાં અર્જુનને મનમાં ગાંઠ વાળી મુકી છે, યુદ્ધ કરવાના વીષયમાં ભગવાન ચોતાની મેળે ઉપદેશ આપશે, આપણે ત્યાં તે સંબંધમાં કંઈ પણ જાણવું નહીં. પણ ભગવાન પાસેથી બીજે કંઈ મોટો લાભ મળી નાય તો સારું, એ હેતુ મનમાં રાખીને અર્જુન વીશ્વરૂપ દર્શનની માગણી ભગવાન પાસે કરી. અને જેવી માગણી અર્જુન કરી કે તુરંત ભગવાને તેને વીશ્વરૂપનું દર્શન કરાવ્યું. આ વીશ્વરૂપનું વર્ણન મૂળ ગીતા- જીના સંસ્કૃત રલોકોમાંથી વાંચવું ને લેવું એ અતીશય જરૂરનું છે. તેમજ તેવી રીતે જોવાળીજ તેમાં બહો સ્વાદ આવશે, ઘણી સમજ પડશે, ઘણો આનંદ આવશે, માટે મારી 'સર્વે' અમુક્યોને

વીનંતી છે કે વીશ્વરૂપ વર્ણન માટે મૂળ ગીતામાંજ લેવું, તેના ગુજરાતી ભાષાંતર કે બીજા ભાષાંતરમાં મૂળ જેવી મઝા નથી.

પણ આ વીશ્વરૂપ દર્શનના સંબંધમાં પણ એક ગમ્મત ભગવાને કરી છે અને ભગવાને આવે પ્રસંગે પણ અર્જુનને ઇશારો કર્યો છે કે હે અર્જુન, તું ઉઠ-યશ મેળવ અને શત્રુને જીતી અશ્વિર્થયુક્ત શત્રુઓને ઉપસોગ લે. અરે! મેં જ, આ તારા શત્રુઓને પહેલાંથીજ ઠાર કરેલા છે, એમ તું જાણ અને યુદ્ધ કર તથા શત્રુઓને ઠાર કર. તારાજ વીજય થશે, હુખ લગાડજે મા, ચીંતા કરજે મા.

આ ઉપરથી પ્રસ્તુત કમયોગ વીષે અર્જુનની ગાંસડી ભગવાન દેવી રીતે વાળે છે, એ જરૂર સર્વેના લક્ષમાં આવશે.

પરંતુ અર્જુન તો પાકો શઠ છે, પાકો મૂખ છે, તેથી ઉપરનો ઉપદેશ ભગવાને કર્યો છતાં પણ અર્જુન કંઈ પણ જવાબ આપતો નથી કે હું યુદ્ધ માટે તૈયાર છું, એટલે પછી યાજ્ઞને ભગવાને તે વીશ્વરૂપનું દર્શન બંધ કર્યું, પૂર્વવત મનુષ્ય સ્વરૂપ દેખાડ્યું. અને અંતે ભગવાનેજ ચોતે ચોતાની મેળે તે વીશ્વરૂપ દર્શનની ખુબ પ્રશંસા કરી. પણ અર્જુન તે સંબંધે કંઈ બોલ્યો નહીં, તેથી ભગવાને અગ્યારમો અધ્યાય સમાપ્ત કર્યો.

જો કે અર્જુન, વીશ્વરૂપ દર્શન કરીને કંઈ બોલ્યો નહીં છતાં પણ આપણને એમ લાગે છે કે અર્જુનને આત્મજ્ઞાન-પ્રજ્ઞાજ્ઞાન વીગેરે પારમાર્થિક વિષયો હવે બરાબર સમજવા લાગ્યા છે છતાં પણ યુદ્ધનો કર્મયોગ અર્જુનને કરવો જોઈએ અને એકલા પ્રજ્ઞાજ્ઞાનથી હાલના સંલોગોમાં સર તેમ નથી એમ માનીને ભગવાન તો અર્જુન યુદ્ધ કરે તેજો કર્મયોગ અર્જુન પાસે કરાવવા પ્રવૃત્ત થયા છે.

પણ જ્યારે અભુન તો તે મુઠ, કરવા સ બધી કરે
યોગ માટે કંઈ પણ મોઝતો નથી એમ જાગવાને
જોઈ, ત્યારે જાગવાન પણ તે સ બ ધે એક શબ્દ પણ
આ તબક્કે ઉત્તરતા નથી

ઉપર જણાવેલી વાત છૂટા-અધ્યાયથી અગ્રી-
આરમા અધ્યાય સુધીના, કેયનેનો ૨૫૮ નીચાર કરતા
આપણને ડીઘા જેવી દેખાયો. અને પછી બારમા
અધ્યાયથી ૧૮મા અધ્યાયના ૫૬મા રહોક સુધી તો
જાગવાન પણ કંઈયેમ સ બ ધી કંઈ જોડતા નથી
કારણ જાગવાને નીરાશા થઈ છે કે અભુન જેવા
મુર્ખ અને કુદીત જુદીના મલસને આટલો આટલો
ઉપદેશ કર્યો પણ બધું જાણે પર પાણી સમાન અને
મહીની આમજ મીમસિા સમાન થઈ, તો પછી
હવે કયા સુધી અભુન પાસે માયાકુટ કરવી

એમ ધારીને જાગવાન ૧૮ મા અધ્યાયના ૫૭-
મા રહોકમાં ચીકાઈ જીમ્મ અ કરા શબ્દો અભુનને
કહે છે કે હે અભુન, “નેજેલ્લે” “મારે મુઠ કરવું
નથી” એમ તું વારવાર યોવે છે, તે તું અહ કારને
જાગીને મૂઠ મધને યોવે છે અને તે તારા અહ
કારના એર ઉપર તું મારે કહેવું માનતો નથી તો
હું તને હવે છેવટનો ફેસલો સ જાગવા પુ કું કે જો
હજુ પણ તું અહ કારને જાગી રહીને મારે કહેવું
નહીં માને તો તારો નાશ થશે અને તે જે નીક્રમ
કર્યો છે કે મારે કહવું નથી તે તારો નીક્રમ એટલો
છે કારણ તારી પ્રાણી, તારો સ્વભાવજ તને મુઠ
કરવામા યેરશે, કારણ, જે સ્વાભાવીક કમનું તારૂં
શરીર બનેલું છે, તે પીક સ્વભાવ-શરીર સ્વભાવ
કયા જ્યો? માટે તને કહું છું કે મોહનતા જુસ્સામાં
જે વું હમણા કરવા છમ્મજો. નથી તેજ મુઠ તું
તારા પીક સ્વભાવને વશ થઈને અવશ્ય કરવા
નોજ અસ્તુ

પર તું હે અભુન, હવે હું એટલુંજ કહું છું કે
સવભાવે પરમેશ્વરને શરણે રહેવું એ સાર છે
કારણ, જીવાત્માનો અહભાવ જોજ માયા છે. એ
અહ ભાવનું વ્યાવરણ તારી આસપાસ આવી રહેલું
છે માટે એ ઇશ્વરને શરણે જઈ “હું” કર્યાં નથી”
એવી દહ પ્રતિજ્ઞા કરીય, તો તુરતજ તું જીવન-મુક્તિ
થઈ જઈશ પછી તને કયાનો જાગ, મોહ-કર્મ
રહેશે નહીં. પણ જો તું અહ કારમા જ રહે, રહીશ,
તો અહ કારમાજા મનુષ્યના મુદ્દમમાં જાનતો
સચાર થશે નહીં નીચાણ તરફજ પાછી વળી
શકે અને જાજ જ કુર કુર, જક હંગે, ફગકુલ જાપજ
માય પણ અહ કાર એ ઉચ્ચાણવાળી જગા છે
ત્યાં જાનનું પાછી આવી શકે નહીં માટે તું ઇશ્વરને
શરણે જા જે મનુષ્ય ઇશ્વરને વળગીને માલે છે તેને
કલાય પડી જવાનો જાગ રહે છે, પણ ઇશ્વર જેને
પકડી રાખે તેને પડી જવાનો જાગ રહેતો નથી
એમ કોઈ જોડશે પોતાના જાપનો હોય પકડીને
એતરની પાળ પર એતરના થોડા પર જ લેનો હોય
તો તે જોડશે કલાય પોતાની મફતવથી ખાડામા
પડી જાય ખરે, પણ બધે જો છેકરાનો હાથ
પકડશે હોય તો તે જોડશે કદી પણ પડેજ નહીં,
તે રીતે ઇશ્વરને શરણે જા, તો ઇશ્વર તારો હાથ
પકડશે. ઉપરનું જાગવાનું વાક્ય (અં ૧૮
રહો: ૬૨) અસમ્ય પ્યાગમાં જાળી પરમેશ્વરને
શરણે રહેવું. અને આ તાવ જાગને માન્ય છે
આ તાવમા કોઈ પણ હું જન્મત કરે તેમ નથી

છતા આપણે આ રચણે વીચાર તો કરવો
પડશે કે જ્યારે અભુન જાગવાની કોઈ પણ
દલીલ માગતો નથી અને જ્યોત પડી રામ કહાઈ
પણ એક મવડો ઉઠું” એવું ફરીને જોડો છે, તેવો
પ્રસંગ જાગવાને ઉપર પ્રમાણે ઉદ્ધાર કહાંદા છે

તો તેવા ઉદગાર શા કારણથી કાઢવા પડ્યા તેનો વીચાર કેટલો મહત્વનો—કેટલો ઉંડો, કેટલો ઘટ છે તે સંબંધી બુદ્ધિમાનોએ પોતપોતાની બુદ્ધિને કસવાની જરૂર છે.

પ્રસ્તુત ૧૮ મા અધ્યાયના ૫૭ થી ૬૬ સુધીના જે ૧૦ શ્લોકો છે તેમાં બુદ્ધિમાન અને વીદ્વાનોએ પોતાની અકલ અને બુદ્ધિ ચલાવવાની જરૂર છે. અને અમે પણ તે સંબંધે યથાબુદ્ધી વીચાર કરાવીએ.

યુદ્ધ કરવું નથી, એમ જે અર્જુનને દહ પ્રતિજ્ઞા કરી મનને વાળી બેઠો છે તે જો કે ભગવાન કહે છે કે અર્જુન અહંકારથી તેમ કરે છે. પરંતુ ભગવાનનો ખરો આશય તેમ કહેવાનો નથી. ખરેખર રીતે અર્જુન યુદ્ધ કરવું નથી, એમ અહંકારને લક્ષને કહેતોજ નથી. ખરી રીતે તો યુદ્ધ શા માટે કરવું, તે બાબતમાં અર્જુનને ગમજ પડી નથી, તે બાબત અર્જુનને સમજાણીજ નથી, તેને જો ઉતરી નથી. જો કે ભગવાન તો એમજ ધારે છે કે મેં અર્જુનને જુદી જુદી રીતે સમજાવીને યુદ્ધ કરવાની જરૂરીઆતની વાત અર્જુનને ગળે ઉતારી છે અને છતાં અર્જુન યુદ્ધ કરવા કંજુલ થતો નથી. અને આવી માન્યતાથી ભગવાનને આશ્ચર્ય પશુ થયું છે કે આટલી આટલી રીતે સમજાવવા છતાં યુદ્ધ કરવાની વાત અર્જુનને ગળે કેમ ન ઉતરે, ઉતરવીજ નોંધે. છતાં જ્યારે અર્જુન ના પાડે છે, સારે ભગવાન એમ માને છે કે અર્જુન મૂર્ખ છે, અહંકારી છે, માટે સમજ્યા છતાં પોતાનો કંકેર ખરે કરવા માનતો નથી. અને તેથી ભગવાનને નીરાશા થાય છે અને જેદ પણ થાય છે. અને હવે અર્જુનને સમજાવવો એ પોતાના સ્વાધીનમાં નથી, એમ ભગવાન માને છે અને અદૃષ્ટની પ્રબળતા આગળ પોતે ભગવાન છતાં આ વખતે ભગવાન પણ હાથાર બની

ગયા જણાય છે અને પોતે જે અનંત શક્તિમાન પરમેશ્વરના અવતાર તરીકે બૂલોડે આવ્યા છે તે વાત ભગવાનને ત્યારે યાદ આવી ગઈ. અને અત્યારે અર્જુનને કરેલો પોતાનો સર્વ ઉપદેશ વ્યર્થ છે એમ પણ શ્રી કૃષ્ણ ભગવાનને આ પ્રસંગે લાગેલું હોયું નોંધે. અને તે કારણથીજ “તે પરમેશ્વર અર્જુનને કઈ બુદ્ધિ આપશે, કઈ પ્રેરણા કરશે, તેનું અદૃષ્ટ કયા પ્રકારે ચલાવતું હશે, એમ વીચારી, હવે તો અર્જુન અર્જુનનું જાણે, આપણે તો યાકયા. એમ માની ઉવટના લાગે અર્જુનને કહે છે કે હે અર્જુન, તું—ભગવાનને શરણે બે, આવા ઉદગાર પોતે ભગવાન છતાં પણ કહાડવા પડ્યા.

આ પ્રમાણે અમારી બુંદી કહે છે. તેમ બીજી રીતે બીજાની બુંદીથી બીજે લાવાયે પણ આમાંથી નીકળી શકે.

ભગવાનને અંતે એમ જણાયું કે હવે નિરપેક્ષ ભાષણ-ઉપદેશ થયો, હવે બસ છે, એમ ધારીને ભગવાને અર્જુનને કહ્યું કે હે અર્જુન—મેં તને મારો જ્ઞાન વીચાર, જ્ઞાન સંબંધી મારી માન્યતા, જે ઘણીજ શુદ્ધ અને ન સમજાવી શકાય તેવી છે છતાં પણ તે સર્વ મેં તને જણાવ્યું. અને મારાથી અને તે પ્રમાણે ચારી રીતે સરળતાથી મેં તને સમજાવ્યો, તેથી હવે મારે તને એટલુંજ કહેવું છે કે “તને ઠીક લાગે તેમ કર” અર્થાત્ જેને જેવું લાગે તેવું તેણે કરવું. ભગવાન એકલા અર્જુનનેજ નહીં પણ આપણને સર્વને ઉદ્દેશીને કહે છે.

ભગવાનનું તે કહેવું ઠીક છે. પરંતુ તેવું બોલવું એ નીરાશા યથા ગએલા મનુષ્યને, ઉદાસ યથા ગએલા મનુષ્યને શોભે. પરંતુ ભગવાન જેવા, કે જે પાંદર વરસ છે તેમના પોતાના આવા ઉદ્દેશાર !

(અપૂર્ણ)

પંડિત અને મૂર્ખ

(ભેન-સ્વામી શ્રી રાનાનંદજી રાન્યાસી, દર્શનશાસ્ત્રી, બ્યાકરજીયાય)

ધણખરા હિંદોને બીજાઓનું અનાવરણક
અનુસરણ કરવાની ટેવ પડી ગયેલી દેાય છે તે
પોતે કંઈ કરતા નથી અને કરવાવાળાના કામમાં
કાંટા લગાડવા કરે છે તેમની કાવર જેવી વણી
બીજાઓના જાતિરૂપી વચોને કાતરવાનું કોડતી
નથી તેઓ પોતે તો આજસમાં નકામું જીવન
વ્યતીત કરેજ છે, પરંતુ બીજાઓને પણ હતો
ત્યાહ (ઉત્સાહ વગરના) કરવાનો તેમનો ધર્મ
બની બાય છે તેઓ જોયો ખ્યાલ કરવાનું ભૂટી
બાય છે કે વાદ નિવાદથી જોડું કામ નથી ધર્મ
શકતું કે જેટલું તેને કિયાતમક (કરીને બતાવવાથી)
ફાળ આપવાથી પાય છે, 'વાદે વાદે જાયત તસ્વ
વોષ' એ વાત ઠીક છે, પરંતુ તેનાથી આ વાદે વાદે
જાયતે કાર્યસિદ્ધિ' એ પણ મિથ્યા ધર્મ શકતું નથી

અવ' સ સાર પંડિત અને મૂર્ખ' એ એ એલિ
ઓમા વિભક્ત છે કોણ પંડિત છે તથા કોણ
મૂર્ખ છે? તેનું વિવેચન કરવું વણજ કહીત છે
પણ પ્રયત્ન કરવાથી એ વત અસંભવ નથી એ
લોહો પોતે પોતાને પંડિત માને છે અથવા
જેમને દુનિયાદારોએ પંડિતના ઇલકાબ આપી
રાખ્યા છે, તેમની જવાબદારી સમાજ પ્રત્યે તથા
તેમના પ્રત્યે કે જેઓ તેમનાથી અનભિસ છે, મૂર્ખ
છે, જણીજ વધારે બની બાય છે પંડિતો માટે
ઉચિત તો એ છે કે તેઓ, અનભિસને, અભદ્રધા
ઓને, મૂર્ખાઓને ઉપદેશ માત્રજ ન આપતા રહે
પણ તેમની પાસે તેવા કામ પણ કરાવતા રહે
અથર કોઈ જુદિમાન અસાનીની સાથે કોઈ વિષય
૧૫૬

પર વાદવિવાદ કરે તો તેણે પોતાની આજરૂની
કરકાર છોડી દેવી જોઈએ અથર કોઈ મૂર્ખ એમ
સમજી લે કે એ કોઈ એક વિદ્વાનને યશસ્ત કર્યો
છે, તો તેમાં આશ્ચર્ય ન કરવું જોઈએ કેમકે
મામુલી પત્થર પણ મુત્યવાન થોતીને તોડી શકે
છે બહુજ થોડી કામગીરી લોહાની હથોડી સોનાને
ટીપી શકે છે, જ્યારે કામગીરી હાંવ હાંવ કરવા લાગે
છે ત્યારે કોયલ જાવાનું છોડી દે છે અને જ્યારે
જનતા ચોરબકાર કરીને પોતાની મૂર્ખતાનો પરિ
ચય કરાવવા તત્પર થાય છે ત્યારે વિદ્વાન બ્યાખ્યાતા
પોતાના ઉપદેશપૂર્ણ વાક્યોની પાસા બંધ કરી દે
છે અત પંડિત જનોએ મૂર્ખાઓ સાથે વિવાદ
કરવો જોઈએ નહી, પ્રમુલ તેઓને કામમાં લગા
ડતા રહેવું જોઈએ, બાવ જો છે કે મૂર્ખના અભ્યાય
તથા અશિષ્ટતાપૂર્ણ વ્યવહારથી જુદિમાન પુરૂષ
કોપિત કે ચોક્કાત થતા નથી અથર એક નકામો
પત્થર બહુ બુદ્ધ સોનાના ખ્યલાને જાગી તોડી
નાખે તો તેથી પત્થર બહુમુદ્ધ અને મુવણું થોડી
દીંમતનું ન કરી બાય. કેમકે—

દમતુરગરયે પ્રયાન્તિ મૂઢા

યનદિવિવિગુપા પ્રયાન્તિ વદુન્મ્યાનૃ

ગિરિસિત્તરગતાડપિ કાકવજ્જિક

પુક્તિગતૈર્ન સમત્તમેવિ હૈતૈ ॥

જગતમા સર્વજ જોવામાં આવે છે કે—મૂર્ખ
લે કે કાથી, થોડા, તથા રચ વિગેરે ઉપર બેસીને
જણા ઠાકમાઠની સાથે અક્ષરે શક્યને મકાલતા દોાય
છે અને પંડિતો નિર્ધન હોવાને કારણે

જાની પુરૂષ તો તેને પંડિત કહે છે કે—જેના સર્વ સમારંભ અર્થાત ઉદ્ધોષ કુલની ઇચ્છાથી વિરહિત હોય છે અને જેનાં કર્મ જ્ઞાનાશિથી ભરખ થઈ ગયાં હોય છે, અર્થાત જે કુલની ઇચ્છા છોડીને કર્મ કરે છે તેજ પંડિત છે, જે વિચારપૂર્વક કામ કરવા નથી તેમની આપસિતું કંઈ કેદાણું નથી. અતઃ જે બહુજ વિચારપૂર્વક સમજીને કામ કરે છે તેજ પંડિત છે. જે બીજાની સ્ત્રીને માતા બરાબર, પારકાના ધનને પત્થર બરાબર, તથા સર્વ જીવોને પોતાનાજ આત્મા બરાબર માને છે તેજ પંડિત છે.

પંડિત લોકો રાજા મહારાજાઓની મિત્રતાને બરેસી રાખતા નથી, તેમ નથી બાળકોની મીઠીમીઠી વાતો પર વિશ્વાસ રાખતા, કેમકે રાજાઓની હોસ્તી જરા સરખો સંકેદ થતાં ટુટી જાય છે, અને બાળકોની વાતો નિત્ય પ્રતિ બદલાતી જાય છે. જે પંડિત થઈને જોમ કરે છે તે વિદ્યાને બારરૂપ બનાવે છે, જ્યારે કે વિદ્યાથી વિચારપૂર્વક કામ ન કરી શકાય તો તેવી વિદ્યા બારરૂપજ છે. વિદ્યા જોકે હીલો છે જે મનુષ્યને ખાઠામાં પડતો બચાવી લે છે, તથા પત્થર સાથે તેનું માથું કુટાવા દેતી નથી. જોકે વખત મનુષ્ય, રાક્ષસ અને દેવતા એ ત્રણેએ મળીને જ્ઞાની પાસે ગયા અને ઉપદેશ આપવાની પ્રાર્થના કરવા લાગ્યા, જ્ઞાણીએ ત્રણેને ‘દ’ એ જોકે અક્ષરનો મ-ત્રોપદેશ આપ્યો. જો સાંજળાને મનુષ્યે ‘દ’ નો અર્થ જ્ઞાન કરવું જોવો થયો, રાક્ષસો ‘દ’ નું પ્રયોજન ‘દયા’ સમજ્યા, અને દેવતાઓએ ‘દ’ નો અભિપ્રાય ‘દમન’ ઇન્દ્રિય નિશ્ચદ કરવો એ માન્યો. આ ‘દત્ત, દાસ્ય, દયધર્મ’ ના ઉપદેશનો ત્રણેએ સિદ્ધાન્તરૂપથી ઝંઝીકાર કરી દીધો. કેમકે જ્ઞાણી વિદ્વાન હતા, અતઃ તેમને ત્રણેનો ઉપકાર ન કંઈશારથી તથા સંદેહમાં કરી દીધો. કહ્યું પવુ છે—

સત્યં તપો જ્ઞાનમહિસતા ચ

વિદ્યાર્ણવામં ચ સુશીલતા ચ ।

જ્ઞાનિ યોઃ ધારયતે સ વિદ્વાઃ

જ કેવલં ચઃ પઠતે સ વિદ્વાન્ ॥

જે સત્ય, તપ, જ્ઞાન, અહિંસા, વિદ્યાનોને નમન અને સુશીલતાને ધારણ કરે છે તે પંડિત છે, કેવલ પુસ્તક વાંચવાપાઠાજ પંડિત નથી કહેવાતા.

જેવી ટીકે—

મૂર્તિચિન્હાનિ પઠિતિ ગર્વો હ્રવચનં મુરે ।

વિરોધી વિપવાદી ત્વ ક્રુત્યાક્રુત્યં ન મન્યતે ॥

જે શર્વ, હ્રવચન, વિદોષ, કટુભાષણ, ક્રુત્યાક્રુત્ય વિચારથી રહિત હોય છે તેને મૂર્ખ સમજવો નેહજો. કોઇ કવિએ બહુજ ઠીક કહ્યું છે—

મૂર્ત્યુલ્લભમં મજત્ત્વ ક્ષમતે મૂર્ત્યે ચાટ્ટી ગુણા ।
નિશ્ચિન્તો વદુભોજનોઽસિમુદ્રો રાત્રિન્દિવા સ્વપ્નમાક્ ॥
કાર્યકાર્યવિચારણાન્ધવધિરો માનાપમાને સમ ।
પ્રાયેણાઽઽમયવર્ગિતો દૃઢવપુર્મર્તે સુચં જીવતિ ॥

હે કુકુદિ મનુષ્ય ! તું સુખી બન્યો રહે. કેમકે તેની પ્રાપ્તિમાં કોઇ સુશકેલી નથી. સુખતામાં આઠ ગણ રહે છે, જોકે તો નિશ્ચિન્તતા, બીજી વધારે ખાવાની આદત, ત્રીજી બકવાલી હોતું, ચોથું રાત દિવસ સુઈ રહેવું, પાંચમું શું કરવું ઉચિત છે અને શું કરવું અનુચિત તેના વિચારમાં આંધળી રહેવું અને બહેરાની માફક શૂન્ય રહેવું, છઠ્ઠું માન અને અપમાનમાં બરાબર સરખા રહેવું, સાતમું ઘણે બાજે રોગરહિત રહેવું અને આઠમું મોટા તાબ બન્યા રહેવું.

અહિં સુખી પંડિત અને સુખતા વિષયમાં વિચાર થયો. આ કથનને કોઇ છુદ ન માને, મનુષ્ય સુરો નથી, પરંતુ તેની સુરાઈ માત્ર અમને પ્રતિત થાય છે. જે વ્યક્તિ, જીભઠારીના, જ્ઞાનને

પ્રાપ્ત કરીને પેતાની સુખતાનો ત્યાગ કરીને નથી
તે આવી ફરિયાદ કરવાને યોગ્ય છે જ

જે શેઠ ધર્મને મજબૂતને પોતાતા પ્રદુષી નથી
સમજતો, જમીનદાર ધર્મને જેતુતોની સાથે
જાદમીયતાનો બ્યવહાર કરવા નથી હિંમતો,
જમારા મનથી તો તે પણ મુખ છે જે મદુતના
પદને તો પ્રાપ્ત થઈ ગયો, પણ કોઈને કંઈ જામ
જાવી શકતો નથી, મદીરના પુલરી જઈને હાથ કરીને
જે પૂજા અર્ચના સાધારણ મંત્ર અને કામ કરવાની
રીતથી કોઈકદમ શુન્ય છે, તે અવરજ મુખ છે કોઈ
બ્યજિએ ધર્મશૂરના સ્થાનને એટલા માટે કબજ
કરી રાખવું કે તે જુતપૂર્વ ધર્માચાર્યનો શિષ્ય થા
પુત્ર છે, તો તે આર્ય જાતિને માટે સર્વથો કોઈ
વજાજ દુર્ભાગ્યની વાત છે જે આસનથી મોટી
શકાઓના સમાધાનની જાણ દોય, જે જાગીએ
સદાચારની શિક્ષા આપવાને માટે સ્થાપિત થયેલી
દોય, તેને કદાચ કોઈ મુખ અધિષ્ઠિત કરી હો તો
તે કેટલા દુષ્કર્મની વાત છે ?

અમને માલુમ છે કે અમારી આ સાચી વાતોને
શક્તિશાળી મુખ અને તેમનો પોષ્ય જગ આશિષ
ગણી કાઢ્યો અથવા તેઓ અમને ખડિતાઈનો
અર્થ કરનારા અભિમાની પણ જાતવી શકે છે
કોઈ ચાહે તે કેમ ન કરે, અમે તો અમારું
કર્તવ્ય પાલન કરવા હિંમતીએ છીએ અમારા
ઉપદેશરૂપી ચક્રમા પોતાની અન્દકાને સર્વત્ર
ફેલ જશેજ, કોઈ પણ જગ્યા તેનાથી બચી જઈ
ચાલી નથી, એટલા માટે ચાલકની પ્રયત્નતા અને

ચોરાના શેષની અમને જરા પણ પરવાદ નથી
સારા ભુરા, સત્ય અસત્ય, પાપ પુણ્ય, મુખ દુષ
વિગેરેનું સંદેશ સાથે રહેવું એ સારિક નિયમ છે
એટલા માટે વિધાતાની સદિમા રહીને અમે
પ્રસન્નતા અને શેષને કહી પણ અલગ અલગ કરી
શકતા નથી જ્યાં એક છે ત્યાં બીજું રહેશેજ,
અન્નેની તરફધ્યાન રાખતા પોતાનું કામ કરવાજ
રહેવું પડશે અમારા કથનથી યમોક્તિ સન્નમોને
કદ ન થવું જોઈએ, કેમકે અમે તેમની આદીબી
હાથ કરવાની જરૂરથી આવી તીવ્ર જમાલોચના
કરવા માટે પ્રવૃત થયા નથી જે પોતાના સ્વરૂપને
અનુરૂપ અને પોતાના પદ પ્રવિરને અનુકુલ
પોતાના કર્તવ્યનું પાલન કરવામા પ્રવૃત છે તેમનું
કોઈ કંઈ કરી શકતા નથી તેઓ સદા સર્વકા
અને સર્વત્ર નિભયજ છે

સન્યાસી ધર્મ પ્રધાન છે, તેને ધર્મના વિષ
યમા વિચાર અને પ્રચાર કરવાનો અધિકાર આત્માર્ય
ચરણ શ્રી રાજ જગવાન દ્વારા પ્રાપ્ત થયેલો છે
વેદિક કાલના સન્યાસી અલેને જડવત મુકવત
ચરણ શ્રી રાજ શકશચાર્યના સન્યાસી
યોગ અને ઉપદેશને માટેજ અવલંબિત થયા છે
એટલે તે કોઈ સ્થાનના અધિકારીને દુરાચારી અને
મુખ જોઈ તેને સહન કરી શકતા નથી, ચા તો તે
પોતાની સ્થિતિ મુધારે કે જે ચલન કરવાથી સહ
વિત છે અન્યથા તે પદ અથવા સ્થાનને ખાલી
કરી દે કે જે તેની અયોગ્યતાથી અનુપયોગી બની
રહ્યું છે

રણભૂમિમાં ગીતા ઉપદેશ-સંભવે છે

(લેન્ડ—સ્વામી શ્રી શિવાનંદજી યોગિરાજ, વૈદ્ય, ધન્યન્તરિ શુક)

ગીતાનો ઉપદેશ ઘણાજ ગહન છે, તેનું પ્રતિ-
પાદન કોઈ શાન્ત વાતાવરણવાળા પ્રદેશમાં જ થયેલ
હોવાનો અધિક સંભવ છે, એમ સમજીને આજ-
કાલ ઘણાંએ લોકો એવો પ્રશ્ન કર્યો કરે છે કે—“શું
આ પ્રકારનો ગીતા જેવો લાંબો પહોળો ગંભીર
ઉપદેશ બરાબર યુદ્ધના સમયે થઈ શકે છે ?”
અર્થાત—જ્યાં લાંબો મનુષ્યો એકઠા થયેલા હોય,
જ્યાંનાં શસ્ત્રાઓની ચમક ઝમકથી અંધો અંધાઈ
જતી હોય, જ્યાં એકઠા થયેલા લોકોના હૃદયમાં
જીવ આપવા લેવાની, લોહી વહેવરાવવાની
તથા મરી મટવાની ભાવનાઓ જોતજોત થઈ
રહી હોય અને જ્યાંના વિર યુદ્ધોની આંખોમાંથી
લોહી જેવી લાલ લાલ ચીનગારીઓ નીકળી રહી
હોય તેવા સ્થાન ઉપર ‘ગીતા’ જેવા ઉચ્ચ વિજ્ઞાન
અને ગહન વિષયના સંવાદનું કહેવું સાંભળવું કેવી
રીતે સંભવી શકે છે ?” આ પ્રકારની શંકા અમે
ખાસ કરીને રાજ સાંભળતા આવીએ છીએ. આજ
અમે મહાભારત મીમાંસા અનુસાર એને ઉત્તર
‘ગીતાધર્મ’ ના વાંચકો સમક્ષ ઉપસ્થિત કરવા
ચાહીએ છીએ.

અમે એમ ધરીએ છીએ કે પ્રાચીન ભારતીય
આર્યોની સામાજિક પરિસ્થિતિનો વિચાર કરવાથી
યુદ્ધની શરૂઆતમાં બંને સેનાઓની વચ્ચે આ
પ્રકારનો સંવાદ અસંભવિત જણાતો નથી. મહા
ભારતના યુદ્ધને સમયે બંને પક્ષોની એકઠી અને
સામસામે ઉભી રહેલી સેનાઓના વિષયમાં મનમાં
જે જે વાસ્તવિક કલ્પના કરવામાં આવે,

તો એ કોઈ પણ રીતે અસંભવિત જણાતું નથી કે
બંને સેનાઓના મધ્ય ભાગમાં શ્રી કૃષ્ણ અને
અર્જુન રથ બિપર ભેઠા ભેઠા વિચાર કરી રહ્યા હતા
કે ‘યુદ્ધ કરવું બાજબી ગણાશે કે ગેરબાજબી ?’
એ તો બરાબરજ છે કે બંને સેનાઓમાં અંદર
અક્ષોહિણી સેના (અધિકાંશ ઐતિહાસિકોના
મત પ્રમાણે ખાવન લાખ મનુષ્યોની) હતી. એ
સેનાઓ લંબાઈમાં યુદ્ધ ભૂમિ ઉપર ફેટલાય માઈલો
સુધી ફેલાયેલી હશે, બંને સેનાઓ એક બીજીથી
આશરે એક માઈલ કે અરધા માઈલના અંતર
ઉપર ઉભેલી હશે. મહાભારતના સમયે ધર્મ-
યુદ્ધની નીતિ પ્રચલિત હતી. એ સંભવ નહોતો
કે કોઈ કોઈના ઉપર અસાવધાનીની અવસ્થામાં
શસ્ત્રાશ્રનો પ્રયોગ કરે, એમ કરવું એ તે
સમયમાં કાયરતા ગણાતી હતી. અગર અર્જુન-
નો રથ કંઈક આગળ વધીને બરાબર મધ્યમાં કોઈ
એવા સ્થાન ઉપર ઉભો રાખવામાં આવ્યો હોય કે
જ્યાંથી બંને સેનાઓ નજર પડી શકે, તો એ
વાતમાં કોઈને નવાઈ પામવા જેવી શું, વસ્તુ હોઈ
શકે છે ? શ્રી કૃષ્ણ અને અર્જુનનો સંવાદ એક
કલાક કે સવા કલાકથી અધિક સમય પર્વત નહિ
ચાલ્યો હોય, એ વાત તો અનુભવસિદ્ધ છે કે જે
લોકો વર્તમાન સમયમાં પ્રતિજિન ગીતાને પૂરા
પાઠ કર્યા કરે છે તેમને કોઈ વધારે સમય લાગતો
નથી. જ્યાં સુધી શ્રી કૃષ્ણ અને અર્જુનનું શંકા સમા-
ધાન ચર્ચા રહ્યું, ત્યાં સુધી બંને સેનાઓના પ્રબંધ
એક બીજીની સૈનિક સ્થિતિનું અધ્યયન કરી રહ્યા

હોય, એમ પણ માનવાની આવશ્યકતા નથી કે બન્ને સેનાઓના સેનાપતિઓ અર્જુન અને શ્રી કૃષ્ણના સંબાધણી રાહ જોતા ઉભા રહ્યા હોય, કેમ કે એટલા ઘોડા લશ્કરની યોજના કરી લેવી એ કાંઈ એક બે મિનિટોનું કામ નથી. એ સિવાય ઐતિહાસિક લઠાઈઓથી એ પણ જણાઈ આવે છે કે સેનાના સેનાપતિઓ પોતપોતાના સૈન્યોની રચના કરતી વેળાએ એક બીજાના સૈન્યની ઘણીજ ભારિક તપાસ કરવામાં ફેટલાય કલાકો વિતાવી હોતા હોતા શ્રી કૃષ્ણ અને અર્જુનની વાતચીત બીજા યોદ્ધાઓના સાંભળવામાં આવતી નહોતી અર્થાત્—કહેતું પડ્યું છે તે લોકોનું ધ્યાન એમના લશ્કર નહોતું સૌ એવાજ વિચારમાં મગ્ન હોતા કે અમારું આ જીવન સ કંઈ ફેલી રીતે દૂર થાય, મતલબ એ કે કુદ ભૂમિમાં વિસ્તાર, પોતપોતાના સૈન્યોની રચના, તેમનું નિરીક્ષણ અને ધર્મયુદ્ધના નિયમ ક્રત્યોદિ વાતોનો વિચાર કરતા એજ સિદ્ધ થાય છે કે ભારતીય યુદ્ધને પ્રથમ દિવસે કુદ ચડે થતા પહેલાજ શ્રી કૃષ્ણ અને અર્જુને તત્ત્વજ્ઞાન વિષયક ચર્ચામાં કલાક કે સવા કલાક વ્યતિત કરી દીધા તો તેમાં કાંઈ અસંભવજેવું નથી, અને એ રીતે રણભૂમિ માં ગીતાનો ઉપદેશ કહેવાવો એ સંભવિતજ છે.

વારૂ, અમે માની લઈએ કે ગીતા જેવા આટલા ઘોડા સવારનું કુદ ભૂમિ ઉપર કહેવાનું સંભવિત હતું, તો પણ આ તત્ત્વજ્ઞાન પ્રધાન દાર્શનિક સંભાષણ મહાભારતનું કુદ ચડે થવાના બરાબર અહીંના સમય ઉપર થવાનું ફેટલું ફરજી બાજબી માની શકાય છે, અર્થાત્ હવે અહિં એ પ્રસંગ મહત્વનો અને વિચારવા જેવો છે કે ભગવદ્ ગીતા એટલે કે તેમાં પ્રતિપાદિત વાદવિવાદ યુદ્ધને સમયે પ્રાસંગિક છે કે નહિ ?

આ વિષયમાં અમારું કહેવું એમ છે કે બ્યાસજીએ આ તત્ત્વજ્ઞાનને મહાભારતમાં ઘણીજ કુશળતા પૂર્વક યુદ્ધના પ્રારંભમાં જ્યાં આપ્યું છે જ્યાં લખ્યું અનુષ્ટી મરવા મારવાને તૈયાર થયેલા હોય, ત્યાં સંભવ છે કે ધાર્મિક દૃઢચના અનુષ્ટીને ખરેખર મોઢું ઘર્ષ જાય, તેથી એમાં આશ્ચર્ય ન થાય—એ તોને એવો સંદેહ ઘર્ષ જાય કે હું જો કાંઈ કરી રહ્યો છું તે હથિયત છે કે અનુચિત ? જ્યાં સિવિલ વોરની માફક આપસમાં એક બીજાનું તથા કાપવાનો પ્રસંગ આવી જાય, જ્યાં શિખ અને દ્રોણ જેવા પુણ્ય પિતામહ અને શુરૂના તથા શલ્ય જેવા સર્વમાન્ન વોના માર્ગ જવાનો પ્રસંગ ઉપસ્થિત ઘર્ષ જાય, ત્યાં સ્વજનોના નાશ થવાને કારણે, ‘ધર્મશીલ’ કહેવાવાને કારણે, અર્જુનના મનમાં આવા પ્રકારનો મોઢું ઘર્ષ જવો આવત સ્વાભાવિક છે કે ‘ભેલોશ્વરી’ અને હકાલ્લી દુષ્ટોધિનના ધ્યાનમાં એ વાત નથી આવતી તો કઈ હરકત નહિ, પરંતુ—અમારે તો એ વાત જરૂર સમજા લેવી જોઈએ, કેમકે અમે ધર્મશીલ છીએ’

જ્યારે બરાબર યુદ્ધને સમયે અર્જુનના આવા ભાવ યથા યથા ત્યારે તે સમયે ભગવાનનું એ જરૂરી કર્તવ્ય હતું કે તેઓ અર્જુનને અસામયિક વ્યાખ્યાન હમાં પડીને કર્તવ્યચ્યુત થયો જાયવે, એવા પ્રસંગેજ તત્ત્વજ્ઞાનની ચર્ચાને મહત્વ છે, જ્યારે રાજાને પ્રદોષ હોય ત્યારેજ એ જોષાપચાર કરવો જોગ્ય ગણાય નિરોગ અવસ્થામાં આરામ પુરસ્કી ઉપર લાખા પગ કરીને પડી રહેલા અનુષ્ટી સામે ઝોષ ફિજોના શુભેનું વર્ણન, તેની તે વિષયની જ્ઞાન રહિત કારણ બંધે બની શકે પણ તેનો સ્વર્ગ પ્રયોગ તો રૂબાવસ્વામાંજ કહેવાયી ઘર્ષ શકે છે.

એવીજ રીતે અર્જુનને કુદના પ્રારંભમાં

જે જરા સાવધાન થકને નાવ ચલાવ અને શીઘ્ર દિનારે હોવાથી દે, હું તને ચણેટ ઇનામ આપીશ. આ પ્રમાણે જ્યારે તે નદીના ઉછળતા તરંગો જોઈને ધણે ગભરાઈ ગય છે ત્યારે નાવિક કહે છે—મહારામ, આપ શા માટે આટલા બ્યારુણ થાઓ છો, આ પવન તો આપણને અનુકૂળ છે તેથી આપણે હાથાં કરતાં મણા વહેલા ગતવ્ય રયણે પહેલી બર્ષણ, દેવતા આપણા ઉપર પ્રસન્ન છે, તેથીજ આપો અનુકૂળ વાયુ મળી રહ્યો છે, જો તેમ ન હોત તો પાર જવું મુશ્કેલ હતું. હવે આપ નિશ્ચિત રહો, બીક લાગતી હોય તો મુઈ જાઓ. નાવિકની સલાહ માનીને તે સુખચાપ સુઈ જાય છે, અને સપાટાગંધ ગતવ્ય રયણે પહેલી જાય છે. તમે લોકો એજ પ્રમાણે અચાનક ડુઃખથી કરતા રહો છો, તમે નથી જાણતા કે એ ડુઃખ, નાવને અનુકૂળ વાયુ સમાન વમાઈ સલામત છે. કારણ કે પૂર્વ પ્રારબ્ધ જો આજ જન્મમાં જોગવી લેવાય તો પછી આજે કાંઈ બાકી ન રહે. આ પ્રકારથી ડુઃખ, સંસાર સમુદાને જીતી જઈ કરવામાં સલામતાજ કરે છે. જો એ ડુઃખ ઉપસ્થિત ન હોય તો ગતવ્ય રયણે પહેલામાં પેટલાએ જન્મોનું અંતર પડી જાય.

તેથી અજવાન કહે છે કે—સત્ત્વ સમાવિષ્ટ ત્યાગી એ છે કે જે અનુકૂળ કર્મોના દેવ કરતો નથી. જે પ્રમાણે સહામ અને નિવિદ્ધ કર્મો બંધનકારક હોવાથી અનુકૂળ કર્મો છે, તેજ પ્રમાણે પૂર્વ જન્મનાં સંચય કરેલાં પ્રારબ્ધનાં મુખ ડુઃખ પણ અનુકૂળ કર્મો છે. તેથી એવાં કર્મોને ખોટી ભાવનાથી નહીં પણ અનાયાસ નિવિદ્ધાર ચિત્તથી ત્યાગી દો અને પૂર્વનાં કર્મો જીતે જોગવવામાં કાંઈ દુર્ભાવ કે હવે વિચાર ન માત્રો. અગર તમે એવા ત્યાગી થશો તો મૃત્યુને પણ જીતી લેશો. હનુમાનજી, કૃપાચાથ અને વિભીષણ આદિ તેથીજ ‘ચિરંજીવ’ પ્રસિદ્ધ છે કે મુખ ડુઃખમાં સમાન રહીને નિષ્કામ કર્મો કરતા પ્રભુના અદેશક કૃપાભિલાષી થઈ ગયા, તેથી

તેમને મૃત્યુએ બક્ષીસ આપેલી છે. એજ પ્રમાણે વાસના રહિત નિષ્કામ કર્મોના બળ ઉપર એ બ્રાહ્મણનાથી મૃત્યુને પણ હારીને એસી રહેવું પડ્યું, તેણે મૃત્યુએ માર્યા પટકર્ષ્યા, પણ કાંઈ વળ્યું નહીં. એ મૃત્યુને પણ હરાવનારનો ક્રિતિકાસ આ પ્રકારનો છે.

એક સત્યપુર નામના નગરમાં પરમ ધર્માત્મા આકાશજી નામનો બ્રાહ્મણ રહેતો હતો. સદાએ ક્યાન અજન્મમાં તત્પર રહેવું અને બાકીના સમયમાં પ્રભુઓના હિતમાં લાગેલા રહેવું, એ તેનું સ્વભાવસિદ્ધ કામ હતું. એવી જીવનચર્ચા વિતાવતાં મણે સમય નિકળી ગયો. તેની આજળ પાછળ કાંઈ નહોતું. તે એકદેજ નૈદિક વર્ષા અગર વાનપ્રસ્થ રૂપથી પોતાના નિષ્કામ વાસના રહિત અનુજાનમાં દ્રઢતાથી લાગ્યો રહેતો હતો. આ પ્રમાણે રહેતાં રહેતાં યુગ પૂરો થવા બાકી પછ તેનો વાળપણ વિકાસ થયો નહીં. એ દેખીને મૃત્યુને હર્ષ થો મૃત્યુએ આવતી હતી. પણ એને એટલો વખત નહોતો કે આ બ્રાહ્મણને સાફ તે પ્રથન કરી શકે. મૃત્યુને એ બધું અટકવા લાગ્યું કે, એ બ્રાહ્મણ પોતાના જેવો મૃત્યુ સુરક્ષિત લોકોનો સંપ્રદાય વધારીને પોતાના કામમાં વખતે ખસેલ હર્ષુ કરો. મૃત્યુથી એ બ્રાહ્મણ પોતાની પક્ષ બહાર રહે, એ વાત સહન થઈ શકી નહીં. એટલે તે ખિન્ન થકને વિચારવા લાગ્યું—હું આકાશ છું, કમથી સર્વ પ્રાણીઓનો સંહાર કરવાને શક્તિમાન છું, તો પછી હું આ બ્રાહ્મણ બ્રાહ્મણનો પણ કેમ કાળાંજો ન કરું? જેમ પરધર ઉપર તલવારની ધાર કુંકિત થઈ જાય છે, તેમજ મારી શક્તિ તેના ઉપર કુંકિત થઈ જાય છે. તો પણ આખરે તે મત્તલોહનો મનુષ્ય તો છેજ, તેથી મારો માસ ખનવાનો ધર્મ તો તેનામાં હોવાજ જોઈએ, એવો વિચાર કરીને મૃત્યુ, નિરર્થક અને નિષ્કામ કર્મો રચેજ ત્રિર દુઃખોથી વેદિત તેના સત્યપર નામક નગરમાં જઈ પડેજ. કારણ કે કાંઈ પણ અભિ-

માની પ્રથમ પોતાના કર્મ કરવાના ઉદ્દેશને લાગ કરતા નથી. તે પછી મૃત્યુ ભવિષ્યકાલ વિષયના નમરમાં પેસવાનો પ્રયત્ન કરવા કારણે કે તરતજ સમાધિમાં ઉપસ્થિત બનનાર વિભીને ઠાળવાને કારણે દિગ્મન્થ રૂપથી રચાવિત પ્રલયાગ્નિ મૃત્યુનો ભક્ષ કરવાને ભૂલથી કહેશે. તો પણ કિમત કરીને મૃત્યુ, અગ્નિ બ્રાહ્મણોની પર-પરાને ભેદીને ભેજ તેમ કરીને અંદર પેસી મૃત્યુ અને આકાશને રેખીને મલપૂર્વક વિશરાળ હાથે પકડવાની ચેષ્ટા કરવા લાગ્યું. પણ કહાણીક આદમી ગમે તેટલો ભગવાન દોષ તેા પણ સંકરપથી રચિત જુતપથી કરીને તેને પકડી કહાણો નથી, તેવીજ રીતે હાથે વિવચાન એ આકાશને મૃત્યુ પોતાના અર્ધજન હાથથી પણ પકડી કહ્યું નહીં. તેથી હતાક વધને તે પાછું રૂડું. અને સંકરને દૂર કરનારા પોતાના પ્રજા મમરાજને કારણે આવીને પુછ્યું કે—હે વિભો, હું આકાશજ આકાશને બ્રાહ્મણને કયા કારણથી સમર્થ નથી ?

મમરાજે કહ્યું—હે મૃત્યુ, હું એકલો પોતાના ભગથી ડાહ્યે પણ મારવાને સમર્થ નથી. અને હું મારે છે, તેને વાસ્તવમાં તેનાં કર્મજ મારે છે. તારી અકસ્મિત્તુ બીજું કંઈ કારણ નથી. તેથી તેને એ હું મારવાનું આવરણ સમજવું હોય તો મલપૂર્વક તેનાં કર્મોની યોગ કર. તેમની મદદથી હું તેને કહેલાઈથી મારી કહીશ. પછી મૃત્યુ તેનાં કર્મોની યોગમાં તત્પર વધને સમસ્ત દેહ દેહાંતર, દિવ દિગંતર, તણવ, નરિએ, વન, ભંજન, પર્વત, સમુદ્ર તીર, હીર હીપતર, નગર, કમ્પા, માધ, શબ્દ અને સર્વ રેખીસ્તાતોનાં મરું મારું મરું. તે જાદુ જાદુ પ્રદેહ ભેગને નહીં પદેદ એ જાણે તે પદેલાં કયા દેહમાં કેવા કેવા કર્મ કરેલાં છે તે ભેગને કાર. આ કામ કરવામાં પોતાનું આવરણ કલ મારણ કર્મમાં મેંકામ પડવાથી તેને પછી તકલીફ નેહી પડી, તો પણ મેંકામ જુમળમાં જુમતાં પણ હવથી મારુને

આકાશજ વિષયનું કંઈ પણ મારક કર્મ હાથ લાગ્યું નહીં.

પછી સર્વ કર્મોને ભલુનારા મમરાજ પાસે આવીને મૃત્યુને પુછ્યું (કારણ કે સંકટ ભગવાથી ભાળકને માતા સજાન, મૃત્યુને પોતાના પ્રજાનોજ આશ્રય દોષ છે) કે—પ્રભો, આકાશજ વિષયનાં કર્મ કયા છે તે મને બતાવો આ પ્રશ્નને મણો મળ વિચાર કર્યો પછી મમરાજે ભવાજ દીધો—હે મૃત્યુ, આકાશજનાં પોતાનાં કાંઈ કર્મ ઉપ નહીં એ પોતાને મારુ કંઈ પણ કર્મ કરતોજ નથી તેમજ કાંઈનું કાંઈ કે કાંઈનું જોડું ધન્યવેદા પણ નથી ભલે કે તે શુદ્ધ આકાશમાંથીજ ઉત્પન્ન થએલો દોષ એમ લાગે છે. તે એટલો તો નિર્મળ છે કે તેના મરણને કારણે મૃત્યુને મદદ કરનાર અભિમાન, રાગ, દેવ આદિ કાંઈ ભલતન કર્મ પણ નથી, અને તેના સંચિતો, યાતની તથા આશ્રિએના નીજના ભક્ષાથી હવ મર મરે છે અને તેનેા પરામ (પરમાર્થ) શુભ પ્રારબ્ધ, તેને મારવામાં મદદ નથી કરી કહ્યું. તેથી હે મૃત્યુ, હું તેના ઉપર આક્રમણ કરવાને પ્રયત્ન કરી દે, ભેરી રીતે કાંઈ પણ અગ્નિ આકાશને પકડી કહતી નથી, તેવીજ રીતે હું કર્મોથી અગ્નિ આ આકાશને મારી કહીશ નહીં. મમરાજનાં વચન સાંભળીને મૃત્યુને પછી નરાઈ હાવી અને તે ક્રોધ વધને પોતાને ઘેર પાછું ગરું આ ઉપાખાનનું એ તારવ' કે કે, મૃત્યુ દુન્યને પોતાને કર્મ ધમ્મનારા ભગાનીજ મારુનેા માસ અને છે, તત્વગાની નહીં, તેમજા તો આકાશજ દીમની પોરે વિભાવ રૂપરૂપાજ રિષત રહે છે એવાનેજ સાચા હાથી પુરો કહેવન છે. તેમજા તે નાન રૂપન મુલિયા કર્તવ્યકર્તવ્યનેા મરામર નિમ્મ કરી સે છે. કર્મ કરવાની રીતેય સંભવજ તેમને કાંઈ પણ વાતેા મરેક રહેતા નથી. ને કરે છે તે આમ વિરાહથી કરે છે, કર્તવ્ય મુલિયા કરે છે, નિ રાંક મધને હવન રીતિથી કરે છે. એથી, કિન સંકલ અને લવ કચારિદ એ પણ

ગીતાધર્મ મેળવવાનું ઠંકાણું.

- ૧ મુંબઈ, ગીતાધર્મ, આંશીસ શેઠ જનલાલ નાગદાસ, મુલજીભાઈ ખીલ્ડીંગ, સી. ૦ પી. ૦ ટેક.
- ૨ મુંબઈ, શ્રી નગીનદાસ કૃલચંદ યિનાઈ, ચીનાઈ ખીલ્ડીંગ, મસજીદ અંદર રોડ.
- ૩ મુંબઈ, આર. મદનલાલ ની, કંપની ઈશ્વરનીવાસ ખેતવાડી ગલી નં. ૫ સેક્ટર ૨૦૬.
- ૪ મુંબઈ, શાહ મુદરજી ભગવાનજી, ડ્રો. મગનલાલ, મુદરજી, માધવબાગ દરવાજા સામે લાલબાગ.
- ૫ અમદાવાદ, ગીતામંદિર, આરટીડીયા દરવાજા બહાર. ગીતા મંદીર, રોડ.
- ૬ અમદાવાદ, ડૉ. નવનીતરાય પુરષોત્તમદાસ બામ, ગીતા નિવાસ, સારંગપુર, તથીવાની પોળ.
- ૭ અમદાવાદ, પારી લાલભાઈ, નરસીભાઈ, શ્રોફ બજાર, માણેક ચોક.
- ૮ વડોદરા, મણીભાઈ જસભાઈ દેસાઈ, મુલતાનપુરા,
- ૯ વડોદરા, સ્વામી આત્માનંદજી મહારાજ, ગીતામંદિર, ગોપાજેટ રોડ.
- ૧૦ વડોદરા, જગજીવનદાસ દરગોવિંદદાસ શુકસેહર, રાવપુરા રોડ, લીમડાપોલને નાકે.
- ૧૧ ખંભાત, શા. મંજલાદાસ. મગનલાલ માસ્તર, વડા વામુદેવની પોલ.
- ૧૨ સુરત, લાનુરાંકર દરજીવનશર્મા વિઠ્ઠલવાડી નાજાવટ.
- ૧૩ આણંદ, પટેલ ગોરધનભાઈ શામલાદાસ માસ્તર
- ૧૪ ભરૂચ, મહેતા, નાથાલાલ કાલીદાસ. મહમદપુરા.
- ૧૫ ભરૂચ, હીરાલાલ કાંદારલાલ, મેનેજર, યતોદય પ્રેસ.
- ૧૬ નડીયાદ, અંબાલાલ કાઠવાભાઈ, માસ્તર, લખાવાડ.
- ૧૭ દાહોડ, ભટ્ટ સોમેશ્વરભાઈ રાજરામ.
- ૧૮ નવસારી, રોડ દરગોવિંદદાસ, કે. મોદાબજાર.
- ૧૯ રસોઈ, શેઠ સુનીલાલ ગિરધરલાલ જીવનલાલ.

- ૨૦ મહેમદાવાદ, જોશી, ગોરલાલ જગનલાલ, ઘીવા
- ૨૧ પેટલાદ, કાછિયા મોતીભાઈ જેઠાલાલ, વઢુના ૫
- ૨૨ પાટણ, પરસોત્તમદાસ, મનસુખદાસ, બબરમા
- ૨૩ ગોધરા, આચાભાઈ, શ્રીરામકૃષ્ણ આંધલ મિલ્સ
- ૨૪ સંખેડ, બક્ષી જેઠાલાલ કેશવલાલ, બબરમા.
- ૨૫ કાંચલી, અમૃતલાલ કાલીદાસ કંઠર.
- ૨૬ રાજકોટ, એમ. જી. કોટયા, ટાઉનહોલ પાસે, રમેશ રુડીયો.
- ૨૭ રાજપીપલા, ભગવાનજી રામદાસ, રેશન રોડ.
- ૨૮ ઉમરેઠ, ભટ્ટ સોમેશ્વરભાઈ રાજરામ, ચોકસી પોળને નાકે.
- ૨૯ જુજ, ડૉ. બી. એન. ડાયા, ડાયા હોમિયોપેથિક ડિસ્પેન્સરી.
- ૩૦ બાબવા, શેઠ હીમતભાઈ રણછોડદાસ કંઠર.
- ૩૧ અમરેલી, મુલરાંકરભાઈ જગજીવનદાસ, ત્રિવેદ નાગનાથ દરવાજા.
- ૩૨ કંલોલ, ચીમનલાલ ત્રીકમલાલ શાહ, રેટરડીપ ધી હોટલાલ મિલ્સ, લીમીટેડ.
- ૩૩ ભાવનગર, શેઠ મગનલાલ નાનાભાઈ મોતીબાગપાસે
- ૩૪ ધર્મજ, મણીભાઈ, જી. પટેલ. ગિરધર જીવન.
- ૩૫ માંડવી (કચ્છ) શેઠ મયુરાદાસ પુરષોત્તમદાસ કચરાણી
- ૩૬ ધોલકા, ત્રીકમલાલ એ. વડોલ.
- ૩૭ Mombasa.—Chunibhai Magganbhai Amin C/o The Bombay. Trading Stores. P. o. Box. No. 354.
- ૩૮ Johauuesburg—Raojeebhai. Chuunibhai. P. o. Box. No. 4838.
- ૩૯ Johannesburg—Ashabbhai Gordhanbhai. patel. P. o. Box. No 6220.

ઉપર લખેલાં સ્થળોએ સેનાલાલ ગીતાપ્રેમી ભાઈઓ કામ કરે છે જેથી આદક ભાઈઓને હુમારી આસ વીનંતી છે કે આપ લવાજમ તેમને ત્યાં ભરી દઈ જાન્યુઆરીના પહેલો અંક (ગીતા ગો. ભાગ, ૫, નું પુસ્તક) તેમને ત્યાંથી મેળવી લેશે જેથી આપના તેમ કાર્યાલયના ખર્ચમાં મહાન ઘટ્ટો અને આપને સારી હાલતમાં ત્યાંથી પુસ્તક મળશે.

વ્યવસ્થાપક—
ગીતાધર્મ, કાથી.

ગીતાના યોગ

શ્રીમદ્ભગવદ્ગીતામાં જ્ઞાનયોગ અને કર્મયોગ પ્રધાન છે. મનુષ્યશરીર સ્વભાવથી જ કર્મશીલ છે એટલા માટે કર્મયોગીયોને માટે ગીતાનું ગુરુ છે, પણ એ કહેવામાં આવે છે ગીતા જ્ઞાનિયોની ગીતા છે, તો પણ અનુચિત નથી.

જો મહર્ષિ વ્યાસજીએ ગીતા દ્વારા જ્ઞાનયોગ, કર્મયોગ અને ભક્તિયોગને કર્મયોગ સહ શ્રીન, સુરે માગ બતાવ્યો છે, તેજ પ્રાત સ્મરણીય વ્યાસજીએ શ્રીમદ્ભગવત દ્વારા ભક્તિયોગને અનિષ્ટ રૂપથી બધારે પરિપુષ્ટ કરતાં તેના નિર્મુલ્ય માર્ગ બતાવ્યો છે. જ્ઞાનયોગ, કર્મયોગ અને ભક્તિયોગના ઉપદેશક એક જ આશાસક છે, એટલા માટે આ ત્રણે યોગોનું એક જ હૃદય ય—બુદ્ધા બુદ્ધા મર્ગો દ્વારા શ્રી ભગવતની આજ્ઞાનું પલિત કરવું.

ભગવતે જોયે કહેવ માં આવે છે ગીતા વાચનાર અને સાંભળનાર સર્વજન ભલું જ મળી રહે છે, તો એ કથન અનુચિત થશે. ખરેખર તો ગીતા વાંચી સાંભળીને જો કર્મબંધનથી છુટી નાથ જો, તેઓનું વાચવું સાંભળવું સાર્થક છે.

આજે જે રહસ્યગુપ્ત થઈ ચાલી રહ્યું છે. અન્ય યુગે શ્રીએ એટલા માટે ઘેટી છે કે એમાં કર્મયોગની પ્રધાનતા છે. આજકાલ જો કર્મની કસોટી પર ખરા હતાં છે તેજ મન્ય છે.

—સ્વામી વિદ્યાનંદ.

શ્રીમત્ ૫૦ ૫૦ ૫૦ જે ૦ ગી૦ શ્રી ૧૦૮ ભગવદ્ગુરુ મહામહાદેવ સ્વામી શ્રી વિદ્યાનંદજી
મહારાજનું ઠેગણું કરજીપરા રટીટ નં ૨ સુ૦ રાજકોટ (૩ દિવાલડ)

ત્યાર પછી કદાચ ગીતાજયન્તીના અવસરે છે—

અમહ વાદન્ગીન મરીર આરંગીયા હરવાળા બહર (ગુજરાત)

જગદરા—ગીતામંદિર, ગોવાગેટ રોડ (ગુજરાત) માં રહેશે

गीता के योग

श्रीमद्भगवद्गीता में ज्ञानयोग और कर्मयोग प्रधान हैं। मनुष्यशरीर स्वभाव से ही कर्मशील है इस लिए कर्मयोगियों के लिए गीता ही गुरु है, पर वह कहा जाय कि गीता ज्ञानियों की चीज है, तो भी अनुचित न होगा।

जिन महर्षि व्यासजी ने गीता द्वारा ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियों का क्रमशः सत्य, शिव, सुन्दर मार्ग दिखलाया है, उन्हीं प्रातःस्मरणीय व्यासजी ने श्रीमद्भगवत् द्वारा भक्तियोग को अन्तिम रूप से और भी परिपुष्ट करते हुए उस का निर्गुण मार्ग दिखलाया है। ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग के उपदेशक एक ही आचार्य हैं, इस लिए इन तीनों योगों का एक ही लक्ष्य है—भिन्न भिन्न मार्गों द्वारा श्री भगवान् की आज्ञा का पालन करना।

यदि यह कहा जाय कि गीता पढ़ने और सुननेवाले सज्जन भजुन बन रहे हैं तो यह कथन अनुचित होगा। वास्तव में गीता पढ़ सुनकर जो कर्मबन्धन से छूट जाते हैं, उन्हीं का पढ़ना सुनना साधक है।

आज घोर कलियुग का चक्र चल रहा है। अन्य युगों से यह इसी लिए भेष्ट है कि इस में कर्मयोग की प्रधानता है। आजकल जो कर्म की कसौटी पर खरा उतरता है वही धन्य है।

—स्वामी विद्यानन्द

श्रीमत् प. प. ब्र. लो. गी. श्री १०८ जगद्गुरु महामण्डलेश्वर स्वामी श्री विद्यानन्दजी महाराज

का पता ठे० करणराम स्ट्रीट नं० २, मु० राजकाट (काठियावाड़)

इस के बाद गीताजयन्ती के अवसर पर—

अहमदाबाद—गीतामन्दिर आस्टोडिया दरवाजा बहार (गुजरात)

वडोदा—गीतामन्दिर, गोवागेट रोड, (गुजरात) साधक रहेंगे।